सचित्र मासिक
विश्वमित्र
जनवरी
१९४४
मूल्य
॥=)
विश्वमित्र कार्यालय
कलकत्ता

सम्पादक—
रामाशीष सिंह

जनवरी, १९४४ वर्ष १२ संख्या ४ पौष, २०००

दूर-मिलन

लगता है, जैसे हम दोनों कहीं मिले हों दूर।
दूर कहीं, अज्ञात स्थान जो अद्भुत एक अगोचर,
दूर कहीं, निस्सीम कालकी सीमासे भी बाहर।
प्रथम प्रेमकी मदिरा पीकर दोनों ही थे चूर।
अच्छी तरह याद है हमको, वह क्षण भी है याद,
सिर्फ एक क्षण वह जीवनका, वह पहला उन्माद।
पहली-बार हृदय था तड़पा, प्राण गये थे भूल,
हमने तुम्हें प्यार कर की थी सबसे पहली भूल।
हमने अनुभव किया मर्ममें एक चोट तत्काल।
दो तारोंके छू जानेसे हो जाता जो हाल।

भरी हुई थीं नयी उमंगें दोनोंमें भरपूर।
और आज भी तो लगता है, जैसे हम हों दूर,
ज्योंकी त्यों हैं बनी आज भी वे सीमाएं क्रूर!
कुछ ऐसा लगता है, मानों हो आये प्राचीन,
प्रायः जैसे बृद्धोंका मन हो जाता है दीन।
बादल जब कभी उमड़ते हैं, नव-रसकी वर्षा करते हैं,
चढ़ इन्द्र धनुषके पंखोंपर, जब मेरे स्वप्न विचरते हैं!
कभी-कभी विद्युत-प्रहर्षमें तुमको लेता देख,
जैसे श्याम कसौटीपर हो खिंची कनककी रेख।
दोनोंने ही आत्म-समर्पण किया, हुए मजबूर!

—आरसीप्रसाद सिंह

संस्कृतिकी रक्षामें विज्ञान

श्री भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव, एम० एस० सी०

इस युद्धमें विज्ञानके नूतनतम आविष्कारोंकी विध्वंसक लीला किसीसे छिपी नहीं है। यूरोपके कितने ही कला-भवन, अद्वितीय संग्रहालय तथा पुस्तकालयोंकी अप्राप्य पुस्तकें वायुयानोंके बमों द्वारा नष्ट हो चुकी हैं। यूरोपकी रणचण्डीके ताण्डव-नृत्यकी बलिवेदीपर संस्कृति और सभ्यताके ये स्मारक प्रति दिन भेंट चढ़ाये जा रहे हैं। नाजीवादकी प्रज्वलित की हुई ज्वालामें मानव जातिकी सहस्त्रों वर्षकी सञ्चित कला और संस्कृति आज धू-धू करके जल रही है। किन्तु युद्ध-जनित अनेक समस्याओंके हल करनेमें संलग्न रहकर भी वैज्ञानिक संस्कृतिकी रक्षाके लिए प्रयत्नशील हैं।

उदाहरणके लिए बहुमूल्य पाण्डुलिपि, पुस्तकों तथा समाचार-पत्रोंकी फाइलोंको भविष्यकी पीढ़ियोंके लिए सुरक्षित ढङ्गसे सञ्चय करनेके प्रश्नपर वैज्ञानिक तरह-तरहके अन्वेषण कर रहे हैं। यह सही है कि आजकलके समाचार-पत्रोंकी युद्धकी खबरें घण्टे-दो घण्टेमें ही बासी हो जाती हैं, किन्तु सौ-दो सौ वर्ष उपरान्त ये ही समाचार-पत्र आधुनिक कालके दिग्दर्शन करानेके लिए दर्पणका काम करेंगे। अतः यह नितान्त आवश्यक है कि प्रमुख समाचार-पत्रोंकी दो-चार प्रतियां अच्छे पुस्तकालयमें सुरक्षित ढंङ्गपर रख दी जायं। आजकलके समाचार-पत्रोंका कागज कितना घटिया हो गया है! अतः यह आशा नहीं की जा सकती कि ऐसा कागज सौ-पचास वर्ष पुस्तकालयमें टिक सकेगा। क्योंकि शहरकी गर्द, नमी, धुंआ आदि धीरे-धीरे कागजको बेहद क्षति पहुंचा देते हैं। इसी कारण अमेरिका और इङ्गलैण्डके अग्रगण्य दैनिक तथा साप्ताहिक पत्र बीस-पचीस प्रतियां बढ़िया, टिकाऊ कागजपर छापकर उन्हें प्रमुख पुस्तकालयोंमें सुरक्षित रखे जानेके लिए भेज देते हैं। यह कागज विशेष पद्धति द्वारा तैयार किया गया होता है, ताकि हजार वर्षोंमें भी यह खराब न हो सके। अवश्य इसे हद दर्जेकी गर्मी तथा रोशनीसे दूर रखा जाता है। जिस कमरेमें ये प्रतियां सञ्चित की जाती हैं, उसमें गर्द तथा नमी-रहित वायु ही जा पाती है। उसमें जानेवाली वायुको यन्त्रों द्वारा भलीभांति शुद्ध कर लेते हैं।

युद्ध-कालकी भीषण परिस्थितियोंका मुकाबला करनेके लिए इस क्षेत्रमें वैज्ञानिकोंको नये साधनोंका प्रयोग करना पड़ा है। अवश्य ही बहुमूल्य पुस्तकें तथा पाण्डुलिपियां धरतीके अन्दर ऐसी कोठरियोंमें बन्द की जा सकती हैं, जहां वायुयानके बम उन्हें किसी प्रकारकी क्षति न पहुंचा सकें। किन्तु अनुसन्धानके सिलसिलेमें प्रायः रीसर्च स्कालरोंको उन पुस्तकोंका निरीक्षण करना पड़ता है। अतः इनकी आवश्यकता पूरी करनेके लिए वैज्ञानिकने फोटोग्राफीका आश्रय लिया। पूरी पुस्तक बढ़िया केमरे द्वारा नन्हीं-सी फिल्मपर फोटोग्राफ कर ली जाती है। अब पुस्तकको तो जमींदोज कोठरीमें सुरक्षित अवस्थामें बन्द कर देते हैं और इसी फिल्मकी अनेक प्रतियां बना लेते हैं। फिल्मके अक्षर निस्सन्देह अत्यन्त छोटे होते हैं, उन्हें खाली आंखोंसे पढ़ा नहीं जा सकता। सिनेमा फिल्मकी भांति प्रोजेक्टर द्वारा इस फिल्मका छाया-चित्र सामने पर्देपर अभिवर्द्धित कर लेते हैं और एक-एक पृष्ठको रीसर्च स्कालर इतमीनानके साथ पढ़ता जाता है। पुस्तकका पूरा पृष्ठ फिल्मके एक वर्ग इञ्चमें समा जाता है। इस तरह लगभग ८०० पृष्ठोंकी समूची पुस्तकका मैटर एक फिल्मपर आ सकता है, जिसे लपेट लेनेपर मुश्किलसे ४ इञ्च मोटी रोल फिल्म बनती है। किन्तु सेलुलायडकी बनी हुई फिल्म बहुत अधिक काल तक नहीं चल सकती है, क्योंकि अधिकसे-अधिक ६०० बार ऐसी फिल्म प्रोजेक्टर-मशीनपर इस्तेमाल की जा सकती है। फिल्मका जीवन-काल बढ़ानेके उद्योगमें अल्यूमिनियमकी पत्तीकी फिल्में बनायी गयी हैं। विशेषज्ञोंका ख्याल है कि प्रोजेक्टर-मशीनपर डेढ़ हजार बार चढ़ाये जानेपर भी ये फिल्में घिसती नहीं हैं। यदि उन्हें ऐसी मुहरबन्द बोतलोंमें रखा जाय, जिनमें हीलियम गैस भरी हुई हो, तो ये ६००० वर्ष तक सुरक्षित रह सकती हैं।

एक और वैज्ञानिकका सुझाव है कि बहुमूल्य पुस्तकोंको ऐसे स्वर्णपत्रोंपर अङ्कित किया जाय, जिनके ऊपर प्लेटिनमका पानी चढ़ा हो। ये दोनों धातुएं ऐसी हैं, जिनपर नमी, तेजाबकी गन्ध या धुंएं आदिका प्रभाव नहीं पड़ता। अवश्य ही स्वर्णपत्रोंपर छपी पुस्तक बेहद महंगी पड़ेगी। एक साधारण ६ पृष्ठोंके दैनिकको इस विधिसे छापनेमें अकेली एक प्रतिपर लगभग ९ सौ रुपयेका खर्च बैठ जायेगा।

फिर जिस पुस्तकालयमें स्वर्णपत्रोंपर छपी हुई पुस्तकें संगृहीत की जायंगी, उसपर चोर-डाकुओंकी आंख भी विशेष रूपसे लगी रहेगी। क्योंकि ऐसी पुस्तकें जहां पुस्तकालयसे बाहर पहुंचीं, दो-चार मिनटोंके अन्दर चोर उन्हें आंचपर पिघलाकर सोनेकी ईंटें तैयार कर लेगा—फिर कौन कह सकता है कि उस पुस्तकालयकी स्वर्णपत्र-पुस्तकका यह परिवर्तित रूप है ?

तीन-चार वर्ष हुए, न्यूयार्कमें अन्तर्राष्ट्रीय मेला हुआ था। उस अवसरपर अमेरिकाके वैज्ञानिकों तथा इञ्जीनियरोंने मिलकर धरतीमें ५० फीटकी गहराईपर एक लम्बी नली गाड़ी। इस नलीमें इन लोगोंने आधुनिक युगकी सभ्यता और संस्कृतिके स्मारक-चिह्न रखे हैं, ताकि आजसे ५ हजार वर्ष पश्चात् भविष्यकी पीढ़ियां जब इस नलीको खोलें, तो उन्हें हमारे समाज तथा हमारी सभ्यताकी एक झांकी मिल सके। इस नलीमें हमारे दैनिक जीवनके प्रत्येक क्षेत्रके प्रतीक रखे गये हैं। यह नली साढ़े सात फीट लम्बी तथा आठ इञ्च चौड़ी है। इस नलीमें फिल्मपर अङ्कित किया गया विश्वकोष (एनसाइक्लोपीडिया), बायबिल, सचित्र मासिक पत्रिकाएं, दैनिक पत्र तथा अन्य सुविख्यात पुस्तकें हैं। आधुनिक कालके अनेक महान व्यक्तियोंके सन्देश भी फिल्मपर अङ्कित किये गये हैं। संसारके सबसे बड़े वैज्ञानिक आइन्सटाइनने ५ हजार वर्ष बाद आनेवाली मानव-जातिके लिए अपना सन्देश दिया है। वाल्टडिस्नीके मिकी माउस कार्टूनकी भी एक प्रति इस नलीमें रखी गयी है। आधुनिक सामाजिक जीवनका दिग्दर्शन करानेके लिए दैनिक जीवनमें काम आनेवाली अनेक छोटी-मोटी वस्तुएं, जैसे दांतका ब्रुश तथा टिन खोलनेका औजार, लिपस्टिक आदि भी इस नलीमें रखी गयी हैं। आशा की जाती है कि ५ हजार वर्ष तक यह हमारी थाती सुरक्षित रह सकेगी।

इस बातका खतरा अवश्य है कि उस सुदूर भविष्यके लोगोंको यह पता कैसे चलेगा कि अमुक स्थानपर बीसवीं सदीके मानवने उनके लिए अपनी थाती और सन्देश रख छोड़ा है? इस कठिनाईको दूर करनेके लिए प्रशंसनीय प्रयत्न किया गया है। इस स्कीमके संयोजकोंने नलीका
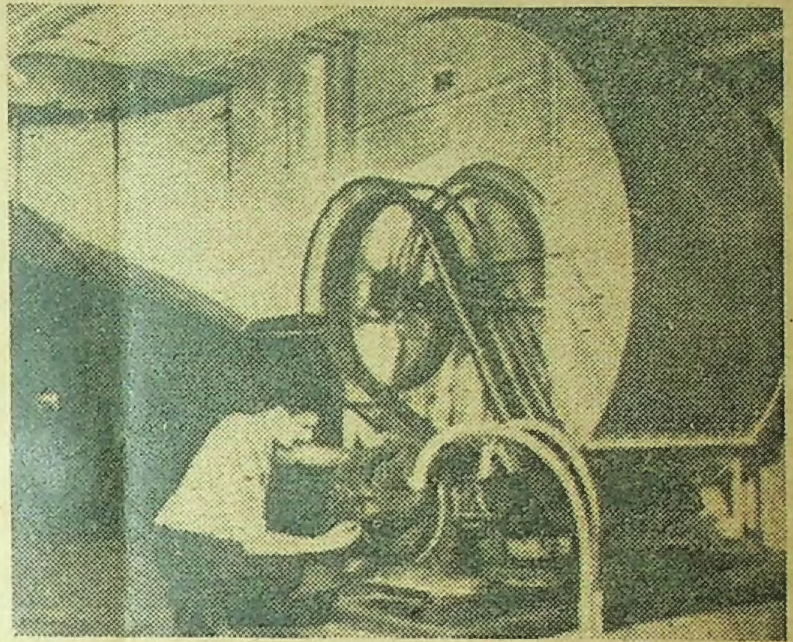
नेशनल आर्ट गैलरीमें इस यन्त्र द्वारा ताजी हवा घण्टेमें छः बार भेजी जाती है।

पता-ठिकाना पुस्तिकाओंके रूपमें छपाकर संसारके तमाम प्रमुख पुस्तकालयों और संग्रहालयोंमें भेजनेका निश्चय किया है। ये पुस्तिकाएं टिकाऊ कागजपर और विशेष किस्मकी स्याहीसे छपी हैं, ताकि ये जल्दी खराब न हो जायं। आशा की जाती है कि सौ-दो सौ वर्षमें, यदि ये पुस्तिकाएं खराब होने लग जायेंगी, तो पुस्तकालयके अधिकारी उसकी नकल करके पुनः छपा लेंगे। इस प्रकार संसारके किसी-न-किसी कोनेसे आजसे ५ हजार वर्ष उपरान्त इस पुस्तिकाकी कोई-न-कोई प्रति अवश्य ही लभ्य हो सकेगी।

प्राचीन कालके कलाकारोंकी कृतियोंको सुरक्षित रखनेमें भी विज्ञान भरपूर प्रयत्नशील है। प्रायः सुप्रसिद्ध कलाकारोंके चित्रोंकी झूठी प्रतिलिपियां बनाकर पेशेवर चित्र-विक्रेता शौकीन कला-प्रेमियोंको ठगनेका प्रयत्न करते हैं और उनसे मनमाने दाम वसूल कर लेते हैं। इनकी ठगीका भण्डाफोड़ विज्ञानके नूतनतम साधनों द्वारा किया जा सकता है। युद्धजनित परिस्थितियोंने इस प्रकारकी ठगीके लिए और भी प्रोत्साहन दिया है। युद्धकी भीषण ज्वालासे बचनेके उद्योगमें भागनेवाले लोगोंको अनेक देशोंकी ओरसे निषेध-आज्ञा जारी है कि वे अपने साथ द्रव्य या सोने-चांदीके आभूषण नहीं ले जा सकते। ऐसी दशामें अनेक शरणार्थी अपने साथ प्राचीन कलाकारोंकी कृतियां ले आते हैं, क्योंकि उन्हें इतमीनान रहता है कि इनके लिए उन्हें

नेशनल आर्ट गैलरीकी छत कांचकी है, ऊपरसे सर्चलाइटमेंसे प्रकाश छनकर नीचे प्रदर्शन हालमें पहुंचता है।

ऊंचे दाम मिल सकेंगे। प्रायः अन्य देशोंमें प्रवेशके लिए पुरानी कलात्मक कृतियोंके लिए किसी प्रकारका चुङ्गी-कर भी नहीं लगता। अतः इन्हें लेकर उन्हें विदेशोंमें जानेमें किसी प्रकारकी असुविधा भी नहीं होती। अमेरिकामें यूरोपसे भागे हुए इस श्रेणीके शरणार्थी हजारोंकी सङ्ख्यामें पहुंचे हैं। इनमेंसे अनेक नकली चित्रोंको असलीके नामपर बेचनेका प्रयत्न करते हैं। अमेरिकाके धनी व्यक्ति कला-पारखी कहलानेके लोभमें हजारों डालर देकर इन्हें खरीद लेते हैं। चित्रोंकी जालसाजीका रहस्योद्‌घाटन करनेवाले एक विशेषज्ञने इस सम्बन्धमें बात-चीत करनेके सिलसिलेमें मजाकमें कहा था कि 'सुप्रसिद्ध चित्रकार 'कोरो'के बनाये हुए ३ हजार चित्रोंमेंसे १० हजार चित्र आजकल अमेरिकामें मौजूद हैं!'

ब्रुकलिन (अमेरिका) के संग्रहालयके एक निपुण विशेषज्ञने अभी हालमें संग्रहालयके अधिकारियोंके सामने बिक्रीके लिए आये एक चित्रका भण्डाफोड़ किया है। चित्र-बेचनेवालेका कहना था कि यह चित्र १६ वीं शताब्दीके सुप्रसिद्ध डच कलाकार होबेमाका बनाया हुआ है। इसका मूल्य १२ हजार डालरसे भी अधिक लग रहा था। इस चित्रको प्राचीनताका रूप देनेके लिए चित्रके रङ्गमें कृत्रिम रूपसे दरारें भी बना दी गयी थीं। चित्रमें कई स्थानपर सूराख भी दीख रहे थे और ऐसा जान पड़ता था कि उतनी जगहको कीड़े खा गये हैं। विशेषज्ञको सन्देह हुआ कि चित्रके रङ्गमें जो दरारें दीख रही हैं, वे नकली हैं और ब्रुश-से बनायी गयी हैं। एक्स-रे फोटोग्राफ लेनेपर उसके सन्देह-की पुष्टि हो गयी। फिर तो उसने रूईके फायेको विशेष रासायनिक द्रवमें डुबाकर चित्रके ऊपर फेरा। ऊपरकी दरारें और रङ्गकी ऊपरी तह एक दम धुल गयी और नीचे हालका रंगा हुआ चित्र साफ दीखने लगा। चित्रको प्राचीनताका बाना पहनानेका जो प्रयत्न किया गया था, वह वैज्ञानिक जांचके सामने टिक न सका। चित्रमें यत्र-तत्र कीड़ोंके खानेके जो सूराख बने हुए थे, उनका अभिवर्द्धित फोटोग्राफ लिया गया। ध्यानपूर्वक इनकी परीक्षा करनेपर मालूम हुआ कि ये सूराख कीड़ोंके खानेकी वजहसे नहीं बने हैं, बल्कि कील ठोंककर बनाये गये हैं। इस प्रकार इस विशेषज्ञने संग्रहालयका १२ हजार डालर बचाया।

अनेक कारणोंसे कभी-कभी प्रसिद्ध कलाकारोंकी कृतियों-के ऊपर अपने ब्रुश फेरकर उन्हें अपने बनाये हुए चित्रके नामसे लोग प्रसिद्ध कर देते हैं। मध्यकालीन यूरोपके प्रतिक्रियावादी युगमें अनेक कलाकारोंकी कृतियां पोपकी कोप-दृष्टिका भाजन बन चुकी थीं, अतः उनकी कृतियोंको नष्ट किये जानेसे बचानेके लिए उनके शिष्योंने उनके ऊपर रङ्ग फेर, चित्रका स्वरूप ही बदल दिया था।

ब्रुकलिन संग्रहालयमें इसी ढंगका एक चित्र ४ सौ डालर-में खरीदा गया था। विशेषज्ञको कुछ सन्देह हुआ, तो उसने चित्रका एक्स-रे फोटोग्राफ लिया। बार्निशके रङ्गकी ऊपरी तहके नीचे एक सुप्रसिद्ध कलाकारके हस्ताक्षर इस फोटो-ग्राफमें स्पष्ट उभर आये। फौरन ही रासायनिक द्रवोंकी सहायतासे विशेषज्ञने ऊपरी तहके रङ्गोंको धो डाला। असली चित्र स्पष्ट दीखने लगा और उसके नीचे ही 'रीबेरा' मध्यकालीन चित्रकारके हस्ताक्षर भी मौजूद थे। इस चित्र-के दाम अब १९ हजार डालर आंके जा रहे हैं।

इसी प्रकार रूसका एक चित्र, जो साढ़े चार सौ वर्ष पहले लकड़ीपर बनाया गया था, इतने लम्बे कालके उपरान्त जीर्ण-शीर्ण होकर नष्टप्राय हो चुका था। किन्तु विशेषज्ञोंके

हाथमें आनेपर इसका पुनरुद्धार हो गया। सबसे पहले विशेषज्ञने बारीक औजारसे चित्रकी सतहका एक टुकड़ा नमूनेके ढङ्गपर निकाला। अनुवीक्षण-यन्त्रसे इसकी परीक्षा करनेपर पता चला कि इस चित्रपर वार्निशके रङ्गकी आठ तहें एकके बाद दूसरी चढ़ायी गयी हैं। धीरे-धीरे भांति-भांतिके रासायनिक पदार्थोंकी मददसे उसने ऊपरके रङ्गकी तहें हटायीं और इस तरह उस प्राचीन चित्रको पुनः उसका वास्तविक सौन्दर्य प्रदान किया। अब इसी चित्रका मूल्य १ हजार पौण्ड लगाया जा रहा है।

चित्र, दोष दूर करनेके पूर्व पूजाकी वेदी-पर जलनेवाली मोमबत्ती तथा लम्बे जमानेके कारण चित्रमें जगह-जगह नुक्स आ गये हैं।

(नेपोलियनने जब स्पेनपर आक्रमण किया था, उन्हीं दिनों मेड्रिडके मठमें रखा हुआ चिन्तामग्न 'मैडोना' का यह सुप्रसिद्ध चित्र फौरन चोरी-छिपे हटाकर इंगलैण्ड भेज दिया गया—रास्तेमें मोड़नेमें असावधानी होनेके कारण इस चित्रमें अनेक दोष आ गये। जार्ज एक्जेल नामक एक विशेषज्ञने विज्ञानकी नवीन पद्धति द्वारा इस चित्रको पुनः सुधार दिया है)

इस क्षेत्रमें काम करनेवाले विशेषज्ञ अल्ट्रावायलेट रश्मियों, एक्स-रे तथा शक्तिशाली अनुवीक्षण-यन्त्रों और भांति-भांतिके रासायनिक पदार्थोंका प्रयोग करते हैं। विशेषज्ञको चित्रकारीका भी अच्छा ज्ञान होना चाहिये, क्योंकि प्रायः चित्रके चिप्पड़ उखड़ जानेके कारण उसे उसी रङ्गसे चित्रमें रिक्त स्थानको पूरा करना पड़ता है। चित्रके रङ्गको नमी, गर्द आदिसे बचानेके लिए वह पारदर्शक वार्निश लगाकर उसके ऊपर एक हलकी तह चढ़ा देता है, जो आसानीसे धोयी जा सके। ऊपरकी पारदर्शक वार्निशको धोनेके लिए जो रासायनिक पदार्थ इस्तेमाल किये जाते हैं, वे ऐसे होने चाहिये कि असली चित्रके रङ्ग उनके स्पर्शसे धुल न सकें।

पुरातत्व-वेत्ताओंकी समस्याओंको हल करनेमें भी ये विशेष प्रवीण होते हैं। प्रायः हजारों वर्ष पुराने गुलदस्ते या चीनी मिट्टीके बेल-बूटेवाले बर्तन खोदाईके सिलसिलेमें निकाले जाते हैं, पर टूटी-फूटी अवस्थामें मिलते हैं। विशेषज्ञ इन टुकड़ोंको यथास्थान फिट करके उन्हें रासायनिक पदार्थोंकी सहायतासे जोड़कर इस योग्य बना देता है कि वे संग्रहालयमें प्रदर्शनके लिए रखे जा सकें।

चित्रको एक्स-रे करनेपर उसके छिपे हुए दोष उभर आये। नाक, दाहिने कन्धे, हाथ और ललाटपर ध्यान दीजिये।

प्राचीन कालके लकड़ीके बने हुए पदार्थोंको संग्रहालयमें रखनेके पहले उन्हें शीशेकी एक बन्द कोठरीमें रखकर उसमें कार्बन टेट्रा क्लोराइडका धुंआं भरा जाता है, ताकि लकड़ी-

के छिद्रोंमें घुसे हुए कीड़े विषाक्त धुंएंके कारण मर जायं। अब लकड़ीके घुननेका डर नहीं रह जाता, और काफी अर्से तक ये पदार्थ संग्रहालयमें सुरक्षित रह सकते हैं। प्राचीन कालकी पुस्तकोंको सुरक्षित बनानेके लिए इसी तरकीबको काममें ले आते हैं।

विशेषज्ञके हाथों चित्रके तमाम दोष दूर हो गये। एक बार फिर 'चिन्तामग्न मैडोना' अपने पूर्ण सौन्दर्यको प्राप्त कर सकी है।

अमेरिकाकी 'नेशनल आर्ट गैलरी' की पुरातत्व सम्बन्धी बहुमूल्य मूर्त्तियां, पुस्तकों और चित्रोंकी रक्षाका प्रबन्ध करनेके लिए कई एक वैज्ञानिक और इञ्जीनियर रखे गये हैं। ये लोग दिन-रात इसी फिक्रमें रहते हैं कि किस प्रकार इस आर्ट गैलरीकी वस्तुओंको हद दर्जेकी गर्मी, सर्दी और नमी तथा धुंएं आदिके नष्टकारी प्रभावसे बचाया जाय।

एयर कण्डिशनिंग यन्त्र द्वारा इस कला-भवनमें वायुका ताप-क्रम सालके बारहों महीने ७० डिग्री रखा जाता है, तथा आर्द्रता भी ५० प्रतिशत वायुमें मौजूद रहती है, अन्यथा चित्रोंके पर्दोंके खराब होनेकी आशङ्का बनी रहती है। कला-भवनके अन्दर उपर्युक्त ताप-क्रम बनाये रखनेके लिए प्रति मिनट ९ हजार गैलन पानी कला-भवनके एयर कण्डिशनिंग यन्त्रमें भेजना पड़ता है। इस पानीके ले जानेवाले पाइपका मुंह ९ फीट चौड़ा है। इमारत-भरमें कुल १७ एयर कण्डिशनिंग यन्त्र फिट किये गये हैं। इमारतमें प्रति घण्टे ६ बार ताजी हवा भेजी जाती है। तमाम व्यवसाय-प्रधान नगरोंकी वायुमें सल्फर डाइ आक्साइड (गन्धकका धुंआं) प्रचुर मात्रामें मौजूद रहता है। रंगे हुए चित्रोंको गन्धकका धुआं अत्यधिक क्षति पहुंचा सकता है। अतः कला-भवनमें भेजनेके पहले वायुको स्वच्छ और शुद्ध करनेका भी प्रबन्ध किया गया है, ताकि कला-भवनमें कोयले या गन्धकका धुआं प्रवेश न कर सके। एयर कण्डिशनिंग यन्त्र और वायुको शुद्ध करनेवाली मशीनोंका परिचालन करनेवाला इञ्जिन कला-भवनकी [illegible] मंज़िलमें स्थित है। कला-भवनका प्रदर्शन-हाल दूसरी मञ्जिलपर है। दर्शकोंको प्रदर्शन-भवनमें जानेपर इस बातका पता नहीं लगता कि कला-भवनकी अमूल्य निधिकी रक्षाके निमित्त इतने बड़े-बड़े इञ्जिन और यन्त्र भी वहां लगे हुए हैं। कला भवनकी इमारतमें चित्रों और प्रस्तर मूर्त्तियोंका निरीक्षण करनेके लिए आलोककी तीव्र रश्मियां उपयुक्त नहीं होतीं। तीव्र रश्मियोंसे व्यर्थकी चकाचौंध उत्पन्न होती है। अतः तीव्र आलोक-रश्मियोंको रोकनेके लिए कला-भवनमें आलोकके प्रवेशका विशेष प्रबन्ध करना पड़ा है। इस कला-भवनमें प्रकाश खिड़कियोंसे होकर नहीं आने पाता। सारा प्रकाश छतसे होकर प्रदर्शन-हालमें आता है। प्रदर्शन-हालकी छतोंमें धुंधले कांचके रोशनदान लगे हुए हैं। रातको इन रोशनदानोंमेंसे छनकर विद्युत लैम्पका प्रकाश आता है। रोशनदानके कांच नवीन पद्धतिसे तैयार किये गये हैं—अकस्मात टूट जानेपर इनके टुकड़े इधर-उधर उड़ते नहीं हैं, बल्कि तीव्र आघातसे टूटनेपर यह भुरभुरा पाउडर हो जाता है।

विज्ञानका यह सृजनात्मक कार्य मानव-समाजकी संस्कृति और सभ्यताकी दृष्टिसे निस्सन्देह प्रशंसनीय है। विज्ञानका सही प्रयोग रचनात्मक कार्योंके लिए ही है। आजकलके युद्धके विध्वंसनात्मक कार्योंमें जबर्दस्ती विज्ञानको घसीटनेवाले राष्ट्र अपने स्वार्थमें अन्धे होकर विज्ञानके माथेपर कलङ्कका गहरा टीका लगा रहे हैं। कालान्तरमें निष्पक्षरूपसे विश्लेषण करनेपर यह भलीभांति प्रमाणित किया जा सकेगा कि रक्तकी नदियां बहानेके लिए वास्तवमें विज्ञानको दोषी नहीं ठहराया जा सकता।

———

द्वन्द्व

श्री विष्णु

सुजाताकी आंखें भर आयीं। सारे चित्र उसके सामने इस तरह घूम गये, मानो ये सब सजीव घटनायें अभी उसके सामने घट रही हैं और वह उन्हें देख रही है असमर्थ, विवश, पत्थरके बुतकी तरह; न हिल सकती है, न बोल सकती है। केवल उसके दिलका दर्द आंखोंमें उमड़कर चारों ओर फैलता जा रहा है, जिसकी झलक देखकर वह स्वयं ही कांप उठती है, लेकिन वह सोचती है, उस कम्पनका मूल्य ही क्या, जो हाथोंको आगे न बढ़ा सके, जो पैरोंको चलनेपर विवश न कर .....वह रुक गयी। उसका दर्द और भी गहरा हो उठा। उसने फुसफुसाकर कहा—मुझे चलनेसे कोई नहीं रोक सकता, मुझे दूसरे कोई मना नहीं कर सकता? नहीं, मैं स्वतन्त्र हूं। मैं चाहे जो कर सकती हूं...... ...

विचारोंका फिर एक [illegible] लगा। वह खड़ी थी, अब पास ही पड़े पलङ्गपर बैठ गयी या कहें, लुढ़क पड़ी; क्योंकि पलंगपर उसकी छोटी लड़की अमला सोयी थी, सो एक बार चौंककर उठी......ओह! सुजाता हड़बड़ायी। अमलाको गोदीमें उठा लिया, पुचकारा। क्षणभरके लिए सब विचार हवा हो गये। उसे अपनेपर ग्लानि हो आयी, लेकिन दूसरा क्षण बीता, अमला गोदमें चिपककर सो गयी और वह फिर कहने लगी—कल इसी वक्त अनन्त आया था। उसने आते ही कहा था—भाभी! भीख मांगने आया हूं। सुजाता हंसी थी—भीख मांगने आये हो, तो दरवाजेपर जाकर खड़े हो। एक मुट्ठी आटा ले आती हूं। वह नहीं हंसा था; बल्कि गम्भीर होकर बोला था—आटा नहीं भाभी, मुट्ठीमें रुपये भरो।

'रुपये!'

'हां, रुपये, भाभी! जो कुछ भी जीवनमें जोड़ा हो, वह मुझे दे दो।'

हंसी फिर आयी—डाका डालनेका बड़ा सुन्दर तरीका ढूंढ़ा है तुमने!

आशीर्वाद दो भाभी कि यह डाका डालनेमें मैं समर्थ होऊं—अनन्त जरा भी नहीं हंसा। सुजाता शङ्कित हुई—आखिर क्या बात है, अन्तू?

'बात जानोगी?'

'हां, कुछ बताओ भी, तुम तो आज पहेली बुझा रहेहो।'

यह ऐसी पहेली है भाभी, कि मेरे बुझाये न बूझोगी—अनन्त बोला और फिर उसने बगलसे अखबारोंका एक बण्डल निकाला, उसे पलङ्गपर फैलाने लगा—लो, देखो भाभी! बात यह है। देखती हो इन तसवीरोंको, सुनती हो, ये क्या कहती हैं?

सुजाताने अचरजसे उन तसवीरोंको देखा। देखकर अचकचायी, कांपी, फिर धीरेसे पढ़ने लगी। (१) ये दो बच्चे अपने पिताको अन्तिम सांस तोड़ते देख रहे हैं (२) यह मां अपने मरते हुए बच्चेको छातीसे चिपका रही है, दूसरा बच्चा मरा पड़ा है, तीसरा कहता है, मां! भूख लगी है (३) अब इसे दूधकी जरूरत नहीं मां! (४) आधी छटांक खिचड़ीके लिए अपार भीड़ (५) सड़कोंपर लावारिश लाशोंका ढेर (६) यह बच्चा है, जिसे भूखी मांने एक आनेमें बेचा है (७) ओ, जलानेवाले! इसे भी ले जाओ... सुजाता आगे न पढ़ सकी। दिलमें कुछ चुभने लगा। बोली—अन्तू! आखिर यह सब क्या है?

'भूख।'

'इन्हें कोई खाना देनेवाला नहीं।'

'नहीं।'

'तो?'

'इन्हींके लिए भीख मांगने आया हूं।'

ओह! तुम चन्दा कर रहे हो और ये कलकत्तेके दृश्य हैं—सुजाता एकदम बोल उठी।

'जी, आपने ठीक समझा।'

सुजाता हंसी नहीं, बल्कि गम्भीर होकर बोली—कलकत्तेकी बातें मैंने सुनी हैं, अन्तू! अन्नकी कमीसे यह सब अनर्थ हो रहा है और अभी क्या होगा, इसका किसीको पता भी नहीं है। कौन जाने, हमें भी इसी तरह तलफतलफकर दम तोड़ना पड़े!

'शायद तुम ठीक कह रही हो, भाभी!'

'आखिर यह सब क्यों होता है?'

'कौन जाने।'

'हां, अन्तू! कौन जाने यह, भगवान ऐसा क्यों करते हैं! शायद प्रलय होनेवाला है।'

'शायद।'

फिर दोनों चुप रह गये। क्षणिक सन्नाटा छा गया, फिर अन्तू बोला—मुझे आगे जाना है, भाभी!

सुजाता चौंक पड़ी—ओह! मैं भूल गयी, अन्तू! जी दुख रहा है। मैं कल सवेरे ही तुम्हारे घर रुपये भेज दूंगी। सन्ध्याको वे आयेंगे।

मैं समझा—अन्तू जरा मुस्कराया—मैं कल आऊंगा।

सुजाता लजायी—आ जाना, मैं जरूर दूंगी अन्तू, अब तो......

जानता हूं—अन्तूने कहा। और उठकर चल पड़ा। सुजाता उसे देखते-देखते खड़ी रही। अचानक जीमें उठा, पुकारकर कहे—अरे अन्तू! जरा ठहर तो, पानी-वानी पीता जा। लेकिन शब्द वाणीका साथ न दे सके, भावोंसे जकड़े रहे।

और यही बात लेकर सुजाता सोमेनसे सलाह करने बैठी। नारी थी—बातका क्रम जानती थी। सन्ध्याको भोजनसे निपटकर, जैसे ही सोमेनने नया मासिक उठाया, सुजाता बोल उठी—अखबार तो आप रोज पढ़ते हैं।

सोमेन मुस्कराया—पढ़ता हूं; तुम भी पढ़ोगी? कई बार कह चुका, आजकल अखबार जरूर पढ़ा करो।

सुजाता लजा गयी—पढ़ना तो चाहिये।

'तो मैं कह दूंगा 'हिन्दुस्तान' या 'विश्वमित्र' दे जाया करेगा। अङ्ग्रेजीका तो तुम ठीक-ठीक समझोगी नहीं।'

हां,—सुजाताने कहा। फिर रुककर बोली—सुना है कलकत्तेमें तो आदमी सड़कोंपर मर रहे हैं।

सोमेनने पत्रिका पलटते-पलटते कहा—मौत स्थानकी चिन्ता नहीं करती, सुजाता!

'जी, पर इस तरह आदमी मरने लगे तो......'

तो दुनिया निबट जायेगी—सोमेन बड़े जोरसे हंस पड़ा—तो फिर कौन बुरा काम होगा, यह दुनिया बनी ही क्यों है?

'भगवान जाने......।'

'भगवानको ही कौन जानता है।'

सुजाता सोमेनके इस तर्क-प्रवाहसे अप्रतिभ हुई बोली—आपने तो दर्शन-शास्त्र पढ़ा है। मैं आपसे तर्क नहीं करती। मैं तो पूछती थी कि कलकत्तेमें जो लोग भूखे सड़कोंपर मर रहे हैं, मांके देखते-देखते उसके बच्चे प्राणोंको छोड़ देते हैं, अपने बच्चोंको बिलखते छोड़कर मां-बाप आंख मींच लेते हैं, यह जो अव्यवस्था और अन्याय फैला है, उसके लिए कौन जिम्मेदार है?

भगवान—सोमेनने उसी तरह आंखें गाड़े कहा।

और—सुजाता बोल उठी आप-ही-आप।

'भाग्य।'

'और?'

'राजा।'

सुजाता मशीनकी तरह फिर 'और' कहनेको हुई, पर रुक गयी। सोमेन बात करनेके मूडमें नहीं था, यह वह समझ गयी। इसलिए उसका दिल कुछ भर आया, ग्लानि-सी पैदा हुई। आंखोंमें जैसे कुठार कसक उठा; मलने लगी। अब सोमेनने आंखें ऊपर उठायीं। जाना, सुजाता रिसा गयी है, इसीलिए मुस्करा उठा और बोला—और नहीं पूछोगी, सुजाता?

क्रोध बह पड़ा—आप किसी दूसरेको कुछ समझते हैं, आपसे कोई क्या पूछे?

सोमेन और भी मुस्कराया—आपकी बातका जवाब मैं दे रहा हूं, अगर वह आपके मनके अनुसार नहीं है, तो मैं क्या करूं?

खाक—सुजाता रिसायी रही।

सोमेन हंस पड़ा—खाक तुम्हें महंगी पड़ेगी, सुजाता। भारतमें उन बेवकूफोंकी कमी नहीं है, जो रात-दिन खाकको माथा नवाया करते हैं। मुझे साधू बननेमें कोई आपत्ति नहीं है।

सुजाता भी ढीली पड़ी—तब इस घरका क्या करोगे?

'दान।'

'अभी क्यों नहीं कर देते?'

'गृहस्थीमें रहते सर्वस्व-दान पाप है।'

'सर्वस्व नहीं, वह तो केवल कुछ रुपयोंकी बात है।'

रुपये—सोमेन चौंका।

जी—सुजाता मुस्करायी।

सोमेनने अचरजसे सिर उठाया और सुजाताको देखा। वह हंसना चाह रही थी, परन्तु विषाद उसे मथे डाल रहा था और बेबसीके कारण अपनेपर झुझला रही थी। सोमेन-को बड़ा अजीब-सा लगा। उसने पत्रिका बन्द कर दी और पास आकर कहा—सुजाता! आखिर बात क्या है?

सुजाताने ऊपर देखा और कहा—बात यही है कि अन्तू आया था।

'अनन्त?'

'जी।'

'चन्दा मांगनेके लिए?'

'जी।'

'आपने कहा कि कल आना?'

'जी।'

'दिया क्यों नहीं?'

सुजाताने ऊपर देखा—मेरे पास क्या था, जो मैं देती?

'मेरे पास क्या है?'

'यही तो सलाह करनी है।'

सोमेन फिर बैठ गया—सुजाता! मैं तुम्हारे दर्दको पहचानता हूं। दर्द मेरे भी उठता है। आंखें मेरी भी उफनती हैं। छाती भर आती है। जीमें उठता है कि सब कुछ दान कर दूं, सब कुछ।

सुजाताने सगर्व सोमेनको देखा। सोमेन फिर बोला—लेकिन, सुजाता! मैं सोचता हूं, भगवान सब-कुछ देख रहे हैं, वह सब-कुछ जानते हैं, अनन्त धन आज भी देशमें भरा पड़ा है, तो फिर यह विडम्बना क्यों है? क्यों यह भूख जन-जनको खाये जा रही है? क्यों यह आत्म-विश्वास ढीला पड़ता जा रहा है? क्यों मनुष्यता लोप हो गयी है......

सुजाताने धीरे-से डरते-डरते कहा—यह सब तो विश्व-संघर्षके कारण हैं।

'और यह संघर्ष किस कारण है?'

सुजाता नहीं बोली। सोमेनने कहा—सुजाता! प्रश्न-का अन्त कहां है? तुम कहती हो, सब अनर्थ संघर्षके कारण है, पर मैं कहता हूं, इन सब अनर्थोंके कारण ही यह संघर्ष है। फिर मैं क्या करूं? मैं क्यों उस भगवानके कार्योंमें दखल दूं। मैं तो चाहता हूं कि यह 'त्राहि-त्राहि' मचती रहे, यह अन्याय बढ़ता रहे और एक दिन यह सब दुनिया नष्ट हो जाये......

'भगवान चाहेंगे तो यही होगा।'

'तो फिर प्रश्न ही नहीं उठता। भगवान चाहते हैं कि मानव भूखा मरे, तो हम क्या कर सकते हैं।'

सुजाता फिर बोली—आपसे मैं तर्क नहीं करती, पर दया-परोपकारकी बात भी तो हमारे शास्त्रोंमें लिखी है, उसीकी परख करनेके लिए भगवान यह अन्याय दुनियामें पैदा करते हैं।

सोमेन एकदम बोला—दया और परोपकार हैं, मैं उनमें विश्वास नहीं करता।

पाप!!—सुजाता कांप उठी।

'हां, पाप! जो वस्तु मनुष्यको अशक्त बनाये, जो उसके आत्मविश्वासको खण्डित करे, जो उसे दूसरेका आश्रित बनाये वह पाप है, सहस्र बार पाप है।'

सुजाता फिर कुण्ठित हुई, लेकिन दूसरे ही क्षण एक बात उसे सूझ आयी, बोली—पराश्रयकी बात अगर सच है, तो घर-घरमें यह पाप फैला है। मैं आपपर आश्रित हूं। बच्चे हम दोनोंपर आश्रित हैं।

सोमेन हंस पड़ा—तर्क तुम्हें भी आता है सुजाता, पर तुम एक भूल करती हो, जिस तरह तुम मुझपर आश्रित हो, उसी तरह मैं तुमपर आश्रित हूं। हम सब एक दूसरेपर आश्रित हैं, यह गृहस्थ-जीवन-यापनके लिए किया गया समझौतामात्र है; परन्तु भूखेको भोजन देकर तो तुम उसे सदाके लिए निकम्मा बना रही हो। वह न भोजनके लिए प्रयत्न करेगा, न भूखा मर सकेगा, केवल हाथ पसारे गिड़गिड़ाया करेगा, सुजाता! यह जीते-जीकी मौत है, महापाप है।

सुजाताकी बुद्धिपर बार-बार ठेस लग रही थी। वह बार-बार कुण्ठित हो उठती थी। बार-बार फिर उसे कुछ सूझ जाता था। बोली—लेकिन आप भूलते हैं, स्वामी! यह उन व्यवसायी भिखमङ्गोंकी बात नहीं है। इन्हें तो इस सत्यानाशी दुर्भिक्षने भूखा मरनेको विवश किया है और फिर वे सब लोग मांगनेको कहां आ रहे हैं, वे तो भूखों मर रहे हैं ......

इसी समय सहसा अमला जागकर रो उठी। सुजाताने लपककर उसे उठा लिया। छाती उसकी भर रही थी, आंखें उमड़ी पड़ती थीं। बच्चीको कलेजेसे लगाते ही बरस पड़ी। सोमेनने अचरजसे चकित इस नारीको देखा, जिसकी आंखों-में अब एक अद्भुत भय साकार होता आ रहा था—कौन जाने, एक दिन हमें भी, भूखकी ज्वालामें झुलसना पड़े। कौन जाने ये बच्चे......उसी क्षण उसके सामने अखबारकी तसवीरें घूम गयीं। हर एक तसवीरमें उसने देखा अपनेको, सोमेनको और अपने दोनों बच्चोंको......वह कांप उठी, तिनक उठी, बच्चेको जोरसे छातीमें भरकर उसने अपने होठ काट लिये कि कहीं सोमेन उसके आंसू न देख लें; लेकिन सोमेनने उन आंसुओंको देखा, उन आंसुओंके स्रोतको भी देखा, फिर चुपचाप छड़ी उठायी और बाहर चला गया। जाते हुए कहा—सुजाता! तो जरा घूम आऊं। सिर भारी है, दूध न पिऊंगा। और वह चला गया। उसके

बाद फिर उस रात दोनोंमें कोई बात नहीं हुई। सुजाताने मशीनकी तरह गृहस्थीके काम संभाले। दूध स्वयं भी नहीं पिया। सब जमा दिया। बरतन मले, चूल्हा लीपा, बच्चेकी आंखोंमें काजल डाला और चुपचाप बड़े लड़के रज्जूको पतिके पलंगपर सुला आयी। छोटी अमला-को अपनी छातीमें समेटकर पड़ रही। सोचती रही कि पति आवें तो उठकर किवाड़ खोल दे, लेकिन किवाड़ खुले पड़े रहे। लालटेन अकेली आंगनमें प्रकाश फेंकती रही और जब स्वप्नोंकी दुनियामें स्वामीसे लड़-भिड़कर कलकत्ते भाग जानेकी बातसे डरी हुई सुजाताने हड़बड़ाकर आंखें खोलीं, तो दूधवाला कई आवाजें दे चुका था। आंगनमें धौला-धौला प्रकाश फैलने लगा था और सामनेके आलेमें दो चिड़ियां दिनका स्वागत गान गा रही थीं। सोमेन शायद तब स्वप्न-लोकमें जापानके वायुयानोंसे बर्मोको गिरते देख रहा था और इसी कारण कभी-कभी कांपनेका नाट्य कर जाता था। सुजाताने शीघ्रतासे बाहर जाते-जाते पुकारा—उठो जी, दिन निकल आया है। सोमेन भी उठा, बच्चे भी उठे, घरमें फिर रोजकी तरह चहल-पहल शुरू हो गयी। झाड़ू-बुहारू, चौका-बासन, दातुन-कुल्ला, चाय-पानी सभी कुछ पूर्ववत् चला। अखबारवाला पुकारकर अखबार डाल गया। सोमेनने चुपचाप उसे पढ़ लिया, फिर स्नान किया, भोजन किया और दफ्तर चला गया। यह सब और दिनोंकी तरह आज भी हुआ, परन्तु दिल-ही-दिलमें दोनों सकुचे-से, रिसाये-से रहे, न सुजाता हंसी, न सोमेनने अट्टहास किया। बच्चे खेलनेके लिए बाहर निकले सो निकले, किसीने उन्हें पुकारा भी नहीं। दोनों भरे हुए थे, परन्तु जैसे ही, सोमेन आंखोंसे ओझल हुआ, सुजाताका कण्ठ खुल गया! चीखकर पुकारा—अरे रज्जू! अरी अमला! कहां गये तुम कम्बख्तो! सवेरा हुआ नहीं कि भिखमङ्गोंकी तरह बाहर निकल जाते हैं, मैं कहती हूं, तुम्हारे नसीबमें भीख मांगना ही लिखा है......अमला तब चीखती हुई आ रही थी, लपककर उसे पकड़ लिया और तड़ाकसे एक तमाचा उसके गालपर जमा दिया कि वह तड़प उठी। देर तक सांस नहीं आयी। मुंह सुर्ख हो उठा। सुजाताकी आंखोंमें क्रोध बरस रहा था, जरा भी नहीं पिघली, बोली—जानसे मार डालूंगी, अब बाहर निकली तो। कहां है वह रज्जू?

अमला चीखती ही रही, बोली नहीं।

'बताती नहीं?'

अमला कांपी, सहमी और भी जोरसे चीख उठी, फिर न जाने क्या सूझा, जमीनपर लेटकर जोर-जोरसे हाथ-पैर पटकने लगी। बस, सुजाता यहीं कच्ची थी। अमलाने हाथ-पैर पटके नहीं और उसे हँसी आयी नहीं। बरबस हँस पड़ी और अमलाको जबरदस्ती अपनी छातीमें भरकर उठा लायी—चुप! चुप!!

....

'कहां गयी थी......?'

............!

'दूध नहीं पियेगी?'

बस अमलाका सप्तम स्वर नीचे उतरने लगा और दोनों हाथोंसे आंसुओंको इधर-उधर पोंछ-पांछकर उसने सुसकते-सुसकते कहा—पिऊंगी।

'बुला रज्जूको भी।'

अमलाने अब शिकायत की—मुझे भइयाने माला।

'कहां है वह, उसे मैं मारूंगी।'

तब तक वे भी आकर माके गलेसे झूलनेकी चेष्टा कर रहे थे कि अमलाने देख लिया, हंसकर बोली—दूध पी ले! मा! भइया आ गया।

सुजाताने अमलाको देखा, फिर रज्जूको देखा, मुस्कुरायी और दोनोंके आगे एक-एक कटोरा बढ़ाकर बोली—पिओ।

और उठी कि कल भाजीमें आये दो लड्डू ला दे कि बाहरसे किसीने पुकारा—भाभी!

सुजाताको मानो मौतने पुकारा, कांप गयी। लेकिन पुकारनेवाला अन्तू था, अन्दर चला आया; बोला—नमस्ते, भाभी!

सुजाताने उस क्षण पृथ्वीको फटते और अपनेको उसमें समाते देखा और देखकर वह बड़े जोरसे हिली, लेकिन किसी तरह अपनेको बटोर-बटारकर बोली—आओ, अन्तू!

'आया हूं कि धन्यवाद देता चलूं।'

धन्यवाद!—सुजाताके मुंहसे निकला और शरीर बड़े जोरसे कांपा।

अन्तू बोलता रहा—भइया दफ्तर जाते-जाते मुझे सौ रुपये दे गये थे कि तुम्हारी भाभीने रिलीफ फण्डमें दिये हैं......

सुजाताकी सांस रुक-सी गयी, आंखें चमक उठीं। उसी तरह खड़े-खड़े दीवार थाम ली। अन्तू कह रहा था—भइयाने बताया कि इस बार जो रज्जूका कर्णभेद-संस्कार

करना था, वह नहीं होगा, उसीके लिए जोड़े हुए रुपये तुमने भेजे हैं।

....

......और भाभी! भइया वैसे बड़े अजीब आदमी हैं, कहने लगे, मैं तो दान-दूनमें विश्वास करता नहीं, परन्तु इस समय उनकी रक्षा न की गयी तो सारे देशका साहस टूट जायेगा और युद्धकालमें यह सबसे बुरी बात है... ..।

सुजाता अब भी नहीं बोली।

अन्तूने ही कहा—मैंने कहा भइया! कुछ भी समझ लो। मतलब नाक पकड़नेसे है। खैर, भाभी! जा रहा हूं, बहुत काम है, लेकिन आज मुहूर्त शुभ हुआ है, घर-घर तुम्हारी चर्चा करके पैसा मांगूंगा, इसीलिए तुम्हें प्रणाम करने आया हूं।

इतना कहकर अन्तूने हाथ जोड़े और बाहर चला गया। सुजाता अब तक उसे देख रही थी। अब एकदम जहां खड़ी थी, वहीं बैठ गयी। हृदय पिघल आया। आंखोंमें आंसू उमड़ पड़े, पर उनमें विषाद नहीं—हर्ष भरा हुआ था। इसीलिए क्षण बीता, उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा और उसने हाथ जोड़कर मन-ही-मन अपने पतिको प्रणाम किया—मेरे जन्म-मरणके साथी, मुझे तुम सदा इसी तरह सताते रहो। अमला और रज्जू तब तक दूधकी मलाईपर बड़े जोरसे छीना-झपटी करने लगे थे।

हम क्या और कैसे पढ़ते हैं ?

श्री पं० मोहनलाल महतो

एक बार मैंने अपनी पुरानी डायरीके उन पृष्ठोंसे मन बहलानेका प्रयत्न किया, जिनपर अतीतके उदास दाग लगे हुए थे। एक-एक करके पुरानी और भूली हुई बातें सामने आने लगीं, जिन्हें याद करना मैं नहीं चाहता था। मैंने धीरे-धीरे तीन महीनोंके करीब ९१।९२ पृष्ठ पढ़ डाले। गर्मीकी दोपहरी थी और मैं अपने एकान्त कमरेमें चुपचाप लेटा हुआ पढ़ रहा था—मेरे आस-पास कई अखबार पड़े थे और सर्वत्र सन्नाटा था। बाहर लू गरज रही थी, मनोवेधक उदासी थी।

तीन महीनोंकी—बीते हुए दिनोंकी स्मृतियोंको फिरसे सजीव करके मैं और भी उदास हो गया। मुझे हिम्मत नहीं पड़ी कि आगेके पृष्ठोंको पढ़ूं। हम अपने अतीतसे बहुत ही डरते हैं—यह एक कमजोरी है, पर इस कमजोरीसे छुटकारा पानेका प्रयत्न करना और भी हृदय-मन्थन है—हम ऐसा करना भी तो नहीं चाहते। सच्ची बात तो यह है कि मानव अपने-आपसे डरता है, वह अपने-आपको अपने सामने स्पष्ट करना नहीं चाहता। अपनेको हम एक-न-एक नये काममें, नये सवालमें इसी भयसे फंसाये रहते हैं कि हमारा रूप हमारे सामने स्पष्ट न होने पावे। मैंने अपनी डायरीके पृष्ठोंमें बहुत ही शर्मके साथ यह देखा कि मैं तीन लम्बे-लम्बे महीनोंमें केवल दो छोटी-छोटी पुस्तकें पढ़ सका हूं—एक उपन्यास और दूसरा अश्वघोषका 'ब्रह्म चरितम्' बस!

मैं उन लोगोंमें हूं, जिन्हें कुछ-न-कुछ पढ़ते रहनेका रोग लग चुका है; मुझे पुस्तकोंके सम्पर्कमें रहना प्रिय है, पर पिछले तीन महीनोंको मैंने कैसे नष्ट कर डाला, यह मुझे पता न चला। मैं किसी काममें भी उलझा न था और न बीमार ही पड़ा—फिर भी ऐसी सुस्ती क्यों। मैं अपने जीवनके ४० सुनहले बसन्त पार कर चुका हूं। यौवनके उन तूफानी दिनोंसे पिंड छूट चुका है, जिन दिनोंमें मेरे-जैसे व्यक्ति दिन-रात झुलसा देनेवाले सपने देखते रहना ही पसन्द करते हैं। मैं अब देख रहा हूं, अच्छी तरह देख रहा हूं, जिस समुद्रमें मैं अपनी जीवन-नैय्या खेता रहा, उसका दूसरा किनारा अब झिलमिलाने लगा है। नैया मझधारको पार कर चुकी है और अब छोटी-छोटी लहरियोंकी बाधायें, उसकी गतिको रोक नहीं सकतीं। सामनेका रहस्यपूर्ण तट धीरे-धीरे स्पष्ट होता जा रहा है—कुहरेसे ऊपर उठता हुआ जान पड़ता है।

ऐसे जल्दी-जल्दी व्यतीत होनेवाले समयकी उपेक्षा करना यद्यपि कोई पसन्द न करेगा, तथापि मैंने अपने तीन महीनोंको चुपचाप व्यतीत हो जाने दिया—हम व्यतीत होने-

वाले समयको अच्छे कामोंके रूपमें बदलकर चिरस्थायी बना सकते हैं। घड़ीकी सुइयोंको उलटी ओर घुमानेसे समय तो लौटकर आता नहीं—हम अपने मनको भले ही मूढ़तोष देलें।

मैं अपनी डायरीको एक किनारे रखकर अखबारके कालमोंमें मनको उलझानेका प्रयत्न करने लगा—जैसा कि हम प्रायः किया करते हैं। सत्य मेरे प्रतिकूल था, अतएव निरुपाय होकर मिथ्याका आश्रय ग्रहण करना ही उचित हो गया था। सच्चाई यह थी कि मैंने अपने जीवनकी बची-खुची थोड़ी-सी पूंजीमेंसे भी थोड़ा-सा नष्ट कर दिया, यह एक आध्यात्मिक अपराध था, जिसकी उपेक्षा मैं अखबारोंके पृष्ठ उलटकर करना चाहता था।

मैं ही क्यों, मेरे ही जैसे व्यक्तियोंकी एक बड़ी संख्या हमारे चारों ओर है, जो अपने विचारों और सच्चाईको नाना उपायोंसे दबाते रहते हैं, वे उसी प्रयत्नमें—उसी गंदे काममें अपनेको गर्व-पूर्वक लिप्त रखते हैं तथा देखनेवालोंपर यह प्रभाव डालनेकी मूर्खता करते हैं कि उनकी सारी वृत्तियां दुनियाके उतार-चढ़ावसे परे रहती हैं—वे व्यर्थताकी ही सार्थकताके रूपमें ग्रहण करते हैं—हाय बेचारे !

(२)

मैंने रूसके भयानक क्रान्तिकारियोंकी जीवनियां बहुत ही चावसे पढ़ी हैं। क्रान्तिकारियोंकी जितनी मूर्तियां मेरे सामने आयीं, उनमें त्रात्स्कीको मैं बहुत ही ललचाई दृष्टिसे देखता हूं, क्योंकि वह एक लेखक भी था। मैं पं० जवाहर लाल जीको भी भारतका त्रात्स्की बिना हिचकके कह सकता हूं। त्रात्सकी अपनी मेजपर 'पेपर वेट' की जगहपर भरे हुए दो तमंचे रखता था—एक अंग्रेज पत्रकार, जब उसके निर्वासन-कालमें मिला, तो उसने यही देखा। त्रात्स्कीका सारा जीवन ही रोंगटे खड़े कर देनेवाली घटनाओंमें गुंथा हुआ है। यौवनके आरंभिक दिनोंसे लेकर अन्त समय तक त्रात्स्की कलम और तमंचेसे उलझा रहा; न उससे तमंचा छूटा और न कलम छूटी। ज़ारशाहीके दिनोंमें, जब वह साइबेरियाकी निर्जनतामें फेंक दिया गया था, अपनी पुस्तकोंके साथ था। तिलचट्टोंसे भरे हुए गंदे कमरेमें जब वह लिखने बैठता, तो उसकी स्त्री उसके शरीर और कागजपर दौड़नेवाले गन्दे तिलचट्टोंको हटाया करती ! त्रात्स्की लिखता जाता, पढ़ता जाता और झुंडके झुंड घिनौने तिलचट्टे उसकी पीठ और बांहोंपर चढ़ते-उतरते रहते। जीवनके सबसे संकटपूर्ण दिनोंमें हम अपने मानसिक-संतुलनको कायम नहीं रख सकते। हमारी सारी भावनायें क्षण-क्षण बनने और बिगड़नेवाले मेघ-चित्रोंकी तरह हो जाती हैं, क्योंकि हम हवाके झोंकोंसे आपसे आप बननेमिटनेवाले मेघ-चित्रोंके ज़िरीह दर्शकमात्र रह जाते हैं। वहांपर हमारी लाचारी सीमोल्लंघन कर जाती है, जब हम अपने सम्बन्धमें कुछ भी करनेसे रहित होकर केवल परिस्थितिके उतार-चढ़ावोंको देखा करते हैं। जिनका सारा जीवन ही खतरोंकी कंटीली झाड़ियोंसे उलझा रहा है, वे एक प्रकारसे अपने प्रति निश्चिन्त ही रहते हैं। त्रात्स्की ऐसे ही व्यक्तियोंमें था। जब वह नव-स्थापित सोवियट-सरकारके युद्ध-मंत्रीके पदपर कायम होकर नवोदित रूसी राष्ट्रको गृह-युद्धकी चारों ओरसे होनेवाली भयानक चोटोंसे बचा रहा था, उसने अपने जीवनके तीन साल लोहेकी रेलगाड़ीपर व्यतीत किये। उसकी भयानक गाड़ी मशीनगनोंसे होनेवाली गोलियोंकी बौछारोंके बीच इस मोर्चेसे उस मोर्चेपर तीन-चार साल दौड़ती रही। वह प्रतिक्रान्तिको संगीनोंकी चोटोंसे दबाता रहा, बिखरी और थकी हुई सेनाको, जो १९१४-१८ के जर्मन-युद्धसे बिखरी हुई भीड़मात्र रह गयी थी, संगठित करता रहा और किसानों, मजदूरों और विद्यार्थियोंके हाथोंमें राइफल देकर क्रान्तिवादियोंको भुनवाता रहा। इतना करते हुए भी त्रात्स्की अपनी गाड़ीमें अध्ययन करता था और रूसकी क्रान्तिका विख्यात इतिहास लिखता जा रहा था। यह इतिहास कई मोटी-मोटी जिल्दोंमें छपकर तैयार हुआ। उसकी गाड़ीपर प्रेस था, पुस्तकालय था और एक दैनिक समाचार-पत्र भी निकलता था। रूसी भाषामें कलमको पेरो कहते हैं और लेनिनने त्रात्स्कीको पेरो नाम दिया था, फरारकी हालतमें त्रात्स्की इसी नामसे अपने क्रान्तिकारी कामरेडोंमें विख्यात था।

(३)

शायद भारतके धर्मशास्त्रोंमें उपवासकी बड़ी महिमा है। भोजन सम्बन्धी लंघनोंका तो अन्त ही नहीं है, इच्छा या अनिच्छा पूर्वक हम लंघन करते ही रहते हैं। हमारे पेटकी बनावट कुछ ऐसी हो गयी है, कि वह अन्नके बदलेमें प्लीहा, यकृत, अमीरोंकी मीठी, पर झूठी बातों और कौंसिलके प्रस्तावोंसे भरता रहता है। अन्नकी अब कोई वैसी खास जरूरत नहीं रह गयी, पर दिमागी उपवास एक अजीब-सी चीज है, जिसकी ओर हमारा ध्यान कभी भी ठीक तौरसे नहीं जाता। हम विश्वविद्यालयोंकी ऊंची-ऊंची इमारतें,

स्कूलोंके भड़कीले भवन, पाठशालाओंकी बहुलता देखते हुए यह कैसे कह सकते हैं कि हमारे दिमागको खुराक देनेकी व्यवस्था नहीं है। यदि हम ऐसा कहें भी तो सुननेवाले हमारे इस कथनको बहरे कानोंसे सुनेंगे। किसी युगमें अंग्रेजोंका सिद्धान्त था—"ट्राई अगेन" पर इसमें थोड़ा-सा उलट-फेर करके संशोधन किया गया है और यह "ट्राई अगेन" (फिरसे प्रयत्न करो) "क्राई अगेन" याने "फिरसे चिल्लाओ" के रूपमें बदलकर व्यवहारमें आ गया है। इस नये "स्लोगन" के चलते हमारे कानोंमें रातदिन, पत्रोंसे, भाषणोंसे, बात-चीतसे, देशी-विदेशी रेडियोके प्रचारोंसे यह बात ठूंसी जा रही है कि—इतनी युनिवर्सिटियां हैं, इतने लाख विद्यार्थी हैं, इतना करोड़ शिक्षापर खर्च करनेके लिए सरकारने स्वीकार किया है। आंकड़ोंमें शिक्षा है, आंकड़ोंमें करोड़ों टन अन्न है, आंकड़ोंमें करोड़ों गज कपड़े हैं, पर जब हम अपने निरानन्दपूर्ण घरोंकी ओर दृष्टिपात करते हैं, तो हमें भूख-आवारा लड़के, श्राद्धके लिए भी अन्नका अभाव और बिना कफनके अभागे मुर्दे, यत्र-तत्र सर्वत्र दिखलायी पड़ते हैं। सबसे अखरनेवाली बात है, हमारा मानसिक या दिमागी उपवास, जिससे पिंड छूटता नजर नहीं आता। मैं इसी विषयको अपने सोचनेका आधार बनाकर कुछ शब्द लिखने बैठा हूं। मैं जो कुछ लिखता हूं उसे बिल्कुल झूठ कहनेका साहस किसीमें न होगा—ऐसा मुझे विश्वास नहीं है।

मैं सर्वसाधारणमें शिक्षा-प्रचारकी बात नहीं लिखूंगा और न मैं इसके लिए उत्सुक हूं कि इस असाधारण स्थिति-में अन्नकी चर्चा न चलाकर शिक्षा-प्रसारकी बात करूं। मैं जानता हूं कि शिक्षा समाप्त हो जानेके बाद, उस शिक्षाका सिलसिला आरम्भ हो जाता है, जिसका सम्बन्ध हमारे नित्य-जीवनसे माना गया और वह है हमारा क्रियात्मक स्वाध्याय। आजकलकी शिक्षा-पद्धति है परचूनकी वह छोटी-सी दुकान, जिसमें दो-दो चार-चार आनेकी सैकड़ों किस्मकी चीजें हैं, पर मन-दो-मनके खरीददारोंको आढ़-तियोंकी ओर जाना पड़ता है। वर्तमान शिक्षा-पद्धतिकी व्यर्थता और नीरसता अपनी सीमा पार कर चुकी है—कालेज या युनिवर्सिटीमें काफी अर्से तक पढ़ लेनेके बाद, विद्यार्जनके प्रति उदासी-सी हो जाती है, या पढ़नेके प्रति ऊबाहट पैदा हो जाती है। ज्ञानकी सरसताके बदलेमें उसकी रसहीनताका ही बोध हो जाता है और एक बार स्कूल, कालेजसे छुटकारा मिलते ही हम फिर पुस्तकोंकी ओर झांकना भी पसन्द नहीं करते—ऊबे हुए मनको फिर ऊबा डालनेवाली पुस्तकोंकी सूरतसे भी घृणा हो जाती है। यही कारण है कि हम ऐसे बहुत ही कम उच्च शिक्षाप्राप्त व्यक्तियोंको देखते हैं, जिन्हें पढ़ना पसन्द हो, पढ़ते रहना रुचिकर हो। कालेजके रौंदे हुए दिमागको किसी भी तरह स्फूर्तिदायक पुस्तकोंकी ओर लगाया नहीं जा सकता, क्योंकि अपाठ्य पुस्तकोंसे ही वह रौंदा जा चुका है। दूधका जला फिर दूधकी ओर देखना भी पसन्द नहीं करेगा। हम जलमें स्नान करते हैं, स्वच्छ जलवाले तालाबमें छलांग मारते हैं, तैरते हैं। जलके नीचे कुलबुलाते हुए कीड़ोंसे भरा कीचड़ होता है—हम कीचड़को नहीं छेड़ते, उससे बचना ही पसन्द करते हैं। कहीं ऐसा हो कि कीचड़ ऊपर हो और शीतल, स्वच्छ जल नीचे, तो शायद ही कोई ऐसे तालाबमें डुबकियां लगाना पसन्द करेगा। हमारी शिक्षा-पद्धतिने शिक्षाके कीचड़को किसी जादूके जोरसे ऊपर स्थापित कर दिया है और जल उस घिनौने, बदबूदार कीचड़के नीचे है—हमारे विद्यार्थी इसी कीचड़में जब वर्षों हाथ-पांव मारकर एकाध छोटी-मोटी डिग्री लेकर कालेजसे भागते हैं, तो विद्याके सम्बन्धमें उनकी धारणा ही बदल जाती है—क्या यह बात गलत है, जो मैं कहने बैठा हूं। उन्हें—विद्यार्थियोंको—शीतल जल नसीब ही कहां होने दिया जाता है ? प्रबल प्राण-शक्ति जब जाग्रत नहीं रहती, तो देशके छोटे-छोटे विकार भी देखते-देखते विषाक्त फोड़ा बनकर लाल-सुर्ख हो उठते हैं। हमारे साहित्य या समाजमें उन उपादानोंका अभाव-सा ही है, जो विचार और बुद्धिकी साधनाके द्वारा कठोर गवेषणाकी ओर हमारी उत्सुकताको प्रेरित करे। शिक्षा-पद्धतिको ऊबा डालनेवाली बनानेके प्रयत्नके भीतर जो अर्थ निहित है, उसपर विचार करना आसान है, पर मैं इतनी गहराईमें उतरनेको उत्सुक नहीं हूं। यह जानते हुए भी कि मुझे इसे अछूता नहीं छोड़ना चाहिये, आगे बढ़ना पसन्द करूंगा।

(४)

१९१९ या २० की बात है। उन दिनों महात्माजी भारतका दौरा करते हुए बिहार पधारे और मेरे जिले (गया) का भी दौरा थोड़ा-बहुत किया। अवसरसे लाभ उठानेकी नीतिको प्रधानता देकर मैं भी एक सप्ताह महात्माजीकी पार्टीके साथ रहा। एक तो मैंने अपने गांवोंको देखा, दूसरे महात्माजीको भी निकटसे देखा, जो मेरे लिए एक दुर्लभ लाभ था। उन दिनों अङ्गरेजीमें—

'यङ्ग इण्डिया' और गुजराती तथा हिन्दीमें 'नवजीवन' पत्र महात्माजीके सम्पादकत्वमें प्रकाशित होते थे। मोटरपर लगातार दौरा करते हुए बापू अपने नियमित कामको ठीक समयपर पूरा कर लिया करते थे। वे समाचार-पत्र पढ़ते थे, पत्र लिखते थे। आये हुए पत्रोंको पढ़ते थे और अपने तीनों पत्रोंके लिए सम्पादकीय अग्रलेख और टिप्पणियां भी लिखा करते थे। एक-एक दिनमें उन्होंने बीस-बीस भाषण दिये हैं, बीस-बीस सभाओंकी भीड़का अभिनन्दन स्वीकार किया है। अपने अत्यन्त अस्त-व्यस्त दिनोंको भी उन्होंने अपने अधिकारमें रखा। मैंने देखा है कि बापू मोटरपर जाते हुए लिख रहे हैं, सभामें बैठे हुए आवश्यक पत्रोंको पढ़ रहे हैं—नीली पेंसिलसे चिह्न लगा रहे हैं और भीड़से घिरे रहकर भी गीताका स्वाध्याय करते जा रहे हैं। यह मानसिक एकाग्रता है या लगन, यह तो मैं नहीं कह सकता, पर कूड़ोंके पहाड़मेंसे अपने मतलबकी चीजें अलग करते रहना, पैनी दृष्टि और सतत जागरूकता अवश्य कही जा सकती है। लेखक या कलाकारके रूपमें बापू हमारे सामने कभी नहीं आये। घुणाक्षर न्यायसे उनके लिखे हुए कागजके टुकड़ोंसे भाषा या साहित्यकी जिन्दगी बढ़ी हो, तो यह दूसरी बात रही, पर जो आज लेखक और साहित्य-निर्माता बनकर जी रहे हैं, उनकी गति क्या है, वे कितना मानसिक विकास कर रहे हैं, यह सोचनेकी बात है। पाठक क्षमा करें—मैं एक ऐसे विद्वानका नाम लूंगा, जिन्हें अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई है और जो अपने पाण्डित्यके कारण संसारके विद्वानोंमें उच्च स्थान रखते थे। आज वे हमारे बीचमें नहीं हैं, कालके अदृश्य हाथोंने उन्हें खींचकर हमसे अलग कर दिया। मैं इस छोटी-सी भूमिकाके बाद डा० के० पी० जायसवालका नाम लूंगा। डा० जायसवालके विषयमें अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है, पर मैं इतना कहूंगा कि वे एक पक्के आलसी व्यक्ति थे। अपने पेशेमें भी उनका जी नहीं लगता था—वे सुन्दर सजी-सजायी कोठीमें आरामसे बैठकर कुत्तोंसे खेलना और मित्रोंसे गप्प लड़ाना अधिक पसन्द करते थे। मैंने उनसे पूछा कि—"यदि मैं आपका अनुकरण करने लगूं, तो मेरा क्या हाल हो?"

मेरी कटूक्ति सुनकर जायसवालजी कहने लगे—"बेटा, मैं तो तुम्हारा अनुकरण करना चाहता हूं। सचमुच मुझसे जमकर पढ़ा-लिखा नहीं जाता। न जाने कैसे यौवनके दिनोंमें इतना पढ़ लिख सका। अब तो जी चाहता है कि तुम्हारे-जैसे पुत्रोंका विकास देखा करूं।"

उनका उत्तर साफ था, साथही करुणापूर्ण भी, पर हमारे जैसे लोभी व्यक्तिको इस उत्तरसे संतोष नहीं हो सकता। मैं चाहूंगा कि जिसमें मीठा रस है, उसके रसकी प्रत्येक बूंद निचोड़कर ही मनको विश्राम दिया जाय। जायसवालजीका विशाल ज्ञान-भंडार अक्षय था, वे संस्कृत-साहित्यके चूड़ान्त पंडित थे और हमसे भी अधिक विवेचक। यदि वे चाहते तो अपने ज्ञानको दोनो हाथोंसे लुटाकर आज भारतीय साहित्यको मालामाल कर जाते, पर उन्होंने शायद अपनेको अमर समझा और वे मानो सौ-दो सौ सालके बाद फिरसे काममें लग जानेके लिए विश्राम कर रहे थे। ठीक इसके विपरीत मैंने आचार्य गंगानाथजी झाको देखा। वे पिछली रातको उठ जाते थे। सूर्योदयके पूर्वही स्नानादिसे छुटकारा पाकर स्वाध्यायमें निमग्न हो जाते थे। उनका यह स्वाध्याय रातको ८ बजे तक अबाध गतिसे चलता था। वे लगातार लिखते जाते थे, लगातार पढ़ते जाते थे। जिन दिनों मैं उनकी सेवामें उपस्थित हुआ था, मनुस्मृतिपर मेधातिथिकी टीकापर आप विस्तृत व्याख्या लिख रहे थे या लिखी हुई व्याख्याका संशोधन कर रहे थे। मैंने देखा, बिना एक क्षण रुके कर्ममें प्रवृत्त रहना ही आचार्यदेवके विचारसे जीवनकी सार्थकता है। मैंने एक बार उनसे निवेदन किया कि आप मेरे लिए कुछ संदेश दीजिये।

मैं प्रयागसे घरकी ओर लौट रहा था और आचार्यदेवकी कोठीमें ही ठहरा हुआ था। फाल्गुन शुक्ला सप्तमीका चांद चमक रहा था—हल्की-सी चांदनी कोठीके उंचे-ऊंचे वृक्षोंको चूम रही थी। तांगेपर अपना सामान रखकर मैं आचार्यके चरण-स्पर्श करके आशीर्वाद लेने गया था। मेरी प्रार्थना सुनकर वे मुस्कराये और बोले—"खूब पढ़ो, खूब लिखो और खूब खेलो।"

यह "खूब पढ़ो, खूब लिखो और खूब खेलो" मेरे जीवनका महामन्त्र बना हुआ है। मैं खूब पढ़ता हूं, खूब लिखता हूं और बच्चोंकी तरह जी भर कर आज भी खेलता हूं, ऊधम करता हूं, दौड़ता हूं और इस तरह अपने भीतरके छिपे हुए बचपनको किसी भी हालतमें विदा होनेका अवसर नहीं देता। मैं अच्छी तरह जानता हूं कि अब यौवन मुझे छोड़ चुका है। मेरे सिरके बाल काफी मात्रामें रंग बदल चुके हैं, दाढ़ी और मूंछके बाल भी सफेद होते

जा रहे हैं, पर मैं अपने भीतर लड़कपनको लड़कपनके ही रूपमें पाता हूं—उसकी वृद्धता—आसन्न बुढ़ापा—से मैं प्राण रहते रक्षा करूंगा। बच्चेकी तरह खेलता हूं, एक युवककी तरह लिखता हूं और वृद्धकी तरह स्वाध्याय करता हूं। मैं अकालपक्व फल नहीं हूं और न मैं चाहता हूं कि यह अकालपक्वताका रोग किसीमें लगे। मुझे झुंझलाहट-सी होती है जब मैं अपने भीतर निराशा और शिथिलता पाता हूं और वह भी खास तौरसे लिखने और पढ़नेके मामलेमें।

आचार्य गंगानाथजी पार्थिव शरीरसे वृद्ध थे, ज्ञानसे वृद्ध थे और अनुभवसे भी वृद्ध थे, पर उनकी ज्ञान-पिपासा, लगातार आगे बढ़ते जानेकी अदम्य इच्छा और दुनियाके उतार-चढ़ावोंपर ध्यान रखनेकी पैनी दृष्टिको हम जराजीर्ण नहीं कह सकते। अवस्थाने, उम्रकी दीर्घताने उन्हें थकाया नहीं—वे सदा अदम्य रहे।

(९)

हमारे स्वाध्यायका क्रम क्या रहता है, यह एक ऐसा प्रश्न है, जिसपर हमारे साथी बहुत ही कम विचार करते हैं। सच्ची बात तो यह है कि हम अपने मानसिक भोजनपर ध्यान ही कहां देते हैं—जो जीमें आया, खा लिया, परिणामपर ध्यान देनेकी आदत न रहनेके कारण हमें तत्काल विचार सम्बन्धी रोगोंसे आक्रान्त होना पड़ता है। भिन्न-भिन्न बेमेल खुराकोंके कारण शरीर रोगी हो जाता है, तो भिन्न-भिन्न बेमेल पुस्तकोंके पढ़ते विचारोंका रोगी हो जाना भी उतना ही संभव है। यदि पहलेसे ही यह धारणा बना लें कि हमें किस दिशामें अग्रसर होना है, तो हम उसी तरहकी तैयारी करें, पर हमारे देशका जीवन उद्देश्यहीन है, हम इसीलिए जी रहे हैं कि मृत्यु हमारे काफलेको लूट नहीं रही है। लक्ष्यहीन जीवन एक घृणित भार है, जिसे कुछ मूर्ख अनजानते ढोया करते हैं। अमेरिकाका विख्यात विचारक एमर्सन लिखता है—

A man should make life and Nature happier to us, or he had better never be born.

रामगढ़ कांग्रेसके अवसरपर मैंने पं० जवाहरलाल जीको एक भाषण देते देखा। उन्होंने उन लोगोंको डपटकर कहा, जो क्रान्ति-क्रान्तिका नारा लगा रहे थे—"आपने कुछ पढ़ा भी है या केवल क्रान्ति-क्रान्ति चिल्लाते हैं। आप जानते हैं क्रान्ति, प्रति क्रान्ति, समानान्तर क्रान्ति किसे कहते हैं—आपने पढ़ा है, आपको इसकी जानकारी है ?"

उनकी इस ललकारके भीतर उनके गम्भीर अध्ययनका ही बल प्रकट होता है। मैंने देखा है कि पंडितजी पुस्तकोंके बीचमें रहना ही सबसे अधिक पसन्द करते हैं। एक बार वे शायद कलकत्तेसे प्रयाग जा रहे थे। मैं गयासे प्रयागके लिए जान-बूझकर उसी इण्टरके डब्बेमें घुसा, जिसमें पण्डितजी थे। मुझे ऐसा लगा कि मैं ऐसी जगह चला आया, जहां मेरी सांस रुकती हो। मैं उनके सामने बैठते हुए झिझकता था और अपने ऊपर एक असहनीय भार-सा अनुभव करता था, फिर भी मैं बैठ गया। रातको नौ बजे मैं गयासे चला। पण्डितजी एक मोटी-सी पुस्तकपर नजर गड़ाये चुपचाप बैठे थे। पढ़ना समाप्त करके उन्होंने लिखनेकी ओर ध्यान दिया, जो ठीक ११ बजे रात तक जारी रहा। गाड़ी दौड़ती रही, बीच-बीचमें बड़े-बड़े स्टेशन आते रहे, छोटे-छोटे स्टेशन झपट्टेमें पार होते रहे, पर पण्डितजी अक्लान्त भावसे लिखते जा रहे थे। एक बार फाउण्टेन पेनमें रोशनाई भरनेके लिए उन्हें रुकना पड़ा। छोटे-छोटे कागजके दो दर्जनसे ऊपर टुकड़े लिखकर उन्होंने सोनेका उपक्रम किया।

मैं विशेष तन्मयतासे उनके सुन्दर चेहरेकी ओर देख रहा था। लिखते-लिखते कभी वे मुस्करा उठते और कभी भौंहोंमें बल पड़ जाता। मैं समझता था कि ऐसा क्यों होता है—लेखक जब अपनी भावनामें डूब जाता है, तब उसकी दशा आत्मविस्मृत-सी हो जाती है, वह अपनी ही पंक्तियोंपर हंसता है, खिझला उठता है और गम्भीर हो जाता है। वह अपने विचारोंको रूप ग्रहण करते देखता है—मानो उसके विचार उससे बहस कर रहे हों, सामने खड़े हों। जारके खिलाफ पर्चा लिखते समय एक बार त्राल्स्की इतना भाव-विभोर हो गया कि वह एक ओर पर्चा फेंककर भाषण देने लगा—विचारोंके वेगवान धक्केको वह नहीं संभाल सका। भूल गया कि वह लन्दनमें बैठकर पर्चे लिख रहा है और रूस उसकी मौजसे बहुत दूर है। ऐसी भाव-तन्मयता हम हिन्दी-लेखकोंमें कब होगी, पता नहीं। मैं कहूंगा कि हम लिखते कम हैं और लिखनेके नखरे अधिक करते हैं। हमारा जीवन नखरोंका तुच्छ समूहमात्र है।

मैं हिन्दीके एक विख्यात लेखकके दर्शनार्थ गया। वे अपने कमरेमें बैठे झख मार रहे थे। मुझे इस तरह झख

मारते देखना एकदम पसन्द नहीं है—ऐसी अकर्मण्यता गुलाम जातिकी विशेषता है। बातों-ही-बातोंमें उनसे पूछा—"आजकल आप क्या लिख रहे हैं ?"

उत्तर मिला—"समय ही कहां मिलता है। कालेजसे पढ़ाकर लौटता हूं, तो क्लब चला जाता हूं—आदि आदि !"

मैं बोला—"अच्छा हो कि आप अपने समयको अपने अनुकूल बना लें। "क्लब-बाजी" की बात मेरी समझमें नहीं आयी—आखिर वहां क्या होता है।"

वे कुढ़कर बोले—"जनाब, किताबोंका कीड़ा होनेका ही नाम जीवन तो नहीं है।"

मैं काफी झल्ला चुका था। मैंने कहा—"जी नहीं, नरकके कीड़ेको जिन्दगी कहते हैं। किताबी कीड़ेको तो चलता-फिरता मुर्दा कहना चाहिये।"

हम शिकायत करते हैं कि हिन्दी उन्नतिकी ओर नहीं है। इसकी उन्नति "छबीली भटियारिन" से लेकर मोटी-मोटी पुस्तकों तक हो चुकी—क्या इतनेसे किसीको सन्तोष नहीं है !!!

* * *

ठलुआ लेखकोंको मैं प्रायः दो बातोंका रोना रोते देखता हूं। पहली बात यह है कि—उनका पेट नहीं भरता और दूसरी यह कि उनका उचित सम्मान नहीं होता। इन दोनों तुच्छ बातोंको अपना बहाना बनाकर हमारे लेखक जीवनके दिन ऊंघ-ऊंघकर व्यतीत करते जा रहे हैं। वे नहीं देखते कि गोर्की चिथड़े चुनकर गोर्की बना, अनातोले फ्रांस-युद्धकी खाइयोंमें बैठकर कलाकार बना। अपनी कलम और अपने दिमागकी ओर तो वे ध्यान देते नहीं और अनाथोंकी तरह "विधवा-विलाप" करते हुए यत्र-तत्र नजर आते हैं। यह एक लज्जापूर्ण दृश्य है, मुझे ऐसी बातोंपर क्रोध होता है।

मैं एमर्सनके शब्दोंमें कुछ उलट-फेर करके कहूंगा कि—"यदि मानव-जीवनको सर्वोच्च बनानेके प्रयत्नमें हमारे ये लेखक, कवि, कलाकार, अध्यापक अपनेको स्वाहा न कर सकें, तो अच्छा होता कि ये पैदा ही न होते। कुछ कम चालीस करोड़ पुत्रोंके रहते भारत-माता इन कुछ सौ अपाहिज और कर्महीन पुत्रोंके न रहनेसे बन्ध्या नहीं कही जाती।"

एक बार रूसके एक क्रान्तिकारी कलाकारने ललकारकर कहा था कि—'तुम मुझे कागजके कुछ टुकड़े दे दो, मैं तुम्हारी घनीभूत जड़ताको तहस-नहस कर डालूंगा—तुम मेरे द्वारा भड़कायी हुई आगके तीव्र प्रकाशमें अपने निश्चित-पथको देख और पहचान सकोगे।"

कहानी

(१)

वेदनाका भार लेकर,
हृदयका उपहार लेकर,
सचल जगका प्यार लेकर,
मौन रजनी पथ विकटतम,
आंसुओंका हार लेकर,
मैं बनी हूं चिर कहानी।

(२)

थी प्रिया मैं भी किसीकी,
नव-विभा-सी स्वर्ण-रानी,
सुखद तब संसार था यह,
कुछ व्यथा मैंने न जानी,
लुट गया सब कुछ यहांपर,
है अमर, पर यह कहानी।

—वनकुसुम देवी।

नगरके पथपर

श्रीमती चन्द्रप्रभा द्विवेदी

ऊपर गगन-नीलिमाका अनन्त अञ्चल लहरा रहा था और नीचे लता-वेष्टित, कृष्णाभ हरी पत्तियों और पल्लवों तथा रङ्ग-बिरंगे पुष्पोंसे मण्डित वृक्षोंका सघन मस्तक उस वनकी गहनता सूचित कर रहा था। सुदूर क्षितिजके मुखको पीला प्रकट करनेवाला एक झोपड़ा स्पष्ट सूचना दे रहा था कि इसीके गर्भमें वह चिरयोगी वास करता है—जिसकी एकमात्र सहचरी वीणा है। यह वीणा ही अपने नादमें उसे उस नादसे भी अलग कर देती थी, जिसके लिए वह योगी बना था। उस नादमें तो केवल उसीकी आत्मा विभोर होती थी, किन्तु इस नादमें उसके उस कानन-लोकको विभोर करनेकी क्षमता थी, जिसमें चराचर झूम उठता और फिर ऐसी स्तब्धता उत्पन्न कर देती कि उसे जगानेके लिए प्रकृतिको नवीन रूप धारण करना पड़ता। और तब वह योगी चकित-छकित दृष्टिसे चारों ओर देखता—वही अकेला नहीं, वहांके असंख्य खग, मृग, भौंरे उसे धरती-आकाश, सब ओरसे घेरे हुए, उसीके समान गहरी निद्रासे अभी जागे और अलसाये हुए—दिशाओंकी ओर देख-देखकर कुछ-कुछ, बोलने-डोलने लगते। और उसकी कल्पना-लहरी लहरा उठती। उस समय मरमर ध्वनिसे पत्तियां, झरझर ध्वनिसे झरने, गुनगुन करके मधुमक्खियां और भौंरे, भैरवी रागिनी गानेवाली विहंग-वधुओंके प्रिय कण्ठसे कण्ठ मिली स्वर-लहरीमें भैरवानन्दसे न जाने क्या कहते, जो भैरवकी समझसे दूरकी बात होती और वह अपने ताने-बानेमें गुथा रह जाता।

उस समय भैरवानन्दने भैरवी रागिनी छेड़ दी, गोदमें बैठी मस्त वीणा उसकी सहचरी बनी हुई थी, जिससे आस-पासका प्रसुप्त वातावरण सजग होकर भी आनन्दमें अचेत-सा हो चला था और तभी सहसा पीछेसे आर्त्तनाद गूंज उठा। वीणा चुप हो गयी—भैरवके नेत्र खुल गये और सारा वायुमण्डल एक स्वरसे खुलकर चीत्कार करने लगा। यह इस काननकी प्रथम घटना थी, जिसने ऐसे समयमें एक परिवर्तन उत्पन्न कर दिया। भैरवने वीणाको कोनेमें खड़ा कर दिया और आर्त्तस्वरकी दिशाको लक्ष्य करता हुआ दौड़ गया और तभी वह ठोकर खाकर गिर पड़ा। चीत्कार समाप्त हो गया।

गायकको अपनी दुर्बलतापर एक बार क्षोभ हुआ और फिर चारों ओर घूरकर अन्धकार-भेदिनी दृष्टिसे देखता हुआ वह बोला—इस प्रकार एकान्तमें यह स्वांग किसने रचा कि पीड़ाके प्रति विरक्ति उत्पन्न हो गयी। पा......नी......—हांफती-सी गम्भीर आवाज़ आयी।

भैरव समझ न सका कि यह स्त्री बोल रही है अथवा पुरुष, अतः अन्धकारमें वह उसी प्रकार ज्योंका-त्यों खड़ा रह गया।

"मुझे...प्यास...लगी...है...।"

"तुम कौन हो?" भैरव साश्चर्य चारों ओर ताकने लगा। "एक यात्री, यदि कृपा हो तो थोड़ा जल......।" उसने भर्राये कण्ठसे याचना की, जिससे भैरव विचलित हुए बिना न रह सका, अतः उसे धैर्य देता हुआ वह बोला—थोड़ी देरी लगेगी। और बिना उत्तरकी प्रतीक्षा किये ही वह चला गया।

भैरव शीघ्रतापूर्वक जल लाया, तो भी उसे ऐसा भान हो रहा था, जैसे उसने आनेमें देर की है, इसलिए यात्रीको टटोलकर जल देता हुआ वह बोला—यात्री, क्षमा करो! मुझसे जो देरी लगी है......पर यह क्या, तुम तो ज्वरमें झुलस रहे हो!

यात्रीने पानी पी लिया, पर उत्तर न दिया। भैरव भय और करुणासे कांप उठा—"न जाने कहांका यह अभागा पथिक है"—यह सोचकर उसने शीतसे बचानेके लिए किसी घने पेड़की छायामें उसे लिटा देना चाहा, पर उसके उठाते ही यात्री चौंक पड़ा—"हैं? तुम पुरुष हो?"

"अरे, तुम स्त्री हो?" भैरवने अकचकाकर उसे छोड़ दिया।

"क्षमा कीजिये, इतने कष्टकी आवश्यकता नहीं है। आपने जल देकर बड़ी कृपा की है।" वह कांपते स्वरमें बोली।

"मैं चाहता हूं कि तुमको ओससे दूर कर दूं।"

"नहीं, इसकी आवश्यकता नहीं है, मैं ठीक हूं।"

"पर मैं इसे ठीक नहीं समझ रहा हूं।"

"क्यों?"

"इसलिए कि......इससे अनिष्टकी सम्भावना है।"

"नहीं, इस जीवनका अन्त इतनी शीघ्रतापूर्वक न होगा, जितना ज्वरका।"

भैरव चुप हो गया।

(२)

प्यासी धरतीकी प्यास पावस-घटाएं मिटा चुकी थीं, तो भी उनका महान हृदय अभी अपने दानसे सन्तुष्ट नहीं हुआ था। ग्रीष्मकी मलिन-वसना मेदिनी हरित परिधान और पुष्पोंके अलङ्कारसे शोभित हो चुकी है, अब वे घटाएं उसकी छविपर मुक्ताएं निछावरकर अपने स्वामीकी उदारता घोषित कर रही थीं। कुटीरके द्वारपर बैठा भैरव यही देख रहा था। एक ओर सिकुड़ी रोगिणी पड़ी थी। हठात् पावसकी उदारताने उसे ईर्ष्यालु बना दिया और रोगिणीको हिलते-डुलते देखकर वह बोला—"अब कैसी तबीयत है ?"

"ठीक है।"

भैरवकी उत्सुकता बढ़ी—"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"मन्दालसा।"

"तुम्हारे घरके लोग तुम्हें खोजते न होंगे ?"

"घरके लोग ?" मन्दालसाके अधरोंपर फीकी मुस्कानकी रेखा खिंच गयी और साथ ही नाट्यशालाके उठे हुए पटके समान खुली उसकी पलकें गीली होकर गिर पड़ीं।

किसीके भावोंको पढ़नेके लिए उसके नेत्रोंके खुले हुए पृष्ठ ही तो सहायक होते हैं। भैरव पलकोंपर अपनी तीखी दृष्टि चुभाता हुआ बोला—"चुप क्यों हो गयीं ?"

कठिनतासे पलकें उठाती हुई मन्दा बोली—"मैं स्वयं निकल पड़ी हूं।"

"क्यों ? इस जङ्गलके लिए क्यों निकल पड़ी थीं।"

"एक आशा लेकर......।"

"कैसी ? वही तो पूछ रहा हूं।"

"तपस्याकर मङ्गलका वरदान प्राप्त करने।"

"तो यह गहन वन कोमलाङ्गी स्त्रियोंके योग्य नहीं है।"

"तो मैं यहां निवास करने कब आयी हूं। मेरी तपस्या कुटीर निर्माण करनेमें न सफल होगी, बल्कि भटकी हुई फिरनेमें।"

मन्दा आगे कुछ कहनेका साहस न कर सकी, क्योंकि उसकी भावनाएं नेत्रों द्वारा उफनाती हुई छलक रही थीं, दिल बड़े जोरोंसे खौल रहा था। यह देखकर भैरव कुछ न बोला।

(३)

भैरव फूली हुई लताओंकी ओटमें बैठा, वन-पुष्पोंकी मालाएं गूंथ रहा था, उसके आस-पास फूलोंका ढेर लगा था। कई रङ्ग-बिरङ्गी मालाएं वह गूंथ चुका था और अभी बहुत-सी गूंथनी शेष थीं, वह इन्हीं विचारोंमें उलझा हुआ था, फिर सहसा पुकार उठा—मन्दा ! ओ मन्दा !!

मन्दा निकटके कुञ्जसे निकलती हुई बोली—क्या है ?

"देखो, मैं इतनी मालाएं गूंथ चुका।"

मन्दालसाने उसकी ओर देखते हुए कहा—फूली हुई वनस्थली उजाड़ते आपको दया नहीं आती ? इनका कोमल वैभव......

भैरव उसकी ओर अपराधी-सा देखता हुआ बोला—यदि इनका दुरुपयोग हुआ तो......।

"क्यों बुलाया था ?" मन्दा बात काटती हुई बोली।

"इसीलिए कि यह तुमको पसन्द है न ?"

"पसन्द ? मुझे इनसे कोई प्रेम नहीं।" और वह लौट पड़ी।

भैरव उसे लौटते न देख सका, वह उसे रोकता हुआ बोला—इन्हें मैं तुम्हें समर्पित करना चाहता हूं।

"मुझको ? मैं क्या करूंगी ?"

"तुम पूजा न करोगी, देवकी ?"

"नहीं, मैं पुजारिन नहीं हूं।"

"इतना सङ्कोच तुमको मुझसे नहीं करना चाहिये। मन्दा, यह सङ्कोच गृहस्थोंके लिए है, तपस्वियों या योगियोंके लिए नहीं।"

"किन्तु मैं किसीके "लिए" तो प्रयोग नहीं करती, यह है अपनी प्रकृति।"

"पर तुमको अपनी प्रकृति उदार बनाना चाहिये।"

"कैसे !"

"कमसे कम मुझसे इतनी दूरी दिखलाना तो मेरे प्रति अपने मनमें सन्देह ही उत्पन्न करना है।"

"हो सकता है, पर मैं आपपर सन्देह कब करती हूं ?"

"सन्देहकी पहली सीढ़ी है, सङ्कोच !"

मन्दा नत-मस्तक हो गयी। भैरव कहता ही गया—मैं तुमसे वय, बल और बुद्धिमें बड़ा हूं। यह मेरा आश्रम एक विरक्त संन्यासीका है। इसमें किसी प्रकारका सङ्कोच लाना विश्वासघातके सिवा और क्या हो सकता है ?

"सङ्कोच और विश्वासघातकी व्याख्या तो मैं नहीं कर

सकूंगी, किन्तु इतना फिर भी कहती हूं कि मेरे मनमें आपके प्रति जो श्रद्धा है या जो विश्वास है, उसमें आपके ये शब्द कटु प्रतीत होते हैं। मेरी ही रक्षाके लिए आपको अपना आश्रम अपवित्र करना पड़ा और नहीं तो कब किसी स्त्रीने इसमें प्रवेश किया होगा? यह सांसारिक अनुरक्ति......।"

"स्त्रीका प्रवेश इसके पूर्व भले ही न हुआ हो, पर रक्षा करना, अपवित्र करना नहीं कहलाता। सांसारिक वासनाओं और बुराइयोंसे मुझे विरक्ति है, भलाइयोंसे नहीं। इसपर मैं पहलेसे भी अनुरक्त हूं।"

मन्दालसा अपनी अप्रकट भावनाओंसे लज्जित हो उठी, पर उसे वह प्रकट कैसे होने देती? उसे अपने प्रति बड़ी घृणा हुई, जो एक महात्माके प्रति मनमें संकुचित थी—जिसने इस निर्जन वनमें उसकी विपत्तिमें सहायता की थी, नहीं तो आश्रम और आश्रयका कैसा सम्बन्ध! वह भी नारीका! वह कृतज्ञता और श्रद्धासे भैरवके चरणोंमें नत हो गयी।

भैरवने उसे उठाते हुए कई मालाएं उसके गलेमें पहना दीं, मन्दाका चेहरा लज्जा और क्षोभसे लाल पड़ गया, और वह एक झटकेसे कई हाथ दूर छटक गयी।

भैरवने कहा—नारीकी सत्ता पुरुषोंके पैरोंपर गिरनेके लिए नहीं है, फिर मेरे लिए! तुम उमा-जैसी पूज्या, जगदम्बाकी साकार प्रतिमा हो, तुम्हें अपनी उदारतासे मुझे विरक्तिका पाठ पढ़ाना चाहिये, पर तुम्हारा सङ्कोच मेरे लिए विषम बाण बना जा रहा है, तुम मेरी रक्षा करो, मैं तुम्हारी गोदका स्वतन्त्र बालक बनूं।

"किन्तु आप तो मेरे श्रद्धेय पिता-तुल्य हैं।"

"यहां उस तुल्य-योग्यताकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि श्रद्धा-भाजन तो वे ही हो सकते हैं, जिनसे किसी प्रकारका भय होता है। मैं चाहता हूं—वात्सल्य! मैं चाहता हूं अनुराग!! जो मुझसे बड़े ही कर सकते हैं। क्या तुम इसे स्वीकार करोगी?"

मन्दा आकाशकी ओर ताकने लगी—स्वीकार करते बुद्धि फटकारती है और अस्वीकार करते हृदय! पर वहां सोचनेका अवकाश कहां था? उसने उत्तर दिया—तो क्या वात्सल्य-क्षुधा आपको ही त्रस्त किये हुए है?

"तो आओ, हिमवानकी गोदीमें शङ्करी-जैसी विराजमान हो जाओ।"

"यह सत्य है, पर लोकमत......।"

"यह वनस्थली है, मन्दा, यहां न लोक है और न लोककी माया! मन्दा! ममताके विशुद्ध सागरमें यदि एक बार मुझे तिरने दोगी, तो क्या तुम्हारा अधिकार छिन जायेगा? नहीं, फिर स्त्रीका स्त्रीत्व माता ही बननेके लिए है—जब तुम्हारे समक्ष, जब एक बालक याचना कर रहा है, तो तुम इतनी अनुदार क्यों बनी जा रही हो? इसीलिए न कि मुझपर अविश्वास है।"

"नहीं, भैरव! आओ मैं तुमको अपना पुत्र बनाती हूं।"

भैरव पुलक उठा,—बस मैं यही चाहता था। और वह दौड़कर अपनी वीणा उठा लाया। शेष मालाओंसे मन्दाको अलंकृत करते हुए उसने बार-बार उसका अभिनन्दन किया, फिर वीणाके मधुर सहयोगसे उसने विश्व-विमोहिनी तान छेड़ दी—वन-स्थली गूंज उठी, चराचर जिसके लयमें विभोर हो उठा, मन्दा आत्म-विस्मृतिमें लीन हो गयी। यही नहीं, वह उस झीन आवरणमें पूर्णतया आच्छादित हो गयी।

(४)

वनकी गोदमें इठलाती हुई, मन्दाकिनी खेल रही थी। दोनों ओरके रेणुका-मण्डित भूरी पहाड़ीके पगतल मानो उसमें लीन हो जानेको आकुल थे। उसकी लहरें चमकते धातुकणोंसे कान्तिमय हो रही थीं, उसका विचलित हृदय कितना सुन्दर, भावनापूर्ण है—जिसका मीठा प्रवाह प्रतीची क्षितिजको वेधकर क्षीर सिन्धुमें समा जानेको आतुर है। उसीके तटपर बैठी हुई मन्दालसा निर्निमेष उसकी ओर देख रही थी। वास्तवमें जीवन भी कितना विचित्र है। उसकी मानस-सरिता लहरा उठी—निर्धन विधवा! जिसे घर-बाहर चैन लेनेका स्थान नहीं है। समाजमें सात्विक तपस्याकी जो प्रतिमूर्ति कहलाती हैं—यदि वास्तवमें वे शुद्ध जीवन बिताना चाहें, तो कहां बिता सकती हैं? जबकि वे किसीकी पत्नी नहीं बनना चाहतीं, जब उनके शीशपर पतिके सबल हाथोंका छायाछत्र नहीं है, तब वे किस तरुकी छायामें जीवन-दोपहरीको बितावें? मैं क्या बनना चाहती थी? आज मेरे पारिवारिक जन यदि मेरी इस भावनाको समझे होते, तो क्या मुझे इस प्रकार जङ्गलमें आ छिपनेकी आवश्यकता होती? नहीं, मेरा स्थान वही होता, जो एक पूज्य माताका होता है, क्योंकि मेरे मनमें यदि कोई आकांक्षा थी, तो केवल उस कुलकी वृद्धि और कल्याणकी। उस समयका

तकाजा था कि मैं किसीकी पत्नी बन जाऊं; क्योंकि मैं नव-विधवा थी, पर जो कुमारी हैं, जिनके साथ दहेजमें मिलनेवाली छोटी-मोटी रकमें और साथ ही उनके पैतृक कुलका सम्मान भी छिपा पड़ा है, उनके विवाहकी इस समाजमें कितनी कठिनाई है। वर पक्षवाले इच्छुक होकर भी किस प्रकार बधूके अभिभावकोंको पद-नत करते हैं, मानो उनपर कोई बहुत बड़ा त्याग कर रहे हैं। किन्तु एक विधवाका? उसकी अवहेलनापूर्ण मांग, उसकी सौन्दर्य-पोषित मांग, न केवल नागरिक गृहस्थोंतक ही सीमित है, बल्कि उनकी भी ललचायी दृष्टि उसपरसे नहीं हटती जो कि वैराग्यका स्वांग भरकर, मायाको बटोर लेनेके लिए कुटियोंका निर्माण करते हैं। क्या इस विधवा नारीके उद्धारका यही उपाय है? या अपनी मधुकरी-वासनाकी तृप्तिका! पर कहां जाऊं? भगवन्, क्या इतने बड़े पृथ्वीके हरे-भरे अञ्चलमें शान्तिपूर्वक जीवन-यापन करनेके लिए मुझे कहीं भी स्थान न मिलेगा? मैं कहां जा छिपूं, जहां कमसे कम समवेदना प्रकट करनेवाले पुरुषकी छाया न दिखायी देती।

"आज यदि मैं भी घर-द्वारवाली होती...। किन्तु कैसा स्वप्न? यदि मैं भी निर्लज्ज बनकर स्त्रियों-पुरुषोंके मध्य विधवा विवाहकर किसीकी सेवा करती हुई बीभत्स जीवन बिताती अथवा इसी समाजमें सम्मानप्राप्त, परन्तु पाप, दुराचारके भारको गलेमें बांधकर देवरों और सगे-सम्बन्धियोंके बीचमें छिपी रहती, तो भी मेरा अपना घर कहां हो पाता? कहां देख पाती वह सुनहरी वेला? जिसमें होते 'वे'; मेरे भगवान् और मैं, उनकी गृहलक्ष्मी। छोटा-सा आंगन, कच्ची दालान, छप्परके नीचे रसोई-घर और एक छोटी-सी कोठरी; इतनेमें मेरा स्वर्ग सुरक्षित रहता। उसमें नन्दन-वनके पारिजात-से खिले होते, दो एक शिशु...। छिः आज भी इतनी कामना मनको दुर्बल बनाकर सबलतापूर्वक जाग जाती है। यही मेरी गोद...।" उसने अपनी गोदपर दृष्टि डाली—यह तो सदा मरुभूमि-सी वीरान रहेगी, मरुवेलि भी जिसमें न उत्पन्न होगी।

"दैव! सुमनकी भांति आये और सुरभिकी भांति चले गये। कितनी रंगीन कल्पनाएं तरंगित हो उठी थीं और फिर! फिर तो...ओह! दूसरे ही क्षण, लहरोंने सुख-स्नेहके अगाध सागरसे उठाकर जिस चट्टानपर फेंका, वहां तुम्हारी वही फटी हुई, पत्थर-सी स्थिर आंखें दिखायी पड़ीं, जिनमें कुछ क्षण पूर्व आसवकी अरुणिमा थी, जिसके आलोकमें मेरी हृदकलियोंकी मुस्कान थी। फिर तुषारपात! महाप्रलय!! किसी कोनेसे फिर वह दिव्य झांकी न दिखायी दी, जिसके लिए हजारों जीवन निछावर हो जाते। भगवन्! यह मेरा कौन-सा अपराध था, दुर्भाग्य था, कि इतना बड़ा वज्रपात हुआ। किन्तु कुछ नहीं, आज तो स्वामी, तुम्हारी वह लज्जा भी खो बैठी हूं, जिसकी रक्षा अबतक करती आ रही थी। क्या तुमको इसका आभास मिल सकेगा? आज एक जटाधारीके आश्रममें मुझे आश्रित बनना पड़ा।"

"भैरवानन्द! तुम तो मेरे रक्षक हो, पर मैं तुम्हारे प्रति कितने क्षुद्र विचारोंमें आबद्ध होती जा रही हूं, क्षमा करना। जबकि तुम वात्सल्यके भूखे हो, तब मेरी अन्तरात्मा तुम्हारे सम्पर्कसे क्यों कांप रही है? तुम्हारे भाव कितने शुद्ध और विचार कितने उच्च हैं—पर मेरा मन बराबर असन्तुष्ट होता जा रहा है, तुम्हारी ओरसे। तुम्हें कैसे समझाऊं कि जिसे तुम अपनी उपासना कहकर पुकारते हो, मेरे लिए वही विपाक्त वेदना बनी जा रही है और मुझे ऐसा प्रतीत होता है, जैसे स्वच्छ गगनाङ्गनमें विचरती हुई मैं सहसा अन्धकूपमें गिर पड़ी हूं—तुम्हारे शिशुवत आलिंगन-मात्रसे। क्या माताको दुःखित करना ही पुत्रका कर्तव्य है? पर नहीं, पुत्रको कब इसकी चिन्ता रहती है, इसके लिए केवल मातृ-हृदय ही है।"

"किन्तु नहीं, अब यहांसे मुझे चला जाना चाहिये, मैं और अधिक मातृत्व नहीं निभा सकूंगी, छिः जिसमें हृदयको अशान्ति मिलती है, उसमें और अधिक गहराई खोजना, मृत्युके समान भयानक है। अब भी मुझे ठिकाना नहीं मिल रहा है, भगवन्! अब तो कहीं एकान्त देते!"

मनकी तरङ्गोंपर बहते हुए तृणके समान मन्दालसा आन्दोलित हो उठी और फिर अज्ञात पथकी ओर तेजीसे भाग निकली।

ऊंचे टीलेपर बैठा भैरव यह काण्ड देख रहा था। जब मन्दा आंखोंसे ओझल हो चली; तब वह जोरसे पुकार उठा—मन्दा!

मन्दा अपने मन्द भाग्य और उसकी प्रबल गतिसे परिचित थी, अतः भागनेकी इच्छुक होती हुई भी खड़ी हो गयी।

"कहां जा रही थीं?" भैरव झपटता हुआ निकट आकर बोला।

मन्दा अधरोंसे मुस्करानेका प्रयत्न करती हुई उमड़ते नेत्रोंसे उसकी ओर देखने लगी।

"इतनी विक्षिप्त-सी क्यों प्रतीत हो रही हो ?"

"यह मेरा दुर्भाग्य है, भैरव, मैं रास्ता भूल गयी थी।"

"यदि मैं यहां न होता, तो तुम कहां होतीं, यह तुम जानती हो ?"

"यह तो मैं नहीं जानती हूं कि पथ कहां समाप्त होता है !"

"इसीसे कहता हूं कि समय-बेसमय अकेली बाहर मत निकला करो, यहां हिंसक पशुओंका बाहुल्य है, कहीं उनके सामने पड़ गयीं तो ?"

"तो भैरव, किसीकी इच्छाका आहार बननेसे तो क्षुधा-आहार बनना अच्छा है।"

"क्या कह रही हो मन्दा ! यदि भैरवानन्द इच्छाओंका दास होता, तो इस निर्जन-वनमें आश्रमका निर्माण न करने आता। यह एक सम्पन्न परिवारका सुखी प्राणी है—जो विश्वकी विविध वासनाओंपर विजय प्राप्त करने निकला है।"

"तो क्या एकान्तमें वासनाओंपर विजय प्राप्त होती है ?"

"हां, वहां उनको उत्तेजना न मिलेगी। मनुष्य आखिर मनुष्य है। वह न तो देवता है न दैत्य, बल्कि इन दोनोंके मध्यकी जो एक व्यवस्था है, वह है मनुष्यकी। मनुष्यके लिए परिस्थिति और घटनाएं ऐसी हैं, जिनके कारण वह दुरात्मा और महात्मा दोनों बन सकता है। यदि इन घटनाओंको जीवनसे सम्बद्ध न करना होता, तो युगोंसे इतनी तपस्या, साधना और विरक्तिका इतना श्रम न उठाता। फिर इसकी क्या आवश्यकता थी ? क्या इसकी शिक्षा घर बैठे ही, बिना किसी प्रकारकी कीमत चुकाये मुझे न मिल जाती ?"

मन्दाकी आंखोंसे अश्रु-जल बरस पड़ा।

भैरवानन्दने अपने कौपीनके छोरसे अश्रु-कण पोंछते हुए कहा—रो मत मन्दा, यह मुझसे नहीं देखा जाता, बल्कि मुझसे यदि किसी प्रकारकी पीड़ा तुम्हें पहुंच रही हो, तो लो, मैं अपने प्राणोंका अन्तकर, उस अनन्तमें मिलकर तुम्हें सान्त्वना देनेकी चेष्टा करूंगा।

इतना कहकर वह मन्दाकिनीके अमन्द मुखकी ओर बढ़ गया। मन्दालसा आंसू पोंछती हुई उसे रोककर बोली—क्षमा करो, भैरवानन्द ! मैं मानसिक तापके लिए तुमको आनन्दभैरव ही समझती हूं। तुम मुझको समझ नहीं रहे हो, मैं अपने दुर्भाग्यपर रोती हूं कि विश्वके इतने विशाल पृष्ठके किसी कालमपर विधाताने मेरे लिए कहीं भी एक लकीर नहीं खींची।"

"तुम्हारी भूल है मन्दा !"—भैरव उसके रेशमी बालोंपर हाथ फेरते हुए बोला—"उसने सब कुछ लिखा है, चलो अब आश्रममें चलें, इस चिलचिलाती धूपसे।"

आश्रममें अकुलायी हुई मन्दाको रहते लगभग तीन महीनेसे ऊपर होगये थे। उसकी मानसिक व्यथा दिनोंदिन प्रबल होती गयी, पर भैरवानन्दकी पैनी दृष्टि एक क्षणके लिए भी उसपरसे न हटती कि वह अनन्तमें अपनेको छिपा सकती। भैरवकी तीखी उक्तियोंसे उसका हृदय छिन्न-भिन्न हो गया था, पर शब्द-बल इस प्रकार सूख गया था कि वह किसी प्रकार भी उस व्यथाको प्रकट न कर पाती।

उस दिन मन्दा घट भरने मन्दाकिनीके तटपर अकेली ही गयी थी—उसे ऐसा ज्ञात हो रहा था, जैसे उसकी भूलका घट भर चुका है, उसकी मूक-पीड़ा किसी दिन भयानक विस्फोटका रूप धारण करेगी और उस भरे घटको उसके गलेमें बांधकर भैरव जिस पाप-सागरमें ढकेल चुका है, उसमें समाप्त हो जानेपर भी उसे शान्ति न मिल सकेगी। उसकी आंखोंके सामने पतिदेवकी सूरत नाच उठी—वह तड़प उठी, स्वामी ! तुमसे विहीन होकर फिर किसी छोरमें मैं सुखी न रह सकी। चार माससे वनदेवकी भी शरणमें हूं और इसी शरीरमें प्राणके रहते पतिता बन बैठी। नहीं, भैरव तुमको शाप देने और तुम्हारा गला घोंट देनेकी प्रबल इच्छा होते हुए भी मैं कुछ न करूंगी। तुम तो योगेश्वर हो, यह सारा प्रपञ्च तो मेरे भाग्यका, मेरे जीवनका था। फिर भी तुम्हारे आश्रममें पड़ी हूं। आज कृतज्ञताके झीन आवरणमें, धुएंके ऊंचे किन्तु हलके परदेमें मेरे सत्य और प्रेमकी सुवर्ण पिङ्गल-अग्नि निमीलित हो गयी, जिसकी इतने दिनोंसे रक्षा करती आ रही थी, फिर भी मैं समझ न सकी कि इस धूम-राशिकी कालिमा मरुतके मन्द झोंकेसे छिन्न-भिन्न हो जायेगी और तब मैं विश्वकी तिरस्कृता नारी होकर भी मरीचि-मालिका न रहकर केवल क्षारमात्र रह जाउंगी। उदारताका यह कितना क्रूर परिणाम है। सारे देव और देवियोंकी शरणने मुझे पूर्णतया मसलकर फेंक दिया।

वह रेणुकामें लेटकर जी-भरकर रोयी और तब हृदयमें अल्प-विराम पाकर वह मन्दाकिनीमें कूद पड़ी।

कुछ देर तक प्रतीक्षा करनेके पश्चात् भैरव मन्दाकिनीके तटपर गया। चारों ओर ध्यानपूर्वक देखा—कहीं किसी ओर उसका पद-चिह्न न मिला, वह नदीके घाटपर ही

समाप्त हुआ था। भैरवके पैरके नीचेसे धरती डोल गयी—जीवनमें कितने कौशलसे उसका यह अभिसार चला था। वह सोच न सका कि सहसा यह क्या हो गया। फिर इतनी सफलतापूर्वक इतने दिनोंकी चलती नाट्य-शालामें यह सहसा पटाक्षेप कैसा? अचानक समाप्ति कैसी? कितनी करुण और मार्मिक! उसे विश्वास न हो रहा था—क्षोभ और पीड़ासे—गहरे मदके उतरे मत-वाले-जैसी उसकी दशा हो गयी। वह अकुला उठा, उसके लिए कुटीर लौट जाना और फिर वीणा और अनहद-नाद-में आत्माको लय कर देना असम्भव प्रतीत हो उठा। पर लौटता न, तो जाता कहां? उसके सामने सर्वत्र अन्धकार छा गया, चारों ओर स्तब्धताके अतिरिक्त और कुछ न था, जो मृत्युकी भांति शान्त और होनहारकी भांति अटल-सी खड़ी, उसको ग्रसनेको मुंह फाड़े थी।

(९)

लगभग आठ महीने इसी प्रकार व्यतीत हो गये। भैरव शान्त और मूक बना अपने आश्रममें पड़ा-पड़ा जर्जर हो गया था, उसमें अब इतनी भी शक्ति न थी कि सिरकी विशाल जटा और मुखकी बढ़ी दाढ़ीके बोझको संभाल पाता। मोटी-मोटी हड्डियोंका पतला ढांचामात्र शेष रह गया था। वीणाके तार टूट चुके थे, अनहद सुनानेवाली कुण्डलिनी मूलाधारमें छिप गयी थी। कुटीरके तृण-संकुल किसी-अदृश्यके खेल-जैसे प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष होकर आकाशके तारोंको अपनी भग्नता दिखाकर रुला रहे थे। भैरवसे न देखा गया, वह उठकर बाहर चला आया।

स्वच्छ चन्द्रिकाकी धवल चादर बिछी हुई थी—हठीला पवन पल्लवोंका अञ्चल चञ्चलतासे खींच रहा था—गोदकी सोयी कलियां चौंक पड़ीं और वह हंसता हुआ दूर भाग गया।

भैरवके मुखपर मुस्कानकी रेखा खिंच गयी—कितनी शान्त-वेला है! तो भी पवनको चैन नहीं। सहसा आश्रम-के पास कराह गूंज उठी। भैरव क्षुब्ध हो उठा, पर अनिच्छापूर्वक वह उस ओर चला गया। स्वर परि-चित था, निकट जाकर उसने झुककर देखा—हां, कोई चिरपरिचित पड़ा है।

"कौन है?"—उत्सुकतापूर्वक उसने पूछा।

"तु...म्हा...री...म...न्दा...।" क्षीण उत्तर मिला।

वह आश्चर्य-चकित, आंखें फाड़कर देखता हुआ बोला—तो यहां कैसे पड़ी हो?

"उस पवित्र आश्रममें यह अपवित्र शरीर लेकर नहीं आ सकी, आयी तो इसीलिए थी कि......।"—मन्दा कहती हुई चुप हो गयी।

भैरव सहसा संभल गया, उसकी आकृति बदल गयी और वह धृष्टतापूर्वक बोला—मन्दा! एक बार तुम्हारे साथ उदारता दिखलाकर अपना और तुम्हारा दोनोंका नाश कर चुका हूं। मेरा हृदय हर समय मुझे इसके लिए धिक्कारता है। दुनियासे पाप-पुण्य, वासना और साधना कभी दूर नहीं हो सकती, इसके लिए हम चाहे किसी कण-में क्यों न लीन हो जायें......। पर पहले यह तो बताओ कि तुम चली क्यों गयी थी और जाकर लौटी कैसे?

"भैरव! मैं जीवनसे तङ्ग आ गयी थी, पर जीवन मुझसे तङ्ग न हुआ था, इसीसे एक बार मन्दाकिनीकी धारामें बह गयी थी और दूसरी बार हृदयकी धारा पुनः इसी ओर बहा लायी।"

"पर, नहीं मन्दा, यह तुम्हारी धृष्टता थी......जाने दो, इस बातको। पर अब इस आश्रममें कोई न रहेगा। कुछ क्षण अग्निका निवास कराकर इसे धूलमें मिला दूंगा और तब इस स्थानपर किसी वृक्षका रोपणकर मुझे भी यहांसे चला जाना होगा, जाओ तुम भी लौट जाओ।"

बातके पूरी होते-न-होते मन्दाका नवजात शिशु रो पड़ा—जो गुदड़ीमें लिपटा अब तक सो रहा था, जिसे मन्दा छातीपर पत्थर बांधकर इसी आश्रममें चुपकेसे छोड़कर अनन्तमें लीन होने आयी थी।

भैरवने शिशुकी ओर देखा—कितना सुन्दर और सबल है, गोरा-सा, कितना छोटा है—गोली-गोली आंखों और भोली-भोली चितवनसे आकाशकी ओर देखता हुआ रो रहा है। भैरव बिजली-सा उसपर टूट पड़ा।

मन्दा चीख पड़ी—मैं न मारने दूँगी, योगिराज! यह तुम्हें बुरा अवश्य लगता है, पर मेरी आत्मा है, मुझ कल-ङ्किनीके उजड़े जीवनकी निधि है। मुझे मार डालो—देखो कैसा होनहार जान पड़ता है।

उन्मत्तके प्रलापकी भांति ये शब्द गूंज उठे—सिक्त-कण्ठसे भैरव दिशाएं कंपाता हुआ बोला—मन्दा, भैरव भी मानव है, हृदयवाला है। तपके लिए बीस वर्षकी अव-स्थामें आया था—वासनाओंपर विजय होनेपर अठारह सालके बाद वासनाने मुझे पछाड़ दिया था। क्षोभसे मैं जला जा रहा था, सर्वथा अपराधी होकर भी मैं तुम्हें ही दोषी बना रहा था। क्षमामयी! तुम मुझे अपने आग्नेय

नेत्रोंसे भस्म क्यों नहीं कर देती हो ? मुझ-सा पतित ! नीच !! कहां तक धिक्कार दें डालूं अपनेको शब्दों द्वारा कि जिसमें मेरा अन्तःकरण मुझे क्षमा कर दे। तुमने मेरा गला क्यों न घोंट दिया ? पर नहीं, मैं तो उस समय मतवाला पशु था, मुझे क्षमा करो, मन्दा ! अब परमात्माकी अलौकिक लीलाने मुझे भी दिखला दिया कि मानवकी यही महान विजय है, आज मुझे जान पड़ा कि नारी कितनी मूल्यवान है, जिसकी सत्ताको पुरुष-समाजने हीन-दृष्टिसे देखा है। लाओ, अपने इस होनहारको, मैं अपने गलेका हार बनाऊंगा। अब मैं फिरसे नगरमें जाकर अपने उजड़े भवनका पुनः निर्माण करूंगा और इस बालकको उसमें स्थापित कर तब फिर वनको लौटूंगा। बोलो मन्दा ! इस अनुष्ठानमें तुम मेरी सहायक बनोगी ? भैरव-वेशको मैं सदाके लिए त्याग दूंगा। आज मुझको फिर वही बनना होगा, गृहस्थ !

मन्दाका हृदय लज्जा और नवीन आशासे जगमगाता हुआ डगमगा उठा। वह सङ्कोचके अपार भारसे लदी मानो धरतीमें समा जाना चाहती हो, उसका हृदय बल्लियों उछलने लगा।

भैरवने उसे झकझोरकर कहा—तो चलो, अब देर मत करो ! आज तुम साक्षात जगदम्बाके रूपमें हो, जब कि तुम्हारी गोदमें यह शिशु है।

वीणाकी दोनों तूंबियोंको जोड़नेवाला दण्ड, हृदयके तारोंको मिलाता है। गोदमें शिशु और पार्श्वमें मन्दाको लेकर आज वह चिरयोगी "नगरके पथपर" है। वनस्थली विस्मित थी, वह सोच नहीं सकी कि वीणानाद सुनानेवालेके इस अभावमें वह प्रसन्न हो या दुःखी, क्योंकि वह है—"नगरके पथपर।"

नयी विश्व-व्यवस्था और विश्व-धर्म

श्री रामनारायण यादवेन्दु, बी० ए० एल० एल० बी०

डा० भगवानदास भारतके सुप्रसिद्ध दार्शनिक, विचारक और विद्वान लेखक हैं। आपने भारतीय संस्कृति, वैदिक धर्म एवं आर्य-सिद्धान्तों और आर्य-दर्शन-शास्त्रका जितना गहरा अनुशीलन किया है, उतना शायद ही किसी आधुनिक विद्वानने किया हो। आप आर्य-संस्कृतिके समर्थक हैं और आपकी आर्य-संस्कृतिके मौलिक सिद्धान्तोंमें गहरी और अटल आस्था भी है। आप राष्ट्रीय महासभाकी कार्य-समितिके प्रमुख सदस्य तथा उसके प्रसिद्ध राष्ट्रकर्मी भी रहे हैं। संयुक्तप्रान्तके सात नगरोंकी ओरसे आप भारतीय केन्द्रीय धारासभाके कांग्रेसकी ओरसे सदस्य रहे हैं।

ऐसे प्रकाण्ड पण्डितकी लेखनीसे लिखी गयी पुस्तककी प्रामाणिकता और उपादेयतामें किसे सन्देह हो सकता है। हालमें ही श्रद्धेय डाक्टर साहबने अङ्गरेजीमें "नयी विश्व-व्यवस्था और विश्व-धर्म" नामक पुस्तक प्रकाशित की है। इस पुस्तकमें १९ अध्याय और ६३६ पृष्ठ हैं। विद्वान लेखकने सन १९४० में प्रयागके अङ्गरेजी दैनिक 'लीडर' में विश्व-व्यवस्थापर कुछ लेख लिखे थे। उन्होंने अपने मित्रोंके आग्रहसे उन लेखोंको इसमें संपादित कर पुस्तकाकार प्रस्तुत किया है। इस कारण इस पुस्तकमें पुनरावृत्तिका आधिक्य है। एक ही बातको कई बार कितने ही पृष्ठोंमें लिखा गया है। इससे पाठकोंको एक ही बातका बार-बार पढ़ना खटकता है।

दो आधार-भूत प्रस्ताव

विद्वान लेखकने इस विशालकाय पुस्तकमें मुख्यतः दो प्रस्ताव सुझाये हैं। इनमेंसे पहला प्रस्ताव भारतसे सम्बन्ध रखता है। इसका सारांश यह है कि ब्रिटिश भारतकी सरकार तुरन्त ही भारतको औपनिवेशिक स्वराज्यके ढङ्गका 'स्वराज्य' दे दे। भारतीय जनताको विधान-निर्मातृ-परिषद्के रूपमें सङ्गठित होकर वेस्ट-मिंस्टर कानूनके अनुसार भारतके शासन-विधानकी रचना करनी चाहिये। जब तक परिषद द्वारा नया शासन-विधान तैयार न हो जाय, तब तक वर्तमान शासन-प्रबन्ध-प्रणाली जारी रहेगी और शासन-विधानकी रचनाके बाद शासन-प्रबन्ध उसके अनुसार होगा।

लेखक महोदयने दूसरा प्रस्ताव अपनी पुस्तकके १० वें अध्यायमें किया है और वह है भावी नवीन विश्व-व्यवस्थाके सम्बन्धमें। इस प्रस्तावका सारांश निम्न प्रकार है:—

(१) युद्धमें संलग्न समस्त राष्ट्रोंको सम्मिलित रूपसे कुछ सप्ताहोंके लिए अस्थायी विराम-सन्धिकी घोषणा कर देनी चाहिये और प्रत्येक राष्ट्रको संसारके समक्ष अपनी-अपनी 'विश्व-व्यवस्था' की योजनाएं प्रस्तुत करनी चाहिये। ये योजनायें विश्व-राष्ट्र-सङ्घ (जो इस समय मृतप्राय है) की प्रतिनिधि-समिति अथवा समस्त देशों (जिनमें विग्रही और शोषित तथा रङ्गीन जातियां भी शामिल हैं) के चुने हुए मानववादी वैज्ञानिकोंकी परिषद् या समितिके समक्ष रखी जा सकती हैं। इन समस्त योजनाओंमेंसे सर्वश्रेष्ठ योजनाकी रचना की जाय। इस प्रकार विराम-सन्धिको स्थायी शान्तिमें परिवर्तित कर दिया जाय। इस प्रकार मानवता युद्ध तथा विनाशके अभिशापसे बच जायेगी।

(२) यद्यपि इस भयङ्कर तूफानमें भारतीय राष्ट्रीय महासभाकी आवाज कमजोर तो होगी ही, तथापि वह महात्मा गान्धीके नेतृत्वमें संसारके समक्ष इस प्रकारकी विराम-सन्धिके लिए प्रस्ताव रख सकती है। ईसाई धार्मिक संस्था तो उसका समर्थन करेगी ही। यह भी सम्भव है कि ईश्वर विग्रही राष्ट्रोंके हृदयमें करुणा पैदा कर दे और वे इसे स्वीकार कर लें।

(३) उपर्युक्त ढङ्गके प्रस्तावके सिवा महात्मा गान्धीको चाहिये कि वे स्वराज्यकी योजना तैयार करनेके लिए एक छोटी कमेटी नियुक्त कर दें। यह कमेटी भारतकी जनताके सामाजिक उत्कर्ष—आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक—के लिए योजना बनायेगी। यह बहुत सम्भव है कि ऐसी योजनाका हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि सभी स्वागत करेंगे।

स्वराज्यकी योजना

डा० भगवानदासने अपने पहले प्रस्तावमें यह बतलाया है कि ब्रिटिश सरकार तुरन्त ही भारतको स्वराज्य प्रदान कर दे। उनके इस प्रस्तावके पक्षमें भारतका प्रबल लोक-

मत है। भारतीय राष्ट्रीय महासभा, भारतीय हिन्दू महासभा, अखिल भारतवर्षीय आजाद मुस्लिम सम्मेलन, भारतीय ईसाई परिषद, सिक्ख-दल, तथा यूरोपियन और दलित वर्ग आदि, सभीकी यह मांग है कि भारतको स्वाधीन राष्ट्र घोषित कर दिया जाय। सभी वर्ग और राजनीतिक दल वर्तमानपर भविष्यकी अपेक्षा अधिक जोर देते हैं। इसलिए सभी यह चाहते हैं कि वर्तमान समयमें भारतमें राष्ट्रीय सरकारकी स्थापना की जाय।

विगत मार्च १९४२ में ब्रिटिश मन्त्रि-मण्डलकी ओरसे सर स्टैफर्ड क्रिप्स भारतके लिए एक स्वराज्य-योजना, भारतीय राजनीतिक दलोंकी सम्मति प्राप्त करनेके लिए लाये थे। जहां तक भारतकी स्वाधीनता या स्वराज्यका प्रश्न है, क्रिप्सकी योजनामें स्पष्टरूपसे भारतको औपनिवेशिक स्वराज्यका पद देनेके लिए उल्लेख था। उसमें भारतीय जनता द्वारा अपना शासन-विधान बनानेका भी अधिकार स्वीकार किया गया। परन्तु उस योजनाने वर्तमान स्थिति-के हल करनेके लिए कोई उपाय नहीं बतलाया। इसी कारण क्रिप्स-मिशन सफल नहीं रहा। इस विषयमें डा० भगवानदासने भी यह लिखा है कि जब तक विधान-परिषद विधान बनाकर तैयार न कर ले और उसे सभी दल स्वीकार न कर लें, तब तक वर्तमान शासन-प्रबन्ध जारी रहेगा। क्रिप्स-मिशन भी यही चाहता था। परन्तु भारतीय लोकमतकी प्रतिनिधि राष्ट्रीय-महासभा इतनेसे सन्तुष्ट नहीं थी।

साथ ही क्रिप्स-मिशनने तुरन्त ही भारतको स्वराज्य देनेकी व्यवस्था नहीं की। उसने युद्ध-शान्तिके बाद विधान-परिषदके आमन्त्रित करनेका सुझाव पेश किया।

डा० भगवानदासने अपनी इस पुस्तकमें अनेक स्थलोंपर इस बातपर जोर दिया है कि भारतीय राष्ट्रीय महासभा और उसके नेताओं तथा महात्मा गान्धीजीने विशेषरूपसे यह बड़ी भूल की है कि आज पर्यन्त उन्होंने जनताके समक्ष स्वराज्यकी कोई योजना पेश नहीं की, जिससे भारतकी जनताको यह विश्वास हो जाता कि स्वतन्त्रता-संग्रामके फलस्वरूप भारतमें जो नयी शासन-व्यवस्था स्थापित की जायेगी, उसमें भारतकी जनताका अमुक स्थान होगा।

श्री डाक्टर साहबका यह मत है कि गान्धीजीके द्वारा स्वराज्यकी व्याख्याके अभावके कारण ही आज कांग्रेसका सङ्गठन ठीक नहीं है और इसी कारण उसका रचनात्मक कार्य-क्रम भी सफलता प्राप्त नहीं कर सका और इसी कारण हिन्दू-मुसलमानोंमें मेल पैदा न हो सका।

महात्मा गान्धी और स्वराज्य

श्रद्धेय डा० भगवानदासने अपनी पुस्तकमें लिखा है कि—'यह अत्यन्त पतनकारी और अपमानजनक है कि भारतके सबसे महान नेता, उसके नेतृवृन्दके शिरोमणिने, यह स्वीकार किया कि मैं स्वराज्यकी परिभाषा नहीं कर सकता। मैं अब तक स्वराज्यकी परिभाषा करनेमें अशक्त रहा हूं। (बम्बईमें १६ सितम्बर १९४० को अखिल भारतीय कांग्रेस महासमितिमें गान्धीजीके भाषणसे) वे जनताको किसी मार्गकी ओर अग्रसर करते हैं—जनताका नेतृत्व करते हैं, परन्तु वह मार्ग क्या है, उसका क्या मतलब है, इसे वे नहीं जानते और इसी कारण वे अपने अनुयायियों-को यह नहीं समझा सकते कि वे उन्हें किस ओर ले जा रहे हैं।" (पृष्ठ ३५०)

यह वास्तवमें एक बड़ी आश्चर्यजनक बात है कि महात्मा गान्धी जनताको स्वराज्यकी परिभाषा नहीं बतला सकते। इसका तो मतलब यही हो सकता है कि गान्धीजीने अभी तक स्वराज्यकी रूप-रेखा निर्धारित ही नहीं की है। यदि उन्होंने स्वराज्यकी रूप-रेखा तैयार की होती, तो वे अवश्य ही उसे जनताके समक्ष रखते। यह वास्तवमें उनकी एक महान भूल है और श्रद्धेय डा० भगवानदासने गान्धीजीके प्रति अत्यन्त श्रद्धाभाव रखते हुए भी उनके विचारों, कार्यों एवं नीतिकी तीव्र शब्दोंमें आलोचना की है। अत्यन्त चिन्तनीय तो यह है कि कांग्रेसके अन्य प्रमुख और प्रसिद्ध लोकनेता भी गांधीजीके विचारों या कार्यक्रमके विषयमें अपने विचार स्वतन्त्रताके साथ नहीं रख सकते। श्री डा० साहबने इस पुस्तकमें लिखा है—

"अत्यन्त दुर्भाग्य है कि महात्मा गांधीके प्रति उनकी नैतिक एवं आध्यात्मिक महानता, अपनी स्वाभाविक श्रद्धा (वर्तमान लेखककी भी उनमें श्रद्धा है) के कारण कांग्रेस-नेता कुछ भी ऐसी बात करनेका साहस नहीं करते, जो गांधीजीकी आलोचना प्रतीत हो, अथवा उनका प्रतिवाद अथवा जिससे वे अप्रसन्न हो जायें, या वे यह सोचने लगें कि कांग्रेसके सदस्य अपना कर्त्तव्य पूरा नहीं कर रहे हैं, अपने कस्बों, नगरों, जिलों व प्रान्तोंमें पूरा उद्योग नहीं कर रहे हैं; ठीक उसी भांति, जैसे कि नौकरशाहीके छोटे कर्मचारीगण अपने 'बड़े साहब' को मिथ्या सूचनाएं

देते हैं कि 'सब ठीक है, हुजूर', जबकि वास्तवमें वे यह जानते हैं कि स्थिति खराब है।" (पृ० ३९०)

महात्माजीने भारतकी बड़ी सेवाएं की हैं। भारतमें राजनीतिक नवचेतना तथा विदेशी राष्ट्रसे अहिंसात्मक ढङ्गसे युद्ध करनेकी विधि बतलाकर उन्होंने राष्ट्रको स्फूर्ति, बल, निर्भयता और शक्ति प्रदान की है। इसे स्वीकार करते हुए भी विद्वान लेखकका यह स्पष्ट मत है कि गांधीजीके इस भगीरथ उद्योग एवं तपस्याके बावजूद भी भारतीय राष्ट्र आज एकताके अभावमें पराधीनतासे मुक्ति पानेमें अशक्त है।

अपनी पुस्तकमें आप गांधीजीके विषयमें लिखते हैं—

"उनकी सारी देशभक्ति, परोपकारिता, और शारीरिक कष्ट-सहन, और भारतके उत्थानके लिए उनका अथक एवं अविराम प्रयास—सब पथभ्रष्ट हो गये हैं—अत्यन्त विफल रहे हैं और भारतीय जीवनके समस्त क्षेत्रोंमें संघर्ष एवं पृथकताकी भावनाका और भी विस्तार हो गया है। यह सब इसी कारण कि वह जनताके समक्ष स्वराज्यकी एक निश्चित योजना प्रस्तुत करनेमें बड़े असफल रहे हैं।" (पृ० २६७)

आज कांग्रेसमें विचारों एवं सिद्धान्तोंकी जो अस्पष्टता दीख पड़ती है, उसका कारण यही है कि कांग्रेसके नेताओं और विशेषतः गांधीजीने आरम्भसे ही कोई स्पष्ट विचार अथवा सिद्धान्त जनताके समक्ष नहीं रखा। इसी अस्पष्ट विचारधाराके कारण अहिंसा-हिंसाके प्रश्नको लेकर गांधीजी व उनके सहयोगी नेताओंमें काफी मतभेद रहा और फिर गांधीजी अहिंसाकी मनचाही व्याख्याकर कांग्रेस कार्य-समितिके साथ मिलकर कार्य करने लगे। कई बार उससे अलग होने और कांग्रेसके नेतृत्वका त्याग किया गया और कई बार पुनः नेतृत्व ग्रहण किया।

डा० भगवानदासका यह मत वास्तवमें सत्यताके साथ न्याय नहीं करता। गांधीजीके हृदयकी सचाईपर सन्देह करना स्वयं अपने अस्तित्वपर सन्देह करना होगा।

कांग्रेसका रचनात्मक कार्यक्रम

विद्वान लेखकने गांधीजीके रचनात्मक कार्यकी भी पुस्तकमें आलोचना की है और यह स्पष्ट रूपसे लिखा है कि आज हिन्दू-मुसलमानोंमें सन् १९२४ से कहीं अधिक अनैक्य है, यद्यपि महात्माजी बराबर एकतापर जोर देते रहे हैं। गांधीजीने अस्पृश्यता-निवारणका कार्य भी जिस तरीकेसे किया, उससे भी अस्पृश्यताका समूल नाश नहीं हो सका। कहीं-कहीं कुछ मन्दिरोंके द्वार उनके लिए खोल दिये गये। परन्तु उससे हिन्दुओं और 'हरिजनों' में भेदकी खाई पटनेके बजाय गहरी हो गयी। अब हर बातमें 'हरिजन' के कीटाणु प्रवेश कर गये। 'हरिजन-विद्यालय' 'हरिजन-छात्रावास' 'हरिजन-अस्पताल' 'हरिजन-उद्योग' 'हरिजन-आश्रम' इत्यादि।

अहिंसाके सम्बन्धमें गान्धीजीके जो विचार हैं, डा० भगवानदासने अपनी पुस्तकमें स्थान-स्थानपर उनकी आलोचना की है। वे अहिंसाकी गान्धीवादी आदर्श व्याख्यामें विश्वास नहीं करते। वे व्यक्तिके आत्म-रक्षाके सिद्धान्तको स्वीकार करते हैं। परन्तु गान्धीजीकी अहिंसा तो आत्म-रक्षाके प्रयत्नको भी हिंसा मानती है।

खादीके सम्बन्धमें भी डा० भगवानदासका गान्धीजीसे मौलिक मतभेद है। डाक्टर साहबका यह मत है कि खादी भारतकी आर्थिक समस्याका हल नहीं है। उससे ग्रामोंमें बेकार किसानोंको अवश्य कुछ पैसे मिल सकते हैं।

हिन्दू-मुस्लिम-समस्या

विद्वान लेखकने अपनी पुस्तकके एक सम्पूर्ण अध्यायमें हिन्दू-मुस्लिम-समस्यापर अपने विचार प्रकट किये हैं। इस विषयमें लेखकके विचार मौलिक एवं विचारणीय हैं। उनकी यह दृढ़ राय है कि स्वराज्य-प्राप्तिके लिए हिन्दू-मुस्लिम-एकता अत्यन्त आवश्यक है। और इस एकताकी प्राप्तिके लिए कांग्रेसको प्रयत्न करना चाहिये। इसका उपाय यह है कि कांग्रेस हिन्दू व मुसलमानोंके मतभेदोंके निवारणके लिए योजना बनाये और इन दोनोंमें एकताकी स्थापनाका प्रयत्न करे। लेखकका यह भी विचार है कि हिन्दुओं और मुसलमानोंके मतभेद 'सर्वथा कृत्रिम' हैं।

पुस्तकमें एक स्थलपर उन्होंने लिखा है—"यदि हिन्दू नेताओंने अपने धर्म—वर्णाश्रम-धर्म—को वास्तविक रूपमें समझा होता और उसी प्रकार अपनी जनताको भी बतलाया होता, तो यह सब मतभेद और संघर्ष तत्काल ही दूर हो जाता। यह धर्म तो एक ऐसा ढांचा है, जिसमें समस्त मानव-संसार (किसी भी जाति, राष्ट्र या सम्प्रदाय) को अपने-अपने स्वभाव, कर्म और गुणके अनुसार दीक्षित किया जा सकता है।"

हिन्दू-महासभाके नेताओंका ध्यान उन्होंने हिन्दू-सामाजिक सङ्गठनके सुधारकी ओर आकर्षित किया है। वे जाति-पांतिको सामाजिक सङ्गठनके लिए सबसे भया

नक रोग मानते हैं और इसके निवारणके द्वारा ही हिन्दू-समाजमें एकता और सङ्गठन पैदा हो सकता है। उनका यह विचार है कि 'हिन्दू-सङ्गठन' और 'एकता' के सभा-मञ्चसे नारे लगानेके बजाय हिन्दू-नेताओंको, हिन्दू समाज-के सङ्गठनके लिए सचाईके साथ प्रयत्न करना चाहिये।

भारतमें प्रत्येक देश-भक्त यह कहता हुआ सुनायी देता है कि भारतमें वर्तमान साम्प्रदायिक भेद-भावको ब्रिटिश-सरकारने पैदा किया है और यदि भारतवासियोंको स्वाधीनता मिल जाय, तो उनमें स्वाभाविक रूपसे एकता पैदा हो जायेगी। परन्तु काशीके प्रकाण्ड पण्डित इस कथनमें विश्वास नहीं करते। उनका यह विचार है कि हिन्दू-मुसलमान यदि एक दूसरेको समझने लगें, तो यह समस्या आसानीसे हल हो सकती है। प्रत्येकको एक दूसरेके धर्म-और संस्कृतिको समझनेका प्रयत्न करना चाहिये। इस प्रकारके सांस्कृतिक आदान-प्रदान द्वारा ही इन दोनोंमें एकताकी स्थापना सम्भव है।

विश्व-व्यवस्थाके सिद्धान्त

विद्वान लेखकने अपनी पुस्तकमें नवीन विश्व-व्यवस्थाके सम्बन्धमें भारतीय एवं यूरोप और अमेरिकाके विद्वानोंके विचारोंकी समीक्षा की है और विशेषरूपसे आपने सुप्रसिद्ध विचारक एच० जी० वेल्सकी 'मानव अधिकारोंकी घोषणा' पर विस्तारपूर्वक विचार किया है। सन् १९३९ में, युद्ध-के छिड़ जानेके बाद श्री वेल्स महोदयने 'पिक्चर पोस्ट' नामक समाचार-पत्रमें 'मानव अधिकारोंकी घोषणा-शीर्षक एक लेखमाला लिखी, जिसमें मानव-अधिकारोंपर विचार किया गया।

इसपर संसारके विद्वानोंके मत प्राप्त किये गये तथा विचार-विनिमय किया गया। इसके बाद वेल्स महोदयने अपने प्रस्तावोंमें संशोधन किया और संशोधितरूपमें उन्हें पुस्तकाकार प्रकाशित किया। वेल्स महोदयके ११ मानव-अधिकार निम्न प्रकार हैं—(१) जीनेका अधिकार (२) नाबालिगोंकी रक्षा (३) मानव-समाजके प्रति कर्त्तव्य (४) शिक्षाका अधिकार (५) विचार स्वाधीनता और पूजाका अधिकार (६) कार्य करने व वेतन पानेका अधिकार (७) वैयक्तिक सम्पत्तिका अधिकार (८) यातायातका अधिकार (९) वैयक्तिक स्वतन्त्रता (१०) हिंसासे रक्षा (११) कानून बनानेका अधिकार।

डा० भगवानदास केवल मानव-अधिकारोंकी घोषणा-से ही सन्तुष्ट नहीं हैं, प्रत्युत वह मानव-कर्त्तव्योंकी भी घोषणा चाहते हैं। इसलिए उन्होंने 'पिक्चर-पोस्ट' के सम्पादकके पास अपने विचार प्रकाशनार्थ भेजे, जिनका सारांश निम्न प्रकार है—

(१) प्रत्येक अधिकारके साथ एक कर्त्तव्य भी संश्लिष्ट है, अर्थात् एक व्यक्तिका जो अधिकार है, वही दूसरे व्यक्तिका कर्त्तव्य है।

(२) प्रत्येक व्यक्तिका यह कर्त्तव्य है कि वह समाजके लिए आवश्यकतासे अधिक सन्तान पैदा न करे।

(३) समाजका यह कर्त्तव्य है कि वह सुयोग्य, विद्वान और समाजके शुभचिन्तकोंका एक शिक्षा-सङ्घ बनाये, जो प्रत्येक व्यक्तिकी शिक्षाका प्रबन्ध करे।

(४) प्रत्येक व्यक्तिका यह कर्त्तव्य है कि वह कोई ऐसा कार्य न करे, जो समाजकी व्यवस्थापक-परिषद् द्वारा अ-सामाजिक घोषित किया गया हो।

(५) समाजका यह कर्त्तव्य है कि एक कार्यकुशल राजनीतिक सङ्गठन बनाये, जो जनताकी अपराधियों, रोगों, अन्यायों, और उपद्रवोंसे रक्षा करे। एक विभागका यह कार्य होगा कि वह समाजके प्रत्येक व्यक्तिको उसकी योग्यताके अनुकूल काम देनेकी व्यवस्था करे।

(६) समाजका यह कर्त्तव्य है कि वह एक आर्थिक सङ्घकी स्थापना करे, जो समाजके लिए पर्याप्त मात्रामें आवश्यक वस्तुओंके उत्पादन तथा वितरणकी व्यवस्था करे।

(७) समाजका कर्त्तव्य है कि वह एक श्रमिक-सङ्घकी स्थापना करे, जिससे जिन संस्थाओं या सङ्घोंको श्रमिकोंकी आवश्यकता हो, उन्हें वह मुहय्या कर सके।

(८) संसारके प्रत्येक समाजका यह कर्त्तव्य है कि उपर्युक्त चारों सङ्घोंकी ओरसे वे सबसे विद्वान और योग्यतम् प्रतिनिधियोंको चुनकर भेजे, जो समस्त संसारके देशोंके सङ्घोंका निमन्त्रण करेगा।

(९) समाजका यह कर्त्तव्य होगा कि वह अपने सङ्घों द्वारा योग्यतम्, विद्वान, बुद्धिमान और परोपकारी व्यक्तियोंको धारासभामें चुनकर भेजे और वे समाजके लिए उपयोगी नियम बनायें।

(१०) और इन धारासभाओंका यह कर्त्तव्य होगा कि वे विश्व-पार्लमेण्टके लिए सबसे विद्वान, योग्यतम् और सर्वश्रेष्ठ पुरुषोंको चुनकर भेजें।

डा० भगवानदासका यह विचार है और इससे सभी विद्वान सहमत हैं कि प्रतिद्वन्द्वी साम्राज्यवादोंके लिए भारत एक पारस्परिक सङ्घर्षका विषय है; अतः जबतक

भारतकी साम्राज्यवादके अभिशापसे मुक्ति नहीं होती, तब तक संसारमें कोई भी श्रेष्ठ विश्व-व्यवस्था स्थापित हो नहीं सकती।

विश्व-व्यवस्थाके सम्बन्धमें डा० भगवानदासने जो विचार प्रकट किये हैं, उनके अवलोकनसे यह तो स्पष्ट ही है कि वह मानव-समाजमें सच्ची शान्ति स्थापित करना चाहते हैं, और वह ऐसी व्यवस्था चाहते हैं, जिसमें समाजके किसी भी व्यक्तिका शोषण न हो और न कोई एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रका शोषण कर सके।

आपने मानव समाजकी आर्थिक, राजनीतिक एवं मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियोंका गहराईसे अध्ययन करनेके बाद यही निश्चय किया है कि समाजमें किसी नवीन 'वाद' की स्थापनाकी आवश्यकता नहीं है। जनतन्त्रवाद, पूंजीवाद, साम्राज्यवाद, उद्योगवाद, समाजवाद और नात्सीवाद आदि 'वाद' संसारमें प्रचलित हैं ही। इन 'वादों' के बावजूद भी आज संसारके राष्ट्रोंमें संघर्ष चल रहा है, यद्यपि सभी वाद, यह दावा करते हैं कि वे मानव-समाजमें शान्ति और कल्याणकी व्यवस्था चाहते हैं।

समाजवाद संसारकी अशान्तिका मूल कारण पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्थाको मानता है। जनतन्त्रवादी अथवा पूंजीवादी अशान्तिका मूल कारण नात्सीवाद या सैनिकवादको मानते हैं। यह सच है कि समाजमें उत्पादन, वितरण एवं विनिमयके साधनोंपर थोड़े-से लोगोंका अधिकार है। इसलिए वे अपने स्वार्थके लिए समाजके शेष व्यक्तियोंका, जो विशाल बहुमतमें हैं, शोषण करते हैं। इसीलिए प्रत्येक देशमें अशान्ति व्याप्त है और यह अशान्ति ही अन्तर्राष्ट्रीय युद्धकी जन्मदात्री है।

समाजके आनन्द एवं सुखके लिए ऐसी सामाजिक व्यवस्थाओंकी आवश्यकता है, जो उसके व्यक्तियोंको अपने विकासके लिए पूर्ण सुयोग प्रदान कर सके। आज संसारमें ऐसी सामाजिक व्यवस्थाओंका अभाव है।

श्री डा० भगवानदास भी इसी परिणामपर पहुंचे हैं। और वह समाजमें ऐसी सामाजिक अवस्थायें पैदा करनेके लिए ही विश्व-व्यवस्थाकी स्थापना चाहते हैं।

हमें ऐसे समाजकी आवश्यकता है, जिसमें व्यक्ति अपने-अपने अधिकारों एवं कर्तव्योंको भलीभांति समझकर कार्य करे। ऐसा उसी समय सम्भव हो सकता है, जबकि सामाजिक ढांचा इस प्रकारका तैयार किया जाय, जिसमें अधिकारों एवं कर्तव्योंका निर्धारण, स्त्री-पुरुष, आयु, स्वभाव, योग्यता, व्यावसायिक क्षमता, एवं प्रवृत्ति, आवश्यकता, रुचि एवं हितका विचार, वैज्ञानिक एवं विवेकपूर्ण ढङ्गसे किया गया हो।

डा० भगवानदासका यह स्पष्ट मत है कि समाजकी रचना मनोविज्ञान और शरीर-विज्ञानके नियमों एवं तथ्योंके अनुसार की जाय। उनके अनुसार व्यक्तिवादी समाजवादकी प्राचीन भारतीय योजना ही सबसे अधिक वैज्ञानिक है। स्पष्ट शब्दोंमें यह व्यवस्था है, वैदिक वर्णाश्रम-व्यवस्था। उनका यह विचार है कि यदि कोई विद्वान इससे उत्तम व्यवस्था तैयार कर सकता है, तो उसे ऐसा करना चाहिये, वरना इसी प्राचीन व्यवस्थामें समयानुकूल परिवर्तन, संशोधन एवं सुधार करके इसे ही प्राचीन होते हुए भी नवीन विश्व-व्यवस्थाके रूपमें स्वीकार कर लेना चाहिये।

विश्व-धर्म

विद्वान लेखकने अपनी पुस्तकमें आदिसे अन्ततक दो व्यवस्थाओंपर जोर दिया है। वे संसारमें, समाजमें ऐसी व्यवस्था चाहते हैं, जो मनोविज्ञान एवं शरीर-विज्ञानके सिद्धान्तों एवं नियमोंके अनुसार वैज्ञानिक ढङ्गसे बनायी गयी हो। इसपर हम ऊपर विचार कर चुके हैं। संसारके लिए दूसरी आवश्यकता है—विश्व-धर्मकी, जैसा कि पुस्तकके शीर्षकसे भी प्रकट होता है। उनके मतसे आज संसारको एक ऐसे आध्यात्मिक, परन्तु साथ ही वैज्ञानिक, धर्मकी आवश्यकता है, जो मानव-प्रकृतिके तथ्यों एवं प्रवृत्तियों तथा दार्शनिक, वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक नियमोंके आधारपर स्थिर हो। विश्व-धर्म संसारके प्रचलित महान धर्मोंके विनाशके लिए प्रयत्न नहीं करेगा; प्रत्युत वह संसारको यह प्रत्यक्ष प्रमाणित कर दिखलायेगा कि मानवकी मौलिक आवश्यकताकी पूर्ति करनेके लिए समस्त धर्मोंमें कुछ मौलिक प्रमुख सिद्धान्त एवं प्रयोग हैं, जो वस्तुतः समान हैं, यद्यपि प्रत्येक धर्म अपने सिद्धान्तों व प्रयोगोंको अपने-ही ढङ्गसे, अपने ही शब्दोंमें, अपनी ही भाषामें प्रकट करता है। जिस प्रकार प्रत्येक देश या राष्ट्रके व्यक्तिको अपने राष्ट्रकी आन्तरिक व्यवस्थाके चलानेको स्वाधीनता होगी और उसे विश्व-व्यवस्थाका नियन्त्रण मानना पड़ेगा; उसी प्रकार प्रत्येक व्यक्तिको अपने धर्मके नियमोंके पालनकी स्वतन्त्रता होगी; परन्तु विश्व-धर्म एक ऐसी व्यवस्था प्रदान करेगा, जिसमें सब धर्मोंका समन्वय हो सकेगा।

मानव समाजके आदि-युगसे मानव-धर्मको मानता रहा है। युग-परिवर्तनके साथ धर्मके सिद्धान्तों, आचारों

एवं प्रयोगोंमें भी परिवर्तन होते रहे हैं। परन्तु धर्म प्रत्येक युगमें मानव-समाजके लिए एक प्रेरक शक्ति रहा है। सोवियट रूसमें राज्यक्रान्तिके बाद जो समाजवादी-व्यवस्था कायम हुई, उसमें धर्म तथा धर्म-संस्थाके बहिष्कारका जोरदार प्रयत्न किया गया। पर इसके बावजूद भी, रूसी जनतामें धर्ममें विश्वास तो बना ही रहा। सन् १९३६ के नये शासन-विधानने रूसके नागरिकोंको धर्म तथा धार्मिक नियमोंके पालन तथा धर्म-विरोध, दोनोंके लिए स्वाधीनता दे दी।

इससे यह तो स्पष्ट ही है कि यह मानव-प्रकृति अपने विश्वासके लिए कुछ सिद्धान्तों, नियमों एवं रीति-रिवाजों को आश्रय देती है। यदि आप किसी प्रचलित धर्मपर रोक लगा देंगे, तो जनता अपना कोई नया धर्म खड़ा कर लेगी। जब जर्मनीकी जनताको कोई मानव-हितकारी एवं वैज्ञानिक धर्म अपनी सान्त्वना या शान्तिके लिए नहीं मिला, तब वे हिटलरको ही पूजने लगे और उसके आत्म-चरित (मेरा-संघर्ष) को बाइबिलकी तरह मानते हैं।

मानव-प्रकृति विश्वास करनेके लिए कोई ऐसी शक्ति चाहती है, जो उसे अन्धकारमें प्रकाश दे सके ; वह उससे प्रेम करना चाहती है—उसकी पूजा करना चाहती है ; वह कुछ करना चाहती है और उसके लिए वह मानवको प्रेरित करती है।

यद्यपि विद्वान लेखकके अनेक विचारों एवं सिद्धान्तोंसे हम सहमत नहीं हैं, तथापि हमारा यह विचार है कि उनकी यह पुस्तक विश्व शान्तिकी दिशामें एक सच्चा और वैज्ञानिक प्रयत्न है। यदि वे वर्णाश्रम-धर्मकी ऐसी व्याख्या वैज्ञानिक ढङ्गसे उपस्थित करनेमें सफल हो सकें, जिसे संसारके विचारक भावी-विश्व-व्यवस्थाका आधार स्वीकार कर लें, तो वास्तवमें श्रद्धेय डा० भगवानदास संसारकी शान्तिके लिए एक देन सिद्ध होंगे।

चांदनी

श्री शिवविलास स० सिनहा

गलीके नुक्कड़पर आकर राजेन धीमा पड़ गया। दो कदम आगे, टेढ़ी-मेढ़ी संकरी गली जहां खुली हुई चौड़ी सड़कसे आकर मिल जाती है, वहां उसकी विचार-धारा शिथिल हो अटक गयी। क्षण भर रुककर उसने सजग नेत्रोंसे सड़ककी फैली सीमाको माप लेना चाहा। सिविल-लाइन्ससे सीधी होती हुई पश्चिममें सुदूर तक चली गयी इस सड़कका, गलीसे भिन्न, एक अपना अस्तित्व है। गलीकी संकीर्णतासे, जिसमें अन्धकार और दुर्गन्धसे दम घुटने लगता है, यह सड़क अलग जीवन लेकर चलती है। दोनों तरफ बिजलीके ऊंचे-ऊंचे खंभे, सुबह-शाम साफ पानीका छिड़काव, किनारे-किनारे शीशमके लम्बे पेड़, जैसे यह सब मिलकर उसके व्यक्तित्वकी स्थापना करते हैं। आगे चलकर बड़े-बड़े बंगले मिलेंगे, जिन्हें घेरते हुए अङ्गरेजी फूलोंवाले उद्यान सड़कके दोनों किनारोंको छूने लगते हैं। बंगलोंकी ऊंची दीवारोंसे होकर, जहां सामनेकी ओर मोटर-गैरेज बने हुए हैं, रेडियोके गाने सड़कपर पैदल चलनेवालोंका ध्यान पल-भर दाएं-बाएं खींचते हैं। भूरे रङ्गके फाटकपर किसी आई० सी० एस० अथवा रायबहादुरके नामका तख्ता लटकता रहता है, मानो वह उस विशाल बंगलेमें बसनेवाली क्षमताका सारा तर्क लेकर कुछ कहना चाह रहा हो। सभ्यता और नैतिकताके बीचसे गुजरती हुई यह सड़क अपना सही रूप रखती है।

फिर वह गली ! एक झटकेसे राजेन आगे बढ़ गया। सामने सौ फीटकी दूरीपर जुबली-लाइब्रेरीकी ऊंची दीवारपर लगी रोशनीवाली घड़ीमें ग्यारह बज गये हैं। राजेन घण्टे भरसे यों ही चक्कर लगा रहा है। उस लम्बी गलीसे गुजरता हुआ वह बहुत-सी ऊंची-नीची बातें सोचता रहा। किसी एक को लेकर कुछ देर अपनी राय स्थिर न कर सका। नालियोंसे उठती हुई बदबू गलीके संकीर्ण वातावरणको ढंके हुए है। सामने लकड़ीके हरे खम्भेपर म्युनिसिपैलिटीने जो एक लैम्प लगाया है, उसकी आधी चिमनी टूटी पड़ी है। प्रकाश धुंएं-सा होकर अपनेमें ही सिमिटकर रह जाता है, जैसे कि उसे वहां स्थापित करनेवालेके अहसानको कायम रखनेके लिए यही काफी है। गलीके दोनों तरफ जो ऊंचे-नीचे, छोटे-बड़े और कच्चे-पक्के मकानोंका बेढङ्गा क्रम चलता है, उसमें रहनेवाली जाति दस बजते-बजते अंडीके तेलवाले लालटेन दिये बुझा कर खुर्राटें भरने लगती है। कभी-कभी किसी परिवारका बीमार बच्चा ही रो-चिल्लाकर उस नाग-

रिक जीवनमें एक नये मनोवैज्ञानिक वातावरणकी सृष्टि कर देता है। तब मां शायद उसकी पीड़ाको दबा देना चाहती है—चुप, चुप। पता नहीं वह बच्चा फिर भी चुप क्यों नहीं हो जाता। भारी हल्ला मचाकर रोने ही लगता है। मां इसीलिए, कभी मनाती, तो फिर डांटने भी लग जाती है।

और वह राजेन अब गलीकी बात सोचते-सोचते बंगलोंकी दोनों कतारोंको चीरती हुई सिमेन्टकी सड़कपर अन्यमनस्क-सा चलता जा रहा है। चांदनी अभी निकल आयी है, इसीसे बिजलीवालोंने सड़कपरकी रोशनी बुझाकर म्युनिसिपैलिटीके प्रति अपनी उदारता बरतनी चाही है। पूसकी रातमें ग्यारह बजेके बाद कोई घर-बारवाला मोटर दौड़ाना नहीं चाहता, इसीसे सड़क भी सूनी है। किन्तु राजेन अपने ऊनी कोटके कालरको सीधा करके मफलरका अभाव ढंके पतलूनकी दोनों जेबोंमें हाथ छिपाये टहलता ही रहा। पासकी फुलवारीसे बड़ी तेज खुशबू आ रही है। राजेन थका-सा होकर उस पुलियापर बैठ जाना चाहता है और वह......पीछेसे आकर खट-खट करता हुआ तांगा दूर निकल गया। उसपर एक अवहेलनाकी दृष्टि डाल राजेन निश्चिन्त हो जाता है। सिरके ऊपरवाले शीशमकी पत्तियां हवामें कांप रही हैं। राजेन अपने मनमें उभरती सिहरनको शीशमकी पत्तियोंपर तौलना चाहता है। बड़ी साधारण-सी बात यह लगती है। हिलती-डुलती पत्तियां सड़कपर बिखरी चांदनीमें अपनी छाया व्यक्त कर जाती हैं। तो उन्हीं छायाको लेकर कई चित्र बनते हैं। छोटी-बड़ी समस्याओंका उभरा हुआ जाल-सा सड़कपर छितरा जाता है, जैसे वह मनके भावोंको कुछ सजीव अर्थ देना चाहता हो।

वह टिप, टिप, टिप......। राजेन साढ़े नौ बजे तक दफ्तरमें टाइप करता रहा है। जब थक गया, काम करनेमें जी नहीं लगा, धीरेसे 'मशीन' बन्द कर दफ्तरका दरवाजा सटा, बाहर निकल आया, सोचा कल नौ बजे तक चिट्ठियां बड़े बाबूके पास पहुंचा देनी हैं। इसीसे सुबह तड़के आकर बाकी काम पूरा कर लेगा, सोच कर कुछ हलका हो गया। सड़ककी दुकानसे एक सिगरेट लिया, सुलगा कर पीता हुआ आगे बढ़ा। आज होटल नहीं जायेगा, खानेका जी नहीं। मनकी परिस्थिति संभाल, चलता गया और आगे बाजार खतम हो गया है। कोनेपर, जहां पान और चायकी दुकानें हैं, ऊपरके छज्जेपर रोशनी जल रही है। बालको ठीक संवारे, नीली साड़ी पहने एक स्त्री वहीं खड़ी है। पान चबाते हुए सिगरेटका डिब्बा हाथमें लिये जब वह बड़ी-बड़ी मूंछोंवाला युवक सामने आया, तो ऊपरकी स्त्री मुसकरा पड़ी। युवक रास्तेमें क्षण भर खड़ा रहा। फिर बगलके संकरे दरवाजेको अंधियारेमें खोल भीतर दुबक गया। राजेन एक उपेक्षा ले, आगे बढ़ा। आगे वही गली है, जिसका विस्तार जीवनकी घटनाओंकी तरह उलझा हुआ है। जहां दिनमें, चिल्ला-चिल्लाकर खोम्चेवाले अपने-अपने व्यापारकी सफाईकी कैफियत देते फिरते हैं, वहीं कुछ सफेद पुते हुए मकानोंके भीतर दफ्तरोंमें काम करनेवाले बाबुओंका अपना व्यस्त जीवन है। दुबली-पतली औरतोंके बीमार और सुस्त बच्चे माता-पिताके संयमकी दुर्बलताके सजीव चित्र लेकर गलीके पक्के सहनपर खेलने निकलते हैं। वहीं थककर नालीमें पेशाब और पाखाना कर देंगे। भारी दुर्गन्ध लेकर तब, वायु उन 'बाबुओं' के सीमित जीवनको एक छी-छीसे ढंक देती है।

आगे चलकर गलीका आर्थिक वातावरण जैसे और संकरा हो गया है। कुली और मिलमें काम करनेवाले मजदूर वहां बसते हैं। कितने भद्दे हैं वे! गन्दा खाना खाना और गन्दे-गन्दे बच्चे पैदा करना ही उनका जीवन है। उन्हें कुछ परवाह नहीं, उनके बाहर भी कोई दुनिया हो सकती है।

पुलियापर बैठे-बैठे राजेन यही कुछ बुन रहा है। चांदनी शीशमसे उतरकर उसके चेहरेपर छा गयी है। चांदनी की नग्नतामें उसे जीवनका तथ्य उथला लगता है। वह भीतर-भीतर टटोलता है। पिछली कोई बात मनमें उभरती लगती है। उसे वह दबा देना नहीं चाहता।

वह राधा उसके जीवनमें क्यों हो-हल्ला-सी आयी? चार सालके बाद भी यह बात मस्तिष्कमें तैरती-सी लगती है। यह एक प्रश्न है। उत्तर इसका राजेन अपनी तरफसे बना नहीं पाता। राधाकी एक-एक बात फिर भी उसे घेरती है। अपने बर्तावोंमें वह नारी, उसे अपने समीप क्यों समेट लेना चाहती थी।

मेहमान होकर वह उसके घर आयी थी। साथमें उसका पति था, किशन। शामको कालेजसे आनेपर किशननेही साधारण परिचय कराया था। राधा तब व्यर्थकी लाज बरतना नहीं चाहती थी। बोली किशनसे, "इनको मैं जानती हूं। आपके साथवाली फोटो क्या भूल जानेकी चीज है।" किशन और राजेन, दोनों, मुसकराकर रह गये थे। तीन दिन ठहरकर किशन अकेले अपनी नयी नौकरीपर चला गया

था। राधाको राजेनकी मांने रोक लिया था। महीने भर बाद किशन फिर राधाको ले जायेगा, यह व्यवस्था ठीक हो गयी थी।

किशन और राजेनके बीच, जो रिश्ता समाजने स्थापित किया था, उसीके सहारे राजेनको एक भाभी मिल गयी। राधा तब यह आदर पाकर खुश थी। पतिके बाद समाजमें ननद और देवरको लेकर नारीका एक दर्जा और होता है। इस दर्जेको पाकर नारी अधिक खुलती है।

एक दिन, तभी राजेन अपने कमरेमें बैठा चाय पी रहा था कि राधा अन्दर आ गयी। हंस कर बोली।

"छिपकर बैठे हो ? तमाम ढूंढ़ आयी।"

"यहीं था, चाय पी लो।"

"नहीं। चाय मैंने पीनी छोड़ दी।"

"कबसे ?"

"जबसे तुम मिले।" वह हंसी। बैठ गयी वहीं।

"एक लिफाफा तो दे दो। उनको चिट्ठी भेजनी है!"

दूसरे कमरेसे लिफाफा लाकर राजेनने दे दिया। जब वह चली गयी, राजेन सोचने लगा। किशनको गये आठ रोज हुए। तबसे दो खत उसे वह डाल चुकी है। जवाब शायद मिल गया है। इतनी जल्दी-जल्दी वह क्या लिख सकती है? बहुत देर तक राजेन इसीको लेकर उलझा रहा। जब उठा, शाम हो गयी थी, टहलने बाहर चला गया। रातको लौटा तो देखा, राधा उसकी मेजपर कुछ पढ़ती-पढ़ती सो गयी थी। पास आकर पुकारा—भाभी? न जाने कैसी घबराहट लेकर राधा उठी। आंखें मलती-मलती बोली—

"आ गये? मैं तो सो गयी थी।"

"देर हो गयी। सिनेमा चला गया था।"

"सिनेमा? मुझसे नहीं कहा।"

"क्यों?"

'मैं साथ चलती। तबीयत तो बहल जाती। भारी-भारी सा जी हो रहा है।

"भारी?" अपना कोट खूंटीपर टांग, राजेन नजदीक चला आया। देखा, राधाकी आंखें लाल थीं। ललाट छूकर देखा, गरम था। बोला—"तुम्हें तो सचमुच बुखार हो रहा है।"

"हुं।" कहकर राधा चुप हो गयी। राजेन खड़ा रहा। वह फिर कुर्सीसे उठी। बिना कुछ कहे कमरेसे बाहर चली गयी।

सुबह उठकर राजेनने देखा, राधाका टेम्परेचर बढ़ गया था। घरमें बात फैली। डाक्टरने बताया, 'टायफायड' हो जानेका अन्देशा है। काफी सावधानी होनी चाहिये।

राजेनको न जाने यह बात कैसी लगी। उस दिन वह कालेज नहीं जा सका। दवा लाकर, एक डोज़ राधाको पिला, फिर वहीं सिरहाने कुर्सी डाल बैठा रहा। कुछ मिनट बाद राधाने ही कहा—

"कालेज नहीं गये? उन्हें एक चिट्ठी डाल देना। मैं कल लिख न सकी।"

"लिख दूंगा।" कहकर राजेन चुप हो रहा। राधा धीरे-धीरे थकी सो गयी। उसकी अलसायी पलकोंपर एक दृष्टि डाल, राजेन कुछ पढ़ने लगा। नारीका सारा स्वरूप सामने बिखरा पड़ा था। अपना सब तर्क लेकर वह उसीकी सही-सही व्याख्या कर लेना चाहता था। जीवनमें जहां शिथिलता और थकानका प्रवेश होता है, वहीं नारी उबार लेनेके लिए आती है। स्नेह और ममता जैसे उसके लिए लुटा देनेकी ही वस्तु हैं, अपने लिए वह कुछ भी बचाकर नहीं रखती। मां-बाप, भाई और बहन, इसके बाद कई और होते हैं—पति, देवर, सास और श्वसुर। इन सबको लेकर नारी खूब फैलती है। सबको समेटकर उसीको चलना होता है, जीवनकी अनुकूलता-प्रतिकूलतासे वह हमेशा झगड़ती रहेगी। उसकी भावुकता कोरा प्रदर्शन नहीं होती। सारा ठोस तर्क लेकर वह आगे चलती है। अधिक उलझना नहीं चाहती। अपनी हिफाजत कर लेनेमें नारी फिर भी कमजोर है। इसीसे उसे पुरुषकी छाया लेनी होती है। और पुरुष? भावुकताको माध्यम मान अपने एक शारीरिक अभावकी पूर्ति उस नारीसे करना चाहता है। नारीकी गलत परिभाषा यहीं होती है। और नारी दुर्बल है, अपनेको सही-सही भाषामें सिद्ध नहीं कर पाती। सारा झगड़ा वह अपनेमें पी जाना चाहती है। पुरुष इस बातको गलत समझ, नारीकी हार ठहराता है। यह उसकी गैर-जिम्मेदारी होती है। नारी इतना सब कुछ होनेपर भी पुरुषके प्रति कोई उपेक्षा या अवहेलना नहीं बरतती। अपनी कोमलतासे वह बहुत दब गयी है।......

राधाने आंखें खोल दीं। राजेनको वैसे ही बैठा पाया। धीरेसे बोली—"सर्दी बढ़ रही है। कुछ और ओढ़ा दो।" राजेन कुछ बोला नहीं। दूसरी चारपाईपरसे कम्बल उठा, उसके शरीरको गर्दन तक पूरा ढँक दिया। लौटकर अपनी जगह बैठ रहा। राधा जगी थी। कहने लगी—

"तुम जाओ। अम्माजी खानेको इन्तजार कर रही होंगी। जीमें आये, कहीं घूम आओ। अब मैं सो जाऊंगी।"

राजेन बैठा रहा। खाना खाये, घूम आये, कुछ तय नहीं कर पाता था।

"तुम्हारी कहानियां अच्छी होती हैं। कल तुम्हारी कापीमेंसे मैंने पढ़ी थी। कहीं छपवा दो।"

"सोचूंगा। इधर तो कुछ लिख नहीं पाया। सब पहलेकी हैं।"

"लेकिन......"

'क्या?"

"एक बात बताना। पुरुषकी कमजोरी नारी क्यों हो सकती है? नारीके प्रति अविश्वास कर उसे गलत क्यों ठहराया जाता है?"

"ऐसा अविश्वास करनेवाला अपनी जिम्मेदारी नहीं समझता।"

"फिर नारी पुरुषकी उसी धारणाको लेकर विद्रोह क्यों न करे?"

"यह उसके हकमें अच्छा न होगा।"

"यह पुरुषका तर्क है।"

"नहीं, नारी स्वभावतः कोमल है। विद्रोहको लेकर चल नहीं सकती।"

"तो वह पिसती रहे। उसकी उठनेवाली शक्तिको दुनिया दोष साबित करेगी। उसके लिए कोई साधन नहीं।"

"साधन है। पुरुषको सुधारनेका काम नारी कर सकती है। यह विद्रोह न होकर उपकार होगा। पुरुष अपनी गलती समझकर नारीका आदर स्वयं करेगा।"

"हुं!" कहकर राधा चुप हो गयी। अपनी ठीक हार मान, जैसे थक गयी हो। राजेन थोड़ी देर बैठ, बाहर चला आया।

टन्-टन्-टन्......। उसी लाइब्रेरीवाली घड़ीने बारह बजाये। राजेन चौंका। उसके मनमें बात उठी, जीवन भी एक घड़ी है, जो दिन-रात चौबीसों घण्टे अविराम-गतिसे चलती रहती है। भावना चाभी बनकर मन और मस्तिष्ककी छोटी-बड़ी सुइयोंमें गति भरती है। थककर, सुस्त होकर जीवन कभी रुकने नहीं पाता।। और जहां भावना जरा गड़बड़ कर जाती है, छोटी-बड़ी सुइयां हार जाती हैं। जीवन गति खो देता है।

फिर राधा, उन दोनों सुइयोंपर उभर आयी है। उस गोल दायरेमें सीमित हो, चिल्ला-चिल्लाकर कुछ कह देना चाहती हैं। हर मिनटपर खड़क उठनेवाली घड़ीकी भारी आवाज राजेन पहचानता है। नारीकी असमर्थतावाली भापापर उस आवाजको ठीक-ठीक तौलता है। नारीको कुचल देनेवाली सभ्यता, यह पुरुषका कैसा अधिकार है? यह पतिवाला समाज अपना उत्तरदायित्व क्यों नहीं निभाता। अपने 'पति'वाले अधिकारकी खरीदारी वह सरेआम करेगा। 'पत्नी' जैसे उसी अधिकारको लागू किये जानेका साधन-मात्र है।

वह एक छोटी-सी बात थी। किशनका तबादला देहरादून हो गया था और राजेन भी राधाके अनुरोधसे इम्तिहान देकर वहीं चला आया। किताबें साथ नहीं लाया था। इसीसे अधिक रात तक घूमता रहता। एक दिन, तभी सर्दी लग जानेसे सिरमें भारी पीड़ा उठी। यू-डी-कोलन और पानीसे गीला रूमाल माथेपर रख, राधा वहीं बैठी रही। थोड़ी देर बाद, जब पीड़ा थमने लगी, राजेन बोला—

"एक गिलास पानी देना।"

राधा संभली। पानी पिला, पूछा—

"अब कैसी तबीयत है?"

"अच्छा हूं, भाभी। तुमने बचा लिया, वरना सारा सिर फटा जा रहा था।"

राधा मुसकरायी। फिर माथेपरसे रूमाल हटा लेनेके लिए हाथ आगे बढ़ाया था कि राजेनने उसकी हथेली साहससे पकड़, अपनी छातीपर रख ली। भारी असमञ्जसमें पड़, राधा कुछ अवरोधन करके वैसी ही झुकी खड़ी रह गयी। अचानक, तभी परदा हटाकर किशन अन्दर चला आया था। राधाने सिटपिटाकर जल्दी ही हाथ अलग हटा लिया।

पर, किशनके मस्तिष्कमें जो तर्क घर कर गया था, वह कभी चुप नहीं बैठा। राधाके प्रति अविश्वास करके भारी अशान्ति उसने मोल ली थी। आधी-आधी रातको वही बात उसे परेशान किया करती। अपना भीतरी सन्देह खोल, राधाके साथ कोई आपसी समझौता वह नहीं करना चाहता था।

डेढ़ हफ्ते और रहकर राजेन लौट आया था। आनेके कई दिन बाद राधाकी एक चिट्ठी मिली, छोटी-सी—लिखा था—

राजेन,

मन और मस्तिष्कका कोई भरोसा नहीं। धारणा बदलते कितनी देर लगती है, तुम आये और मेरी गृहस्थीमें आग लगाकर चले गये। —राधा

यह सब राधाने झूठ भी नहीं लिखा था। एक दिन उसी आगमें वह जल गयी। किशन उससे उदासीन था। कोई आकर्षण उसे फेर न सका। पतिकी तरफसे इतनी बड़ी लांछना और उपेक्षा लेकर राधा जीवनमें चल नहीं सकती थी। उसकी भीतरी उदासीने शरीरको सुस्त और बीमार बना दिया। बीमारीमें ही वह बच्चा पैदा हुआ। इसके बाद वह बराबर बीमार रही। बच्चेकी भी ठीक-ठीक परवाह नहीं कर सकती थी। जब बहुत थक गयी, तो डाक्टरने बताया, टी० बी० हो गया है। यह सब जानकर भी किशन, न जाने कैसे निश्चिन्त हो गया था। तीन महीने बाद उसी मसूरीकी पहाड़ीपर राधा सचमुच मर गयी।

अब, आज औरोंके साथ किशन भी विश्वास करता है, वह 'बेबी' किसी गलत अधिकारसे पैदा हुआ है। उसका यथार्थ पिता किशन नहीं।......

और वह घड़ी फिर खड़की है। बारह बजकर छब्बीस मिनट हुए। सर्दीसे हाथ-पैर कांप रहे हैं, डरते-डरते राजेन उठा। कहीं 'निमोनिया' न हो जाय, भारी-भारी पैरोंसे किरायेकी कोठरीकी ओर लौट जाना चाहा। ओसमें चांदनी भीग गयी थी।

सम्राट अकबरकी सैनिक-योजना

श्री ब्रजकिशोर वर्मा, 'श्याम'

सम्राट अकबरका शासन-युग, सैनिक-प्रधान युग था। उस समय सेना ही राष्ट्रका सर्वस्व थी। सेनामें ही साम्राज्यका प्राण अधिष्ठित था। लोग कहते हैं कि मुगल-साम्राज्यका विनाश औरङ्गजेबकी धार्मिक नीतिके कारण हुआ। यह किसी परिमाणमें सच भी है। परन्तु यह कहना यही प्रकट करता है कि अकबरकी धार्मिक नीति ही साम्राज्यका प्राण थी। परन्तु वास्तविक बात यह नहीं है। धार्मिक नीतिके ही सदृश्य सेना और कोष इत्यादि भी बड़े महत्वके प्रश्न थे। मुगल साम्राज्यके विनाशका बहुत-कुछ कारण सेनाके संगठनमें देख पड़ेगा। सेनाके संगठनका इतना अधिक प्रभाव साम्राज्यके अस्तित्वपर पड़ना ही सिद्ध करता है कि सेना तत्कालीन शासनमें बड़े ही महत्वकी समस्या थी। यही कारण था कि सेनाके संगठनपर इतना अधिक ध्यान सम्राट अकबर देते रहे। प्रान्तीय शासन भी प्रायः सैनिक अफसरोंके हाथमें रखा जाता था। सेना ही प्रधान शक्ति थी। इसी विभागकी सत्ता सर्वत्र दृष्टिगोचर होती थी। यदि अकबरके समयमें शासन-कार्य सुव्यक्त विभागोंमें बंटा होता, तो सेना-विभाग सर्वप्रधान विभाग होता।

सम्राट अकबरके समयमें दो विभिन्न सभ्यताओंके एकीकरणका भाव प्रबल था। दोनोंके सिद्धान्त युद्धके सम्बन्धमें प्रायः एक-से थे। मुसलमान काफिरोंसे लड़कर गाजीकी उपाधि प्राप्त करना परम धर्म समझता था—जिहाद उसके लिए स्वर्गका खुला द्वार था। हिन्दुओंकी लड़ाकू जातिका भी सिद्धान्त इससे भिन्न न था। उसके सम्बन्धमें तो भगवान कृष्णने कहा था कि—"सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ, लभन्ते युद्धमीदृशम्।" ऐसी लड़ाई मिलनेपर पीठ दिखाना और युद्धसे मुख मोड़ना, धर्मके विरुद्ध था। युद्धमें मृत्यु और विजय दोनों कल्याणकारी समझे जाते थे। हिन्दू-युद्ध-कल्पना और मुसलमान-युद्ध-कल्पना, दोनोंमें इस विषयमें अधिक अन्तर नहीं था। श्रीकृष्णका 'हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं, जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्' वाला सिद्धान्त मुसलमानोंके सिद्धान्तसे बहुत-कुछ मिलता-जुलता है। हां, दोनों जातियोंकी युद्ध-कल्पनामें एक बड़ा भारी अन्तर प्रत्यक्ष है। मुसलमान प्रायः इस्लामके प्रचारके लिए तलवार उठाता था। उसके सिद्धान्तमें साम्प्रदायिक कट्टरता कूट-कूटकर भरी थी। परन्तु हिन्दूको ऐसा नहीं करना था। उसके धर्ममें अन्य धर्मवालोंको अपनेमें मिलानेका निषेध था। यही कारण था कि हिन्दुओंकी युद्ध-कल्पनामें धर्म-परिवर्तनको स्थान देनेकी आवश्यकता नहीं पड़ी। पर अकबरकी समर-नीति और सैनिक संगठनपर इन दोनों जातियोंकी सैनिक विभिन्नताका प्रभाव नहीं पड़ा। उसकी रगोंमें मध्य एशियाई रुधिरका प्रवाह था। अतएव मध्य एशियाकी भ्रमणशील जातियोंका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था।

अकबरके पूर्वजोंकी जातिमें भ्रमणशीलताकी प्रवृत्ति थी। उस जातिकी युद्ध-कल्पना विशेष उन्नत श्रेणीकी न थी। प्रायः जीविका तथा धन और लूटकी लिप्साका ध्यान उन्हें अधिक रहता था। उनकी इस भ्रमणशील प्रकृतिका आभास मुगलोंके खेमोंमें दिखायी पड़ेगा। एक इतिहासज्ञने तो यहां तक लिखा है कि मुगलोंका कभी-कभी राजधानी परिवर्तन करना उनकी मध्य एशियाई प्रकृतिका प्रत्यक्ष द्योतक है। अस्तु, भारतीय मुगलोंके सेना-संगठन और युद्ध-कल्पनापर हिन्दू, मुसलमान और मध्य एशियाई तीनों प्रभाव पड़े।

पर सम्राट अकबरकी युद्ध-नीतिमें न तो जिहादको स्थान था और न उसका लक्ष्य—धन और लूटका लाभ था। उसका उद्देश्य था,भारतके भिन्न-भिन्न प्रदेशोंको एक प्रधान साम्राज्यकी जञ्जीरमें बांधना और मुगल-शासनको सुदृढ़ करना। यह उद्देश्य मुसलमानी जिहाद और मध्य एशियाई बल-प्रयोगसे बहुत भिन्न था। अपने मुख्य अभिप्रायको सिद्ध करनेके लिए उसने हिन्दू-राजनीतिका—"साम दण्डौ प्रशंसन्ति नित्यं राष्ट्राभिवृद्धये" वाला सिद्धान्त अपनाया था। बहुत-कुछ सन्देह होता है कि वह भेद और दानके उपायोंका भी अवलम्बन करता था, पर इस सम्बन्धमें उदाहरणोंका अभाव है। माया, उपेक्षा और इन्द्रजालका दोषी तो उसे कभी सिद्ध नहीं किया जा सकता। तथापि वह युद्ध पहले ही नहीं ठान देता था। यदि कोई अन्य उचित उपाय शत्रुको सम्राटके पक्षमें नहीं ला सकता था, तो संग्राम द्वारा जीतनेका उपाय किया जाता था। अकबर प्रायः 'दण्डहस्त गतिका गतिः' का समर्थक था। तो भी जीवन-पर्यन्त उसकी तलवार रक्तमें सराबोर बनी रही। बलवाइयोंका दमन, और शत्रुओंको पराजित करनेके लिए सम्राटको सेनाके संगठनपर विशेष ध्यान देना पड़ा। एक बड़ी भारी सेना, बिना उचित सङ्गठनके पूर्ण नहीं होती। सैनिकोंके एक बड़े भारी अव्यवस्थित समूहसे लाभके बदले हानि अधिक होती है। सङ्गठनमें बड़े गुणकी आवश्यकता होती है। एक ही प्रकारकी योजना सब स्थितियोंके लिए उपयुक्त नहीं हो सकती। उदाहरणार्थ मैदानमें घोड़ोंकी अधिक आवश्यकता पड़ती है और पहाड़ी देशमें पैदलकी। हय-दलकी शक्ति हलकी तोपोंमें होती है, परन्तु पैदलकी बड़ी तोपोंमें है। समय-समयपर दलोंकी संख्यामें भी अन्तर करना पड़ता है। यूरोपीय सैनिक शक्ति-स्थितिके अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकारके सेनाओंकी उपयुक्तताका प्रमाण है। इन दृष्टियोंसे सम्राट अकबरकी सैनिक व्यवस्था पर विचार करना है।

अकबर भारी स्थायी सेना नहीं रखता था। ब्लाकमैनका अनुमान था कि सरकारी कोषसे सीधे वेतन पानेवाले सैनिकोंकी संख्या २५ हजार थी। पर मांसरेट, जो उस समय सम्राटके साथ था, कहता है कि काबुलके आक्रमणके समय अकबरके पास ४५ हजार हय-दल था, जिसका वेतन और साज-सामान सम्राट स्वयं देता था। इसके अतिरिक्त ५ हजार गज-सेना और अगणित पैदल थे। किन्तु पैदलोंमें नियमित सिपाहियोंके अतिरिक्त अन्य सभी प्रकारके लोग सम्मिलित थे। डा० स्मिथका कहना है कि १५८१ का यह प्रयत्न विशेष अवस्थामें किया गया, जबकि अकबरके जीवन और सिंहासनके लिए भारी खतरा उपस्थित था। स्मिथ कहते हैं कि यह तो प्रायः निश्चित है कि साधारण समयमें सम्राट इतनी बड़ी सेना रखनेका व्यय नहीं उठाता था। उसकी सेनाका अधिकांश भाग बड़े-बड़े सरकारी अफसरों और देशी रजवाड़ोंमें बंटा था। आजकलकी तरह, उस समय भी साम्राज्यका अधिक भाग उन वंशानुगत राजाओं और सरदारोंके अधिकारमें था, जिन्हें आज-कलके शब्दोंमें देशी या रक्षित राज्य कह सकते थे। ये लोग अपने राज्योंके आन्तरिक शासनमें स्वतन्त्र थे। इन्हें केवल कर देना पड़ता था और आवश्यकता पड़नेपर सैनिक सहायता देनी पड़ती थी। युद्धोंमें सम्राटकी सहायता करना इनका कर्तव्य था। सम्राटका सितारा, जब सर्वोच्च शिखरपर चमक रहा था, उस समय ऐसे-ऐसे बीस राजा बराबर उपस्थित रहा करते थे। ये लोग प्रायः संग्रामोंमें सम्राटकी सेवा करते थे।

लेकिन सम्राटको सबसे अधिक भरोसा अपने अफसरोंकी सेनापर था। इन अफसरोंको सम्राट स्वयं नियुक्त करता था। इनको एक नियमित संख्याके भीतर सैनिक और घोड़े भर्ती करके उनके साज-सामानका स्वयं प्रबन्ध करना पड़ता था। गज सेना भी इन्हें भर्ती करनी पड़ती थी। सम्राटने बहुत कुछ सोच-विचारकर इस विषयके कुछ नियम स्थिर किये थे। इन नियमोंका उद्देश्य यह था कि सैनिकोंकी निश्चित संख्यामें भर्ती करने और घोड़ों तथा साज-सामानके प्रबन्धमें अफसर सम्राटको धोखा न दे सके। इस प्रकारकी भर्तीकी हुई सेनामें हय-दल ही विशेष था। पैदल और तोप उतने महत्वके न थे। जो अफसर इन सैनिकोंको भर्ती करता था, उसीको ये लोग अपना सरदार मानते

थे। इन लोगोंका कोई रेजिमेण्ट या संगठित दल नहीं था और न इन्हें ड्रिल करनी पड़ती थी और न वस्त्र या अस्त्र-शस्त्रमें समानता ही रखनेकी आवश्यकता थी। इस सेनाके अफसरको मंसबदार कहते थे। वह भर्तीका अफसर और सेनानायक दोनों होता था। इन सरदारोंकी तैंतीस श्रेणियां थीं। इनका श्रेणी-विभाजन उस संख्याके अनुसार होता था, जो ये लोग भर्ती कर चुकते थे, अथवा जितनी भर्ती हो जानेकी आशा की जाती थी। इसी प्रकार मंसबकी प्रथा अकबरने चलायी। यह प्रथा फारसी-प्रथाका अनुकरण थी। दक्षिणके सुलतानोंके यहां भी इसी प्रकारकी योजना थी।

मंसबदारोंमें साधारण सिपाहियोंको छोड़कर प्रायः सभी कर्मचारी सम्मिलित रहते थे। सर्वोच्च मंसब, जो किसी प्रजाको दिया जाता था, ७००० का था। परन्तु बादको मुगलोंके पतनशील दिनोंमें आठ-नौ सहस्र तकके मंसब किये जानेका विवरण है। राजकुमारोंका मंसब ७००० से ९०००० तक जाता था और कभी-कभी तो इससे भी बढ़ जाता था। ९००० से नीचेके मंसबोंकी तीन श्रेणियां होती थीं। इन श्रेणियोंका विभाजन जात और सवारोंके अनुसार होता था। जात और सवारमें अन्तर था। जात-पद उस संख्याका बोधक था, जितनी किसी मंसबदारको रखनेका नियम रहता था। इसके साथ-साथ कुछ अधिक घोड़ोंके रखनेका अधिकार ५०० से ऊपरके मंसबदारोंको था। इस अधिक संख्याको 'सवार' कहते थे। जिसके जात और सवार बराबर होते थे, उसे प्रथम श्रेणी, जिसके सवार जात के आधे होते थे, उसे द्वितीय श्रेणी और जिसके सवार जात के आधेसे कम अथवा जिसके पास सवार होते ही नहीं थे, उसे तृतीय श्रेणीमें रखते थे। जातके साथ सवार पदकी स्वीकृति बड़े सम्मानका विषय समझा जाता था। डाक्टर हार्नका अनुमान है कि 'जात' के लिए स्वीकृत वेतनमेंसे ही सवारका वेतन मंसबदारोंको देना पड़ता था। परन्तु इर्विन ब्लाकमैनका कहना है कि वेतन 'जात' के निमित्त था। उसी वेतनसे अफसरको बारबर्दारी, घरू नौकर और कुछ घुड़सवार रखने पड़ते थे।

वेतन-भोगी सैनिकोंके अतिरिक्त मंसबदारोंके पास कुछ आश्रित या दास रहा करते थे, जिन्हें 'चेला' कहा जाता था। इन चेलोंका दूसरा कोई आश्रय नहीं रहता था। इनका स्वामी ही इन्हें खिलाता-पिलाता था और कपड़े देता था। ये उसीके यहां रहते भी थे। प्रायः युद्ध द्वारा प्राप्त बालकों अथवा अकाल-पीड़ित माता-पितासे मोल लिए हुए बच्चोंको चेला बना लिया जाता था। इनके लालन-पालन और युद्धाभ्यास-शिक्षाकी व्यवस्था अफसरको करनी पड़ती थी। इन अफसरोंको अपने चेलोंपर ही अधिक विश्वास रहता था, क्योंकि यह अपने स्वामीका साथ देनेके लिए सदा तैयार रहते थे।

मंसबदारोंके अधीन कुछ ऐसे सैनिक भी रख दिये जाते थे, जिनको सरकार स्वयं भरती भी करती थी और वेतन भी देती थी। इन्हें 'दाखिली' कहते थे।

सैनिक कर्मचारियोंकी नियुक्तिपर सम्राट बड़ा व्यवस्थित ध्यान रखता था। लिखा है कि सम्राट देखकर ही बतला सकता था कि कौन मनुष्य सैनिक है और कौन वणिक। वह आकृति देखकर प्रकृतिका निर्णय करता था। सैनिक विभागमें प्रवेश करनेके अभिलाषी लोगोंकी सम्राट स्वयं परीक्षा लेता था—इससे अकबरकी राजनीतिक और सैनिक श्रेष्ठता ज्ञात होती है।

प्राचीन हिन्दुओंकी सेना प्रायः चतुरंगिणी हुआ करती थी जिसमें हाथी, रथ, घोड़े और पैदल रहते थे। अकबरकी सेनामें हय-दलका प्राबल्य था। हाथी भी रहते थे और पैदल तो होते ही थे। रथके स्थानपर यदि तोपखानेको रख दिया जाय, तो सम्राट्की सेना भी एक प्रकारकी चतुरंगिणी हो जायेगी। सेनाका रेजिमेंटोंमें विभाग नहीं था। मंसबदारोंके अतिरिक्त 'अहदी' और 'अहशाम' भी होते थे। 'अहदी' शब्दका अर्थ है अकेला। ये किसी सरदारसे सम्बन्ध नहीं रखते थे। सम्राट ही स्वयं इनका स्वामी था। इनका अलग ही एक सेनापति रहता था। इसी सेनाके विषयमें एक इतिहासकारने लिखा है कि "सम्राटने उच्च-श्रेणीके लोगोंकी एक सेनाका संगठन किया था। दर्बारके कर्मचारी, चित्रकार, शिल्पशालाओंके अध्यक्ष प्रभृति इस दलमें रखे गये थे। उनमेंसे अनेक ५००) मासिक वेतन पाते थे। उनके ऊपर एक प्रधान अमात्य था और उनके सम्राट स्वयं सेनापति थे। वर्तमान वालंटियर सेना इस सेनाके तुलनीय है।" इतिहास लेखक हार्नने अहदी सैन्य को शरीर-रक्षक सैन्यके रूपमें माना है।

'अहशाम' में उत्तर मुगलकालके ग्रन्थकारोंने सेनासे सम्बन्ध रखनेवाले उन सभी आदमियोंका वर्णन किया है, जो मंसबदार या अहदी न थे। 'अहशाम' में पैदल, तोपखाना, नौकर, चाकर, पुलिस और कारीगर इत्यादि, सभी सम्मिलित थे। आईनमें 'मियादगान' शीर्षक एक अध्याय है, जो साधारणतः 'अहशाम' का ही द्योतक है। इस शीर्षक

में अकबरके १२००० बन्दूकची भी सम्मिलित थे और वास्तवमें इस विभागमें यही असली सैनिक थे। इनके बाद दरवान, भवनरक्षक, पत्रवाहक, गुप्तचर, खंगी, कुश्ती लड़ने वाले, दास, पालकीवाहक, बढ़ई और जलवाहक, इत्यादि; सभी इस विभागमें सम्मिलित थे। तत्कालीन सेनामें आदमियोंकी भांति कुछ पशुओंको भी बड़ा महत्व प्राप्त था। अकबरकी सेनाका सबसे महत्वपूर्ण भाग हय-दल था। उसकी अश्वशालामें ५०००—६००० अत्युत्कृष्ट घोड़े सदैव रहा करते थे। उसने अरब, फारस, तुर्क, काबुल और काश्मीरसे सर्वोत्कृष्ट घोड़े मंगाये थे। वह एक-एक अत्युत्कृष्ट घोड़े का मूल्य ५०० स्वर्ण मुद्रा तक प्रदान करता था। उसने आज्ञा दे दी थी कि कोई घोड़ा भारतसे बाहर न जाने पाये, इसके लिए उसने कोतवाल नियुक्त कर दिये थे। उस समय हाथी भी अत्यन्त उपकारी पशु माने जाते थे। वे बड़ी-बड़ी तोपोंको रण-क्षेत्रोंमें ले जाते थे। सैनिकगण बन्दूकें लेकर उनके ऊपर बैठते और शत्रु-संहार करते थे। छोटी-छोटी तोपें उनकी पीठपरसे गोले बरसाती थीं। वे जिरहसे मढ़ी हुई सूंडोंमें बड़ी-बड़ी तलवारें लेकर उनसे विपक्षियोंका विनाश करते थे। सम्राट मातङ्गोंको तोपध्वनि और अग्निसे विचलित न होने और अस्त्र-सञ्चालनकी शिक्षा देता था। उस समय सेनामें हाथीसे दो लाभ विशेष थे। एक तो किलोंके फाटकोंको तोड़नेमें हाथीसे बड़ी सहायता मिलती थी और दूसरे, हाथीपर बैठा हुआ सेनानायक सैनिकोंको आसानीसे दिखायी पड़ता था। उन दिनों युद्धोंका अन्तिम निर्णय नेताके ही भाग्यपर रहता था। यदि वह स्थिर रहा, तो सेना भी स्थिर रही और यदि वह गिरा तो सेना भी भाग निकलती थी। इससे सेनानायकको हाथीकी ऊंची पीठपर बैठनेकी आवश्यकता पड़ती थी। भारतवर्षका भाग्य-निर्णय अनेक बार हाथी द्वारा ही हुआ है। हाथीका प्रयोग बादको सेनाके सामान ढोनेके लिए भी होता था। परिदर्शनके लिए तो हाथीका सदा प्रयोग होता था। उस समय हाथियोंके नाम भी हुआ करते थे। अकबरनामेमें कई नाम दिये हैं। जिन हाथियोंपर सम्राट स्वयं चढ़ता था, उन्हें 'खास' कहते थे। सम्राटके घोड़े और हाथी विविध प्रकारके मणि-मुक्ता-खचित सोनेके आभूषणोंको परिधान करके सम्राटको वहन करते थे। उसके घोड़ेकी जीन मणिमुक्ता-विखचित सोनेकी बनी हुई थी। घोड़े-हाथियोंके अतिरिक्त सम्राटके पास असंख्य ऊंट और खच्चर थे। सैनिक लोग बन्दूकें लेकर ऊंटोंपर सवार होकर शत्रुका विनाश करते थे। साज-सामान ढोनेमें इनका अधिक उपयोग होता था। अकबर उत्कृष्ट ऊंटका मूल्य बारह स्वर्ण मुद्रा देता था। इन पशुओंको निर्दिष्ट आहार नियमित रूपसे मिलता है या नहीं, इसको भी वह स्वयं देखता था।

अकबरकी सैनिक व्यवस्थामें, उसकी रणनौकाओंका उल्लेख करना भी महत्वपूर्ण है। जिस समय अकबर दिल्लीका शासन कर रहा था, उस समय भारतीय समुद्रपर पुर्तगालियोंका एकाधिपत्य था। जो मुसलमान मक्का जाना चाहते थे, उन्हें इनके अनुमति-पत्र लेने पड़ते थे, जिनपर ईसामसीह और मरियमकी मूर्तियां अङ्कित रहती थीं! मुसलमानोंको इन्हें लेना ही पड़ता था। अतएव सम्राटने पुर्तगालियोंकी प्रतिद्वन्दिता करनेकी इच्छासे, उनकी रण-नौकाएं देखकर, उन्हींके अनुकरणसे बड़े-बड़े जहाज तैयार कराये। समुद्रके तटपर अनेक स्थानोंपर बड़े-बड़े अर्णवयान तैयार होने लगे। प्रत्येक रण-नौकामें बारह श्रेणीके कर्मचारी थे। नाविक समुद्रके ज्वार-भाटेके सम्बन्धमें अभिज्ञ थे। जो जलका थाह जान सकते थे, जिन्हें वायुके बहनेकी दिशा, समय और कारण ज्ञात था, केवल वही इन जहाजोंपर नियुक्त किये जाते थे।

सम्राट अकबरने सैकड़ों शिल्पशालाएं स्थापित की थीं, जिनमें उत्कृष्ट तोप, बन्दूक, बारूद, गोली, बर्छा, तलवार, जिरह, ढाल इत्यादि, सभी युद्धोपकरण बनाये जाते थे। सम्राटकी शिल्प-शालाओंमें बारह-बारह मनका गोला चलानेवाली बड़ी-बड़ी तोपें भी निर्मित होती थीं। इस समय तीस-तीस मनका लोहेका गोला बहुत दूर तक फेंकनेवाली तोपें भी तैयार होती थीं। सम्राटने अपनी प्रतिभाके बलसे बन्दूक और तोपके बनवानेमें बड़ी उन्नति की थी। उसके पास एक तोप ऐसी थी, जिसके खण्ड-खण्ड कर दिये जाते थे और युद्धके समय सब खण्ड बड़ी सरलतासे जोड़ दिये जाते थे। उसने एक ऐसा यन्त्र बनवाया था, जिससे सत्रह तोपोंमें एक साथ ही अग्नि दे दी जाती थी और वे उसकी सहायतासे एक ही साथ आग और गोले बरसाया करती थीं। उसने एक और भी यन्त्र बनवाया था, जिससे सोलह बन्दूकें एक ही साथ, एक ही आदमी द्वारा साफ की जा सकती थीं।

आईनमें तुफंग या बन्दूककी उन्नतिके लिए अकबरकी बड़ी प्रशंसा की गयी है, परन्तु तो भी कमान और तीरके सामने लोग बन्दूकको हीन समझते थे। अकबरके समयमें तेग कई तरहका होता था। अन्य अस्त्र-शस्त्रोंके भी कई प्रकार

हुआ करते थे। शमशेर, धूप, खाण्डा, सिरोही, पट्टा और गुप्ती इत्यादि तलवारोंके तथा चिरवा, तिपवा और खेरा इत्यादि ढालोंके भेद थे, शशवर, पियाजी, पुश्त खवार और खारे माही गुर्जा, अर्थात एक प्रकारके गदाओंमें; तथा नेजा, बर्छा, सांक, सैथी, सिरुारा इत्यादि अस्त्रोंमें गिनाये जा सकते हैं। कटारी जमधर, खञ्जर, जमखाक, बांक, नरसिंह माथ और अन्य कई प्रकारके छोटे-मोटे शस्त्रोंका प्रयोग अकबरके समयमें होता था। परन्तु चाहे तोप हो या बन्दूक ; चाहे तलवार हो या तेग और चाहे ढाल हो या खंजर, किसी अस्त्र-शस्त्रकी धाक रिसालामें तीर-ओ-कमान के सामने नहीं जम सकती थी। मुगल तीरन्दाज अपने अस्त्र में बड़े प्रवीण होते थे। जितनी देरमें कोई बन्दूककी दो फायर भी नहीं कर पाता था, उतने ही समयमें तीरन्दाजके छः तीर छूट जाते थे। कमान और तीरके प्रयोगमें अकबरके सैनिकोंकी जितनी प्रशंसा की जाय, सब थोड़ी है। जिस समय रणक्षेत्रमें 'अल्लाहो अकबर' और 'दीन-दीन' की पुकार मचती थी, तथा अकबर सम्राटका 'या मुईन' (ऐ मेरे सहायक परमेश्वर) शब्द कर्णगोचर होता था, उस समय शाही कमानका चलाना देखकर आश्चर्य होता था। बदाऊनी लिखता है कि अकबरके सैनिकोंकी कमान चलानेकी कला देखकर शब्दों द्वारा उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। वह तो देखनेकी ही चीज थी।

सम्राट अकबरकी सैनिक व्यवस्थाका यही सूक्ष्म दिग्दर्शन है, जिससे पता चलता है कि मुगल सेनामें गुणोंके साथ-साथ कुछ भारी दोष भी थे। डाक्टर स्मिथने लिखा है कि "अकबरकी सैनिक योजनामें ही पतन और नाशके बीज थे।" इर्विनका भी यही मत है कि साम्राज्यके नाशका प्रधान कारण सैनिक हीनता ही थी। सेनामें सैनिकगण अपने-अपने प्राणोंकी भी उतनी चिन्ता न करते थे, जितनी घोड़ोंकी। वीरोंकी कमी न थी, पर सङ्गठनमें दोष था। सैनिकोंको अपना प्रबन्ध आप करना पड़ता था, यह भारी त्रुटि थी। अव्यवस्था, रसदका कुप्रबन्ध, खेमोंका विस्तृत साज, सुख वांछनाका स्वभाव और सम्राट अथवा राष्ट्रके लिए सैनिकोंमें चिन्ताका अभाव—यह सब दोष मुगल सैनिक योजनामें विद्यमान थे, जिनके कारण अन्तमें मुगलों को दिल्लीसे हाथ धोना पड़ा। लेकिन इन दोषोंको अकबर बचा भी नहीं सकता था। इन दोषोंसे जो-जो हानियां सम्भव थीं; उनसे साम्राज्यकी रक्षा करनेका स्थायी उपाय वह कर गया था, यदि उन्हीं उपायोंका अवलम्बन औरङ्गजेब प्रभृति सम्राट करते आते, तो वर्तमान इतिहासके पन्ने दूसरे ही रंगमें रंगे होते। अकबर सेनाके संगठनके दोषोंसे अपरिचित न था। परन्तु उसे सेनाके सुधार करनेका अवसर ही नहीं मिला। फिर भी उसने सेनाका ऐसा सङ्गठन तो कर ही लिया था, जिसके बलसे वह अपने उद्देश्योंको पूर्ण करनेमें सफल हो सकता था और सफल हुआ भी। सेनाके सङ्गठनमें दोषोंके रहते हुए भी वह साम्राज्यकी रक्षा और स्थिरताका पूर्ण और स्थायी उपाय कर ही गया था। यदि औरङ्गजेबवाली आधी शताब्दीमें अकबरका फिरसे अवतार हुआ होता, तो मुगल-राज्य-व्यवस्थाकी एक बड़ी भारी त्रुटि दूर हो जाती। पर ऐसा होना नहीं था। मुगल सेनाकी त्रुटियां ही अकबरके बनाये विशाल सुव्यवस्थित और स्थायी साम्राज्य-भवनको गिरानेमें समर्थ हुईं।

अलका

श्री देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त'

हवाका एक हलका झोंका—ठण्डा और अत्यन्त ठण्डा—ऐसा, जैसे शूल। और नगरके बाहर जन-शून्य, कोलाहल-हीन, विशाल पथपर माधव खड़ा है—मौन। वह अपने एक हाथमें हरा रूमाल लिये हुए है। हवाके तीव्र झोंकोंसे यह हरा रूमाल, फुरफुरकर जैसे चिड़िया बनकर उससे दूर उड़ जाना चाहता है; लेकिन माधव उसे जब उड़ने दे? वह उसे न उड़ने देगा—कभी न उड़ने देगा।

एकाकी माधव इस पथपर, जैसे किसी मौन तपस्वी-सा किसी तपस्यामें तल्लीन है। ठण्डी हवाके ये झोंके, ओसके टपकते हुए कण और पथका यह सन्नाटा किसीके भी हृदयमें भयका सञ्चार करनेके लिए पर्याप्त है—भय नहीं, तो यहांसे भाग जानेकी प्रेरणा करनेके लिए तो पर्याप्त है ही। लेकिन माधव तो आज तपस्वी है न! उसका दिल तो आज शायद उसके ही साथ नहीं था। दांत कटकटा देनेवाली ठण्डी हवाके झोंकोंका उसे शायद इसीलिए कोई भान नहीं था। वह तो पता नहीं, अपनी किस धुनमें खड़ा है, मौन!

हवाके ठण्डे झोंके बराबर चल रहे हैं। सांय-सांय करता हुआ सूना पथ, कभी-कभी नीड़ोंमें छिपे हुए पंछियोंकी शान्तिको जैसे भङ्ग कर देता; भयानक शीत उन्हें छटपटाने और कांपनेको बाध्य कर देती और व्याकुल पंछी चहचहा उठते; परन्तु माधवका मौन भङ्ग करनेकी इन सबमें तनिक भी क्षमता नहीं। वह तो अभी तक अपने-आपमें खोया-सा, अपनी विचार-वीथियोंमें भूला-सा और किसी पावन पर्वके स्मृति-सागरकी लहरोंमें शायद डूबता-उतराता-सा मौन था।

कई दिनोंसे यह ठण्ढ बहुत अधिक पड़ने लगी थी और दुनियाके धनवानोंको मखमली मसनदों तथा लाल इमलीके बेशकीमती कम्बलोंके बीच सूर्योदयके बाद भी पड़े रहने और आराम करते रहनेको बाध्य कर चुकी थी। जो गरीब दिन-भर जी-तोड़ मेहनत करते और फिर भी पेटकी ज्वाला शान्त करनेको तथा अपने आश्रितोंकी आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेको तरसते रहते, उन्हें भी और कुछ नहीं तो जलती हुई लकड़ियोंकी आग अथवा पियारका सहारा लेनेको बाध्य होना पड़ रहा था।

ऐसी ठण्ढमें भी, रातके उत्तरार्द्धमें माधव इन सुनसान घड़ियोंमें, बिस्तरपर लेटा नहीं रह सका। कितने ही सिगरेट उसने पी डाले; चायके भी कई प्याले स्वयं स्टोव जलाकर बनाये और पी डाले; कितनी ही पुस्तकोंके पन्नोंको उलट-पुलटकर उनमें घुल-मिल जानेकी कोशिश की; पर इतनेपर भी, जब उसके दिलको कोई शान्ति नहीं मिल सकी, तब एक गरम कोट पहनकर चुपचाप शहरकी सड़कोंको पार करता हुआ वह यहां—इस निर्जन स्थानमें—आ खड़ा हुआ।

प्रभात होनेमें अभी काफी देर थी। आकाशमें यत्र-तत्र कुछ तारे अभी तक टिमटिमा रहे थे। इन्हींकी ओर दृष्टि गड़ाये माधव खड़ा था। कभी-कभी वह अपने-आपही खिलखिला पड़ता और दो-चार कदम कभी इधर और कभी उधर चल पड़ता।

ठण्ढी हवाके झोंके अब उसके शरीरमें शूल चुभाने लगे। माधवके दिलका सूना आलम जैसे अपने-आप बोल, उठा—प्रकृतिका यह निर्मम व्यापार आखिर सबके साथ एक-सा क्यों? दीन-दुखियों और पीड़ितोंके साथ भी यह दया नहीं कर सकती? परन्तु दूसरे ही क्षण, उसके विवेकने उसे समझाया—प्रकृति किसीपर दया करना नहीं जानती। वह करे ही क्यों? यदि प्रकृतिके व्यापारमें भी यह भेद-भाव आ पड़े, तो दुनिया, दुनिया ही कैसे रह सकेगी? और तब उसे जैसे कुछ होश आया; उसके मुंहसे एकाएक निकल पड़ा—ओफ! गरम कोटके नीचे आज मैंने स्वेटर तो पहना ही नहीं; मफलर भी तो नहीं लगाया। शायद इसीलिए यह ठण्ढ मुझे सता रही है।

(२)

निर्जन पथपर खड़ा हुआ माधव एक बार अपने-आप गुनगुनाया—आकाशकी पीड़ा कम हो गयी। उसके फफोले एक-एक करके अदृश्य हो चले। पर मेरे हृदयाकाशकी पीड़ा......! ओफ, वह तो इस नीलाकाशकी पीड़ासे सर्वथा भिन्न जो ठहरी—एकदम भिन्न। आकाशके शरीरमें यह फफोले नित्य पैदा होते और मिट जाते हैं। लेकिन मेरे हृदयाकाशमें यों पीड़ा कभी आयी ही नहीं, और इस बार जो यह पीड़ा आ समायी है, वह एकदम मिट कैसे

सकती है। दुनिया कहती है, मैं व्यर्थ इतना परेशान रहता हूं। अलका भी कहती है 'तुम भावुक जो ठहरे। न जाने क्या-क्या सोचते रहते हो। व्यर्थ इतने गहरे उतरते रहते हो और हृदय-मन्थन किया करते हो।'

किन्तु दुनिया यह नहीं जानती और शायद अलका भी तो यह नहीं जानती कि दिलपर जा लगनेवाली चोट, मानवको शाश्वत पीड़ित बनाये रखती है; निरन्तर उसे जलाये जाती है और शान्तिका स्पर्श उसे करने नहीं देती। इन विचार-तरङ्गोंके साथ ही माधवकी आंखोंसे आंसुओं-की धारा बह निकली। उसने अपने हरे रूमालसे आंखोंको पोंछा और वहीं मैदानमें बैठ गया। उसका दिल भी जैसे बैठने लगा था। वह अपने-आप बेचैन-सा हो चला था।

सिगरेट-केसमेंसे एक सिगरेट निकाला और उसे सुलगा-कर धुएंके गुब्बारे वह छोड़ने लगा। इस धुएंकी बनने-मिटनेवाली रुपहली रेखाओंके व्यूहको वह देख रहा था और सोच रहा था—दुनिया भी तो इसी तरहकी रुपहली रेखाओंका व्यूह-मात्र है; किन्तु मृत्यु-शय्यापर पड़ा मायावी मानव, जिस प्रकार अपने जीवनकी बरबादीका खयाल तक नहीं करता, अथवा यदि करता भी है, तो उसे अपने मन तक ही सीमित रखकर किसीपर प्रकट नहीं करता, उसी प्रकार आज मेरा दिल भी प्रकृतिसे यह कितनी थोथी बात कर बैठा—'दीन-दुखियां और पीड़ितोंके साथ भी यह दया नहीं कर सकती।' वह करे क्यों? और यदि ऐसा करने लगे, तो उसके तारतम्यमें समरसताकी जो अलौकिक झांकी दिखती है, वह कैसे दीखे?

यों, माधव कभी इतना गम्भीर नहीं रहा। कभी उसने ऐसी बातोंको अपने पास नहीं फटकने दिया; किन्तु कल, जब अलकाके साथ चाय पीते हुए उसने यह सुना कि अलकाके पिता माधवकी राष्ट्रीय भावनाओंकी कद्र तो जरूर करते हैं; किन्तु उसकी इन भावनाओंका और ज्वालाओंका साथ देनेमें अपनी हानि समझते हैं; तब उसे एक ऐसी वेदनाने आ घेरा कि अब तक वह उसीकी कायासे अपनेको ढंका हुआ पा रहा है और प्रयत्न करनेपर भी शायद उससे छुटकारा नहीं पा रहा है। वह इसलिए दुखी नहीं कि अलकाको वह अब पा न सकेगा; अलकाके साथ अपने जीवनका सुख-स्वप्न सजानेवाला मादक संसार बसा न सकेगा; प्रत्युत इसलिए क्लान्त हो उठा कि आखिर ये सयाने और शिक्षित कहे जानेवाले, जब राष्ट्रीय भावनाओं-की होली अपने दिलोंमें जलाते हुए चलनेवाले युवकोंका दिल इस प्रकार तोड़ बैठते हैं, तब हमारा देश कभी आजाद भी हो सकेगा या नहीं—यह एक पहेली ही रह जायेगी।

अलकाके पिताने शायद यह कभी सोचा भी न होगा कि राष्ट्रीयताके जलते हुए अग्नि-स्फुलिङ्गोंको अपनी छाती-पर चिपकाये हुए चलनेवालेके लिए यों दुनियाका कोई भी मोह नहीं हो सकता। फिर एक अलका—एक नारी—का स्नेह कहांतक उसे कर्तव्य-च्युत कर सकेगा!

यह बात दूसरी है कि जीवन-नैया इतना-सा बवण्डर देखकर ही डगमग-डगमग हो उठी; किन्तु इसका एक कारण है। जिसने जीवनमें कभी झंझावातका सामना नहीं किया; बवण्डरमें जो कभी फंसा नहीं और तूफानसे टक्कर लेनेका जिसे कभी अवसर हाथ लगा नहीं, वह एक हल्के-से बव-ण्डरको देखकर डगमगा न जाये, तो और क्या हो? परन्तु इस बवण्डरमें डगमग-डगमग होनेवाली यह नैया जलमग्न न होकर आगे भी तो बढ़ सकती है; इन अशान्त क्षणोंको पारकर पुनः शान्ति देख सकती है और अपनी मञ्जिल पूरी कर सकती है।

(३)

घर् र् र् र्, घर् र् र् र्

माधवका ध्यान जैसे भङ्ग हो गया। घूमकर पथकी ओर आंख उठायी, तो देखा कि एक मोटर उसीकी ओर दौड़ती आ रही है।

अब तक पौ फट चुकी थी। प्राची दिशामें लाल-लाल प्रकाश फैल चुका था। अवनीका आंचल मोतियों-जैसे ओस-कणोंसे चमचमा रहा था। धनवानोंके लिए यह सुखद बेला थी। गरम कपड़े पहनकर मोटरमें आराम-से बैठकर हवाखोरी करनेमें उन्हें अपूर्व सुख मिलता। मोटर आयी और सन् नन्न् करती हुई आगे बढ़ गयी; किन्तु एक फर्लाङ्ग भी आगे न पहुंची होगी कि उसकी रफ्तार धीमी पड़ गयी और घूमकर वह पुनः वापस आती हुई दिखी—माधवकी ओर।

माधव अभी तक निश्चल था। दूर्वाके मैदानमें ही बैठा हुआ वह यह सब देख रहा था। मोटर जब ठीक उसके सामने आकर पथपर खड़ी हो गयी, तो माधव उठ खड़ा हुआ और वह पहचान गया कि यह अलकाकी मोटर है।

मोटरसे उतरकर अलका माधवकी ओर बढ़ी और माधव अलकाकी ओर। किन्तु माधव दस-पांच कदम चलकर एकाएक रुक गया—जाने क्या सोचकर। लेकिन अलका-

की गतिमें इससे कोई रुकावट न आयी ; शायद उसके मनमें किसी तरहकी हिचकिचाहट या शङ्का भी नहीं आयी। वह दूरसे ही बोली—'हल्लो, माधव बाबू!'

माधव अब भी मौन था। वह कुछ न बोला। अलकाने एक सेकण्ड रुककर कहा—'ओह, भूल गयी।' और घूमकर फिर मोटरकी तरफ दौड़ पड़ी।

माधवने जैसे अब अपनी भूल महसूस की। सारी निश्चलता त्यागकर उसकी जबान एकदम फट पड़ी—'क्या भूल गयीं, अलका?'

परन्तु अलका अब तक दूर पहुंच चुकी थी। उसने मोटर-ड्राइवरसे कहा—'गाड़ी घर ले जाओ।'

'और आप?' ड्राइवरने पूछा।

'कह दिया न, गाड़ी ले जाओ। मैं पैदल ही चली आऊंगी।'

'बाबूजी नाराज जो होंगे?'

'होंगे तो हुआ करें! कह देना, माधव बाबू मिल गये थे—घूमते हुए। उन्हींके साथ मैं आ जाऊंगी!'

घर्‌र्‌र्‌र् घर्‌र्‌र्‌र् आवाज हुई और मोटर चली गयी।

माधव यह देखकर और भी चकराया। अब वह स्वयं अलकाकी ओर दौड़ा और पास आकर बोला—'अलका, तुम तो एक अजीबोगरीब पहेली हो!'

'क्यों भला?' अलकाने कहा—'और तुम क्या कुछ कम पहेली हो!'

'यह खूब!' माधव हंस पड़ा—'तो दोनों पहेलियां मिलकर एक विकट उलझन हो गयीं।'

दोनों खिलखिलाकर हंस पड़े। माधवके एक हाथमें अब भी हरा रूमाल लहरा रहा था।

(४)

'तो कल आपको बड़ी निराशा हुई, माधव बाबू!' अलकाने कहा—'माता-पिता हमारे शुभचिन्तक जो ठहरे!'

'बस करो, अलका!' माधवने गम्भीर होते हुए कहा—"कलसे लेकर अबतक मैं जिस बातसे परेशान हूं, उसे छेड़कर मुझे और अधिक परेशान करनेकी कोशिश मत करो।'

'समझी। वही तो मैंने भी कह दिया। कोई नयी बात तो है नहीं। और आपको तो निराश होनेकी भी कोई जरूरत नहीं। मैं तो आपके साथ हूं।'

'हां, मेरे साथ तो तुम हो! यह देखो, इस पथपर, इस प्रभात-कालीन वेलामें, मेरे साथ तुम, हंसकी जोड़ीको भी मात करती हुई विचर रही हो। पर मैं पूछता हूं, अलका, तुम्हारे पिताका यह बेहूदा बर्ताव मेरे साथ हुआ क्यों?'

'मैंने कहा न, माता-पिता हम लोगोंके शुभचिन्तक जो ठहरे! पिताजीने तुम्हारे हाथों मुझे सौंप देनेमें शायद मेरा कल्याण नहीं समझा। इसीलिए यह कह डाला। और तो कोई बात ही नहीं है।'

'अलका! तुमसे नहीं, अब तुम्हारे दिलसे मैं पूछता हूं कि तुम्हारे पिताने मुझे ऐसा टका-सा जवाब देकर, मेरे और शायद तुम्हारे भी सारे सुख-स्वप्नोंको छिन्न-भिन्न कर कौन-सा शुभचिन्तन किया है?'

'यह मैं जानती हूं, माधव बाबू!' अलकाने एक ठण्डी सांस लेते हुए कहा—'किन्तु पिताकी इच्छाके सामने सन्तानका चारा ही क्या? सन्तानकी इच्छा और अनिच्छाका प्रश्न ही क्या? वे जो करते हैं, सब ठीक और सन्तान जो करना चाहती है, वह सब गलत!'

'ठीक है, अलका! तुम दुरुस्त कह रही हो' माधवने अपना हृदय सम्भालते हुए कहा—'तुम जहां रहो, सुखी रहो। सिर्फ एक बात और कहना चाहता हूं। कहूं?'

'यह भी कोई पूछनेकी बात है?'

'हम जिसे चाहकर भी न पा सके, उसे अपनी कोई तुच्छ भेंट देनेका भी हमें कोई अधिकार है या नहीं?'

'क्यों नहीं? एक बार नहीं, सौ बार। और तुम्हारी इन बातोंको मैं बखूबी समझ रही हूं, माधव बाबू। किन्तु इस सम्बन्धमें एक बात मैं भी पूछूंगी?'

'कह डालो, अलका! क्या बात है?'

'यह कि जिसे चाहकर भी हम न पा सकें और वह कोई भेंट हमें देना चाहे, तो क्या हम अपने इच्छानुसार उससे किसी खास चीजकी मांग भी कर सकते हैं या नहीं?'

'नहीं अलका! यह नहीं होना चाहिए। भेंट देनेवालेकी इच्छापर है। वह जो कुछ दे, वही लेकर सन्तोष करना चाहिए।'

'तो मैं ऐसा न करूंगी।'

'ओह! तुम्हें कुछ बुरा मालूम हुआ, अलका। मैं तुम्हारी बात नहीं करता। तुम तो जो चाहो, मुझसे ले सकती हो।'

'तुम्हें गलतफहमी हो गयी, माधव बाबू!' अलकाने हंसते हुए कहा—'मेरा मतलब यह नहीं था कि मैं तुमसे कोई खास चीज नहीं मांगूंगी। यों तो मैं तुमसे ऐसी चीज पा सकी हूं, जो हर किसीको नहीं मिल सकती; फिर भी

इतना तो मैं अधिकार समझती हूं तुमपर कि जो चाहूं मांग सकती हूं ।'

'फिर तुमने यह क्यों कहा था, अलका, कि तुम ऐसा न करोगी ।'

'इसलिए कि जो ऐसा समझकर सन्तोषकर लेते हों, कर लें ; पर मैं ऐसा नहीं कर सकती ।'

'ओह ! तब तो मुझे सचमुच गलतफहमी हो गयी थी ।' और तब दोनों खिलखिलाकर हंस पड़े ।

'अच्छा, माधव बाबू ! तुम्हारा हरा रूमाल ही मैं चाहती हूं ! दे सकोगे ? मैं जानती हूं, शायद इसे देनेमें तुम्हें कष्ट होगा ; पर मैं इसे लेकर ही मानूंगी ।'

'कष्ट होगा, अलका ! यह तुम कह क्या रही हो ।' माधवने एक सांस लेते हुए कहा—'कोई ऐसी चीज नहीं, जिसे तुम्हें देकर मैं प्रसन्नताका अनुभव न करूं ।' और माधवने वह हरा रूमाल अलकाको सौंप दिया ।

(८)

अलकाके विवाहकी तैयारियां हो रही थीं । शहनाई बज रही थी और अलकाके घरमें हंसी-खुशीके फव्वारे छूट रहे थे । किन्तु स्वयं अलकाके हृदयमें कितनी वेदना, कितनी उदासीनता और कितनी पीड़ा हो रही थी, इसे शायद कोई नहीं जानता था और यदि किसीने जाना भी, तो उसके निराकरणकी कोई परवाह नहीं की जा रही थी ।

अलकाकी आंखोंके सामने आज माधवकी स्मृतियां चलचित्रकी तरह नाच रही थीं । आज यदि माधव उसके पास होता, तो सम्भव है, उसके सामने सिसक-सिसककर वह अपना यह दर्द कुछ हल्का भी कर पाती, और माधव भी तो अपनी सान्त्वनाकी बौछारोंसे उसे इतना दुःखी कभी न होने देता । परन्तु माधव तो उसी दिनसे इस शहर-को छोड़, पता नहीं, कहां चला गया, जिस दिन अलकाको उसने अपना हरा रूमाल भेंट किया था ।

टप्—टप्—टप्—

अलकाकी आंखोंसे आज इस मङ्गल वेलामें भी आंसु-ओंकी बूंदें टपक रही थीं । उसके दोनों हाथोंके नाखून मेंहदीकी लालीसे सुर्ख हो रहे थे और गोरे कपोल रोती हुई आंखोंकी ललायी लेकर लुढ़कते हुए अश्रु-कणोंसे लाल हो रहे थे । उसके दोनों हाथोंमें दो रूमाल थे—एकमें सफेद और दूसरेमें हरा । हरे रूमालको देख-देखकर वह रोती जाती और सफेद रूमालसे आंसुओंको पोंछती जाती थी । देखनेवाले यह सब देखते, लेकिन यह कोई न समझ पाता कि इसमें रहस्य क्या है । हरा रूमाल क्या बला है और इस मङ्गल वेलामें भी यह अलका रो क्यों रही है ?

ठीक पाणि-ग्रहणके समय भी अलकाके हाथोंमें हरा रूमाल लहरा रहा था । रातके नौ बजेका समय था । रेडियो खुला हुआ था । देशके ताजेसे ताजे समाचार सुनाये जा रहे थे । अन्य समाचारोंके साथ रेडियोपर सुनायी पड़ा—माधव बाबू, एम० ए० के एक छात्र, नागपुरमें आज दोपहरको झण्डा-सत्याग्रहके सिलसिलेमें गिरफ्तार हो गये हैं ।

यह सुनते ही अलका शायद अपने शीलको भी भूल बैठी और अचानक उसके मुखसे निकल पड़ा—'माधव बाबू !' और उसी क्षण उसे स्वयंपर जैसे एक खीझ हो उठी कि वह यह क्या कह बैठी, और तभी वह एकदम चुप हो रही—बिलकुल चुप । उसे मूर्च्छा आ गयी । वह वहीं गिर पड़ी ।

अलकाके हाथमें अब भी माधवका दिया हुआ वही हरा रूमाल था—आंसुओंसे तर-बतर, जिसके एक कोनेपर लिखा था 'माधव' ; किन्तु यह कौन कह सकता है कि अलकाके पिताके विचारोंमें, इतना सब देखकर भी कोई परिवर्तन हो सका या नहीं !

छोटा नागपुरके ग्राम्यगीत

श्री अवधेश कुमार

छोटा नागपुरके आदिनिवासी संथाल हैं। इनमें उरांव और मुण्डा, अन्य सन्थालोंसे अपेक्षाकृत सभ्य जातियां हैं। इन्होंने जङ्गल-सभ्यताको उन्नतिके शिखरपर पहुंचाया है। इनके चरित्र, आचार-विचार, शिष्टाचारके अपने शास्त्र हैं, जो आर्य-जातिके आचार-शास्त्रोंसे किसी भी मात्रामें कम नहीं हैं। शारीरिक स्वच्छता, घरोंकी सफाई, व्यवहारमें सचाई, निष्कपटता, विवाहिता स्त्रियोंमें कृतघ्नताका पूर्णरूपसे अभाव, अतिथि-सेवा आदि उनकी जङ्गल-सभ्यताकी कुछ विशिष्टतायें हैं। उरांव और मुण्डोंने हिन्दुस्तानको अपना घर, आर्योंके मध्य-एशिया छोड़नेके बहुत पहले ही, बना लिया था। प्राचीन अनुसन्धानसे पता चलता है कि आरम्भमें उनका निवास-स्थान काश्मीरमें था। यह हो सकता है कि उन्होंने भी भारतमें बोलन घाटीसे प्रवेश किया हो और इसीलिए घाटीका नाम 'बोलन' (प्रवेशद्वार) और सिन्धुका नाम 'सिंगदा' (विपुल-जल) रखा। हिन्द् काली जातियोंका स्थान 'हिन्दे' हो सकता है, जिसका मुण्डारीमें अर्थ है काला रङ्ग। हिमालय उनका 'मारङ्ग-बुरु' था। 'मारङ्ग' का अर्थ है बड़ा (महान) और 'बुरु' उनके यहां पर्वत और देवता दोनोंके लिए व्यवहृत होता है। अतः कैलाश पर्वतके देवता भगवान शिव उनके भी देवता हैं। गङ्गा-यमुनाका रूपान्तर मुण्डारीमें गङ्गी और जौनी हैं; अभी भी दो यमज लड़कियोंका नाम मुण्डा लोग गङ्गी, जौनी और दो यमज लड़कोंका नाम 'रामे, लछु' अर्थात राम-लक्ष्मण रखते हैं। मुण्डा शब्दका अर्थ आजकल जातिविशेष लगाया जाता है, परन्तु इसका वास्तविक अर्थ है मुखिया, मालिक या प्रधान। और सचमुच आर्योंके सम्मुख हथियार डालनेके पूर्व वे मालिक थे और उन्होंने हथियार इसलिए नहीं रखा कि वे भगा दिये गये, बल्कि अपनी सभ्यता और संस्कृतिके रक्षार्थ और बाहरी जातियोंसे अलग रहनेके लिए। किन्तु भाईके नाते मुण्डा, उरांव और खड़िया (इस प्रदेशके आदि निवासी) क्रमशः जेठे, मंझले और छोटे भाई समझे जाते हैं। जहां तक जातिसे सम्बन्ध है, मुण्डा भिन्न स्वभावकी बंजारी कौम है।

प्राचीन हिन्दू-धर्म-पुस्तकोंसे ज्ञात होता है कि आर्यों और झारखण्ड (छोटा नागपुर) के आदिम निवासियोंमें लड़ाई हुई थी। अभी भी इस प्रदेशके आदिम निवासियोंका कहना है कि वे जल्द ही परास्त न हो सके थे, क्योंकि बाण और धनुष उनके राष्ट्रीय हथियार थे, जो अभी भी हैं। इन शब्दोंका मुण्डारी (मुण्डा लोगोंकी भाषा) में वही अर्थ है, जो संस्कृतमें है। उनकी इस प्राचीन जङ्गल-सभ्यताका एक दूसरा प्रशंसनीय भाग उनकी कवितामें पाया जाता है। इन आदिम निवासियोंके प्राचीन गीतोंमें कोई भी वस्तु कुत्सित और निकृष्ट श्रेणीकी नहीं है। ये गीत कलात्मकरूपसे उरांव और मुण्डाओंके निर्दोष रस-ज्ञान एवं रुचिको अभिव्यक्त करते हैं और उनकी कल्पनाका भी दिग्दर्शन कराते हैं।

छोटा नागपुरके ग्राम्यगीत, उनके रचयिताओंके हृदयके उद्गार हैं। वे पिंगल और अलंकार शास्त्रके नियमोंके बन्धनसे सर्वथा मुक्त होते हैं, पर रस और माधुर्यसे ओत-प्रोत होते हैं। ये गीत साधारणतया नाच-गानके समय गाये जाते हैं और इनकी विशेषता लय और आलाप तथा ताल और स्वर मिलानेकी सुन्दरतामें है। संथालोंके जीवनका मुख्य अङ्ग है नाच-गान। वर्षके प्रायः प्रत्येक महीनेमें इनका एक-न-एक पर्व होता है और गीतोंके द्वारा ही वे अपनी मानसिक इच्छाओं, विचारों और उद्गारोंको व्यक्त करते हैं। इनके ग्राम्यगीतोंका अध्ययन अखरामें गाये जानेवाले गीतोंसे किया जा सकता है, जहांपर स्त्री-पुरुष एक साथ मिलकर नाच-गान करते हैं। यहीं नहीं, विवाहागारमें और 'धूमकुरिया' में भी जहां भोजनोपरान्त एक ग्रामकी सभी युवतियां इकट्ठी होती हैं और गीत गाती हैं, इनके गीतोंका अध्ययन किया जा सकता है। खेतोंमें काम करते समय भी युवतियोंके मुखसे अत्यन्त सुरीली तानसे गीत निकल पड़ते हैं और गर्मीके दिनोंमें, विशेषतः जब लड़कियां गोबर खोजने निकलती हैं तब वे उस समयके वातावरणसे प्रभावित हो सुरीले गीत गाती हैं। उनके गानेके और नाचके समय आगे बढ़ने, झुकने, खड़े होने और पीछे हटनेके विचित्र ढङ्ग होते हैं। ये आदि निवासी तो अधिकतर कृषक हैं, अतः इन्हें दिन-भरकी मेहनत-मजदूरीके बाद मनोरञ्जनकी विशेष आवश्यकता पड़ती है। करीब ८ बजे रात तक सभी खा-पीकर निश्चिन्त हो जाते हैं और उसके

एक घण्टे बाद अखरापर आकर सब जुट जाते हैं। नाच-गानके समय वे उमङ्गमें चूर हो, अपनी सुधि तक भूल जाते हैं। सिर्फ पर्वमें जिनकी रुचि रहती है, वे हंड़िया (उनकी एक प्रकारकी मदिरा) का सेवन करते हैं और नशेमें अपनी गरीबीका ख्याल भूलकर, हर्षपूर्ण हो, अपने हृदयके उद्गार प्रकट करते हैं, जो कागजपर अङ्कितकर सदाके लिए नहीं रखे जा सकते। इनके गीतोंमें शब्दोंका तारतम्य, मुख्यतः स्वर-उत्पादन करनेके लिए होता है। और ये गीत ऐसे ही कवित्वमय उरांव और मुण्डा भाषाके शब्दोंसे बनते हैं, जिससे वे कविताके साथ सङ्गीतमय भी हो जाते हैं।

छोटा नागपुरके ग्राम्यगीत सङ्गीत, नाच और लयसे अपनेमें तिगुनी शक्ति प्राप्त कर लेते हैं। जब मुण्डा और उरांवके लड़के और लड़कियां एक साथ नाचते हैं, वे अपने-को कवित्वमयी सरितामें विभोर कर देते हैं और उनके शब्द और नृत्यकी गति सब एक साथ मिलकर कवित्व-मय वातावरण उत्पन्न कर देते हैं। इनके अखरोंपर नाच-गान देखने और सुननेवाला कोई भी व्यक्ति अपने हृदयकी उमड़ती हुई भावनाओंको रोक न सकेगा। अखरामें इनके बाजे होते हैं, मान्दर, नगाड़ा, ढोल और बण्ठ। विवाहित पुरुष शायद ही नाचमें सम्मिलित होते हैं, विवाहिता स्त्रियां तो कभी नहीं। उनके ऊपर उस समय चिन्ता और भरण-पोषणके अपने ही सवाल रहते हैं और रहता है दुःख और शोक। हां, एकान्तमें ये आत्म-ज्ञानके समयमें गीतोंका पुनर्गान करती हैं, जब कि उनका हृदय दुखसे छलनी हो जाता है अथवा दुख और शोकके आंसू उनके गालोंको भिगो देते हैं।

ये गीत इन आदिम निवासियोंके साधारण और सादगीसे पूर्ण जीवनके साथ आह्लाद और दुखसे भरे रहते हैं। इन गीतोंमें प्रेम एक प्रमुख विषय रहता है, क्योंकि प्रत्येक उरांव और मुण्डा, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री, जिन्दगीमें कमसे कम एक बारके लिए भी निश्चयही जवानी-की तरङ्गोंमें हिलोरें लेता है। उनके गीत युवावस्थाके आनन्द तथा प्रेम और बीतती हुई युवावस्थाके शोकके गीत होते हैं। एक ही ग्राममें बढ़ते हुए लड़के और लड़कियोंके बीचमें स्वभावतः प्रेमका उद्भव होता है, मेल बढ़ता है और वे आपसमें घुल-मिल जाते हैं, जिसकी स्मृति जीवन-पर्यन्त ताजी हो बनी रहती है। विवाहके बाद ही युवतीका सारा प्रेम अपने पतिपर केन्द्रित हो जाता है। उनमें कोई पर्दा-प्रथा या किसी भी तरहकी रोक-थाम तो है ही नहीं—इसलिए विवाहके बाद भी स्त्री-पुरुष बिना सङ्कोचके एक दूसरेसे मिलते रहते हैं। जब लड़कियां ब्याह दी जाती हैं और वे सुदूर ग्रामोंमें चली जाती हैं, तब वे पुनः अखरापर नहीं आतीं, क्योंकि यह निश्चित है कि अखरामें गुजरे हुए दिनोंकी सुख मधुर स्मृति एक बार फिरसे जाग उठेगी। किन्तु इसके अपवाद भी हैं। विवाहिता स्त्रियां यदि चिन्ता-ग्रस्त नहीं, तो अखरामें मनोरञ्जनकर उमङ्गका सुख-पान करती हैं। कभी-कभी वृद्ध स्त्री-पुरुष भी शामिल होते हैं, परन्तु वृद्धोंकी कतार युवक-युवतियोंसे पृथक रहती है, मगर इससे यह अनुमान करना ठीक न होगा कि युवक, युवतियोंमें सच्चरित्रताका अभाव रहता है। ये गीत अधि-कांश जवानीके दिनोंके सङ्गी-साथियोंके वियोग तथा माता-पिता और भाई-बहिनोंके वियोगसे उत्पन्न आन्तरिक वेदना और पीड़ासे भरे रहते हैं।

पारे ना मांया अम्बय बिसाय आयो,
पारे ना मांया जियारै
सिलागामी ससुरार लोदो निपारेता आयो,
नेरा नेरा साल......ई।
(उरांव)

अर्थात् (एक लड़की अपनी मांसे कह रही है)—मां, पहाड़ी गांवोंमें मेरी शादी न कर, क्योंकि पहाड़के ऊपर मेरा जी लगा रहता है। 'सिलागामी' (गांव) में मेरी ससुराल है, उसी जगह लोदो नामक पर्वत है, जिसे देखकर मेरा जी धड़कता है।

अथवा—पोसो बरी पोसको आयो एंगन उइया पुली-की......हरे आयो एंगन......।

उद्दीम डाड़ा हरदी, उद्दीम रिया सिन्दरी......हरे आयो ननरचाली नंजकी......हरे आयो ननरबली नंजकी (उरांव)

अर्थात् (एक विवाहित युवती अपने माता-पिताको मनमें सम्बोधन करती हुई कहती है)—"मां-बापू! तुम लोगोंने मेरा पालन-पोषण तो किया, लेकिन अपने साथ नहीं रख सके। हल्दीके एक टुकड़े, एवं एक बूंद तेलके द्वारा मुझे दूसरे घरका एक व्यक्ति बना डाला।"

भाग्य और समयने इन आदि वासियोंकी जिस हीन और श्रमसे पूर्ण, उदासीन और आनन्द रहित जीवन व्यतीत करनेको बाध्य किया है, उसमें यदि कहीं भी प्रकाशकी क्षीण रेखा अन्धकारमय बादलोंके बीचमें है, तो वह है प्रकृति द्वारा इन जातियोंको 'यौवन'की अनुपम, अटूट देन, जिसे

कोई भी जाति उनसे खींचकर नहीं ले सकती। वन्य-फूल और अरण्य-वृक्षोंके बीचमें सोतों, पहाड़ों तथा खेतोंके पास, हल जोतते, फसल काटते और विवाहके समयमें उरांव और मुण्डा लड़कियां और लड़के, सभी जवानीमें एक बार उमङ्ग, ताजगी और जीवन-शक्ति-संचारसे पूर्ण और रसमय होकर विकसित हो जाते हैं। यह यौवनकी देन प्रकृतिने, इन्हें बड़ी उदारतासे दी है। जिन्दगीकी यह रङ्गीनी, और मनकी तरंगें इनके गीतोंमें उद्वेलित होती रहती हैं। वन्य-पुष्प, सोते, पहाड़, जिनसे वे युवावस्थामें ही परिचित हो जाते हैं, उनके गीतोंमें मूर्तिकी तरह स्थापित होते हैं, ताकि जब सामयिक अवधि उन्हें दृष्टिसे हटा ले, तो वे फिरसे उसका आनन्द एकान्त अवस्थामें भी उठा सकें।

इनके ग्राम्यगीतोंके कई उदाहरण दिये जा सकते हैं, पर जो आनन्द उनको गाते समय मिलता है, वह उन्हें पढ़नेमें नहीं मिल सकेगा। इन गीतोंमें युवतियां कभी भी प्रेमिका, प्रेयसी, प्राण प्यारी, प्रियतमेके नामसे सम्बोधित नहीं की जाती हैं, बल्कि वे किसी फूलके मिस या साथी और समान वयके होनेसे 'गुड़ी' कहकर पुकारी जाती हैं—

ईवा बा पिरी दो, छरियम, चिमिनांग, सङ्गिना छरियम
मुरुदबा, बेरीदो, छुरियम चिमिनांग जिलिंग। (मुण्डारी)

अर्थात् ईवा (जङ्गलमें खिलनेवाला एक प्रकारका लाल फूल), पठार अथवा छरियम (फूलोंका रस चूसनेवाला पक्षी) कितनी दूर है? या छरियम! मुरुद (पलाश) फूलसे परिपूर्ण नीची जमीन कहां है? इस गीतमें एक युवती अपने प्रेमीको 'छरियम' (पक्षी) के नामसे पुकारती है। छरियम ईवा और मुरुद फूलोंके रसका प्रेमी होता है, उसे ऐसा प्रतीत होता है कि वह पठार और निचली जमीनकी ओर उन फूलोंको ढूंढ़ने जा रहा है, जहां वैसे ही फूल खिलते हैं। परन्तु इसका कवित्वमय भाव यह है कि प्रेमी अपनी प्रेयसीको घर ले जा रहा है। करुणा और मनोभावोंकी व्यग्रता पद्यके चरणोंकी थरथराती आवाजसे निकल रही है, क्योंकि उसका सङ्गीत हृदयके अन्तरतम प्रदेशको स्पर्श कर देता है और उसके बाद भी एक टीस छोड़ देता है।

गुरुजनोंके सामने अशिष्ट भाषाका प्रयोग ये कभी नहीं करते और इसलिए इनके गीतोंकी पवित्रता इस बातकी साक्षी है कि वे सभी गीत माता और पिताके सम्मुख भी गाये जा सकते हैं। इन ग्राम्यगीतोंमें केवल मनुष्योंके मानसिक उद्गारोंकी अभिव्यक्ति नहीं रहती, बल्कि उनकी कला और उद्योग-धन्धोंका भी वर्णन उनमें रहता है। उरांव और मुण्डा प्रकृतिकी सन्तानें हैं, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। इन जातियोंके पुरुष अधिकतर लाल और सफेद मूंगों और पोतकी माला गलेमें डालते हैं, कांसेकी हंसुली पहनते हैं और बालोंमें देशी कंघी खोंसते हैं। स्त्रियां अपने बालोंमें मोर-पंख, फूल और हरी-हरी कोमल पत्तियां धारण करती हैं। उनके बालोंमें कभी-कभी छोटे-छोटे आईने भी रहते हैं। वे भी पुरुषोंकी भांति पोतकी माला और हंसुली, कलाइयोंमें मोटे-मोटे कांसेके बाले, जिन्हें वे लोग 'मठिया' कहती हैं और पैरोंमें कांसेके बने गहने, जिन्हें वे 'झोंटियां' कहती हैं, पहनती हैं और इस प्रकार सज-धज कर नाचने और गानेके लिए अखरापर निकला करती हैं।

छोटा नागपुर प्रकृतिकी गोदमें बसा हुआ है। एक ओर यदि हहराती नदियां हैं, तो दूसरी ओर पर्वत हैं। एक ओर अरण्योंकी पंक्ति है, तो दूसरी ओर प्रपातोंका स्वर मनको मुग्ध कर देता है। प्रकृति सदा कवित्व-शक्तिका एक महान उत्पादक रही है। छोटा नागपुरके ग्राम्यगीतोंमें अधिकतर प्रकृतिका उल्लेख किसी-न-किसी रूपमें अवश्य रहता है। किन्हीं गीतोंमें भावोंके आधार स्वरूप, किन्हींमें स्वयं अपनी सुन्दरताके कारण और किन्हींमें मनुष्योंको कर्मशील एवं जाग्रत करनेके लिए प्रकृति खड़ी है। इन गीतोंमें छोटानागपुरके फूलों, पक्षियों, कृषि-जीवन आदिका बड़ा सुन्दर वर्णन रहता है। उदाहरणार्थ—

उजारो डीहे लाली लाल सेरसों चरे लागल बनके हरिण।
हरिणके सिंघे दियरा बराय, दियानुपरे चंवरा डोलाय...दियानुपरे बेनवां डोलाय।

(मगही हिन्दी)

(अर्थात् उस उजाड़ गांवमें, लाल-लाल सरसों फूले हैं, जहां बनके हरिण चर रहे हैं। हरिणके सींगोंपर दीप जल रहे हैं, दीपके ऊपर चंवर डोल रहा है, दीपके ऊपर पंखा झला जा रहा है।)

अथवा—

पेलो चिचका पुंपन् भइया रे नेलागुटी जोगा वा......के।
इ पुंपन उचोई होले भइयारे जोड़ी राना लिखा ला...ओ।

(युवती कहती है—एक स्त्रीका उपहारमें दिया हुआ फूल ठीकसे रखना, यदि तुम इस फूलको रखोगे, तो मालूम होगा कि तुम्हारी प्रेमिका वही है।)

कृषि ही संथालोंकी मुख्य जीविका है और धानकी ही मुख्य खेती है और इसलिए जिस साल अधिक धानकी उपज

होती हैं, उस साल उनके हर्षका क्या पारावार ! अतः जैसे ही बादलोंकी गड़गड़ाहट सुनायी पड़ने लगती है और कुछ क्षण ही बाद जब खेत जलमय हो जाते हैं, उनका हर्ष उमड़ पड़ता है—

एसोका बरेखा बड़ी जोर, भींजे सोरे-सोर । एसोका...
रोपली हम रोपा धान, बदरी गरजे असमान, बनमें
नाचत मोर । एसोका...
खेते चढ़ि किसान ठाढ़, भरल नदीके देखे बाढ़,
अन-धन न होवे थोर । एसोका............(१)

(मगही)

(इस साल वर्षा काफी हुई, जिससे सारी देह भींग रही है। हमने रोपा धान रोपा, आसमानमें बादल गरज रहे हैं और बनमें मोर नाच रहा है। खेतपर किसान चढ़, कर भरी हुई नदीकी बाढ़ देख रहा है, अन्न और धन इस साल कम नहीं होंगे।)

नदियाके तीरे-तीरे देवरा हर जोते,
भवजी फूला लागे आंयला हो । भवजी...
दे होंगे भवजी फूला केसन गमके,
गङ्गा यमुना केर फूला हो । गङ्गा...(२)

(नदीके तटपर देवर हल चला रहा है और भाभी फूल तोड़ने गयी है। (देवर कहता है) भाभी, गङ्गा और यमुनाका फूल कैसा महकता है, (तोड़कर) दो तो ।

कहांसे उलहलें कारी बदरिया, कहांसे उलहलें कारीबदरिया
कहांसे बरीसल पानीके बूंदे-बूंद । राम कहांसे बरीसल...
पुरबसे उलहलें कारी बदरिया, पुरुबसे उलहलें कारी बदरिया,
पश्चिमसे बरीसल पानीके बूंदे-बूंद । राम पश्चिमसे बरीसल।३।

(किधरसे काले बादल आ रहे हैं और किधरसे पानीकी बूंदें बरसने लगीं। पूर्वसे काले बादल आ रहे हैं और पश्चिमसे पानीकी बूंदें बरस रही हैं।)

अथवा—

खेल खेन्दा कादै भट्टु बांधा पिन्डी,
पिन्डी कादै हो । बांधा पिन्डी...
अम्बाकला भाटु अम्बाकला भाटु नदी नरा
पीलीचा ला...गीरे । नदी नरा...(४)

(उरांव भाषा)

साली भाटु (उरांवमें जीजाका नाम) से कहती है—मान्दर (एक प्रकारका बाजा) खरीदने जा रहे हो, किन्तु मैं जानेसे मना करती हूं, क्योंकि रास्तेमें नदी भरी हुई है और पानी चमक रहा है।

फूलोंके प्रति आदिवासियोंका प्रेम होना स्वाभाविकसा है। जहांकी जमीनपर रङ्ग-बिरङ्गके फूल खिला करते हैं, वहांके रहनेवाले उनकी ओर कैसे न आकर्षित हों।

एन्दर पुंपन मेझरकी पेलो भाग जुगनी,
लेखा लाहसारकी बरा-बरा लागी रे।
हो भाग जुगनी......तीलई पुंपन् मेझरकी
पेलो भाग जुगनी......।१। (उरांव भाषा)

(एक युवती अपनी सखीसे पूछ रही है—तुम किस फूलको सिरमें खोंसे हुई हो, जिससे जुगनूकी तरह चमक रही हो। उसकी सखी कहती है, मैं तीलई फूल खोंसे हुई हूं।)

केकर अंगेना बेली-चमेली फुल, गोइयां रे बेली-चमेली फुल
महकल जाय। हो-हो तब गोइया रे बेली-चमेली......।
भला रजाके अंगेना बेली-चमेली फुल, गोइया रे......२।

(सखी, किसके आंगनमें बेली-चमेली फूल महक रहे है। राजाके आंगनमें बेली चमेली फूल महक रहे हैं)

मुण्डा और उरांव जातिके लोक-गीतोंमें जो भी गुण या अवगुण हों, ये उनकी भाषाकी अनोखी विचित्रताओं और उनकी संस्कृतिसे इस प्रकार बँधे हुए हैं कि हमें बाध्य होकर मानना पड़ेगा कि ये छोटा नागपुरके आदिवासियोंके दिमागकी ही उत्पत्ति हैं। ये कभी भी किसी दूसरी जातिसे उधार लिये हुए अथवा अनुकरण मात्र नहीं समझे जा सकते।

तकदीरकी बात

श्री सरयू पण्डा गौड़

यों मुझे किसीको छेड़ने अथवा किसीकी व्यक्तिगत बातें जाननेकी रुचि कभी नहीं हुई, मैं तो डाक्टर हूं, बहुत-से मरीज रोज मेरे पास आया-जाया करते हैं, मैं किस-किसके जीवनके उत्थान-पतनका लम्बा चिट्ठा सुनता फिरूं! फिर इससे अपना फायदा ही क्या, परन्तु मैं अपने इस नये मरीजके व्यक्तिगत जीवन जाननेके हेतु बहुत अधीर हो गया और बात भी ऐसी ही हो गयी। हमारे ये मरीज बड़े फटेहाल थे। वे कत्थई रङ्गका एक बड़ा खूबसूरत सूट, पर पैबन्दोंसे भरा, डासनका फुल-शू, मगर चिप्पियोंसे लदा, पहिने, कन्धेपर एक पांच-सात सालका बच्चा टांगे, रोज हमारे हास्पिटल आते थे। मरीज वे नहीं, उनका वह प्यारा बच्चा था। उसे कालाजारकी शिकायत थी और उस प्यारे बच्चेका फूल-सा मुंह कुम्हलाकर काला पड़ गया था। पसलियां बाहरको निकल आयी थीं। इस बच्चेकी सेहतके लिए वे बहुत व्याकुल थे और उचित भी था। पर इस फटेहाली व मुसीबतमें भी उनकी पर्सनालिटी दर्शनीय थी। यद्यपि उनका ललाट शिकनोंसे भर गया था, आंखें भीतरको धंस गयी थीं; तथापि उनके ललाटकी प्रशस्तता, नेत्रोंकी तेजस्विता और सारे शरीरकी सुघरता, एवं सुकुमारता कह रही थी, कभी उन्होंने भी सोनेके दिन देखे हैं। कभी उनका भी संसारमें शान-मान रहा है!

मैंने इन्हें बराबर देखा, ये बड़े गम्भीर, शान्त, निरीह तथा वितृष्ण रहे, मानो संसारकी किसी हलचल, किसी आकर्षणसे इन्हें कोई वास्ता, आवश्यकता नहीं। चुप, बच्चेको कन्धेपर लादे आते, चुप बेञ्चपर बैठ जाते और जब तक मैं खुद उनसे रोगीकी बाबत नहीं पूछता, वे बड़े धीरजसे चुप बैठे रहते और बोलते भी उतना ही, जितना मैं उनसे पूछता या जितना उन्हें हमसे बोलना चाहिये। ऐसा निरुद्वेग, धीर मनुष्य मैंने कम देखा है। उनकी इसी प्रकृतिने मुझे उनकी ओर ज्यादा मुखातिब व मुतवज्जह किया और मैं एक दिन खानगी बात पूछ ही बैठा—माफ करेंगे, आपका दौलतखाना तो यहीं होगा, क्या शगल है!

वे अपनी उसी सहज धीरतासे बोले—शगल!—शगल तो अपना कुछ भी नहीं।

मैं फिर साग्रहही बोला—फिर भी कुछ तो शगल!

वे जरा मुस्कराये और मजाकके लहजेमें बोले—अभी तो यही शगल है, इस बीमार बच्चेको आपकी खिदमततक लाना, फिर ढोकर डेरे ले जाना, इसका पथ्य तैयार करना और सारे दिन इसकी परिचर्यामें नधा रहना।

मैंने साश्चर्य पूछा—और बच्चेकी मां?

मेरे इस प्रश्नके उत्तरमें उन्होंने आसमानकी ओर उंगली उठायी।

मैं खिन्न-स्वरमें बोला—ओ, मर गयी! कब, कितने दिन हुए?

'जब यह बच्चा कुल दो वर्षका था, आजसे चार वर्ष पहले!'

'परिवारमें और कोई नहीं?'

'जी नहीं।'

'क्या इसके पहले आपका रहना बङ्गालमें रहा है, क्योंकि कालाजारका इधर प्रचार प्रायः एकदम नहीं है।'

'जी हां!'

'कहां रहते थे?'

'खास कलकत्ते, मटियाबुर्ज।'

'क्या शगल था?'

'शगल तो बहुत था, कार-बार, लिखायी-पढ़ायी।'

बादको उन्होंने बतलाया कि कलकत्तेमें उनके कई मकान थे, जिनसे उनकी खासी आय थी। मगर भाग्यके फेरसे वे सब मकान एक-एक कर उनके हाथसे निकल गये। उन्होंने यह भी बतलाया कि वे कलकत्ता मेडिकल कालेजके छात्र रह चुके हैं। थर्ड इयरके बाद कालेज छोड़ा।

मैंने कहा—आप मुझे माफ करेंगे, मैंने आपके साथ बड़ी बेअदबी की, अब तक आपसे अपरिचित रहा और आपका सम्मान न कर सका। आप वहांसे उठिये, आइये मेरी बगलमें, चेअरपर! अफसोस, मुझसे बड़ी भद्दी भूल हो गयी।

फिर मैंने उनका हाथ पकड़, अपने निकट कुर्सीपर बैठाया और नौकरको चाय लानेका हुक्म दिया। मैंने देखा, इस शरीफ शख्सकी आंखें हमारी हमदर्दीसे झुककर भर आयीं। उनके रोएं कृतज्ञताके भारसे संकुचित हो उठे। चाय पीनेके बाद मैंने निवेदन किया—शामका भोजन इस सेवकके घर हो, तो बड़ी कृपा!

वे बड़े लज्जित हो गये थे, उनसे विरोध करते न बना, मगर हां, उन्होंने इतना कहा—आपकी इतनी-सी ही दया क्या कम है ? फिर भी आपकी जो आज्ञा !

मैंने जिद की—शामको सेवामें मेरी कार जायेगी, पता बता दें ।

वे जरा हंसे—कार ! अच्छा, मैं तो खुद चला आता, पर आपकी जैसी इच्छा ! मानो इच्छा रखते हुए भी वे मेरी बातोंका विरोध नहीं कर रहे थे ।

सन्ध्याको भोजनोपरान्त मैंने पुनः इन सज्जनसे प्रार्थना की—आप माफ करेंगे, बात तो बेजा जरूर है, किसीके व्यक्तिगत जीवन-ज्ञानकी कुचेष्टा, हठ अथवा दुराग्रह ही कहिये, उचित नहीं । परन्तु मैं अपना पागलपन क्या कहूं, जाने क्यों, मुझे आपके सम्बन्धमें जाननेकी अधिकसे अधिक उत्सुकता ही नहीं, बड़ी व्याकुलता भी हो रही है ।

वे सज्जन जरा गम्भीर हास्यकर—शायद मेरे इस ओछेपनपर कि मुझे दूसरेका प्राइवेट जाननेकी खप्ती क्यों समायी है ?—बोले—यह आपकी कृपा है, जो मुझ-से एक नाचीजको नजदीकसे आप जानना चाहते हैं, मगर मैं आपको बता दूं, मेरे प्राइवेटमें न कोई रोमांस है, न कोई वैसी महत्वपूर्ण घटना, जो है, सब सादा-सादा ; आये दिन दुनियामें घटनेवाला ! खैर, मैं आप-से सहृदय सज्जनको अधीरता तथा व्याकुलताके नदमें डूबता-उतराता छोड़ना नहीं चाहता, अतः आप मेरी राम-कहानी सुन लें, परन्तु इसे कृपया अपने ही तक रखें ।

मैंने इन सज्जनको आश्वासन दिया और ये कुर्सीपर जमकर अपनी राम-कहानी सुनाने लगे :—

"सुनिये, हमारे जीवनका इतिहास यहींसे आरम्भ होता है । उन दिनों मैं कलकत्तेके 'मेडिकल कालेज' का स्टूडेण्ट था । पिताजी पटनेमें सदरआला थे और मांकी जिदसे बहुत छुटपनमें ही मेरी शादी कर चुके थे, चुनांचे मैं स्टूडेण्ट होता हुआ भी एक बीबीका खसम और एक बच्चेका बाप था । जब मैं थर्ड इयरमें गया, तो एकाएक एक दिन पिताजीके देहान्तका दुसह संवाद आया । मैं इस अप्रत्याशित आघातसे मर्माहत हो उठा, लेकिन सिवा सब्र बांधनेके दूसरा चारा ही क्या था । प्रायः एक लाख रुपये पिताजीकी कमाई व जायदादके मुझे मिले । मैं चाहता था, पढ़ाई छोड़कर देश चला जाऊं, मगर मेरी पत्नीने कहा—"थोड़े दिनके लिए पढ़ाई मत छोड़ो । परीक्षा पास कर लो और चलकर पटनेमें एक अच्छी-सी अपनी निजी डिस्पेन्सरी खोलो । जो होना था, वह तो हो ही गया ।"

"उनकी यह बात मुझे पसन्द आ गयी और कलकत्तेमें मैंने एक अच्छा मकान भाड़ेपर लेकर बीबी-बच्चोंको भी बुला लिया, क्योंकि अब मैं इन्हें किसपर पटने छोड़ता ! और अब मेरा परिवार भी यहीं तक सीमित था ।"

ये सज्जन मुझे देखते बोले—डाक्टर ! पिताजीकी मृत्युका दुख मुझे हुआ, पर उनके रुपयोंने यह दुख अधिक दिन न रहने दिया ! आप तो जानते हैं, आजके संसारमें रुपयोंकी कितनी बड़ी शक्ति है और इस शक्तिसे आदमी स्वर्ग भी पृथ्वीपर ला सकता है, अतः हमारे दिन बड़े चैन और मौजसे कटने लगे । न कोई फिक्र रही, न परेशानी । इन सफेद, पीले टुकड़ोंके अकबालसे सारे सुख मेरे घर पानी भरने लगे । दर्जनों दास-दासियां रखी गयीं । बाहर अनेक हित-मित्रोंके दल पैदा हो गये । ओह ! आजकी दुनियासे उस समयकी दुनिया कुछ और थी । उस समय यह सूखा संसार, निर्दय नियति अपने अणु-परिमाणमें मेरे लिए हर्ष और आनन्दका महासागर लिये खड़ी थी । जिधर आंखें उठतीं, स्वर्ग ही स्वर्ग दीख पड़ता ! ओफ, अब तो यह एक कहानी रह...... !

अतीतकी यादने इन सज्जनका हृदय कुरेद डाला । इनका धीर हृदय बच्चे-सा विह्वल हो उठा और रोकते-रोकते भी आंखोंमें पानी उतर आया । कुछेक क्षण मौन रहकर ये सज्जन फिर बोले—जिस मेडिकल कालेजमें मैं पढ़ रहा था, उसमें एक बूढ़ी ईसाइन नर्स रहती थी, जो मुझे बहुत प्यार करती थी और मैं भी दस-पांच रुपयेसे उसकी सदा सहायता कर दिया करता था । एक दिन उसने मुझसे कहा कि धर्मतल्लेमें—जहां साहबोंके क्वार्टर्स हैं, जमीनकी एक टुकड़ी "लीज" पर दी जा रही है, अगर मैं उस जमीनको लेकर, उसमें मकान बनाऊं, तो मुझे ढाई-तीन हजारकी मासिक आय हो । नर्सकी यह बात मुझे जंच गयी । पिताजीके रुपये पानेके बाद मैं इस चिन्तामें था कि मैं इन रुपयोंको किसी अच्छे-से चलते कारबारमें लगा दूं । मैंने अपनी स्त्रीसे नर्सका प्रस्ताव सुनाया और उन्होंने भी बड़ी प्रसन्नतासे अपनी सम्मति दी । सो साहेब ! मैंने दस हजार रुपये सलामी और चार सौ पचास रु० मासिक भाड़ापर वह जमीन "लीज" पर ले ली और आनन-फानन इङ्गलिश डिजाइनके कई 'क्वार्टर्स' तैयार करवा लिये । और मेरे ये मकान तुरन्त किरायेदारोंसे आबाद भी हो गये ।

प्रायः तीन हजार मासिककी आमदनी भी मुझे मकान-भाड़ेसे होने लगी और चूंकि, इस जमीनको खरीदनेसे लेकर मकान बनवाने व उसमें शीघ्र किरायेदार बसाने वगैरहके काममें मेरे कालेजकी उस बूढ़ी नर्स तथा उसके युवा पुत्र "जोजेफ" का पूरा हाथ था, इन मां बेटेने मेरी पूरी सहायता की। मैं भी अभी स्टूडेण्ट ही था, अतः मैंने इस नर्सके आभारसे मुक्त होने तथा अपनेको इस कार्यके अयोग्य समझकर नर्सके बड़े पुत्र मिस्टर जोजेफ-को अपना मैनेजर नियुक्त किया और जोजेफ बेचारा भी जी-जानसे लग गया। अब हमारा काम सुचारु रूपसे चलने लगा। मुझे लिखने-पढ़नेका काफी समय मिलने लगा।

"अब तो मेरा दिलो-दिमाग दूना हो गया। तीन हजार माहवारकी आमदनी कोई मामूली आमदनी न थी। एक फर्स्ट क्लास कार खरीदी गयी। कलकत्तेके नागरिकोंकी नामावलीमें मेरा भी नाम आने लगा। जल्से, पार्टियोंके निमन्त्रण मुझे मिलने लगे। सभा-सोसाइटियोंमें मेरी पूछ व मेरी रायकी कद्र होने लगी। भाई साहेब! लगातार तीन वर्ष तक मेरी तकदीर अपने तमाशोंके सुखद व मजेदार दृश्य मुझे दिखाती रही। चौथे वर्ष उसने करवट बदली। एक दिन शामको हम कपड़े बदल किसी जल्सेमें जानेको तैयार थे कि एक यक्ष्माका मरीज मेरे डेरेपर 'सुई' लेने आया। इस बेवक्तमें उस मरीजका आगमन तो मुझे बहुत खला, लेकिन अपने पेशा व फर्जके पशोपेशमें मुझे मजबूर होना पड़ा। वह अभागा मेरा पैर पकड़, रोता हुआ बोला—हुजूरका नाम व यश सुनकर आया हूं। आह, मेरे भगवान! बुखार और खांसीसे मर गया! मर गया रे, दादा! मर गया, सरकार!

"मैंने अपने नौकरसे 'सीरीञ्ज बाक्स' मंगवाया, और अपने उस दुर्भाग्यको 'सुई' देकर चलता बना। इस घटना-के तीसरे रोज मेरी स्त्रीको थोड़ा जाड़ा देकर ज्वर आया, सोचा, मलेरियाका आगमन है, इसे तुरत रोकना चाहिये, नहीं तो यह आफत कर देगा। मैंने अपनी स्त्रीको झट एक 'इंजेक्शन' दे दिया। और फिर क्या था, 'इंजेक्शन' के ठीक सातवें दिन, उनका मलेरिया प्राणहर्ता 'थायसिस' के रूपमें प्रकट हुआ। मैं बहुत घबराया, यह अनभ्र वज्रपात मुझपर क्यों हुआ! इन्हें 'थायसिस' कैसे और क्यों हो गया! अन्ततः बहुत सोचनेपर, मुझे उस दिनकी घटना याद आयी, जिस दिन वह अभागा यक्ष्माका मरीज मेरे पास आया था। मैंने सुई देकर मारे जल्दीके "नीडिल" धोया तक भी नहीं और उस दिन भी बिना 'नीडिल' धोये ही पत्नीको भी 'इंजेक्ट' कर दिया! डाक्टर! तुम घब-राओगे, 'मेडिकल कालेज' के 'थर्ड इयर' का एक सुदक्ष विद्यार्थी, डाक्टरी-कर्मकी इस अति साधारण-सी सावधानी-में भी चूक गया! बंडर! और मैं भी तुम्हारी इस घब-राहटको नतशिर मान लूंगा, वाकई सुई धोने-जैसे महज एक मामूली काममें चूक जाना, डाक्टर ही क्या, एक कम्पा-उण्डरके लिए भी परले सिरेकी मूर्खता है! पर, डाक्टर, तुम मानोगे? तकदीरकी बात भी एक बड़ी चीज होती है। रामचन्द्रजी मूर्ख नहीं थे, मगर मायामृगके पीछे दौड़ गये!

मैं इन सज्जनको आश्वासन देता, बोला—जरूर-जरूर, तकदीरकी बात भी एक बड़ी क्या, बहुत बड़ी चीज होती है, मैं इसे मानता हूं।

इन सज्जनने अपनी कहानी फिर शुरू की—"कलकत्ते-के बड़े-बड़े डाक्टरों, वैद्योंकी चिकित्सा शुरू हुई। एक जाता, तो दूसरा आता। दूसरा जाता तो, तीसरा, चौथा बुलाया जाता। दिलमें सब्र नहीं। जीमें चैन नहीं, केवल यही 'हाय-हाय' कि किसी प्रकार 'ये' अच्छी हो जायं! जो भी हित-मित्र, जिस किसी डाक्टर, वैद्यको बुलानेकी राय देते, झट हमारी 'कार' उन्हें लानेको दौड़ पड़ती। दवाकी शीशियों व बोतलोंसे तीन बड़ी-बड़ी आलमारियां ठसाठस भर गयीं। रोज वैद्य, डाक्टरोंकी 'फी', दवाके दाम व मोटरके तेलमें चार-पांच सौ रुपये पानीकी तरह खर्च होने लगे, किन्तु फिर भी हमारी स्त्री चङ्गी होती नहीं दिखी। दिन-दिन उनका बुखार व खांसी तरक्कीपर ही रही। छोटे बच्चेकी यह हालत कि वह मुझे छोड़नेको तैयार नहीं, जहां किसी दाई-नौकरके पास गया कि उसका रोना-चिल्लाना व सर पटकना शुरू हुआ। लाचार बच्चेको गोदमें ले लेता। अब दिन-रात बच्चा कन्धेपर सवार और मैं पत्नीके पलङ्गके पायताने बैठा, हाथोंमें दवाकी शीशियां लिये बेजार! उफ्! क्या वक्त था! न कोई मेरे दर्दका साझी-दार व मददगार था, न दिलमें सब्रो-करार ही था। आप रोता व आप आंसू पोंछ लेता। खुद घबराता व खुद ही ढाढ़स बांध लेता। और यह सच है, इस विपत्तिने ही मुझे साहसी, निर्भय बनाया और इस मोहनी दुनियाका सच्चा रूप दिखाया। खैर—

इधर तो मैं अपनी इस व्याकुलतामें मरणासन्न हो रहा था, उधर वे नर्स-पुत्र, हमारे मैनेजर मिस्टर जोजेफ साहेब

हमारे सङ्ग यह नेकी कमा रहे थे, मकान-भाड़ेके जितने पैसे वसूल करते, सब अपनी जेबके हवाले करते जाते। पूछनेपर कहते—यह जो गान्धीजीका मूवमेण्ट चलता है, साहेब, इसने सबकी कमर तोड़ दी। कई कमरे तो महीनोंसे यों ही खाली पड़े हैं। कितने किरायेदार बिना कुछ दिये-लिये चलते बने। जो बचे हैं, गनीमत समझिये! फिर भी मैं तकाजेसे कब चूकता हूं, मगर उन अभागोंके पास—कुछ हो—?

मिस्टर जोजेफने हमारे साथ तीन वर्ष तक बड़ी नेकनीयती व ईमानदारीसे काम किया था, इसके सिवा मैं स्वयं भी देख रहा था, महात्माजीके आन्दोलनने विदेशियोंको खासा खप्त बना दिया है, और हमारे किरायेदार विशेषतया यूरोपियन ही थे, अतः मैं मिस्टर जोजेफकी इस सफाईसे इनकार न कर सका, लेकिन फिर भी मैंने जोजेफसे प्रार्थना की, अपनी वर्तमान स्थितिकी दुखद दशा उन्हें सुनाते हुए कहा—भाई जोजेफ! बात आपकी सब सही है, मगर मैं इन दिनों जिस तबाही व तरद्दुदमें हूं, वह भी आपके सामने है। पासके सारे रुपये, जो जमीन लेने व मकान बनाने और खानेदारीमें खर्च होनेसे बचे थे, बीबीकी बीमारीमें स्वाहा हो गये। अब हमारा काम कर्जसे चल रहा है। हमारी इस बुरी दशामें आप कुछ भी मेरी मदद करते, तो मैं आपका बड़ा शुक्रगुजार होता और आप तो अपने भाई हैं, आपसे इससे अधिक हम अपनी तकलीफ क्या बयान करें, आपके लिए तो इतना कहना भी फजूल था।

इतनेपर भी जोजेफ उदासीसे ही बोला—"अच्छा, कोशिश करूंगा।"

—"मगर फिर भी, जोजेफकी हालत वही रही। एक पैसा भी उसने नहीं भेजा और उस समय तो मैं और अधीर, व्याकुल हो उठा, जब उस राजा साहेबके एक आदमीने, जिनकी जमीन मैंने 'लीज' पर ली थी, मुझे उनका एक पत्र दिया, जिसमें लिखा था—"करीब एक सालसे मुझे जमीनका एक पैसा भी किराया न मिला। आप बतलाइये, इस हालतमें, मैं क्यों न कोई अदालती काररवाई करूं।" मैंने राजा साहेबके पास अपनी मुसीबतोंका सारा किस्सा, मैनेजरकी शरारत लिख पठायी और अर्ज की—"मैं आज खुद मकानपर जा रहा हूं और जहां तक जल्द होगा, रुपये भेजवानेका इन्तजाम करता हूं।" राजा साहेबके चपरासीके हाथोंमें पत्र थमा, मैं बौखलाया-सा धर्मतल्ले भागा, किंतु वहांका रङ्ग-ढङ्ग देखकर मेरा माथा चकरा गया। पुराने किरायेदार एक भी न थे, जो थे सबके सब नये और जोजेफके प्रबल समर्थक। मुझे जोजेफमें अकड़की बू मालूम हुई। लाचार मैं लौट आया और वकीलोंसे सलाह लेकर मैंने जोजेफको अपनी मैनेजरीसे बर्खास्तगीकी बाजाब्ता नोटिस दे दी। जोजेफने भी उज्रदारी पेश की और मामला खड़ा हो गया।"

—"अब सुनिये, इधर घरमें औरत बीमार, उधर मुकदमा शुरू, पासमें पैसे नहीं और बच्चेको सम्भालना और मुश्किल—! इन सब परेशानियोंसे पामाल होकर मैं चिड़चिड़ा हो गया और अपने क्रोध तथा व्याकुलताका सारा गुबार नौकर, दाइयोंपर उतारना आरम्भ कर दिया। किसीको फटकार देता। किसीको गालियां सुना देता, और किसी-किसीको तो मार भी बैठता। हमारी इस मूर्खताका परिणाम यह हुआ कि क्रमशः सारे दास, दासी भाग खड़े हुए। अब सारा घर प्रेतके अखाड़ेकी तरह डरावना, श्मशानकी नाईं सूना मालूम होने लगा। उफ—! क्या बताऊं! उस दिनकी यादसे आज भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं! एक कोठरीमें "यक्ष्मा"-जैसे हत्यारे महारोगका ग्रास एक कोमलांगी गृहणी खाटसे चिमटी अपनी मौतका इन्तजार कर रही है, उधर एक दुधमुंहा बच्चा अपनी बेबसी व लाचारीसे परेशान हो रोते-रोते थककर खाटपर पड़ा-पड़ा गहरी सांसें ले रहा है और इस हृदय-विदारक वातावरणके बीच अभागा मैं चिन्ताओंके दावानलसे अपने नन्हेंसे झोंपड़ेको भस्मीभूत करता शांति और विश्रामके निमित पागलके सदृश घूम रहा था। कभी बैठता, कभी उठता, कभी दौड़कर सोये बच्चेका मलिन मुख देखता और कभी रोते दिलसे अपनी उस जीवन-सङ्गिनीका कङ्काल देखता जिसके सङ्ग जीवनके एक युग अपार आनन्द, अपूर्व सुखसे कटे हैं। जिस मुखड़ेको देखकर उसने स्वर्गका सौन्दर्य भी तुच्छ समझा है, अपने बच्चेकी मृदु-मुस्कानके सम्मुख जिसने स्वर्गकी कल्पना निरी झूठी जानी है, आह—! आज उसके उसी आराममें आग लगने जा रही है। वह अभागा चारों ओरसे निराश, भग्न और पतित हो रहा है—! ओ हो—! हे भगवान, यह तुम्हारा कैसा अद्भुत अनुग्रह है—!"

मारे कष्ट एवं क्षोभके वे सज्जन नीरव हो रहे। मुझे भी बड़ी ग्लानि हो रही थी, मैंने फजूल इन सज्जनके सूखे जख्मोंको खोदा, उकसाया, मैंने कहा भी—बस, कीजिये, सचमुच मुझसे बड़ी भयानक भूल हुई, जो फिर आपके दर्दोंको मैंने उभाड़ा। ओफ-ओह! वाकई बड़ी पुरदर्द कहानी है।

परन्तु उन्होंने कहा—जब इतना सुना लिया, तो सब सुन लो, डाक्टर ! तुम्हारी याददाश्तमें इस बदनसीबकी भी एक गमआलूदा कहानी रहेगी। सवेरे स्त्रीको दवा पिलायी, बच्चेको कंधेपर रखा और पांव—प्यादे—क्योंकि अब तो 'कार' भी बिक चुकी थी—कोर्ट चला। आज ही जोज़ेफके मुक़द्दमेका हुक्म सुनानेकी तारीख थी। दो बजे हुक्म सुनाया गया। जोजेफ विजयी हुआ और मैं पराजित ! हाय री अदालत, और मेरा मुकद्दर—! जोजेफ छाती कड़ी किये कोर्टसे बाहर निकला, मैं गर्दन झुकाये, बच्चेको कंधेपर लादे घर भागा, मगर यहां भी आज ही यमदेवने अपना फैसलाकर दिया था, और मेरे विरुद्ध ही। जिस औरतकी सेवा-शुश्रुषाके लिए कभी बीसियों दास-दासियां तैनात थीं, वह बदकिस्मत मरती बेर एक चुल्लू पानीके लिए तड़पती मरी—! मेरे इन अभागे नेत्रोंने देखा, मेरी हृदयेश्वरी औंधे मुंह जमीनपर पड़ी है। खूनने होठोंको रंगकर ठुड्ढी तक रंग डाला है। हाथमें कांचके टूटे गिलासका एक टुकड़ा है, और शेष टुकड़ा वहीं बिखरा पड़ा है। प्यासकी हालतमें मेरी पत्नीने पलङ्गपर पड़ी-पड़ी मेजपर रखे गिलास लेनेको हाथ ज्यों ही बढ़ाया कि वह पलङ्गसे खिसक कर नीचे आ रही। कमजोरीके कारण वे अपनेको संभाल न सकीं। उधर गिलास टूटा, इधर प्राण छूटा—! आह ! कण्ठागत प्राणोंको पानीकी एक बूंद भी नसीब न हुई, इससे बढ़कर और विषम दुर्दिन क्या हो सकता है—?"

"पर डाक्टर ! अब तो मुसीबतोंने अपने फौलादी हाथोंसे मुझे ठोक-ठोककर बज्र-सा कठोर, पर्वत सा अचल, समुद्र-सा गम्भीर और गुणातीत-सा निरीह, निर्भय बना दिया है। अब मुझे कोई चिन्ता, कोई भय नहीं। आपने सुना होगा—"दर्दकी दवा है, दर्दका हदसे गुजर जाना —!"

—"और डाक्टर, आप मेरी इस कहानीको जीमें जरा भी न लायेंगे। यह संसार है, इसके बाजारमें नित्य ऐसे-ऐसे तमाशे हुआ करते हैं, जिसे हम "तकदीरकी बात—!" कहकर अपनेको समझा लेते हैं। बस, हमारी इस जीवन-कथाको भी आप एक हत-भाग्यकी "तकदीरकी बात—" ही समझें—! अच्छा, आपको धन्यवाद—! नमस्कार—!"

वे सज्जन चले गये और तबसे दिखे भी नहीं। मेरी परमात्मासे प्रार्थना है—हे जगनायक ! ऐसी "तकदीरकी बात" किसीकी न हो—!

पशुओंपर मामले

मनुष्यने अपनी बुद्धि और ज्ञानके बलसे वन्य पशुओंपर विजय प्राप्त कर, उन्हें अपने वशमें कर लिया। ये पराधीन पशु मनुष्यके दास बनकर, उसके सभी तरहके कार्य करते हैं और नाना प्रकारके कष्ट सहकर भी उसे सुख पहुंचाते हैं। पर मूर्ख और अबोध पशु कभी-कभी मौका पाकर अपने प्रति किये गये मनुष्यके इस अत्याचारका बदला लेता है। भले ही बादको उसे अपने इस दुस्साहसका अत्यन्त कटु फल भोगना पड़े। मध्ययुगमें ऐसे दुस्साहसी पशुओंपर, जो मनुष्यपर घातक आक्रमण करते थे, अदालतोंमें मामले चलते थे, और उनका अपराध प्रमाणित होनेपर उन्हें दण्ड दिया जाता था। सन् १४४२ में ज्यूरिचमें एक भेड़ियेपर दो बालिकाओंकी हत्या करनेके अभियोगमें मामला चलाया गया था। दोनों ओरसे बड़े-बड़े वकील मामलेकी पैरवी कर रहे थे। काफी बहस हुई। अभियोगको प्रमाणित करनेके लिए, कानूनी ग्रन्थोंके हवाले दिये गये। अन्तमें अभियुक्त दोषी पाया गया और उसे फांसीकी सजा दी गयी। १३८६ में फेलेसी नामक नार्मन नगरमें एक सूअरपर, एक बच्चेकी हत्या करनेके अपराधमें मामला चला था। उस समय इस मामलेकी धूम-सी मच गयी थी और सारा शहर इसे देखनेके लिए अदालतमें उमड़ पड़ा था। अदालतने निर्णय दिया कि सूअरका सिर उड़ा दिया जाय। इसके बाद उक्त अभागे सूअरको, आदमीका वस्त्र पहनाकर, मौतके घाट उतारा गया। १३७० में बरगैण्डीमें तीन सुअरियोंने मिलकर एक आदमीको मार डाला था, जिसने उनके छोटे-छोटे बच्चोंपर आक्रमण किया था। इस अभियोगमें सुअरियोंका सारा दल पकड़ा गया, पर उनके मालिकने प्रार्थना की कि बच्चे निर्दोष हैं, उन्हें रिहा कर देना चाहिये। ड्यूक आफ बरगैण्डीने यह प्रार्थना स्वीकार कर ली और तीनों बच्चे रिहा कर दिये गये। तीनों सुअरियोंको फांसीकी सजा दी गयी। खूंखार सांड़पर भी मामले चलाये जाते थे। सन् १३१४ में, मेसीमें एक सांड़ने क्रोधित हो, अपने सींगोंसे एक आदमीकी जान ले ली। बादको उस सांड़को पकड़कर, नगरके जेलमें, मनुष्य कैदियोंके साथ बन्द रखा गया। दूसरे दिन उसपर मामला चला और हत्याके अपराधमें उसे फांसीकी सजा दी गयी। सन् १६३९ में डिजनमें, एक आदमीकी जान लेनेके अपराधमें एक घोड़ेको मौतकी सजा दी गयी और १६९४ में सर्वोच्च न्यायाधीशकी आज्ञासे एक घोड़ी जीते-जी जला दी गयी। दोनों पशुओंके सम्बन्धमें यह निर्णय दिया गया कि वे किसी राक्षसके वशमें हैं, जिसके ही आदेशसे उन्होंने हत्यायें की थीं।

पशुओंपर चलाये गये मामलोंमें सभी कानूनी बारीकियोंका प्रदर्शन किया जाता था। १५२१ में फ्रांसके प्रसिद्ध कानून-विशारद बारथोलोम्यू चासेनीकी ख्याति इसी सिलसिलेमें हुई थी। उस समय वह एक नौजवान वकील थे, जो उन चूहोंकी ओरसे पैरवी कर रहे थे, जिनपर जौकी खेती नष्ट कर देनेके अभियोगमें मामला चल रहा था। जब समन जारी करनेपर, पहली पेशीके दिन, अभियुक्त अदालतमें हाजिर नहीं हुए, तब उनकी ओरसे बारथोलोम्यूने बहस की कि सारे प्रांतके चूहोंने खेती नष्ट की है और समन स्थानीय चूहोंके ही नाम जारी किये गये हैं। इसलिए प्रान्त-भरके चूहोंके नाम समन जारी होने चाहियें। दूसरी बार समन जारी किये जानेपर भी चूहोंने कुछ ध्यान नहीं दिया। इसपर बारथोलोम्यूने अदालतके सामने यह तर्क उपस्थित किया कि मेरे मुवक्किल अपने घरोंसे निकलनेमें डरते हैं, क्योंकि मुद्दईकी दुष्ट बिल्लियां हमेशा उनकी ताकमें रहा करती हैं। समनमें इस बातकी स्पष्ट व्यवस्था है कि जिसके नाम समन जारी किया जाता है, उसे उसके घरसे सुरक्षित रूपमें अदालत तक ले आया जायेगा और अदालतसे घर वापस किया जायेगा। इसलिए मुद्दईकी ओरसे इकरारनामा लिखा जाना चाहिये कि यदि मेरे मुवक्किलोंको अदालत तक आनेमें किसी तरहकी क्षति पहुंचेगी, तो इसके लिए मुद्दई उन्हें हर्जाना देगा। अदालतने इस दलीलको युक्ति-सङ्गत माना, पर मुद्दईने इकरारनामा लिखनेसे इनकार कर दिया। इसपर मामला ख़ारिज कर दिया गया।

कभी-कभी पशु गवाहके रूपमें भी अदालतमें पेश किये

जाते थे। एक आदमीपर अपने ही घरके किसी व्यक्तिकी हत्या करनेके अभियोगमें मामला चला। अभियुक्त अपनी बिल्ली, कुत्ता और मुर्गोंके साथ अदालतमें हाजिर हुआ। जब उनकी उपस्थितिमें अभियुक्तने अपनेको निर्दोष प्रमाणित करनेके लिए सौगन्ध खायी, तब उन तीनों जानवरोंने उसके खिलाफ कुछ नहीं कहा। अभियुक्त बेकसूर रिहा कर दिया गया।

पशुओंपर इस तरहके मामले क्यों चलाये जाते थे, इस सम्बन्धमें अभी तक कोई युक्तिसङ्गत कारण नहीं उपस्थित किया गया है। पर यह कहा जाता है कि मध्ययुगके मनुष्योंका विश्वास था कि पशुओंपर शैतान चढ़ा रहता है या वे स्वयं शैतान हैं, जो सूअर, बकरी आदि जानवरोंके रूपमें घूमते रहते हैं।

युवतीका आकर्षण

जब किसी सिनेमा-घरमें, किसी पार्टीमें या और किसी स्थानमें हम किसी युवतीको पहले-पहल देखते हैं, तब हमारे मनमें उसके प्रति नाना प्रकारके भाव उदय होते हैं। किसी-को उसकी आंखें पसन्द आती हैं, कोई उसके गुलाबी कपोलोंकी मन-ही-मन प्रशंसा करता है, कोई उसकी चालपर लट्टू होता है, आदि। कहनेका अभिप्राय यह है कि किसी युवतीको पहले-पहल देखकर, भिन्न-भिन्न मनुष्योंके मनमें, उनकी रुचिके अनुसार विभिन्न विचार उठते हैं। हालमें ही अमेरिकाके एक पत्रने विभिन्न श्रेणियों और क्षेत्रोंके व्यक्ति-योंसे पूछा था कि जब वे पहले-पहल किसी युवतीको देखते है, तो उसमें उन्हें कौन-सी ऐसी चीज दिखायी देती है, जो उन्हें विशेषरूपसे अपनी ओर आकर्षित करती है। अगर आप भी अपने साथियों या मिलने-जुलनेवालोंसे इस तरहका सवाल करें, तो आपको उनसे महिलाओंके शारीरिक गठन और मनोभावोंके सम्बन्धमें विचित्र उत्तर सुनकर आश्चर्य होगा।

उक्त पत्र द्वारा किये गये प्रश्नके उत्तरमें, अमेरिकाके प्रसिद्ध उपन्यासकार क्रिस्टोफर मोर्लेने लिखा कि दुर्भाग्यवश युवतियां अपनेको फैशनके आडम्बरमें ऐसे ढके रखती हैं कि हम उनके प्राकृतिक सौन्दर्यको अच्छी तरह नहीं देख पाते। सबसे पहले मैं आंखोंको देखता हूं। मगर आजकल, आंखों-को देखनेके पहले, हैटको न देखना असम्भव है। आंखोंके बाद मैं बात करनेके ढङ्ग और लहजेको देखता हूं। मेरा विश्वास है कि इस विषयमें स्त्रियां प्रकृतिके दिये हुए साधनोंका समुचित उपयोग नहीं करतीं। स्त्रियोंके आंख मटकानेको कोई भी सुरुचिपूर्ण व्यक्ति पसन्द नहीं कर सकता। स्त्रियोंकी नाकोंकी ओर भी ध्यान देना चाहिये। जब मैं बाहर निकलता हूं, तब सड़कपर स्त्रियोंकी विभिन्न आकार-प्रकारकी नाकोंको देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य होता है।

प्रसिद्ध फोटोग्राफर जार्ज प्लेट लायन्स—जिस तरह सुन्दर स्त्रियां देखनेमें अच्छी मालूम होती हैं, उसी प्रकार, कुछ-कुछ कुरूप या कम सुन्दर स्त्रियां, विज्ञापनके चित्रोंके लिए बहुत अच्छा माडल बन सकती हैं। इसलिए मेरा कहना है कि मैं सबसे पहले किसी युवतीके रूप-रङ्ग और शारीरिक गठनको देखता हूं। निर्दोष प्राकृतिक सौन्दर्यको, उसके वास्तविक रूपमें देखना और बात है।

पारामाउण्ट पिक्चर्सके बिजिनेस मैनेजर—किसी स्त्री-की आंखें उसके बारेमें हमें उतनी ही बातें बतला सकती हैं, जितनी कि चार सौ पृष्ठोंका उसका आत्म-चरित। हाव-भाव, प्रेम, घृणा, हंसी-रुदन आदि सभी गुणों और भावों-का निदर्शन आंखें कर सकती हैं। यदि सुन्दर नेत्रोंके साथ किसी स्त्रीकी बोली मधुर हो, मन्द-मन्द चाल हो और बनाव-सिंगार भी आकर्षक हो, तो उसके देखनेवालों-के मन मोहनेमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

आरकेष्ट्रावादक एडी डचिन—मैं किसी स्त्रीके निचले होठको देखकर और उसकी आवाजको सुनकर बतला सकता हूं कि वह किस तरहकी है। इसलिए मैं पहले किसी स्त्री-में इन्हीं दोनों चीजोंको देखता हूं।

अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त एक चित्रकार—किसीकी आंखोंको देखकर, हम उसके बारेमें बहुत-कुछ बतला सकते हैं। आंखों द्वारा व्यक्त किये गये भावोंको छिपाया नहीं जा सकता। फिर भी किसी युवतीके पहनावे और बनाव-सिंगारसे भी उसके मनोभावोंका पता चल जाता है।

प्रसिद्ध भास्कर बटगुडरिच—सबसे पहले, मैं स्त्रीके शारीरिक गठनको देखता हूं। इसके बाद मेरी नजर उसके दांतोंकी ओर जाती है। आप युवतीके मुस्कानसे, उसके व्यक्तित्वके सम्बन्धमें बहुत-कुछ बतला सकते हैं। और मधुर मुस्कानके लिए स्वच्छ-धवल दांतोंका होना आवश्यक है। पहनावे और बनाव-सिंगारको मैं विशेष महत्व नहीं देता।

सुप्रसिद्ध स्टाइल-डिजाइनर, मैन बोकर—मैं सबसे पहले यह देखता हूं कि युवतीके मुखमण्डलको, उसके केशों-ने किस ढङ्गसे वेष्टित किया है। आरम्भके दिनोंमें, जब

मुझमें कलाकार बननेकी प्रबल महत्वाकांक्षा थी, मैं पहले युवतीके मुखमण्डलको ही अङ्कित करता था, उसके बाद उसे मनोहर केशोंसे वेष्टित कर देता था। युवतीके रंग-रूप अङ्ग-प्रत्यङ्ग और पहनावेकी ओर मेरा विशेष ध्यान नहीं जाता। युवतीके लच्छेदार केश ही मुझे विशेष रूपसे अपनी ओर आकर्षित करते हैं।

फिल्मकी सहायतासे विज्ञानका प्रचार

आधुनिक युगमें सिनेमा जन-शिक्षाका एक प्रधान साधन हो रहा है। फिल्मों द्वारा कई विषयोंकी शिक्षाका प्रचार जन-साधारणमें किया जा रहा है। पर, अभी तक इसके द्वारा विज्ञानके विभिन्न विषयोंके प्रचारकी चेष्टा नहीं की गयी थी। कुछ दिन पहले लन्दनके एसोसियेशन आफ सायंटिफिक वर्कर्स या विज्ञान-कर्मी सम्मेलनके उद्योगसे इस विषयपर विचार-विमर्श करनेके लिए एक सभाका आयोजन किया गया था। उस सभामें, विभिन्न विश्वविद्यालयों तथा विज्ञान-परिषदोंके प्रतिनिधियोंके अतिरिक्त विभिन्न फिल्म सोसाइटियोंके भी प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे। सभामें, जन-साधारणमें, फिल्मोंके द्वारा ज्ञान-विज्ञानकी भावधाराकी शिक्षा देनेके निमित्त एक सायंटिफिक फेडरेशन स्थापित करनेका निश्चय किया गया। विभिन्न फिल्म-सोसाइटियोंकी सहायतासे, वैज्ञानिक विषय सम्बन्धी उच्च कोटिके चित्र तैयार करने तथा उनके प्रचारका भार इस फेडरेशनपर दिया गया। इधर समाचार मिला है कि ब्रिटिश कौंसिल द्वारा, सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक माइकेल फैरडेकी जीवनीके आधारपर एक वैज्ञानिक फिल्म तैयार करनेकी व्यवस्था की गयी है। सम्भवतः इङ्गलैण्डमें बननेवाला यह इस विषयका पहला चित्र होगा।

चिकित्सा विज्ञानमें रेडियो

आजकल संसारमें शायद ही कोई ऐसा सभ्य देश हो जहांके निवासी रेडियोका नाम न जानते हों। रेडियोकी सहायतासे हम एक स्थानपर बैठे, हजारों मील दूरके स्थानोंसे समाचार और गाना-बजाना सुन सकते हैं। युद्धकालमें तो इसका उपयोग और भी बढ़ गया है। वर्तमान युगमें रेडियोका प्रचार उत्तरोत्तर इतना अधिक बढ़ रहा है कि सम्भवतः एक दिन ऐसा भी आयेगा, जब मनुष्य रेडियोकी सहायतासे अपने सभी तरहके सुख और सुविधाकी व्यवस्था कर सकेगा। रेडियो-विज्ञानकी कितनी विस्तृत क्षमता है, इसका पूरा विवरण देना यहां सम्भव नहीं। रेडियो-विज्ञानके प्रादुर्भावसे वैज्ञानिक जगतमें कल्पनातीत युगान्तर उपस्थित हो गया है। अब इधर वैज्ञानिकोंने चिकित्सा-विज्ञानमें भी इसका उपयोग आरंभ कर दिया है। वस्तुतः अस्त्रोपचारकी चिकित्सामें रेडियोका कितना व्यापक प्रयोग होगा, यह भविष्य बतलायेगा। कुछ दिन पहलेकी बात है, पक्षाघात या इन्द्रिय वैकल्प रोगके अधिकांश रोगियोंकी मृत्यु हो जाती थी या किसी-किसी रोगीको उन्माद हो जाता था। एक आस्ट्रियन डाक्टरने पक्षाघातके रोगियोंकी चिकित्सा करते-करते देखा कि किसी अज्ञात कारणसे दो-एक रोगी इस मारात्मक रोगसे मुक्त हो गये। यह देखकर डाक्टरको कारण जाननेकी उत्सुकता हुई। वह सोचने लगा कि रोगी वास्तवमें किसी कारण विशेषसे आरोग्य-लाभ कर रहे हैं अथवा उनका प्रारब्ध काम कर रहा है। वैज्ञानिक डाक्टरको प्रारब्धकी बातपर विश्वास नहीं हुआ। बहुत सोचने-विचारने और गवेषणाके बाद डाक्टर इस निष्कर्षपर पहुंचा कि इस असाध्य व्याधिसे जिन रोगियोंने आरोग्य-लाभ किया है; रोगसे मुक्त होनेके पहले उन सबको ज्वर हुआ था। शरीरके इसी उत्तापने उस मारात्मक व्याधिको दूर भगा दिया। यह डाक्टरका केवल अनुमान था। इसी आधारपर उसने इस विषयमें और भी छान-बीन की। डाक्टरका प्रश्न यह था कि रोगीके शरीरमें अपनी इच्छासे किस प्रकार ज्वर लाया जा सकता है और उसके तापको कैसे घटाया-बढ़ाया जा सकता है, या किस तरह उसे काबूमें रखा जा सकता है। डाक्टरने सोचा कि मलेरियाके मच्छरसे कटवाकर रोगीके शरीरमें ज्वरकी उत्पत्ति की जा सकती है। एक रोगीके शरीरपर उसने यह प्रयोग

किया भी। उसका परिणाम भी आशातीत हुआ। मगर मलेरिया एक खतरनाक रोग है, इसलिए इसकी भी समुचित चिकित्साकी आवश्यकता है। डाक्टर फिर सोच-विचारमें पड़ गया। इसी समय एक रेडियो-अनुसन्धान-शालामें शार्ट वेव्ह (लघु-तरंग) के सम्बन्धमें गवेषणा करते समय कुछ वैज्ञानिकोंने देखा कि लघु-तरंगके प्रेरक यंत्रको चलाते समय उनके शरीरमें उत्ताप उत्पन्न होता है। पहले उन लोगोंने सोचा कि यह ताप उनके शरीरके बाहरी चर्मका ताप है, पर बादको उन्होंने देखा कि यह केवल ऊपरी चर्मका ताप नहीं है, बल्कि रक्तका ताप है। शरीरमें लघु-तरंगके लगनेसे उन्हें ज्वर हो गया था। डाक्टरने देखा कि कृत्रिम ज्वर उत्पन्न करनेका यह सबसे उत्तम तरीका है। लघु-तरंगकी शक्तिको घटा-बढ़ाकर शरीरके उत्तापको घटाया-बढ़ाया जा सकता है। इस अनुसन्धानके साथ ही असाध्य रोगियोंपर इस उपायका प्रयोग किया गया। कितने ही मरणासन्न रोगियोंको, इस कृत्रिम ज्वरके प्रयोगसे आश्चर्य-जनक लाभ हुआ। सैकड़ों रोगियोंको जैसे पुनर्जीवन प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त, अब चीर-फाड़के काममें भी रेडियोका व्यवहार होने लगा है। कई बार ऐसा होता है कि शरीरके किसी विशेष स्थानपर दाग देनेके लिए गर्म लौह-शलाकाकी आवश्यकता होती है। इस लौह शलाकाके उत्तापको अपने काबूमें न रख सकनेका क्या वीभत्स दुष्परिणाम होता है, यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है। यहां भी रेडियोके वैद्युतिक प्रवाहके कम्पनको घटा-बढ़ाकर, यह दागनेका काम सुचारु रूपसे किया जा सकता है। रेडियो-विज्ञानकी सहायतासे अस्त्रोपचार चिकित्साके लिए एक अद्भुत यंत्र आविष्कृत हुआ है, जिससे रोगीको चीर-फाड़ करते समय, जरा भी कष्ट नहीं होता। अब यह चिकित्सकोंका काम है, कि वे सोचें कि किस प्रकार इस यंत्रका प्रयोग किया जा सकता है।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनका ३२ वां अधिवेशन, जयपुरमें गत २५-२६ और २७ दिसम्बरको होनेवाला था। इसके लिए जयपुरमें स्वागत-समितिका गठन हो चुका था और उसकी ओरसे अधिवेशनको सफल बनानेके लिए भरपूर चेष्टा की जा रही थी। सम्मेलनके सभापतिपदके लिए दिल्लीके 'वीर अर्जुन'के संचालक व प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति निर्वाचित हुए थे। अन्य विभागीय परिषदोंके सभापतियोंका चुनाव भी सम्भवतः हो चुका था। अधिवेशनके लिए अब कुछ ही दिन बाकी रह गये थे, कि इसी अवसरपर सम्मेलनकी स्थायी समितिने सभापतिके निर्वाचनको अनियमित और त्रुटि-पूर्ण ठहराकर, सम्मेलनका अधिवेशन स्थगित कर दिया और घोषित किया कि ईस्टरकी छुट्टियोंमें अधिवेशन होगा। स्थायी समितिके इस निर्णयपर समाचार-पत्रोंमें, काफी टीका-टिप्पणी की गयी और उसे अवैध बतलाया गया। कुछने निर्णयका समर्थन भी किया। जो लोग समितिके इस निर्णयसे सहमत नहीं हैं, उनकी ओरसे यह आरोप लगाया गया है कि सम्मेलन प्रयागके कुछ व्यक्तियोंके हाथका खिलौना है। वे जिसे चाहते हैं, उसे सम्मेलनका सभापति बना देते हैं। प्रो० इन्द्रका निर्वाचन उन्हें पसन्द न था, इसलिए उन्होंने उसमें त्रुटियां दिखलाकर, उसे रद्दकर दिया। सहारनपुरके 'विकास'के सम्पादक पं० कन्हैयालाल मिश्र, 'प्रभाकर'तो इतने क्षुब्ध और व्यग्र हो उठे कि उन्होंने, सम्मेलनकी स्थायी समितिके इस निर्णयपर आमरण अनशन करनेकी घोषणा की। बादको सम्मेलनके सभापति पं० माखनलालजी चतुर्वेदीने उनसे अनुरोध किया कि जब तक स्थायी समिति इस सम्बन्धमें विचार कर रही है, तब तक वे अपने निश्चयको स्थगित रखें। इन पंक्तियोंके लिखते समय, स्थायी समितिकी ओरसे, इस सम्बन्धमें कोई वक्तव्य नहीं प्रकाशित हुआ है, जिससे ज्ञात हो कि किस आधारपर, सभापतिका निर्वाचन त्रुटिपूर्ण हुआ है। ऐसी स्थितिमें हम इस विषयपर टीका-टिप्पणी करना ठीक नहीं समझते। पर इतना कहना तो अपना कर्तव्य समझते हैं कि हिन्दी साहित्य सम्मेलनको देशमें, राष्ट्रीय महासभा-जैसा ही गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। इसलिए उसकी ओरसे ऐसी कोई कार्रवाई नहीं होनी चाहिये, जिससे उसकी प्रतिष्ठामें धब्बा लगे और लोगोंको यह सन्देह करनेका अवसर मिले कि वह कुछ व्यक्तियोंके हाथका खिलौना है।

क्या हिन्दी हवाई भाषा है ?

बनारसकी एक साहित्यिक सभामें भाषण देते हुए श्री महापण्डित राहुल सांकृत्यायनने हिन्दीके वर्तमान प्रगतिशील साहित्यके सम्बन्धमें कहा कि इस वक्त देशकी सामाजिक, आर्थिक एवं शासन-व्यवस्थामें आमूल परिवर्तनकी आवश्यकता है। जनतामें नया जोश, नयी उमंग, नयी भावना हम प्रगतिशील जनतोपयोगी साहित्यके ही प्रचारसे ला सकते हैं। और यह तब तक सम्भव नहीं, जब तक साहित्यिक ऐसा रास्ता न अख्तियार करें, जिसमें जनता भी दिलचस्पी ले और पूर्णतः सहयोग दे। राहुलजीने प्रगतिशील साहित्यकी जो उपयोगिता बतलायी है, उससे इन्कार नहीं किया जा सकता, पर उन्होंने यह नहीं बतलाया कि प्रगतिशील साहित्यकी रूप-रेखा क्या है। क्योंकि स्वयं तथाकथित प्रगतिशील लेखकोंको भी पता नहीं कि वे किस प्रगतिशील साहित्यकी रचना कर रहे हैं। इधर, प्रगतिके नामपर कुछ कहानीकार और कवि, जो

हिन्दीमें भारतीय संस्कृतिके विरुद्ध अश्लील रचनायें करनेकी कुचेष्टा कर रहे हैं, राहुलजीने उनके विरुद्ध भी कुछ नहीं कहा।

आगे चलकर प्रगतिशील साहित्यके माध्यमके सम्बन्धमें आपने कहा कि मेरी धारणा है कि मातृ-भाषा (घरमें बोली जानेवाली भाषा) को ही माध्यम बनाया जाय। ऐसी ही भाषामें लिखकर जनता तक पहुंचनेकी जरूरत है। मातृ-भाषाओंमें जितनी शक्ति है, उतनी हिन्दी, उर्दू आदि आसमानी और हवाई भाषाओंमें नहीं है। सात-सात—आठ-आठ साल तक पढ़ते रहनेपर भी शुद्ध हिन्दी लिखने और बोलनेकी योग्यता नहीं हो पाती। फिर इन भाषाओं द्वारा ज्ञानका विकास कहां तक सम्भव है। मातृ-भाषाओंमें शिक्षाकी व्यवस्था होनेसे तीन दिन या एक सप्ताहमें अक्षर-ज्ञान हो जायेगा और इसके बाद जीवनोपयोगी विषयोंकी शिक्षा दी जा सकती है। शिक्षाका उद्देश्य भाषा-ज्ञान नहीं, बल्कि जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाले विषयोंके वास्तविक ज्ञानसे है। अतः आवश्यकता इस बातकी है कि एक तरहकी बोली बोलनेवालोंका प्रान्त बना दिया जाय और वहांके अधिवासियोंको उसी भाषामें शिक्षा दी जाय। प्रश्न हो सकता है कि कई-भाषाओंके बोले जानेसे देश तो पाकिस्तान ही बन जायेगा, पर यह धारणा गलत होगी। इससे हिन्दीका भी कोई नुकसान नहीं होगा। पर एक मध्यस्थ भाषाकी आवश्यकता होगी, और हिन्दी द्वारा इस समस्याका हल किया जा सकता है। हिन्दी सफेद-पोशों और नौकरी पेशावालोंकी भाषा है। राजेन्द्र बाबू तो आपसमें सदैव मातृ-भाषामें ही बात-चीत करते हैं। मातृ-भाषाओंके प्रचारसे तो हिन्दी-उर्दूका झगड़ा सिर्फ मेरठके चार जिलोंमें रह जायेगा। अन्यप्रान्तीय हिन्दी या उर्दू जो चाहें, पढ़ें, पर उपर्युक्त जिलोंके अलावा अन्य स्थानोंमें हिन्दी, उर्दूके विवादका अन्त हो जायेगा। आगे चलकर आपने कहा कि स्वान्तः सुखाय, सत्यम् शिवम् सुन्दरम्के आधारकी रचनाओंका फैसला बीसवीं सदीके प्रारम्भमें ही हो गया था कि ऐसा साहित्य किसी भी राष्ट्रके नवनिर्माणमें सहायक नहीं हो सकता, पर मेरी नयी योजना अपनी सत्ता कायम होनेपर ही सम्भव है। नागरी लिपि ही इन भाषाओंके लिए भी उपयुक्त है।

राहुलजीकी मातृ-भाषाओं सम्बन्धी यह योजना, चाहे वह आज कार्यान्वित की जाय, अथवा अपनी सत्ता कायम होनेपर, कभी भी व्यावहारिक नहीं है। इससे तो देशमें भाषा सम्बन्धी एक और उलझन उत्पन्न हो जायेगी, और राष्ट्र-भाषा हिन्दी द्वारा भारतके विभिन्न भाषा-भाषियोंको एक राष्ट्रीयताके सूत्रमें आबद्ध करनेका जो स्तुत्य प्रयत्न किया जा रहा है, वह विफल हो जायेगा। हिन्दीके विकासको देखते हुए, हमें अब यह सोचनेका समय आ गया है कि राष्ट्रके नवनिर्माणके लिए इसमें किस प्रकारके साहित्यकी रचना की जाय। इसके विपरीत, यदि हम अपने-अपने प्रान्त और जिलोंकी बोलियोंमें ही लिखने-पढ़ने लगेंगे तो, हिन्दी भाषा और हिन्दी साहित्यकी क्या दशा होगी? इस विषयमें श्री राहुलजीके विचारोंसे सहमत न होते हुए, हम उनसे निवेदन करते हैं कि वह साहित्य-सेवियोंके सामने कोई ऐसी योजना उपस्थित करें, जिससे हिन्दी भाषा संसारकी उन्नत भाषाओंके समकक्ष हो, प्रान्तीय बोलियों और जनपदीय भाषाओंके आन्दोलनसे तो उसे गहरी क्षति पहुंचनेकी सम्भावना है। हिन्दी हवाई या आसमानी भाषा नहीं है, वह करोड़ों भारतीयोंकी राष्ट्र-भाषा है, और मातृ-बोलियोंसे उसका पद और गौरव महान है।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा

काशीकी सुप्रसिद्ध साहित्यिक संस्था—नागरी प्रचारिणी सभाको स्थापित हुए, इस वर्ष पूरे पचास वर्ष हो गये। सभाने देशमें हिन्दी साहित्यकी अभिवृद्धि और प्रचारके लिए जो ठोस कार्य किया है, वह सदा अमर और गौरवमय रहेगा। इस उपलक्षमें सभाकी ओरसे, इसी जनवरी महीनेके अन्तिम सप्ताहमें, रजत-जयन्ती उत्सव मनाया जायेगा, इस अवसरपर, हम सभाके वर्तमान अधिकारियों और समारोहके आयोजनकर्त्ताओंको हार्दिक बधाई देते हैं और शुभ कामना प्रकट करते हैं कि सभा निरन्तर उन्नतिकी ओर अग्रसर होती हुई, अपने उद्देश्य-साधनमें सफल हो और वह न केवल हिन्दी भाषा-भाषियोंकी ही, पर समस्त भारतकी आदरणीय संस्था हो।

पाठकोंकी जानकारीके लिए, हम नीचे संक्षेपमें सभाका परिचय देते हैं। इसकी स्थापना विक्रम संवत् १९५० (१६ जुलाई १८९३) में हुई थी। गत वर्ष तक सभा, हिन्दी साहित्यकी उन्नति और प्रचारके लिए ८॥ लाख रुपये खर्च कर चुकी है। सभाके ही उद्योगसे संयुक्त-प्रान्तके माल विभागने समन आदि हिन्दीमें भरना स्वीकार किया और २१ अप्रेल १९०० को एक सरकारी आज्ञा द्वारा संयुक्त प्रान्तकी अदालतोंमें नागरीको स्थान मिला। संयुक्त प्रान्तकी टेक्स्ट बुक कमेटीमें सभाका एक प्रतिनिधि रखना वहांके शिक्षा-विभागने स्वीकार किया है। संवत् १९५९ में सभाकी पुस्तकें पाठ्य-क्रमके लिए स्वीकृत हुई। सभाने हिन्दीकी एक संकेत-लिपि (शार्ट हैण्ड) भी तैयार करायी और उसकी शिक्षा तथा हिन्दी टाइप राइटिंग सिखानेके लिए एक विद्यालय भी खोला। 'सरस्वती'के प्रकाशन और पं० मदनमोहन मालवीयके सभापतित्वमें हिन्दी साहित्य सम्मेलनके प्रथम अधिवेशनका श्रेय सभाको ही है। सभाने सैकड़ों महत्वपूर्ण ग्रन्थों और पुस्तकोंका प्रकाशन किया है। इनमें एक ग्रन्थ वैज्ञानिक कोष और दूसरा शब्द-सागर है। शब्द-सागर २० वर्षोंमें एक लाख रुपयेसे भी अधिकके व्ययसे तैयार हुआ था। तीसरा महत्वपूर्ण ग्रन्थ पृथ्वीराज रासो है। और भी अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं और प्रतिवर्ष प्रकाशित होते हैं। सभाकी ओरसे हिन्दीकी श्रीवृद्धिके उद्देश्यसे अनेक पुरस्कार और पदक भी प्रदान किये जाते हैं। हिन्दीकी हस्त-लिखित पुस्तकोंकी खोजका भी काम सभाने किया है। इस समय सभाके पुस्तकालयमें लगभग एक हजार हस्त लिखित पुस्तकें सुरक्षित हैं। अनेक प्राचीन ग्रन्थोंका प्रकाशन भी हुआ है। सभाका आर्य-भाषा पुस्तकालय भारतवर्षमें हिन्दीका सबसे बड़ा पुस्तकालय है। सभामें एक कला-भवन भी है। इसमें राजस्थानी, पहाड़ी तथा मुगल शैलियोंके और आधुनिक चित्र-कलाके उत्तमोत्तम नमूने संगृहीत हैं। प्राचीन मूर्तियों, तथा साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक इतिहासकी सामग्रीका भी उत्कृष्ट संग्रह है। सभाका अपना दो मञ्जिला विशाल-भवन है। सं० १९९८ तक इसकी कुल आय ८ लाख ७१ हजार ८ सौ ९२ रुपयेसे कुछ अधिक है। और अब तक वह भिन्न-भिन्न कार्यों पर ८ लाख ५६ हजार ४ सौ ६० रुपये खर्च कर चुकी है।

रजत जयन्ती उत्सवके अवसरपर सभाने कई अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य करनेका निश्चय किया है। समान आकारकी चार जिल्दोंमें, एक विस्तृत रिपोर्ट प्रकाशित किया जायेगा। प्रांतवार हिन्दी साहित्यका गत ५० वर्षोंका इतिहास तैयार होगा, जिसमें प्रान्तीय भाषाओंका भी गत ५० वर्षोंका इतिहास रहेगा। हिन्दीके पारिभाषिक शब्दोंका एक प्रामाणिक कोष भी तैयार किया जायेगा। हिन्दी लेखकों और कवियोंका संक्षिप्त परिचय भी उनकी कृतियोंके साथ प्रकाशित किया जायेगा। विक्रम संवत्के मूल और वास्तविक इतिहाससे सम्बन्ध रखनेवाले महत्वपूर्ण लेखों और निबन्धोंका संग्रह प्रकाशित होगा और अधिकारी विद्वानोंकी सभामें विक्रमी सम्वत्के ऐतिहासिक मूल्यका ठीक-ठीक निर्णय करनेका प्रयत्न किया जायेगा। ज्योतिष-काल-गणनाके सिद्धान्तों और ग्रहों आदिकी वस्तुस्थितिमें जो अन्तर है और उसके कारण प्रचलित पञ्चागोंमें जो भेद देखनेमें आते हैं, उसे दूर किया जायेगा।
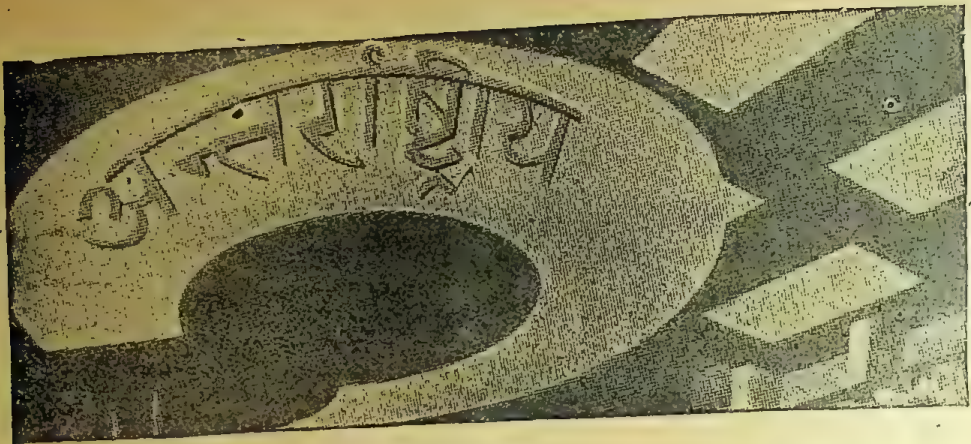
कैरो और तेहरान सम्मेलन

हालमें ही ब्रिटेन, अमेरिका, और चीनके राष्ट्रनायक मि० चर्चिल, प्रेसिडेण्ट रूजवेल्ट और मार्शल चांगकाई शेक प्रशान्तसागर और एशियाके युद्ध-सञ्चालनके सम्बन्धमें परस्पर विचार विनिमय करनेके लिए कैरोमें मिले थे। तीनों राष्ट्रनायकोंके साथ उनके बड़े-बड़े सैनिक अफसर और युद्ध-परामर्शदाता भी थे। सम्भवतः यह पहली ही कान्फरेन्स थी, जिसमें चर्चिल और रूजवेल्टके साथ चांग काईशेक भी शामिल थे। पांच दिन तक बड़े-बड़े महत्वपूर्ण विषयोंपर विचार-विमर्श होता रहा और बादको परस्पर हुए निर्णयोंके सम्बन्धमें एक सरकारी विज्ञप्ति प्रकाशित की गयी, जिसमें कहा गया है कि तीनों देशोंके युद्ध-परामर्शदाता इस विषयमें एकमत थे कि जापानको किस तरह पराजित किया जाय। इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए जापानपर जल, स्थल, और आकाशसे आक्रमण करनेका निश्चय किया गया। तीनों ओरसे यह घोषित किया गया है कि युद्धका लक्ष्य जापानकी आक्रमणात्मक प्रगतिको रोकना और उसे दण्ड देना है। उन्हें अपने लिए कुछ लाभकी आशा नहीं और न वे अधिक भूमिपर अधिकार करना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि गत यूरोपीय महासमरसे, सन १९१४ के आरम्भसे अबतक प्रशान्तके जिन-जिन द्वीपोंपर जापानने अपना कब्जा जमा लिया है, वे सब उससे छीन लिये जायं। विज्ञप्तिमें यह नहीं बतलाया गया है कि जो द्वीप जापानसे छीन लिये जायेंगे, भविष्यमें उनका क्या होगा या जो द्वीप अमेरिका या ब्रिटेनके अधिकारमें हैं, वे उनके अधीन रहेंगे या स्वतन्त्र कर दिये जायेंगे। इस सिलसिलेमें केवल अमेरिकाकी ओरसे यह घोषणा की गयी है कि फिलिपाइनको स्वतन्त्र कर दिया जायेगा। चीनके मंचूरिया, फारमोसा, पेस्फाडोर्स, आदि जो प्रान्त और द्वीप जापानने ले लिये हैं, उन्हें जापानसे छुड़ाकर चीनको दे देनेकी प्रतिज्ञा की गयी है। कोरिया बहुत दिनोंसे जापानके अधीन है, उसके सम्बन्धमें इन तीनों राष्ट्रनायकोंने यह निश्चय किया कि कोरियाको यथासमय स्वतन्त्र कर दिया जायेगा। विज्ञप्तिमें उन्हीं प्रान्तों और द्वीपोंके भविष्यके सम्बन्धमें कहा गया है, जो जापानके अधिकारमें पहलेसे हैं। जो पहले ब्रिटेन या अमेरिकाके अधिकारमें थे और अब जापानके अधीन हैं, उनकी भावी स्थितिके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं कहा गया है।

कैरोके बाद, ईरानकी राजधानी तेहरानमें मार्शल स्टालिन, प्रेसिडेण्ट रूजवेल्ट और प्रधान मन्त्री मि० चर्चिल का सम्मेलन हुआ। सम्मेलनमें मित्रराष्ट्रोंके राजनीतिक और सैनिक नेता भी सम्मिलित हुए थे। इस ऐतिहासिक सम्मेलनमें, मित्रराष्ट्रोंने एकमतसे यह निश्चित किया कि नाजियोंकी युद्ध-शक्ति विनष्टकर, शीघ्र ही विजय प्राप्त करनेके उद्देश्यसे दूसरा मोर्चा खोला जाय। मार्शल स्टालिन, रूजवेल्ट और चर्चिलके हस्ताक्षरसे एक विज्ञप्ति प्रकाशित की गयी है, जिसमें कहा गया है कि युद्ध-संचालनके सम्बन्धमें गोलमेज बैठकमें हम लोगोंके बीच जो विचार-विमर्श हुआ, उसमें हमारे सेना-नायक भी उपस्थित थे और जर्मनीकी शक्तिको विनष्ट करनेके लिए हमने जो योजना बनायी है, उस सम्बन्धमें वे सब एकमत थे। अभियान आरम्भ करनेके लिए उपयुक्त समय और सुविधाके विषयमें हम सब एकमत हैं। पूर्व, पश्चिम और दक्षिणसे अभियान आरम्भ किया जायेगा। हम लोगोंमें परस्पर विचार-विनिमय करनेके बाद जो तय पाया, उससे यह निश्चित है कि विजय हमारी होगी। संसारमें ऐसी कोई

शक्ति नहीं है; जो रण-क्षेत्रमें जर्मन-सेनाका विनाश करने और जर्मनोंके युद्ध-सामग्री-निर्माण-केन्द्रोंको नष्ट करनेमें हमें बाधा दे। हमारा आक्रमण लगातार होता रहेगा और क्रमशः इसकी तीव्रता बढ़ती जायेगी। इसमें सन्देह नहीं कि मित्र-राष्ट्रोंके नायकोंकी इस घोषणासे फैसिस्ट अत्याचारोंसे जर्जरित यूरोपके छोटे-छोटे राष्ट्रोंमें पुनः स्वाधीन होनेकी आशा और प्रेरणाका सञ्चार होगा। यह घोषणा फैसिस्टों और नाजियोंके लिए मौतका परवाना है। यह घोषणा युद्ध-सञ्चालन और युद्धोत्तर विश्व-निर्माण तथा शान्ति स्थापनामें, मित्र-राष्ट्रोंको एक सूत्रमें आवद्ध कर देगी।

युद्धमें शीघ्र विजय प्राप्त करनेके उद्देश्यसे शीघ्र ही दूसरा मोर्चा खोलनेके सङ्कल्पकी घोषणा, इसके पहले भी की जा चुकी है। परन्तु दूसरा मोर्चा खोलनेके प्रश्नपर मित्र-राष्ट्रोंके नायकोंमें इसके पहले कभी खुलकर वाद-विवाद नहीं हुआ था। यूरोपके रणांगणमें नाजी-समर-शक्तिके विरुद्ध सम्मिलित रूपसे युद्ध सञ्चालनके लिए कोई योजना निर्धारित करनेका सिद्धान्त सर्वप्रथम इसी बार स्वीकार किया गया। ऐसी आशा की जाती है कि ब्रिटेनकी ओरसे पश्चिम जर्मनीपर आक्रमण करनेकी योजना शीघ्र ही कार्यान्वित की जायेगी।

विश्वकी शान्ति-रक्षा

बड़े दिनपर सन्देश देते हुए, प्रेसिडेण्ट रूजवेल्टने कहा कि संसारके अधिकांश लोग, संसारमें शान्तिकी कामना करते हैं। उनमें कितने ही उसी शान्तिके लिए संग्राम कर रहे हैं। वह शान्ति समयानुसार युद्ध-त्याग या युद्ध-विराम नहीं है। बल-प्रयोगसे जो शान्ति कायम की जायेगी, वही स्थायी होगी। हम लोग जब इस समय शान्तिके लिए संग्राम कर रहे हैं, तब भविष्यमें शान्तिकी रक्षाके लिए यदि बलप्रयोग करेंगे, तो क्या वह युक्तिसङ्गत नहीं होगा? उन्होंने और भी कहा कि कई वर्षोंसे हम लोग यह आशा करते आये हैं कि विजयाकांक्षी युद्धरत देश शान्तिके मूल्यको समझकर, स्वेच्छासे ही शान्तिकी रक्षा करेंगे। ऐसी आशा करना अनुचित नहीं था, पर इतने समय तक परीक्षा करनेके बाद देखा गया कि कामके समय वैसा सम्भव न होगा। स्वेच्छासे शान्तिकी रक्षा नहीं हो सकती। प्रेसिडेण्ट रूजवेल्टने विश्वकी शान्ति-रक्षाका जो प्रश्न उठाया है, वह आदर्शवादकी दृष्टिसे अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसके पूर्व भी इस प्रश्नपर काफी आलोचना हुई है। रूजवेल्टने कहा है कि स्वेच्छासे शान्ति-रक्षा सम्भव नहीं। उनका यह कहना जितना सत्य है, उतना ही यह भी सत्य है कि शासन-द्वारा किसीको शान्ति-रक्षा करनेके लिए बाध्य करना भी सदा सम्भव नहीं। राष्ट्रपति रूजवेल्टने अपने भाषणमें, आरम्भसे अन्ततक सभी पुरानी बातोंकी पुनरावृत्ति की है। आपने कहा है कि जर्मनीको सम्पूर्ण रूपसे पराजित करनेपर भी उसे ग्रास नहीं कर लिया जायेगा, बल्कि जर्मनोंको यह सुविधा दी जायेगी कि वे नागरिककी तरह अपना जीवन-यापन करें, किन्तु यह व्यवस्था की जायेगी कि वे फिर कभी सर न उठा सकें। इस विषयमें और यूरोपके अन्यान्य छोटे-बड़े राष्ट्रोंके सम्बन्धमें ब्रिटेन, अमेरिका और रूस एकमत हैं। इसमें भी कोई नयी बात नहीं है। रूसके पश्चिम सीमान्तके निकटवर्ती यूरोपीय राष्ट्रोंकी सीमाके निर्धारित करनेके सम्बन्धमें क्या निश्चित किया गया, इस विषयमें अमेरिका और ब्रिटेनके दोनों नायकोंने मार्शल स्टालिनके दावेको मान लिया है या नहीं इस विषयमें और रूसको लाल सागर, फारसकी खाड़ी और हिन्द महासागरमें प्रभुत्व करनेका अधिकार दे दिया गया है, इस सम्बन्धमें जो कई तरहकी अफवाहें उड़ रही हैं, उसपर रूजवेल्टने कुछ प्रकाश नहीं डाला।

सन् १९४४ में युद्धकी गति

नव वर्षके उपलक्षमें युद्ध-संलग्न राष्ट्रोंके नायकोंने अपने देशवासियोंको जो सन्देश दिये हैं, उनमें उन्होंने अपने-अपने दृष्टिकोणसे बतलाया है कि आगामी वर्षमें युद्धका स्वरूप क्या होगा। अमेरिकाके प्रेसिडेण्ट रुजवेल्टने जो सन्देश दिया है, उसमें उन्होंने यह कुछ नहीं कहा कि सन् १९४४ में युद्धकी समाप्ति होगी या नहीं, पर अमेरिकन युद्ध-सूचना-विभागके डायरेक्टर मि० डेविसने कहा है कि अब हम अधिक आशाप्रद वर्षमें पदार्पण कर रहे हैं। १९४४ में कम-से-कम यूरोपकी लड़ाईका तो अन्तिम निर्णय हो जायेगा। हमने सभी प्रारम्भिक तैयारियां कर ली हैं और युद्धके प्रधान मोर्चेपर पहुंच गये हैं। अमेरिकाकी हड़तालोंका जिक्र करते हुए उन्होंने कहा कि दो वर्ष पहले अमेरिकन जनता ऐसा नहीं करती थी, क्योंकि उन दिनों युद्धमें असफलता मिल रही थी और लोगोंको इस बातकी आशङ्का थी कि कहीं लड़ाईमें हार न जाना पड़े। अब हम जीतने लगे हैं, और बहुतोंको यह आशा हो रही है कि हम विजयी हो गये। वे इस बातको भूल गये हैं कि बहुतसे राष्ट्र, जिन्हें विजयकी पूरी आशा थी, युद्धमें हार गये हैं। प्रशान्तके मोर्चेके सम्बन्धमें अमेरिकन नौसेनाके कमाण्डर-इन-चीफने कहा है कि प्रशान्त अञ्चलमें सम्भवतः १९४४ में आक्रमण होगा और जर्मनीकी पराजयके पूर्व ही जापानपर आक्रमण करनेमें समस्त सङ्गठित शक्तिका उपयोग किया जा सकता है। कुछ लोगोंका यह ख्याल है कि जर्मनीकी पराजयके बाद जापानपर आक्रमण किया जायेगा। इस सम्बन्धमें आपने कहा कि जर्मनीकी पराजयके बाद नहीं, पर जर्मनीकी पराजय निकट समझकर, ऐसा किया जा सकता है। जापान-पर निर्णयात्मक आक्रमण करनेके लिए मार्ग निर्धारित किया जा चुका है। जापानको पराजित करनेके लिए साधारण रण-नीतिके अतिरिक्त और उपायोंसे भी काम लिया जायेगा। यूरोपीय मोर्चेकी मित्र-सेनाओंके कमाण्डर-इन-चीफ जनरल ईसेनहोवरने पत्रकारोंमें सम्मेलनमें कहा है कि हम १९४४ में विजयी होंगे। पर इस युद्धमें विजय प्राप्त करनेके लिए आवश्यकता इस बातकी है कि दोनों देशोंमें रहनेवाले सभी स्त्री-पुरुष अपने कर्तव्यका उचित रूपसे पालन करें। ब्रिटेनके लोगोंका अनुमान है कि यह युद्ध अभी १९४५ तक चलेगा। कुछ लोगोंका अनुमान है कि जापानके विरुद्ध मोर्चाबन्दी और भी ज्यादा दिन जारी रहेगी। कुछ ऐसे भी आशावादी हैं, जो १९४४ में ही युद्धका अन्त देख रहे हैं। १९४४ में युद्धका अन्त हो या न हो, पर यह सभी-की धारणा है कि १९४४ में यह अति प्रचण्ड रूप धारण करेगा। जापानके प्रधान मन्त्री जनरल तोजोने नववर्षका सन्देश देते हुए कहा है कि जापानके सामने अग्नि-परीक्षा-का समय उपस्थित हुआ है। एंग्लो-अमेरिकन-प्रत्याक्रमण-के फल स्वरूप युद्ध निर्णयात्मक स्थितिमें पहुंच गया है। उत्तर पूर्व एशियाका निर्माण और पतन तथा विजय या पराजय वर्तमान युद्धके परिणामपर निर्भर है। अब वह समय आ गया है, जब कि शक्तिशाली जापानी राष्ट्रको अग्नि-परीक्षा देनी होगी। हिटलरने नव-वर्षका सन्देश देते हुए कहा है कि १९४४ का वर्ष बहुत कठिन होगा। हमें शत्रुको उस समय तक चोट पहुंचाते जाना चाहिये, जब तक भगवान जर्मन राष्ट्रको अन्तिम विजय-लाभ नहीं कराते। सोवियट प्रेसिडेण्ट माईकेल कालिनिनने अपने सन्देशमें कहा है कि युद्धकी प्रगतिमें गत वर्ष महान परिवर्तनका रहा है। १९४३ में जर्मन सेनाको भारी पराजयका सामना करना पड़ा है और उसकी स्थिति अनिश्चित बन गयी है। फैसिस्टोंपर लाल सेनाने जो निर्णायक चोट पहुंचायी है, वह हिटलरके सेना-नायकोंपर स्पष्ट छाप जमा रही है। इस वर्ष लाल सेनाके साथ-साथ मित्र-राष्ट्र भी जर्मन फैसिस्ट सेनाओंसे लगातार युद्ध जारी रखेंगे। जर्मन फैसिस्टवादके विरुद्ध सम्मिलित संघर्षसे मित्रोंका राजनीतिक ध्येय शीघ्र पूरा होगा। इन सन्देशोंसे यह प्रकट होता है कि सबको अपनी विजयमें पूर्ण विश्वास है। पर विजय किसकी होगी, यह निश्चितरूपसे कोई नहीं कह सकता। १९४४ में युद्धका अन्त हो जायेगा, यह लक्षणोंसे तो प्रतीत नहीं होता, पर आगामी वर्षमें महायुद्ध एक विकराल स्थितिमें पहुंचेगा। और उसके बाद ही निर्णयात्मक रूपसे कहा जा सकेगा कि विजयश्री किसको प्राप्त होगी।
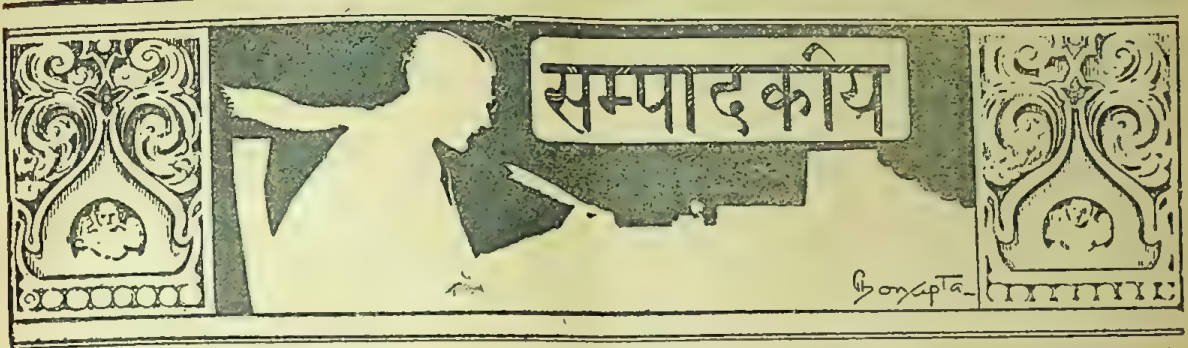
वायसरायका भाषण

गत २० दिसम्बरको स्थानीय एसोसियेटेड चेम्बर्स आफ कामर्सकी वार्षिक सभामें वायसराय लार्ड वावेलने जो भाषण दिया, उसमें उन्होंने अपनी शासन-नीति और उद्देश्यको व्यक्त कर दिया है। वायसरायकी हैसियतसे उनका यह प्रथम भाषण है, इसीलिए इसके पहलेसे ही कितने लोग यह आशा लगाये हुए थे कि वह अपने भाषणमें भारतकी राजनीतिक स्थितिमें कुछ परिवर्तन लानेकी सूचना देंगे। इस सम्बन्धमें समाचार-पत्रोंमें कई तरहके समाचार भी प्रकाशित हुए। महात्मा गान्धी तथा अन्य कांग्रेस-नेताओंकी रिहाई, राजनीतिक गतिरोधका अन्त, युद्ध-प्रयत्नमें कांग्रेसकी सहयोगिता प्राप्तिके लिए कांग्रेस नेताओंसे परामर्श और नववर्षके आरम्भमें भारत-सचिव मि॰ एमरीका पद-त्याग आदि विषयोंकी सम्भावनाओंके सम्बन्धमें तरह-तरहकी श्रुति-मधुर अफवाहें उड़ीं। किन्तु अन्तमें वायसरायने सबकी आशापर पानी फेर दिया। लार्ड वावेलने अपने भाषणमें उस पुरानी परिपाटीको भी तोड़ दिया है, जिसका पालन अब तकके वायसराय करते रहे हैं। वायसरायके पदपर आसीन होनेके बाद, लार्ड वावेलने अपने प्रथम सार्वजनिक भाषणमें, भारतकी वर्तमान राजनीतिक स्थितिपर कुछ भी प्रकाश नहीं डाला है। इसके पूर्व किसी भी वायसरायने ऐसा नहीं किया। बल्कि प्रति वर्ष इसी सभामें वायसराय अपने भाषणमें देशकी राजनीतिक अवस्थाकी आलोचना किया करते थे। इससे यही प्रतीत होता है कि लार्ड वावेल इस समय देशकी राजनीतिक समस्याको कुछ महत्व देना नहीं चाहते हैं, उनकी दृष्टिमें युद्धकी समस्या ही सबसे गम्भीर एवं गुरुतर समस्या है। पर वस्तुतः इस समय देशकी राजनीतिक और शासन-सम्बन्धी समस्याकी जटिलता अपनी चरम सीमापर पहुंच गयी है, इसलिए हम लार्ड वावेलसे, यह सुननेके लिए अत्यन्त उत्सुक थे कि देशकी वर्तमान राजनीतिक समस्याके सम्बन्धमें, उनके क्या विचार हैं और गतिरोधका अन्त करनेके लिए वह किस उपायका अवलम्बन करेंगे। पर उनके भाषणमें इसका उल्लेखमात्र भी नहीं है। उन्होंने यह स्वीकार किया है कि उन्होंने जान-बूझकर ही देशकी राजनीतिक समस्याका उल्लेख नहीं किया है। इस सम्बन्धमें अपनी सफाई देते हुए उन्होंने बतलाया है कि मुंहसे कुछ न कहनेपर भी, भारतकी राजनीतिक समस्याकी बात बराबर उनके मनमें रहती है। भारतकी महत्वाकांक्षाओंके प्रति उनकी सहानुभूतिमें भी कोई कमी नहीं है। उस समस्याका समाधान करनेके लिए युद्ध-समाप्ति तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, ऐसा वह नहीं समझते। पर उनका विश्वास है कि वर्तमान समस्याकी आलोचना करनेसे, उसके समाधानमें किसी तरहकी सहायता नहीं पहुंचेगी, इसीलिए उन्होंने इस सम्बन्धमें बिल्कुल चुप रहना ही श्रेयस्कर समझा। हम नहीं कह सकते कि किस कारण वायसराय महोदयको यह रुख अख्तियार करना पड़ा है। पर कारण जो भी हो, हम उनके इस मौनावलम्बनकी प्रशंसा नहीं कर सकते।

लार्ड वावेलने अपने भाषणमें मुख्यतः यूरोप और एशियाके युद्धकी गति और अवस्थाकी ही आलोचना की है। इसके अतिरिक्त युद्धमें भारतका भाग, भारतकी खाद्य-समस्या, मुद्रा-प्रसारकी नीति, कोयलेकी समस्या तथा युद्धोत्तर कालीन पुनर्गठन आदि विषयोंपर भी यथेष्ट प्रकाश डाला है। पूर्वी यूरोप और पश्चिमी एशियाके युद्धमें, भारतीय सेनासे जो सहायता मिली है, उसे लार्ड वावेलने इसके पहले भी स्वीकार किया है। इस भाषणमें भी उन्होंने उसका उल्लेख किया है। गत महायुद्धके समय भी, ब्रिटिश राज-नेताओंने भारतीय सेनाके ऋणको स्वीकार किया था,

पर, जब उसके परिशोध करनेका समय आया, तब उन्होंने कैसी कृपणता दिखलायी, हम उसे आज तक भी भूले नहीं हैं। वह कटु-स्मृति आज भी ताजी बनी हुई है। अतः लार्ड वावेलके इस ऋण-स्वीकारको हम विशेष महत्व नहीं दे सकते। यह संवाद सुननेमें आया था कि जापानके विरुद्ध युद्ध-प्रयासमें पूर्ण सफलता पानेके लिए कांग्रेसका सहयोग पाना आवश्यक है। इसी उद्देश्यसे नये वायसराय कांग्रेस-नेताओंको अविलम्ब मुक्तकर, उनसे समझौता करनेकी व्यवस्था करेंगे। परन्तु लार्ड वावेल इस प्रसङ्गमें बिलकुल मौन हैं। यदि उनका यह मौनावलम्बन, इस प्रसङ्गमें उनकी निष्क्रियताका परिचायक है, तो उन्हें अपनी कार्य-नीतिमें परिवर्तन करनेकी आवश्यकता है। अन्यथा उनका शासन-काल भी, भारतीय राजनीतिक समस्याका समाधान करनेमें उनके पूर्ववर्ती लार्ड लिनलिथगोके शासन-कालकी भांति ही व्यर्थ सिद्ध होगा।

हिन्दू-महासभा

बड़े दिनके अवसरपर अमृतसरमें, हिन्दू महासभाका रजत-जयन्ती उत्सव मनाया गया। इस अधिवेशनके सभापति थे, डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी। आपने अपने भाषणमें भारतकी वर्तमान राजनीतिक अवस्थाकी, नाना दृष्टिकोणोंसे आलोचना की। आपके भाषणमें एक विषयकी ओर सबकी दृष्टि आकर्षित होगी। आपने कहा है कि ब्रिटिश राज-नेता हमसे कहते हैं कि भारतमें साम्प्रदायिक एकता नहीं है। इसीलिए वे भारतकी स्वाधीनताकी मांग स्वीकार नहीं कर सकते। पर इस साम्प्रदायिक अनैक्यके लिए कौन जिम्मेदार है? डा० मुखर्जीने ऐतिहासिक तथ्योंके आधारपर यह प्रतिपादित किया कि ब्रिटिश शासक ही इसके लिए जिम्मेदार हैं। उन्होंने भारतके सभी शासन-सुधारोंके मार्गसे इस साम्प्रदायिक अनैक्यको दृढ़ किया है। इसलिए डा० मुखर्जीका यह विश्वास है कि जब तक ब्रिटेन अपने प्रभुत्वको त्याग नहीं देता, तब तक ब्रिटिश शासकोंकी भेद-नीतिसे उत्पन्न, भारतके इस साम्प्रदायिक अनैक्यका अन्त नहीं हो सकता। इसलिए इस अनैक्यको मिटानेके लिए सबसे पहले देशमें स्वाधीनता स्थापित होनेकी आवश्यकता है। इस बीसवीं सदीमें, राष्ट्र-शासन सम्बन्धी मामलोंमें धर्म और साम्प्रदायिकताको विशेष महत्व देना, इस देशके शासकोंके लिए ही सम्भव हो सका है। इसीलिए उन्हें मुसलिम लीगके अधिनायक मि० जिन्ना और उनके कुछ अनुयायियोंका समर्थन प्राप्त है। संसारमें और भी कई मुसलिम प्रधान देश हैं, जैसे तुर्की, मिस्र, लेबनान और सीरिया। इन देशोंमें कभी भी मध्ययुगीय मनोवृत्तिका परिचय नहीं मिलता। देशमें किसी एक सम्प्रदायका शासन कायम होना, देशकी राष्ट्रीयताके लिए घातक है। हिन्दूराष्ट्र और मुसलिमराष्ट्रकी आवाज बुलन्द कर हम देशको स्वाधीन नहीं कर सकते। हिन्दू, मुसलिम, ईसाई आदि सभी सम्प्रदायोंके सम्मिलित भारतीय राष्ट्रसे ही देशका कल्याण होगा। उस राष्ट्रमें, देशकी शासन-नीतिमें, धर्म और साम्प्रदायिकताको प्रश्रय नहीं मिलेगा। अतः इस सङ्कीर्ण मनोवृत्तिसे ऊपर उठकर हिन्दू-मुसलमान सभी इस सत्यको स्वीकार करें। हमें हर्ष है कि इस बार हिन्दू महासभाने, अपनी पुरानी परम्पराको छोड़कर, यथेष्ट उदार नीतिका परिचय दिया है। हमें आशा है कि डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जीके अधिनायकत्वमें वह अपने सङ्कीर्ण दायरेसे ऊपर उठकर देशमें भारतीय राष्ट्र कायम करनेके लिए प्रयत्न करेगी।

बङ्गालके नये गवर्नर

बङ्गालके भूतपूर्व गवर्नर सर जान हर्बर्टके स्थानपर, सम्राटकी सरकारने मध्यपूर्वके राष्ट्र-सचिव मि० रिचर्ड गार्डिनर केसीको नियुक्त किया है। ये आस्ट्रेलियन हैं। अब तक भारतके प्रान्तीय गवर्नरों या वायसरायोंकी नियुक्ति, ब्रिटेन-वासियोंमेंसे होती थी, यह पहलाही मौका है कि एक उपनिवेशके निवासीको भारतके एक प्रान्तके शासक होनेका गौरव प्रदान किया गया है। इस नियुक्तिके साथ ही, पुरानी परिपाटीके अनुसार, ब्रिटिश-पत्रों और राज-नेताओंने मि० केसीकी योग्यताकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है और कहा है कि बङ्गालका सौभाग्य है कि उसे ऐसा योग्य शासक मिल रहा है। पर भारतीयोंके हृदयपर, इस नियुक्तिका क्या प्रभाव पड़ा है, इसे डा० हृदय नाथ कुंजरूने स्पष्ट शब्दोंमें व्यक्त कर दियाहै—आपने कहा कि मि० केसी आस्ट्रेलियावासी हैं, जो एक ऐसा उपनिवेश है, जहां भारतीयोंके प्रवेश और प्रवासपर प्रतिबन्ध है। वहां भारतीयोंको स्थायीरूपसे बसनेके लिए इजाजत नहीं दी जा सकती। यदि भारतीय आस्ट्रेलियाके नागरिक बनने योग्य नहीं समझे जाते, तो मि० केसी कितने ही योग्य क्यों न हों, अपवाद नहीं समझे जा सकते। हम लोग साम्राज्यकी चरण-पादुका समझे जा रहे हैं, यह नियुक्ति भारतके लिए अपमानजनक है। वस्तुतः इससे बढ़कर भारतीयोंके लिए अपमानजनक और क्या हो सकता

है ! जिस देशमें हम काले होनेके कारण, बसनेके अधिकारी नहीं हैं, उसी देशका एक निवासी हमारी इच्छाके विपरीत हमारे ऊपर शासन करनेके लिए नियुक्त किया जाय, यह हमारी पराधीनताका अभिशाप है। इस सम्बन्धमें हम कुछ करनेमें असमर्थ हैं, फिर भी हम अपने विक्षोभको प्रतिवाद द्वारा तो प्रकट कर ही सकते हैं। मि० केसीकी शासन सम्बन्धी योग्यता और अभिज्ञताकी बड़ी प्रशंसा की जा रही है, पर उनका राजनीति और शासन-सम्बन्धी अनुभव दस वर्षसे ज्यादा नहीं होगा। आजसे दस वर्ष पहले वह आस्ट्रेलियाके मन्त्रि-मण्डलके सम्पर्कमें आये। सबसे उल्लेखनीय बात तो यह है कि जिस देशके एक प्रान्तका शासक होकर वह आ रहे हैं, उसके सम्बन्धमें उनकी कुछ भी जानकारी नहीं है। वर्तमान सङ्कट-कालमें, बङ्गालका गवर्नर किसी ऐसे ही व्यक्तिको बनाना चाहिये था, जिसे भारतके शासन सम्बन्धी यथेष्ट अभिज्ञता हो। आश्चर्य है कि ऐसा व्यक्ति ब्रिटेनमें नहीं मिला। भारतमें ऐसे व्यक्तियोंकी कमी नहीं थी। पर लार्ड सिंहके बाद यह सुयोग अब तक किसी भारतीयको नहीं दिया गया और सम्भवतः कभी न दिया जायेगा, क्योंकि हम देखते हैं कि कितने ही ऊंचे पदोंपर भारतीयोंके नियुक्त करनेकी न्यायसङ्गत मांग कई बार ठुकरा दी गयी है।

युद्धोत्तर भारतकी स्थिति

इस समय देशमें जो नाना प्रकारकी समस्यायें उठ खड़ी हुई हैं, उनके सम्बन्धमें हमारे देशके शासक यह स्वीकार नहीं करते कि राजनीतिक बन्दियोंकी मुक्तिसे उनके सुलझानेमें सहूलियत मिलेगी। उस दिन पार्लामेण्टकी कामन्स-सभामें भारतमन्त्री मि० एमरीने कहा कि भारतकी खाद्य-समस्या और युद्धोत्तर-पुनर्गठन-समस्यासे राजनीतिक बन्दियोंकी मुक्तिका कोई सम्पर्क नहीं है। हाल ही में सुप्रसिद्ध अमेरिकन राजनीतिज्ञ मि० हैरी हापकिनने ब्रिटिश जातिकी गणतन्त्र-वृत्तिकी बड़ी प्रशंसा की है। आपने कहा अङ्गरेजोंके समान गणतन्त्र-मनोवृत्ति-सम्पन्न जाति किसी नये देशको दखलकर उसे अपने अधीन रखना चाहेगी, यह स्वप्नमें भी विश्वास नहीं किया जा सकता। नये देशोंके सम्बन्धमें ब्रिटिश जातिकी गणतन्त्र-मनोवृत्ति चाहे जितनी जाग्रत हो, परन्तु पुराने अधीन देश भारतके सम्बन्धमें तो उस उदार चेतनाका कहीं आभास नहीं मिलता। मि० एमरीके वक्तव्यसे तो यही प्रतीत होता है। मि० एमरी चाहे जो कहें, दुनियाको चाहे जो बतलायें, पर कांग्रेसके बड़ेसे बड़े विरोधी भी यह स्वीकार करते हैं कि कांग्रेसके जो नेता आज सरकारकी जेलोंमें बन्द हैं, वे भारतीय जन-साधारणके प्रतिनिधि हैं। इसलिए इन नेताओंके बिना देशकी किसी भी समस्याका उचित समाधान नहीं हो सकता। आज ब्रिटिश ही भारतके शासक, अभिभावक और कर्ता-धर्ता हैं। युद्धोत्तर कालमें भी उनका यह प्रभुत्व पूर्ववत कायम रहेगा। इसी बातको मुख्यतः लक्ष्यमें रखकर ब्रिटिश सरकारकी भारत सम्बन्धी नीति सञ्चालित होती है। ऐसी अवस्थामें ब्रिटिश सरकार, युद्धके बाद स्वाधीनता प्रदान करेगी, ऐसा कोई निपट अबोध भी विश्वास नहीं कर सकता। मि० चर्चिल और उनके मन्त्रि-मण्डलने स्पष्ट शब्दोंमें घोषित कर दिया है कि 'अटलाण्टिक चार्टर' भारतके सम्बन्धमें लागू नहीं होगा। उन्होंने चार्टरकी व्याख्याकर बतलाया है कि जर्मनीने जिन देशोंकी स्वाधीनताका अपहरण कर लिया है, उन्हीं सब देशोंके लिए यह चार्टर है। पर इस बार तेहरानमें स्टालिनकी उपस्थितिमें जिस निश्चयपर समझौता हुआ है, उसमें इस तरहकी कोई त्रुटि नहीं है। उस निश्चयमें, स्पष्टरूपमें, विश्वके सभी जातियोंके स्वातन्त्र्य-अधिकारको स्वीकार किया गया है। इस निश्चयके अनुसार सभी देशोंको, अपनी इच्छाके अनुसार, अपना शासन-विधान बनानेका अधिकार होगा। किसी देशपर किसी दूसरे देशका अधिकार नहीं होगा। यद्यपि इस समझौतेपर स्टालिनने हस्ताक्षर किया है, फिर भी केवल इसीलिए हम विश्वास नहीं कर सकते, कि युद्धके बाद इसका पूर्णरूपसे पालन किया जायेगा। हमें इस सत्यको अच्छी तरह हृदयङ्गम कर लेना चाहिये। सभी देश अपने-अपने स्वार्थ-साधनकी फिक्रमें लगे हुए हैं। भारत स्वाधीन रहेगा या पराधीन रहेगा, इस चिन्तासे कोई व्यग्र नहीं है। उसकी चिन्ता तो स्वयं भारतवासियोंको है और उन्हें ही अपने बलपर स्वाधीनता प्राप्त करनी है।

सचाईकी कसौटी

मि० फेनर ब्राकवे ब्रिटिश साम्राज्य-नीतिके तीव्र आलोचक हैं। भारतीय मामलोंमें काफी दिलचस्पी लेनेके कारण, वह इस देशवासियोंके लिए सुपरिचित हैं। तेहरान कान्फ्रेन्समें चर्चिल, रूजवेल्ट और स्टालिनने मिलकर जो घोषणा की है कि वे संसारकी सभी जातियोंके लिए गणतन्त्रकी कामना करते हैं। मि० फेनर ब्राकवेका कहना है कि ब्रिटिश सरकार इस सम्बन्धमें अपनी सचाई और आन्तरिकताको प्रमाणित करनेके लिए भारतवर्ष और अन्यान्य

अधीनस्थ देशोंको स्वतन्त्र कर दे। भारत-सचिव भला कब चुप रहनेवाले हैं, उन्होंने मि० ब्राकनेको उत्तर देते हुए कहा कि अटलाण्टिक चार्टरके अनुसार भारतवासियोंको इसके पहले ही अधिकार दे दिया गया है। अब तेहरानकी घोषणाके अनुसार उसे अधिकार देनेमें उन्हें कोई आपत्ति नहीं है। तेहरान-घोषणाके अन्तर्गत लोकतन्त्रानुयायी शासनका भाष्य करते हुए मि० एमरीने बतलाया कि भारतवर्षके सभी लोग स्वतन्त्रता नहीं चाहते। इसके प्रमाणके लिए, ब्रिटिश शासकोंके पास मुसलिम लीगकी पाकिस्तान-योजनाकी दलील है। अमेरिकाके अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा-समितिके डाइरेक्टर मि० स्टिफेन डूगेनने एक लेखमें स्पष्ट बतलाया है कि युद्धके बाद भी सम्भवतः भारतको स्वाधीनता प्राप्त न होगी। युद्धके आरम्भमें हिन्दुओंके उग्रभाव और मुसलमानोंकी पाकिस्तानी योजनाने ब्रिटिश जातिके मनोभावको चञ्चल कर दिया है। मि० डूगेनके इस वक्तव्यको हम विशेष महत्व देना नहीं चाहते, क्योंकि हम जानते हैं कि ब्रिटिश जातिके दिये भारतको स्वाधीनता नहीं मिल सकती और न अटलाण्टिक चार्टर अथवा तेहरान कान्फरेन्सकी घोषणा ही उसे स्वाधीन कर सकती है। इस प्रकार मिली हुई स्वाधीनताका मूल्य ही क्या है। वैसी स्वाधीनता तो एक प्रकारकी पराधीनता ही होगी।

मि० जिन्नाकी मांग

वर्तमान युगमें धार्मिक संकीर्णता और साम्प्रदायिकता के दिन लद गये हैं। अब यह अनुभव किया जाने लगा है कि इस सङ्कीर्ण मनोवृत्तिसे स्वाधीनताकी भावना कहीं उच्च है। नव-युवकोंमें इस भावनाका निरन्तर सञ्चार हो रहा है। मि० जिन्ना चतुर राजनीतिज्ञ हैं। देशमें बहती हुई इस भावधाराको लक्ष्यकर, उन्होंने अपनी नीतिमें समयानुसार परिवर्तन करना आवश्यक समझा, क्योंकि बिना ऐसा किये, उनकी नेतागिरी कायम नहीं रह सकती। इसीलिए इस बार कराचीमें मुसलिम लीगके सभापतिकी हैसियतसे भाषण देते हुए उन्होंने पुराने पाकिस्तानी नारेको स्वाधीनताकी मांगका जामा पहनानेकी चेष्टा की है। उन्होंने इस बार ब्रिटिश जातिको यह देश छोड़कर चले जानेकी नोटिस दी है। पर साथ ही, मुसलमानोंके नेता होनेके नाते उन्हें अपने भाइयोंके हितके लिए अपना कर्तव्य पालन भी करना था, इसलिए उन्होंने अङ्गरेजोंसे कहा कि तुम लोग चले तो जाओ, पर भारतका बंटवारा करके जाओ। कायदे आजम मि० जिन्नाकी यह विचित्र मांग है। यह न तो युक्तिसङ्गत है, न व्यावहारिक। यदि अङ्गरेज, यहांसे चले ही जायेंगे, तो वे इस देशको टुकड़े-टुकड़े कर देनेका कष्ट क्यों उठायेंगे। उनके चले जानेके बाद हिन्दू-मुसलमानोंके भाग्यमें जो लिखा होगा, होगा। वे अपने-अपने हिस्सेका बंटवारा, आपसमें चाहे जिस तरह हो, कर लेंगे। और वे जिन्ना साहबके कह देनेमात्रसे, इस देशको छोड़कर जाने ही क्यों लगे? मि० जिन्नाको मालूम होना चाहिये कि नारोंके बलसे, किसी देश या किसी युगमें स्वाधीनता नहीं अर्जित की जा सकेगी। स्वाधीनता लेनेके लिए शक्ति चाहिये। यदि भेदनीतिके फल-स्वरूप राष्ट्र निर्बल हो गया है, तो उसमें स्वाधीनता लेनेके लिए कहांसे शक्ति आ सकती है। उस दशामें तो देशमें विदेशी शासन ही दृढ़ होगा। इसलिए मि० जिन्नाकी स्वाधीनताकी मांगका कुछ महत्व नहीं।

तुर्कीकी तटस्थता

कैरो-सम्मेलनके समय तुर्कीके राष्ट्रपति इनोनू भी वहीं उपस्थित थे। मि० चर्चिल और रुजवेल्टसे, युद्धमें तुर्कीकी स्थितिके सम्बन्धमें उनकी बातचीत हुई। इस सिलसिलेमें तुर्कीके परराष्ट्र सचिवने यह घोषित किया है कि तुर्की अब तक जिस तटस्थताकी नीतिका पालन करता आ रहा है, भविष्यमें भी उसकी वही नीति अटूट रहेगी। जनरल स्मट्सने जो यह व्यंगोक्ति की थी कि जो इस समय त्रिशक्तिकी छत्रच्छायासे अपनेको अलग रखेंगे, उनकी मृत्यु अवश्यम्भावी है, इससे तुर्कीको जरा भी व्यग्रता या उत्तेजना नहीं हुई। इस समय तुर्की ही एशियामें सबसे उन्नतिशील गणतन्त्रदेश है। वह यदि अपनेको युद्धाग्निकी लपटोंसे बचा सके, तो इससे बढ़कर उसके कल्याणके लिए और कोई बात नहीं। पर यह सम्भव नहीं कि वह तटस्थ रहकर, दूसरे युद्धकी गतिविधिको देखता रहे। उसे एक-न-एक दिन अवश्य ही क्रियात्मक रूपसे युद्धमें भाग लेनेको वाध्य होना पड़ेगा।

'विश्वमित्र' प्रेस, १४।१ ए, शम्भू चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्तासे नवलकिशोर सिंह द्वारा मुद्रित और प्रकाशित।

सचित्र मासिक
मई
१९४४
विश्वमित्र
मूल्य
॥)
विश्वमित्र कार्यालय
कलकत्ता

सम्पादक—
रामाशीष सिंह

मई, १९४४ वर्ष १२ संख्या ८ वैशाख, २००१

समादर गान

सादर स्वागत मैं करता हूं।
महिमामय महिमा अवलोके,
भक्ति-भावनासे भरता हूं।

सुकृतिनिरतकी कान्त कथायें,
सुन नितान्त पुलकित होता हूँ !
मानवतारतको बिलोक उर भूमें,
प्रेम-बीज बोता हूं।

सज्जनता सर्वस्व महत्ता,
देख चित्त मोहित बनता है।
है धन्य वितान कीर्तिका,
भुवन गगनमें जो तनता है॥

—हरिऔध।

भारतवर्षमें कृषि-ऋणका प्रश्न

प्रो० प्रेमनारायण माथुर

हमारे देशकी आर्थिक व्यवस्थामें कृषि-उद्योगको जो आधारभूत महत्व प्राप्त है, उससे प्रत्येक व्यक्ति अच्छी तरह परिचित है। देशके आर्थिक सुधारकी कोई योजना उस समय तक सफलीभूत नहीं हो सकती, जब तक कि कृषिकी वर्तमान असन्तोषजनक स्थितिका कोई वास्तविक हल ढूंढ़ नहीं निकाला जाता। इस प्रश्नका केवल आर्थिक पहलू हो, सो बात नहीं है। देशकी राजनीतिक स्थितिसे भी इसका गहरा सम्बन्ध है। किन्तु यहां तो हमको कृषि-सुधारसे सम्बन्ध रखनेवाले केवल एक प्रश्नपर ही विचार करना है। वह प्रश्न है हमारे ग्रामीण ऋण का।

भारतका किसान आज ऋणके बोझसे कराह रहा है, यह एक नग्न सत्य है। जब तक वह अपने इस भीषण भारसे मुक्त नहीं होता, जीवनसम्बन्धी उसके वर्तमान निराशावादी दृष्टि-कोणमें किसी प्रकारके परिवर्तनकी कल्पना करना ही निराधार है। उसको न कृषि-उद्योगको उन्नत बनानेवाले सुधार ही तब तक आकर्षित कर सकते हैं, और न अन्य कोई बात ही। अतः यदि हम चाहते हैं कि हमारे देशका किसान सुखी और समृद्धिशाली बने, जीवनके प्रति उसकी जो उदासीनता आज देखनेको मिलती है, उसका अन्त हो, तो यह आवश्यक है कि हम उसकी आर्थिक स्थितिको ठीक करनेके उपाय सोचें, और उन उपायोंमें सबसे आधारभूत बात उसे ऋण-मुक्त करने की है, इस तथ्यको भली भांति समझें।

देशके कृषि-ऋणके परिमाणका अनुमान समय-समयपर विभिन्न व्यक्तियों और कमेटियों द्वारा लगाया गया है। इस सम्बन्धमें सबसे अन्तिम अनुमान केन्द्रीय बैङ्किङ्ग कमेटीका है, जिसकी रिपोर्ट सन् १९३० में प्रकाशित हुई थी। इस कमेटीके अनुसार ब्रिटिश भारतका कुल कृषि-ऋण लगभग नौ सौ करोड़ रुपयेके था। इसके पश्चात् संसारव्यापी आर्थिक मन्दीके कारण कृषि-ऋणके परिमाण और उसके बोझमें अवश्य ही वृद्धि हुई, इसमें कोई शङ्का नहीं है। श्री० पी० जे० टोमसने अपनी 'ग्रामीण ऋणकी समस्या' (दी प्रोब्लेम आव रूरल इण्डेटेडनेस) नामक पुस्तकमें केवल ब्रिटिश भारतके ग्रामीण ऋणका अनुमान ही बारह सौ करोड़ रुपया लगाया है। यह सही है कि वर्तमान युद्धके कारण चीजोंके मूल्यमें जो वृद्धि हुई है, उसका प्रभाव कृषि-ऋणके बोझको अपेक्षाकृत हलका करना और उसकी वृद्धिकी मात्राको कम करना अवश्य हुआ है, किन्तु इसका यह तात्पर्य तो कभी भी नहीं हो सकता कि केवल इसी कारणसे इस समस्याकी गम्भीरता पहलेसे कम हो गयी है। साथ ही यह बात भी ध्यानमें रखनेको है कि युद्धके बाद जो आर्थिक मन्दीका समय आयेगा, यदि उससे बचनेके लिए पहलेसे ही सरकार कोई सही योजना नहीं बनाती है, तो उसके कारण ग्रामीण-ऋणका बोझ और भी अधिक हो जायेगा। अस्तु, यह स्पष्ट है कि ग्रामीण-ऋणका प्रश्न अत्यन्त महत्वपूर्ण है और इसे हल करनेका कोई-न-कोई कारगर उपाय शीघ्रसे शीघ्र व्यवहारमें लाना अत्यन्त आवश्यक है।

भारतीय कृषि-ऋणकी समस्याको ठीक-ठीक समझनेके लिये हमें एक बात ध्यानमें अवश्य रखना चाहिये। हमारी चिन्ताका कारण हमारे ऋणका कुल परिमाण अथवा उसकी वृद्धिकी दर नहीं है। भारत-जैसे विशाल देशके लिए, जो कि साथ ही कृषि-प्रधान भी है, इतनी मात्रामें कृषि-ऋणका होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं। वास्तवमें विचारणीय बात तो यह है कि इस ऋणका एक बहुत बड़ा भाग उत्पादक कार्यके लिए न लिया जाकर रोजमर्राके व्ययके लिए लिया हुआ है। दूसरे शब्दोंमें हमारे ऋणकी एक यथेष्ट मात्रा अनुत्पादक ऋणकी है। और इसमें बहुत बड़ा अन्तर पड़ जाता है। उत्पादक कार्यके लिए लिया गया ऋण चुकाना आसान होता है, क्योंकि जिस उत्पत्तिके कार्यमें वह रुपया व्यय किया जाता है, उसीसे उसको चुकानेके साधन भी उपलब्ध हो जाते हैं। किन्तु अनुत्पादक कार्यमें खर्च होनेवाले रुपयेके सम्बन्धमें यह बात लागू नहीं होती। इसीलिए इस प्रकारके ऋणसे मुक्त होना सदा ही एक समस्याके रूपमें रहता है। और यही भारतीय ऋणकी समस्याका मूल कारण है।

ग्रामीण-ऋणके एक नहीं अनेकों कारण हैं। उनको पहले समझ लेना आवश्यक है। सबसे पहली बात तो यह है कि हमारे देशमें जिन परिस्थितियोंमें आज कृषि की जाती है, वे अत्यन्त असन्तोषजनक हैं। किसानको खेती-

से कोई लाभ नहीं होता, जीवनकी साधारण और प्रारम्भिक आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेमें भी वह आज असमर्थ है। खेती तो वह इसलिए करता है कि उसके पास करनेको और कुछ है नहीं। आज तो कृषि जीविकोपार्जनका नहीं, जीवित रहनेका साधन है। कृषिकी इस बिगड़ी हुई अवस्थाके कई कारण हैं, जिनके विस्तारमें जाना यहां सम्भव नहीं। भूमिपर जन-संख्याका बोझ, जमीनका छोटे-छोटे टुकड़ोंमें बंटा होना, सहायक उद्योगोंका अभाव, क्रय-विक्रय और साखकी असन्तोषप्रद व्यवस्था तथा भूमि-करकी अधिकता आदि कई बातें हैं, जिनकी वजहसे भारतीय कृषि-उद्योगकी आज ऐसी गिरी हुई अवस्था है। इसका परिणाम यह होता है कि अपने जीवन-निर्वाहके लिए ही किसानको साहूकारकी शरणमें जाना पड़ता है। इसके अतिरिक्त जब उसके सामने किसी भी प्रकारके विशेष व्ययका प्रश्न आ जाता है, फिर उसका सम्बन्ध चाहे शादी-ब्याहसे हो अथवा मृत्यु-भोजसे, अथवा बैल-खरीदसे या अन्य कोई कृषि-औजार मोल लेनेसे, उसके लिए कर्ज लेनेके सिवाय और कोई मार्ग ही नहीं रह जाता। पैतृक-ऋण, ग्रामीण साख-व्यवस्थाकी असन्तोषजनक स्थिति और उसमें महाजनका प्राधान्य, आधुनिक कचहरियों और कानूनी व्यवस्थामें ऋण वसूल करनेकी अपेक्षाकृत अधिक सुविधा, भूमिके मूल्यमें वृद्धि होनेसे किसानकी साखमें वृद्धि, भूमि-करका बोझ, प्राचीन ग्राम-व्यवस्थाका ह्रास—कुछ अन्य ऐसे कारण हैं, जिन्होंने हमारे ग्रामीण-ऋणके प्रश्नको और भी अधिक जटिल बना दिया है। यह हुई उन बाहरी परिस्थितियोंकी बात, जिनके कारण भारतीय किसानके ऋणका बोझ बराबर बढ़ता ही जाता है। किन्तु किसानकी अपनी अदूरदर्शिता, उसकी रूढ़ि-प्रियता, रुपया हाथमें आजानेपर उसे खर्च कर डालनेकी प्रवृत्ति आदि भी कई ऐसी बातें हैं, जिन्हें हमारे ग्रामीण ऋणका एक-न-एक हदतक कारण मानना चाहिए। यह दूसरी बात है कि किसानकी परिस्थिति ही आज बहुत सीमातक उसकी अदूरदर्शिता, रूढ़ि-प्रियता, आदिका कारण भी है।

अब हमारे सामने जो असली प्रश्न है, वह है इस समस्याको सुलझानेका। यदि हम इस सम्बन्धमें तनिक विचार पूर्वक सोचें, तो यह स्पष्ट होते देर न लगेगी कि हमारे ग्रामीण-ऋणके प्रश्नको हल करनेका कोई एक उपाय नहीं है। कई ओरसे हमें इस समस्याको सुलझानेका प्रयत्न करना होगा। इन उपायोंको हम पांच भागोंमें विभाजित कर सकते हैं। ये उपाय इस प्रकार हैं:—(१) पैतृक ऋणसे मुक्ति, (२) वैज्ञानिक और सही आधारपर ग्रामीण-साखकी व्यवस्था, (३) कर्जदार किसानकी सम्पत्ति तथा उसे अपनेको महाजनके शोषणसे बचाना, (४) किसानको भविष्यके लिए कुछ न कुछ बचानेका महत्व समझाना और व्यय करनेके सही सिद्धान्तोंमें उसको शिक्षित करना, तथा (५) उसकी आयमें वास्तविक वृद्धि करना। इन विभिन्न उपायोंके सम्बन्धमें कुछ अधिक लिखनेके पूर्व इस बातको और अधिक स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि जबतक समस्त उपायोंको एक साथ न अपनाया जायेगा, केवल एकांगी ढङ्गसे हमारे किसानोंकी ऋण-समस्याका हल असम्भव है।

सबसे पहले हम किसानकी आयमें आवश्यक वृद्धिके प्रश्नपर ही विचार करेंगे। अपने आप यह एक स्वतन्त्र विषय है। अधिक विस्तारके साथ इस लेखमें इस विषयपर चर्चा करना कठिन है। परन्तु कुछ आधारभूत बातोंकी ओर संकेत कर देना आवश्यक होगा। सबसे अधिक महत्वकी बात तो यह है कि कृषि-सुधारका प्रश्न हमारी सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्थाके सुधारके प्रश्नसे पृथक नहीं किया जा सकता। उदाहरणके लिए कृषिमें लगी हुई अतिरिक्त जन-संख्याको कृषिसे हटाना आवश्यक है। किन्तु यह तभी सम्भव हो सकता है जब कि उनके लिए अन्यत्र काम प्राप्त किया जा सके। दूसरे शब्दोंमें इसका अर्थ है देशमें उद्योग-धन्धोंका प्रसार—न केवल बड़े पैमानेपर चलनेवाले उद्योगोंका, लेकिन बीचके दर्जे और छोटे पैमानेपर चलनेवाले उद्योगोंका भी। साथ ही किसानको अधिक वैज्ञानिक ढङ्गसे खेती करनेके उपाय और साधन तथा सुविधा प्राप्त हो—इसका भी ध्यान रखना होगा। उसके द्वारा उत्पन्न पदार्थोंके विक्रयकी उचित व्यवस्था, आवश्यक साखका प्रबन्ध, आदि कई अन्य समस्याओंको भी हल करना पड़ेगा। ये सब कार्य बिना राज्यकी सक्रिय सहायताके होना असम्भव है। सहकारिता आन्दोलनका देशकी कृषि-सुधार योजनामें अनेकों प्रकारसे बड़ा महत्व है, परन्तु सबसे अधिक महत्व हमारे वर्तमान आर्थिक उद्देश्य, सिद्धान्त और सम्बन्धोंमें आवश्यक परिवर्तन करनेका है। वर्तमान अन्यायपूर्ण-आर्थिक सम्बन्धोंको हमें सर्वथा नष्ट करना होगा, प्रगति-विरोधी स्वार्थों और हितोंकी ओरसे आनेवाली अड़चनोंको पार करना होगा। इन तमाम बातोंसे इस कार्यकी जटिलता सिद्ध हो जाती है और

उसमें सफलता तभी मिल सकती है, जब कि सरकार आगे होकर इस दिशामें कुछ करे। इसका साफ शब्दोंमें यह अर्थ निकलता है कि हमारी सरकार वास्तवमें जन-हितकी संरक्षिका हो। राष्ट्रीय सरकारके अलावा इस प्रकारकी आशा हम और किससे रख सकते हैं? यहां भी हम अपनी पराधीनताके एक मात्र राष्ट्रीय प्रश्नसे आ टकराते हैं।

इसी प्रकार जहां तक ग्रामीण-जनताको अधिक शिक्षित बनाने, उसमें कुछ-न-कुछ बचानेकी आदत डालने, तथा उसको सामाजिक रूढ़िवादितासे मुक्त करनेका प्रश्न है—हम जानते हैं कि इस प्रकारके सुधारोंके लिए काफी समय और साधन चाहिए। और इस मामलेमें भी राज्यका दायित्व काफी बड़ा है। सहकारिता-आन्दोलन भी इस दिशामें बहुत-कुछ कर सकता है, यह स्पष्ट है। आवश्यक शिक्षा-प्रसार और प्रचार इस सम्बन्धमें बहुत हदतक सहायक हो सकता है, इससे भी इनकार नहीं किया जा सकता है।

तीसरा प्रश्न किसानको उसके मौजूदा ऋणसे मुक्त करनेका है। इसका महत्व बहुत बड़ा है। यहां इतना-सा संकेत करना ही काफी होगा कि जब तक किसानको इस बातका आश्वासन नहीं हो जाता कि उसको अपनी मेहनतका पूरा-पूरा लाभ मिल सकेगा, उसे खेतीमें किसी प्रकारकी उन्नति करनेका कोई विशेष उत्साह नहीं हो सकता। अपनी मौजूदा स्थितिमें किसानको यह आश्वासन नहीं मिल सकता। एक ओर तो उसे राज्य-करमें वृद्धिका भय बराबर बना रहता है और दूसरी ओर महाजनका। उसकी वर्तमान मनोवृत्ति यह है कि जीवनकी न्यूनतम आवश्यकताओंसे जितना अधिक वह उत्पन्न करेगा, वह या तो राज्यके कोषमें चला जायेगा, या महाजनके घरमें। अतः वह क्यों इस बातकी चिन्ता करे कि उसकी उत्पत्ति बढ़े? यह केवल कल्पनाकी बात नहीं है। ऋणका बोझ इस दिशामें कितना प्रभावशाली है, इसका बहुत अच्छा अनुमान भावनगर राज्यके अनुभवसे लगाया जा सकता है। किसानको ऋण-मुक्त करनेके क्षेत्रमें वहांके भूतपूर्व स्वर्गीय दीवान श्री प्रभाशङ्कर पट्टानीने जो सफल प्रयोग किया और उसके कारण ऋण-मुक्त किसान जिस-प्रकार खेतीमें उन्नति करनेके लिए उत्साहित पाया गया, वह इस बातका प्रमाण है कि यदि हम भारतीय किसानकी अवस्थामें सुधार करना चाहते हैं और उसे देशका एक उपयोगी और क्रियाशील व्यक्ति बनाना चाहते हैं, तो हमें सबसे पहले उसे ऋण-मुक्त करना होगा।

किसानको उसके मौजूदा ऋणके बोझसे हल्का करनेके लिए पिछले वर्षों में विभिन्न प्रान्तीय सरकारों द्वारा अवश्य कुछ उल्लेखनीय प्रयत्न किये गये हैं। सन् १९२९ में जब विश्वव्यापी आर्थिक मन्दीका प्रारम्भ हुआ और भारतीय किसानकी आर्थिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गयी तथा उसपर ऋणका बोझ पहलेसे भी बहुत अधिक हो गया, तो सबसे पहले यह प्रश्न गम्भीररूपमें सामने आया कि किसानको ऋणसे मुक्त करना चाहिये और इस दिशामें कुछ-न-कुछ कारगर उपाय अमलमें लाना सरकारका कर्तव्य है। इसके बाद, जब सन् १९३७ में नये विधानके मातहत कांग्रेस-मन्त्रिमण्डलोंकी स्थापना हुई, तो उन्होंने इस प्रश्नकी ओर विशेष रूपसे ध्यान दिया। अन्य प्रान्तोंमें भी, जहां कांग्रेस-मन्त्रिमण्डल नहीं थे, इस दिशामें प्रयत्न किये गये। संक्षेपमें उनका उल्लेख कर देना उपयोगी होगा। किसानको उसके वर्तमान ऋणसे मुक्त करनेके लिए तीन प्रकारके उपाय अमलमें लाये गये। सबसे पहले तो कानून द्वारा इस बातकी रोक लगा दी गयी कि इस भयसे कि भविष्यमें किसानके हितोंकी रक्षा करनेकी दृष्टिसे सरकार शीघ्र ही ऋण-कानून बनानेवाली है, महाजन मुकदमा चलाकर कर्जकी वसूली करना आरम्भ न कर दे। क्योंकि यदि इस प्रकार महाजन ऋण वसूल करनेमें सफल हो जाता है, तो स्पष्ट है कि भावी ऋण-कानूनकी आधी उपयोगिता तो नष्ट हो जाती है। अतः कानून द्वारा इस तरहके प्रतिबन्ध लगाना अत्यन्त आवश्यक था। संयुक्तप्रान्त, मध्यप्रान्त और बम्बई आदि प्रान्तोंमें इस उद्देश्यसे पृथक कानून ही बना दिया गया था, तथा अन्य प्रान्तोंमें ऋण-कानूनोंमें ही इस तरहकी धाराओंको स्थान दे दिया गया था। किसानको ऋण-मुक्त करनेका दूसरा उपाय, व्याजको कम करनेका काममें लाया गया। इसके लिए १९१८ के अत्यधिक सूद-कानून (युजूरियस लोन्स एक्ट) में इस आशयका, कई प्रान्तोंमें, सुधार किया गया कि कचहरीके लिए अब यह आवश्यक हो गया कि वह स्वयं पिछले हिसाबकी जांच करे और ऐक्टमें स्वीकृत दरपर ही सूद वसूल करनेकी आज्ञा दे। इसके अतिरिक्त कई प्रान्तोंमें, जैसे संयुक्तप्रान्त, मध्यप्रान्त, बङ्गाल, मद्रास और बम्बईमें व्याजकी दर निश्चित कर दी गयी और चढ़े हुए व्याजमें भी छूट दी गयी। इस सम्बन्धमें मद्रासका कानून सबसे अधिक क्रान्तिकारी था। वहांके कानूनके अनुसार सन् १९३२ के पूर्वके ऋणपरका वह सब व्याज, जो १ अक्तूबर १९३७ को बकाया था,

सर्वथा रद्द कर दिया गया। यह लाभ केवल छोटे किसानों तक ही सीमित था। कई प्रान्तोंमें महाजनके लेन-देनको नियन्त्रित करनेके वास्ते जो मनीलेण्डर्स एक्ट बने, उनमें 'दामदुपट' का सिद्धान्त भी स्वीकार कर लिया गया। अधिकांश प्रान्तोंमें तो इस सिद्धान्तको बकाया व्याजतक ही सीमित रखा गया, अर्थात् बकाया व्याज मूलधनसे अधिक वसूल नहीं किया जा सकता, परन्तु कुछ प्रान्तोंमें (मद्रास) तो कुल वसूली मूलधनसे दुगनी न हो, ऐसा नियम बना दिया गया। तीसरा उपाय किसानके ऋणके बोझको हल्का करनेका यह था कि ऋणका जो मूलधन है, उसीमें कमी की जाय। इस सम्बन्धमें जो उपाय अब तक विभिन्न प्रान्तोंमें एक हद तक अपनाया गया है, वह किसान और महाजनमें स्वेच्छासे समझौता (वोलेण्टरी कनसीलियेशन) करानेका रहा है। इस उपायको काममें लानेके लिए विभिन्न प्रान्तोंमें ऋण-समझौता-बोर्डोंकी स्थापना की गयी है, जिनमें सरकार, महाजन और किसान तीनों ओरके प्रतिनिधि रहते हैं। इसमें कोई शक नहीं कि इस उपायसे एक हदतक किसानके ऋणका बोझ कुछ कम हुआ है, पर जो सफलता मिली है, वह नहींके बराबर मानी जा सकती है। यही कारण है कि आज अधिकतर लोगोंका मत यह है कि ऋणका समझौता स्वेच्छासे नहीं, पर राज्यको कानून बनाकर अनिवार्यरूपसे करवाना चाहिये। कई प्रान्तोंमें इस प्रकारके कानून बन भी चुके है। सारांश यह है कि पिछले वर्षोंमें विभिन्न प्रान्तोंमें कृषि-ऋणकी ओर ध्यान गया और उसे हल करनेके कुछ उपाय भी किये गये हैं। किसानकी सम्पत्ति तथा उसकी अपनी रक्षाके लिए भी कानून आज मौजूद हैं, जिससे ऋण चुकानेके लिए किसानको कोई शारीरिक कष्ट न दिया जा सके अथवा उसको उसके जीविकोपार्जनके साधनसे ही सर्वथा वञ्चित न किया जा सके। ग्रामीण साखमें सुधार करनेके प्रयत्न भी हुए हैं; एक सीमातक महाजनों-पर कानूनी नियन्त्रण स्थापित किया गया है, सहकारी साख-समितियां कायम की गयी हैं और भूमि-बन्धक बैङ्क भी स्थापित हुए हैं; परन्तु कुल मिलाकर हमारे ग्रामीण साखकी समस्या आज भी असन्तोषप्रद हालतमें है। यह अत्यन्त खेदकी बात है कि रिजर्व बैङ्कके स्थापित हो जाने-पर इस क्षेत्रमें कोई विशेष उन्नति नहीं हो सकी। इसका आधारभूत कारण इस सम्बन्धमें रिजर्व बैङ्ककी अनुदार नीतिको ही मानना पड़ेगा।

उपरोक्त विवरणसे इतना अवश्य स्पष्ट हो जाता है कि किसानको ऋण-मुक्त करनेके लिए अबतक कुछ-न-कुछ उपाय, खास तौरसे उसे मौजूदा ऋणके बोझसे हल्का करने-की दृष्टिसे, किये गये हैं और इस दिशामें प्रान्तीय स्वायत्त शासन स्थापित होनेके पश्चात अपेक्षाकृत अधिक प्रयत्न हुए हैं। फिर भी हमें इस कटु सत्यको स्वीकार करना ही होगा कि हमारे आर्थिक जीवनकी एक बड़ी समस्याके रूपमें कृषि-ऋणका प्रश्न बदस्तूर कायम है। उसकी गम्भी-रता किसी प्रकार कम हुई हो, ऐसा नहीं माना जा सकता। अतः भविष्यमें इस प्रश्नको कैसे हल किया जाना चाहिये, इस सम्बन्धमें विचार करना अत्यन्त आवश्यक है। युद्धके समाप्त होनेके बादकी आर्थिक निर्माणकी योज-नाओंपर जब विचार किया जा रहा हो, इस प्रश्नपर आव-श्यक ध्यान देना और भी अनिवार्य हो जाता है। निम्न-पंक्तियोंमें हम इसी सम्बन्धमें कुछ विचार करेंगे।

ग्रामीण ऋणकी जो समस्या देशके सामने उपस्थित है, उसको दो भागोंमें मोटे रूपसे बांटा जा सकता है। समस्या-का एक पहलू तो यह है कि किसानपर आज जितना ऋण मौजूद है, उससे उसको मुक्त किस प्रकार किया जाय। दूसरा आवश्यक प्रश्न यह है कि यह किस प्रकार सम्भव हो कि भविष्यमें फिर किसानपर ऋणका बोझ न हो जाय। जहां तक कि दूसरी बातका सम्बन्ध है, हम इतना ही कहना चाहेंगे कि इसके लिए एक ओर तो हमें अपने कृषि-उद्योगको अधिकाधिक उत्पादक बनाना होगा और दूसरी ओर ग्रामीण साखकी सन्तोषप्रद व्यवस्था करनी होगी। यही दो उपाय मुख्य हैं, जिनके द्वारा हम भविष्यमें किसानको ऋणी होनेसे बचा सकते हैं। देशकी सम्पूर्ण आर्थिक व्यवस्थामें परिवर्तन किये बिना, हम इन उपायों-को कार्यान्वित नहीं कर सकते। इन पंक्तियोंमें हम इस सम्बन्धमें अधिक विस्तारसे विचार नहीं करेंगे।

दूसरा प्रश्न मौजूदा ऋणसे सम्बन्ध रखता है। यहां हमें इसीके बारेमें निश्चित रूपसे कुछ उपाय सोचना है। सबसे पहले हमें कुछ सिद्धान्त स्थिर कर लेने होंगे, जिनको आधार मानकर हमें कोई भी योजना बनानी चाहिये। इस बारेमें सबसे पहला सिद्धान्त यह है कि हम ऋण चुकानेकी जो भी योजना बनायें, वह किसानकी मौजूदा आर्थिक स्थितिको ध्यानमें रखकर और ऋण चुकानेकी मौजूदा क्षमताको जानते हुए ही बनायें। दूसरे शब्दोंमें, इस बातका पूरा ध्यान रखना होगा कि भविष्यमें किसानकी

आयमें जो भी वृद्धि हो, उसका उपयोग मौजूदा ऋण-को चुकानेमें न किया जाय। न तो यह न्यायपूर्ण होगा और न यह व्यावहारिक। यदि किसानको यह मालूम रहेगा कि उसकी आयमें जो भी वृद्धि होगी, उसका लाभ उसे नहीं मिलनेवाला है, तो उसे कृषिके उन्नत उपायोंको प्रयोगमें लानेका कोई उत्साह नहीं रहेगा। दूसरी उसूलकी बात यह है कि जिस कर्जका या तो महाजन कोई सन्तोष-जनक हिसाब न दे सके या जो अन्यथा किसान स्वीकार न करे, उस सबको अमान्य समझा जाना चाहिये। तीसरे, यदि महाजनको जितना मूल ऋण उसने दिया था, उसका दुगुना रुपया कुछ मिलाकर मिल चुका है, तो इसके अति-रिक्त उसे कुछ नहीं दिया जायेगा। चौथे, किसानोंमें वे सब लोग शामिल किये जायेंगे, जो खेतीके द्वारा अपना जीवन-निर्वाह करते हैं, चाहे फिर वह खेती अपनी स्वयंकी भूमिपर करते हों अथवा दूसरोंकी। इसी प्रकार वे लोग जो स्वयं खेती नहीं करते हैं, उनको ऐसी योजनामें शामिल नहीं करना चाहिये। पांचवें, इस समस्याको देश-भरमें एक ही आधारपर सुलझानेके लिए जो भी योजना बनायी जाय, वह प्रान्तीय सरकारोंकी मर्जीपर न छोड़ी जाय। सारे देशके लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा एक ही योजना कार्यान्वित हो। उक्त आधारपर देशके किसानोंको ऋण-मुक्त करनेके लिए एक व्यापक-योजना बनाना होगा। इस योजनाके मुख्य-मुख्य लक्षण ये होंगे :—देशके समस्त किसान वर्गको दो श्रेणीमें बांटा जाना चाहिए— पहली श्रेणीमें वे लोग होंगे, जो अपनी वर्तमान आयको देखते हुए ऋण चुकानेके लिए कुछ नहीं बचा सकते। इसका माप यही होगा कि खेतीसे जो भी उनकी आय है, वह उनके परिवारके जीवन-निर्वाहके लिए ही कठिनतासे यथेष्ट साबित होती है। ऐसे किसानोंको दिवालिया कानून बनाकर सरकारको ऋण-मुक्त कर देना होगा। इसके अलावा और कोई उपाय ऐसा नहीं है, जिससे देशके इस व्यापक वर्गको आर्थिक सफलताके मार्गपर लगाया जा सके। कोई वर्ग-हितकी भावना इसमें बाधक नहीं होनी चाहिए और न इसको अन्याय-युक्तही माना जा सकता है। जब बड़े-बड़े पूंजीपति और व्यवसायी दिवा-लिया कानूनका लाभ उठा सकते हैं, तो निर्धन किसानको इसका लाभ मिले, इसमें कोई आपत्ति कैसे की जा सकती है। दूसरी श्रेणीमें ऐसे किसान होंगे, जो अपनी मौजूदा आयमेंसे ऋणके लिए कुछ बचा सकते हैं। इनपर जो भी ऋण होगा उसका अनुमान लगा लिया जायेगा। अनु-मान लगाते समय ऊपर दिये गये सिद्धान्तको आधार माना जायेगा। यदि यह मालूम पड़े कि किसानने मूल-ऋणका दुगुना चुका दिया है, तो वह भी ऋण-मुक्त घोषित कर दिया जायेगा। यदि ऐसा नहीं है, तो उसकी क्षमता ऋण चुकानेकी इस हदतक मान ली जायेगी कि वह अपनी मौजूदा आयमेंसे अपने परिवारका जीवन-निर्वाहका व्यय निकालकर जितना बचा सकता है, वह सब ऋण चुकानेमें यदि अदा करे, तो दस वर्षमें पूरा ऋण चुक जाय। इस प्रकार प्रत्येक किसानकी ऋण चुकानेकी क्षमताका अनुमान लगा लिया जायेगा और किसान इतने रुपयेका ही ऋणी स्वीकार किया जायेगा। स्पष्ट है कि उसकी यह क्षमता उसकी बचतसे दस गुनी होगी। इसका आधार यह है कि दस वर्षके समयमें किसानको ऋण-मुक्त किया जा सके। इस प्रकार किसानको जितना भी ऋण देना पड़ेगा, उस सबकी जिम्मेदारी महाजनको चुकानेके लिए राज्य अपनेपर ले लेगा। इस प्रकार जहां तक महाजनका सम्बन्ध है, किसानको कुछ देना नहीं रहेगा। सरकार महाजनको एक मुश्त भी चुका सकती है, या किस्तोंमें। यह भी हो सकता है, कुछको सरकार 'लोन बोंड' इश्यू कर दे, जिनपर कि सरकार एक निश्चित दर से ब्याज दे। यह सरकार और महाजन दोनोंकी सुविधा देख कर ही निश्चय किया जा सकेगा। जहां तक किसानका सम्बन्ध है, वह लगानके साथ-साथ सुविधाजनक किस्तोंमें सरकारको रुपया अदा करता रहेगा। यह कोई आवश्यक नहीं है कि ये किस्तें दस ही हों, वे कम अथवा अधिक भी हो सकती हैं। संक्षेपमें, ग्रामीण-ऋणकी समस्याको यदि हमें भविष्यमें हल करना है, तो वह ऐसी ही क्रान्तिकारी योजनाको अपनानेसे हो सकेगा। इसका दूसरा कोई उपाय नहीं हो सकता। लेखकका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि जिस योजनाका उपरोक्त पंक्तियोंमें सङ्केत किया गया है, उसमें किसी प्रकार-की तबदीलीके लिए कोई गुञ्जाइश नहीं है। व्यावहारिक दृष्टिसे जब योजनाको कार्यान्वित करनेका प्रश्न सामने आयेगा, तो उसमें आवश्यक हेर-फेर करना होगा। इस समय तो इतना ही अर्थ है कि जिस दिशाका सङ्केत ऊपर किया गया है, वही एक ऐसी दिशा है, जिसको हमें स्वीकार करना होगा और करना चाहिये। इस प्रकारकी योजना-को व्यवहारमें लानेमें कठिनाइयां तो अवश्य आयेंगी, पर उनको हल किया जा सकता है। ऐसा माननेकी आव-

श्यकता नहीं है कि यह योजना एक हवाई किलेके समान है। भारतकी आर्थिक व्यवस्था आज अत्यन्त जर्जरित हो चुकी है। देश निर्धनताकी परा-काष्ठाको पहुंच चुका है। यदि इस क्रमिक ह्रासको हमें रोकना है, यदि हमें देशकी आर्थिक उन्नति करना है, तो हमें अबतकके सोचनेके तरीकेको बदलना होगा। हमारे सोचनेका अबतकका तरीका खण्ड-खण्डमें और छोटे स्वरूपमें सोचनेका रहा है। परन्तु किसी बड़े और व्यापक प्रश्नको हम इस प्रकार हल नहीं कर सकते। बड़े सवालको हल करनेके लिए हमारे सोचनेका ढङ्ग भी 'बड़ा' और व्यापक ही हो सकता है। अतः ग्रामीण ऋणकी समस्याको सुलझानेके लिए जिस योजनाको प्रस्तावित किया गया है, उसकी सफलताकी एक ही शर्त है और वह है देशमें एक ऐसी जन-तन्त्रात्मक राष्ट्रीय सरकारकी स्थापना, जिसे देशका विश्वास प्राप्त हो, और जो इस विश्वासके आधारपर देशके व्यापक प्रश्नोंको सुलझानेकी पूरी क्षमता रखती हो, और जो क्रान्तिकारीसे, क्रान्तिकारी योजनाओंको अमलमें लानेकी दृढ़ता और सङ्कल्प रखती हो। जब तक यह शर्त पूरी नहीं होती, हमारे देशका कोई भी प्रश्न नहीं सुलझाया जा सकता, यह ध्रुव सत्य है।

कलिङ्ग-विजय

(एकाङ्की नाटक)

श्री चतुर्भुज

पात्र-परिचय

पुरुषः—अशोक—मगध-सम्राट्

विजयकेतु—सम्राट्का सेनाध्यक्ष

वीताशोक—सम्राट्का भाई

महेन्द्र—कलिङ्ग-राज

देवेन्द्र—महेन्द्रका पुत्र

महानायक—महेन्द्रका प्रधान।

सैनिकगण।

स्त्रीः—तिष्या—भारत-सम्राज्ञी।

प्रभा—महेन्द्रकी पुत्री।

प्रथम दृश्य

स्थान—पाटलिपुत्रका राज-प्रासाद।

काल—निशा।

[सम्राट् अशोक अपने सेनानी विजतकेतुसे बातें कर रहे हैं।]

अशोक—नहीं सेनापति, मैं यह नहीं देख सकता कि एक भूखे सिंहके पार्श्वमें बैठा हुआ दूसरा सिंह भोजन करे और वह पहला सिंह निर्निमेष, करुणा-नीरसे परिप्लावित नेत्रोंसे उसे स्वच्छन्द गतिसे आहार करता हुआ देखे। मैं मगधका सम्राट हूं। समस्त आर्यावर्त्त मेरे आतङ्कसे थरथर कांपता है। संसार मुझे विजयी कहता है। फिर भी कलिङ्ग-जैसा तुच्छ प्रदेश मेरे प्रतापके सम्मुख, छाती ताने, सिंहकी भांति खड़ा रहे!—यह मैं कदापि सहन नहीं कर सकता।

विजय—सम्राट्......

अशोक—दुनिया मुझे नृशंस कहकर पुकारती है। मैंने अपने पिताकी हत्या की। किस लिए? साम्राज्यमें उठती हुई आंधीको दबानेके लिए, साम्राज्यके शत्रुको कुचलनेके लिए। लेकिन वह समय समाप्त हो गया। अब मैं चाहता हूं—साम्राज्यका विस्तार करना, कलिङ्ग-जैसे देशोंके मस्तकोंको अपने पैरोंपर लोटाना, तिनकेके समान वहांके ऐश्वर्यको मसलना। कितने आश्चर्यका विषय है सेनापति, कि इस प्रबल प्रतापी सम्राट् अशोकके सामने जहां समस्त भारत नत-मस्तक है, वहां कलिङ्गकी आंखें गर्वकी ज्योतिसे चमक रही हैं!

विजय—कलिङ्ग-जैसे देशोंको अपने वशमें करनेके लिए असंख्य प्रजाजनका रक्त-पात करना मगध-सम्राटको शोभा नहीं देता!

अशोक—(कुछ हंसकर) रक्तपात? तुम आज कैसी बातें करते हो? मुझे तुम नहीं जानते? नहीं जानते कि मैं चण्डाशोक हूं?—मैं चाण्डाल हूं, हत्यारा हूं। मैं कालसे भी अधिक भयङ्कर, मृत्युसे भी अधिक क्रूर और अग्निसे भी अधिक ऊष्णोत्पादक हूं। मैंने तो अपना जीवन खूनकी ही नदीमें बिताया है। बचपनमें अपने कई साथियोंका वध

किया, युवावस्थामें पितृ-रक्तसे सने हुए हाथोंसे राजदण्ड पकड़ा। आज फिर खूनकी लालसा कर रहा हूं। तुम मुझे रोक नहीं सकते। मैं कलिङ्गपर आक्रमण करूंगा।

विजय—गोदावरी और महानदीके वृक्षोंसे चिमटा हुआ कलिङ्ग प्रदेश मगध-सम्राटका आहार होगा।—ऐसा अन्याय सम्राट्......?

अशोक—प्रतिवाद मत कर, विजयकेतु। मैं कलिङ्गको जय करना चाहता हूं। उसके गर्वको चूर-चूर कर देना चाहता हूं। मुझे रोकनेकी चेष्टा मत करो। समुद्रके गम्भीर जलके पूरको एक क्षुद्र चट्टानसे रोकनेकी चेष्टा व्यर्थ होगी। मैं अपनी लालसाकी दहकता अग्निमें कलिङ्गका होम चाहता हूं।

विजय—सम्राट्की इसी स्वैरिता और उद्दण्डताके कारण प्रजावर्गमें भी विप्लवकी ज्वाला फूट रही है।

अशोक—फूटने दो। मैं स्वयं चाहता हूं कि एक ऐसी ज्वाला भभके, जो मेरे साथ-साथ इस साम्राज्यको, तुमको, रानीको और बाकी सबको समाप्त कर दे। फूटे वह ज्वाला शीघ्र ही! मैं उसका आह्वान करूंगा। समाप्तिकी तैयारी करूंगा। (कुछ देर चुप रहनेके बाद) सेनापति!

विजय—सम्राट्!

अशोक—(खूब स्थिरतासे) तुम मेरे सेनापति हो, विजय!

विजय—(सिर झुकाकर) हां सम्राट्!

अशोक—मन्त्री नहीं हो!

विजय—सम्राट्......।

अशोक—(आज्ञाके स्वरमें) मेरी आज्ञाका पालन करो। पहले कलिङ्गराजको आधिपत्य-स्वीकार करनेकी आज्ञा लिख भेजो। अस्वीकारोपरान्त युद्ध-घोषणा कर दो। जाओ।—(सिर झुकाये विजयका जाना)

अशोक—भभके! खूब भभके विद्रोहकी ज्वाला! मैं ताली पीट-पीटकर उसकी लपलपाती लपटोंको देखूंगा।......कलिङ्ग! कलिङ्ग!! यह नाम मेरे कलेजेको चकोटता है। मैं क्षुब्ध हो जाता हूं। आज-आज मैं पूरी तरहसे नृशंस हूं, क्रूर हूं, हत्यारा हूं।...... कौन है?—

(सम्राज्ञी तिष्याका प्रवेश।)

अशोक—कौन?—सम्राज्ञी तिष्या?—

तिष्या—नहीं सम्राट्, आपकी दासी तिष्या!

अशोक—क्या समाचार है, रानी?

तिष्या—आप इस समय सेनापतिपर क्रोधित क्यों हो रहे थे?

अशोक—क्रोध नहीं कर रहा था रानी, आज्ञा दे रहा था।

तिष्या—कैसी आज्ञा?

अशोक—कलिङ्ग देशपर चढ़ाई करनेकी आज्ञा!

तिष्या—आप कलिङ्ग देशपर चढ़ाई करेंगे?

अशोक—इसमें आश्चर्यकी कौन-सी बात है?

तिष्या—आप कलिङ्ग देशपर जय-पाना सम्भव समझते हैं?

अशोक—मैं इसे असम्भव भी नहीं समझता।

तिष्या—किन्तु है असम्भव। कलिङ्ग देशपर आप जय नहीं पा सकते, सम्राट्।

अशोक—कारण?

तिष्या—वहां की शासन-प्रणाली और युद्ध-कला।

अशोक—तो मैं हार जाऊंगा?

तिष्या—निश्चय ही।

अशोक—जाओ रानी, विरत मत करो। मैं जय-लक्ष्मीको अपनाऊंगा। आजतक मैं कभी, किसी कार्यमें, असफल नहीं हुआ। इस क्षुद्र कलिङ्गसे पराजित होऊंगा? असम्भव!

तिष्या—खैर, छोड़िये इन बातोंको। प्रियतम, तुम इतना विस्तृत साम्राज्य लेकर क्या करोगे? साम्राज्य मुझसे बढ़कर है?

(अशोकके गलेमें हाथ डाल देती है)

अशोक—रानी, मैं तुम्हारा पति अवश्य हूं, पर सम्राट् हूं। मुझे अपने कर्तव्यसे च्युत भी नहीं होना चाहिये।

तिष्या—आज तुम इस तरह क्यों हो रहे हो? रजनी है। शीतल पवन पुष्पोंसे सुगन्ध लेकर मस्तीसे चल रहा है। यह समय राज-कार्यका नहीं है, आनन्द-विहारका है। आओ, मदिरा पान करो!

(हाथ पकड़कर बैठाती है)

अशोक—प्रियतमे, मैं तुम्हारी मनोहारी छविके सम्मुख आजतक अभिभूत रहा। मैं तुम्हारा प्रणयासक्त हूं। तुमने, न मालूम किस महामन्त्रसे मुझे अपने वशमें कर रखा है? सारा भारत मेरी बङ्किम भृकुटीके सम्मुख कांपने लगता है। केवल तुम्हीं मन्त्र फेंककर मुझे पराजित करती हो।

तिष्या—तुम मेरी आशा हो, मेरी चिर-सञ्चित सम्पत्ति हो। समस्त भारत तुम्हारा है, लेकिन तुम मेरे हो। मेरे-ऐसा भाग्य किसका होगा? मैं तुम्हारा साम्राज्य नहीं चाहती; केवल तुम्हारा मधुर रम्भन, चञ्चल कामना और व्याकुल, क्लान्त हृदय चाहती हूं। मुझे इसीसे सन्तोष होगा। मैं इसे ही प्राप्त कर अपने प्रणयमें सफलता मिलती समझूंगी।—लो, पान करो।

(मदिरा पिलाती है)

अशोक—अब तुम जाओ, तिष्या। आराम करो। मैं भी सोऊंगा।

(तिष्याका जाना)

अशोक—निर्झरिणी कल-कल नादसे बह रही है। मैं उसमें स्नान कर रहा हूं। तिष्या, ओह! चली गयी! कितना मधुर जीवन है!......लेकिन विजयकी लालसा! रणकी प्रवृत्ति!......ओह!

(सम्राटके अनुज वीताशोकका प्रवेश)

वीताशोक—दादा!

अशोक—(आंख मूंदे) कौन है? विजय?

वीताशोक—मैं आपका भाई वीताशोक हूं।

अशोक—(आंखें खोलकर) वीताशोक? कहो, क्या है?

वीताशोक—क्या यह खबर सच है?

अशोक—कौन-सी?

वीता०—यही कि आप कलिङ्गपर आक्रमण करेंगे।

अशोक—इससे तुम्हें क्या? युद्धमें चलोगे?

वीता०—आप व्यङ्ग करते हैं, दादा? युद्ध करना भी क्या मनुष्योंका काम है? यह दस्युका कार्य है। युद्धसे किसीके हृदयपर आप जय नहीं पा सकते। आप कलिङ्गपर चढ़ाई कीजियेगा। लेकिन सावधान, सम्राट्, कहीं पराजय न हाथ लगे!

अशोक—नादान, भारत-साम्राज्यके सम्राट्की शक्ति क्या कलिङ्ग-नरेशसे भय खा जायेगी? मालूम होता है, तुम्हें भी विजयकेतुने पढ़ाकर ही यहां भेजा है। कायर सेनापति!

वीता०—नहीं दादा। आप व्यर्थ क्रोध करते हैं। सेनापति निर्दोष हैं। मैं आपके पास अपनी इच्छासे आया हूं।

अशोक—तुम मेरे विचारोंको नहीं बदल सकते, वीताशोक! तुम क्या जानो कि युद्ध क्या है, तलवारोंकी झनकार कैसी होती है, शत्रुता कैसा विष है? तुम्हें चाहिये—बोधि पीपल, एक बौद्ध उपदेशक और दो मुट्ठी अन्न! जाओ, नीरस प्राणी! तुम इस विषयमें मुझसे बातें न करो!

वीता०—दादा, यद्यपि मैं नहीं जानता कि युद्ध किसे कहते हैं, पर संसारका कोई व्यक्ति इसे अच्छा नहीं समझता। यह देशके लिए विष और उन्नतिके लिए विषैला कीटाणु है। "युद्ध" शब्दमें ही उन्माद है। नहीं, नहीं दादा, आप कलिङ्गसे युद्ध मत ठानिये! वहांके सुख और शान्तिपर उल्कापात मत कीजिये।

अशोक—वीताशोक! पागल! जाओ अन्तःपुरमें! आराम करो! यह युद्ध अनिवार्य है। इस युद्धमें मैं कलिङ्गके अभिमानको पद-दलित करने जा रहा हूं।

वीता०—अभिमान! और क्या यह आपका अभिमान नहीं है, सम्राट, कि एक उन्नतिशील राष्ट्रकी निरीह प्रजापर आप समुद्रकी शक्तिसे आक्रमण करने जा रहे हैं? क्या यह आपका अभिमान नहीं है कि समस्त भारतकी शक्तिको, आप एक छोटेसे शान्तिमग्न राज्यपर पटक रहे हैं?

अशोक—यह युद्धका विषय है, वीताशोक, धर्मोपदेशका नहीं। वीरत्वका निर्णय, क्षत्रियोंके पुरुषार्थका निर्णय और जीवन-मरणका प्रश्न सुलझानेवाला यह संग्राम है। जाओ भाई, मुझे उपदेशकी आवश्यकता नहीं है। मैं तुम्हारा बड़ा भाई हूं।

वीताशोक—इसीका तो मुझे भी शोक है कि आप मेरे बड़े भाई हैं। अच्छा होता, यदि मैं भ्रातृहीन रहता। ऐसे क्रूर और नारकीय भाईसे तो भ्रातृहीन ही रहना अच्छा है। (प्रस्थान)

अशोक—ओह! ऐसी स्पर्द्धा! इतना गर्व!! राहके इस भयानक कांटेको भी मुझे दूर करना पड़ेगा। कौन जाने, यह कब चुभ जाये! अब तो मुझे युद्ध करना ही पड़ेगा! अवश्य करना पड़ेगा! (आवेशमें प्रस्थान)

द्वितीय दृश्य।

स्थान—कलिङ्ग देशका राजमहल।

समय—रात्रि।—

(कलिङ्गराज-महेन्द्र और उनके प्रधान महानायक बातें कर रहे हैं।)

महेन्द्र—तो यह खबर सच है?

महानायक—हां महाराज, बिलकुल सच है।

महेन्द्र—पहले तो मैंने समझा था कि मगध-राजकी यह केवल धमकी है। पर आज समझता हूँ कि कलिङ्गपर सचमुच ही विपत्तिके बादल उमड़ आये हैं।

महानायक—हां, जब शत्रुओंने गढ़को घेर लेनेका सङ्कल्प कर लिया है, तब तो यही कहना पड़ेगा।—और एक बात।

महेन्द्र—क्या ?

महानायक—कल प्रातःकाल सम्राट् अशोकका दूत मेरे पास आया था।

महेन्द्र—सम्राट्का दूत ?—प्रयोजन ?

महानायक—उसने कहा कि यदि कुछ "कर" देने और सम्राट्का आधिपत्य मान लेनेसे ही काम चल सकता है तो......।

महेन्द्र—तो युद्ध करना व्यर्थ है।—यही न ?

महानायक—जी हां !

महेन्द्र—तुमने क्या उत्तर दिया ?

महानायक—मैंने कह दिया कि कलिङ्ग-सम्राट्की धमकीसे डरनेवाला नहीं है। आज तक कलिङ्ग स्वाधीन रहा है। इसपर जय पानेवालेके कलेजेमें वज्रकी शक्ति होनी चाहिए।

महेन्द्र—तुमने उसे मेरे पास क्यों नहीं भेजा ?

महानायक—इसकी मैंने आवश्यकता ही नहीं समझी। मैं जानता था कि कलिङ्ग-नरेश "महेन्द्र" और "सन्धिमें" मेल नहीं हो सकता। इसकी बात लानी ही व्यर्थ है। सम्राट् अशोककी शैतानी वृत्तिका कलिङ्ग प्रतिकार करेगा। उनकी उन्मत्त ईर्ष्या, जो पागलकी शक्ति है, इसी प्रदेशमें चूर-चूर कर दी जायेगी। उनकी कलिङ्ग-जयकी लालसा समुद्र-जलके भीषण उल्लोलकी भांति इसी देशके तटकी प्रचण्डतासे कुचल दी जायेगी।

महेन्द्र—धन्य महानायक ! तुम्हारे योग्य ये ही बातें हैं। इस बार अशोकको हराकर कलिङ्गका नाम स्वर्णाक्षरोंमें लिखा जायेगा।

महानायक—तो युद्ध घोषित कर दिया जाय ?

महेन्द्र—(एकटक शून्यकी ओर देखते हुए) लेकिन विप्रवर, जानते हो कि मैं क्या देख रहा हूँ ?

महानायक—क्या राजन् ?

महेन्द्र—देख रहा हूँ भविष्यत्की असीम दुग्धवत् उज्ज्वल चादरपर कुछ काली अस्पष्ट धूमकेतु-सी उठती और दुर्भाग्य-सी अट्टहास करती रेखायें ! जिसका अर्थ है, कलिङ्ग-का सत्यानाश (एकाएक पागलकी तरह) वह देखो—एक भीषण-दुर्भेद्य महा आकारका जीवित दैत्य, जिसकी भुजाएं क्षितिजकी छाती फोड़कर भीतर घुस गयी हैं, जिसका मस्तक नील गगनको छेदता और ऊपर चला गया है और जिसके दोनों पैर.........। आह !.........

महानायक—क्यों महाराज ? आप एकाएक कांप क्यों गये ? कहां तो आप अशोकको हरानेपर तुले थे, फिर यह सब क्या है ?

महेन्द्र—बोलो मत, महानायक ! ये अदृष्टके लेख हैं, जो झूठे नहीं हो सकते।

महानायक—मैं आपकी बात पूर्णरूपसे समझ नहीं सका।

महेन्द्र—ओह ! उस दृश्यकी कल्पना मात्रसे मेरे रोयें खड़े हो जाते हैं। समस्त साहस काफूर हो जाता है। मुझे दिखायी पड़ा—मानों उस कराल-कालके एक पैरके नीचे मेरी सारी सेना और दूसरेके नीचे इस देशकी स्वाधीनता और मैं मृतावस्थामें पड़ा हूँ।

महानायक—राजन्, मनके इन कुविचारोंको दूर कीजिये। कलिङ्गकी अपार सेना सम्राट् अशोकके सारे अरमान मिट्टीमें मिला देगी। मेरी सेनाके एक-एक सैनिक मैदानमें मर मिटेंगे, या सम्राट्को दण्ड देंगे। आप कुछ चिन्ता न करें। युद्धकी आज्ञा दें।

महेन्द्र—वही हो, महामन्त्री ! हम क्षत्रिय हैं। अपने क्षत्रियत्वपर कलङ्कका टीका न लगने दें।

महानायक—तो ?

महेन्द्र—सैनिकोंको रणके लिए प्रस्तुत करो।

महानायक—आपसे ऐसी ही आशा थी, महाराज !

महेन्द्र—एक बार फिर क्षत्रियोंका सुप्त तेज सम्राट्की फूंकसे भड़क जाये और अन्यायियोंको उचित दण्ड दे। दानवी लालसाको, जो सम्राट्के हृदय-प्रदेशमें अंकुरित हुई है, जड़से मिटा दे। तूफानके समान हुंकार करते हुए, आर्यावर्तके अधीश्वरके हृदयमें भय उत्पन्न कर दे। बड़वानलके समान प्रज्वलित होकर सम्राट्के हृदय-समुद्रमें एक नवीन युग आरम्भ कर दे। इसकी गर्जनासे यह पृथ्वी कांप जाय। कलिङ्गके पार्श्वका समुद्र गम्भीर घोष करने लगे। समस्त भारतमें कलिङ्ग-निवासियोंकी विजय-गाथा यह पवन पहुंचा दे। जाओ मन्त्रिवर, सेना लेकर समरभूमिमें सम्राट्के विरुद्ध मोर्चा बांधो। घोर युद्ध करो—ऐसा युद्ध, जो भारतीय इतिहासमें द्वितीय महाभारतका संग्राम कहला सके। जाओ। (महानायकका प्रस्थान)

महेन्द्र—होवे युद्ध! नियतिका गम्भीर और भयानक अट्टहास समीपतर सुनायी पड़ रहा है। मैं उसकी उपेक्षा करूंगा। नियतिका उपहास!—हाः हाः हाः सम्राट् की विशाल वाहिनीसे कलिङ्ग युद्ध करेगा! महासमुद्रका प्रतिरोध एक चट्टान करेगा!! लेकिन तभी तो जीवित मृत्युका दर्शन होगा!—होना ही चाहिये! (प्रस्थान)

तृतीय दृश्य

स्थान—समराङ्गणका एक भाग

काल—मध्याह्न

(महेन्द्र-कन्या प्रभा अकेली है)

प्रभा—कितना भयानक दृश्य है! सैनिकोंके शरीर एक-एक करके भूमिपर गिर रहे हैं। शक्तिका कैसा घोर पतन है! वीरत्व भी कैसी विकट एवं दुर्निवार पिपासा है!! चञ्चला, वेगवती सौदामिनीकी भांति तलवारें चमक रही हैं। उन्मुक्त स्तीर्ण नीलाकाशके नीरद मण्डलके नीचे रणदेवीकी भयानक जिह्वा वीरोंके शोणितसे लोहित हो रही है। वे अपने प्राणोंकी बलि इस तरह दे रहे हैं, मानों किसीने उन्हें रणका उत्तेजक आसव पिला दिया है। मृत्यु एकके बाद दूसरेपर हाथ चला रही है। रणका निनाद, अस्त्र-शस्त्रकी झङ्कार और मृत्युकी प्रलयकारिणी आकृति सहसा कायर हृदयमें भी उष्ण रक्त-धारा प्रवाहित कर देती है।

(युवराज देवेन्द्रका प्रवेश)

देवेन्द्र—प्रभा!

प्रभा—दादा!

देवेन्द्र—देख रही हो युद्धका दृश्य?

प्रभा—हां, दादा!

देवेन्द्र—यह रण-भूमि है, प्रभा! यही वह जगह है, जहाँ निदाघ-कालकी मेघमालाकी नीलिमाकी तरह कर्तव्यका पथ सहसा उदित हो जाता है।

प्रभा—लेकिन दादा, अभी तक यह तो पता ही नहीं चला कि किसकी जय होगी।

देवेन्द्र—शत्रु-सेनाकी जय होगी।

प्रभा—शत्रुओंकी? यह क्या कहते हो, दादा?

देवेन्द्र—दुर्गकी तीन ओरकी दीवारें गिरा दी गयीं। शत्रु चौथेपर भी अपनी पूरी शक्ति लगाये है।

प्रभा—पिताजी कहां हैं?

देवेन्द्र—युद्ध कर रहे हैं। सभी लोग युद्ध कर रहे हैं। मृत्युकी शून्य गोदकी पूर्तिमें सभी व्यस्त हैं। अब मैं भी चलता हूं।

प्रभा—कहां?

देवेन्द्र—युद्धमें, कर्तव्यके स्तीर्ण क्षेत्रमें, जीवन-लीलाकी भूमिमें, विध्वंसकी सृष्टिमें।

प्रभा—दादा......

देवेन्द्र—बोलो मत प्रभा! क्षत्रियका उष्ण रक्त है। मैं युद्ध करूंगा अशोकसे—भारत-सम्राट् से—अनन्त लालसाके पुजारीसे युद्ध करूंगा।

प्रभा—मैं भी युद्ध करूंगी दादा! एक तलवार मुझे भी दो। मैं भी जाऊंगी रहस्यकी उस गम्भीर समाधिमें—चिर विमोचित क्षेत्रमें। अपनी उद्भट शक्तिसे मैं भी अशोकको नचाऊंगी।

देवेन्द्र—मैं व्यर्थ ही बातोंमें समय नष्ट करना नहीं चाहता। मैं जाता हूं।

प्रभा—ठहरो।

देवेन्द्र—क्यों?

प्रभा—दादा, तुम नारीको क्या समझते हो? नारीका त्याग कितना महत है! युद्धके भयङ्कर रवमें वह सर्वदाके लिए अपने पिता, भाई और पतिको भेजकर महा त्यागका परिचय देती है! वैसा मधुर, पर कठोर और शाश्वत आत्म-त्याग कहां मिलेगा? पुरुषमें? नहीं दादा!

देवेन्द्र—प्रभा, तुम समझती नहीं। रणाङ्गणमें त्यागसे नहीं, कठोरतासे काम चलता है। दयाकी नहीं, क्रूरताकी जरूरत पड़ती है।

प्रभा—दादा, मैं मरूंगी। तुम लोगोंके साथ मरूंगी। यह कैसे होगा कि पिता और भाईको रणमें भेजकर मैं साधारण रमणीकी भांति घरमें बैठूं?

(सहसा आवेशमें महानायकका प्रवेश)

देवेन्द्र—मन्त्री जी!

महा०—हां, युवराज।

देवेन्द्र—युद्धकी क्या खबर है? आप यहां क्यों हैं?

महा०—युद्धकी खबर पूछते तुम्हें लज्जा नहीं आती युवराज? अपने प्यारे पिताको शत्रुओंके पंजेमें छोड़कर इस तरह बोलते शर्म नहीं आती? मुझे भी तुम अपनी ही तरह युद्धसे विरत हुआ समझते हो? मैं आया हूं, तुम्हें युद्धक्षेत्रमें ले चलनेके लिए।

देवेन्द्र—विजयकी तो आशा नहीं है, मन्त्री!

महा०—लेकिन मृत्युकी तो आशा है, कुमार? तुम

क्षत्रिय होकर मृत्युसे इतना भय खाते हो? मैं ब्राह्मण होकर उसका स्वागत करता हूं।

देवेन्द्र—मन्त्री!

महा०—विवाद करनेका समय नहीं है, कुमार! तुम क्या इतने बलहीन हो कि शत्रु तुम्हारे घरके दरवाजेपर आकर ताल ठोंके और तुम शान्त रहो? तुम क्या इतने निर्बल हो कि तुम्हारे पिता शत्रुओंके शिकञ्जेमें पड़ जायं और तुम देखा करो? तुम क्या इतने निर्लज्ज हो कि अपनी प्यारी जन्म-भूमिके मस्तकको राक्षसोंके चरणोंकी धूलमें लोटते निहारा करो? सोचो कुमार, कर्तव्यके भूले पथ-को पकड़ो, अन्यथा क्षणमात्रमें एक महान परिवर्तन हो जायेगा। युद्ध-भूमिमें चलो। सैनिकोंको साहस दिलाओ और मृत्युपर्यन्त युद्ध करो।

देवेन्द्र—किन्तु प्रभा भी युद्धमें जानेके लिए उद्यत है।

महा०—वह नहीं जा सकेगी। हम लोग ही काफी हैं।

देवेन्द्र—मैंने वचन दिया है।

महा०—मेरी आज्ञा है, वह नहीं जा सकेगी। मैं सेनापति हूं। तुम चलो—केवल तुम!

(हाथ पकड़कर ले जाता है)

चतुर्थ दृश्य

स्थान—रणभूमि

काल—अपराह्ण

(समर-वेशमें महेन्द्र और महानायक)

महेन्द्र—जानता हूं, इस युद्ध-परिणामको मन्त्री! मैं हार जाऊंगा, पर पराजय स्वीकार नहीं करूंगा। मरूंगा युद्ध करते हुए। लेकिन......

महानायक—लेकिन? लेकिन क्या? मरनेके पश्चात् भी "लेकिन"?

महेन्द्र—तुम्हें एक काम करना पड़ेगा।

महा०—बतलाइये।

महेन्द्र—मेरी मृत्युके पश्चात् देवेन्द्र और प्रभाकी देख-रेख।

महा०—महाराज, आप कैसी बातें करते हैं?

महेन्द्र—क्यों?

महा०—आप मरेंगे और हम जीवित रहकर शोक करेंगे? हम लोग भी आपके साथ जान देंगे। कमसे कम मैं आपके साथ मरूंगा।

महेन्द्र—मन्त्री, तुमपर अशोक हाथ न छोड़ेगा।

महा०—कारण?

महेन्द्र—तुम ब्राह्मण हो—अवध्य हो। अशोकमें हिन्दू-का रक्त है। वह मेरा वध करेगा, पर तुमपर हथियार न उठावेगा। अच्छा राजकुमार कहां है?

महा०—इसी युद्ध में।

महेन्द्र—तो उसे भी मरने दो, महाराज। और राजकन्या?

महा०—वह भी युद्धक्षेत्रमें आ रही थी। मैंने उसे आने नहीं दिया।

महेन्द्र—अब मेरी मृत्युमें विलम्ब नहीं है, महानायक। तुम जाओ! प्रभाके साथ कलिङ्गसे निकल भागो।

महा०—मैं?

महेन्द्र—हां।

महा०—भाग जाऊं?

महेन्द्र—मेरी अन्तिम आज्ञाका पालन करो।

महा०—महाराज, मैंने रण-क्षेत्रमें वीर क्षत्रियकी तरह युद्ध किया है। अब भाग जाऊं?

महेन्द्र—देखो महानायक, तुम मेरे जीतेजी मेरी आज्ञा-की अवहेलना कर रहे हो। नमकहरामीकी आशा तुमसे नहीं थी, मन्त्री!

महा०—बस कीजिये राजन्! आपकी आज्ञा मेरे लिये ब्रह्माज्ञा है। मैं आपकी आज्ञाका पालन अपना अन्तिम रक्त-विन्दु देकर करूंगा।

महेन्द्र—तुम जाओ। प्रभाकी रक्षा करो। वह देखो, मन्त्री, अशोक अपने सैनिकोंके साथ इधर ही आ रहा है। जल्दी भागो।

महा०—जाता हूं महाराज! यह अन्तिम दर्शन है।

महेन्द्र—और तनिक इधर आओ मेरे मन्त्रिवर! यह हमारा और तुम्हारा अन्तिम मिलन है। (कहकर महा-नायकका आलिङ्गन कर लेता है। दोनोंके नेत्रोंसे नीर बह चलता है।)

महा०—महाराज, मेरे अपराधोंको क्षमा करें!

महेन्द्र—ओह! यह मत कहो मन्त्री! अरे, शत्रु-गण निकटतर हैं। जल्दी करो।

(अधीर भावसे महानायकका प्रस्थान)

महेन्द्र—मेरे जीवनका अन्तिम कार्य यही युद्ध करना है। मैं जानता हूं, मेरी मृत्यु मुझे ले जायेगी। नील परि-धानमें, गगन-मण्डलके एक कोनेसे, मृत्युकी कराल-कालकी कठोर आज्ञा ध्वनित हो रही है। जीवनका मोह?

स्नेहकी धारा सूख गयी ! अब तो सच्चे क्षत्रियकी भांति मौतसे खेलना पड़ेगा। शत्रु आ गये ! कोई चिन्ता नहीं ! इस बार विध्वंसके अन्तिम दृश्यका प्रदर्शन होगा ! सृष्टि सावधान हो जाय, पृथ्वी स्थिर रहे !

(अशोकका नङ्गी तलवार लिये चार सैनिकोंके साथ प्रवेश।)

महेन्द्र—मैं तुम्हारा अभिप्राय समझ गया, अशोक !

अशोक—(एक अवज्ञाकी दृष्टिसे महेन्द्रको देखनेके पश्चात अपने सैनिकोंसे—) इसे बन्दी बना लो !

महेन्द्र—सम्राट्, तुम मुझे बन्दी नहीं बना सकते। मेरी सारी सेना इस पृथ्वीपर सदाके लिये सोयी है; मेरा शरीर घावोंसे भरा है; मेरे हाथमें एक तलवारके सिवा और कोई हथियार नहीं है। फिर भी मैं तुमसे युद्ध करूंगा। अपनी इसी तलवारके भरोसे मैं इस समय मगध-सम्राट्की विशाल वाहिनीको युद्धका निमन्त्रण देता हूं। सम्राट्, तुम समस्त सेनाके साथ मेरे विरुद्ध लड़ो। मैं तत्पर हूं।

अशोक—महेन्द्र, तुम्हारे ही कारण इस समय कलिङ्ग वीरोंसे रिक्त हो गया है। दुर्गकी एक-एक ईंट धूलमें मिला दी गयी है। सेनाका एक-एक सैनिक काटा गया है। अभी भी यदि तुम सन्धिके लिए.........।

महेन्द्र—त्याग दो सन्धिकी आशा, सम्राट् ! इस महा-विध्वंस लीलाके पश्चात् सन्धिका प्रश्न मत उठाओ। हम लोग रण-क्षेत्रमें हैं। मार-काट मची है। सन्धिका प्रश्न नहीं, युद्धका प्रश्न करो।

अशोक—अब भी युद्ध ? इतने वीरोंके हननके अनन्तर भी युद्ध ? मैं तुम्हें बन्दी बनाऊंगा महेन्द्र ! बन्दी बनाकर मगध ले जाऊंगा, और बलपूर्वक अधीनता स्वीकार कराऊंगा ! तुम्हें मेरा प्रभुत्व मानना ही पड़ेगा।

महेन्द्र—असम्भव ! असम्भव सम्राट् !! कलिङ्ग आज तक स्वाधीन रहा है। इसकी स्वतन्त्रता लुटती देखनेके पहले मैं मर जाऊंगा। अपनी तलवारसे आत्महत्या कर लूंगा।

अशोक—हाः हाः हाः ! स्वाधीनताका दम्भ !! अब स्वाधीनता कहां है, महेन्द्र ? तुम्हारी पराजय हो गयी। कलिङ्ग अब मेरा है। मैं इसके नभ-विचुम्बित राज-प्रासाद-को ढहवा दूंगा। यहां के ऐश्वर्यको गोदावरीका आहार बनाऊंगा।

महेन्द्र—अभी मैं जीवित हूं, सम्राट् ! मैं तुम्हारे सामने रण-क्षेत्रमें खड़ा हूं। मेरे हाथोंमें शत्रु-मत्त-प्रभञ्जनी दुर्गाका आशीर्वाद, यह तलवार है। सामने क्षत्रियोंका रक्त उष्ण करनेवाले, वीर-रुधिरमें सने सैनिकोंके शरीर पड़े हैं। मैं तुम्हारा प्रतिरोध करूंगा।

अशोक—युद्धकी आवश्यकता नहीं है। सैनिको, बन्दी बनाओ।

महेन्द्र—तुम स्वयं आगे बढ़ो, चण्डाशोक। मुझे बन्दी बनाओ। सैनिकोंमें इतनी सामर्थ्य कहां है ?

अशोक—मैं स्वयं तुम्हें बन्दी बनता हूं। (आगे बढ़ता है।)

महेन्द्र—किन्तु सावधान ! यही वह भूमि है, मगध राज, जिसपर गिरनेके लिए क्षत्रिय लालायित रहते हैं; जिसमें आनेके लिए वे मृत्युको आमन्त्रित करते हैं। यही वह भूमि है, सम्राट् ! जहां मृत्युका भीषण अट्टहास होता है, घायलोंका हाहाकार होता है और जिसकी गोदमें पड़े हुए वीरोंको चिर-शान्ति मिलती है। मैं क्षत्रिय हूं; तुम भी क्षत्रिय हो। नियति आज अधिपति-द्वयमें युद्ध चाहती है

अशोक—हो युद्ध ! (तलवार खींच लेता है।)

महेन्द्र—आज दो भाइयोंका संग्राम है।—भारतके पतनका मार्मिक सन्देश है ! आकाश, देख इस रणको—आंखें चीर-चीरकर देख; पृथ्वी, सम्भाल अपनेको—एक स्वाधीनताका पुजारी एक मत्त-दुष्टसे लड़नेके लिए उद्यत है; वायु, रोक अपनी गतिको—देख ले जीवनमें इस दारुण दृश्यको भी !......अशोक, मैं प्रहार करता हूं।

अशोक—मेरी आंखें खुलीं, महेन्द्र......।

महेन्द्र—मैं आक्रमण करता हूं।

अशोक—ठहरो !......

महेन्द्र—सावधान !......

अशोक—मैं......।

महेन्द्र—मैं कुछ सुनना नहीं चाहता। केवल युद्ध चाहता हूं। (महेन्द्र आवेशमें आक्रमण कर देता है। अशोक अपनेको बचाता जाता है।)

महेन्द्र—मारो ! मारो मुझे !!

अशोक—ठहरो,—मैं युद्ध नहीं चाहता हूं।

महेन्द्र—तब मैं ही तुम्हारा वध करूंगा ! कुछ नहीं, मुझे मारो नीच डाकू ! (अब अशोक भी युद्ध करने लगता है। उसके प्रत्याघातसे महेन्द्र गिर जाता है।)

महेन्द्र—लेकिन मौत कहां है ? मैं मरना चाहता हूं।

अशोक—मुझे क्षमा करो, महेन्द्र ! मैं अपनी भूलपर लज्जित हूं।

महेन्द्र—चुप रहो ! नीच, लोभी डाकू ! सोनेके समान कलिङ्गकी भूमि रक्तसे भिगो कर क्षमा चाहते हो !—साधुका झूठा स्वांग ! जाओ अशोक, मेरी जननी जन्म-भूमिके गलेमें सोनेकी भारी शृङ्खला डाल दो ।

अशोक—और तुम ?

महेन्द्र—मुझे मरने दो ! लेकिन एक बार—केवल एक बार—मुझे अपनी जन्म-भूमिसे दो बातें करने दो ! जो होना था, सो हो गया ! मेरी मांको तुमने वन्दी बना लिया । पर—पर मेरा वश क्या था ?

अशोक—जाओ महेन्द्र, मैं तुम्हें कलिङ्ग दानमें देता हूं । अपना राज्य ले लो ।

महेन्द्र—पाखण्डी ! डाकू !!

अशोक—व्यर्थ अभिमान तुम्हें नहीं सोहता, वीर !

महेन्द्र—वीरका अभिमान व्यर्थ नहीं होता, सम्राट् !

अशोक—तो मैं तुम्हारी सन्तान तकको चैन नहीं लेने दूंगा । सभीके खूनसे तुम्हारे अभिमानको धो डालूंगा ।

महेन्द्र—एक दिन आयेगा, जब तू अपने इन कुत्सित कर्मोंके लिए पश्चाताप करेगा । आज तू इस देशकी हरियालीको अपने पैरोंसे कुचल रहा है, किन्तु जब बौद्ध-धर्मका प्रकाश तेरे हृदयके अन्धकारमय गह्वरमें अपनी तेजोमयी आभाके साथ प्रवेश करेगा, तो तेरे मानस-चक्षुके बन्द द्वार एक भीषण आघातसे अचानक ही खुल जायेंगे । मैं अब और नहीं देख सकता ! तू सम्भल जा—मैं कहता हूं । आह—मेरा देश.........!

(मृत्यु)

अशोक—ओह ! ऐसा तिरस्कार ! तो मैं भी......! जाओ सैनिको । लूट-मार आरम्भ कर दो । मेरी आज्ञा मानो ।

(सहसा नङ्गी तलवार लिये देवेन्द्रका प्रवेश ।)

देवेन्द्र—(सैनिकोंसे) ठहरो ! (अशोकसे) विजयी सम्राट्, अपने मृत-पिताकी अशान्त आत्माके सम्मुख, इस उन्मुक्त आकाशकी नीलिमाके नीचे, अपनी जन्म-भूमिकी रक्षा करनेके लिए मैं तुमसे रण-दान मांगता हूं ।

अशोक—कुमार, कलिङ्गकी रक्षामें ये अगणित वीर मृत्यु-शय्यापर सोये हैं । सारा देश मेरे झण्डेके नीचे आ चुका है । अभी भी तुम्हारी रण-लालसा नहीं पूरी हुई है ? आश्चर्य !

देवेन्द्र—मेरे मृत पिताकी आत्मा मुझे निरन्तर युद्ध करनेके लिए उत्तेजित कर रही है । कलिङ्गकी स्वाधीनता लूट ली गयी । मेरे पिता रणाङ्गणमें काम आये । अब मैं भी मरना चाहता हूं ।

अशोक—मालूम होता है, युद्धके उन्मादमें तुम महेन्द्रकी तरह पागल हुए जा रहे हो । मेरी अधीनता मान लो ! सम्राट्की छत्र-छायामें रहकर राज्योपभोग करो ।

देवेन्द्र—सम्राट्की छत्र-छाया ? मैं उसको लात मारता हूं । मुझे किसीकी छत्र-छायाकी जरूरत नहीं है । तलवार ही मेरी सब कुछ है । तुम्हारे दानमें विष है ......।

अशोक—ऐसी स्पर्द्धा ! मुझे इसकी आशा नहीं थी ! सैनिको, इस जीवित आगको बांध लो ।

देवेन्द्र—मुझे तुमसे ऐसे प्रत्याचरणकी आशा नहीं थी ! मैं समझता था कि आर्यावर्त्तके सम्राट् मेरी ललकार सुनकर लड़नेके लिए तत्पर होंगे । किन्तु आज मैं देखता हूं कि एक नवयुवकसे युद्ध करनेके लिए, उन्हें अपने सैनिकोंसे सहायताकी याचना करनी पड़ती है ।

अशोक—तुम्हारे शब्द विषसे बुझे हैं ! मैं तुम्हारी ललकारका उत्तर अपनी तलवारसे देता हूं । सैनिको, दूर हटो । आओ कुमार, किन्तु देखना—मांका दूध मत लजाना । पिताके अमर यशपर कलङ्ककी गहरी काली चादर मत डाल देना ।

देवेन्द्र—मैं प्रलयका दृश्य उपस्थित करूंगा । कलिङ्गके वक्षस्थलपर यह अन्तिम युद्ध होगा । कौन कहता है कि कलिङ्ग पराधीन हो गया ? अभी भी उसकी लाज बचानेके लिए मैं हूं । सावधान सम्राट् !

अशोक—मैं तत्पर हूं ।

देवेन्द्र—तो यह लो (वार करता है) युद्ध । अशोक पीछेकी ओर हटता है । सैनिक देखते रहते हैं । अशोक घबरा जाता है । सहसा विजयकेतु प्रवेश करके देवेन्द्रपर वार करता है । देवेन्द्र दोनोंसे लड़ता है । पर अन्तमें निरुपाय होकर वन्दी हो जाता है ।

देवेन्द्र—यह बेईमानी !

अशोक—इसे शिविरमें ले जाओ ! (अशोकके सिवा सबका प्रस्थान । रक्ताक्त अशोक वहीं खड़ा रह जाता है ।)

यवनिका-पतन ।

भारतीय चित्रकलाका विकास

श्रीमती द्रौपदी देवी ओझा

भारतीय चित्र-कलाका प्रादुर्भाव आजसे सैकड़ों वर्ष पूर्व हुआ था; किन्तु इसके ठीक-ठीक समयका निर्णय अभी तक विवादास्पद ही है। अब तक प्राप्त प्राचीन चित्रोंसे इसका निर्माण-काल नहीं पाया जाता, किन्तु महाभारत, पुराण आदि प्राचीन ग्रन्थोंमें कई स्थानोंपर चित्र-कला-सम्बन्धी उल्लेख पाया जाता है। इससे विदित होता है कि प्राचीन-कालमें चित्र-कला प्रचलित थी।

आधुनिक कालके आरम्भमें, जब भारतपर अङ्गरेजोंका पूर्ण आधिपत्य हो चुका था, यूरोपीय कलाके बाह्य सौन्दर्यसे भारतीय विस्मित हुए, उनपर यूरोपीय चित्र-कलाकी भड़कदार सजावटका प्रभाव पड़ा। इस कालमें यूरोपीय कलासे पूर्ण प्रभावित चित्रकार राजा रवि वर्मा हुए। इनके चित्र यूरोपीय शैलीसे प्रभावित होनेपर भी उनसे भारतीय रूप और संस्कृतिकी छाप नहीं हटायी जा सकी। यूरोपीय टेकनिकके आधारपर राजा रवि वर्माने बहुतसे चित्रोंका निर्माण किया। उन्होंने अपने चित्रोंमें रामायण, महाभारत और पुराणोंकी कुछ घटनाओंका चित्रण किया है। इन चित्रोंमें रङ्गको विशेष महत्व दिया गया है। इसीलिए उनके चित्र चित्र-कलाकी दृष्टिसे नहीं, बल्कि धार्मिक दृष्टिसे अधिक सम्मानित और प्रचलित हुए। राजा रवि वर्माकी शैलीके आधारपर ही वर्तमान बम्बई स्कूलकी स्थापना हुई। इस स्कूलके चित्रोंमें भारतीय संस्कृति और सभ्यताका अभाव तो रहता ही है, साथ ही इसमें जीवनकी गम्भीरता और कलाका सूक्ष्म सौन्दर्य नहीं पाया जाता, जो कि जीवनसे अटूट सम्बन्ध रखता है और वास्तविक आनन्दकी सृष्टि करता है—रङ्गोंकी भड़कसे, विस्मयसे नहीं।

लगभग बीसवीं सदीके आरम्भ-कालसे भारतीय हिन्दू-कलामें एक नूतन-शैलीका आविर्भाव हुआ। अजन्ता तथा प्राचीन भारतीय चित्रकलाके आधारपर इस नवीन शैलीका निर्माण हुआ। इस शैलीके प्रवर्तक सुप्रसिद्ध चित्र-शिल्पी अवनीन्द्रनाथ ठाकुर हुए। बन्होंने 'बङ्गाल स्कूल आफ आर्ट' की स्थापना की, और इस पद्धतिका प्रचार किया। इस आर्टमें यह विशेषता है कि भावोंका चित्रण सूक्ष्म रेखाओं द्वारा होता है। इस स्कूलके चित्रकारोंने भावोंके चित्रण करनेमें बड़ी कुशलता व्यक्त की है। अवनीन्द्रनाथ ठाकुरने इस स्कूलकी स्थापना प्राचीन भारतीय चित्रकलाके पहलुओंके आधारपर की थी। इन्हीं सिद्धान्तोंका अनुकरण उनके शिष्योंने भी किया है। इस शैलीने भारतीय चित्र-कलाको यूरोपियन प्रभावसे बचाकर भारतीय संस्कृति, कला और सभ्यताकी सराहनीय रक्षा की है और उसके पुनरुद्धारका श्रेय इस शैलीके प्रवर्त्तक शिल्पाचार्य अवनीन्द्रनाथ ठाकुरको है। पहले-पहल जब यह नवीन शैली लोगोंके सामने आयी, तो विदेशी भावनाओंके दास अनेक चित्रकार इसके विरुद्ध हो गये, पर आचार्य महोदयने उनकी आलोचनाओंका करारा उत्तर देनेके लिए कई लेख लिखे और अपने विचारोंके समर्थनमें प्राचीन कृतियों और ग्रन्थ-शास्त्रोंको सामने रखा। इतना ही नहीं, उन्होंने और भी अनेक उपायोंसे इसका प्रचार देश-भरमें कराया और लोगोंके भावोंको बदला; पर इतना होनेपर भी हमारी क्रीत-दासता नहीं गयी और हम इस शैलीकी उपेक्षा किया करते हैं। इसका कारण यह है कि हम लोग भारतीय कलाके उद्देश्यों और भावोंको समझ नहीं पाते और न कभी उन्हें समझनेका प्रयत्न ही करते हैं। अवनीन्द्रनाथ ठाकुरके चित्रोंमें 'विरही यक्ष' 'महारानी तिष्या-रक्षिता', 'यात्राका अन्त', 'बुद्धदेवकी निर्वाण-प्राप्ति', 'सिद्धार्थका गृह-त्याग', 'शाहजहांके ताज-निर्माणका स्वप्न' आदि चित्र बहुत प्रसिद्ध हुए, जो चित्रकलाकी दृष्टिसे अति उच्च हैं।

शिल्पाचार्य अवनीन्द्रनाथ ठाकुरके अतिरिक्त उनके प्रमुख और सुप्रसिद्ध शिष्य चित्र-शिल्पी नन्दलाल बोसने भी इस पद्धतिको बहुत उन्नत किया। भारतीय कलाके इस सूक्ष्म सौन्दर्यको उन्होंने चित्रोंमें खूब प्रदर्शित किया है। इस कलाके विकास और प्रचारमें कलाकार बोसका नाम भी भारतीय चित्र-कलाके इतिहासमें उच्च स्थान रखता है। उन्होंने इस पद्धतिको और भी अधिक परिमार्जित किया और अपनी कलामें चीनी और जापानी चित्र-कलाकी पद्धतिको भी सम्मिलित किया।

नन्दलाल बोस शिल्पाचार्य अवनीन्द्रनाथ ठाकुरके प्रथम शिष्य हैं। इनके बाद उनके शिष्योंमें क्रमशः स्वर्गीय

सुरेन्द्रनाथ गङ्गोपाध्याय, असित कुमार हाल्दार, हकीम मुहम्मद खां, वेङ्कटप्पा, वीरेश्वर सेन, क्षितीन्द्रनाथ मजूमदार तथा स्वर्गीय शारदाचरण उकील आदि अनेक प्रसिद्ध हुए। इनमेंसे कई चित्रकारोंके नेतृत्वमें कलकत्ता, शान्तिनिकेतन, मद्रास, लखनऊ, जयपुर, देहली आदि स्थानोंमें भारतीय चित्र-कलाका विभिन्न पद्धतियों द्वारा विस्तार हो रहा है।

बङ्गालके बाहर भारतीय शैलीका प्रचार लखनऊमें असितकुमार हाल्दार और हकीम मुहम्मद खां द्वारा तथा देहलीमें स्वर्गीय शारदाचरण उकील द्वारा भी अधिक हुआ है। असितकुमार हाल्दारने चित्र-कलाकी शिक्षा अवनीन्द्रनाथ ठाकुरके शिष्यत्वमें ग्रहण की। यह अपनी प्रतिभा और चित्र-कलाके कारण बहुत प्रतिष्ठित और प्रसिद्ध हुए हैं। आधुनिक भारतीय चित्रकारोंमें बहुत कम ऐसे होंगे, जिन्हें रेखाओंके अङ्कनमें वह पटुता प्राप्त है, जो हाल्दार को है। इनके चित्रोंमें सजीवता अपेक्षाकृत अधिक होती है। यह निरन्तर नई-नई रचना-प्रणालीका आश्रय लेते रहे हैं। इनके चित्रोंमें भित्ति-चित्रोंका भी प्रभाव पाया जाता है। उनमें 'रास लीला', 'तूफानकी देवी', 'निर्माता अकबर' 'श्रेष्ठ भिक्षा', 'रवि भारती' तथा 'मां' नामक चित्र अति उच्चकोटिके हैं। आज-कल हाल्दार महोदय लखनऊके गवर्नमेण्ट स्कूल आफ आर्ट्‌स एण्ड क्राफ्ट्‌सके प्रिन्सिपल हैं। वे बंगलाके एक अच्छे कवि भी हैं। उनका कविता-संग्रह 'खयालिया' बहुत प्रसिद्ध है।

चित्र-शिल्पी हकीम मुहम्मद खां अपनी चित्र-कलाके लिए शिल्प-गुरु अवनीन्द्रनाथ ठाकुरके हृदयमें ऊंचा स्थान रखते हैं। अपनी प्रतिभाके कारण वे उनके प्रिय शिष्योंमें-से रहे। हकीम महोदयने मुगल और राजपूत शैलीके चित्रणमें खूब सफलता प्राप्त की। इस शैलीके उनके चित्र बहुत उच्चकोटिके हैं, इन्हींके कारण हकीम साहब बहुत प्रतिष्ठित कलाकार माने गये। इस शैलीके अतिरिक्त उन्होंने हिन्दू-संस्कृतिके चित्रणकी ओर भी विशेष ध्यान दिया। इनकी शैली बङ्गाली शैलीसे भिन्न प्रकार की है, जो अपना अलग स्थान रखती है। इनके 'नादिरशाहका आक्रमण' 'शीत काल' 'ताजमहलका स्वप्न' 'सिकन्दरा निर्माण' 'सिकन्दर जन्म' 'लैला-मजनूं' 'बन्दी दारा' आदि चित्र बहुत प्रसिद्ध हैं। रामायण, महाभारत और पुराणोंकी घटनाओंपर बनाये गये इनके कई चित्र भी अत्यन्त सुन्दर हैं।

स्वर्गीय शारदा चरण उकील भी आचार्य ठाकुर महोदयके प्रिय शिष्योंमेंसे थे। मानव-सौन्दर्यका इन्होंने बड़ी सहृदयता पूर्वक चित्रण किया है। सन् १९१९ में उन्होंने देहलीमें 'स्कूल ऑफ मॉडर्न आर्टकी' स्थापना की, और कलाका प्रचार करनेके लिए समय-समयपर कई प्रदर्शिनियोंकी योजनायें कीं। कुछ समय तक उन्होंने कला-सम्बन्धी 'रूप-लेखा' नामक पत्रिकाका सञ्चालन किया, किन्तु आर्थिक अभावके कारण उसे बन्द कर देना पड़ा। भारतीय चित्र-कलाके उत्थानमें स्वर्गीय उकीलका बड़ा हाथ रहा। उनके चित्रोंमें 'गृह-हीन माता' 'रास-लीला' 'जटायु-वध' 'वज्र और उर्वा' 'औरङ्गजेब' आदि चित्र बड़े गम्भीर और कला-पूर्ण हैं। इनके छोटे भाई रणदाचरण उकील और बरदाचरण उकील भी सफल चित्रकार हैं।

श्री अब्दुल रहमान चगताई और गुजरातके सुप्रसिद्ध चित्रकार कनुदेसाई सूक्ष्म रेखाओं-द्वारा भावपूर्ण चित्र बनानेमें बहुत सफल हुए हैं। चगताई महोदयकी कलामें ईरानी चित्र-कलाका स्पष्ट प्रभाव है। कनु देसाईका अपना अलग स्कूल है, और अपनी अलग शैली। यह गुजरातके सर्वश्रेष्ठ कलाकार हैं। इनके चित्रोंमें 'जीवन उत्सव' 'मङ्गल घट' 'पाणि-ग्रहण' सत्यकी खोजमें' आदि प्रमुख हैं। छाया चित्रोंके बारेमें कनु सब भारतीय चित्रकारोंसे आगे हैं।

जयपुरके रामगोपाल विजय-वर्गीयके कला-पूर्ण चित्रोंसे प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी खूब परिचित है। आज-कल इनके चित्र खूब लोकप्रिय हैं। इनका झुकाव राजपूत शैलीकी ओर अधिक मालूम होता है। बङ्गाली शैलीका भी इनकी कला-पर प्रभाव है। फिर भी उनकी अपनी शैली और अपना स्कूल है। इनके चित्रोंको प्रतिष्ठित स्थान मिलना इनकी प्रतिभाका ज्वलन्त प्रमाण है।

इनके अतिरिक्त भारतके विभिन्न स्थानोंमें अनेक प्रसिद्ध चित्रकार भारतीय कलाका अपने चित्रों द्वारा प्रचार कर रहे हैं, तथा उसकी नींवपर नित्य-नवीन शैलियोंका आविष्कार कर रहे हैं। गुजरातके रविशङ्कर रावल, सोमालाल शाह मद्रासके डा० कुमार स्वामी और वीर भद्रराव आदि अनेक कलाकार भारतीय कलाके उत्थान और उसके प्रचारमें अनवरत कार्य कर रहे हैं। इस कारण यूरोपियन चित्र-कलाका प्रभाव अब उतना नहीं रहा है, जितना पहले था। अब भारतीय चित्र-कलाका उत्तरोत्तर विकास और उसकी उन्नति हो रही है।

उद्योग-धन्धेकी आर्थिक कठिनाइयां

प्रो० महेशचन्द्र अग्रवाल एम० ए०, बी० एस० सी० (आनर्स)

"क्या आप इस अबरखवाली कम्पनीके हिस्से खरीदेंगे"—मैंने गणेश बाबूसे पूछा।

"हिस्से! पागल हुए हो। मैं और हिस्से! जितनी नयी कम्पनियां चालू होती हैं और जिनके सम्बन्धमें अखबारोंमें विज्ञापन निकलते हैं, उनके हिस्से खरीदना आंख बन्द करके रुपये फेंकना है। उन कम्पनियोंकी आड़में उनके कथित कार्यकर्त्ता जनताका रुपया हड़पते हैं, हड़पते!"

"लेकिन आप यह भी तो मानते हैं कि बड़ी-बड़ी कम्पनियां खोलकर देशमें उद्योग-धन्धोंकी वृद्धि की जानी चाहिये। इन कम्पनियोंके चलानेके लिए जो रुपया चाहिये, वह जनतासे ही तो मिलेगा और जनता तक पहुंचनेके लिए विज्ञापनसे उत्तम कोई रास्ता नहीं है।"

"जी नहीं। वैसी बड़ी-बड़ी कम्पनियां चुपचाप चालू हो जाती हैं। वे जनताके सामने हाथ पसारें, तो हो चुका! जनताके सामने तो शरीफ लुटेरे ही हाथ फैलाते हैं। मैं पूछता हूं कि जो इतने बड़े-बड़े कारखाने चल रहे हैं, वे क्या जनताके रुपयेसे चल रहे हैं? आखिर ये लखपती करोड़-पती किस दिन काम आयेंगे? न भाई! मैं तो इन शेयरोंसे बाज आया। तुम भी कभी इनके चक्करमें मत पड़ना।"

जैसा कि उपर्युक्त बातसे स्पष्ट है, जनता कम्पनीके शेयरोंको सन्देहकी दृष्टिसे देखने लगी है। कारण, जनताको कम्पनीकी सफलताकी आशा नहीं और उसके पिछले अनुभव इसकी पुष्टि करते हैं। उदाहरणार्थ, एक कम्पनी साठ लाख रुपयेके शेयरोंकी बिक्री करती है। उस रकमसे वह तीन मशीनें मंगाकर काम चालू करनेका इरादा रखती है। परन्तु शीघ्र ही उसे पता चलता है कि साठ लाख रुपये पर्याप्त नहीं हैं। वह तीस लाखके हिस्से फिर बेचती है। इस बार भी कार्य चालू करनेमें सफलता नहीं मिलती। रुपये अब भी कम पड़ते हैं। उधर जनता अधीर हो उठती है। अतः कम्पनीके डायरेक्टर दो ही मशीनें चालू करना चाहते हैं और इस हेतु पुनः बीस लाखके हिस्सोंकी बिक्रीका विज्ञापन करते हैं। परन्तु इन हिस्सोंके बिक जानेपर भी कम्पनीका काम नहीं चालू होता और जनताके रुपये खटाईमें पड़ जाते हैं। जहां एक मनुष्यको एक-दो बार ऐसा अनुभव हुआ, वह और उसके मित्र नयी कम्पनियोंके हिस्सोंको सन्देह और डरकी निगाहसे देखते हैं।

परन्तु कम्पनी क्यों असफल रही? क्योंकि वह आवश्यक रकमका ठीक-ठीक अनुमान नहीं लगा सकी। यदि वह सर्वप्रथम ही सवा करोड़के हिस्से बेच देती, तो सम्भवतः उसे सफलता मिल जाती। अर्थात् यदि कम्पनीको धन्धेकी आर्थिक आवश्यकताओंके सम्बन्धमें किसी टेकनिकल ग्रूपसे सही सलाह मिल जाती, तो उसे बुरे दिन न देखने पड़ते।

तब क्या देशमें ट्रेनिंगप्राप्त दक्ष इञ्जिनीयर और विद्वानोंकी कमी है? क्या इस कामके लिए हमको सदैव "वेचिन बाय" और विलायती विद्वानोंका आयात करना पड़ेगा? मेरी समझमें तो भारतमें दक्ष और दक्षता प्राप्त करने योग्य मनुष्योंकी कमी नहीं है; परन्तु उन्हें अपनी योग्यताके प्रदर्शन अथवा विकासका अवसर ही नहीं प्राप्त होता। यहां औद्योगिक शिक्षाका भी शून्य-प्राय प्रबन्ध है।

अस्तु, दीर्घकालमें तो ऐसे भारतीय दक्ष मनुष्योंकी सलाह और सहायता उसी प्रकार मिल सकती है, जिस प्रकार ऑडीटर, रजिस्टर्ड एकाउण्टेण्ट और एकचुयरी की। परन्तु अल्पकालमें इन टेकनिकल महानुभावोंको कौन रखे? क्या यह उचित होगा कि व्यापारिक बैङ्क ऐसे मनुष्योंको नौकर रखें और क्या वे पूंजी भी कम्पनियोंको उधार दें, अथवा क्या यहांपर भी पश्चिमीय देशोंकी भांति इन्वेस्टमेंट ट्रस्टकी आवश्यकता है, जो भावी नयी कम्पनियोंके चालकोंको राय दें और उन्हें रुपये भी उधार दें? इससे पहले कि इन प्रश्नोंपर विचार किया जाय, यह जानना अप्रासङ्गिक न होगा कि इस समय चालू भारतीय उद्योग-धन्धोंको धन कहांसे मिलता है। इन धन्धोंका भाग्य कुछ इने-गिने मैनेजिंग एजेण्टोंके हाथमें है। यही एजेण्ट इन धन्धोंमें अपना पर्याप्त धन भी लगाते हैं और उससे मुनाफा भी काफी उठाते हैं। ये एजेण्ट करोड़पति होते हैं और देशमें इन्हींकी तूती बोलती है। कम्पनियोंमें लगे श्रम और कम्पनीके खरीदारोंके हितमें यह आवश्यक प्रतीत होता है कि कम्पनीकी स्थायी सम्पत्ति तथा चालू सम्पत्तिका एक भाग,

जो कच्चे और तैयार मालके रूपमें सदैव फंसा रहता है, जनतासे आवे, ताकि कम्पनीकी व्यवस्था लोकतन्त्रात्मक हो। कम्पनीकी शेष चालू सम्पत्तिकी आवश्यकताएं व्यापारिक बैङ्कोंसे पूरी हो सकती हैं।

परन्तु जब जनताके दिलमें अविश्वास जमा हुआ है, तो उन्हें अपना रुपया लगानेके लिए कैसे राजी किया जाय? यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो देशमें इन्वेस्टमेंट ट्रस्टकी प्रवृत्ति दिखायी पड़ेगी। रोज ही अखबारोंमें शेयर-ब्रोकर-सिंडिकेटके विज्ञापन बढ़ते जाते हैं और यह अनुमान किया जा सकता है कि जनताका उनमें विश्वास बढ़ रहा है। इन विज्ञापनों और इन सिंडिकेटोंकी बुलेटिनोंसे यह पता चलता है कि सिंडिकेटने अमुक कम्पनीको राय दी थी और वह कम्पनी सफल होकर अब इतना (जैसे ६, ९ और ११ प्रति सैकड़ा) मुनाफा बांट रही है। स्पष्ट है कि यह सिंडिकेट इन्वेस्टमेंट ट्रस्टके ढङ्गपर काम कर रहे हैं। अतः कहा जा सकता है कि भविष्यमें इन्वेस्टमेंट ट्रस्ट उचित रहेंगे।

परन्तु क्या व्यापारिक बैङ्कोंको उद्योग-धन्धोंमें पूंजी लगाना चाहिये? ऊपर हमने चालू पूंजीके लिए तो कोई एतराज नहीं किया है, परन्तु स्थायी पूंजीके सम्बन्धमें विरोध होना सम्भव है। कारण, व्यापारिक बैङ्कोंकी पूंजी करेण्ट और फिक्सड डिपाजिटसे आती है। करेण्ट (अस्थायी) डिपाजिटका रुपया चाहे जब और चाहे जितनी मात्रामें निकाला जा सकता है और फिक्सड (स्थायी) डिपाजिटका साल-दो-सालमें एक बार। अतः बैङ्क अपनी पूंजी दीर्घकालके लिए नहीं फंसा सकता। परन्तु यदि बैङ्क दीर्घकालके लिए मिली हुई पूंजीको उद्योग-धन्धोंके शेयर खरीदनेमें लगाये, तो कोई विरोध नहीं होना चाहिये। यहां यह भी बताना है कि अच्छा हो, यदि एक कम्पनी एक ही बैङ्कसे सम्बन्ध रखे। ऐसा होनेसे बैङ्क उस कम्पनीकी आवश्यकताओंको विशेष और समुचित रूपसे पूरा कर सकेगा।

दीर्घकालीन पूंजीके लिए बीमा कम्पनियोंका भी मुंह ताका जा सकता है। पर दुख है कि भारत-सरकारने बीमा कम्पनियोंपर जो प्रतिबन्ध लगाये हैं, उनके कारण बीमा कम्पनियोंका एक बड़ा हिस्सा सहजमें बिकी हो जानेवाली सिक्यूरिटी (जैसे गवर्नमेंट सिक्यूरिटी) में लगा रहता है। मैं यह मानता हूं कि बीमा कम्पनियोंको अधिक जोखिम नहीं उठाना चाहिये, परन्तु बहुत खबरदारी भी अच्छी नहीं। बीमा कम्पनियोंको उद्योग-धन्धोंके लिए रुपया लगानेकी सुविधा हेतु वर्तमान बीमा कानूनमें समुचित रद्दोबदल होना चाहिये।

यह तो स्पष्ट है कि उपर्युक्त पूंजीके साधन मैनेजिंग एजेण्टकी पूंजी और हथकण्डोंसे बचनेके लिए ही सुझाये गये हैं। परन्तु क्या मैनेजिङ्ग एजेण्ट बिलकुल अवांछनीय है? इसमें तो कोई संदेह नहीं कि भारतीय उद्योग-धन्धोंको प्रोत्साहन और उन्नति प्रदान करके मैनेजिंग एजेन्सियोंने हमारे आर्थिक इतिहासमें नाम अमर कर लिया है। परन्तु इस कारण इस प्रणालीकी बुराइयोंको छिपाया नहीं जा सकता। पहले तो मैनेजिंग एजेण्टोंकी कम्पनीपर बपौती रहती थी और वे अपने हक या फीसको किसीको दे या बेच सकते थे। वे कम्पनीसे अव्यवस्थित रूपसे पैसे वसूल करते थे और अपने अन्तर्गत एक कम्पनीके पैसे, डिबेञ्चर या ऋणके रूपमें दूसरी कम्पनीमें लगा देते थे। सन् १९३६ में भारतीय कम्पनी एक्टके संशोधनने इन बुराइयोंको रोक दिया है। मैनेजिंग एजेन्सीकी अवधि बीस वर्ष है। उसके बाद एक कम्पनी मैनेजिंग एजेण्टको बदल सकती है। एजेण्ट अपने हक या आयको दूसरेको नहीं दे सकता। एजेण्टका कमीशन कम्पनीके असली मुनाफेपर ही होगा। एक ही एजेण्टके हाथकी कम्पनियां आपसमें उधार या डिबेञ्चर नहीं ले-दे सकतीं। परन्तु कम्पनीसे अनुचित लाभ उठाने और धोखा-धड़ी करनेका अब भी काफी अवसर है। इसके अतिरिक्त एक-एक एजेन्सीके पास बहुत-सी कम्पनियोंकी व्यवस्था रहती है। उदाहरणार्थ, किसी एक ही कम्पनीके हाथमें जूट, कोयले, तेल, आटा, चीनी, रबर, टाइल, चीनीके बर्तन, जहाज आदि कम्पनियोंकी मैनेजिंग एजेन्सी है तो यह सन्देहात्मक है कि वह प्रत्येक कम्पनीका पूर्ण हित कर सकती हो। यदि जूटकी मिलको कोयलेकी आवश्यकता है, तो बहुत सम्भव है कि मैनेजिंग एजेण्ट बाजारमें बहुत सस्ती दरपर सौदा न करके अपनी कोयलेवाली कम्पनीसे सौदा खरीदे। परन्तु ऐसी हालतमें भी यदि एजेण्टके हाथमें कई कोयलेकी कम्पनियां हैं, तो वह उनके साथ न्याय नहीं कर सकता।

मैनेजिंग एजेण्टोंके विरुद्ध एक महत्वपूर्ण दलील यह दी जाती है कि वे अपने रुपयेको कम्पनीमें लगाकर कम्पनीके हिस्सेदारोंकी आवाजको नक्कारखानेमें तूतीकी आवाजका रूप दे देते हैं। यह सत्य है, परन्तु यदि मैनेजिंग एजेण्ट इस धनका न्यायपूर्ण उचित सूद और मुनाफा लें तथा

कम्पनीकी व्यवस्था क्षमतापूर्वक करें (जिससे कम्पनीकी उत्तरोत्तर उन्नति हो), तो कोई बुराई नहीं। दर-असल ये मैनेजिंग एजेण्ट आज एक डिक्टेटरकी भांति काम कर रहे हैं, जिसने अत्यधिक काम उठा लिये हों। यह आवश्यक है कि वे अपने अधिकारोंका विकेन्द्रीकरण करें। दूसरे और अधिक महत्वकी बात यह है कि दीर्घकालकी दृष्टिसे धन्धोंकी पूंजी तथा उनका नियन्त्रण जनताके हाथमें जाना चाहिये। मैनेजिंग एजेण्ट ऐसा करनेमें असमर्थ प्रतीत होते हैं। कुछ हद तक यह अवश्य सत्य है कि किसी कम्पनीकी उन्नति हो जानेपर मैनेजिंग एजेण्ट शेयर मार्केट द्वारा कम्पनीकी पूंजी पब्लिकसे उगाहकर अपनी स्वयंकी पूंजी निकाल अन्य नयी कम्पनियोंको चालू करनेका प्रयत्न करते हैं। परन्तु यह कार्य वे छोटी-बड़ी प्रत्येक किस्मकी कम्पनीके लिए नहीं करते। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि (१) नयी कम्पनियोंको चालू करने, (२) उनकी पूंजी चल करने तथा अचल पूंजीको उगाहने और (३) उनका प्रबन्ध करनेके कार्योंको तीन विभिन्न संस्थाएं उठा लें।

कम्पनियोंको चालू करनेके लिए कुछ साहसी पूंजीपति तथा एक औद्योगिक कारपोरेशनकी आवश्यकता है। कारपोरेशन धन्धेके सम्बन्धमें सलाह* दे सकता है तथा यदि उसकी योजनाको उपयुक्त समझे, तो उसकी प्राथमिक आर्थिक आवश्यकताएं पूरी कर सकता है। कालान्तरमें जब कम्पनी उन्नति करने लगे, तो कम्पनीकी पूंजी जनता, औद्योगिक बैङ्कों, व्यापारिक बैङ्कों और बीमा कम्पनियोंसे उगाही जाय और कारपोरेशनकी रकम चुका दी जाय। यदि आरम्भवाला पूंजीपति दक्ष मैनेजर हो, तो वह कम्पनीकी व्यवस्था करे; अन्यथा उसे उचित कमीशन या हिस्सेके अतिरिक्त कम्पनीके जोखिम और चिन्ताओंसे बरी कर दिया जाय।

* देशमें कौन-से धन्धे चालू हो सकते हैं तथा किस प्रदेशमें किस वस्तुकी उत्पत्ति करनेकी सम्भावना है, इस सम्बन्धमें सरकारी उद्योग-धन्धे विभागका खोज-कार्य कर सकता है और साहसी व्यक्तियोंको उत्साहित भी कर सकता है।

पूंजी उगाहनेका कार्य इन्वेस्टमेंट बैङ्क या इन्वेस्टमेंट ट्रस्टको सौंपा जा सकता है। औद्योगिक कारपोरेशनकी सलाहसे ये बैङ्क या ट्रस्ट कम्पनीविशेषके शेयरोंको स्वयं खरीद सकते हैं तथा अपने आसामी और ग्राहकोंको खरीदनेकी राय दे सकते हैं। बेहतर होगा यदि प्रति धन्धे पीछे एक या कुछ थोड़ेसे ही ट्रस्ट हों, ताकि अनार्थिक स्पर्द्धा न आरम्भ हो जाय। इसके अतिरिक्त ऐसा होनेसे ट्रस्ट सरलतापूर्वक धंधेकी प्रगतिका अध्ययन कर सकेगा और कम्पनीवालोंको उचित सलाह दे सकेगा। परन्तु जहां तक हो चल पूंजी ही व्यापारिक बैङ्कोंसे उगाही जाय। मैनेजिंग एजेण्टको एक निश्चित संख्यासे अधिक हिस्से न दिये जायं।

प्रबन्ध-कार्य मैनेजिंग एजेण्टके हाथमें दिया जा सकता है, परन्तु वे कम्पनीके बोर्ड आव डायरेक्टर्सके प्रति उत्तरदायी रहें तथा उन्हें अनुचित लाभ उठानेका अवसर न मिले। जहां तक हो भारतीय मैनेजिंग एजेण्टसे कहा जा सकता है (और उन्हें चाहिये भी) कि देशके प्रति उनका जो धर्म है, उसे याद करके धन्धोंका उचित प्रबन्ध करें, परन्तु अनुचित और अप्रत्यक्ष लाभ न उठावें। मैनेजिंग एजेण्ट एकसे अधिक कम्पनियोंका कार्य हाथमें ले सकते हैं, परन्तु बेहतर होगा, यदि वे एक ही धन्धेकी कम्पनियोंपर हाथ मारें। यदि वे भिन्न-भिन्न धन्धोंकी कम्पनियोंका कार्य उठायेंगे तो उन्हें कई प्रकारके धन्धोंका विस्तृत ज्ञान प्राप्त करना पड़ेगा। इससे उनमें वह निपुणता नहीं आ सकती, जो वांछनीय है। मैनेजिंग एजेण्टका यह भी कर्तव्य है कि वे बड़े और छोटे—दोनों मात्राके धन्धोंको प्रोत्साहित करें, परन्तु यदि, जैसा अब तक देखा गया है, मैनेजिंग एजेण्ट छोटी मात्राके धन्धोंकी ओर ध्यान नहीं देते, तो उसके डायरेक्टरोंको कारपोरेशन और ट्रस्टकी सहायतासे उपयुक्त मैनेजर रख लेना चाहिये, तथा छोटी मात्राकी कम्पनियोंको आपसमें गुट्टबन्दी कर लेनी चाहिये ताकि वे बड़ी मात्राकी कम्पनीकी स्पर्द्धामें अपना कार्य सफलतापूर्वक चला सकें।
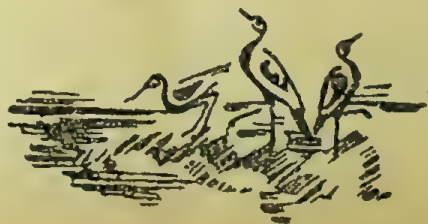
कर्तव्यकी प्रेरणा

श्री आनन्द एम० ए०

इन दिनों अखिल कुछ अजीब हो गया है। 'ज्योति'का उप-सम्पादक होकर जबसे वह काशी आया, तभीसे किसीने उसके मुखपर मुक्त हंसी न देखी। जब कभी वह हंसता है, उसकी आंखें रोती रहती हैं। उसे यहां आये अभी तीन महीने भी तो नहीं हुए। लेकिन वह इस जीवनसे ऊब-सा गया मालूम पड़ता है। बात करते, हंसते या गाते, एकाएक वह मौन हो जाता। उसकी मुखाकृति गम्भीर, कठोर तथा दृढ़ हो जाती। सबके बीच होता हुआ भी सबसे दूर जान पड़ता। अखिल दुनियामें रहता हुआ भी दुनियासे अकेला और अकेला होता हुआ भी दुनियासे घिरा जब मालूम होता, तब वह कुछ असाधारण-सा प्रतीत होता। दफ्तरमें उसने जो कुछ सोचा, उसकी मीमांसा करता हुआ-सा वह अपने कमरेमें आकर आराम-कुर्सीपर लेट रहा। और विचारोंकी तन्द्रासे जब जागा, तो सन्ध्या हो चली थी। अखिलकी दुनिया आज गीली-गीली क्यों है? उसके विचार ऊंचे हैं, उसमें कर्तृत्व-शक्ति भी अपार है। किन्तु इस समय वह उखड़ा-उखड़ा-सा क्यों है? सहसा अखिल उठ खड़ा हुआ। मनका उद्वेग मिटाना आवश्यक है। वह बाहर पार्कमें कुछ देर टहलेगा।

अखिल उदास तो रोज ही रहता; लेकिन और दिनोंकी अपेक्षा आज वह और अधिक व्यग्र तथा विचलित है। सुदूर पश्चिममें, प्रतीचीके अन्तिम छोरमें पीला सूरज झूल रहा था। क्षितिजमें मुंह फाड़कर रात दुनियाका भक्षण करनेको दौड़ी आ रही थी। वह सोच रहा था—इस तरह अधिक दिन नहीं चल सकता। इस पार या उस पार। यह बीचका जीवन असह्य है। संसारको धोखा दिया जा सकता है, समाजको भी ठगना आसान है, लेकिन अपने आप धोखा खाना, अपने आप ठगा जाना सह्य नहीं। मृग-तृष्णाके पीछे तो काफी भटका, खूब हैरान हो चुका। अब, जब थककर चूर हो गया हूं, अङ्ग-अङ्ग शिथिल हो रहा है, इस तरफ एक कदम भी चला नहीं जाता, तब किसके मोहमें पड़ा हुआ हूं? नहीं, यह सभी कुछ धोखा है। मैं धोखेकी इस टट्टीसे निकलना चाहता हूं। तीन महीने बीत गये। मैंने कुछ भी नहीं किया। बस एकान्तमें बैठकर अतीतकी यादमें घुलता रहा। घुलना, यह अब बन्द करना होगा। इन तीन महीनोंके पहले मेरे जीवनका लक्ष्य किरण थी; लेकिन किरणसे अलग होकर मैंने जीवनका लक्ष्य कुछ और बनाया है।

मृग-मरीचिका, किरण,......अखिल सोच रहा था, मेरे जीवन-पथकी हैरानीके विस्तारके अन्तिम तटपर जो बैठी हंस रही है, क्या तू वही किरण नहीं, जिसे मैं कभी अपनी बाहोंमें भर सका था! वह किरण ही तो थी,—अखिल याद करने लगा—इस समय वह मृग-मरीचिका हो, चाहे स्वप्न, लेकिन किरणने वस्तुतः एक बार मेरी जीवन-प्यास बुझायी थी। अब जिसे मैं मृग-तृष्णा समझता हूं, उसे मैं सत्यतः स्वप्न ही मानता, यदि किरणके पत्र मेरे पास न होते। किरणके पत्रोंकी याद आते ही अतीतके कितने ही चित्र अखिलके विचार और भावना-क्षेत्रमें थिरक उठे! किरण और किरणके पत्र! अखिलने गहरी सांस छोड़ते हुए मन-ही-मन कहा—किरण न रही, रह गये उसके पत्र। किरण, मृग-मरीचिका, और ये पत्र—उस मरीचिकाकी तरफ बढ़नेकी हैरानीकी बीती कहानी! अखिल उत्तेजित हो उठा—ये किरणके पत्र ही तो हैं, जो मुझे अन्य दिशामें जानेसे रोकते हैं? लेकिन मैं भूल करता हूं। किरणके पत्रोंसे मैंने यदि प्रेरणा न ली, किरणकी स्मृतियों, उसकी बातोंने यदि मुझमें स्फूर्ति न भरी, किरणकी और मेरी कहानीने मुझे कर्तव्य-पथकी ओर अधिकाधिक वेगसे अग्रसर न किया, तो मुझे यह मानना पड़ेगा कि मैंने भूल की, मैंने पाप किया, जो किरणकी ज्योतिसे अपना जीवन ज्योतिर्मय करनेकी सोच रहा था। किरण, मेरे जीवनका उद्देश्य, किरणके पत्र, चिरन्तर प्रेरणाके साधन। अखिलने निश्चय किया—मैं अपना कर्तव्य पूरा करूंगा। व्यामोह तभीतक व्यामोह है, जबतक जीवनमें वह कर्तृव्य-शक्ति नहीं भरता, इस शक्तिके आते ही व्यामोह जीवनकी प्रेरक शक्ति हो जाता है। किरणके पत्र! जीवनकी निधि!!—उसने निश्वास छोड़ी।

रातकी स्याही घुलने लगी। अखिलके जीवनके निबिड़ अन्धकारमें हृदय-देशके बीच किरणका ज्योति-पुञ्ज छाया हुआ था। उसके हृदय-पटपर अतीतका एक चित्र अङ्कित हो गया।

निर्जन चांदनी रात। पहाड़ीपर बना बंगला। मौलश्रीके विशाल पेड़की घनी पत्तियोंसे छन-छनकर, फूलोंसे सुरभित तथा कुछ-कुछ गीली होकर आनेवाली चन्द्र-किरणोंसे रञ्जित किरण, पत्थरके ढोकेपर बैठी मेरी ही तो बाट जोह रही थी। मैं भी तो अपनी किरणके पीछे सारी दुनिया भूल चुका था। किरणका एकान्त मैंने छेड़ दिया। किरण भी अपनी समस्त प्रखरता और आभाके साथ मेरी वृत्तियोंमें समा गयी। मैंने किरणको समेट लिया।

आह, आह! अखिलने करवट बदल ली। पार्कमें कितने ही आदमी आये और गये। किसीने अखिलको न देखा और अखिलने तो कबसे औरोंकी तरफ देखना छोड़ दिया था।

किन्तु, एकान्त आज अखिलके लिए नितान्त निर्दय हो चुका था। उसने करवट बदली ही थी कि दूसरा भी चित्र उसकी निष्प्रभ आंखोंके सामने थिरक उठा। अखिल जैसे उसे समझनेकी कोशिश करने लगा,......

किरण प्रश्न कर रही है,—तुम मुझे भूल तो न जाओगे? पगली, यह भी कैसा प्रश्न है? फिर दोनों...।

अखिलेश तड़प उठा। वह सोचने लगा—यह सब हुआ क्यों? किरण मुझसे छीन क्यों ली गयी? अखिलको तब एक दिनकी बात याद आ गयी, जब उसकी मजबूत भुजाओंमें बंधी भोली किरणने उसकी तरफ कातर दृष्टिसे देखा था। वह पूछ रही थी—अखिल, तुम आंधी बनकर मेरे जीवनमें क्यों छा गये? अखिल, तुम विवाहित हो, तुम्हारे बच्चा है। अखिल, बोलो, फिर यह जाल क्यों फेंका? और जब यह जाल फेंका, तो अखिल, किरण तुम्हारी ही बंदिनी है। मेरे अखिल, बोलो, तुम अपने जीवनमें स्थान न दोगे? अखिलके बाहुपाश ढीले हो रहे थे। वह मर्माहत हो रहा था। निरुत्तर था। सहसा किरणको जोरोंसे बाहु-पाशमें कसते हुए उसने आर्द्र कण्ठसे कहा था—किरण, रानी, मेरे युग-युगकी रानी, मेरे लिए गीताका केवल सामाजिक मूल्य है। जीवनका मूल्य नहीं। संसारकी नजरोंमें गीता मेरी है। किन्तु मेरी नजरोंमें......! बोलो, इसे कौन समझेगा। समाजकी नजरोंमें हमारे और तुम्हारे जीवनका कोई मूल्य हो या न हो, लेकिन मेरे लिए मेरी किरणको छोड़ और कोई नहीं। रानी, गीता समाजका स्वरूप है। गीता समाजकी प्रतिनिधि है। तुम मेरा स्वरूप हो। तुम मेरी प्रतिनिधि हो। समाजमें हमें और तुम्हें यदि रहना है, तो चलो हम दोनों मिलकर इस समाजकी सेवा करें, उसे अपनावें। बोलो रानी, क्या हमारे और तुम्हारे विशाल जीवन-प्रदेशमें यह समाज कोई स्थान पानेके योग्य नहीं? रानी, समाजका कल्याण इसीमें है कि हम और तुम एक हो जायं। तभी समाज जी सकता है, नहीं तो रानी, एक-एककर अलग-अलग जलनेवाली ये जीवन-चितायें, जब एक साथ धधक उठेंगी, तो समाज क्या, संसार भस्मसात हो उठेगा और कितनी ही गीताओंका अन्त हो जायेगा। समाजका कल्याण इसीमें है, किरण और अखिल एक होकर गीताके साथ रहें। किरण, बोलो, क्या यह ठीक नहीं?

अखिलने जो करवट बदली, तो उसकी कमीजकी बांह आंसुओंसे भीग चुकी थी। उसकी आंखोंसे लगी विशाल काशी नगरीके बड़े-बड़े भव्य-भवन उससे कोसों दूर दिखायी पड़ते थे। उसकी आंखोंमें शून्य मंड़रा उठा था। अखिलने सोचा—मैंने किरणको अपने साथ रखनेके लिए क्या नहीं किया? लेकिन किरणका पिता, पाखण्डी, छली! समाज-सुधारक बना फिरता है! उसीने तो यह न होने दिया। वह दिन अच्छी तरह याद है। मैंने किरणके पितासे विवाहका प्रस्ताव किया था। किरण भी तो आड़में खड़ी सारी बातें सुन रही थी। उसके पिताने कहा—अखिलेश जी, आप किरणका और मेरा इतना खयाल करते हैं, अच्छा है। लेकिन आप विचार कीजिये। किरण-जैसी लड़की आपके साथ अर्थकष्ट झेल सकती है? और दूसरी जबरदस्त बात यह है कि आप विवाहित हैं। आपके बच्चा है। फिर आपकी जाति भी तो दूसरी है।......मैं निरुत्तर हो रहा था। किरण आड़से सामने आयी। पिताजीके सामने उसने घुटने टेक दिये—पिता जी, मुझे धन नहीं चाहिये। जातिकी परवाह नहीं। समाज-सुधारक और स्वतन्त्र विचारक आप-जैसे पिताकी पुत्री इन सामाजिक सङ्कीर्णताओंमें नहीं रह सकती। मैं स्वच्छन्द नहीं...... अभी अच्छी तरह वह अपने विचार प्रकट भी तो न कर पायी थी, उसके पिताने डांटकर उसे अपने सामनेसे चले जानेको कहा।

अखिल आगे न सोच सका। पार्कमें सोये-ही-सोये उसने गुस्सेसे ओठ काट लिये। किरण मेरे सामनेसे रोती चली गयी और मैं कुछ कर न सका। खैर, मैंने तब कुछ न किया, लेकिन उस महान कार्यके लिए ही मेरा जीवन अर्पित है। किरणकी और मेरी समस्या व्यक्तिगत नहीं, मानव-स्वतन्त्रताकी समस्या है। अखिलका मस्तिष्क घूम

रहा था। उसे लग रहा था, जैसे सारी काशी उसके चारो तरफ दौड़ रही हो। उसने सोचा—...जब किरण मुझसे छीन ही ली गयी, गीता मेरी दुनिया समेटनेमें असमर्थ ही है, तो मैं क्यों न अपना कर्तव्य पूरा करूं? पार्टी मुझसे आशा करती है। पार्टीका नेता मुझसे बार-बार अनुरोध करता है कि मैं अपनी भावनाके क्षेत्रसे हटकर संसारकी विषमताओंसे टक्कर लूं। ठीक है। जब मैं कुछ विशेष कार्य नहीं करता, तब भी यह पुलिस बराबर मेरे पीछे लगी रहती है, तो अब मैं खुल ही कर क्यों न इस क्षेत्रमें उतर पड़ूं? किरण, मुझमें शक्ति दो, उस समाजको और उसके पाखंडको, जिसने हमको और तुमको एक न होने दिया, उसे नष्ट कर देना चाहता हूं। किरण......! अखिल उत्तेजित हो उठा। उसे पता नहीं था कि रात गहरी हो चली है। पार्कमें कोई रह नहीं गया है। उसे घर चलना चाहिये।

पार्कसे घर आते समय रास्तेमें अखिल अपने भावी कार्य-क्रमपर विचार कर रहा था। वह सोच रहा था कि पार्टीकी कार्य-समितिकी बैठक होनेवाली है। अबकी बार कुछ जबरदस्त निर्णय होगा। जो भी हो, मैं अधिक समय तक रुक नहीं सकता। मुझे कुछ करना ही चाहिये।

भोजन करते समय अखिलने सोचा—आज रातको अपने बक्सकी एक-दो जरूरी चीजें रासालके यहां रख छोड़ूंगा। यह पुलिस भी तो पीछे-पीछे लगी रहती है। जाने कब धावा बोल दे। भोजनोपरान्त अखिलेशने अपना सूटकेस खोला और उसमेंसे सुन्दर-सी छोटी अटैची निकाल ली।

काशीके मीना-भवनमें अखिलका शान्ति-कुटीर है। वह इसीमें रहता है। अखिलने दरवाज़े बन्द कर लिये। बिजली-की रोशनी कमरेमें फैल गयी थी। खुली अटैची सामने थी।

रातके ग्यारह बजे हैं। मीना-भवनका प्रत्येक प्राणी निद्रामें लीन है। सड़कपर इक्के-दुक्के आने-जानेवाले एक्कों और रिक्शों तथा सड़कसे अकेले गुजरनेवाले राहीके शिथिल पैरोंमें पड़ी चप्पलोंकी आवाजके अतिरिक्त कोई शब्द नहीं। अर्द्ध रात्रिकी नीरवतामें अकेला एक अखिल अपने अतीत जीवनका कोई पृष्ठ खोले बैठा है। किरणका पत्र है। अखिलसे परिचय होनेके बाद उसने लिखा है—

अखिल जब तुम मेरे पास रहते, तो मैं भूली-भूली सी रहती हूं, जब तुम मेरे पाससे चले जाते, तो खोई-खोई-सी। क्या तुम फिर दर्शन न दोगे?

अखिलने जल्दी-जल्दी पत्र बन्द करते हुए मनमें सोचा—जीवन-पथमें, थकामांदा, हैरान-सा पथिक, यदि बावलीपर बैठ न जाता, तो क्या करता? किरण...... उफ, वह भी कैसी मदिरा है? मेरी प्यास बढ़तीही गयी और...... ।

अखिलने दूसरा पत्र खोला। ये उसके पहलेके पत्र थे। किरणने प्रश्न किया है...... तुम यहांसे जानेकी बात क्यों सोच रहे हो? तुम न रहोगे, तो मैं कैसे जी सकूंगी?

अखिल बेहद हो रहा था—कितने अरमान, कितना सेवाभाव लेकर मैं उस संस्थामें प्रविष्ट हुआ था। समाज-सुधारके नाम पर वह संस्था ढोंग है और हमलोगजैसे कार्यकर्ताओंके लिए जेलखाना। व्यक्तित्व और नेतृत्वके अतिरिक्त धनिकोंसे रुपया ऐंठनेके लिये ही यह प्रपञ्च रचा गया था......। मैं भी यह क्या सोच रहा हूं? मेरा वहां जाना यदि अभिशाप हुआ, तो क्या वरदान नहीं हुआ? किरण मेरे जीवनमें क्या अमृत-वर्षा नहीं करती?

किरणका दूसरा पत्र अखिलने खोला। उसका यही पत्र अन्तिम था। उसने लिखा था...........तुम्हारे सिद्धान्त और आदर्श यहां बन्धनमें पड़े हैं। मैं और सभी कुछ देख सकती हूं; किन्तु तुमको आदर्शोंसे गिरते नहीं देख सकती! तुम सहर्ष जा सकते हो। मुझपर विश्वास करो, मेरे विश्वास। मैं अपना कर्त्तव्य पूरा करूंगी। मैं अपने अखिलको......... विदा करूंगी। ओह!

अखिलकी आंखोंसे दो बूंद आसू गिर पड़े। वह आगे न बढ़ सका। रात और गहरी हो चली थी। पत्र एक तरफ रखते हुए उसने फिर सोचना शुरू किया—किरणने विद्रोह क्यों नहीं किया? मैं भी क्या सोचता हूं? मैंने खुद विद्रोह क्यों नहीं किया? हुः। तो, क्या मैंने कुछ किया ही नहीं! और जो कुछ किया, क्या वह विद्रोह नहीं था। पागल कहींके, किरणने तो इससे भी अधिक किया! अच्छा, इन बातोंसे क्या? असल बात यह है कि किरणके और मेरे दिलमें यह बात अच्छी तरह बैठ गयी कि हमें अपने शादीके पूर्व इन पाखण्डियोंको दूर करना है। एक किरण और एक अखिलके लिए नहीं, हमें करोड़ों किरण और करोड़ों अखिलकी, जो समाजके बन्दीगृहमें पड़े तड़प रहे हैं, मुक्तिका द्वार खोलना है। अपने जीवनकी क्रान्ति सफल हो, इसके लिये शादी नहीं, प्रत्युत समाजके अत्याचारकी भट्टीमें हमें अपने प्राणोंका हवन करना पड़ेगा, जिससे समाजकी यह पैशाचिक भूख शान्त हो। अतएव हमें सामाजिक क्रान्ति करनी होगी। किरणने भी तो यही कहा था?

अखिलके मनकी आंखें आज गीली हो उठी थीं। लेकिन उसे अब देर न करना चाहिये। पुलिस जिस प्रकार उसके पीछे लगी है, वह किसी भी क्षण गिरफ्तार किया जा सकता है। पार्टीके कुछ जरूरी कागजात और किरणके पत्र राखालके पास यदि उसने किसी प्रकार आज ही न रख छोड़े, तो आशङ्का है, कहीं धोखा न हो जाय! अखिलने तय किया, आज सवेरे ९ बजेके करीब राखालको ये सब चीजें दे आयेगा। अखिलको अब जरा भी देर न करनी चाहिये। वह राखालसे कह देगा कि किरणके पत्रोंको तो वह अपने पास ही रखेगा, लेकिन पार्टीके कागजात जबतक रख सके रखे, नहीं तो पार्टीके मन्त्रीके यहां इन्हें भेज दे। सम्भव है, किरण कभी उसे मिले। जीवनके उथल-पुथलमय तथा अकल्पित क्षणोंमें यह जीवन-निधि कहीं खो न जाय; इसीलिए उसे इनसे विदा लेना पड़ता है। पुलिसके हाथोंमें इनके पड़ जानेसे किरणके लिए भी अच्छा न होगा। उसके और किरणके प्रेमकी पवित्रताकी रक्षा न होनेके अतिरिक्त इन पत्रोंमें बहुत-सी ऐसी बात है, जिनसे पुलिस किरणको भी परेशान कर सकती है। अतएव इन्हें फिलहाल अपने पाससे हटाकर अन्यत्र सुरक्षित रखना जरूरी है।

अखिलने बाहर देखा, तो मेघाच्छादित आसमानका कोना एक स्थानपर जरा हंस रहा था। रात्रिका अन्तिम प्रहर जान पड़ता था। अखिलने एक बार अपने कमरेका निरीक्षण किया। सारी चीजें यथास्थान पूर्ववत् पड़ी थीं। अखिलने एक पत्र घर तथा दूसरा नौकरीसे त्याग-पत्र लिखा। उसने सोचा—नौकरी, पूंजीवादके किलेका आधारस्तम्भ यह नौकरी, गुलामी नहीं तो क्या है? किसकी नौकरी? कैसी नौकरी? मैंने कभी नौकरी नहीं की। अपने उद्देश्योंकी पूर्तिके निमित्तमात्र मैंने शौक-से यह नौकरी की थी। प्रत्यक्षतः सम्मान, किन्तु अन्ततः गुलामी और अपमान स्वरूप नौकरीका गरल पान किया था। उससे मिले रुपये पार्टीमें भेज देता। घरपर रुपयेकी जरूरत रहती नहीं। यह गुलामी अब न करूंगा।

घरके प्रसङ्गने सहसा गीताकी करुण मूर्ति अखिलके सामने खड़ी कर दी। अखिल विचलित हो रहा था—एक तरफ किरण, दूसरी तरफ गीता। दोनों ही तरफसे निराश होकर जब मैं वास्तविक कर्मक्षेत्रमें उतर रहा हूं, तो यह गीता क्या अनुरोध कर रही है? अभी मैं किशोरा-वस्थाकी नादानीके पालनेमें ही झूल रहा था। जाने कब, समाजने गीताका बोझ मुझपर लाद दिया। जब आंखें कुछ समझदार हुईं, दिल कुछ सजग और वृत्तियां कुछ सचेत, तो गीता सचमुच ही भार-सी लगी। जीवनके अभावके क्षणों-में किरणकी रूप-रश्मिने मेरे अन्तरजगतको आलोकित किया। खैर, इस बातको सोचनेसे क्या? किरणने पूछा था—यदि हम दोनों विवाह-बन्धनमें बंधें, तो गीता बुरा तो न मानेगी? उसने फिर कहा था—मेरे जीवनका सारा प्रयत्न गीताको प्रसन्न रखना होगा। मैं भी तो ऐसा ही सोचता था। लेकिन इस सोचनेसे क्या? किरण जब जीवनमें न आ सकी, तो यह सोचना व्यर्थ है। गीता जिस प्रकार रहती है, रह लेगी। यदि जीवनमें कभी किरणको पा सका, तो गीता और किरण मेरे जीवनको पूर्ण कर ही देंगी। अन्यथा जिस महान पथपर मैं अग्रसर हो रहा हूं, वह क्या कम आवश्यक है।

थप......थप......थप......किसीने दरवाजेपर थपथ-पाया। अखिल कुछ घबड़ाया। इस थपथपाहटका अर्थ वह समझ नहीं सका। पार्टीके और किरणके पत्रोंका क्या होगा? यदि वे हाथसे निकल गये, तो कुशल नहीं। थप...थप...थप......अखिल चारपाईसे उठ खड़ा हुआ। पार्टी और किरणके पत्रोंको कलेजेसे लगा लिया। उसने सोचा—ऐसे अप्रत्याशित समय सिवा पुलिसके और कोई हो नहीं सकता। वह जानती है, अखिलको अचानक गिरफ्तार कर लेनेका मतलब सारे कागजातका पकड़ना है। फिर थप......थप......थप......अखिलने कहा—ठहरिये, खोलता हूं। उसने दियासलाईका डिब्बा आलमारीसे निकाल लिया। किरणके पत्रोंको उसने अन्तिम बार विदा दी। पार्टीके कागजातके आगे उसने सर झुका दिया। दरवाजेपर थपथपाहट और खटखटाहटकी गति तीव्रसे तीव्र-तर होती हुई तीव्रतम हो रही थी। तब तक दरवाजेपर किसीका अमानुषिक प्रहार पड़ा। पार्टीके कागजात और किरणके पत्रोंपर वह मिट्टीका तेल छिड़क चुका था। सलायी भी लगायी गयी। सहसा सिटकनी टूटी। पुलिस-सुपरिंटेण्डेण्टने छ पुलिस कर्मचारियोंके साथ कमरेमें प्रवेश किया। अखिलका अतीत और भविष्य जल रहा था। वर्तमान तो वह स्वयं ही है और वह भी क्या जल नहीं रहा है? भूत और भविष्यकी जलती चितासे कुछ फासले-पर अखिल खड़ा था। उसके दोनों हाथ सीनेपर बंधे थे। मुद्रा किञ्चित गम्भीर और दृढ़ थी। उसे ध्यान ही नहीं था, कब उसकी कमरमें रस्सी और हाथमें हथकड़ियां डाल दी गयीं।

साहित्यमें प्रगतिवादकी उत्पत्ति

श्री पलायनवादी

मानवी भावधारा बाह्य जगतके अनुकूल अपना स्वरूप निर्धारित करती है; क्योंकि उसका मार्ग सामाजिक विकासके साथ ही है, विपरीत नहीं। यह अवश्य है कि मनुष्य जिस वर्ग तथा समाजसे सम्बन्ध रखता होगा, उसपर बाह्य जगत्का उसी भिन्न रूपमें प्रभाव पड़ेगा। पूंजीपति और सर्वहारा वर्गके मानवकी भावधारा इसीलिए विभिन्न हो सकती है कि उनका बाह्य आर्थिक आवरण भी भिन्न है।

रूस तथा फ्रांसकी क्रान्तियां, उपनिवेशोंकी असहयोग-नीति, स्पेनके गृह-युद्ध और महायुद्ध, इन सब प्रमुख राजनीतिक हलचलोंने विश्व-साहित्यके रचयिताओंकी भावधाराको क्रान्तिद्वारा मथ दिया और फलस्वरूप लेखकों, विचारकों और कवियों आदिके सम्मुख कुछ कालके लिए तमाच्छन्न अनिश्चित परिस्थिति उत्पन्न हो गयी, जिससे 'पोस्ट वार लिट्रेचर' (युद्ध-परवर्ती साहित्य) जनताके सामने आया और कई नवीन समस्याएं भी आयीं, जिनकी इस परिस्थितिके पूर्व कल्पना करना दुष्कर था। इसके पश्चात् तो साहित्यिकोंके कई वर्ग निर्मित होते चले गये; जैसेः—

(१) आदर्शवादी लेखक—जो जीवनकी समस्याओंका हल समझौतेसे प्राप्त सहयोगद्वारा निकाल लेना चाहते थे।

(२) शान्तिवादी लेखक—जो युद्धकालीन बुराइयोंको प्रत्यक्ष जानते हुए भी, उनकी ओरसे उदासीन बने रहे।

(३) मानवतावादी लेखक—जिन्होंने समाजको स्वस्थ बनानेके बजाय यह कहना प्रारम्भ कर दिया कि मानवकी आत्मा ही क्षीण हो गयी है और उसका नैतिक पतन भी।

(४) कुछ तटस्थ रहकर, जैसी प्रेरणा पाते, वैसा ही लिखने लगे।

(५) इन सबके अतिरिक्त एक स्वाधीन-चेता लेखक वर्ग भी था, जो अपने समाजके प्रति ईमानदार और नूतन उठी हुई समस्याओंके प्रति अधिक सतर्क और जागरूक होकर लिखने लगा।

लेखकोंकी विचार-धाराओंमें इस प्रकारके अन्तरका कारण उनके पीछे निहित आर्थिक और नैतिक उपादान हैं। साथ ही उनकी भाव-चेतना इतनी बलिष्ठ हो ही नहीं सकती कि उसपर आर्थिक परिस्थितिके समानुपातमें प्रभाव न पड़े। और जब भाव-चेतना अप्रभावित नहीं रह सकती, तो अकेला मानसिक या बौद्धिक स्तर इस प्रकारके वर्ग-भेदका उत्तरदायी हो ही नहीं सकता; क्योंकि भाव-चेतना और समाज-चेतना व्यक्ति और समाजके सम्बन्धके रूपमें ही चलती है। इसके उपरान्त सामाजिक चेतनाकी क्रिया-प्रक्रिया और वातावरणका जीवनपर प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता ही रहता है। इस तरह मूल आधार या धरातल अधिकतर आर्थिक समस्याओंसे ही अधिक आक्रान्त रहता है। इसीलिए यदि एक लेखक आर्थिक चिन्तासे ग्रस्त है, तो यह तत्व उसकी भावधारा तथा बौद्धिक रूपके माध्यमद्वारा उसकी कलामें अवश्य ही अनजानेमें उतर आयेगा।

इस प्रकारके आर्थिक-दर्शनको लेकर कुछ लेखकोंने समाजका शोधन करना प्रारम्भ कर दिया। आर्थिक समस्याओंको सुलझानेके लिए तथा वर्ग-भेदको समूल नष्ट कर देनेके लिए उनके सम्मुख मार्क्सका दर्शन था। मार्क्सके सिद्धान्तों या मूल तत्वोंको, जिन्हें कलाकारने प्रत्यक्ष व्यावहारिक या क्रियात्मक प्रयोगके रूपमें देखा, अनुभव किया; उन्हींको वह अपनी कलामें सजीवतासे अंकित कर जनसाधारणतक पहुंचने योग्य अवस्थामें रख देता है।

यह तो राजनीतिक वातावरणका प्रभाव था। इसके पूर्व हिन्दी साहित्यमें छायावादी और रहस्यवादी प्रवृत्तियोंकी ओर नवीन और प्रौढ़ साहित्यिकोंका ध्यान अधिक था। लेखकों एवं कवियोंकी अन्तर्मुखी प्रवृत्ति होती जा रही थी, इसका कारण छायावादकी प्रतिक्रिया थी। साथ ही छायावादकी उत्पत्ति द्विवेदी युगकी इतिवृत्तात्मकताकी प्रतिक्रियाके फलस्वरूप ही हुई थी, पर इसका यह अर्थ नहीं कि हिन्दी साहित्यमें इस प्रकारकी नयी धारा इसी समय प्रथम रूपमें प्रकट हुई हो। हिन्दीमें छायावाद और रहस्यवादकी प्रणालीका साहित्य इस नामकरणसे बहुत पहले सृजित हो चुका था; यह अवश्य कहा जा सकता है कि तब उसका स्वरूप दूसरा था। भारतवर्षकी सामाजिक तथा धार्मिक पृष्ठभूमि देखें, तो विदित होगा कि धर्मका स्वरूप वृहत् रूपमें वृद्धि कर रहा है।

मत है। भारतीय राष्ट्रीय महासभा, भारतीय हिन्दू महासभा, अखिल भारतवर्षीय आजाद मुस्लिम सम्मेलन, भारतीय ईसाई परिषद, सिक्ख-दल, तथा यूरोपियन और दलित वर्ग आदि, सभीकी यह मांग है कि भारतको स्वाधीन राष्ट्र घोषित कर दिया जाय। सभी वर्ग और राजनीतिक दल वर्तमानपर भविष्यकी अपेक्षा अधिक जोर देते हैं। इसलिए सभी यह चाहते हैं कि वर्तमान समयमें भारतमें राष्ट्रीय सरकारकी स्थापना की जाय।

विगत मार्च १९४२ में ब्रिटिश मन्त्रि-मण्डलकी ओरसे सर स्टैफर्ड क्रिप्स भारतके लिए एक स्वराज्य-योजना, भारतीय राजनीतिक दलोंकी सम्मति प्राप्त करनेके लिए लायेथे।जहां तक भारतकी स्वाधीनता या स्वराज्यका प्रश्न है, क्रिप्सकी योजनामें स्पष्टरूपसे भारतको औपनिवेशिक स्वराज्यका पद देनेके लिए उल्लेख था। उसमें भारतीय जनता द्वारा अपना शासन-विधान बनानेका भी अधिकार स्वीकार किया गया। परन्तु उस योजनाने वर्तमान स्थितिके हल करनेके लिए कोई उपाय नहीं बतलाया। इसी कारण क्रिप्स-मिशन सफल नहीं रहा। इस विषयमें डा० भगवानदासने भी यह लिखा है कि जब तक विधान-परिषद विधान बनाकर तैयार न कर ले और उसे सभी दल स्वीकार न कर लें, तब तक वर्तमान शासन-प्रबन्ध जारी रहेगा। क्रिप्स-मिशन भी यही चाहता था। परन्तु भारतीय लोकमतकी प्रतिनिधि राष्ट्रीय-महासभा इतनेसे सन्तुष्ट नहीं थी।

साथ ही क्रिप्स-मिशनने तुरन्त ही भारतको स्वराज्य देनेकी व्यवस्था नहीं की। उसने युद्ध-शान्तिके बाद विधान-परिषदके आमन्त्रित करनेका सुझाव पेश किया।

डा० भगवानदासने अपनी इस पुस्तकमें अनेक स्थलोंपर इस बातपर जोर दिया है कि भारतीय राष्ट्रीय महासभा और उसके नेताओं तथा महात्मा गान्धीजीने विशेषरूपसे यह बड़ी भूल की है कि आज पर्यन्त उन्होंने जनताके समक्ष स्वराज्यकी कोई योजना पेश नहीं की, जिससे भारतकी जनताको यह विश्वास हो जाता कि स्वतन्त्रता-संग्रामके फलस्वरूप भारतमें जो नयी शासन-व्यवस्था स्थापित की जायेगी, उसमें भारतकी जनताका अमुक स्थान होगा।

श्री डाक्टर साहबका यह मत है कि गान्धीजीके द्वारा स्वराज्यकी व्याख्याके अभावके कारण ही आज कांग्रेसका सङ्गठन ठीक नहीं है और इसी कारण उसका रचनात्मक कार्य-क्रम भी सफलता प्राप्त नहीं कर सका और इसी कारण हिन्दू-मुसलमानोंमें मेल पैदा न हो सका।

महात्मा गान्धी और स्वराज्य

श्रद्धेय डा० भगवानदासने अपनी पुस्तकमें लिखा है कि—'यह अत्यन्त पतनकारी और अपमानजनक है कि भारतके सबसे महान नेता, उसके नेतृवृन्दके शिरोमणिने, यह स्वीकार किया कि मैं स्वराज्यकी परिभाषा नहीं कर सकता। मैं अब तक स्वराज्यकी परिभाषा करनेमें अशक्त रहा हूं। (बम्बईमें १६ सितम्बर १९४० को अखिल भारतीय कांग्रेस महासमितिमें गान्धीजीके भाषणसे) वे जनताको किसी मार्गकी ओर अग्रसर करते हैं—जनताका नेतृत्व करते हैं, परन्तु वह मार्ग क्या है, उसका क्या मतलब है, इसे वे नहीं जानते और इसी कारण वे अपने अनुयायियोंको यह नहीं समझा सकते कि वे उन्हें किस ओर ले जा रहे हैं।" (पृष्ठ ३५०)

यह वास्तवमें एक बड़ी आश्चर्यजनक बात है कि महात्मा गान्धी जनताको स्वराज्यकी परिभाषा नहीं बतला सकते। इसका तो मतलब यही हो सकता है कि गान्धीजीने अभी तक स्वराज्यकी रूप-रेखा निर्धारित ही नहीं की है। यदि उन्होंने स्वराज्यकी रूप-रेखा तैयार की होती, तो वे अवश्य ही उसे जनताके समक्ष रखते। यह वास्तवमें उनकी एक महान भूल है और श्रद्धेय डा० भगवानदासने गान्धीजीके प्रति अत्यन्त श्रद्धाभाव रखते हुए भी उनके विचारों, कार्यों एवं नीतिकी तीव्र शब्दोंमें आलोचना की है। अत्यन्त चिन्तनीय तो यह है कि कांग्रेसके अन्य प्रमुख और प्रसिद्ध लोकनेता भी गांधीजीके विचारों या कार्यक्रमके विषयमें अपने विचार स्वतन्त्रताके साथ नहीं रख सकते। श्री डा० साहबने इस पुस्तकमें लिखा है—

"अत्यन्त दुर्भाग्य है कि महात्मा गांधीके प्रति उनकी नैतिक एवं आध्यात्मिक महानता, अपनी स्वाभाविक श्रद्धा (वर्तमान लेखककी भी उनमें श्रद्धा है) के कारण कांग्रेस-नेता कुछ भी ऐसी बात करनेका साहस नहीं करते, जो गांधीजीकी आलोचना प्रतीत हो, अथवा उनका प्रतिवाद अथवा जिससे वे अप्रसन्न हो जायें, या वे यह सोचने लगें कि कांग्रेसके सदस्य अपना कर्त्तव्य पूरा नहीं कर रहे हैं, अपने कस्बों, नगरों, जिलों व प्रान्तोंमें पूरा उद्योग नहीं कर रहे हैं; ठीक उसी भांति, जैसे कि नौकरशाहीके छोटे कर्मचारीगण अपने 'बड़े साहब' को मिथ्या सूचनाएं

उदाहरणस्वरूप वेद, गीता, उपनिषद् आदि कई दार्शनिक ग्रंथ मिलेंगे, जिनका सतत प्रभाव और संस्कार हमारे लेखकों-पर प्रारम्भसे ही पड़ता रहता है। इसलिए हम देखते हैं कि हिन्दी साहित्यमें छायावादका प्रयोग बङ्गलासे आया और बङ्गला-साहित्यमें प्रवेश करनेके पूर्व बङ्गला भजन या आध्यात्मिक रूपमें वह रहा। फ्रांसके रहस्यवादियों (जो आगे चलकर प्रतीकवादी कहलाये) की तरह हिन्दी-वाले भी प्रस्तुतके स्थानपर अप्रस्तुत प्रतीकोंको लेकर चलने लगे। यह क्रम यहां तक चल पड़ा कि गद्यकी भाषा भी अवगुण्ठनमयी बनने लगी। हर एक आध्यात्मिक रूपको लेकर इस नये ढङ्गका सफल और असफल प्रयत्न करने लगा। परिणाम यह हुआ कि साहित्य, अवास्तविक तथा काल्प-निक चित्रण, कोरी भावुकता, एकाङ्गीपन, वैयक्तिक वेदना, विरह, अश्रु वर्णन और अकर्मण्यताके कारण पलायन-प्रवृत्ति-का हो गया, उसमें कोई सजीवता शेष नहीं रही। क्योंकि जब विदेशी पूंजीवादके द्वारा भारतीय सामन्तवादियोंसे मुक्त, सबको व्यक्ति स्वातन्त्र्य मिल गया, तो कवियोंने समाजसे अलग अपना विशिष्ट स्थान तथा व्यक्तित्व समझा। उसमें अहंभावकी वृद्धि होने लगी और समाज-चेतनासे वह उतना ही दूर होने लगा। सूक्ष्म और अशरीरी सौन्दर्यके चित्रणसे, लोलुपताकी भावनासे और निराशासे समाज तथा काव्यका वैषम्य बढ़ता ही गया, क्योंकि पहलेसे ही भारतीय दार्शनिक विचार-धारा संसार और मनुष्य-जीवनको निस्सार समझती है। 'ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या'—संसार माया है। इस सिद्धान्तसे अधिक निराशावादी भावना संसारके साहित्यमें कहीं नहीं मिलेगी। इस प्रकार यदि फ्रायडके अनुसार कविताको अन्तश्चेतनामें दबी हुई इच्छाओंकी पूर्तिमात्र समझें, तो आपको हिन्दीके मानसिक धरातलका पता लगेगा कि हिन्दी साहित्यमें कितनी निराशायुक्त भावनायें फैली हैं। आज, बीसवीं सदी तक एक भी ऐसी पुस्तक प्रकाशित नहीं हो सकी है जिसका हिन्दी साहित्यमें सूर-तुलसीके पास स्थान हो। इससे इतना अवश्य हुआ कि पूंजीवादके आविर्भावके साथ-साथ कविताके सामन्ती उपकरण नष्ट हो गये और कुछ कालके लिए पुरानी शराब (क्योंकि चीज वही थी) जो पूरी तरह दुर्गन्धित न हो पायी थी, और भी स्वादिष्ट लगने लगी।

छायावादियों तथा रहस्यवादियोंके निकट आकर साहित्यमें लोक-पक्ष निर्बल हो गया। छायावाद और रहस्यवादका आना तो साहित्यके लिए श्रेयस्कर था, पर उसका आगेका रूप तथा कवियोंके 'अति' से 'इति' तककी वृत्तिने फिर उन्हीं दोषोंको दुहरानेका अवसर दिया, जिनके कारण इनकी उत्पत्ति साहित्यमें हुई थी। सामन्तवादियोंके बन्धनोंसे छूटकर, कला फिर देशी और विदेशी पूंजीवादियों-के हितोंमें उलझ गयी, इसको उस समयके लेखक देख न सके। दूसरे ये पूंजीपति हमारे साहित्यपर सदा इस तरहकी गुप्त 'सेन्शरशिप' लगाये रहते हैं कि कहीं भी इनके हितोंको चोट पहुंचानेवाली चीज इनके दृष्टिमें आयी तो उसके विपरीत एक समस्या उठा, गलतफहमी पैदा कर अपने हितोंके लिए एक अभेद्य किला बना लेते हैं और अधिकांश लेखकोंका दृष्टिकोण जनता या समाजका दृष्टिकोण न होनेके कारण वे इसके शिकार हो जाते हैं। इसलिए हम देखते हैं कि लोक-भावनाकी महान परम्परा जो सूर, कबीर, तुलसी आदिके कालसे चली आ रही थी, इस कालमें आ-कर एकाएक व्यक्तिवादमें विलीन हो जाती है। हिन्दी साहित्यमें छायावादका युग अन्धकार तथा अराजकताका युग हो जाता है। लेखक या कवि कोई भी हो, उसे राह नहीं सूझ पड़ी। उसकी आत्मा इतनी निर्बल तथा निस्तेज हो गयी कि वे जीवनकी मूर्त्त समस्याओंका सामना न कर सकें और न पूर्वजोंकी शक्तिसे ही अपनेको जीवित रख सकें। यह बात नहीं कि उनमें लोक-साहित्य-के तत्व नहीं थे। तत्व थे, पर उनके व्यक्तिवादी प्रकृतिकी पूंजीवादी आलोचकोंने इतनी प्रशंसा की कि उन तत्वोंका होना निष्फल ही हुआ। वे निष्प्रभ हो गये। इस मन्द विष-प्रयोगके रहस्यको बहुत कम साहित्यिक समझ पाये। यहां तक कि राष्ट्रीय कवियोंकी ओजस्विनी वाणी भी प्रतिवाद करके रह गयी, उत्क्रान्ति तक न जा सकी। वे अपने तथा समाजके प्रति कहां तक ईमानदार रह सके, कदाचित इसका उनके पास कोई उत्तर नहीं है? फिर भी कुछ अप्रसिद्ध साहित्यिक थे, जो कर्तव्य-विमुखता तथा पूंजी-वादी भावनाओंसे पराजित न हो सके। रवि बाबू लिखते हैं—"वे सभ्यताकी दीवट हैं। सिरपर दिया लिये खड़े रहते हैं—ऊपरवालों सबको तो उजेला मिलता है और उन बेचारोंके ऊपरसे तेल ढलकता है।" इतना ही नहीं, उस समय और अधिक खेद होता है, जब कि हम देखते हैं कि छायावादी अपने युगको भी पूर्णरूपसे नहीं निबाह सके। उसमें भी बंगलाकी तरह काल-व्यतिक्रम मिलता है। बुर्जुवा साहित्य चीनमें आज भी बहुत ही कम है। हिन्दीमें

अभी भी रूढ़िवादके कारण सामन्ती ढङ्गकी शैली प्रचलित है, पूंजीवादी कालमें आकर भी वह न बदल सकी। इसका एक कारण यह भी है कि पूंजीवादी कलाको दासीके रूपमें मानते हैं, जब कि सर्वहारा वर्ग हथियारके रूपमें उसका उपयोग करता है। इस तरह पूंजीवादी सभ्यतामें पलकर अधिकांश मध्यवर्गीय लेखक, कवि आदि वर्गच्युत होनेकी अपेक्षा पूंजीवादी वर्गकी ओर ही उन्मुख रहते हैं, जब कि वे उपजीवी वर्गसे अधिक बढ़ नहीं पाते।

इन सब कारणोंसे वर्तमान आलोचना अधिकतर राजनीतिक, सामाजिक और साहित्यिक आधरपर होती है। वास्तवमें बुर्जुवा जिसे 'प्रोपगैण्डा' कहते हैं, वही सर्वहारा वर्गका अनुभवपूर्ण साहित्य होता है। इस ढङ्गसे आलोचना होनेपर कोई मुगालता या धोखा नहीं दे सकता, जैसा कि छायावादके आरम्भसे अन्त तक होता रहा। वैयक्तिक समस्याओंसे उलझा तथा लेखक या कविके सुख-दुख, क्रीड़ा-विलास और पीड़ाके आवर्तमें घिरकर पूंजीवादी कालका साहित्य सीमित रह गया। पूंजीवादी कालका लेखक आदर्शवादको लेकर दार्शनिक व्याख्या ही करता है, उसके सक्रिय रूपको लानेका वह प्रयास नहीं करता। जड़-चेतन वस्तुओंका, उसके काव्यमें, स्वयंकी पुष्टिके लिए उपयोग अधिक होता है। कलाके उपकरण उसके 'अहं' को बढ़ानेमें ही सहायक होते हैं। उसके मनकी भावनाका निरर्थक रूप लेकर वे कलामें प्रकट होते हैं। समाजसे उनको चेतना तो मिलती ही नहीं, उनका प्रेरणास्थल भी कहीं 'सुदूरवर्ती प्रदेश' में होता है, ऐसी दशामें अनजानेमें, सामाजिक ढङ्गका साहित्य भले ही कभी लिख लेते हों, वरन् वे प्रयत्न नहीं करते। इन्हीं कारणोंसे सांस्कृतिक पुनर्जागरणकी ओर उनका ध्यान जा ही नहीं सकता, क्योंकि उनके चारों ओरका वातावरण, जिसमें चौबीसों घण्टे वे रहते हैं, इससे बिलकुल भिन्न है।

जब काव्यमें स्वस्थताका स्थान मानसिक व्यभिचारने ले लिया, तब कवि यौन-संभोग-लिप्सासे प्रपीड़ित होकर उन भावोंको किसी अदृश्य कल्पनामयी प्रेयसी या प्रेमीका पुट देकर आध्यात्मिक रङ्गमें ढालने लगा। उर्दू काव्यमें शेरानीके पूर्वके कवि भी इसी तरह करते रहे। इस प्रकार आज इस ढङ्गकी कविता पूरी तरह यौन-भावनाओंसे ओत-प्रोत कही जा सकती है और इसका एकमात्र कारण असन्तोष है। वे कविताएं उनके जीवनमें असन्तुष्टताकी पूर्ण प्रतीक हैं और वे प्रेयसीके घेरेमें ही अधिक विद्रोह करके अपनी जीवन-शक्तिकी इति कर चुकी होती हैं। पन्तजी स्वयं लिखते हैं कि छायावाद इसलिए अधिक नहीं रहा कि उसके पास भविष्यके लिए उपयोगी नवीन आदर्शोंका प्रकाश, नव-भावना-सौन्दर्य-बोध, नूतन-विचार-रसका अभाव था। द्विवेदी युगके काव्यकी तुलनामें वह उस समय पाश्चात्य साहित्यसे प्रभावित था, इसलिए आधुनिक था। वह नये युगकी सामाजिकता और विचार-धाराका समावेश नहीं कर सका। उसमें व्यवसायिक क्रान्ति और विकासवादके बादका भावना-वैभव था, पर महायुद्धके बादकी वास्तविकता नहीं थी। इसलिए वह निगूढ़, रहस्यात्मक, भावप्रधान, वैयक्तिक हो गया और उसका केवल पारिभाषिक रूप तथा आवरण मात्र रह गया। जब मायकोवस्कीकी भांति जन-सम्पर्कमें रहनेवाले कवि जीवनसे सीधा सम्पर्क रखकर उनकी मूर्त समस्याओंको अङ्कित करते हैं, तब वह हमें चुभे बिना नहीं रह सकतीं।

जब कविताका वास्तविक तत्व उसमें नहीं रहा, तब वह मृयमाण दशाकी ओर अधिक अग्रसर हुई, छायावादी कालमें आकर वह केवल अलंकृत सङ्गीतके रूपमें रह गयी। ऐसा विदित होने लगा कि शवको सामन्ती कालके वस्त्रोंसे सुसज्जित किया जा रहा है। इससे साहित्यमें अराजकता बढ़ती ही गयी और उधर जनतामें निष्क्रियता घर कर रही थी। तिसपर इस महायुद्धसे फासिस्टोंके खतरेने औरभी उग्र रूप धारण कर लिया। इस तरह हमें विदित होता है कि क्या राजनीतिक, क्या सामाजिक, क्या साहित्यिक, प्रत्येक क्षेत्रमें क्रान्तिके चिह्न परिलक्षित होने लगे। प्रत्येक क्षेत्रकी तरह इस संक्रान्तिकालके साथ-साथ साहित्यमें भी मूल्य-परिवर्तनकारी-परिस्थिति, जो आजसे दो वर्ष बाद आती तथा जिसका एक बारीक तार छायावादके साथ-साथ आ रहा था, आज अपनी शक्तिके कारण एक विराट सत्यके रूपमें आलोकित हो उठी—प्रगतिवादकी उत्पत्ति इन्हीं परिस्थितियोंके अन्धकारमय गर्भसे निजी शक्तिके रूपमें हुई है, जिसका चरम लक्ष्य अमूर्त को मूर्त के रूपमें स्थापित करना है। उसको अपनेपर पूर्ण विश्वास है और इसीके बलपर ही वह आगे बढ़कर जीवित रहेगा।

द्वन्द्व

श्री राहगीर

दो दिनसे प्रकृति ऐसी उदास है कि सुरेशका भी चित्त अस्थिर हो उठा है। बरसातके दिन नहीं हैं, फिर भी आसमान बादलोंसे भरा है और ठण्डी पुरवाईके झोंके शरीरमें आलस्य और मनमें अशान्ति पैदा कर रहे हैं। यों तो सुरेश बहुत मजबूत आदमी है और भावुकतासे उसे घृणा है, पर जाने क्या बात है कि दो दिनसे उसका मन न तो पढ़नेमें ही लगता है, न कहीं घूमनेको ही जी चाहता है और न किसीसे बात करनेकी इच्छा होती है। दिलमें न जाने क्या कुछ भर-सा गया है, जिसे निकालनेका कोई रास्ता ही नहीं मिल रहा है। किसी गम्भीर विषयपर कुछ सोचनेकी इच्छा होती हो, सो भी नहीं। कुछ अजीब हालत है। वह सोचता है—उसे क्या हो गया है? इधर-उधर की बातोंमें कई बार उसने मन लगानेका प्रयत्न किया, पर वह विफल रहा। वह इसी तरह बैठा सोच रहा था कि एकाएक उसे ख्याल आया कि ऐसा शायद उसके अकेलेपनके कारण है। अकेले रहनेमें उसे अब तक बड़ा सुख रहा है, और आगे भी वह चाहता है कि इस सुखको कोई उससे छीन न ले; उसे इसी तरह जीवन-यापन करने दे। विवाहके नामसे वह ऐसा डरता है, जैसे फांसीका ही वह दूसरा नाम हो। स्त्री-जातिसे उसे कभी लगाव नहीं हुआ, यहां तक कि स्त्रीके शरीरको भी वह एक घृणित चीज समझता रहा है। मगर आज, इस वक्त जाने कैसे उसके विरोधी मनमें यह बात उठी कि यह जो उसका मन आज सारे आसमानमें उड़ता-सा फिर रहा है, इसकी दवा स्त्री हो सकती है। वह इसपर जितना ही गौर करने लगा, उतना ही उसे निश्चय होता गया कि हां, यदि आज उसके अशान्त चित्तको कोई सान्त्वना दे सकता है, तो वह एक 'स्त्री' ही हो सकती है, और कोई नहीं। अब तक वह पुरुषके जीवनमें स्त्रीको एक झमेलेकी चीज समझता था, पर आज उसे मालूम हुआ कि पुरुषके लिए स्त्री अनिवार्य है। आज जिन्दगीमें अनेक क्षण आते हैं, जब आदमी एक किसी ऐसेकी खोज करता है, जो उसकी बात आप ही समझ जाय और उसका समाधान भी कर सके, जिसमें लय होकर आदमी अपनेको, जीवनको, दुनियाको, सारी वाहियात बातोंको भूल सके, इस नतीजेपर पहुंचना सुरेशको अपनी हारकी तरह मालूम हुआ। वह जिसके खिलाफ अब तक लड़ता रहा है, जिसे उसने कभी भूलकर भी अपने पास फटकने न दिया, उसीको वह अपने लिए भी अनिवार्य समझने लगे, तो उसकी जरूर हार हुई। लेकिन, वह फिर अपने अन्दर बैठे प्रतिद्वन्द्वीसे पूछता है—जिन्दगीमें इस तरहके क्षण कितने आते हैं? यही न, सालमें दो-चार बार या इससे कुछ अधिक? पेट पालनेसे लेकर बड़ी-बड़ी जटिल समस्याओं तक के सुलझानेमें मनुष्यका जितना समय निकल जाता है, उसका कितना बड़ा अंश उसे अकेलेपन, सूनेपन और विरह-व्यथाके रोने-धोनेमें खर्च करनेको बच रहता है?

जिन्दगीके और कामोंसे उसे इतनी फुर्सत मिलती ही कब है कि सब-कुछ छोड़-छाड़कर बैठे-बैठे वह केवल आंसू बहानेका आवश्यक कर्म करता रहे? दूसरे, जिन लोगोंको अकेलेपनके दुर्भाग्यने नहीं घेर रखा है, जिन्हें रोने-धोनेको और कोई कारण भी नहीं, क्या वे लोग आंसू बहाना जानते नहीं? और फिर, स्त्री क्या सिर्फ अकेलेपनकी दवा ही लेकर आती है, और कुछ नहीं? सवाल यह है कि पुरुषको स्त्रीसे सुख अधिक प्राप्त होता है या दुःख? स्त्रीसे कितना मानसिक सुख उसे मिलता है, यह तो उसीसे पूछिये, पर हां, शारीरिक या पाशविक सुख उसे बहुत-कुछ मिल जाता है। परन्तु पहले तो इस सुखका अस्तित्व ही कितना होता है—सारा यौवन जैसे एक ही क्षणमें कहीं उड़ जाता है, दूसरे इस सुखका परिणाम कैसा होता है, यह भी सोचनेकी बात है; तीसरे कितने शारीरिक कष्ट और मानसिक क्लेश उठाकर यह पाशविक सुख प्राप्त होता है। चौथे, उस सुखके क्षणमें भी, जो कि जिन्दगी-भरमें कुछ इने-गिने बार ही मिल पाता है, क्या पुरुष असलियतको पिशाचिनीकी तरह मुंह फाड़े उसकी ओर अग्निमय नेत्रोंसे घूरनेवाली जिन्दगीको बिल्कुल भूल पाता है? सुखके क्षण समाप्त होनेके पहले ही असलियत आ घेरती है और फिर चारो ओर अंधेरा छा जाता है—सुखकी किरण जाने कहां अदृश्य हो जाती है। इसके विरुद्ध एकाकी मनुष्यको न तो उस सुखके प्राप्त होनेकी आशा ही पैदा होती है, न उसके पूरी न होनेसे निराशा। जब हमें मालूम है कि यह चीज हमें मिल नहीं सकती, तो उसके न मिलनेका दुख ही क्या?

आशाका पूरा न होनेका नाम ही तो दुःख है। आजकी दुनिया, कहा जाता है, बहुत कष्टमय है। इसीलिए न, कि आजका मनुष्य अपनी आवश्यकताओंको इतनी अधिक बढ़ा लेता है कि सबकी सब कभी पूरी नहीं हो सकतीं। जिसके पास सुखके जितने ही साधन हैं, उसकी आवश्यकतायें उसकी स्थितिसे उतनी ही आगे बढ़ी हुई हैं। मतलब यह कि बड़प्पनमें ही व्यक्तिका छोटापन छिपा रहता है। हां, इस बड़प्पनसे उसी चीजको लिया जाता है, जो केवल अपने तक ही सीमित है, जिसका लाभ अपनेको ही मिलता है। तो स्त्रीकी कमीके कारण, जिस चीजकी जरूरत महसूस होती है, उसके पूरे हो जानेके बाद आवश्यकताओंकी कमी नहीं होती, किन्तु वे—एकसे दो, दोसे चार, इस प्रकार बढ़ती ही जाती हैं। गरज कि बजाय 'एक और एक दो' के 'एक और एक ग्यारह' हो जाता है। अब रोइये बैठके; बजाय अकेलेपनके—दुकेले, चौकेले और अठकेलेपनके लिए आंसू बहाइये। पहले दिल लिये-लिये फिरते थे, अब दिमाग और दिल दोनोंको पकड़े बैठे रहिये और कलेजा चीरकर, गला फाड़कर चिल्ला-चिल्लाकर या सर पटक-पटककर मर जाइये। तब भी छुटकारा मिलनेसे रहा, वह तो फांसीकी रस्सी है, गलेमें पड़ गयी सो पड़ गयी। कहनेका मतलब यह निकला कि ऐसी बे-मौतकी मौतसे तो अकेलापन ही अच्छा। रहा यह कि कभी-कभी यह एकाकीपन बहुत दुखदायी हो उठता है, सो कभी ही कभी तो! अकेले रहने और न रहनेमें यही तो फर्क है कि अकेलेपनका दुःख कभी-ही-कभी सताता है, जबकि अनेकताका सुखभी कभी-कभी मिलता है।

इतना सब सोचते-सोचते सुरेशके हठी मनने अपना पुराना मार्ग फिर पकड़ लिया और उसने एक ही झटकेमें अपने मनके उस क्षणिक दौर्बल्यको झाड़ दिया। शाम हो चली और आकाशमें बादलोंके घिरे रहनेसे रातका अंधेरा जल्दी-जल्दी चर-अचरको ढकने लगा। कमरेमें ताला लगाकर सुरेश बाहर आ गया और निरुद्देश्य होकर बायें हाथकी पटरीपर चलने लगा। सड़कपर सवारियोंका तांता लगा था और दूसरी पटरीपर सामनेकी तरफसे असंख्य मनुष्योंकी भीड़ चली आ रही थी। शोर-गुल पूरे जोरपर था। पर सुरेश इस सबमें शामिल नहीं था—न उस पटरीपर सामनेसे आनेवालोंमेंसे कोई उसे पहचानता था, न इस पटरीपर उसके आगे-पीछे साथ-साथ चलनेवाले ही उसके साथ जा रहे थे। वे सब जाने कहां जा रहे हैं। सुरेश उन सबसे अलग कहीं दूसरी जगह जा रहा है—उसका रास्ता एक होनेपर भी उन सबसे अलग है। उन सबको मालूम है कि उन्हें कहां जाना है, पर सुरेशको यह भी नहीं मालूम। कितनी ट्राम, मोटर, बग्घी, तांगे, रिक्शे और साइकिलें इधरसे आती हैं, कितनी उधरसे! उनमेंसे कोई कभी क्षण-भरको रुक जाता है, फिर चल देता है। परन्तु सब अबाध गतिसे किसी एक गन्तव्य स्थानकी ओर दौड़े चले जा रहे हैं, सबका एक लक्ष्य है और प्रतिक्षण वे अपने लक्ष्यके निकट पहुंचते जा रहे हैं। लेकिन सुरेशकी कोई गति नहीं है, क्योंकि उसका कोई लक्ष्य नहीं है। वह दिन-रात इसी तरह चलता रहे, फिर भी अपने लक्ष्यसे हमेशा उतना ही दूर रहेगा; प्रत्येक क्षण उसे अपने लक्ष्यके निकट नहीं लाता, बल्कि उससे और भी दूर उसे ले जाता है, क्योंकि उसने जहांसे चलना शुरू किया, उस स्थानको छोड़कर उसका अन्य कोई गन्तव्य भी नहीं। लौट-फेरकर उसे फिर वहीं पहुंचना है, लेकिन प्रतिक्षण वह अपने बसेरेसे दूर होता जाता है। कुछ देरमें वह इतना दूर निकल जायेगा, जहांसे लौटनेमें और उस जगह पहुंचनेमें उसे बहुत समय लग जायेगा, शायद आधी रात हो जाय, शायद सारी रात उसे चलना पड़े। यह इसलिए और कि इधरसे चलते-चलते वह काफी थक जायेगा, और उधरसे लौटनेमें मेहनत और समय दोनों ही ज्यादा लगेंगे। मुमकिन है, उसकी टांगें इतनी थक जायं कि वह आगे चल न सके, ठोकर खाकर बेहोश होकर गिर पड़े। तब आधी रातको या रातके तीसरे पहरमें, जब कि सड़कपर सन्नाटा रहेगा, आने-जानेवाले सब अपने घर पहुंच चुके होंगे, शोर-गुल सब बन्द हो जायेगा, उस वेला सुरेश कमजोरीके कारण अगर ठोकर खाकर पटरीपर गिर पड़े, तो उसको कौन सहारा देकर उठायेगा और कौन उसे उसके बसेरे तक पहुंचायेगा। शायद कोई नहीं! शायद उसकी थकी-मांदी देह वहीं पड़ी रहेगी, शायद उस मिट्टीको कोई भी पहचानेगा नहीं, किसीको इतनी फुर्सत न होगी कि उसे पहचाने। और सवेरा होते ही फिर ट्राम, मोटर, बग्घी, तांगा, रिक्शा और साइकिलोंका तांता लग जायेगा, फिर दोनों पटरियां भीड़से भर जायेंगी, अनन्त जन-समूह फिर उमड़ने लगेगा, फिर वही जन-कोलाहल चारों ओर सुनायी देगा, फिर सब-कुछ उसी तरह होगा। इसी तरह अनन्त काल तक, जाने कब तक होता रहेगा, जाने कब तक! फिर जिस पटरीपर सुरेश अभी चल रहा है, उसपर क्या

उसका कोई चिह्न, कोई नामोनिशान रह जायेगा? क्या किसीको याद रहेगा कि सुरेश नामका कोई प्राणी कभी इस पटरीपरसे गुजरा था?

ट्रामकी घण्टीकी टन्-टन्से अचानक सुरेश चौंक पड़ा। कण्डक्टर चिल्ला रहा था—"पटरीपर चलिये साहब, पटरी पर।" तब सुरेशने देखा कि जाने कब वह पटरीसे उतर ट्राम लाइनपर चलने लगा, कि पीछेसे आनेवाली ट्राम उसके ठीक पीछे आकर जाने कब रुक गयी थी और जाने कबसे कण्डक्टर घण्टी बजा रहा था। उचककर सुरेश फिर पटरी पर हो लिया। पास ही जाते हुए दम्पतिने उसकी ओर देखा और मुंह फेरकर सभ्यतापूर्ण ढङ्गसे दोनों मुस्कराने लगे। सुरेशको क्रोध आया, इच्छा हुई औरतके एक तमाचा खींचकर मार दे। पर यह कैसे हो सकता है, सभ्यताके युगमें? सुरेश आगे बढ़ने लगा। एक बन्द दूकानके नीचे भिखारियोंका परिवार पड़ा था—एक अत्यन्त कृश, रोगी आदमी दीवालसे सटकर लेटा था, उसकी स्त्री, जिसकी उम्र ज्यादा नहीं, लेकिन जो जवानीमें ही बूढ़ी हो चली थी, उस आदमीके तनको फटा-सा कपड़ा डालकर छिपानेकी बेकार कोशिश कर रही थी, पास ही तीन-चार बच्चे, जिनके पेट बढ़े हुए और हाथ-पैर सूखे हुए थे, एक कटोरा भातके लिए आपसमें छीना-झपटी कर रहे थे; बुढ़िया, जो कि शायद उस मृत-प्राय नर-कंकालकी मां थी, हाथ पसारे सबसे आगे बैठी थी और राह चलनेवालोंकी ओर शून्य दृष्टिसे ताक रही थी, वह कुछ बोलती न थी। सुरेशने उन्हें देखा, जेबमें हाथ डाला और बटुआ निकालकर देखने लगा—पैसा एक भी नहीं था, न इकन्नी, न दुअन्नी और न चवन्नी—सिर्फ रुपये थे। मिनट भर कुछ सोचकर रुपयेवाला नोट उसने बुढ़ियाके सूखे हाथपर धर दिया और फौरन आगे बढ़कर भीड़में मिल गया, बुढ़ियाका आशीर्वाद वह सुनना नहीं चाहता था। परन्तु आगे बढ़नेपर उसे ऐसा लगा कि उसके पीछे वहीं, भिखारियोंके पाससे, किसीके बड़े जोरसे ठट्ठा मारकर हंसनेकी आवाज आ रही हो, जैसे कोई ठट्ठा मारकर, ताली पीटकर कह रहा था—बेवकूफ! सुरेशने घूमकर देखा, कोई नहीं। केवल अपार जनसमूहकी सरितामें जैसे बाढ़ आ रही थी। सभीके मनमें मानो एक प्रसन्नता भर रही थी, भीड़का कोलाहल अत्यन्त मधुर लग रहा था; समुद्री हवा सैकड़ों, हजारों, लाखों सुख-संवाद लेकर घर-घरमें, जगह-जगह, कोने-कोनेमें ढिंढोरा पीटती-नाचती फिर रही थीं और आकाशमें हल्के और गहरे सुरमई बादल खेल-कूद मचा रहे थे।

और आगे बढ़ा, तो सामने हुगलीका नया बना विशालकाय पुल दीखा। थोड़ी ही देर पीछे सुरेशने अपनेको बीचोबीच पुलपर खड़ा पाया। पूरबसे बहनेवाली ठण्डी, तेज वायु यहां खड़े होनेपर सीधे सीनेपर, मुंहपर लग रही थी। हुगलीमें ज्वारका पानी आ रहा था। सुरेशकी नजर नीचे गयी। बहुत नीचे था, डर लगता था; लेकिन डर काहेका। उसने रेलिंगको पकड़ ही रखा था। देखा, एक छोटी-सी नावको एक ही मल्लाह धारके खिलाफ ले जानेकी कोशिश कर रहा है, लेकिन धार तेज है, नाव एक इञ्च आगे नहीं बढ़ती, जहां-की-तहां खड़ी है। पास ही एक बड़ी नावको दो मल्लाह मिलकर मन्दगतिसे धारके खिलाफ लिये जा रहे थे। अकेला मांझी आसमानकी ओर दृष्टि लगाकर डांड़ोंपर जोर मार रहा था। वे दोनों सर झुकाये अपने-अपने काममें लगे थे, वे निश्चय ही थोड़ी देरमें किनारे लग जायेंगे और फिर शान्तिसे बैठ बातें करते-करते चिलमका दम लगायेंगे। पर यह अकेला मांझी न जाने कब किस साहिलपर लगेगा, कौन कह सकता है? लेकिन सुरेशके नास्तिक मनने उस एकाकी मांझीकी लाख-लाख बार सराहना की और वह जबतक वहां खड़ा रहा और जबतक हुगलीकी छातीपर पूर्ण अन्धकार छा न गया; तबतक सुरेश खड़ा-खड़ा उस मांझीको, धारको और उस तूफानी हवाको देखता ही रहा।

जाने कबतक सुरेश इसी तरह ध्यान-मग्न खड़ा रहा, उसे याद नहीं कि पास ही किसी शोरगुलसे विचारोंकी लड़ी टूट गयी और उसने घूमकर देखा। देखा कि एक जगह कुछ भीड़-सी लग गयी है, कुछ लोग किसीको घेरकर खड़े हैं। सुरेशको घटनाके जाननेकी कोई उत्सुकता नहीं थी, फिर भी भीड़मेंसे निकलकर आते हुए एक आदमीको देखकर उसके मुंहसे निकल गया—"क्या मामला है?"

"पिये हैं, और क्या? मौसमकी मस्ती ले रहे हैं। शराब पीकर रण्डीको बगलमें लेकर शरीफ बने नाककी सीधमें चले जा रहे थे। चक्कर आ गया, धूल फांकने लगे। जब कसकर दो हाथ पड़े, तो होश ठिकाने आ गये हजरतके। समझे आप? यह हैं आजकलके शरीफ बाबू लोग।" इतना विवरण देकर व्यंग्यमय हंसी हंसता वह आदमी चला गया अपनी राह। सुरेशने सुना और सुनकर कुछ सोचने

लगा। सोचते-सोचते उसके कदम धीरे-धीरे घरकी ओर बढ़ने लगे। रात घनी हो चली थी, शायद दस बज रहे हों। पुलपर सवारियों और लोगोंका यातायात कम हो गया था। ट्राम गाड़ियां आखिरी चक्कर लगा रही थीं और दो-एक मोटर कहीं दीख जाती थी। धीरे धीरे सन्नाटा हो रहा था। शराबीकी बातने सुरेशके मनमें अपनी ही विचारधाराके प्रति घृणा पैदा कर दी थी और उसने सारी भावुकताको एकबारगी ही अपनेसे अलग कर नीचे हुगलीके अथाह पानीमें फेंक देना चाहा। तभी उसकी नजर फिर एक बार पूरबकी ओर चली गयी और पुल पार करनेसे पहले ही उसने देखा कि बादल छितरा गये हैं और कृष्णपक्षकी पञ्चमीका चांद एक बांस ऊपर उठ आया है, हवा धीमी पड़ गयी है, ज्वार उतरने लगा है और सभी नावें किनारे लग गयी हैं। वह शान्त था।

व्यक्ति, समाज और सम्पत्ति

श्री रामनारायण यादवेन्दु, बी० ए०, एल-एल० बी०

मानव-समाजके इतिहासका अवलोकन करनेसे यह स्पष्टतया प्रकट होता है कि संसारमें प्रत्येक युगमें 'व्यक्ति' और 'समाज' में, उनके स्वरूप, कार्य और अधिकारोंका न्यायपूर्वक निर्णय न होनेके कारण संघर्ष होता रहा है और वर्तमान् युगके संघर्षके मूलमें भी व्यक्ति और समाजका असामञ्जस्यपूर्ण सम्बन्ध है। 'व्यक्ति' और 'समाज' के अर्थ मनमाने ढंगसे किये गये और उनके सम्बन्ध, उन अर्थोंके प्रकाशमें निर्धारित किये गये। इस प्रकार दोनोंमें संघर्ष बना रहा। व्यक्तिसे क्या तात्पर्य है और समाज क्या है? इन दोनोंके समझने-में और इनके पारस्परिक सम्बन्धोंका निर्णय करनेमें बड़ी गम्भीर भूलें की गयीं। संसारके इतिहासमें जो जन-क्रान्तियां या राज्य-क्रान्तियां हुई हैं, उनका कारण भी व्यक्ति और समाजके संघर्षकी चरमावस्था है।

जब-जब समाजके नामपर कुछ व्यक्तियोंके वर्गोंने व्यक्तियोंकी स्वाधीनतापर आक्रमण किया, तब-तब व्यक्तियोंने उग्रतम रूपमें व्यक्तियोंके व्यक्तित्वको प्रकट किया और जब-जब व्यक्तियोंका अपने व्यक्तित्वके प्रका-शनके लिए ऐसा प्रयत्न किया गया, तब-तब कुछ व्यक्तियोंके वर्गोंने समाजके कल्याणकारी रूपका महत्व स्थापित करनेका प्रयत्न किया। सन् १७६६ में फ्रान्समें राज्य-क्रान्ति हुई और सबसे प्रथम बार यह घोषणा की गयी कि सब मनुष्य समान हैं। नागरिक-स्वाधीनता, समता और बन्धुत्व—यह तीन इस क्रान्तिके मूल-मंत्र थे। इस क्रान्तिके बाद फ्रान्समें ही नहीं, अमेरिका और ब्रिटेनमें भी व्यक्तियोंके अधिकारोंके लिए समाजसे युद्ध छिड़ा।

सन् १७७६ में उत्तरी अमेरिकामें उपनिवेशोंके निवा-सियोंने स्वाधीनताकी घोषणा कर दी और यह घोषित कर दिया कि अमेरिकाका ब्रिटेनसे सम्बन्ध-विच्छेद किया जाता है। अमेरिकाकी स्वाधीनताकी घोषणामें यह घोषित किया गया कि—

"हमारी सम्मतिमें ये सत्य स्वतः-सिद्ध हैं कि सभी मनुष्य समान बनाये गये हैं। सृष्टि-कर्त्ताने उन्हें कुछ ऐसे अधिकार दिये हैं, जो कि उनसे अलग नहीं किये जा सकते। जीवन, स्वाधीनता और आनन्द-प्राप्तिकी चेष्टा इन्हीं अधिकारोंमेंसे हैं; अपने इन अधिकारोंको प्राप्त करनेके लिए मनुष्य-समुदायमें सरकारोंकी स्थापना होती है, जिनके न्यायोचित अधिकार शासित व्यक्तियोंकी स्वीकृति-पर निर्भर होते हैं। जब कोई शासन प्रणाली इन उद्देश्योंकी घातक बन जाती है, तो जनताका यह अधिकार हो जाता है कि वह ऐसी शासन-प्रणालीको बदल दे और एक नवीन सरकार स्थापित करे, जिसकी नींव ऐसे सिद्धान्तोंपर हो और जिसकी शक्तियोंका संगठन इस प्रकारका हो, जो कि जनताकी दृष्टिमें उसकी रक्षा और सुखके लिए अधिकसे अधिक उपयुक्त बन सके।

फ्रान्सकी राज्यक्रान्ति और अमेरिकाकी स्वाधीनताकी घोषणासे पूर्व समाजमें व्यक्तिके व्यक्तित्वका कोई मूल्य नहीं था। परन्तु इसके बाद समाजमें व्यक्तिका महत्व स्थापित हो गया। संसारने सबसे पहली बार यह जाना कि समाजका निर्माण व्यक्तियोंके लिए है—व्यक्ति अपनी स्वाधीनता तथा आनन्द-प्राप्तिकी साधना सफलतापूर्वक कर सकें, इसलिए समाजका निर्माण किया गया। समाज व्यक्तियोंके सुसंगठित प्रयत्नका ही फल है। वह व्यक्तियोंके अस्तित्वसे भिन्न नहीं और सरकार, राज्य तथा राष्ट्र भी

व्यक्तियोंके उपर्युक्त अधिकारोंकी सुरक्षाके लिए हैं। यह सबसे पहली बार मानव-समाजने सीखा कि यदि कोई सरकार व्यक्तियोंके उपर्युक्त अधिकारोंके लिए घातक है, तो व्यक्तियोंका यह अधिकार है कि वे उसमें परिवर्त्तन करें या उसका नाश कर दें। इस प्रकार अमेरिकाकी घोषणासे भी व्यक्तियोंकी सर्वोपरि सत्ताकी स्पष्ट झलक मिलती है।

राज्यकी भावना

प्रजातन्त्रकी भावनाका विकास व्यक्तिवाद और व्यक्तित्वकी चेतनामें हुआ है। इसका स्पष्ट शब्दोंमें अर्थ यह है कि यदि समाजमें व्यक्तियोंकी महत्ता प्रतिष्ठित नहीं की जाती ; यदि समाजमें—राज्यमें—व्यक्तियोंके जीवन, स्वाधीनता और सुख-सुविधाके निमित्त राज्यका कर्तव्य निर्धारित नहीं किया जाता, तो प्रजातन्त्रकी भावनाका विकास ही असम्भव था। यही कारण है कि प्रजातन्त्रने व्यक्तियोंके सामाजिक तथा राजनीतिक अधिकारोंपर जोर दिया और वर्ग, श्रेणी तथा कुलीन-वर्गके विशेषाधिकारका विरोध किया। अपने लक्ष्यकी पूर्तिके लिए उसने एक ऐसी राजनीतिक संस्थाका विकास किया, जिसमें राजनीतिक और सामाजिक इकाई व्यक्ति था और उस व्यक्तिको यह आश्वासन दिया गया कि उन मौलिक कानूनी अधिकारोंके प्रतापसे उसे स्वतन्त्रतापूर्वक अपने जीवन-यापनका अधिकार होगा। ये ही अधिकार नागरिक स्वाधीनताके नामसे प्रसिद्ध हैं। प्रजातांत्रिक आदर्श यह था कि समाजमें राजनीतिक दृष्टिसे समान व्यक्ति हो और प्रत्येक व्यक्ति अधिकसे अधिक स्वाधीनताका भोग करे।

इस प्रकार प्रजातंत्रको जीवनका एक सजीव सिद्धान्त बनानेके लिए कुछ विश्वासोंका मानना आवश्यक था। पहला विश्वास यह था कि यदि राजनीतिक सत्ता समस्त समाजमें निहित है और समाज भी ऐसा, जिसमें राजनीतिक दृष्टिसे सब व्यक्ति समान हैं; तो समाज अधिक सुखी और सुसंस्कृत होगा, और अपने कार्योंका प्रबन्ध—तथा शासन-व्यवस्था भी समुचित ढंगसे कर सकेगा। और दूसरा विश्वास यह था कि जिस समाजमें व्यक्तियोंको यथासम्भव बोलने और काम करनेकी आजादी होगी, वह उस समाजसे अधिक सुखी, सुसभ्य और प्रगतिशील होगा, जिसमें कार्योंका निर्धारण ऊपरी सत्ता द्वारा किया जाता है।

अब प्रश्न यह है कि प्रजातन्त्रमें व्यक्तियोंको पूर्ण स्वतन्त्रता हो और राज्य या सरकारकी ओरसे भी व्यक्तियोंकी स्वतंत्रतापर प्रतिबन्ध लगाया जाय, तो संघर्ष होना अवश्यम्भावी है। अतः वैयक्तिक स्वाधीनता और सत्ता-राज्यमें समझौता होना आवश्यक है। समस्त प्रजातन्त्रवादी यह मानते हैं कि प्रजातन्त्रवादी समाजको व्यक्तिगत स्वाधीनतापर कानून या सत्ता द्वारा प्रतिबन्ध, उसी समय लगाना चाहिये जब कि व्यक्तिका कार्य प्रकाश्य रूपसे दूसरे व्यक्तिकी स्वतन्त्रतामें बाधा डालता है अथवा उसका कार्य सम्पूर्ण समाजके लिये हानिप्रद या असामाजिक है।

प्रजातंत्रवादीके अनुसार राज्य एक सामाजिक संगठन और सत्ताका केन्द्र है; राज्यमें संस्कृति और विवेककी मात्रा उतनी ही होगी, जितनी कि उन व्यक्तियोंमें होगी जिनसे उसका निर्माण हुआ है अथवा जो नियन्त्रण करते हैं। यदि समाजका संगठन अनुचित और अविवेकपूर्ण ढंगसे किया गया, जैसा कि उस समय होता है, जब कि विशेषाधिकृत वर्गको सत्ता दे दी जाती है, तो न्याय और विवेकका समाजके संगठनपर कोई प्रभाव ही नहीं पड़ेगा। परन्तु यदि उसका निर्माण प्रजातांत्रिक आधारपर किया गया, तो उसकी प्रकृति न्याय और विवेकके पक्षमें रहेगी।

प्रजातन्त्र और जन-कल्याण

प्रजातन्त्रकी तीन मूल भावनाएं हैं—जन-कल्याण, समता और स्वाधीनता। इससे कोई भी इन्कार नहीं कर सकता कि मानव-जीवनका परम लक्ष्य-आत्म-दर्शन, मोक्ष या आनन्दकी प्राप्ति है। प्रत्येक धर्म तथा धर्माचार्यने आनन्द-प्राप्तिके लिए मार्ग बतलाया है। और समाज तथा राज्यकी रचना भी इसी उद्देश्यसे की गयी है कि मानव स्वतन्त्रता-पूर्वक आनन्द प्राप्त कर सकें और जीवनका सर्वोत्कृष्ट ढंगसे विकास कर सकें। वास्तवमें मानव-जीवन स्वाधीनता तथा आनन्दके बिना नीरस है और है एक प्रकारका मृतभार।

इसीलिए तो अमेरिकाकी स्वाधीनताकी घोषणामें स्पष्ट शब्दोंमें यह लिखा है कि "जब कोई शासन-प्रणाली इन अधिकारोंकी घातक बन जाती है, तो जनताका यह अधिकार हो जाता है कि वह ऐसी शासन-प्रणालीको बदल दे या मिटा दे ......।"

सब मनुष्य समान पैदा हुए हैं और सब मनुष्योंको आनन्द-प्राप्तिका अधिकार है। सुप्रसिद्ध अङ्गरेज लेखक श्री लियोनार्ड वुल्फने लिखा है कि—

"यह विचार कि सरकार और राजनीतिक संस्थाका

लक्ष्य व्यक्तियोंके समाजका आनन्द है, जिसमें प्रत्येकको आनन्द प्राप्त करनेका समान अधिकार है—एक महत्वपूर्ण विचार है, जिसे सिद्धान्तमें बहुत ही कम स्वीकार किया गया और जिसे संसारके इतिहासमें कभी व्यवहारमें नहीं लाया गया।"

यद्यपि इस आदर्शका व्यवहारमें पालन करनेका कभी पहले प्रयत्न नहीं किया गया, परन्तु इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि प्रजातन्त्रकी भावनाका आधार यह विचार रहा है कि सरकारका मुख्य उद्देश्य समान नागरिकोंके एक समाजका सार्वजनिक हित ही है। प्राचीन प्रजातन्त्रवादी जब इस विचारको स्वीकार करते थे, तब स्पष्ट रूपमें वह यह स्वीकार करते थे कि समाजमें प्रत्येक वर्गको आनन्द-प्राप्तिका वैसा ही अधिकार है, जैसा कि दूसरे वर्गको और प्रत्येक व्यक्तिको भी दूसरे व्यक्तिके समान ही आनन्द प्राप्तिका अधिकार है। नागरिकोंकी समानतासे तात्पर्य यह है कि स्वाधीनता और आनन्दके लिए उन्हें समान अधिकार है और दूसरे कानूनकी दृष्टिमें वे बराबर हैं।

यह वास्तवमें एक महान् क्रान्तिकारी आदर्श था और यही विचार संसारमें सबसे महान् सामाजिक, राजनीतिक तथा मनोवैज्ञानिक क्रान्तिका आधार है। आनन्द-प्राप्तिमें भौतिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकारकी सन्तुष्टि सम्मिलित है। अब भौतिक और मानसिक सुखकी प्राप्तिके लिए सम्पत्तिपर अधिकार परम आवश्यक है।

उसी समाजमें प्रत्येक व्यक्तिको आनन्द-प्राप्तिके लिए समान अधिकार प्राप्त हो सकता है, जिसमें व्यक्तियोंको समाजकी इकाइयां माना गया हो। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि ऐसे समाजमें ही प्रत्येक व्यक्तिको आनन्दका समान अधिकार या सुयोग मिल सकता है, जिसका सङ्गठन विशेषाधिकार-युक्त वर्गोंसे न बना हो। यदि ऐसे समाजमें प्रजातन्त्रके इस आदर्शकी प्रतिष्ठा करनेका प्रयत्न किया गया, तो वर्गोंसे अधिकार-हीन व्यक्तियोंको संघर्ष करना पड़ेगा।

समाजवादके आचार्य मार्क्स और साम्यवादी यह कहते हैं—"यूरोपकी इस उन्नीसवीं सदीकी दुनियाको देखो। एक ओर पूंजीवादी हैं और दूसरी ओर मजदूर; एक ओर शोषक हैं और दूसरी तरफ शोषित; एक ओर वे हैं, जो समस्त भौतिक सुखोंके स्वामी हैं और दूसरी तरफ वे हैं, जिन्हें कम वेतनपर अधिक लम्बे समय तक शारीरिक श्रम करना पड़ता है और जो गरीब हैं तथा दरिद्रताकी पूरी सामग्री उनको सौंप दी गयी है। सामाजिक दुःख तथा आनन्दके विषम-विभाजनका कारण राजनीतिक नहीं है, इसका तो केवल एक ही कारण है और वह यह है कि आर्थिक और समाजवादके सिद्धान्तोंके अनुसार समाजका आर्थिक पुनर्निर्माण ही समाजमें आनन्द-सुखका समानतासे विभाजन कर सकता है।"

जब जनताको यह स्पष्टरूपसे ज्ञात होने लगा कि उनके दुखोंका कारण सम्पत्तिका विषम-विभाजन है और जो सम्पत्तिजीवी हैं, वे सुखी हैं तथा जो सम्पत्ति-हीन हैं, वे दुखी हैं तब प्रजातन्त्रवादियोंने प्रजातन्त्रके इन आर्थिक समताके सिद्धान्तको पकड़कर समाजवादका प्रचार किया। इस प्रकार सुखके समानाधिकारसे हीन प्रजातन्त्रको 'राजनीतिक प्रजातन्त्र' कहा जाने लगा।

प्रजातन्त्रवादियोंको यह भय था कि जो सुखके लिए प्रत्येक व्यक्तिके समान अधिकारकी घोषणा करते हैं, वे यह अच्छी तरह जानते हैं कि सुखका समान वितरण तभी हो सकता है, जब कि सम्पत्तिका समानतासे वितरण हो।

सम्पत्तिके समान विभाजनकी समस्यासे अपना पिण्ड छुड़ानेके लिए ही मेडीसनने संयुक्त-राज्य-अमेरिकाके शासन-विधानको अप्रजातन्त्रवादी बनानेका प्रयास किया। सन् १७८७ में फिलडेफिया-कन्वेन्सनमें मेडीसनने अमेरिकन सीनेटके लिए प्रत्यक्ष चुनावका विरोध करते हुए, अपने भाषणमें कहा—

समस्त सभ्य देशोंमें जनता विविध वर्गोंमें विभाजित है, उनके यथार्थ या कल्पित हितोंमें मतभेद है।...... विशेषतः गरीब और अमीरका भेदभाव तो होगा ही। जनताकी वृद्धि आवश्यक रूपसे ऐसी जनताकी वृद्धि करेगी, जो जीवनमें संकटका सामना करेंगे, और गुप्त रूपसे यह चाहेंगे कि प्रकृतिको देनका अधिक समान वितरण हो। इनकी संख्या उनसे अधिक बढ़ जायगी, जिन्हें इस प्रकारकी भावनाएं नहीं सतातीं। समान मताधिकारके नियमके अनुसार सत्ता पहले वर्गके हाथमें आजायगी। प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तके आधारपर इस खतरेसे कैसे रक्षाकी जाय; अल्पमतके प्रपीड़नका यह खतरा कैसे दूर हो? और साधनोंके सिवा एक ऐसी सरकारी संस्थाके निर्माण-द्वारा जो अपनी बुद्धिमत्ताके लिए आदरणीय हो, तथा ऐसे अवसरोंपर अपनी सहायता दे और न्यायका पलड़ा भारी कर सके।"

मेडीसनके भाषणका उपर्युक्त अवतरण अत्यन्त मनो-

रञ्जक ही नहीं, महत्वपूर्ण भी है। प्रजातन्त्रवादी तथा अप्रजातन्त्रवादी मनोविज्ञानमें क्या अन्तर है, तथा प्रजातन्त्र और समाजवादमें क्या ऐतिहासिक सम्बन्ध है, इनका इस अवतरणमें बड़ा सुन्दर विवेचन है। प्रजातन्त्रवादी-जनताने प्रजातन्त्रकी मांग इसीलिए की थी कि एक ऐसे समाजका निर्माण हो सकेगा, जिसमें जीवनके वरदानों-सुखोंका समानतासे वितरण होगा। मेडीसन यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि जीवनके सुखोंका समान वितरणका अर्थ होगा सम्पत्तिका समान वितरण और यदि प्रजातन्त्रने बहुमतको राजनीतिक सत्ता दे दी, तो बहुमत उसका प्रयोग सम्पत्तिके समान वितरणके लिये करेगा।

इस प्रकार तथाकथित प्रजातन्त्रवादियोंने प्रजातन्त्रके एक महान् तत्वका प्रजातन्त्रसे निष्कासनकर उसे समाजमें एक वर्ग-शोषकवर्ग-की स्वार्थ-पूर्तिका साधन बना दिया।

मुसलिम राजत्वमें हिन्दी

श्री व्रजकिशोर वर्मा 'श्याम'

हिन्दी केवल भारतीयोंके कण्ठकी वाणी ही नहीं, वह उनके हृदयकी भाषा भी रही है। यह लोकबल ही उसका ठोस पीठबल रहा है और यही कारण है कि बड़े-बड़े आततायी और अविचारी एड़ी-चोटीका बल लगाकर भी उसे अपदस्थ नहीं कर सके। मुसलमान आये, हिन्दुओंका उन्होंने क्या नहीं लूटा? पर हिन्दी उन्होंने भी सीखी। हिन्दी कवियोंका उन्होंने भी सम्मान किया और हिन्दीको कई मुसलमान कवि और कवियित्रियां दे गये। लेकिन आज तक जो भाषा हिन्दू मुसलिम-वैमनस्यसे बिल्कुल दूर रही, उसे भी बलात् साम्प्रदायिक संग्राममें घसीटा जा रहा है। कहा जा रहा है, हिन्दी तो हिन्दुओंकी भाषा है, उससे मुसलमानोंका कोई रिश्ता-नाता नहीं है। साम्प्रदायिकताका कैसा प्रचण्ड प्रदर्शन है! गुलामीसे हमारे देशका कितना भयानक पतन हुआ है, यह भावना, इसका ज्वलन्त उदाहरण है। हिन्दीके प्रति इस तरहकी भावना रखनेवालोंको कौन बताये कि धर्म एक वस्तु है और राष्ट्र दूसरी। धर्मका आत्मासे सम्बन्ध है और राष्ट्रका देशसे, धर्म बदलनेसे रक्त नहीं बदलता, राष्ट्र नहीं बदलता और न भाषा ही बदलती है। यदि ऐसा न होता, तो मुसलमानी राजत्वमें हिन्दीके नामका लोप ही हो गया होता। लेकिन ऐसा कहां हुआ? मुसलमान बादशाहोंने हिन्दीका जो सम्मान किया है और उसे अपनी भाषा समझकर जिस प्रेमसे अपनाया है, वह आजके हिन्दी-विरोधियोंकी आंखें खोलनेके लिए पर्याप्त है। मुसलमानी तवारीखें बतला रही हैं कि हिन्दी हिन्दुओंकी नहीं, अखिल भारतवासियोंकी भाषा है। उस समय हिसाब-किताब, राज-काज, साहित्य और संगीतसम्बन्धी कार्योंके लिए हिन्दीका ही प्रचार था।

हिसाब-किताबमें हिन्दी

मुसलमान जबसे भारतमें आये, तबसे ही उनके राज्यका काम बहुधा हिन्दीमें ही होता था। हिसाब और जमा-खर्चका दफ्तर तो मोहम्मद कासिमके समयसे लेकर अकबर बादशाहके समय तक हिन्दीमें ही रहता चला आया था। इसका कारण यह नहीं था कि मुसलमान लोग हिसाब नहीं जानते थे, किन्तु वे ऐश्वर्यवान और सिपाही-पेशा होनेसे हिसाब करने और जोड़-तोड़ लगानेका परिश्रम कम उठाना चाहते थे और इसको अपनी सिपाहगीरी और विजय-प्राप्तिके आगे कोई अधिक महत्व नहीं देते थे। इस लिए जो देश विजय करते थे, वहींके दीवानों, दफ्तरों और लेखकोंको ज्यों-के-त्यों बनाये रखते थे और उनपर शासन करनेके लिए एक बड़ी कचहरी बना देते थे, जिसका काम या तो स्वयं वे, या उनके मुसलमान मन्त्री किया करते थे। मुहम्मद कासिमने सं० ७६८ में सिन्धका देश राजा दाहरसे जीता और वहांके अगले दीवानको राजका काम सौंपकर उसने ब्राह्मणोंको दफ्तरमें नौकर रख लिया, जिनके द्वारा राजका कर भी प्रजासे उगाहा जाता था, इससे मालका दफ्तर हिन्दीमें ज्यों-का-त्यों बना रहा। फिर महमूद गजनवीने सं० १०७० में पञ्जाबका राज हिन्दुओंसे लिया। उसने भी वहांके हिसाबका दफ्तर हिन्दी और हिन्दुओंके हाथमें रहने दिया और ऐसा ही शहाबुद्दीन गोरीने दिल्लीका राज लेनेपर किया था।

इस प्रकार विजयी मुसलमानोंके शासन-कालमें विजित

हिन्दुओंकी हिन्दी भाषा अकबर बादशाहके समय तक उनके दफ्तरोंसे अलग नहीं हुई। सुलतान सिकन्दर लोदीने हिन्दुओंको फारसी पढ़ने-लिखनेमें तो लगा दिया था, तो भी वह हिन्दी दफ्तरको फारसीमें नहीं कर सका था। परन्तु राजा टोडरमलने सं० १६३९ में सम्राट अकबरके प्रधान मन्त्रीका महान पद पाकर बादशाही कामोंमें नया सुधार किया, तो उन्होंने पुराने दफ्तरोंको भी हिन्दीसे फारसीमें बदल दिया। जहां पहले हिन्दी लिपि और हिन्दी बोली हिन्दू लोग लिखते थे, वहां अरबी और फारसी बोली, लिपि और अङ्क मुसलमान लोग लिखने लगे, और इसके साथ ही हिन्दुओंको भी फारसी पढ़ने और अरबी हिसाब सीखनेका हुक्म दे दिया गया, जिसके वास्ते विलायतके दफ्तरोंकी प्रथाका ज्ञान ईरानी विद्वानोंसे प्राप्त करनेके लिए, एक सरल परिपाटी बनायी गयी। इस नवीन शिक्षाका यह परिणाम हुआ कि बहुधा हिन्दू लोग, हिन्दीको तो भूल गये और फारसी लिखना-पढ़ना सीखकर बड़े-बड़े ओहदों तक पहुंचने लगे। स्वयं राजा टोडरमल भी फारसी शिक्षासे ही प्रधान मन्त्रीके महान पदको पहुंचे थे।

इस तरह हिन्दी प्रायः एक सहस्र वर्ष तक मुसलमान बादशाहोंके दफ्तरोंमें प्रचलित रहकर एक हिन्दू प्रधान मन्त्रीके प्रयत्नसे खारिज हो गयी, जिसकी नीति, फारसीके प्रचारसे हिन्दू जातिके वास्ते वैसी ही उपयोगी थी, जैसी कि आजकल अंगरेजी। क्योंकि, जैसे आज दिन केवल हिन्दी या उर्दू पढ़ा हुआ हिन्दुस्तानी आदमी अंगरेजोंमें कुछ आदर नहीं पा सकता है, वैसे ही उस समयमें भी मुसलमान बादशाहों और उनके वजीरोंमें कोरी हिन्दी जानने वालेकी कुछ भी कदर नहीं थी। लेकिन इतना सब कुछ होते हुये भी यह धारणा गलत होगी कि हिन्दीके वास्ते अकबरका समय अच्छा नहीं था। अकबर वास्तवमें हिन्दीका द्वेषी नहीं था। उसने अपने पोते खुसरोको छ वर्षकी अवस्थामें पहले हिन्दी पढ़नेको ही बैठाया था। अकबरनामेमें लिखा है कि ७ आजर सन् १८३८ जलूसी (अगहन सुदी ६ सं० १६४०)को सुलतान खुसरो हिन्दी विद्या सीखने बैठा। भूदत्त ब्राह्मण, जो भट्टाचार्यके नामसे सर्वसाधारणमें प्रसिद्ध हैं, और जो अनेक विद्याओंके ज्ञाता थे, उसके पढ़ानेको नियत हुए थे।

अकबरने राज्य-प्रबन्धके जीर्णोद्धार और शासन-स्वीकारमें भी हिन्दीका बहुत कुछ प्रचार किया था, जिसका पता आईने अकबरीसे लगता है। सिक्कों, तोपों, बन्दूकों, हाथी, घोड़ों, तथा अन्य चीजोंके नाम, जो उसने नयी निकाली थीं, बहुधा हिन्दीके ही रखे थे, जिसका कुछ नमूना नीचे दिया जाता है।

१ सहंसा—१०१ तोले ९ माशे सोनेका होता था और ९१ तोले ८ माशेका भी।
२ रहंस्य—सहंसेका आधा।
३ आत्म—सहंसेका चौथाई।
४ विशांति—सहंसेका दसवां और २० वां भाग।
५ युगल—सहंसेका ५० वां भाग—२ मोहरका।
६ अदल गुटका—११ माशे सोनेका—मोल ९)
७ धन—१ मोहर—मोल ९)
८ रवि—आधी मोहर
९ पांडव—मोहरका पांचवां भाग
१० अष्टसिद्ध—मोहरका आठवां भाग

चांदीके सिक्कोंके नाम—
१ रुपया
२ द्रव्य—अठन्नी
३ चरण—चवन्नी
४ पांडव—१ रुपयेका पांचवां भाग
५ दशाह—दसवां भाग
६ कला—अन्नी
७ सोकी—बीसवां भाग

तोपोंके नाम—
१ गजानल
२ हथानल
३ नरनाल

बन्दूकोंके नाम—
१ संग्राम, २ रङ्गीन

पहननेके कपड़ोंके नाम—
१ सर्वगाती—जामा
२ चित्रगुप्त—बुरका, घूंघट
३ शीशशोभा—टोपी, मुकुट
४ केशघन—बालोंमें बांधनेका
५ कटिजेब—कमरबन्दा पटका
६ तनजेब—आधे बदनमें पहननेका नीमा
७ पटगत—नाड़ा
८ परम नरम—शाला
९ परम गरम—दुशाला

बादशाहोंके सिक्कोंमें हिन्दी

पुराने सिक्कोंको देखनेसे पता चलता है कि शहाबुद्दीन गोरीसे लेकर अकबर बादशाहके समय तक चार सौ वर्षके लगभग बादशाही सिक्कोंपर हिन्दी अक्षर रहते आये थे, जिनमें बादशाहोंके नाम तथा और भी कई विशेषण मुद्रित होते थे।

शहाबुद्दीनने अपनी दिग्विजयमें हिन्दुओं और हिन्दू-धर्मका सर्वनाश तो किया, परन्तु सिक्कोंमें जो हिन्दी अक्षर और राज्य-चिह्न हिन्दू राजाओंके समयसे चले आते थे, वे सब ज्यों-के-त्यों रहने दिये। यहां उनका भी कुछ नमूना पेश करना अनुचित न होगा—

नाम बादशाह	हिन्दी अक्षर
१—मुइज़ुद्दीन मोहम्मद साम वा शहाबुद्दीन गोरी	१-स्री महमद बिनसाम २-स्री मद हमीर स्री महम्मद साम
२—महमूद बिन साम	स्री हमीर
३—ताजुद्दीन पलदोज	स्री हमीर
४—शमशुद्दीन एलतमाश	स्री हमीर स्री समसदिल
५—रुक्नुद्दीन फीरोज शाह	स्री हमीर छरितां स्री रुकण दीण
६—रजिया बेगम	स्री हमीर, स्री सामन्त देव
७—मुइज़ुद्दीन बहराम शाह	स्री मुइजु
८—अलाउद्दीन मसऊद शाह	स्री हमीर, स्री अलावदीन
९—नासिरुद्दीन महमूद शाह	स्री हमीर
१०—गयासुद्दीन बलबन	स्री सुलतान गयासदी
११—मुइज़ुद्दीन कैकुबाद	स्री सुलतान मुइज्जुदी
१२—जलालुद्दीन फिरोज खिलजी	स्री सुलतान जलालुदी
१३—गयासुद्दीन तुगलक शाह	स्री सुलतान गयासदी
१४—शेर शाह सूर	स्री शेर शाह
१४—अकबर शाह	स्री राम

सम्राट अकबरने सब बादशाहोंसे बढ़कर यह काम किया कि उसने अनेक सिक्कोंके साथ एक सिक्का ऐसा भी चलाया था, जिसमें न तो अपना नाम था, और न कोई राज-चिह्न था। केवल एक ओर तो श्रीराम और सीता जीकी मूर्ति थी, जिसपर नागरीमें राम नाम लिखा था और दूसरी ओर इलाही महीना और इलाही सन् था। ऐसे सिक्कोंकी छाप लखनऊकी छपी हुई आईन अकबरीमें है, जिसमें सीधी तरफ तो रामचन्द्रकी मूर्ति इस आकृतिकी बनी है कि आप मुकुट धारण किये हुए और धनुष बाण चढ़ाये जा रहे हैं। पीछे सीता जी हैं। उनके हाथमें भी एक छोटी-सी ढाल है। उल्टी ओर फारसीमें इलाही ५० मुद्रित है।

सरकारी कागजोंमें हिन्दी

काजी लोग जो मुकदमोंके फैसले लिखते थे, और कानूनगो जो सरकारी कागज और परवाने निकालते थे, उनमें भी कभी-कभी हिन्दी लिखी जाती थी। जमीनसम्बन्धी फैसलोंमें ऐसे हिन्दूवादी प्रतिवादीके समझनेके लिए, जो फारसी पढ़े नहीं होते थे, फारसीके नीचे कुछ सारांश हिन्दीमें लिख दिया जाता था। गांववालोंके नामके परवाने, दस्तक और इत्तलानामे वगैरह बहुधा हिन्दीमें होते थे। इस हिन्दीकी रोक किसीने नहीं की। औरंगजेबके समयमें भी यह चलती रही, ऐसे कई कागज देखे गये हैं।

साहित्य

हिन्दी साहित्यका आदर मुसलमान बादशाहोंमें, उनका राज होते ही हो गया था। सुलतान महमूद गजनवीकी तवारीखमें लिखा है कि जब उसने सन् ४१३ हिजरीमें कालिञ्जरपर चढ़ायी की थी, तो वहांके राजा नन्दाने, उसकी प्रशंसामें एक हिन्दी दोहा लिखकर भेजा था। सुलतानने उसको अरब और ईरानके विद्वानोंको, जो उसकी सेनामें थे, दिखलाया। सबने उसकी सराहनाकी, और दाद दी। सुलतानने भी अपना बहुत गौरव मानकर १५ किलोंकी हुकूमतका फरमान, जिनमें एक कालिञ्जर भी था, बहुमूल्य पदार्थों सहित उसके पारितोषिकमें राजाके पास भेजा, और उसका राज्य ज्योंका त्यों उसीके पास छोड़कर, गजनवी की तरफ कूच कर दिया।

इतिहासमें यह नहीं लिखा है कि उस दोहेका क्या भाव था, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उसमें ऐसा चमत्कार रहा होगा कि जो हिन्दी अरब और ईरानके विद्वानोंको पसन्द आ गयी, और सुलतानने मुग्ध होकर उसकी ऐसी कदरकी कि राजाका राज्य भी नहीं लिया, जिसके वास्ते वह गजनीसे इतनी दूर चलकर आया था, और इसके सिवाय १४ किले और उसको दे गया। इससे सुलतान महमूदका हिन्दीके प्रति प्रेम स्पष्ट रीतिसे सिद्ध होता है, और उससे यह बातें निकलती हैं—

१—हिन्दीकी कदरदानी २—हिन्दीके विद्वानोंको अपने पास रखना ३—एक शत्रु राजाकी हिन्दी कविताको अपने गौरवका हेतु समझना ४—उसकी रीझमें राजाको इतना

बड़ा पारितोषिक देना, जो दोनोंके मान-सम्मानका सूचक है।

यदि सच पूछा जाय, तो इन सब बातोंका मूल कारण हिन्दी भाषा और उसकी कविताका प्रभाव था, जिसने महमूद जैसे कट्टर तुर्क-बादशाहके दरबारमें अपना महत्व दिखाकर अरब और ईरानके विद्वानोंको मोहित कर दिया और उपहार भी ऐसा पाया, जैसा फिर कभी किसी समयमें नहीं मिला। क्योंकि प्रथम तो कालिञ्जरका राज्य नष्ट होनेसे बच गया। दूसरे राजनन्दाको अद्वितीय मान और लाभ प्राप्त हुआ, जिससे उसका राज्य और दृढ़ हो गया। तीसरे मुसलमान भी हिन्दी भाषाके रसिया बनकर स्वयं उसमें कविता करने लगे। इसका पता उसी बादशाहके वंशजोंकी तवारीखोंसे लगता है, जिनमें लिखा है कि उनके समयमें सुलेमानका पोता सादका बेटा मसऊद हिन्दी भाषाका बड़ा विद्वान और कवि था। उसने जो दो दीवान फारसीके बनाये, तो एक हिन्दीका भी बनाया। फारसी भाषामें किसी कविकी सब कविताके संग्रहको दीवान कहते हैं।

पञ्जाबमें महमूद गजनवीका राज्य सं० १०७० में हो गया था, उसी समयसे मुसलमान लोग हिन्दी बोलने लगे थे, और यही कारण मसऊदके कवि हो जानेका था।

जामेइलाहीपातासे, जो सुलतान शमसुद्दीनके राज्यमें सं० १२६८ के आस-पास बनी है, जाना जाता है कि अन्हलपुर पट्टनके राजाधिराज सोलंखी सिद्ध राज जयसिंहदेवके समयमें, जिसने सं० ११५० से सं० १२०० तक राज किया था, कुछ हिन्दुओं और फरासीसियोंने मतद्वेषसे खम्भातके कई मुसलमानोंको मार डाला था, और उनकी सब मसजिदें भी गिरा दी थीं। मसजिदका 'खतीब' [उपदेशक] कुतुब अली कवि था। वह यह सब हाल हिन्दी कवितामें लिखकर राजाके पास ले गया। राजाने निर्णय करके मसजिदोंको फिरसे बनानेके लिए रुपया दिलाकर अपराधियोंको दण्ड दिया।

इधर दिल्लीमें तुर्कोंका राज हो जानेसे, मुसलमानोंमें हिन्दीका प्रचार और बढ़ा, जिनमें अमीर खुसरो-जैसे हिन्दी भाषाके कवि-कोविद उत्पन्न हो गये, जिनकी मधुर और सरस कविताने मुसलमानोंको हिन्दी साहित्यका रसिया बना दिया। खुसरोके समकालीन सुलतान फिरोज तुगलकके राज्यमें मुल्ला दाऊदने 'नूरक और चन्दा" के प्रेमका हिन्दी काव्य बनाया था, जिसको उस समयके लोग बड़े प्रेमसे पढ़ते थे और शेख "तकीउद्दीन" उपदेशक भी दिल्लीकी जुम्मा मसजिदमें व्याख्यान देते हुए उसके दोहे और कवित्त पढ़कर लोगोंको मुग्ध कर देता था। एक दिन किसी मौलवीने कहा कि मसजिदमें यह हिन्दी कविता क्यों पढ़ी जाती हैं? शेखने कहा कि इसके भाव सब सूफियों और कुरानकी शिक्षाओंसे मिलते हुए हैं। इस बातसे यह सिद्ध होता है कि उस समय हिन्दीकी कविता मुसलमानोंमें खूब समझी जाने लगी थी और फिर कोई समय ऐसा नहीं था, जो मुसलमान कवियोंसे खाली रहा हो। हिन्दी पुस्तकोंकी खोजमें कई मुसलमान कवियोंका भी पता लगा है और कई ग्रन्थ भी उनके रचे हुए मिले हैं। विस्तार-भयसे हम केवल कवियोंके नाम ही यहां देते हैं :—

(१) अकबर (बादशाह) (२) अबर खां (३) अनीस (४) अब्दुल रहमान (५) अलहदाद (६) अलीमन (७) अहमद (८) आजम (९) आदिल (१०) आरिफ (११) आलम (१२) आसिफ (१३) इन्शा (१४) कमाल (१५) करीम (१६) काजी अकरम (१७) खान (१८) खाने आलम (१९) खान सुलतान (२०) खुसरो (२१) गुलामी (२२) जमाल (२३) जलील (२४) जानजाना (२५) जुलकरनैन (२६) जैनुद्दीन (२७) तान (२८) तानसेन (२९) दाऊद (३०) दानपात (३१) दानिशमन्द खां (३२) दिलदार (३३) दिलाराम (३४) नजीर (३५) नबी (३६) नमाज (३७) निवाज (३८) निशात (३९) पन्थी (४०) प्रेमी (शाह बखत) (४१) फरीद (४२) मलिक मुहम्मद जायसी (४३) मीर माधो (४४) रहीम (४५) शेख (४६) शेख सलीम।

प्रायः सभी मुसलमान बादशाह हिन्दी भाषा और हिन्दी कविताको समझते थे और स्वयं कविता भी करते थे। अकबर बादशाहकी फुटकर कवितायें बहुधा कवियोंको याद हैं। अकबरी काल हिन्दी साहित्यके लिए इतिहासमें सर्वोत्कृष्ट था। यों तो दरबारमें भी हिन्दी कवि विद्यमान थे; पर सम्राटके राजत्वकालमें हिन्दी भाषामें दो परमोत्कृष्ट उज्ज्वल रत्न कविता कर रहे थे। उनमें सूरदासकी प्रशंसा सम्राटके कानोंमें पहुंच चुकी थी। सूरदास तुलसीके पहले हुए भी थे और वे सम्राटकी राजधानीके समीप व्रजमें प्रायः विचरा करते थे। इनकी प्रशंसा सुनकर जब सम्राटने दरबारमें बुलाया, तो महात्मा सूरदासने कहा कि "कहा मोको सीकरीसे काम।" पर ज्ञात होता है कि सूरदास बादमें दरबारमें चले गये थे। किन्तु बहुत कुछ सम्भव है कि जिस सूरदासका नाम 'आईन' में लिया गया

है, वह बिल्कुल दूसरा ही व्यक्ति रहा हो। सूरदासके दरबारमें जानेकी बातपर सहसा विश्वास नहीं होता। जिस प्रकार सम्राटने सूरदासको दरबारमें बुलाया था, उसी प्रकार वह अद्वितीय कवि तुलसीदासको भी बुलानेकी चेष्टा करता। पर न तो अकबरको ही गोसाईंजीका ज्ञान था और न अबुल फजलको ही।

जहांगीरकी कविता तो कोई नहीं सुनी गयी ; परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दीके अच्छे-अच्छे दोहे और कवित्त उसको याद थे। उसने अपनी दिनचर्यामें, जिसका नाम तुजुक जहांगीरी है, कई जगह ऐसी बातें लिखी हैं, जिनसे उसको हिन्दी कविताका याद होना प्रतीत होता है। वह संवत् १६७४ के वृत्तान्तोंकी व्याख्या करता हुआ कहता है कि "यह बंधी हुई बात है कि कमल दिनको फूलता है और रातको सिकुड़ जाता है। कुमुदिनी दिनको सिकुड़ जाती है और रातको खिलती है। भौंरा सदा इन फूलोंपर बैठता है और इनके भीतर जो मिठास होती है, उसको चूसनेके लिए इनकी कलियोंमें घुस जाता है। बहुधा ऐसा होता है कि जब कमल मुंद जाता है तो भौंरा सारी रात उसीमें बैठा रहता है। उसके खिलनेपर भौंरा उड़कर निकल जाता है। इसीलिए हिन्दुस्तानके कवीश्वरोंने उसको बुलबुलके समान, फूलोंका रसिया मानकर अपनी कविताओंमें उत्तम रीतियोंसे, उसका वर्णन किया है।"

"तानसेन कलावन्त मेरे बापकी सेवामें रहता था। वह अपने समयमें अद्वितीय ही नहीं था, वरन् किसी समयमें भी उसके तुल्य गवैया नहीं हुआ है। उसने अपने ध्रुपदमें नायिकाके मुखको सूर्यकी, उसके आंख खोलनेको कमलके खिलने और उसमेंसे भौंरेके उड़नेकी उपमा दी है।"

दो एक दृष्टान्त इस बादशाहके कवियोंके निहाल करनेका भी लीजिये।

संवत् १६६९ के वैशाख वदी ११ के वृत्तान्तोंमें लिखा है कि "राजा सूरजसिंह हिन्दी भाषाके एक कविको भी लाया था, जिसने मेरी प्रशंसामें इस भावकी कविता भेंट की कि जो सूरजके कोई बेटा होता, तो सदा ही दिन बना रहता, क्योंकि सूरजके अस्त होनेपर यह उसकी जगह पर बैठकर जगतको प्रकाशमान रखता। परमेश्वर धन्य है, जिसने आपके पिताको ऐसा पुत्र दिया, जिससे उनके अस्त होनेपर लोगोंमें शोकरूपी रात्रि नहीं छायी। सूरज बहुत पश्चात्ताप करता है कि हाय मेरा भी कोई ऐसा ही बेटा होता, जो मेरी जगह बैठकर पृथ्वीमें रात्रि नहीं होने देता, जैसा कि आपके भाग्यमें चमत्कार और न्यायके तेजसे ऐसी भारी दुर्घटना हो जानेपर भी संसार इस प्रकारसे प्रकाशमान हो रहा है, मानो रातका नामोनिशान ही नहीं है।"

"ऐसी नयी उक्ति हिन्दी भाषाके कवियोंकी कम ही सुनी गयी थी। मैंने इसके इनाममें इस कविको हाथी दिया।"

वैशाख वदी ३० मङ्गलवार सं० १६७६ को जहांगीरने अहमदाबाद, गुजरातमें वृषराय भाटको एक हजार रुपये दिये और उसके विषयमें लिखा है कि "यह गुजराती है। इस देशकी बातें खूब जानता है। इसका नाम बूढ़ा था। मेरे जीमें आया कि बूढ़े आदमीको बूढ़ा कहना अनुचित बात है और विशेषकर उस दशामें जब कि मेरी कृपासे वह हरा-भरा होकर फूल-फलसे लद गया हो। इसलिए मैंने हुक्म दिया कि इसको सब लोग वृषराय कहा करें। वृष [वृक्ष] हिन्दीमें दरख्तको कहते हैं।"

जहांगीरका बेटा शाहजहां हिन्दी बोलता और हिन्दी कविताके समझनेमें अपने बाप और दादासे बढ़ गया था। इन मुगल बादशाहोंकी मातृ-भाषा तो तुर्की थी और घरमें तुर्की ही बोला करते थे, परन्तु हिन्दुस्तानमें राज्य करनेसे हिन्दी भी बोलने लगे थे और शाहजहांकी मातृ-भाषा तो मानो हिन्दी ही थी। जब वह जन्मा था, तो अकबर बादशाहने उसे अपनी बड़ी बेगम सुलतान सवैयाको सौंपा था। बेगमकी बोली तुर्की थी, इसलिए वह बादशाहसे तुर्की ही बोलती थीं और बहुत चाहती थीं कि यह भी तुर्की ही बोला करें। परन्तु शाहजहांको तुर्की पसन्द नहीं थी और न उसका जी तुर्की बोलनेमें लगता था। मुल्ला हमीदने बादशाहनामेमें लिखा कि "हजरत बादशाहजादे तो फारसी बोलते हैं और जो लोग फारसी नहीं जानते, उनसे हिन्दुस्तानी बोलीमें बातें करते हैं। कुछ तुर्की भी समझते हैं। परन्तु बोलते कम हैं। बोलनेका अभ्यास अधिक नहीं है। बचपनमें इस भाषाकी ओर कुछ रुचि नहीं थी। फिर जाहिन्दालकी बेटी और बाबर बादशाहकी पोती सवैया सुलतानाकी, जो बादशाहके लालन-पालनको नियत हुई थी, बोली तुर्की थी और वह महलमें तुर्की ही बोला करती थी। वह बादशाहको बलात् तुर्की बोलना सिखलाती थी, परन्तु बादशाहको यह बोली नहीं अच्छी लगती थी, इसलिए बहुधा तुर्की शब्द तो वे समझ लेते थे, किन्तु बोली अच्छी तरह समझमें नहीं आती थी। एक दिन जहांगीर बादशाहने प्यारसे कहा कि जो कोई मुझसे

पूछे कि कौनसा उत्तम गुण शाहजहांमें नहीं है, तो मैं यह कहूंगा कि वह तुर्की नहीं बोलता है। बादशाहने बड़े अदबसे अपने बापको उत्तर दिया 'हजरतके प्रतापसे, यह गुण भी प्राप्त हो जायेगा, परन्तु मैं अपनेको बिल्कुल निर्दोष नहीं बनाना चाहता था कि कहीं मुझपर लोगोंकी नजर न लग जाये और इसीलिए इस कमीको पूरा नहीं किया।'

शाहजहांको हिन्दी कवितासे भी अधिक प्रेम था। वह अपने दरबारके कवीश्वरोंमेंसे, जगन्नाथ राय, त्रिशूली, हरनाथ, महापात्र और सुन्दर कविरायकी कविता बहुत पसन्द करता था और इनको बड़े-बड़े इनाम देता था।

कहते हैं कि जोधपुरके महाराजा जसवन्तसिंहको शाहजहां बादशाहके सत्सङ्गसे ही कविता करना आया था। एक समय शाहजहांने महाराजासे एक कविताका अर्थ पूछा था। जब महाराजसे वह पूरा-पूरा न हो सका तो तुरन्त ही मिश्रको हुक्म दिया कि राजाको कविता करना तथा समझना सिखाओ।

शाहजहांका बेटा दारा शिकोह तो हिन्दी और संस्कृतके समझनेमें अपने बाप-दादाओंसे भी बढ़कर निकला था। उसने स्वयं उपनिषदोंका उल्था फारसीमें किया था। औरङ्गजेब हिन्दुओंका द्वेषी होकर भी हिन्दी भाषा और हिन्दी कवितासे विमुख नहीं रहता था। रुकात आलमगीरीमें लिखा है कि एक समय शाहजादा आजमने कुछ आम बापके पास भेजे थे और उनके नाम रखनेकी प्रार्थना की थी। औरङ्गजेबने बेटेको लिखा कि तुम स्वयं विद्वान होकर बूढ़े बापको ऐसी तकलीफ क्यों देते हो। खैर, तुम्हारी खातिरसे सुधारस और रसना-विलास नाम रखा गया।

बहुतसे हिन्दीके हिन्दू कवियोंने भी मुसलमान बादशाहोंसे हिन्दी कवितापर बड़े-बड़े मान-सम्मान और इनाम पाये हैं। अकबर आदि मुगल बादशाहोंमें कविरायका एक पद नियत हो गया था, जो हिन्दू कवियोंको मिला करता था। राजा बीरबरको सबसे पहले ही कविरायका खिताब मिला था। बीरबरके कविराय होनेसे पहले एक कविराय और भी था, जिसको बादशाहने उड़ीसाके राजा मुकुन्ददेव के पास भेजा था। शाहजहांके समयमें सुन्दर कविराय और जगन्नाथ महा कविराय थे। दूसरा खिताब महापात्रका भी था, जो नाहर और हरनाथ वगैरह कवियोंको मिला था। ऐसे ही और भी बादशाहोंके राज्यमें हिन्दू और मुसलमान कवि प्रतिष्ठा पा रहे थे। सारांश यह कि मुसलमान बादशाहों और विशेषकर मुगलोंके समयमें हिन्दी कविताने उनकी और उनकी उदारतासे बहुत उन्नति पायी है और अच्छे-अच्छे हिन्दू-मुसलमान कवि, जिनमेंसे १६५ नाम सुजान चरित्रमें लिखे हैं, इन्हींके समयके थे।

संगीत

हिन्दीसे संगीत भी मुसलमान बादशाहोंमें बहुत फैला; क्योंकि बहुधा बादशाह राग-रंगके रसिया थे। नाच-गानेके बिना वे और उनके अमीर अपने जीवनको फीका समझते थे, और इनकी सामग्री भी प्राचीन समयसे दूसरे देशोंकी अपेक्षा भारतमें बहुत रहती आयी है। गोपाल-लायक, बख्शू लायक, चिरजू लायक, तानसेन, रामदास और सूरदास आदि बड़े-बड़े गवैये, इन बादशाहोंके समयमें ही हुए हैं, जो विशेषकर हिन्दी भाषाके गीत गाते थे। उनकी संगतिसे मुसलमान गवैये भी उत्पन्न हो गये थे, जिनकी सन्तान आजकल इस विद्याकी धनी बनी हुई है। भांति-भांतिके हिन्दी गीत बनानेवाले तथा राग-रागनियोंके जोड़नेवाले भी अनेक कवि अमीर खुसरोसे लेकर लखनऊके अन्तिम बादशाह वाजिदअली शाह तक हो गये हैं, जिनका नाम संगीतमें सदा अमर रहेगा। हिन्दू गवैयोंका मुसलमान बादशाहोंने सम्मान भी राजाओंसे बढ़कर किया है। गोपाल लायकका अलीउद्दा जैसे कट्टर और अभिमानी बादशाहने तख्तपर अपने बराबर बैठाकर गाना सुना था। अकबरने तानसेनको बड़े आदर-सत्कारसे बुलाकर पहले ही मुजरेमें १ करोड़का दान दिया था। बाबा रामदासको बैरम खान-खानाने एक दिनमें लाख चांदीके टके दे डाले थे। महापात्र जगन्नाथ त्रिशूलीके बराबर शाहजहांने रुपये तौल दिये थे और गवैयोंमें सबसे ऊंचे पदपर रखा था।

पुनः नमस्ते—

श्री छेदीलाल गुप्त

अभी कल ही तो दाएं पैरकी चप्पल बनवानेमें साढ़े पांच आनेकी चपत लगी, सो भी कितनी बेरहमीके साथ, कलाई मरोड़कर मुट्ठीसे निकाल लिये गये। लियाकतसे ज्यादा हाथ-पैर अपने आपही उछल गया। रास्तेमें आते-जाते आंखें बन्द तो की नहीं जा सकतीं, न कोई करता ही है—स्थिति यही थी। चप्पल खरीदनेके लिए बाटाकी दूकान तक जाना भी दूभर हो गया।

आंखें चौड़ी सड़कपर अवस्थित आकाशसे बातें करती हुई बिल्डिंगकी खिड़कियोंसे टकरा रही थीं—दाईं ओरकी एक खिड़कीपर जो खड़ी हैं—गमगीन-सी, आंखें प्रतीक्षामें पथपर बिछाये, बेतरह व्याकुल दीखती हैं—शायद लेजरोंपर झुके दफ्तरके बाबूके लौटनेका समय है।

दाहिनी ओर बड़ी लापरवाहीसे आधा धड़ बालकनीसे झुलाये, दोनों पैरोंको सावनके झूलेकी तरह पेंगे देती हुई—यह मोटर गयी, मिलेटरी की, वह सुखद जोड़ी जा रही है, कैसे स्वच्छन्द भावसे आपसमें बातें हो रही हैं,—कैसे हाथमें हाथ मिला है, और वह देखो, वह जो आने-जानेवाले हैं, कैसे घूर-घूरकर आनन्द ले रहे हैं, न उन्हीको शर्म है और न उसीको जो पुरुषके हाथमें हाथ मिलाये सीना उछालती हुई चली जा रही है। देख रही हैं—अरे उस अपटू-डेट बाबूको तो देखो, जबरदस्ती बेचारीको टांगे घसीटे लिये जा रहा है—माना पति-पत्नी हीं हैं, लेकिन ऐसा भी क्या कि वह तो सिकुड़ती जा रही है और वह घसीटता जा रहा है—बार-बार बेचारीका आंचल ही सरसे, तो कभी कन्धेसे और कभी बिल्कुल धरतीही चूमता है, जिसे संवारनेमें ही बेचारी परेशान है। यह भी भला क्या, जो हाथमें हाथ मिलाकर सड़कपर घूमा जाये। मैं तो होती तो ऐसा फटकारती कि होश ही गुम हो जाता—धरती नापने लगते।

इसी सोच-विचारमें बांए पैरकी भी चप्पल टूट गयी।

कैसी बात है और यह कैसा परमात्मा है? जो जीवन तो देता है—सातवें आकाशपर बैठे-बैठे, पर जीवनको पर्याप्त रूपसे सम्पन्न बनानेका साधन नहीं। ये भी कैसे हैं, जो मरनेके लिए फुट-पाथपर ही आकर बिछ जाते हैं—माना इन मरनेवालोंका कसूर नहीं, दोष तो व्यवस्थाका है—स्वार्थका है। जब ये अपनी रोटी आप नहीं कमा सकते, तो संसारमें आना क्यों स्वीकार कर लेते हैं; फिर अगर कर भी लेते हैं, तो अपनेसे किये गये अन्यायका बदला लेनेको तैयार क्यों नहीं रहते? गंगा बहती है—वेगसे, रेलकी पटरियां हैं, मिलेटरीकी लारियां हैं—उसके नीचे क्यों नहीं पड़ जाते? मुझे ठोकर तो नहीं लगती, चप्पल तो मेरी नहीं टूटती, न मुझे चौंकना पड़ता—लाश देखकर जिसके इर्द-गिर्द मक्खियां भिन-भिना रही हैं।

जो निगाहें अभी कुछ देर पहले सौन्दर्य की खोजबीनमें खिड़कियोंपर मंडरा रही थीं, वे ही अब किसी खूसट, काले-कलूटे मोचीकी सूरत देखनेको पानी बिन मीनकी तरह तड़-फड़ाने लगीं।

एक डग भी आगे नहीं बढ़ा सकता, एक कदम भी चल नहीं सकता। हाथमें टूटी चप्पल लेकर चलना शराफत नहीं। जाने आने-जानेवालोंकी सैकड़ों निगाहें अभी घूरने लगेंगी और बेढब तो यह है कि कालेजके लड़कोंकी हंसी चारों तरफ गूंजने लगेगी।

चप्पलको सबहके खरीदे हुए समाचार-पत्रमें लपेट खाली पैर ही लपका। यह अखबार भी कितने मजेकी चीज है—सुबह उठते ही—दुनियामें क्या हो रहा है—जापान और जर्मनी क्या कर रहे हैं, गांधी जी, जिन्ना कैसे हिन्दोस्तान और पाकिस्तान बनाना चाहते हैं और क्यों। कितनेकी मृत्यु हो गयी फुट-पाथपर, यह जान लेनेपर घरकी गृहणीने बच्चेके कुछ कर देनेपर अखबारके पन्नेमें ही लपेट, आंखें बचा गलीमें फेंक दिया, दूध गरम किया गया। फिर प्रेमी-प्रेमिकाके उपहारका पैकेट भी बनाया जाता है।

इतनेमें बगलसे गुजर गयी जोड़ीकी ओर आकर्षित हुआ। पीछेसे ठीक-ठीक पहचाना तो नहीं जा सकता, पर चाल-ढालकी अदा कुछ परिचित-सी लग रही है। जोड़ी तो अच्छी है—पत्नी फैयाजखांकी एसराज, तो पति प्यारेलालके तबलेकी जोड़ीमेंसे बांयीं ओरके तबलेकी तरह गोलमटोल। पति कोट और पतलूनके गौरवसे गर्वित और पत्नी साधारण साड़ीकी लपेटमें डूबी-उतरायी-सी।

कलकत्ते आनेपर भीड़-भाड़का दृश्य या तो मैंने कालीके मन्दिरमें देखा, या बाटाकी दूकानपर। चरणेषु और पद्मेषु-

की चमक-दमक, फूल-पत्तियोंसे शीशेकी आलमारी सजी-सजायी। आने-जानेवालोंकी भीड़-भाड़, आश्चर्य तो नहीं हुआ, पर युगकी तरक्कीका अनुमान, आंकड़ेसे जरूर लगाना पड़ा, यह देखकर।

'शेप ठीक नहीं है।'

'चमड़ा कच्चा दीखता है।'

'यह लोगी ? मुलायम भी है, मखमली भी......'

'ऊंहू !'

'फुल बूटका दाम क्या है ?'

'तेरह रुपये पौने पन्द्रह आने।'

'बहुत है।'

'अरे साहब, क्या किया जाये, बोलिये'—फटकारके स्वरमें कुछ मधुरता मिलाकर विक्रेता बोल रहा था—'आज तो यह आपके सामने है भी, कल आपकी आंखें तरसेंगी।'

इत्यादिका शोर-गुल।

सावित्रीको, 'चरणेषु'की जरूरत कभी नहीं पड़ी। सीताको शायद पड़ी हो, पर लाचारी थी। युग वह ऐसा था कि उन्हें चौदह बरसके वनवासमें 'चरणेषु-पद्मेषु' कुछ नहीं प्राप्त हुआ।

'क्या मांगता है, आप ?'—कर्कश, पर थोड़ी चापलूसी-पूर्ण आवाजमें मुझसे पूछा गया।

'चप्पल'—मैंने कहा।

'कैसा माफिक ?'

बरबस मुझे पैकेट खोलकर टूटी चप्पल दिखानी पड़ी। ऐसे-जैसे कोई सभ्य आदमी, आदमीको दिखानेका साहस नहीं करता है। एटेन्शन होकर मैंने उसकी आंखों तक ले जाकर कहा—'ऐसा माफिक !'

मैं क्षणेक ज्यों-का-त्यों खड़ा रहा और वे सौतकी निगाहसे मुझे घूरने लगे। पुनः कई जोड़ी चप्पलें मेरी आंखोंके आगे बिछ गयीं।

देखनेमें सुन्दर, जालीदार, रोमाण्टिक, उठाकर उलट-पलटकर देखा, लिखा था सात रुपये छः आने।

चप्पल पसन्दकी थी। खड़े-खड़े अंगुलियोंपर बजट तैयार किया। सात कमरेका किराया, तीन चायवाला, तेरह होटल, पांच धोबी और पांचकी किताबें। कुल महीने-भरकी तनख्वाहसे बच रहे थे—सात रुपये !

'नहीं भई, दो रुपये पांच आनेवाला दिखाओ। यह तो बहुत ही अच्छी है ......।'

'इससे भी अच्छा है !'

मैं पूरी तरह कह भी न पाया था कि यह आवाज मेरे कानोंमें पड़ी। आंखें भी चकाचौंध हो गयीं। फिरकर देखा—मुझसे कुछ ही दूरीपर बी० कामजी पत्नीको चप्पल दिलवा रहे हैं।

मैंने कहा—'नमस्ते !'

बी०, काम० साहबका वहां पता नहीं। सशरीर तो वे मौजूद थे, पर नमस्तेका उत्तर देनेके लिए वह, उनकी पतली और लम्बी नाक सिकुड़कर उड़ंछू हो गयी। उत्तर वह क्यों देने लगे, चार हाथ और परे हट गये। कारण इसके सिवा और क्या हो सकता है कि बी० काम०की पत्नी बेकाम थीं।

अकचकायी-सी, घबड़ायी-सी खड़ी थीं। दीदा फाड़-फाड़कर अपने अगल-बगल, दाएं-बायें ताक-झांककर आश्चर्यमें खोती जा रही थीं। शायद इसलिए कि गांवमें तो उन्होंने फूफीको देखा ही है, बूढ़ी पके आमकी तरह ; फिर भी गौ-शाला इत्यादिमें बगैर 'चरणेषु' दौड़ लगा ही लेती हैं और जब वे कलकत्तेमें रह रही थीं—नलका पानी पीती ही नहीं, चमड़े लगे रहते हैं, इन नलोंमें। बी० कामकी पत्नी साहिबा तब कैसे चमड़ेको सारे शरीरमें लगायें।

और यह बी० काम० साहब हैं कि बेकाम हो चुके हैं।

ठीक साढ़े चार बजे दफ्तरके बड़े साहबकी मेम वहां तैरती हुई पहुंचती थी और जब पांच बजता, जब बूटके मचमचाहटके साथ मेमके कोमल जूतीकी खरखराहट वहांके वातावरणमें गूंज जाती, तब बी० काम० साहबके मुंहतक कान ले जाकर जान लिया जाता कि साहब चले गये। यही बातें वह देशी मेम साहबसे चाहते थे कि लेफ्ट-राइट, कदम-पर-कदम उठाकर शामकी हवाखोरीमें साथ दें, सिनेमा चलें।

किसीको दो रुपये पांच आनेकी चप्पल नहीं मिलती और कोई उससे भी अच्छीका अधिकारी है। मुझे तो नहीं मिली चप्पल। पर बी० काम० साहबको मिल गयी।

'इसे पैरमें डालकर देखो तो।'

'यह मुझसे नहीं पहना जायेगा'—आवाज ओठोंके भीतर ही गूंजे, ऐसी उनकी चेष्टा थी, पर इच्छाके विपरीत जो हो रहा था, भला कैसे बर्दाश्त हो। आवेशमें, वहांके वायुमण्डलमें व्याप गयी—'यह तो मेमें पहनती हैं। मुझसे पहनकर डग-भर भी नहीं चला जायेगा।'

'अरे भई, सब ठीक हो जायेगा। तुम समझती नहीं

हो।'—स्वरके उतारके साथ-साथ वह स्वयं उतर गये। जूता लिए ही बेकामके पैरों तक झुक गये—'देखूं पैर ?'

दायां पैर उठा—मानों नृत्यका ताल पञ्चमपर अब पड़ेगा, बांयेंके लिए भी यही बात।

'चलो'—बी०, काम० साहबने हाथका सहारा देकर कहा—'चल-फिरकर देख लो।'

खींचा-तानीसे बांयां पैर आगेको उठा, जमीनपर पड़ते-न-पड़ते दाहिनेमें मोच—'दइया..............'

चीखके साथ वह यथास्थान बैठ गयी। बी० काम० साहबकी परेशानी और भी बढ़ गयी। इस परेशानीमें कुछ मदद मैं करूं, यही ख्याल था मेरा पास जाकर पुनः नमस्ते करनेका, पर अभी 'नमस्ते' मेरे ओठोंके भीतर ही कैद था कि मेरी ओर बेतरह लाल-लाल आंखें तरेरकर उन्होंने कह ही दिया—'नमस्ते!'

बेटीकी बिदाके गीत

श्री चन्द्रभानु विशारद

बुन्देलखण्डी ग्राम-गीतोंमें जहां श्रृङ्गार-रसके उत्तम-उत्तम गीतोंका बाहुल्य है, वहां करुण-रसके गीतोंका भी नितान्त अभाव नहीं।

वैवाहिक ग्राम-गीतोंमें बहुत-से ऐसे गीत पाये जाते हैं, जो बेटीकी बिदाके गीतके नामसे पुकारे जा सकते हैं। इन गीतोंमें लड़कीके मायकेसे बिदा होनेके समयका करुणापूर्ण चित्रण रहता है। इन गीतोंमें उस लड़कीके हृदयकी दुख-पूर्ण बातोंका वर्णन रहता है, जो अपने माता-पिताका दृढ़ सङ्ग छोड़कर आज दूसरा संसार बसाने जाती है, जहां अपना परिचित व्यक्ति कोई नहीं है। सखी-सहेलियोंके साथकी क्रीड़ाको त्यागकर जीवन-युद्धकी ओर अग्रसर होने-वाली लड़कीके हृदयमें कैसे उद्गार उठते हैं, इन्हींका वर्णन इन गीतोंमें रहता है। लड़कीकी बिदाके समय उसकी माता और भावज आदिका विलाप-कलापका भी इन गीतोंमें वर्णन रहता है। इनके अतिरिक्त इनमें बहुत-सी ऐसी भी बातोंका उल्लेख रहता है, जो समाजके किसी विकृत-रूपकी ओर संकेत करती हैं, जैसे निर्धन भाईका बहिनकी ससुरालमें जाकर निरादृत होना।

ये गीत, जैसा कि नामसे प्रकट होता है, लड़कीकी बिदाईमें नहीं गाये जाते। ये तो विवाहके अवसरपर किसी भी समय गाये जा सकते हैं। बिदाके समयका वर्णन होनेके कारण ही मैंने इन्हें वैवाहिक ग्रामगीतोंसे अलग सङ्कलित किया है। ऐसा करनेसे लोक-साहित्यके करुणा-रसका वास्तविक परिचय प्राप्त हो जाता है।

आइये यहांपर हम बेटीकी बिदाके कुछ गीतोंका रसा-स्वादन करें :—

(१)

बेटी मोरी आजुइ बिदा भई।

जब बिटियाके आये अनवइया,
बबुल उनके बहुत व्यकुल भये॥
जब बिटियाकी साजैं दौरिया,
माता उनकी बहुत व्यकुल भई॥
जब बिटियाकी साजैं टेपरिया,
भौजी उनकी बहुत व्यकुल भई॥
जब बिटियाको डोला उठन लगो,
सखियां उनकी बहुत व्यकुल भई॥
जब बिटियाको डोला फेरन लगो,
भइया उनको बहुत व्यकुल भये॥ बेटी०

अर्थ—मेरी बेटी आज ही बिदा हुई है। जब लड़कीके बिदा करानेवाले आ गये, तो लड़कीके पिता बहुत दुखी हुए। लड़कीको दहेजमें दी जानेवाली दौरी साजते समय उसकी माता बहुत क्षुब्ध हुईं। लड़कीको दी जानेवाली टिपरिया [आभूषण आदि रखनेका बांसका डिब्बा] सजाते समय लड़कीकी भावज अत्यन्त व्याकुल हुई। लड़कीका डोला उठते समय, प्रस्थान-वेलामें उसकी सखी-सहेलियोंको अपार दुःख हुआ। बहनका डोला फेरते समय लड़कीका भाई बहुत दुखित हुआ।

टिप्पणी—इस गीतमें लड़कीकी बिदाईके सम्पूर्ण कार्य उचितरूपसे लड़कीकी माता, भावज तथा भाई आदिको विभाजित किये गये हैं। यही कारण है कि प्रत्येकको अपने कर्तव्य-पालनके समय लड़कीकी बिदाका ध्यान आ जाता है और वह अत्यन्त विरह-कातर हो उठता है। इसके

अतिरिक्त इस गीतमें भाईके डोला फेरनेकी रीतिका वर्णन मिलता है, जो आज तक उसी तरह ग्रामोंमें प्रचलित है।

(२)

नैहरवा रे मोरा दूरी दिखाय।
सखियां सहेलिनका भेंटै न पायों,
उठाय लिहिन रे मोरा डोला कहार।
माता अपनीका भेंटै न पायों,
बैठा दिहिन रे मोहिं डोला चढ़ाय।
बागा-बगैचा देखन न पायों,
मार दिहिन रे मोरा दूओ ओहार॥

अर्थ—मेरा नैहर दूर दिखलायी पड़ रहा है। मैं अपनी सखी-सहेलियोंसे अच्छी तरहसे मिलने भी न पायी थी कि कहारोंने डोला उठा लिया। मैं अपनी मातासे भी अच्छी तरह न मिलने पायी और मुझे डोलामें चढ़ाकर बिठा दिया गया। मैं अपने बाग आदि भी न देखने पायी और मेरे दोनों ओर ओहार डाल दिया गया।

टिप्पणी—इस गीतमें लड़की डोलामें चढ़ते ही अपने मायकेकी सम्पूर्ण स्वतन्त्रता खो देती है। यहां तक कि उसे अपने पूर्व परिचित उद्यान आदिपर दृष्टि फेंकनेकी भी स्वतन्त्रता नहीं रह गयी। परवशताके पाशमें परिबद्ध हो जानेवाली एक लड़कीके हृदयके नैराश्यपूर्ण उद्गार इस गीतमें स्पष्टतया दृष्टिगोचर होते हैं।

(३)

मोर अम्बा गौर कचनार गोर कस तोरौं भला।
मोर टूटे-फूटे गहना को गढ़ावै बबुल बिना॥
मोहि दूरी अमनको जाय तो अपने बिरन बिना।
हमें गरुली टेपरियाको साजै तो अपनी भौजी बिना॥
हमें उचत कलेउना को देय अपनी मयरि बिना।
हमें गोइड़े लग पठवैं को जाय रे अपनी सहेली बिना॥

अर्थ—मेरे आम और कचनारके वृक्षोंमें बौर लग गये हैं, भला मैं उन्हें कैसे तोड़ूं? मेरे टूटे-फूटे आभूषणोंको मेरे पिताके बिना कौन बनवायेगा? मुझे किसी सुदूर स्थानसे भाईके बिना कौन लिवाने जायेगा? हमारी भावजके बिना हमें सम्पूर्ण शृङ्गारकी वस्तुएं भरकर भारी टेपरिया कौन साजेगा? हमें चारपाईसे उठते ही, माताके सिवा कलेवा खानेको कौन देगा? हमें गांवके किनारे तक, हमारी गांवकी सहेलियोंके अतिरिक्त कौन भेजने जायेगा?

टिप्पणी—बिदा होनेवाली लड़की अपने मायकेकी सम्पूर्ण बातें स्मृति-पटलमें लाकर श्वशुरालयमें उनके अभावसे अन्यमनस्क हो जाती है। "हमें उचत कलेउना को देय अपनी मयरि बिना" वाले चरणमें उसकी निराशापूर्ण अन्तर्वेदनाकी कैसी स्पष्ट झलक मिलती है।

(४)

उवतके सुरज बहुत नीक लागैं अथवत जात ललाई जी।
उसरे-उसरे डोलिया जाति है, अहिर चरावै गाई जी॥
गइयनके चरवइया रे भइया, हमरे घर कह्यो संदेश।
हमरे कलेउना मइया भइयाका देहैं हमहूं चलेन परदेश॥
हमरी गुड़इया माता गङ्गामां बहइहैं हमहूं चलेन परदेश॥
'अपनी चिरइयाका खेपा धरैं पठयों बहुरि गुड़इया खेलैं आय'
शहर-शहर मोरी डोलिया जातिहै भौजीसे होइगा मिलान।
आगेके बोला भउजी पाछे डारो, बिरन देहो पठवाय॥
कहौ तो बुइया साथै पठै द्यों, कहौ बसे दुइ-चार॥

अर्थ—निकलते समयके सूरज बहुत अच्छे लगते हैं, अस्त होते समयके सूर्य रक्तवर्णके हो जाते हैं। ऊसर जमीनसे होकर लड़कीका डोला जा रहा था। चरागाहमें अहीर गाय चरा रहा था। लड़कीने अहीरसे माताको सन्देश भेजा, हे गायके चरानेवाले भाई, मातासे मेरा इतना सन्देश कह देना। हमारा कलेवा माता भाईको दे देंगी और हमारी गुड़िया गङ्गामें बहा देंगी। अहीरने सन्देश कह दिया। माताने उत्तरमें कहा "मैंने तो अपनी चिरइया (चिड़िया) को पठौनीकी खेप रखनेके लिए भेजा है। वापस आकर उसे फिर गुड़िया खेलनेका अवसर प्राप्त होगा।

अब लड़कीका डोला शहरके मध्यसे जा रहा था। लड़कीकी भावजसे, जो बिदाईके समयमें नहीं थी, भेंट हो गयी। लड़कीने भावजसे कहा "हे भावज, अतीतमें कही हुई मेरी व्यङ्गपूर्ण बातोंको भुला देना और भाईको भेज देना। भावजने उत्तर दिया—हे बहन, कहो तो आज ही साथ भेज दूं और कहो, दो-चार रोज रहनेके बाद।

टिप्पणी—इस गीतमें लड़कीका मार्मिक सन्देश द्रष्टव्य है। माताके मुखसे निकला हुआ 'चिरइया' शब्द कितना वात्सल्य-रसपूर्ण है। लड़कीका भावजसे अपनी पुरानी व्यङ्गोक्तियोंके लिए क्षमा मांगनेकी बात लड़कीकी नम्रताकी परिचायिका है।

हंस-हंस कहै माता यशोमत,
पूता बहिनी अननको जाव।

भोर भये पौ फाटन लागे,
पहुंचे बहिनके देश ॥
"साछ गोसाइन मोरी ठकुराइन,
का भइयाका बैठक देव ।
ना मोरे ऐठक ना मोरे बैठक,
भइया रहैं चहे जायं ।
सास गोसाइन मोरी ठकुराइन,
काह रचौं जेवनार ।
ना मोरे अवना ना मोरे जेवना,
भइया रहैं चहे जायं ॥
घोरिलाके दगवा धरे बहिनी रोवति है,
तनी भइया घमवा नेवार ।
कि तौ नेवरिहौं बाग-बगइचा,
कितौ बबुल चौपार ।
ऊंची चौपरियासे माता मोरी देखै,
आवै मोरा पूता अकेल ।
आवो तो पूता मोरे कोरवामां बइठौ,
कहौ तो बहिनियाके हाल ।
बहिनीके हाल मैं काह कहौं,
माता मोसे कहौ ना जाय ॥
बहिनीके आंसू माता वइसे बहति हैं,
जैसे पुरवाईके मेव ।
रोवत बहिनीका काहे छांड़ो,
पूता लायो न संगै लेवाय ॥
देव ना माता मोहीं सोनवा व रूपवा,
बहिनी अननका जावं ।
लेउ बेटा रुपया मोहरिया,
बहिनी अननको जाव ।
भोर होत पौ फाटन लागे,
पहुंचे बहिनके देश ।
साछ गोसाइन मोरी ठकुराइन,
का भइयाका बैठक देव ।
चन्दन पिढुलिया बैठैका लावो,
खम्भाका ओढ़कन देव ।
सास गोसाइन मोरी ठकुराइन,
काह रचौं जेवनार ।
दाल-भात मैदाकी रोटी,
घी छरहीका सोंध ।
जेवन बइठें जबै बिरनवां,
पङ्खनसे बाव डोलाव ।

टिप्पणी—अर्थ स्पष्ट है। पहली बार भाईका बिना भेंटके जाकर निरादृत होना तथा पुनः रुपया व पैसा-की भेंट पाकर बहिनकी ससुरालमें उसका आदृत होना गीतमें दिखाया गया है। ससुरालमें लड़की कितनी परवश होती है कि वह बिना सासकी आज्ञाके अपने प्रिय भाईका भी यथावत् स्वागत नहीं कर सकती, इसका भी चित्र इस गीतमें अङ्कित है।

नींद

श्री सन्तराम, बी० ए०

सन् १९३०—३२ के दो वर्षोंमें फोनोबार बीटल, एक ही नींद लानेवाली औषधिकी बिक्री अमेरिकाके संयुक्त राज्योंमें पचीस सहस्रसे पैंतालीस सहस्र पौंड हो गयी। यह राशि इतनी बड़ी है कि समूचा अमेरिका एक रात इसे खाकर सो सकता है। व्यापारमें मन्दीके बढ़ जानेसे लोग सदा भय और चिन्तामें रहते हैं, जिससे उन्हें नींद नहीं आती। इसीलिए उन्हें किसी नींद लानेवाली औषधिका सेवन करना पड़ता है।

सन् १९२६ तक अधिकांश चिकित्सकोंको इस बातका तनिक भी ज्ञान न था कि नींद किस प्रकार क्रिया करती है। जलमान जी० सिम्मन्स नामक एक गद्दे बनानेवालेको नींद न आनेका रोग था। उसने जबतक इसके कारणोंका अन्वेषण करना आरम्भ नहीं किया, तबतक इस बातका किसीको ज्ञान नहीं हुआ कि लोग स्वाभाविक रूपसे कैसे सोते हैं। डाक्टर एगीगुमनके सम्बन्धमें एक कथा है। वह पागलपनसे उदास रहनेवाले रोगियोंके एक समूहका अध्ययन कर रहा था। उसने देखा कि वे नींदमें निरन्तर पलटते और करवट बदलते रहते हैं। बस, उसने एक अत्युत्तम प्रबन्ध लिखा और उसमें पागलोंकी पीड़ित निद्राका वर्णन किया। उसने मान लिया कि पुण्यात्मा और निर्दोष मनवाले मनुष्य लकड़ीके लट्ठेकी भांति निश्चल भावसे सोते हैं—और यही विचार डाक्टरोंका था। वह विश्वास कितना गलत था, यह बात निद्रा-सम्बन्धी उन प्रयोगोंसे प्रकट हो जाती है, जो अमेरिकाकी ओहियो स्टेट यूनिवर्सिटीका डाक्टर हेरी एम० जानसन उन्हीं दिनों गद्दे बनानेवाले सिम्मन्सके लिए कर रहा था। सिम्मन्सको आशा थी कि मैं मालूम कर लूंगा कि गहरी नींदके लिए किस प्रकारके गद्दे वस्तुतः तैयार किये जाते हैं।

डा० जानसनने एक खाटमें अपने आप लिखनेवाली एक मशीन लगा दी। उसका सम्बन्ध कमानियोंके साथ कर दिया गया, ताकि सोनेवाले रात्रिके विश्राममें जो भी चेष्टा करें, वह नक्शेमें दर्ज होती रहे। एक छिपा हुआ मोशन पिक्चर केमरा कमानियोंके साथ तारद्वारा जोड़ दिया गया। वह सोनेवालेकी बदलती हुई प्रत्येक स्थितिका फोटो लेता जाता था। छः वर्ष तक प्रयोग होते रहे। इससे डा० जानसनको अपने १६० रोगियोंके करवटें बदलनेके लगभग २५ लाख माप और निद्रामें धारणकी हुई उनकी विचित्र स्थितियोंके लगभग २० हजार फोटो प्राप्त हुए।

ठीक सोनेवाला, जैसा कि डा० जानसनका सन्देह था, कभी भी बहुत देर तक एक ही स्थितिमें नहीं सोता था। आठ घण्टेकी रातमें सामान्य सोनेवाला ३५ बार अपनी स्थिति बदलता था। वह एक दशामें शायद ही पांच-दस मिनटसे अधिक रहता था। नींदमें हिलने-डुलनेकी लालसाका नाम डा० जानसनने "गतिशीलता" रखा। उसने देखा कि यह सदा गहरी नींदमें ही होती है। कारण यह कि मनुष्य-देहके पुट्ठोंका प्रबन्ध इतना जटिल है कि सोनेवाला कदाचित ही सब पुट्ठोंको एकदम विश्राम दे सकता है। जब एक स्थितिमें पुट्ठे थक जाते हैं, तो सोनेवाला हिलता है और पुट्ठोंको ढीलाकर विश्राम करनेकी बारी देता है। सब पुट्ठे पूर्णरूपसे ढीले हों और साथ ही मूर्च्छाकी अवस्थाकी भांति सारा शरीर लचालचा हो, यह बात इतनी कम होती है कि डा० जानसनको इसका एक भी उदाहरण नहीं मिला।

सब सोनेवाले निर्दोष निद्राकी अवस्थामें एक समान नहीं हिलते; कुछ तो रातमें २० बार हिलते हैं और कुछ ६० बार भी। यदि सोनेवाला रातमें उसके लिए नियत बारियोंकी संख्यासे अधिक बार (पीड़ासे, उकसाहटसे, भूख या अधिक खानेसे, ज्वर या कब्जसे) हिले, तो उसे अपर्याप्त विश्राम मिलता है। परन्तु यदि वह बहुत कम बार (थकावट या जड़तासे या बिछौना एवं रजाई ठीक न होनेसे) हिले, तो वह केवल आंशिक विश्राम पाता है। सवेरे-उठनेपर उसका शरीर अकड़ा हुआ और क्लेशदायक होता है। बच्चोंकी नींद प्रचण्ड और बहुधा क्षुब्ध होती है। बुड्ढे बालकोंकी अपेक्षा अधिक शान्तिसे सोते हैं, यद्यपि उनकी नींद बीचमें बार-बार भङ्ग होती रहती है। हाथसे मेहनत-मजदूरी करनेवालोंकी नींद मस्तिष्क का काम करनेवालोंकी अपेक्षा कम बार भङ्ग होती है। स्त्रियोंकी निद्रा पुरुषोंकी अपेक्षा ३० प्रति शत कम भङ्ग होती है। डा० जानसनने यह भी मालूम किया कि तङ्ग खाटें सोनेवालेके हिलने-डुलनेमें बाधा डालती हैं। जो लोग एक ही

खाटपर इकट्ठे सोते हैं, वे एक दूसरेके हिलने-डुलनेमें रुकावट, डालते हैं। अच्छी नींदके लिए बिछौना न तो बहुत कोमल और न बहुत कड़ा ही होना चाहिये। इन्हीं खोजोंके आधारपर सिम्मन्सने सन् १९३१ में "शक्तिवर्धक विश्राम" नामका अन्दोलन जारी किया।

परन्तु इन प्रयोगोंसे अनेक ऐसे प्रश्नोंका उत्तर नहीं मिला, जो चिकित्सक वर्गको व्याकुल कर रहे थे। इसलिए डाक्टर ग्लैन्वल गिडिंग्स नामक जार्जियाके एक चिकित्सकने इन प्रयोगोंको उससे आगे जारी रखा, जहां डा० जानसनने उन्हें छोड़ा था। अमेरिकाके अन्तर्गत एटलाण्टाके निकटवर्ती पर्वतोंमें टुलुलाहा फाल्स इण्डस्ट्रियल स्कूलके स्थानपर वह बच्चोंकी निद्राका अध्ययन करने लगा। तबसे १२ लड़कियां और १२ लड़के दो नर्सोंकी देख-रेखमें सुलाये जाते। उनको १ लाख ७० हजार घण्टों तक सोते देखनेके उपरान्त डा० गिडिंग्स इस परिणामपर पहुंचा कि निद्रापर विविध स्वभावों और औषधियोंके प्रभावके सम्बन्धमें लोगोंके अधिकांश मत बिल्कुल अन्धविश्वास हैं। उसने देखा कि ये चीजें रातमें बच्चोंको अधिक अशान्त रखती हैं—गरम मौसिम, सोनेके पहले भारी पदार्थोंका खाना, विकारतन्त्र, संक्षोभ (जिनमें खिलौने और उत्तेजक कहानियां भी आ जाती हैं), शारीरिक पीड़ा। आगे लिखी बातोंका नींदमें हिलने-डुलनेपर बहुत थोड़ा प्रभाव होता है, बरन् होता ही नहीं—सोनेके पहले कड़ा व्यायाम, गरम जलसे स्नान, शीतल जलसे स्नान, रातको कड़ा अध्ययन, प्रायः सभी शीतल एवं उष्ण पेय। एक चीज बच्चोंको शान्त करती और उनके विश्रामको बढ़ाती प्रतीत होती है—वह है गरम दूध। डा० गिडिंग्सने, एक महामारीके दिनोंमें एक मनोरञ्जक आविष्कार किया। वह यह कि अपने बच्चोंकी बढ़ी हुई अशान्तिको देखकर वह कई दिन पहले बता सकता था कि रोगका आक्रमण होनेवाला है। किन्तु निद्राके मूलके बारेमें—इस शरीर शास्त्र-सम्बन्धी कारण एवं व्यापारके सम्बन्धमें—इन प्रयोगोंने कोई अन्तिम उत्तर नहीं दिया।

ऐसी गहरी नींद सोनेवाला क्वचित ही मिलता है, जो एक करवट थक जानेपर दूसरा करवट न बदल सके। इसके अतिरिक्त सोनेवाला प्रत्येक बार हिलते समय इस बातका ध्यान रखता है कि वह कहीं खाटसे नीचे न गिर पड़े। यदि उसे गरमी लगती है, तो वह ऊपरकी चादर उतारकर फेंक देता है; यदि उसे ठण्ड लगती है, तो वह लिहाफको खूब लपेट लेता है। परन्तु सांसके आने-जानेके लिए सदा लिहाफ और बिछौनेके बीच थोड़ा-सा मार्ग छोड़नेसे नहीं चूकता, अन्यथा उसका दम घुट जाय। यह सब सोच-समझके काम हैं। फिर यदि नींदमें न शारीरिक चेष्टा बन्द होती है और न मानसिक; तो फिर निद्रा और जागृतिमें अन्तर कहां रहा?

डा० गिडिंग्स कहता है—"देखनेवाला ठीक-ठीक नहीं कह सकता कि किसी निर्दिष्टसमयमें कोई व्यक्ति सोया हुआ है, या जागता।......वैज्ञानिकदृष्टिकोणसे "सोया हुआ" और "जागता" जैसी परिभाषाएं अपर्याप्त हैं।" इसका अर्थ यह है कि हो सकता है कि नींद, जिस रूपमें हम इसे समझे बैठे हैं, बिलकुल ही मौजूद न हो। शायद अपने इर्द-गिर्दके संसारसे, अपने मनोयोगके निकटतम अङ्गके सिवा, शेष सारे ध्यानको हटा लेने—वास्तविकतासे दूर उड़ जानेका नाम ही नींद हो, जिससे मन और शरीर, संसारका एक बार फिर सामना करनेके उद्देश्यसे, शक्ति सम्पादन करनेके लिए, स्वेच्छासे अपने व्यापारोंको बन्द कर देते हैं।"

अस्पतालसे और विश्वविद्यालयोंकी प्रयोग-शालाओंसे हमें पता लगता है कि जब आपको नींद आ जाती है, तो कुछ विशेष बातें होती हैं। आप अपेक्षाकृत अचेत अवस्थामें चले जाते हैं, आपकी आंखोंके ढेले ऊपर और नीचे लुढ़कते हैं, पुतलियां सिकुड़ जाती हैं, आपके प्रत्यावर्तित मांसल कम्पन, जैसा कि घुटनेका हिचकोला, घट जाते हैं अथवा सर्वथा बन्द हो जाते हैं। आप गलेके द्वारा छातीसे अधिक सांस लेते हैं, उदर द्वारा पेटसे कम। आपके रक्तका दबाव घट जाता है। आपका हृदय अधिक धीरेसे चलने लगता है। आपके शरीरके कुछ स्राव, जैसा कि मूत्र और नाककी गिल्टियोंसे श्लेष्मा, घट जाते हैं। आपके रक्तमें क्षार गुण कम हो जाता है। ये हैं वे अद्भुत घटनाएं, जो पेशियोंकी निर्माण-क्रियाके साथ होती हैं। यह एक प्रकारसे मनुष्य-देह रूपी तोपमें बारूद भरना है, ताकि वह दुबारा चल सके। परन्तु कोई भी अन्वेषण निश्चितरूपसे यह नहीं बता सके कि कौन-सी चीज नींदको लाती है, क्यों १६ घण्टे लगातार जागनेके बाद, मनुष्यको सोनेका आवेग होता है? थकान नींद नहीं लाती, क्योंकि बहुत अधिक थकानसे मनुष्य नींदमें बहुत अधिक हिलता-डुलता है।

इतनी बातपर बहुतसे विद्वान सहमत हैं कि नींद एक ऐसा आवेग है, जो स्वाभाविक मनुष्य-प्राणियोंको नियम-

पूर्वक आता है। हो सकता है कि यह एक प्रबल स्वभावसे बढ़कर और कुछ न हो, जिसके वर्षोंके अभ्याससे इन्द्रियोंका स्वभाव-सा हो गया है। दिनमें एक विशेष समयपर व्यक्ति नींदकी आशा करने लगता है, उसका रक्त बदल जाता है। आंसुओंकी ग्रन्थियां भी पानी निकालना बन्द कर देती हैं, उसकी आंखें गरम और सूखी हो जाती हैं। (इस प्रकार यह कहानी है कि जब आंसुओंकी ग्रन्थियां आपकी आंखोंको चिकनाना बन्द कर देती हैं, तो आप उनको बन्द करना चाहते हैं, आपको सम्भवतः नींद आ जाती है) हो सकता है कि पशुओं और जङ्गली मनुष्योंमें निद्राका यन्त्र सर्वथा भिन्न प्रकारसे कार्य करता हो। शायद उनको दिन या रातके विविध समयोंमें अनेक छोटी-छोटी ऊंघाई द्वारा, या भोजनके पश्चात् आनेवाले आवेगके रूपमें, विश्राम मिलता हो। परन्तु अधिकांश लोगोंकी अवस्थामें निद्रा एक नियमित स्वभावके रूपमें कार्य करती है। यदि इसकी नियमपरतामें बहुत अधिक बार हस्तक्षेप किया जाय, तो इससे संभ्रम एवं निद्राभाव होनेका भय रहता है।

मनुष्यका काम नींदके बिना नहीं चल सकता। जागनेका लम्बेसे लम्बा प्रामाणिक समय, जो प्रयोगशालामें रखकर मालूम किया गया है, २३१ घण्टे है।

ये पूरे १० दिन भी नहीं। समाचार-पत्रोंमें इससे भी लम्बे काल, वरन् बिलकुल ही न सोनेकी भी कई कहानियां छपी हैं। परन्तु उनमेंसे किसीको भी सत्य प्रमाणित नहीं किया गया। किन्तु यदि कुत्तेको न सोने दिया जाय, तो वह ग्लानिसे मर जाता है।

जो लोग सच्चे हृदयसे विश्वास करते हैं कि हम सोये नहीं, सामान्यतः उनके विषयमें सिद्ध किया जा सकता है कि उन्होंने न जानते हुए भी देर तक ऊंघ या झपकी ले ली थी। जांन वेजली, एडिसन और बोनापार्ट-जैसे आश्चर्यजनक जागनेवाले भी, जो रातको थोड़ेसे घण्टे सो कर ही सन्तुष्ट हो जाते थे, दिनमें अवसर पा कर, कई बार ऊंघ लिया करते थे। वेजली घोड़ेकी पीठ पर, एडिसन अपनी प्रयोगशालामें सो जाता था और बोनापार्ट लड़ाइयोंके बीच झपकी ले लेता था। ऐसे लोग, पशुओंकी भांति, हल्की नींद सोते हैं, परन्तु उनकी ऊंघका सारा जोड़ स्वाभाविक आठ घण्टेके विश्रामसे केवल एक-दो घण्टे ही कम रहता है।

नींद न आनेके कारण अनेक रोग हो सकते हैं। परन्तु यह अपने-आप कोई रोग कदापि नहीं। हो सकता है कि पीड़ा नींद न आने दे, या विकारतन्त्र-संक्षोभ उसका आना कठिन कर दे। जिन लोगोंको नींद नहीं आती, उनमेंसे अधिकांशका रोग निद्राभावका भ्रम होता है। उनके विश्राममें रोग या झंझट या अनियमसे बाधा पड़ती है और निद्राभावका भय, निद्राभावको उत्पन्न करनेवाली अवस्थाके दूर हो जानेके बहुत देर बाद तक भी, उनके विश्राममें गड़बड़ करता रहता है।

देर तक जागते रहनेका, जब तक यह जागरण इतना लम्बा न हो कि उसका परिणाम अपच और मृत्यु हो जाय, शरीर पर कोई स्थायी रूपसे हानिकारक प्रभाव नहीं होता। जागते रहनेके बाद जब आप अन्तको लेटते हैं, तो अधिक देरतक सोये रहनेसे आप खोयी हुई नींदको पूरा नहीं कर सकते। तीन-चार दिन तक विश्राम न लेनेके बाद भी एक रातकी नींद आपको उतना ही तरोताजा कर देगी, जितना कि आप हो सकते हैं। आपकी निपुणता पीछेसे शायद दो सप्ताह तक कुछ कम रहे; इससे अधिक काल तक नहीं, और अधिक नींद उस कमीको पूरा नहीं करेगी। आपकी सबसे गहरी और सबसे अधिक तरोताजा करनेवाली नींद आपके लेटनेके बाद दो घण्टेके भीतर ही आ जाती है। उस समयसे लेकर आपके सवेरे उठने तक, जितनी देर आप खाटपर लेटे रहते हैं, आपको मिलने वाले विश्रामकी मात्रा धीरे-धीरे कम होती जाती है। नींद पानीके तालकी तरह तरल है। मन इसमें प्रायः सतहके निकट, डूबता और उठता है, बहता चला जाता और मंड़राता है।

हालकी खोजने हमें बहुत कुछ सिखलाया है। हो सकता है कि समय पाकर मनुष्य-जातिको एक नवीन प्रकारकी नींद मिल सके। यह शर्तबन्द नींद होगी। इसे वैज्ञानिक रीतिसे इस प्रकार काबूमें रखा जायेगा कि यह थोड़ेसे समयमें गहरेसे गहरा विश्राम देगी।

रूसकी बलिवेदीपर

श्री मदनमोहन मिश्र "विशारद"

जारशाही जुल्मोंसे क्रान्तिकी जो चिनगारियां फूटीं, वही आजका रूस है ! किन्तु इन चिनगारियोंको जगानेके लिए रूस-निवासियोंने जो कुर्बानियां कीं, जननी-जन्मभूमिको अत्याचारोंसे उन्मुक्त करनेके लिए जैसी-जैसी हृदय प्रकम्पित कर देनेवाली अमानुषिक यातनाएं हंसते-हंसते भोगीं, वह आजके रूसी इतिहासका सुनहला पृष्ठ है। साइबेरियाकी बर्फीली धरतीपर जाने कितने देशके दीवानोंने अपने प्राणोंकी आहुतियां दीं, जाने कितने अबोध बच्चे असहाय माता-पिताको बिलखते छोड़कर देशकी आजादीके लिए शहीद बन गये, जाने कितनी सुन्दरियोंने अपना सौन्दर्य तक मातृभूकी सेवामें हंसते-हंसते अर्पित कर दिया। सूलियोंके आलिङ्गनको फूल, निर्वासन और जेलकी यंत्रणाओंको वरदान समझनेवाले रूसी देशभक्तोंकी संख्या एक-दो नहीं, सौ-दो-सौ नहीं—हजारोंकी तादादमें गिनी जा सकती है। आजका रूस जो अजेय बना हुआ है—जिसकी अनुपम-शक्तिको देखकर सारा संसार चकित है—जिसकी आजादीकी गाड़ियोंको तोड़नेके लिए हिटलर-जैसी महान शक्तिके बाजुओंमें बल नहीं है—इन सबका कारण क्या है ? केवल देशप्रेमकी मस्ती, जो रूसियोंकी धमनियोंमें वहांके शहीदोंने अपने जीवनके बदले खरीदकर उन्हें थातीके रूपमें सौंपी है। आज वे अमर शहीद नहीं हैं, लेकिन उनकी वीर आत्मायें, उनके त्याग एवम् देशप्रेमकी गाथाएं सदा रूसकी सन्तानोंको आजादीके लिए सर्वस्व बलिदान कर देनेका अमर पाठ पढ़ा रही हैं। और इसीलिए आज रूसका बच्चा-बच्चा प्राण-पणसे अपनी मातृभूकी स्वतन्त्रताके लिए हंस-हंसकर, दुश्मनकी बर्बर शक्तिको ठुकराकर अपने पवित्र रक्तसे रूसी स्वतन्त्रताकी रक्षामें संलग्न है।

अस्तु—यहां रूसी राजक्रान्तिमें कुर्बान होनेवाले कुछ ऐसे ही देश-भक्त शहीदोंकी कहानी, पाठकोंके लिए मनोरञ्जक होगी। पाठक देखें कि वे वीर किस-किस तरहकी यातनाओंको भोगकर, अपने त्यागके कैसे-कैसे ज्वलन्त उदाहरण रखकर, कैसी-कैसी परिस्थितियोंमें होकर गुजरे हैं और अन्तमें अपना बलिदान देकर किस प्रकार अमर हुए हैं।

स्टेंकारेजिन

रूसका प्रमुख त्यागी एवम् वीर स्टेंकारेजिनका जन्म एक कज्जाक कुटुम्बमें हुआ था। आरम्भमें वह अपना जीवन धार्मिक बातोंमें व्यतीत करते थे, राजनीतिसे उनका कोई सम्बन्ध न था, किन्तु सहसा रूसकी दास-प्रथासे दुखी होकर वह राजनीतिक क्षेत्रमें अग्रणी हुए। दृढ़तापूर्वक जारकी दुर्धर्ष शक्तिका सामना करके उसे परास्त किया, किन्तु अन्तमें अपने अनुयायियोंकी कृतघ्नतासे सन् १६७१ के अप्रेल माहमें वह पकड़कर मास्को भेज दिये गये और वहांपर जीवित अवस्थामें ही, उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गके टुकड़े-टुकड़े कर दिये गये। यही नहीं, उनके अन्य साथियोंकी भी यही गति हुई।

उनके देश-प्रेम एवं दृढ़ताकी एक कहानी—एक दिन वह बोलगा नदीमें फारसकी एक राजकुमारी (जो उसे प्राणोंसे अधिक प्रिय थी) के साथ जल-विहार कर रहे थे। उनके कुछ कज्जाक अनुयायियोंने उनपर आक्षेप करते हुए कहा—रेजिन देशकी स्वतन्त्रतासे अधिक राजकुमारीको चाहने लगे हैं। यह आक्षेप सुनकर रेजिन मुस्कराये। राजकुमारीको उन्होंने अपने शक्तिशाली हाथोंसे सरसे ऊपर उठाकर कहा—बोलगे ! तूने समय-समयपर मुझे असंख्य धन-राशिका दान दिया है, अस्तु आज मैं तुझे अपनी सबसे प्यारी और अमूल्य वस्तु भेंट करता हूं। इतना कहकर उन्होंने राजकुमारीको बोलगा नदीके अथाह जल-राशिमें फेंक दिया। उनके अनुयायी भौचक्के-से रहकर आश्चर्य-चकित हो गये। उनमेंसे बहुतसे बोलगामें कूदे, किन्तु व्यर्थ ! रेजिनने वीरतापूर्वक कहा—खबरदार, यदि भूलकर भी किसीने राजकुमारीके अङ्गोंका स्पर्श किया, तो उसकी भलाई नहीं। अनुयायी उनके पैरोंपर गिर पड़े।

मुइश्किन

मातृ-भूमिकी बलिवेदीपर प्राण गंवानेवाले वीर हियोलाइट मुइश्किनका जन्म एक दास-परिवारमें रूसमें हुआ था। रूसके फौजी नियमके अनुसार मुइश्किनको भी बचपनसे ही फौजमें जबरदस्ती भर्ती कर लिया गया। मास्कोके फौजी स्कूलमें आनेपर वहांके एक जनरलके

अर्दलीके साथ-साथ उसे सेक्रेटरीका भी काम करना पड़ता था। सौभाग्यसे एक बार वह जार अलेक्जेण्डरसे मिला। जार अलेक्जेण्डर द्वितीय उसकी प्रतिभासे इतने प्रभावित हुए कि उसे राज्य-स्टेनोग्राफरके पदपर नियुक्त कर दिया। इस पदपर काम करके उसने कुछ रकम एकत्रित की और स्वतन्त्र व्यवसायके विचारसे मास्कोमें एक छापाखाना खोल दिया। कुछ दिनोंके बाद वह अपने छापेखानेसे क्रान्तिकारी साहित्यका प्रकाशन करने लगा। यह साहित्य गुप्तरूपसे चतुर्दिक प्रकाशित होने लगा। अन्ततोगत्वा पुलिसको इसका पता चल गया और वह अपने अन्य मित्रोंके गिरफ्तार हो जाने तथा सारी सम्पत्ति जब्त हो जानेपर भी हताश नहीं हुआ, बस सङ्गठन कार्यमें संलग्न हो गया। सङ्गठन हो जानेपर नेतृत्वके लिए उसने निकलसको चुना, किन्तु वह त्रिलुइस्कके कारागृहमें बन्द थे, अस्तु उसने एक जाली आज्ञापत्र तैयार करके अपनी नौकरीसे इस्तीफा दे दिया और निकलसको छुड़ानेके लिए चल पड़ा। उसका यह प्रयत्न सफल न हुआ और वह कई दिनों तक पुलिसके भयसे भूख-प्याससे तड़पता हुआ क्लान्त और मृतप्राय अवस्थामें पकड़कर इरकूत्स्ककी जेलमें बन्द कर दिया गया। यहांपर उसे असहनीय यातनायें भुगतनी पड़ीं। तीन वर्ष तक मुकदमा चलता रहा। अन्तमें उसे दस वर्षकी सख्त सजा दी गयी और खारकोवके जेलखानेमें भेज दिया गया। बादमें उसे साइबेरियाके कारा प्रान्तके कठोर कारागृहमें भेज दिया गया। इस कारावाससे भी वह अपने अन्य सात साथियोंके साथ भाग निकला। सारे रूसमें तहलका मच गया। अन्तमें कारासे दो हजार मीलकी दूरपर वह फिरसे गिरफ्तार कर लिया गया और उसे सदाके लिए श्लुस्सेलबर्गकी जेलमें बन्द कर दिया गया।

प्रिन्स खिलकौफ

प्रिन्स क्रोपाटकीनका नाम बहुतोंने सुना होगा और प्रिन्सके 'रोटीका सवाल' नामक पुस्तकका अध्ययन भी किया होगा, किन्तु रूसी सरकार तथा धर्मगुरुओं, पादड़ियोंकी आंखोंमें कांटोंकी तरह चुभनेवाले, त्यागमूर्ति, साम्यवादी जमींदार, दयालु-हृदय प्रिन्स इमित्री एलकजण्ड्रोविच खिलकौफका नाम बहुत कम लोग जानते हैं। इनका जन्म रूसके एक धनी परिवारमें हुआ था। फौजी-शिक्षा समाप्त कर यह फौजमें भर्ती हुए। १८७७ में रूस तथा टर्कीके बीच जो युद्ध हुआ था, उसमें ये जाना चाहते थे। स्वीकृति न मिली। फलतः इन्होंने अपनी बदली कज्ज़ाकोंकी रेजीमेण्टमें करा ली और उसीका नेतृत्व ग्रहण करके ये काकेससकी रणभूमिमें गये। कारण वे मातृ-भूके लिए सर्वस्व न्यौछावर करनेके लिए तैयार थे, किन्तु युद्धमें जाकर और फौजके अफसरोंकी स्वार्थपरताका अनुभव कर इनके हृदयमें घृणा उत्पन्न हो गयी। अन्ततोगत्वा वह फौजकी नौकरीको घृणाकी दृष्टिसे देखने लगे तथा मातृ-भूके नामपर होनेवाले उस युद्धके प्रबल विरोधी हो गये। फलतः फौजी कानूनका विरोध करते हुए इन्होंने १८८० में फौजकी नौकरीसे इस्तीफा दे दिया और अपने गांव सेट पालटभामें लौट आये तथा कृषि एवं कृषकोंकी दशा सुधार करनेमें व्यस्त हो गये। इन्होंने अपनी सारी जमीन अपने किसानोंके हाथ केवल उतने ही मूल्यपर दे दी, जितना कि वे मालगुजारीके रूपमें देते थे। अपने लिए उन्होंने एक पर्णकुटी बना ली तथा वहांकी जमीनपर कृषिकार्य करके अपना जीवन-निर्वाह करने लगे। वे कृषकोंकी उन्नतिके लिए नवीन योजनाएं बनाकर कार्यरूपमें परिणत करने लगे। रूसी सरकारको यह जागृति पसन्द न आयी और प्रिन्स खिलकौफपर आपत्तिके बादल मंडराने लगे। वे आपत्तियोंका सामना करते हुए अन्तमें विजयी हुए।

ब्रेस्को भस्काया

रशियन क्रान्तिकारियोंकी 'बबूश्का' (परम प्रिय दादी) कैथराइन ब्रेस्को-भस्कायाका जन्म एक जमींदार-परिवारमें हुआ था। शिक्षा-दीक्षाका उत्तम प्रबन्ध था। फलतः युवावस्थाको प्राप्त करते-करते इसने वाल्टेयर, रूसो, डिडरो आदिकी पुस्तकें पढ़ डाली थीं। सर्वप्रथम इसने दासोंको मुक्त करनेका बीड़ा उठाया। तत्पश्चात् कृषकोंमें उन्नतिके भाव भरे। फलतः आन्दोलनने जोर पकड़ा। इसने अपने पतिसे आन्दोलनमें भाग लेनेकी प्रार्थना की और पूछा कि वह मृत्युदण्ड अथवा देश-निर्वासनके लिए तैयार हैं या नहीं! पति महोदयने उत्तर दिया—'नहीं।' वह इस उत्तरसे कुछ भी विचलित न हुई और अपनी आत्माकी आज्ञा शिरोधार्य करके सदाके लिये अपने पतिसे बिदा ले ली। उसके हृदयमें देश-प्रेमकी लगन लग चुकी थी, अस्तु वह अपने पथसे कैसे विचलित हो?

कैथराइन ब्रेस्को भस्कायाने कृषकोंके बीच कार्य करनेके हेतु सुन्दर और तड़क-भड़कके पोशाकोंको तिलाञ्जलि दे दी और उन्हींके समान चिथड़े लपेटकर समय बिताने लगी। यही नहीं, वरन् अपने चरित्रकी रक्षा करनेके लिए और पुलिसके जघन्य अत्याचारों तथा बलात्कारोंसे बचनेके

लिए तेजाब द्वारा अपने सुन्दर, आकर्षक तथा कोमल स्वरूपको भी विकृत कर दिया। उसका यह त्याग कितना अनुपम था—पाठक अनुमान कर सकते हैं। उसने धन-दौलत, ऐश-आराम, गार्हस्थ्य जीवन, अनुपम सौन्दर्य तथा अपने प्राणोंसे भी प्यारे पतिके छलकी बलि देकर कृषकोंका उत्थान और रूसकी स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके लिए जो बीड़ा उठाया था, सर्वथा स्तुत्य है। फलस्वरूप कुछ ही दिनोंमें रूसके ३६ प्रान्तोंके अन्तर्गत आन्दोलनकी अग्नि धधक उठी। रूसकी पुलिस कैथराइनके लिए पागल हो उठी। अन्तमें एक दिन वह पुलिसके शिकञ्जेमें फंस गयी और फंस गयी सदाके लिए। जनता आह भरकर रह गयी, किन्तु उसे न पा सकी।

कुमारी विरा फिगनर

रूसके श्लुस्लेलबर्ग नामक दुर्गकी गाथा बहुत प्रचलित है। यह एक भीषण कारागृह था, जिसमें एक बार जा कर बिरला ही कैदी जीता-जागता वापस लौटता था। इस कठोर कारागृहमें दस वर्ष तक बन्द रहनेके बाद जब विरा फिगनर छूटी, तो लोगोंको विश्वास न हुआ। विरा फिगनरका जन्म रूसके एक कुलीन तथा धनी परिवारमें हुआ था। उसके पूर्वज फौजके प्रसिद्ध पदोंपर रह चुके थे।

अपनी बहनके साथ जुरिचमें शिक्षा लाभ करती हुई वह क्रान्तिकारियोंके वाद-विवादको ध्यानपूर्वक सुनती तथा अपनी मातृ-भूमिकी दुरवस्थापर गम्भीरतापूर्वक विचार करती थी। किन्तु उस समय वह निरी बच्ची थी। होश संभालते ही वह सङ्गठनके कार्यमें अग्रणी हुई। उसकी सङ्गठन-शक्ति अलौकिक थी, स्वभाव मृदुल और वह मृदु-भाषी थी। फलतः मित्रोंके ऊपर लोकप्रियता प्राप्त करनेके साथ-साथ शत्रुओंपर भी वह विजय प्राप्त कर लेती थी। जब समस्त देश-सेवकोंको बन्दी बनाकर फांसीपर लटका दिया गया था, उस समय वह खारकोवमें छिपी हुई आत्म-रक्षा कर रही थी। पुलिस छायाकी भांति फिगनरके पीछे लगी हुई थी। अन्तमें सन् १८८४ में वह कैद कर ली गयी और फांसीके बजाय उसे उपरोक्त जेल-खानेमें कैद कर दिया गया। वहांसे छुटकारा प्राप्त करनेपर भी उसे रूसमें रहनेकी आज्ञा नहीं दी गयी, वरन उसे अर्कटिक-प्रदेशके एक गांवमें भेज दिया गया। जेल और निर्वासनकी परिस्थितिमें वह कविताएं लिखती थी। वे कविताएं अत्यन्त कारुणिक एवम् व्यथा-पूर्ण होती थीं। रूसी सरकारने फिगनरको हर तरहका प्रलोभन देना चाहा, किन्तु वह अपने मार्गसे च्युत न हुई।

सोकी पेरोभस्काया

सोकी पेरोभस्कायाका जन्म सेण्ट पीटर्सबर्गके एक उच्च कुलीन जमीन्दार वंशमें सन् १८९३ में हुआ था। सोकीके पितामह शिक्षा-विभागके मन्त्री और पिता सेण्ट पीटर्सबर्गके गवर्नर जेनरल थे। सोकीका झुकाव आरम्भसे ही क्रान्तिकारी दलकी ओर हो गया था और कुछ दिनोंमें वह इस आन्दोलनकी प्रमुख कार्य-कर्त्री बन गयी। १८७९ में मास्कोमें जो ट्रेन उलटनेकी चेष्टा की गयी थी, उसमें सोकीका सबसे ज्यादा हाथ था। इस प्रयत्नके विफल होनेपर इसने ज़ार अलेक्जण्डर द्वितीयकी हत्या करनेका बीड़ा उठाया और अपनी इच्छाकी पूर्त्ति की। ज़ारकी हत्यासे सारे रूसमें आतङ्क फैल गया और गिरफ्तारीकी धूम मच गयी। सेण्टपीटर्सबर्गमें दो दिनके भीतर लगभग ८ सौ गिरफ्तारियां हुईं। सोकी फिर भी न पकड़ी जा सकी। वह सरे आम बाजारमें घूमती थी। अन्तमें एक दूध बेचनेवाली औरतने छल पूर्वक उसे गिरफ्तार करवा दिया। इस सम्बन्धमें गिरफ्तार किये गये सभी व्यक्तियोंको फांसीका दण्ड दिया गया। सोकी भी २७ वर्षकी आयुमें ही हंसते-हंसते फांसीके तख्तेपर झूल गयी।

प्रो० गरशुनी

ग्रेगरी ऐन्ड्रीविच गरशुनीकी गणना ज़ारशाहीके प्रबल शत्रुओंके रूपमें की जाती थी। वे आतङ्कवादियोंके प्रमुख नेता थे। सन् १९०४ में वे गिरफ्तार कर लिये गये और उन्हें आजन्म कड़ी कैदकी सजा सुनायी गयी। कुछ दिनों तक श्लुस्लेलबर्ग कारागारकी कठिन यातनाओंको भोगनेके बाद वे और भी सुरक्षित एवम् पीड़ित करनेवाले पूर्वी साइबेरियाके अकटुई कारागृहमें बन्द कर दिये गये। वे सदा वहांसे निकल भागनेके उपायमें लगे रहते थे। अन्तमें अपने साथियोंकी मददसे वे गोभियोंके बक्सके साथ अनेकानेक कठिनाइयोंको झेलते हुए, रबड़की नालियोंसे सांस लेते हुए—सुरङ्गकी राहसे जेलमुक्त होकर जापान पहुंच गये। इनके भागनेका समाचार बिजलीकी तरह तमाम रूसमें फैल गया। रूसके अधिकारी वर्ग इनकी गिरफ्तारीके लिए तन-मन-धनसे व्यस्त हो गया, किन्तु सब व्यर्थ था।

पेटस्ल और रिलीफ

पेस्टल रूसी फौजके कर्नल और सम्पन्न परिवारके थे, किन्तु रिलीफ था एक सधारण कवि, पर प्रभावमें पेस्टलसे कम न था। यदि पेस्टलको रूसी जनता उसके पद एवम् मर्यादाके कारण आदरकी दृष्टिसे देखती थी, तो रिलीफको

उसकी कड़ाने सर्वसाधारणके हृदयका शिरोमणि बना दिया था। दोनोंका उद्देश्य एक था, पर कार्यप्रणाली भिन्न।

समयका प्रवाह अपनी गतिसे चल पड़ा। १४ दिसम्बर सन् १८२५ का वह खूनी दिन आया, जिस दिन तोपोंकी गरज और खूनी छींटोंसे रूसकी भूमि रक्तरञ्जित हो गयी। पेस्टल और रिलीफ तथा उनके अनुयायी शाही शक्तिसे पराजित हो कर गिरफ्तार कर लिये गये। ये दोनों हाई-कोर्टमें पेश किये गये। रिलीफने जजसे कहाः— "२६ दिसम्बर तककी समस्त घटनाओंकी जिम्मेवारी मुझपर है, अतएव मुझे मृत्यु-दण्ड मिलना चाहिये, न कि औरोंको; क्योंकि वे सब निरपराध हैं।"

हाई कोर्टके जज वास्तविकतासे अभिज्ञ होकर भी अनभिज्ञ बन गये और इस मामलेके निर्णयका भार जार-निकोलसपर छोड़ दिया। जारने पेस्टल और रिलीफ आदिको मृत्यु-दण्ड तथा अन्य लोगोंको देश निर्वासनका दण्ड दिया। ये निर्वासित प्राणी साइबेरियाकी खानोंमें भेज दिये गये।

हर्जेन

अलेकजेण्डर हर्जेनका जन्म मास्कोके एक धनी जमीन्दार परिवारमें हुआ था। विद्यार्थी जीवनसे ही रूसकी सरकार-की नजर उनके विरुद्ध थी, फलतः विद्यार्थी जीवनमें ही वे मास्कोसे निर्वासित कर दिये गये। वे अपने सिद्धान्तोंका प्रचार करते हुए एक देशसे दूसरे देशमें भ्रमण करने लगे। लन्दनमें तो उन्होंने गैरीवाल्डी, मेजिनी और सिनी तथा सफी आदिसे गाढ़ी मित्रता कर ली। यही नहीं, वरन विक्टर ह्यूगो, लुईब्लान्क और कार्लाइल आदि प्रमुख व्यक्तियोंसे भी इनकी घनिष्ट मैत्री हो गयी। हर्जेन रशियन, जर्मन, फ्रेंच और इंगलिश भाषाओंमें समान रूपसे लिखा करते थे। उनके लेखोंका प्रभाव रूस तथा यूरोप की जनतापर खूब पड़ा। हर्जेनकी सम्मतिमें रूसको धनिकोंके हाथोंसे बचानेका एक मात्र उपाय यही था कि वहां सामूहिक ढङ्गपर कृषि-उत्पादन किया जाय। रूसमें पाश्चात्य स्वतन्त्रताके बीज बोनेका श्रेय हर्जेनको ही था। २९ जनवरी १८७० को पेरिस नगरमें इनकी मृत्यु हो गयी और इनकी मृत्युके बाद रूसी समाजमें 'निहिलिज्मका' जन्म हुआ। निहिलिस्ट युवक और युवतियोंकी अनेकानेक कहानियां रूसमें आज भी प्रचलित हैं। निहिलिस्ट युवतियोंमें सोनिया और कुमारी विरा फिगनर आदिके नाम प्रसिद्ध हैं। युवकोंमें प्रोफेसर पीटर लेवरोविक लैवरफ़ू और लियोड्यूस्क आदि-के नाम उल्लेखनीय हैं।

लीयो ड्यूस्क

लियो ड्यूस्कका जन्म रूसके कीफ नामक स्थानमें सन् १८५५ में हुआ। इनके देश-प्रेम और रूसी पुलिसकी आंखोंमें धूल झोंकनेकी कहानियां आज भी बड़े चावसे रूसके घर-घरमें कही और सुनी जाती हैं। कई बार ये जेलोंसे, पुलिसकी निगरानीसे और सिपाहियोंके घेरेसे बाहर निकल आये और वेश तथा नाम बदलकर अपने सिद्धान्तका प्रचार करते हुए कार्य करते रहे। यही नहीं, वरन् गुप्तरूपसे छद्मवेश धारणकर ये विदेशोंमें भी कार्य करते, सङ्गठन करते तथा अपना भावी-प्रोग्राम निश्चित करते रहते थे। सन् १८८४ में वह स्विटजरलैण्डसे फीबर्ग पहुंचे और वहींपर जर्मन पुलिसने उन्हें गिरफ्तार करके रूसके हवाले कर दिया। रूसी पुलिस तो बहुत दिनोंसे इनकी खोजमें थी ही, फलतः इन्हें पिटर और केपालके कारावासका दण्ड भुगतना पड़ा। यहांपर इन्हें भीषण यातनाएं दी गयीं। फलतः इन्होंने अनशन आरम्भ कर दिया। रूसी सरकारने जर्मन-सरकारके शर्तनामेके अनुसार ड्यूस्कके मामलेकी सुनवायी कोर्ट मार्शलके सामने की और बिना बयान लिये हुए इन्हें १३ वर्ष ४ माहके दण्डनीय निर्वासनकी सख्त सजा सुना दी। फलतः इन्हें साइबेरिया काराके दण्डनीय निर्वासनमें भेज दिया गया। यहांपर न तो कैदियोंको पेट-भर भोजन दिया जाता, न सोनेके लिए समुचित स्थान ही और न मां-बाप, स्त्री-बच्चोंसे ही मिलने दिया जाता, वरन् वे इन सबोंसे कोसों दूर रखे जाते थे। ड्यूस्कने २२ माहमें ८ हजार मील पैदल चलकर इस निर्वासनकी यात्रा पूरी की थी। यात्रामें हर तरहकी यातनाओंको सहन करना इस बातका द्योतक है कि मातृ-भूमिके प्रति ड्यूस्कके हृदयमें कितना अधिक स्थान था। काराके दण्डनीय अधिवासमें उनकी ऐसे बहुतसे राजनीतिक अपराधियोंसे, जिनमें स्त्री-पुरुष दोनों थे, भेंट हुई, जिनकी दृढ़ता और आत्म-त्यागकी कथाएं स्वर्णाक्षरोंमें अङ्कित की जाने योग्य हैं। रूसी वाटिकाके वे श्रेष्ठ नहीं, श्रेष्ठतम पुष्पोंमेंसे थे, जिनकी विद्वत्ता, सच्चरित्रता, योग्यता, उदारता एवं त्यागकी कहानियां पढ़कर आंखोंसे सावन-भादों बरसने लगता है। साइबेरियाकी यन्त्रणाओंसे घबड़ाकर बहुतसे पागल हो गये, बहुतोंने आत्म-हत्या कर ली और बहुतोंने अत्याचारियोंके सम्मुख आत्म-बलिदान करके रूसको जारशाहीके पञ्जोंसे मुक्त करा कर ही दम लिया।

'विश्वमित्र'-सञ्चालक श्री मूलचन्द्रजीका अभिनन्दन

गत २२ अप्रैल शनिवारको, भारत सरकारके भूतपूर्व वाणिज्य सदस्य और बङ्गालके प्रभावशाली उद्योगपति श्री नलिनीरञ्जन सरकारकी अध्यक्षतामें लगभग पांच दर्जन सार्वजनिक संस्थाओंकी ओरसे 'विश्वमित्र'-सञ्चालक श्री मूलचन्द्रजी अग्रवालका सार्वजनिक अभिनन्दन स्थानीय श्री विशुद्धानन्द विद्यालय-हालमें किया गया। इस अवसर-पर अनेक गण्यमान्य व्यवसायी, साहित्यसेवी, राष्ट्रकर्मी और सुकवियोंके सिवा महिलाएं भी बहुत बड़ी संख्यामें उपस्थित थीं। मारवाड़ी बालिका विद्यालयकी छात्राओंने 'वन्देमातरम्' गान गाया। श्री बसन्तलालजी मुरारकाके प्रस्तावपर श्री नलिनी बाबूने सभापतिका आसन ग्रहण किया और उन्हें पुष्पमाला पहनायी गयी। इसके उपरान्त नगरके सुप्रसिद्ध व्यवसायी सेठ मंगतूरामजी जयपुरियाने संस्थाओंकी ओरसे निम्नलिखित मानपत्र पढ़ा :—

श्रीयुक्त बाबू मूलचन्द्रजी अग्रवाल

सञ्चालक—'विश्वमित्र' कलकत्ता, दिल्ली और बम्बई

बन्धुवर,

विश्वव्यापी युद्धकी ताण्डव-लीलाके इस दारुण कालमें जब चारों ओर खण्ड-प्रलयका दृश्य उपस्थित हो रहा है और अधिकांश भूभाग ध्वन्स-विध्वन्सके रोमांचकारी स्पन्दनोंसे कांप उठा है, भारतके प्राचीनतम हिन्दी दैनिक "विश्वमित्र" की रजत-जयन्तीके शुभ अवसरपर वर्तमान सङ्कट और अन्धकारमें भी हमारा हृदय आह्लाद एवं आशाकी रश्मियोंसे पूर्ण हो उठता है और हम आपको, अपने निकटतम साथी और सहायकके रूपमें अपनी शुभेच्छाएं सप्रेम समर्पित करते हैं। "विश्वमित्र"के जन्मके बाद विश्व-युद्धका अन्त हुआ था और आज दूसरे महासमरके अवसरपर उपस्थित "रजत-जयन्ती" भी उसी परम्पराका पालन करेगी, ऐसी आशा है।

विगत पचीस वर्षोंमें मानव-इतिहासने अनेक परिवर्तन देखे हैं। इस अवधिमें भारतको अनेक अग्नि-परीक्षाओंमें तपना पड़ा है। हमारी उन अग्नि-परीक्षाओंके प्रत्येक अवसरपर, आपने, अपनी स्वाभाविक कर्तव्यनिष्ठाके द्वारा हमारा साथ दिया है। निराशाकी अन्धकारमय घड़ियोंमें आपने हमें प्रकाशकी अमर-रेखाकी ओर सङ्केत किया है, जीवन और जागरणका सदैव अमर सन्देश दिया है।

गत छब्बीस वर्षोंमें आपने हमारे सामने देश-प्रेम, साहित्यानुराग तथा पत्रकार-कलाका जो उल्लेखनीय दृष्टान्त 'विश्वमित्र' द्वारा रखा है, वह समस्त देश—भारतके लिए एवं विशेषकर हिन्दी साहित्यके लिए, एक ज्वलन्त दृष्टान्त है। बङ्गाल-जैसे अहिन्दी प्रान्तमें सीमित साधनोंके साथ युद्ध करते हुए आपने एक हिन्दी दैनिक द्वारा सफल पत्रकार-कलाका जो दृष्टान्त उपस्थित किया है, उसका दूसरा उदाहरण हिन्दी-संसारमें नहीं है। आज आपके घोर परिश्रम, महान अध्यवसाय और उच्च साहसका ही फल है कि एक छोटा-सा पौधा अनेक तूफानोंका सामना करते हुए बढ़ा और इसकी शाखाएं भारतके तीन कोनोंमें फैल गयी हैं। देशके प्रमुख तीन नगरोंसे तीन दैनिक संस्करण प्रकाशित करनेका गौरव आज ब्रिटिश साम्राज्यमें हिन्दीको ही अपने पत्र 'विश्वमित्र' द्वारा प्राप्त है।

पिछले छब्बीस वर्षोंकी अवधि हमारे आत्म-निर्माण और अग्नि-परीक्षाकी अवधि रही है। आपकी सेवाएं उस अवधिके घटना-समूहका एक विशिष्ट और महत्वपूर्ण अङ्ग है। देशमें इसी अवधिमें अभूतपूर्व राजनीतिक परिवर्तन हुए और राष्ट्रीय संग्रामकी हलचलोंमें भी आपकी आंखें सदैव भारतकी महान सर्वोपरि संस्था राष्ट्रीय महासभाकी ओर रहीं और आपने 'विश्वमित्र' द्वारा निरन्तर देश-सेवाका महान पाठ पढ़ाते हुए अपने हजारों पाठकोंको तिरङ्गे झण्डेके नीचे सङ्गठित किया। विभिन्न मत एवं दलोंकी चोटोंकी परवाह न कर सदैव राष्ट्रीय महासभाकी आज्ञाको ही शिरोधार्य किया और 'विश्वमित्र'को भी राजनीतिक सिद्धान्तोंमें अडिग और अचल रखा, जिससे हजारों 'विश्वमित्र'-प्रेमियोंको भी नैतिक बल प्राप्त हुआ। आपकी यह महान सेवा पत्रकार-जगत एवं राष्ट्रीय संग्रामके इतिहासमें चिरस्मरणीय रहेगी।

समाज-सेवाके पथमें आपने जिस निर्भीकतासे हमारा पथ-प्रदर्शन किया है, वह स्वयं अपना दृष्टान्त है। दैनिक, साप्ताहिक एवं मासिक 'विश्वमित्र' द्वारा आपने निरन्तर हमारी सामाजिक त्रुटियों, अपूर्णताओं और विशृङ्खलताओंको प्रकाशमें लाकर हमारे सामने सुधारका रचनात्मक कार्य उपस्थित किया है और मान-अपमानसे निस्पृह और निर्विकार रह संयम और दृढ़तासे हमारा पथ-प्रदर्शन

किया है। आपकी प्रभावशाली लेखनीने अनेक अवसरोंपर जादू-सा काम किया। आपके प्रभावोत्पादक, मर्मस्पर्शी भाषण और लेखोंने जनताकी आंखें खोल दीं। अनेक सङ्कटोंका सामना करते हुए आप बढ़े और अपने साथी सामाजिक कार्यकर्त्ताओंको बल प्रदान किया।

हम आपका अभिनन्दन करते हुए प्रार्थना करते हैं कि जिस प्रकार आपने हमारा पिछले छब्बीस वर्षोंकी अग्नि-परीक्षाओंके अवसरपर पथ-निर्देश किया है, वर्तमान विकट, विश्व-सङ्कट और ध्वंसके इस भीषण कालमें भी हमें प्रकाश-पथकी ओर अग्रसर होनेमें उत्साहित करते रहिये। आपका उत्साह-प्रदान सफल होगा, ऐसा हमारा विश्वास है।

इन भावनाओंसे प्रेरित होकर हम आज आपको अपने हृदयोंका स्नेह और प्रेमाञ्जलि समर्पित करते हुए प्रभुसे आपके स्वास्थ्य, शक्ति और दीर्घजीवनके प्रार्थी हैं।

हम हैं आपके—

बड़ाबाजार कांग्रेस कमेटी, बङ्गाल जूट डीलर्स एसोसियेशन, कलकत्ता मारवाड़ी सम्मेलन, हिन्दी साहित्य गोष्ठी, हिन्दी नाट्य परिषद्, हिन्दू कर्मवीर सङ्घ, माहेश्वरी सभा, मारवाड़ी सभा, मारवाड़ी एसोसियेशन, मारवाड़ी चेम्बर आफ कामर्स, अपर इण्डिया एसोसियेशन, बड़ा सिख सङ्गत, ज्ञान योगानन्द मठ, मारवाड़ी सेवा सङ्घ, बङ्गवासी कालेज, हिन्दी साहित्य समिति, काशी विश्वनाथ सेवा समिति, मारवाड़ी क्लब, सरस्वती बालिका विद्यालय, श्री विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय, माहेश्वरी विद्यालय, सारस्वत क्षत्रिय विद्यालय, सनातन धर्म विद्यालय, मारवाड़ी बालिका विद्यालय, आदर्श बालिका विद्यालय, आर्य-कन्या विद्यालय, डीडू माहेश्वरी विद्यालय, मातृ-सेवा सदन, नेशनल नर्सरी, बलिया मित्र-मण्डल, बड़ाबाजार लाइब्रेरी, श्री दिगम्बर जैन युवक समिति, महाबीर पुस्तकालय, आर्य-समाज बड़ा बाजार, वीर अभिमन्यु स्पोर्टिङ्ग क्लब, हनुमान परिषद्, हिन्दू एसोसियेशन, कलकत्ता आर्ट सोसाइटी, सुखराम कानोड़िया माडेल स्कूल, ऐंग्लो हिन्दी हाई स्कूल, अ० भा० राजस्थानी साहित्य सम्मेलन, मारवाड़ी ब्राह्मण सभा, बड़ाबाजार कुमार सभा लाइब्रेरी, हिन्दुस्तान स्काउट एसोसियेशन (बङ्गाल), कलकत्ता कमर्सियल म्यूजियम, बजरङ्ग परिषद्, कलकत्ता यार्न मर्चेण्ट एसोसियेशन।

तदुपरान्त स्वर्ण पत्रपर अग्रवालजीको सभापतिके कर कमलों द्वारा उसे प्रदान किया गया। अभिनन्दन करनेवाली सार्वजनिक संस्थाओंने अपनी-अपनी ओरसे अग्रवालजीको पुष्पमाला पहनायीं। बड़ाबाजार कांग्रेस कमेटीकी ओरसे हाथका कता हुआ सूत अग्रवालजीको भेंट किया गया। इस अवसरके लिए बाहरसे अनेक सन्देश आये थे, जिनमें कुछ यहां दिये जाते हैं—ये सन्देश अभिनन्दन समितिके उत्साही संयोजक श्री भालचन्द्र शर्माने पढ़कर सुनाये थे—

हिन्दी साहित्य सम्मेलनके अध्यक्ष पण्डित माखनलालजी चतुर्वेदी—अस्वस्थताके कारण लम्बी यात्रा करनेमें असमर्थ हूं, इसीसे उपस्थित होनेमें असमर्थ हूं। इस अवसरपर श्री मूलचन्द्रजी अग्रवालकी उल्लेखनीय सफलताके लिए उन्हें जो सम्मानित किया जा रहा है, उस सम्मान-प्रदर्शनमें साथ हूं।

राष्ट्र कवि मैथिलीशरणजी गुप्त—शरीरसे अनुपस्थित होनेपर भी मनसे आपके साथ हूं।

कवि-सम्राट पण्डित अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध—वृद्धावस्थाके कारण लम्बी यात्रा नहीं कर सकता—अभिनन्दनकी सफलता चाहता हूं।

म० म० पण्डित सकलनारायण शर्मा—मूलचन्द्रजी अग्रवालका अभिनन्दन अभिनन्दनीय है। यह हिन्दी संसारमें अभूतपूर्व है।

सेठ कन्हैयालालजी पोद्दार, मथुरा—श्री मूलचन्द्रजी अग्रवालकी हिन्दी सेवाएं वास्तवमें प्रशंसनीय हैं।

पण्डित झावरमल शर्मा—सार्वजनिक संस्थाओं और कार्यकर्ताओंने अपना कर्तव्य पालन किया है। यह सम्मान व्यक्तिगत नहीं, साहित्य, देश और समाज सेवाका सम्मान है।

ठाकुर श्रीनाथ सिंह—बा० मूलचन्द्र अग्रवालने असम्भवको सम्भव कर दिखाया। उन्होंने हिन्दी पत्रकार कलाका मस्तक ऊंचा किया है।

स्वामी भवानी दयालुजी संन्यासी, अजमेर—हिन्दी पत्रकार कलाके विकास और उत्कर्षमें भाई मूलचन्द्रजीने जो महत्कार्य किया, वह स्नेह और श्रद्धाके साथ युग-युगान्तर तक स्मरण किया जाता रहेगा।

डा० रामकुमार वर्मा—श्री मूलचन्द्र अग्रवालके 'निकट' रहनेपर मैंने अनुभव किया कि ऐसे महान् पुरुष ही विषम परिस्थितियोंका सामना कर प्रशस्त मार्ग निर्माण कर सकते हैं। अग्रवालजीमें शिष्टता और सौजन्य चरम कोटिका है। वे भारतीय युवकोंके चरित्र-निर्माण और जीवनगत दृष्टिकोणके लिए एक सुलभ आचार्य हैं।

सौ० राधा देवी गोइनका—हिन्दी-पत्रकार-कलाका नाम आते ही श्री मूलचन्द्र अग्रवालका नाम स्वभावतः स्मरण हो आता है। उन्होंने अपनी कर्तव्यनिष्ठासे स्पष्ट कर दिया कि हिन्दी पत्र भी परमुखापेक्षी नहीं रह सकते और स्वावलम्बी हो सकते हैं।

सर पदमपत सिंहानिया—'विश्वमित्र'ने हिन्दी संसार और हिन्दी पत्रकार-कलाकी जो सराहनीय सेवा की है, उसके लिए हिन्दी भाषी बाबू मूलचन्द्रजी अग्रवालके सदैव कृतज्ञ रहेंगे। उन्होंने अपने अध्यवसायसे 'विश्वमित्र' को हिन्दीका अग्रगण्य दैनिक ही नहीं बनाया, उसे तीन प्रधान नगरोंसे भी प्रकाशित कर दिखाया। 'विश्वमित्र' की तुलना किसी भी बड़े अंगरेजी दैनिकसे की जा सकती है। अन्य हिन्दी दैनिक 'विश्वमित्र' का अनुकरण कर लाभ उठायेंगे—ऐसी आशा है।

'प्रताप' सम्पादक श्री हरिशङ्कर विद्यार्थी—श्रीमूलचन्द्र जीने हिन्दी और पत्रकार-कलाकी बहुत सेवा की है। उनके अभिनन्दनमें मैं साथ हूं।

हिन्दी स्वराज्य सम्पादक, सञ्चालक श्री सिद्धनाथ माधव आगरकर जी—दृढ़निश्चयी अपने परिश्रम और पुरुषार्थसे क्या कर सकता है, इसका प्रत्यक्ष उदाहरण 'विश्वमित्र' सञ्चालक श्री मूलचन्द्रजी अग्रवाल हैं।

पण्डित हजारीप्रसादजी द्विवेदी, शान्ति-निकेतन—अग्रवालजीका 'विश्वमित्र' उनकी सूझ, कर्तव्यनिष्ठा और कुशलताका प्रतीक है।

सर मिर्जा इस्माइल,दीवान,जयपुर—मेरी शुभकामनायें स्वीकार कीजिये। पत्र और भी सफल और समृद्ध हो।

सर सीताराम, मेरठ—श्रीमूलचन्द्रजी मेरे पुराने मित्र हैं। उनके सञ्चालनमें 'विश्वमित्र' इतना चमका, इसका मुझे गर्व है। इसी प्रकार बहुसंख्यक शुभकामनाएं इस शुभ अवसरके लिए प्राप्त हुईं। इन महानुभावोंने भी अपनी शुभकामना भेजनेकी कृपा की—

श्री गौरी शङ्कर डालमिया देवघर, श्रीराधावल्लभ अग्रवाल प्रयाग, राय साहब मदन गोपाल भावसिंहका दीनाजपुर, बंशीधर जी ढांढनिया भागलपुर, बाबू श्री प्रकाश (बनारस) बाबू पन्नालाल अग्रवाल (भागलपुर) प्रह्लादरायजी लाठ सम्भलपुर, चमनलालजी अग्रवाल भागलपुर, द्वारका प्रसादजी जौहरी, सभापति अग्रवाल सेवा समिति प्रयाग, कपूरचन्द जी पोद्दार दिल्ली, श्रीजगन्नाथ प्रसादजी मिलिन्द ग्वालियर, श्री दिनकर जी पटना, मानव समाज दिल्ली, श्री सद्गुरु शरण अवस्थी कानपुर, श्री मोहनलाल महतो गया, सेठ लक्ष्मीनारायण भाड़ोदिया दिल्ली, सेठ रामसहायमल जी मोर नवलगढ़, नवभारत सम्पादक श्रीराम गोपालजी माहेश्वरी, श्री पहाड़ी प्रयाग, श्री पथिक दिल्ली, डा० वासुदेव शरण अग्रवाल लखनऊ, राय कृष्णमोहन बनारस, श्री तुलसीरामजी सरावगी, सेठ लक्ष्मीनिवास गनेड़ीवाल हैदराबाद दक्षिण, उरईके डी०ए० वी० स्कूल, कालपीके हिन्दी विद्यार्थी सम्प्रदाय, उरईके हिन्दी साहित्य सङ्घ, एम० एच० बी० हाई स्कूल कालपी।

मारवाड़ी महिला सम्मेलनकी ओरसे सौभाग्यवती ज्ञानवती देवी लाठने पुष्पमाला अर्पित की।

बाहरसे आये हुए सुकवियोंमें दिल्लीके श्री बनारसी दत्तजी शर्मा 'सेवक' ने अपनी भावपूर्ण कवितासे सबको प्रभावित कर दिया। आपने 'विश्वमित्र' सञ्चालकको उनकी धर्मपत्नीके शब्दोंमें 'काले बादलमें छिपा चांद' कहकर सम्बोधित किया।

कालपीके पण्डित मोहनलालजी शाण्डिल 'मोहन' की ओजपूर्ण कविताने सबको सन्तुष्ट किया। बनारसके सुप्रसिद्ध रईस राय हरेकृष्णजीने इस अवसरके लिए लिखित प्रशस्ति प्रेषित की। चुनारकी भारत स्टोन कम्पनीने प्रेमोपहार भेजा।

सुप्रसिद्ध राष्ट्रसेवी पण्डित जीवनलालकी राष्ट्रीय कविता लोगोंने खूब पसन्द की, जिसमें उन्होंने पत्रकारोंको कलमके अस्त्रसे सुसज्जित बताया।

चरवाहा गान्धी—रचना पण्डित रामदयालजी पाण्डेकी बहुत पसन्द की गयी। राजस्थानी कवि चन्द्रसिंहजीकी राजस्थानी कविता बड़ी प्रभावशाली थी।

सभापतिका भाषण

श्री नलिनीरञ्जन सरकारने इस बातपर जोर दिया कि हिन्दी ही राष्ट्र-भाषा है और यह गर्वकी बात है कि एक हिन्दी दैनिक तीन प्रमुख नगरोंसे प्रकाशित हो रहा है, जब कि बड़े-बड़े अङ्गरेजी दैनिक केवल दो स्थानोंसे ही प्रकाशित हो सके। इसके लिए 'विश्वमित्र' सञ्चालककी कार्य-कुशलता वास्तवमें सराहनीय है। अग्रवालजीने पत्रकार क्षेत्र अपने लिये चुना, यह और भी बधाईके योग्य है। वे धनार्जनके अन्य आकर्षक क्षेत्र चुन सकते थे। पचीस वर्ष तक संग्राम कर पत्रको समृद्ध बनाना वास्तवमें एक उल्लेखनीय घटना है। आपने ऐसे सुन्दर आनन्द-दायक आयोजनके समय सभापति चुने जानेपर कृतज्ञता प्रकट की।

अग्रवालजीका भाषण

करतल-ध्वनि और 'बन्दे मातरम्'के बीच श्री मूलचन्द्रजी अग्रवाल अभिनन्दनका उत्तर देनेके लिए खड़े हुए। आपने इसे अपना सौभाग्य माना कि एक राष्ट्र-प्रेमी सभापति शुभ अवसरके लिए प्राप्त हुआ, जिसने स्वावलम्बनसे अपना जीवन निर्माण किया है। श्री कालीप्रसादजी खेतानने अभिनन्दनकी प्रेरणा प्रदान की। इसके लिये उन्हें धन्यवाद दिया। अभिनन्दन समितिके सर्वश्री सीतारामजी सेखसरिया, बसन्तलालजी मुरारका, भालचन्द्रजी शर्मा और भंवरलालजी बियाणीके उद्योग और कष्ट-सहनकी सराहना करते हुए उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट की। विभिन्न संस्थाओं द्वारा दिये गये मान-पत्र और पुष्पमाला प्रदानको जीवनकी स्मरणीय घटना बताते हुए उनसे इसी प्रकार प्रेम बनाये रखनेकी मार्मिक अपील की।

पत्रकार, समाज और देशका जागरुक प्रहरी है, इसलिए उसकी निर्बलताओंको भुला देनेकी प्रार्थना की। पत्रकारोंसे निवेदन किया कि यह सम्मान-प्रदर्शन उन्हें कर्तव्य-भ्रष्ट न करे। पत्रकार तो समाजकी विशाल इमारतके कङ्कड़मात्र हैं, जो अपना अस्तित्व दूसरोंको शानदार बनानेमें मिटा देते हैं। भारत सरीखे परतन्त्र और दीन देशमें पत्रकार मनोरञ्जनका केन्द्र नहीं बन सकता, उसे तो राष्ट्रके भाग्य-निर्माणमें सहायक होना है। हिन्दी दैनिकों और सम्पादकोंका नया-पुराना इतिहास बताते हुए आपने कहा कि कष्ट-सहन और त्यागकी उनकी कहानी भविष्यमें स्वर्णाक्षरोंमें लिखी जायेगी। आज बीस दैनिकोंमें पन्द्रह हिन्दी दैनिक कांग्रेस-समर्थनमें अपनी सारी शक्ति लगाये हुए हैं। कोई भी अन्य समुदाय यह दावा नहीं कर सकता। कांग्रेस-समर्थन राष्ट्रकी सबसे महान सेवा है और हिन्दी पत्र तथा हिन्दी पत्रकार इस सेवामें लगे रहकर यह मनुष्य-जन्म सफल कर रहे हैं। समाज-सुधारके कार्यको भी हिन्दी पत्र इस लिए नहीं भुला सकते कि परतन्त्र देशमें रूढ़ियोंने समाजको बुरी तरह जकड़कर उसके प्राण खींच लिये हैं।

अभिनन्दन-आयोजनका उल्लेख करते हुए आपने कहा कि इसमें जरा भी अतिशयोक्ति नहीं कि यह व्यक्तिगत मान-प्रदर्शन नहीं, यह तो हिन्दी साहित्य, राष्ट्र-भाषा और हिन्दी पत्रकार कलाके प्रति मान-प्रदर्शन है। इसी लिए इसे सहर्ष स्वीकार करनेमें मुझे जरा भी सङ्कोच नहीं हुआ। यदि कोई समालोचक इस आयोजनमें आयोजकोंकी चाटुकारिता देखे, तो चाटुकारिता भी इसीलिए आवश्यक है कि वह राष्ट्र और राष्ट्र-भाषा-निर्माणमें सहायक होती है। पत्रकारोंकी तुलना भारतके स्मरणीय चारणोंसे करते हुए आपने कहा कि आप चारणके गुण-दोषोंको न देखकर उसके सेवा-कार्यको ही देखिये, जो सन्दिग्ध मनुष्यको सन्देह-शून्य बनाता है। पत्रकार देशके जागरणमें अपना खास स्थान रखेगा। हिन्दी दैनिकोंके भविष्यकी चर्चा करते हुए आपने कहा कि 'विश्वमित्र' तीसरा या चौथा हिन्दी दैनिक था, जब उसने जन्म लिया, आज बीस हिन्दी दैनिक हैं और कल पचास होने निश्चित हैं।

यह भी असम्भव कल्पना नहीं कि देशमें किसी समय एक सौ हिन्दी दैनिक चमकते हुए दिखायी दें। हिन्दी दैनिकोंका भविष्य अब अन्धकारमय नहीं और आशाके अनेक चिह्न दिखायी देते हैं। 'विश्वमित्र' सञ्चालक तथा अन्य पत्र-सञ्चालकोंको सम्बोधित करते हुए आपने कहा कि समाचारपत्र सञ्चालककी निजी वस्तु कभी न समझी जाये। उसके कालम जनताके सुख-दुखके लिए सदा खुले रहें। जिस दिन ऐसा न होगा, पत्रका अस्तित्व खतरेमें पड़ जायगा। हिन्दी पत्र तो जनताके प्रेम और सहयोगसे ही पनप सकते हैं, जब कि अङ्गरेजी पत्रोंपर सरकारकी कृपा रही और उससे अनेक आर्थिक सुविधाएं मिलीं। देशमें जो उल्लेखनीय नारी-जागरण हो रहा है, उससे हिन्दी दैनिकोंका महत्व कहीं अधिक बढ़ेगा। वे घर-घरमें मंगाये जायंगे और प्रत्येक गृहस्थके लिए पथ-प्रदर्शक बनेंगे।

सार्वजनिक अभिनन्दनके लिए अग्रवालजीने हार्दिक कृतज्ञता प्रकट की और अपना स्थान ग्रहण किया।

क्या पशु-पक्षियोंमें बुद्धि होती है ?

हममेंसे अधिकांश यह स्वीकार करते हैं कि कुछ पक्षी और अधिकांश स्तन्यपायी पशुओंको विभिन्न कोटिकी बुद्धि होती है, पर यहीं हम बुद्धि-सम्पन्न पशु-पक्षियोंकी सीमा निर्धारित कर देते हैं। और इस प्रकार क्षुद्र कीड़े-मकोड़े बुद्धिमान जीव-जन्तुओंकी श्रेणीसे अलग कर दिये जाते हैं। फिर भी एक वैज्ञानिकने प्रयोग करके दिखला दिया है कि इन क्षुद्र प्राणियोंमें भी बुद्धिका कुछ अंश होता है। प्रयोग इस प्रकार था—अंगरेजीके 'वाई' अक्षरकी शक्लवाली एक शीशेकी नलीमें एक कीड़ा मुंहके पास रखा गया। चलते-चलते वह उस स्थानपर पहुंचा, जहांसे उसे दाहिनी या बायीं ओरका रास्ता लेना था। प्रयोगके उद्देश्यके लिए यह बन्दोबस्त किया गया था कि बायीं ओरके घुमावपर जब कीड़ा आये, तो उसे बिजलीका 'शाक' लगे, पर अगर वह दाहिनी ओरका रास्ता ले, तो उसे किसी तरहकी तकलीफ न हो। शीशेकी नलीमें कुछ देर इधर-उधर घूमता हुआ कीड़ा दोनों ही घुमावपर पहुंचा। धीरे-धीरे उसे मालूम हो गया कि उसे बायीं ओरका रास्ता पकड़नेमें क्या खतरा है और फलतः वह दाहिनी ओरके रास्ते चला। इस प्रकारके और भी कई प्रयोग करके सिद्ध किया गया है कि हम जिन क्षुद्र कीट-पतङ्गोंको बुद्धिसे वञ्चित समझते हैं, वे भी कुछ दर्जे तक बुद्धिमान होते हैं।

बड़े-बड़े जानवरोंमें बुद्धि होनेके तो कितने ही उदाहरण दिये जा सकते हैं। कई जानवर तो मनुष्योंके समान बुद्धि रखते हैं। पर इस सम्बन्धमें एक बातपर विशेष रूपसे ध्यान देनेकी आवश्यकता है। कुछ लोगोंका, जो इस विषयमें वैज्ञानिक ढङ्गसे नहीं सोचते, यह ख्याल है कि जङ्गली जानवर बड़े बुद्धिमान होते हैं। यह बात कहां तक ठीक है, इस सम्बन्धमें उन पक्षियोंका उदाहरण दिया जा सकता है, जो घोसले बनाकर रहते हैं। अधिकांश पक्षी बड़े यत्नसे अपने घोसलोंको साफ-सुथरा रखते हैं। जब नर-मादा चर-चुगकर वापस आते हैं, तो घोसलेमें फालतू तिनके आदिको पड़ा देखकर उन्हें चोंचमें उठा बाहर फेंक आते हैं। यह देखकर हम कहते हैं कि देखिये पक्षी कितने समझदार होते हैं। वे भी जानते हैं कि घोसलेमें गन्दगी रहनेसे स्वास्थ्यपर बुरा असर पड़ता है। इसलिए वे बड़े यत्नसे घोसलेको साफ रखते हैं।

एक दिन वैज्ञानिकोंने सोचा कि प्रयोगद्वारा इस बातकी सत्यताको प्रमाणित करना चाहिये। उन्होंने एक घोसलेमेंसे, मलवोंको एक चिमटेके सहारे बाहर निकाल दिया। जब नर-मादा वापस लौटे और देखा कि घोंसलेमें फेंकनेको कुछ नहीं है, वे अपनी आदतके अनुसार घोंसलेसे नोंच-नोंचकर तिनके फेंकने लगे, यहां तक कि सारा घोंसला ही उजड़ गया। इससे मालूम हो गया कि पक्षी सफाईके ख्यालसे घोंसलेके अन्दरसे मलवे नहीं फेंकते थे, पर उनकी कुछ फेंकनेकी आदत-सी बन गयी थी। पक्षीमें इतनी बुद्धि नहीं थी कि अपनेको परिवर्तित परिस्थितिके अनुकूल बनाये। फिर भी हम ऐसा नहीं कह सकते कि पक्षियोंमें बुद्धि होती ही नहीं। कुछ ऐसे पक्षी हैं, जिनमें काफी बुद्धि होनेके प्रमाण मिले हैं। कौआ बहुत चालाक पक्षी समझा जाता है। उसकी चालाकीकी एक बड़ी सुन्दर कहानी है। एक कुत्ता एक हड्डीके टुकड़ेको चाट रहा था कि दो कौये उसपर झपटे। पहले तो उन्होंने हड्डीको कुत्तेसे छीन लेनेकी चेष्टा की। पर कुत्तेने उन्हें धत्ता बताया। फिर कौए आपसमें कुछ सलाह करनेके बाद अलग हो गये। एक कुत्तेके पीछे उड़ा और दूसरा उसके सामने अपनी आंखें हड्डीपर गड़ाये रहा। पहला कौआ कुत्तेकी दुममें चोंच मार-मारकर उसपर हमला करने लगा। इसपर कुत्ता हड्डी छोड़कर उसपर झपटा। इतनेमें दूसरा कौआ आकर हड्डी ले गया, जब कि पहला तेजीसे उड़कर भाग गया। अपनी इस विजयपर हर्ष प्रकट करनेके लिए दोनों कौए जोर-जोरसे कांव-कांव करने लगे।

बहुत लोगोंका ख्याल है कि हाथी सबसे बुद्धिमान पशु होता है। इसके समर्थनमें कई एक प्रमाण दिये जा सकते हैं। जीव-जन्तुओंके इतिहासके आरम्भसे आज प्रायः दो-ढाई हजार वर्ष तक कितने ही लेखकोंने इन पशुओंकी बुद्धिमत्ताके सम्बन्धमें बहुत कुछ लिखा है। एक बार एक आदमी एक हाथीको नाचना सिखा रहा था।

हाथीको इस कलाके सीखनेमें बड़ी कठिनाई मालूम होती थी। इसलिए शिक्षकने उसे दण्ड दिया। उसके बाद देखा गया कि वह रातको चांदनीमें आप-ही-आप नृत्य-कलाका अभ्यास कर रहा है। आप इस कहानीको सच मानें या न मानें, पशुओंकी बुद्धिमत्ताके प्रसिद्ध अनुसन्धानकर्ता प्रो० रोमानेसने लिखा है कि हाथी बन्दरको छोड़कर और सब जानवरोंसे बुद्धिमान होता है। हाथीकी अद्भुत स्मरण-शक्तिको बतलानेके लिए यह कहानी यथेष्ट होगी—एक बार एक लड़केने एक हाथीको नारियलका आधा टुकड़ा चूना भरकर खिला दिया। फलस्वरूप हाथी बीमार पड़ गया। कुछ दिनों बाद वह उसी स्थानपर पहुंचा, जहां उसे उस लड़केने तङ्ग किया था। उस समय वह लड़का बड़ा हो गया था। हाथीने उसे भीड़में पहचान लिया और पटककर दे मारा। इतने दिनोंके बाद उसने अपना बदला लिया।

चूहा आकारमें हाथीसे छोटा होता है, पर उससे कम बुद्धिमान नहीं होता। चूहेकी बुद्धिमानीके सम्बन्धमें, न्यूज़ीलैण्डके वेलिङ्गटन म्यूजियमके मि० टी० बी० कर्कने एक मजेदार घटनाका उल्लेख किया है। एक चूहेको मुर्गीखानेकी फर्शपर पड़ा बिसकुटका एक टुकड़ा मिला। उसमेंसे चूहेके जानेके लिए मुर्गीखानेकी छड़ोंके बीचकी फांकसे होकर ही रास्ता था। चूहा उससे घुसकर बड़ी आसानीसे जा सकता था, पर बिसकुट लेकर निकलनेमें कठिनाई थी। पहले तो चूहेने बिसकुट लेकर उसमेंसे निकलनेकी कोशिश की, पर वह अपने प्रयत्नमें सफल नहीं हुआ। अन्तमें बिसकुटको वहीं छोड़कर वह वहांसे बाहर निकला। पांच मिनटके बाद वह अपने एक छोटे साथीको लेकर आया। पहला चूहा छड़ोंके बीचसे होकर अन्दर गया। जाते ही वह बिसकुटको अपनी नाकसे ठेलकर छड़ोंके पास ले आया। उधर छोटा चूहा बाहर उसे लेनेको खड़ा था। पहले चूहेने बिसकुटको फांकके सामने लाकर रखा। बाहरके चूहेने उसे पकड़कर खींच लिया। इस तरह दोनों चूहोंने बड़ी बुद्धिमानीसे चार इञ्च चौड़े बिसकुटको दो इञ्चकी फांकसे निकालनेमें सफलता प्राप्त की।

यों तो हाथी और चूहा दोनों ही बुद्धिमान जानवर हैं, पर अधिकांश वैज्ञानिकोंका मत है कि जानवरोंमें शिम्पाञ्जी सबसे बुद्धिमान होता है। अक्सर यह सवाल किया जाता है, कौन-कौनसे दस पशु सबसे अधिक बुद्धिमान होते हैं। और सवाल करनेवाला यह जानना चाहता है कि उन जानवरोंमें घरेलू जानवर, जैसे कुत्ते और बिल्ली, हैं या नहीं। न्यूयार्कके जुलाजिकल पार्कके सुप्रसिद्ध डायरेक्टर डा० डबल्यू रीड ब्लेयरने क्रमानुसार दस बुद्धिमान पशुओंकी निम्न सूची तैयार की है —शिम्पाञ्जी, बनमानुष, हाथी, गुरिल्ला, घरेलू कुत्ता, बीवर (उद बिलाव), घरेलू घोड़ा, समुद्री सिंह, भालू और घरेलू बिल्ली।

संवाद-वाहनका साधन : कबूतर

मनुष्यने अनेक प्राणियोंको पालकर उनसे लाभ उठाया है। गाय उसे दूध देती है, घोड़ा उसकी सवारीके काम आता है, गधा उसका बोझा ढोता है और कुत्ता उसके घरकी रखवाली करता है। बिल्ली और खरगोश घरकी शोभा समझे जाते हैं। अब मनुष्य मधुमक्खियोंको भी पालने लगा है।

कबूतर चिरकालसे पाला जाता रहा है। शौकीन लोग इसे शौकके तौरपर उड़ानेके लिए पालते हैं, और इसके पङ्खोंकी हवा अच्छी समझी जाती है।

जब मनुष्य जीवनके लिए सङ्घर्ष करने लगता है, तो अपने साथ अपनी प्रत्येक वस्तुका किसी-न-किसी रूपमें उस सङ्घर्षमें सहयोग चाहता है। घोड़ा उस समय युद्धका साथी बन जाता है और कुत्ता जासूस। बहुत दिनोंसे ऐसे अवसरोंपर कबूतरोंसे संवाद लाने-ले जानेका काम लिया जा रहा है। जिन दिनों आजकलकी भांति रेल, तार और विमान नहीं थे, संवाद पहुंचानेके लिए सबसे अधिक तेज साधन कबूतर ही था। तब इनका महत्व बहुत अधिक था। पर आज भी वह एकदम समाप्त नहीं हो गया है। रोमन कालमें इनका उपयोग आम तौरसे होता था। आज इनका उपयोग तब होता है, जब कि मनुष्यके सब वैज्ञानिक साधन व्यर्थ हो जाते हैं।

कबूतरोंसे काम लेनेके लिए कबूतर व काम लेनेवाले दोनोंको सिखानेकी आवश्यकता पड़ती है। कबूतरोंको सिखानेके लिए सेनाके अनेक शिक्षण-केन्द्र खुले हुए हैं। इनमें कबूतरोंकी अच्छी प्रकार देख-भाल की जाती है। उन्हें सुन्दर दरबोंमें रखा जाता है। भारतमें इन कबूतरोंके पालनमें कठिनाई यह है कि यहां बाज बहुत होते हैं, जो कि इन कबूतरोंका हर समय शिकार करनेको उद्यत रहते हैं। सांप और नेवलोंसे भी इन कबूतरोंके लिए सदा सङ्कट बना रहता है।

इन कबूतरोंका उपयोग आपत्ति-कालमें पड़ी हुई फौजी टुकड़ियों द्वारा अपनी सेनासे सम्बन्ध स्थापित रखनेके

लिए किया जाता है। जब कोई टुकड़ी अकेली पड़ जाती है और विमान आदि साधनों द्वारा सन्देश पहुंचाना कठिन होता है, तब ये कबूतर ही उसके उद्धारमें सहायक होते हैं। या किसी टुकड़ीको कोई कार्यवाही करनेके विषयमें, कोई सन्देश गुपचुप भेजना होता है, तब सैनिक अधिकारी इनका उपयोग करते हैं।

ये कबूतर ४५ मील प्रति घण्टेकी चालसे एक बारमें ६०० मील तक उड़ सकते हैं, पर प्रायः इनको एक बारमें १२० मीलसे अधिक नहीं उड़ाया जाता। इन्हें आवश्यकता पड़नेपर विमानोंसे भी छोड़ा जा सकता है।

कबूतर द्वारा सन्देश भेजनेकी विधि यह है कि एक बहुत पतले कागजपर बारीक अक्षरोंमें सन्देश लिखकर एक पतली-सी नलीमें डालकर उस नलीको कबूतरकी टांगमें बांध दिया जाता है। कबूतर सङ्केतित स्थानपर इस कागज समेत पहुंच जाता है।

इस प्रकार समाचार पहुंचाना है तो सरल, पर इसमें खतरा यही रहता है कि कहीं कोई बाज कबूतरपर टूटकर सन्देशको बीचमें ही समाप्त न कर दे, या फिर कोई शिकारी ही कबूतरको गोलीका निशाना न बना दे।

कराचीके पास बहुतसे सैनिक कबूतर इस प्रकार गलती-से शिकारियोंके हाथों मर गये हैं, जिनमेंसे कई सरकारी सन्देश ले जा रहे थे।

वैसे, इन कबूतरोंको पहचानना कठिन नहीं होता। वह आदमीके पास निःशङ्क होकर आ जाता है और बहुत तेज उड़ता है। इसके विपरीत जङ्गली कबूतर दूर भागने-वाला, बहुत अधिक गुटरगूं करनेवाला और धीरे-धीरे उड़नेवाला होता है।

फौजी कबूतरके पैरमें एक छल्ला पड़ा होता है, जिसपर कबूतरकी जन्म-तिथि, उसका नम्बर व एक तीरका निशान अङ्कित होता है।

ब्रिटेनके युद्धके दिनोंमें संदेशवाहक कबूतरोंको भारत भेज दिया गया था, ताकि उनसे पैदा हुए बच्चोंमें फौजी कबूतरोंके कुछ गुण आ जांय।

—श्री उदयवीर।
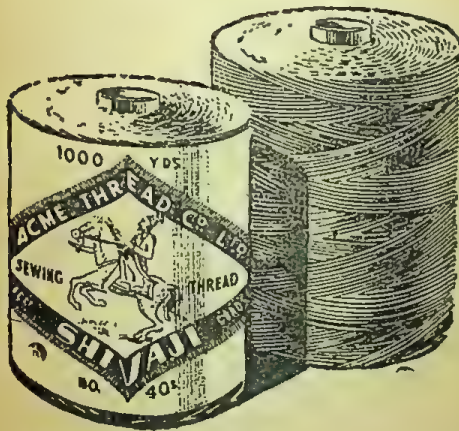
हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका जयपुर अधिवेशन २१, २२ और २३ मईको होगा। सम्मेलनका उद्घाटन जयपुरके दीवान सर मिर्जा इस्माइल करेंगे। अधिवेशनके लिए श्री गोस्वामी गणेशदत्तजी अध्यक्ष चुने गये हैं। विभिन्न परिषदोंके सभापतियोंका निर्वाचन इस प्रकार हुआ है—साहित्य-परिषद—श्री शिवपूजन सहाय, दर्शन-परिषद—श्री रामशङ्कर द्विवेदी, विज्ञान-परिषद—डा० वीरबल साहनी, समाज-शास्त्र—डा० वेणीप्रसाद और राष्ट्र-भाषा परिषद—श्री कन्हैयालाल मुंशी।

सम्मेलनके पुरस्कार

सम्मेलनके प्रधान मन्त्री श्री रामप्रसाद त्रिपाठी सूचित करते हैं कि सम्मेलन द्वारा आयोजित इस वर्षके विविध पुरस्कार निम्न प्रकार पुस्तकें प्राप्त होनेपर दिये जायंगे—मङ्गलाप्रसाद पारितोषिक १२००) रु०, काव्य (काव्य, गद्य और पद्य, नाटक, उपन्यास और कहानी)। सेकसरिया महिला पारितोषिक ५००) रु०, किसी मौलिक रचनापर (केवल महिलाओंके लिए)। मुरारका पारितोषिक ५००) रु०, समाजवाद विषयक पुस्तकपर। जैन पारितोषिक ५००) रु०, ग्रामोद्योग विषयक पुस्तकपर। राधामोहन गोकुलजी पुरस्कार २५०) रु०, समाज-सुधार विषयक पुस्तकपर। नारङ्ग पुरस्कार १००) रु०, 'भारतीय संस्कृति' विषयक कवितापर (केवल पञ्जाब निवासी हिन्दी कविको)। गोपाल पुरस्कार ५००) रु०, हिन्दीकी खोजपूर्ण मौलिक अद्वैत सिद्धान्तके आधारपर लिखी हुई आचार-शास्त्रकी रचनापर। रत्नकुमारी पुरस्कार २५०) रु०, हिन्दीके किसी मौलिक नाटकपर। पुरस्कारोंके लिए केवल जीवित लेखकोंकी रचनाओंपर विचार किया जायेगा।

बङ्गाल-हिन्दी-मण्डल

गत १९४२ में राष्ट्र-भाषा हिन्दीकी सेवा करनेके उद्देश्यसे बङ्गाल हिन्दी-मण्डल नामक संस्था स्थापित की गयी। मण्डलका यह भी एक उद्देश्य है कि हिन्दीमें महत्वपूर्ण विषयोंपर विद्वान लेखकों द्वारा मौलिक साहित्य तैयार कराया जाय और उन्हें पुरस्कृत किया जाय। गत १५ अप्रैलको स्थानीय इण्डियन चेम्बर आफ कामर्समें हिन्दी-मण्डलकी ओरसे निम्नलिखित विद्वानोंको उनकी कृतियोंके लिए पुरस्कृत किया गया। डा० देवराज एम०ए०

को उनकी 'पूर्वी और पश्चिमी दर्शन' नामक पुस्तकपर, श्री वासुदेव उपाध्याय एम० ए० को, उनकी रचना 'विजयनगर साम्राज्यका इतिहास' पर तथा श्री हरिकृष्ण प्रेमीको, उनके 'विषपान' नामक नाटकपर क्रमशः १२५०), १०००) और ५००) के पारितोषिक प्रदान किये गये।

आगामी वर्षमें निम्नलिखित विषयोंपर पुस्तकें लिखनेपर निम्नलिखित पुरस्कार दिये जानेकी घोषणा की गयी।

१—३०० पृष्ठोंमें हिन्दू-कुटुम्ब-प्रणालीके विकासपर ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमिके साथ पुस्तक लिखनेपर १२५०)

२—३०० पृष्ठोंमें ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमिके साथ हिन्दू-विवाह-प्रणालीपर ग्रन्थ लिखनेपर १२५०)

३—५०० पृष्ठोंमें लोकनृत्यपर और क्रीड़ा तथा समस्त भारतके लोक-नृत्यपर वैज्ञानिक अनुसन्धानके साथ पुस्तक लिखनेपर १०००)

४—हिन्दू-दर्शन और बौद्ध-दर्शनपर तुलनात्मक ग्रन्थ लिखनेपर १५००)

५—ऐतिहासिक नाटकके लिए ५००)

६—राजस्थानी मुहावरोंपर २५०)

७—राजस्थानी कहावतोंपर २५०)

इस सम्बन्धमें विशेष नियम जाननेके लिए, मन्त्री बङ्गाल हिन्दी-मण्डल, हरिजन कालोनी किंग्सवे, दिल्लीसे पत्र-व्यवहार करना चाहिये।

सुहृदसंघका वार्षिक अधिवेशन

सुहृद सङ्घ बिहार प्रान्तकी एक ऐसी श्रेष्ठ एवं सजीव साहित्यिक संस्था है, जिसपर सारे प्रान्तको गर्व है। प्रति वर्ष इस संस्थाके वार्षिक अधिवेशनके अवसरपर साहित्यिकोंका एक सुन्दर समारोह हुआ करता है। केवल प्रान्तके ही नहीं, बल्कि प्रान्तसे बाहरके भी अनेक ख्यातनामा साहित्यिक एवं कवि इस समारोहमें सम्मिलित होकर इस संस्थाको गौरवान्वित किया करते हैं। हिन्दी भाषा और हिन्दी-साहित्यसे सम्बन्ध रखनेवाले प्रायः प्रत्येक प्रश्नपर यह संस्था निर्भीकतापूर्वक अपना मतामत प्रकट करती है और उसके अनुकूल या प्रतिकूल आन्दोलन चलाकर लोकमत तैयार करती है। हिन्दुस्तानी तथा रेडियोकी भाषाके विरुद्ध इस संस्थाने सफलतापूर्वक आन्दोलन चलाये हैं। अभी हालमें इसका वार्षिक अधिवेशन सुप्रसिद्ध साहित्यिक एवं कवि श्री माखनलालजी चतुर्वेदीके सभापतित्वमें हुआ था, जिन्होंने अपनी काव्यमयी भाषामें धाराप्रवाह मौखिक भाषण देकर हजारोंकी संख्यामें उपस्थित जनताको मन्त्रमुग्ध-जैसा कर लिया था। इसी अवसरपर रायबहादुर श्रीनारायण चतुर्वेदीकी अध्यक्षतामें एक कवि-सम्मेलन भी अत्यन्त सफलतापूर्वक हुआ। कवि-सम्मेलनके साथ-साथ साहित्य-परिषदका भी अधिवेशन हुआ था। इस संस्थाके प्राण हैं उसके तरुण उत्साही मन्त्री श्री नितीश्वरप्रसाद सिंह, जिनके उत्साह, कर्मोद्यम एवं उद्दीपनामयी प्रेरणाकी बदौलत ही यह संस्था आज इस रूपमें हिन्दी भाषा एवं साहित्यकी सराहनीय सेवा कर रही है।

कांग्रेस और जापानी आक्रमण

भारतपर विदेशी आक्रमणके प्रति कांग्रेसका क्या रुख है, इस सम्बन्धमें कांग्रेसकी ओरसे स्पष्ट शब्दोंमें व्यक्त कर दिया गया है कि कांग्रेस अपनी सारी शक्ति लगाकर भारतपर विदेशी आक्रमणका प्रतिरोध करेगी। कांग्रेसने न न तो भारतपर किसी विदेशी शक्तिका शासन चाहते हैं, और न किसी विदेशी शक्तिकी सहायतासे देशकी स्वाधीनता ही प्राप्त करना चाहते हैं। इधर हालमें ही आसाम-बर्मा सीमाको पारकर जापानियोंने भारतमें प्रवेश किया, इससे भारत-वासियोंका चिन्तित होना स्वाभाविक ही है। हालां कि मित्रराष्ट्रोंकी सेनाएं सफलतापूर्वक जापानियोंकी अग्रगतिको रोक रही हैं, पर देशवासियोंका भी कर्तव्य है कि वे इस अवसरपर चुप न बैठे रहें, बल्कि अपनी पूरी शक्ति लगाकर फैसिस्ट जापानियोंका प्रतिरोध करें, ताकि मातृ-भूमिमें उनके पैर टिक न सकें। इसी सम्बन्धमें हालमें ही लखनऊमें, युक्त प्रान्तके प्रमुख कांग्रेस नेता श्री सम्पूर्णानन्दके सभापतित्वमें, वहांके जेलमुक्त कांग्रेसकर्मियोंका एक सम्मेलन हुआ था। उक्त सम्मेलनमें यह प्रस्ताव स्वीकृत किया गया—आसाम प्रान्तमें जापानी सेनायें प्रवेश करनेकी चेष्टा कर रही हैं। इस समाचारसे सम्मेलन अत्यन्त चिन्तित है। दुर्भिक्ष-पीड़ित आसाम प्रान्तवासियोंकी इस नयी विपत्तिके प्रति हम सहानुभूति प्रकट करते हैं। भारतपर जापानियोंके इस आक्रमणकी चेष्टासे हम समझते हैं कि अभी भी हमारा देश फैसिस्ट हस्तक्षेपकी आशङ्कासे मुक्त नहीं हुआ है। साम्राज्यवादके प्रति कांग्रेसके मनोभावका समर्थन करते हुए भी इस सम्मेलनका यह विश्वास है कि आसामवासी, सब तरहकी विघ्न-बाधाओंको सहते हुए भी अपनी सारी शक्ति लगाकर जापानी आक्रमणका प्रतिरोध करेंगे। कांग्रेस सदासे ही, बलपूर्वक दूसरे राष्ट्रकी स्वाधीनता अपहरण करनेके विरुद्ध रही है और उसने सभी अवस्थाओंमें, देशकी रक्षा करनेकी नीति स्वीकार की है। प्रस्तावको उपस्थित करते हुए डा० काटजूने कहा कि कांग्रेसने वर्तमान महायुद्धके बहुत पहलेसे ही फैसिज्मका विरोध किया और आज भी करती है। और वह जन्म-भूमिकी रक्षा करनेके लिए दृढ़ प्रतिज्ञ है। कांग्रेसवादी कभी भी यह आशा नहीं करते कि बाहरकी कोई शक्ति आकर हमें स्वाधीन करेगी। इसके पूर्व आसामके कांग्रेस-नेता और भूतपूर्व प्रधान मन्त्री श्री गोपीनाथ बारदोलाईने भी आसामवासियोंसे अपील की थी कि वे अपने भेदभाव और दलबन्दीको भुलाकर, सुसङ्गठित हो जापानियोंका दृढ़तासे मुकाबला करें। आसाम व्यवस्थापिका परिषदके अध्यक्ष श्री बसन्तकुमार दासने भी देशवासियोंसे इसी प्रकारका अनुरोध किया था। इससे स्पष्ट है कि कांग्रेस जापानियोंको किस दृष्टिसे देखती है और उनके प्रति उसके क्या मनोभाव हैं। जापानी आक्रमणके प्रति कांग्रेसवादियोंके इस रुखसे उन स्वार्थान्धोंकी आंखें खुल जानी चाहियें, जो अधिकांश कांग्रेस-नेताओं और कर्मियोंके कारारुद्ध रहनेका सुयोग पा यह प्रचार करते फिरते हैं कि जापानी हमारे शत्रु नहीं हैं, इसलिए हमें इस युद्धमें तटस्थ रहना चाहिये। जापानियोंके मिथ्या प्रचारसे कितने ही लोगोंके मनमें भ्रमात्मक धारणा जम गयी। आशा है, युक्त प्रान्तके कांग्रेसवादियोंके इस स्पष्ट निश्चयसे उनका भ्रम दूर हो जायेगा। पर दुख है कि इस अवस्थामें भी सरकार जापानियोंका प्रतिरोध करनेमें, कांग्रेसका सहयोग प्राप्त करनेसे विमुख है।

भारतका भविष्य

हालमें ही ब्रिटेनमें कामनवेल्थ पार्टी गठित की गयी है। यह पार्टी भारतीय कांग्रेसकी स्वाधीनताकी मांगका समर्थन करती है और उसके कार्यक्रममें भारतके राष्ट्रीय नेताओंकी मुक्तिके लिए चेष्टा करना ही एक प्रमुख विषय है। ऐसी दशामें इस पार्टीकी ओर हम भारतवासियोंका आकर्षित होना स्वाभाविक ही है। यह दल साम्राज्यवादका

विरोधी है और इसीलिए इसने इतने थोड़े दिनोंमें ब्रिटेनके प्रगतिशील तरुण समाजपर अपना प्रभाव स्थापित कर लिया है। गत १८ अप्रैलको एक सभामें इस दलके सभापति सर रिचर्ड अकलैण्डने युद्धोत्तर ब्रिटेन और ब्रिटिश साम्राज्यके भविष्यकी आलोचना की। उनका एवं उनके दलका यह विश्वास है कि आगामी १५ वर्षोंके अन्दर ब्रिटेनमें एक सामाजिक क्रान्ति होगी, जिसके फलस्वरूप राष्ट्रकी शक्ति जनसाधारणके हाथोंमें आ जायेगी। कम्पनियोंके डायरेक्टरों और शेयरबाजारोंके फाटकियोंके हाथमें कोई क्षमता न रह जायेगी। देशके छोटे-बड़े सभी कल-कारखानोंपर जनसाधारणका अधिकार हो जायेगा। इसी सिलसिलेमें सर रिचर्डने यह भविष्यवाणी की कि आगामी ५ वर्षोंके अन्दर भारतवर्ष ब्रिटिश साम्राज्यके बाहर चला जायेगा। कोई इसे रोक नहीं सकेगा। ब्रिटेनका अनुदार दल और ब्रिटिश पूंजीपति इस बातको अच्छी तरह जानते हैं और इसीलिए वे युद्ध-कालमें, भारतपर अपने प्रभावको और भी दृढ़ रखना चाहते हैं। पर उन्हें अपनी चेष्टामें सफलता नहीं मिलेगी। इतिहासकी पुनरावृत्ति होकर रहेगी। अतीतमें, अमेरिका और आयरलैण्डमें जो घटनायें हुए हैं, वे भारतवर्षमें भी अवश्य होंगी। ब्रिटेनके साम्राज्य-वादी और पूंजीवादी चाहें अथवा न चाहें, भारतवर्षको अपने अधीन रखनेकी चेष्टा करनेपर भी वे अब उसे अधिक दिन तक अपने शासनमें रखनेमें समर्थ न होंगे। भारतवर्ष स्वाधीन होकर रहेगा। भारतवर्षके ११२ सम्पादकोंके हस्ताक्षरसे, कांग्रेसके नेताओंको मुक्त कर देनेके लिए जो आवेदनपत्र भेजा गया था, उसकी प्रशंसा करते हुए सर रिचर्डने कहा है कि उसमें जो अकृत्रिम स्वदेश-प्रेम और सहयोगकी भावना व्यक्त की गयी है, उसपर उदारतासे विचार करनेकी बातको लार्ड वावेलने क्यों अस्वीकार कर दिया, यह बात समझमें नहीं आयी। मैंने कई बार कहा है कि भारतवासी विदेशी प्रभुत्वसे मुक्त होनेके लिए कटिबद्ध हैं। इसलिए हमें इस सम्बन्धमें उनकी मांगपर उचित विचार करना चाहिए। दुर्भाग्यवश लार्ड वावेलको अधिकार नहीं कि वह स्थितिमें किसी तरहका परिवर्तन कर सकें। वह तो मेसर्स चर्चिल-एमरीके आदेशपालक मात्र हैं। ब्रिटिश साम्राज्यवादी नेताओंकी इच्छाके विरुद्ध कुछ करनेकी क्षमता उनमें नहीं है। संसारमें चाहे जो परिवर्तन हो, ये भारतको स्वाधीन करनेको तैयार नहीं हैं। पर जैसा कि कामनवेल्थ पार्टीके दूरदर्शी नेताने कहा है, भारतवर्ष युद्धके बाद अवश्य स्वाधीन होकर रहेगा।

महात्माजीका स्वास्थ्य

गत १३ अप्रैलको बम्बई-सरकारकी ओरसे विज्ञप्ति प्रकाशित कर बतलाया गया था कि महात्मा गांधी पिछले तीन दिनोंसे मलेरिया ज्वरसे पीड़ित हैं, पर उनकी अवस्था आशानुरूप सन्तोषजनक है। कुछ दिन पूर्व भारतीय व्यव-स्थापिका परिषदमें एक प्रश्नके उत्तरसे हमें ज्ञात हुआ था कि भारत-सरकार महात्माजीको पूनाके आगा खां महल-से अन्यत्र स्थानान्तरित करनेका विचार कर रही है। कांग्रेस कार्यसमितिके अधिकांश सदस्य, राष्ट्रपति मौलाना आजाद, पण्डित जवाहरलाल नेहरू आदि इस समय अहमद नगर जेलमें बन्द हैं। महात्माजीको वहां, अथवा और किसी जगह स्थानान्तरित किया गया है या नहीं, और वह इस समय कहां हैं, इस सम्बन्धमें बम्बई सरकारने अपनी विज्ञप्तिमें कुछ प्रकाश नहीं डाला है। आगा खां महलमें अवरुद्ध अवस्थामें ही, महात्माजीको श्री महादेव देसाईका वियोग सहना पड़ा है। उसके बाद उसी अवस्थामें उनकी जीवन-सङ्गिनी कस्तूरी बाने शरीर त्याग किया। महात्मा-जी धैर्यवान व्यक्ति हैं, परन्तु अब वह वृद्ध हो गये हैं। इसी वृद्धावस्थामें उन्हें एकके-बाद-एक, अपने दो प्रियजनोंका मृत्यु-शोक सहन करना पड़ा है। उसपर उनकी अस्वस्थता-के समाचारसे देशवासी और भी चिन्तित हैं। महात्माजी तथा अन्य बन्दी कांग्रेस-नेताओंकी रिहाईके लिए सभी सम्प्रदाय और दलके व्यक्तियोंने सरकारसे अनुरोध किया है। पर ऐसा प्रतीत होता है कि इस सम्बन्धमें मेसर्स चर्चिल-एमरी द्वारा प्रभावित ब्रिटिश मन्त्रिमण्डलके मनो-भावमें किसी तरह भी कुछ परिवर्तन होनेकी सम्भावना नहीं है। भारतमन्त्री मि० एमरीने तो भारतकी आकांक्षाओं-का विरोध करनेका अपना नित्यका कर्तव्य बना लिया है। इधर, आज विदेशी शत्रु भारतके द्वारपर आकर खड़ा है। जापानने भारतकी सीमा पारकर मणिपुर राज्यमें प्रवेश किया है। हम जानते हैं कि उनकी अग्रगति रोकनेके लिए मित्र-राष्ट्रोंकी ओरसे यथेष्ट सैनिक तैयारी की गयी है, किन्तु इसके लिए देशकी राजनीतिक अवस्थाके महत्वका भी एक विशिष्ट स्थान है। ब्रिटिश सरकार उस ओर बिल्कुल उपेक्षा दिखला रही है। महात्मा गांधी तथा अन्य कांग्रेस नेताओंको मुक्त कर, यदि देशवासियोंका पूर्ण सह-योग प्राप्त करनेकी चेष्टा की जाती, तो सामरिक दृष्टिसे भारत-रक्षाकी शक्तिमें और भी वृद्धि होती। पर ब्रिटिश

सरकारमें उतनी सुबुद्धि कहां कि वह कांग्रेस-नेताओंको मुक्त कर जाग्रत भारतकी समस्त शक्ति लगाकर जापानियोंका प्रतिरोध करे। इसके विपरीत वह तो अपने स्वार्थके लिए लोकमतकी अवहेलना कर, अपनी भ्रान्त नीतिपर अटल है।

वे अब नहीं हैं!

विगत पन्द्रह दिनोंमें देशके जिन प्रमुख महारथियोंने अपनी इहलीला समाप्त की, उनमें अखिल भारतीय कांग्रेसके भूतपूर्व सभापति डा० सी० विजय राघवाचार्यका एक महत्वपूर्ण स्थान है। आप कई महीनोंसे रोगशय्या पर पड़े थे और अन्तमें विगत १९ अप्रेलकी रात्रिमें मृत्युने आपको हमसे छीन लिया। देहावसानके समय आप जीवनके ९२ वर्ष समाप्त कर चुके थे।

राष्ट्रीय महासभाके निर्माण और विकासमें श्री० राघवाचार्यका अपना निजी स्थान रहा है। कांग्रेसकी सेवामें आपने जिस त्याग और तपस्याका दृष्टान्त हमारे सामने रखा था, वह सदा स्तुत्य और अनुकरणीय है।

सन् १८५२ ई० में अर्थात भारतीय स्वतन्त्रताके १८५७ वाले संग्रामसे कुछ ही वर्ष पहले आपका जन्म हुआ था। मद्रासमें शिक्षा पानेके बाद आपने सलेममें वकालत शुरू की थी। सन् १८९९ में आप मद्रास प्रांतीय कौंसिलके सदस्य नियुक्त किये गये। सन् १९१३-१६ तक आप केन्द्रीय असेम्बलीके सदस्य रहे। देशमें जब रौलेक्ट एक्टके विरोधमें सर्वव्यापी आन्दोलन आरम्भ हुआ था, आपने महात्मा गांधीसे सत्याग्रह-विज्ञानकी पूरी योजना तैयार करनेका अनुरोध किया, पर गांधीजी उस समय इस कठिन कार्यको सम्पन्न न कर सके। फिर भी उनके मस्तिष्कमें यह विचार-धारा प्रबल वेगसे काम कर रही थी और फलस्वरूप सन् १९२० में खिलाफत और जलियांवाला बाग-हत्याकाण्डके प्रश्नोंको लेकर असहयोग आन्दोलनका जन्म हुआ। असहयोग आन्दोलनके प्रारम्भमें श्री० विजय राघवाचार्य और गांधीजी में थोड़ा सैद्धान्तिक विरोध था। श्री० विजय राघवाचार्य चाहते थे कि केवल स्वराज्यके प्रश्नको लेकर ही सत्याग्रह किया जाय। फिर भी, इस मतभेदके रहते हुए भी, आपने भारतीय कांग्रेसके नागपुर वाले अधिवेशनके अध्यक्ष-पदसे उसका कार्य-सञ्चालन किया और कांग्रेसने आपकी ही अध्यक्षतामें अहिंसात्मक असहयोगको अपना राष्ट्रीय शस्त्र स्वीकार किया था।

श्री० विजय राघवाचार्यका समस्त जीवन निस्वार्थ त्याग और अविरल तपस्याकी एक अविश्रान्त धारा है। आपने जीवन भर कांग्रेसका समर्थन किया और उस समर्थनमें बहुत बार आपने अपनी अन्तरात्माकी स्वतन्त्र वाणीको दबा दिया। आपका सिद्धान्त यह था कि व्यक्तिगत विचार अथवा सिद्धान्तसे कांग्रेस बहुत ऊंची है और प्रत्येक राष्ट्र-सेवीका यह कर्तव्य है कि वह अपने व्यक्तित्वको राष्ट्रके सामूहिक व्यक्तित्वमें विलीन कर दे।

आज आप हमारे बीचमें नहीं हैं। आप उन महान् विभूतियोंके लोकमें हैं, जहां जीवनके दुख-सुख, शोक-सन्ताप, प्यार-घृणा शिथिल हो जाती है तथा जहां मानव-जीवन-धाराके शाश्वत-आलोकको मृत्युके अन्धकारकी धूमिल-छाया स्पर्श नहीं करती। फिर भी सिद्धोंके उस लोकसे आप सदा मानवताके और विशेषतः भारतीय-मानवके विषाद और विदग्धताको दूर करेंगे, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।

जीवनके उस ओर!

जीवनकी सीमितता और विवशताओंपर मृत्युके अभिनयकी एक दूसरी मर्मस्पर्शी कहानी भी हमारे सामने प्रकट हुई है। अभी श्री० विजय राघवाचार्यकी मृत्युके शोकसे हम विह्वल ही थे कि हमपर काशीके परम देशभक्त और दानी बाबू शिवप्रसादजी गुप्तकी मृत्युका वज्राघात हुआ। विगत १२ वर्षोंसे आप लकवेसे पीड़ित थे और अन्तमें विगत २४ वीं अप्रेलको प्रातः काल ६ बजके ४९ मिनटपर आप सदाके लिये रोगके कष्टोंसे मुक्त हो गये। मृत्युके समय आपकी आयु साठ वर्ष, दश मास थी। आपकी सुयोग्य पत्नी और जीवन संगिनीकी मृत्यु ठीक ग्यारह महीने पहले हुई थी।

बाबू शिवप्रसादजी गुप्त केवल देशके एक महान् राष्ट्रीय नेता ही नहीं थे, वरन् भारतके प्रसिद्ध दानवीरों तथा राष्ट्र-भाषा हिन्दीके अन्यतम पुजारियोंमें आपका निजी स्थान था। त्याग और सेवा ही आपके जीवनका मूल-मन्त्र था और राष्ट्र, समाज तथा हिन्दी-साहित्यकी विभिन्न-सेवाओंमें आपने इस मन्त्रका सुन्दरतम रूपसे उपयोग किया था। अखिल भारतीय कांग्रेसकी कार्य-समितिके आप सदस्य रह चुके थे। आप एक उच्च श्रेणीके ग्रन्थकार भी थे। आपके द्वारा लिखित पुस्तकोंमें "विश्व-भ्रमण" अत्यन्त प्रसिद्ध है। बहुत बड़ी रकम खर्च करके आपने काशीमें भारत-माताका एक मन्दिर स्थापित किया था, जो भारतमें अपने ढङ्गकी एक अनूठी वस्तु है। आपकी देशभक्ति

स्तुत्य और अनुकरणीय है। पर साथ ही आपका शिक्षा-प्रेम तथा हिन्दी-प्रेम अपने ढङ्गका अपना ही दृष्टान्त है। लाखों रुपये दान देकर आपने काशीमें ज्ञान-मण्डल एवं ज्ञान-मण्डल यन्त्रालयकी स्थापना की थी, जिससे आज लगभग २४ वर्षोंसे 'आज' का प्रकाशन होता है। ज्ञान-मंडलके द्वारा हिन्दी साहित्यकी बहुतसी उपयोगी पुस्तकोंका प्रकाशन हुआ है। पर गुप्तजीकी सेवाएं ज्ञान-मण्डल तक ही सीमित नहीं हैं। लाखों रुपये लगाकर आपने काशी

स्व० बाबू शिवप्रसाद गुप्त

विद्यापीठको जन्म दिया तथा उसका सुचारु-सञ्चालन भी किया। देशकी राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाओंमें काशी विद्यापीठका जो कुछ भी महत्वपूर्ण स्थान था, उसका अधिकांश श्रेय श्री गुप्तजीको ही था। गुप्तजीका स्थान उन निस्पृह राष्ट्रकर्मियोंमें और सेवक-सन्तोंमें है, जिनकी समस्त सेवायें जीवनके अर्घ्य रूपमें मौन रूपसे भगवानको समर्पित होती हैं। यदि भारतके धनी और सम्पन्न व्यक्तियोंका चतुर्थांश भी गुप्तजीका अनुकरण करे, तो यह पृथ्वी स्वर्ग हो जाय और निश्चय वर्त्तमान मानवकी विद्रोही और प्रतिकारपूर्ण विचार-धारा किसी अमर-सत्य और असीम-सुन्दरकी खोजमें परिणत हो जाय।

श्री० विजय राघवाचार्यकी भांति गुप्तजी किसी स्थान एवं प्रान्त विशेषके नहीं कहे जा सकते। वे समस्त भारत की सम्पत्ति—समस्त भारतकी अमूल्य धरोहर थे और उनकी मृत्यु अखिल भारतकी एक अत्यन्त दुखद घटना है। हम नहीं जानते, उस महान् दिवंगत आत्माके क्षुब्ध परिवारको इस अवसरपर कैसे धैर्य और सांत्वना दें, जब कि हम स्वयं उनके निधनसे दुखी और सन्तप्त हैं। पर यदि एक रोनेवाला दूसरे रोनेवालेको धीरज बंधा सकता है तो हमारी प्रत्येक सहानुभूति गुप्तजीके काशी-स्थित परिवारसे है।

दो प्रमुख पत्रकारोंका देहावसान

विगत माहमें दो महान राष्ट्रीय-सेवकोंकी मृत्युके अतिरिक्त दो प्रमुख पत्रकारोंके देहावसानकी दुखद घटनायें भी घटीं। बङ्गलाके स्थानीय सुप्रसिद्ध और लोक-प्रिय दैनिक "आनन्द बाजार पत्रिका" के संस्थापक और आदि सम्पादक तथा बङ्गलाके ख्यातनामा साहित्यकार श्री प्रफुल्लकुमार सरकारका एकसठ वर्षकी अवस्थामें विगत १३ वीं अप्रेलको कलकत्तेमें स्वर्गवास हो गया। सरकार महोदय इधर कुछ दिनोंसे यकृत रोगसे पीड़ित थे और वायु-परिवर्तनके विचारसे बिहारके देवघर नामक स्थानमें गये थे, परन्तु दवा करानेके लिए आपको पुनः कलकत्ता वापस आना पड़ा। आप दुग्ध-चिकित्सा करा रहे थे तथा डाक्टर विधानचन्द्र रायका भी इलाज हो रहा था, पर कोई फल न निकला और मृत्युने बरबस आपको हमसे छीन लिया।

"आनन्द बाजार पत्रिका" बङ्गलाका सर्वमान्य और सर्वश्रेष्ठ पत्र है। इसकी लोक-प्रसिद्धि और लोक-प्रियताका अधिकांश श्रेय श्रीयुत सरकार महोदयको ही है। अपने अथक परिश्रम, अदम्य उत्साह और गम्भीर अध्ययनके द्वारा ही आपने इसे बङ्गलाका अद्वितीय पत्र बनाया था। आपकी असामयिक मृत्युसे बङ्गला पत्रकार-कलाकी जो महान् क्षति हुई है, वह शीघ्र ही पूरी नहीं की जा सकती। पत्रकारके अतिरिक्त, जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, सरकार महोदय साहित्य और चित्र-कलाके एक सुन्दर मर्मज्ञ और पारखी थे। इतिहास, समाज-शास्त्र, राजनीति, साहित्य, दर्शन और चित्र-कलामें आपका समान रूपसे व्यापक-प्रवेश था। आप एक प्रमुख राष्ट्रकर्मी तथा समाज-सुधारक थे। साथ ही हिन्दू-संस्कृतिपर आपका दृढ़ विश्वास और असीम आस्था थी! बङ्गलामें लिखा हुआ 'मरणासन्न हिन्दू' नामक आपकी पुस्तक बहुत प्रसिद्ध है।

सरकार महोदयकी मृत्युके बाद विगत २६ वीं अप्रेल के प्रातःकाल बङ्गला "बसुमती" के सञ्चालक श्री सतीशचन्द्र मुकर्जीका ५३ वर्षकी अवस्थामें स्वर्गवास हो गया। यों तो कुछ दिनोंसे आपका स्वास्थ्य गिर रहा था, पर हालमें अपने इकलौते पुत्रकी मृत्युसे इनके स्वास्थ्यको बहुत धक्का लगा। श्री सतीशचन्द्र मुकर्जी ऊंचे दर्जेके पत्रकार और साहित्य-सेवी थे और बङ्गलामें इने-गिने पत्रकार हैं जो इनकी तुलनामें आ सकते हैं।

उपरोक्त दोनों पत्रकार महानुभावोंकी मृत्युमें हम उनके शोक-सन्तप्त परिवारसे अपनी सहानुभूति प्रकट करते हैं तथा दिवंगत आत्माओंकी चिर-शान्तिके लिए भगवानसे प्रार्थना करते हैं।

प्रान्तीय मन्त्रीकी बर्खास्तगी

हालमें पञ्जाबके गवर्नरने वहांके एक मन्त्री सरदार शौकत हयात खांको बर्खास्त कर दिया है। सरदार शौकत हयात खांकी बर्खास्तगीसे एक विचित्र और मनोरञ्जक वैधानिक उलझन उपस्थित हो जाती है। सरदार शौकत हयात खांकी बर्खास्तगीके सम्बन्धमें केवल इस बातके, कि वे "एक घोर अन्याय" के अपराधी थे और कुछ भी पञ्जाब सरकारके द्वारा नहीं बतलाया गया। जबतक पञ्जाब सरकार उस सम्बन्धमें किसी विस्तृत वक्तव्यके द्वारा अपनी स्थिति स्पष्ट नहीं करती, तबतक यह कहना कठिन है कि पञ्जाबके गवर्नरने अपने इस मौलिक कार्यवाहीमें किस सीमा तक अपने अधिकार तथा दायित्वका उचित रूपसे पालन किया है। इसमें सन्देह नहीं कि इधर सरदार शौकत हयात खां मि० जिन्नाकी देश-द्रोही और घातक नीतिका अनुसरण कर पञ्जाबके यूनियनिस्ट मन्त्रि-मण्डल और विशेषकर अपने प्रधान मन्त्रीका विरोध करने लगे थे। केवल यही बात पर्याप्त थी कि उन्हें त्याग-पत्र देनेके लिये विवश किया जाय और उनकी अस्वीकृतिपर उन्हें पदच्युत कर दिया जाय, पर पञ्जाब सरकारने ऐसी कोई बात स्पष्ट नहीं की।

फिर भी प्रश्न यह उठता है कि क्या कोई प्रान्तीय मन्त्री ठीक उसी प्रकार बर्खास्त किया जा सकता है, जिस प्रकार साधारण सरकारी कर्मचारी ? सच बात तो यह है, किसी भी राजनीतिक मतभेद अथवा असुविधाजनक परिस्थितिमें किसी विशेष प्रान्तीय मन्त्रीके हटानेका साधारण तरीका यह है कि उसे त्याग-पत्र देनेको कहा जाय और यदि वह ऐसा करनेसे इनकार करे, तो उस स्थितिमें गवर्नर अपने विशेषाधिकारका उपयोग कर उसे बर्खास्त कर सकता है। परन्तु इसके विपरीत उसे बर्खास्त करना कई कारणोंसे वर्त्तमान शासन-विधानकी भावनाओंके विरुद्ध है। किसी भी प्रान्तीय मन्त्रीकी स्थिति साधारण सरकारी कर्मचारीकी भांति नहीं है। अन्य सरकारी कर्मचारियों की भांति उसकी नियुक्ति दर्खास्त देनेपर नहीं होती और न उसे उन कारणोंसे बर्खास्त ही किया जा सकता है, जिन कारणोंसे अन्य सरकारी कर्मचारी बर्खास्त किये जा सकते हैं, जैसे कर्त्तव्य-पालनका अभाव, अपनेसे बड़े अधिकारियोंकी अवज्ञा; इत्यादि, इत्यादि। कोई भी मन्त्री जनताका प्रतिनिधि है और वह जनता तथा किसी राजनीतिक दल-विशेषके प्रतिनिधिके रूपमें मन्त्रिमण्डलमें प्रवेश करता है। कोई भी गवर्नर अथवा सम्राट्की सरकारका उच्चतम अधिकारी उसकी इस प्रकारकी नियुक्तिमें बाधक नहीं हो सकता, इस दशामें उसकी नियुक्ति सरकारकी इच्छापर नहीं, वरन् जनता और बहुमत वाले राजनीतिक दलकी इच्छापर है और इसी दृष्टिकोणसे उसकी अपनी विशेष मर्यादा है। यदि किसी कारणसे वह अपने साथी मन्त्रियोंको सहयोग न दे सका अथवा उनसे उसका अनिवार्य मतभेद हो गया, उस दशामें साधारण तरीका यह है कि वह त्याग पत्र दे दे, और यदि वह ऐसा करनेसे इनकार करे, तो उस अवस्थामें प्रधान-मन्त्री गवर्नरको उसे पदच्युत करनेकी सलाह दे सकता है।

हमें यह बात मालूम नहीं कि सरदार शौकत हयात खांको त्याग-पत्र देनेके लिये कहा गया था नहीं और यदि कहा गया, तो उन्होंने ऐसा किया या नहीं। यदि उनसे त्याग-पत्र देनेके लिये कहा गया हो और उन्होंने ऐसा करनेसे इनकार कर दिया हो, तो उनकी बर्खास्तगी जायज है, परन्तु यदि इसके विपरीत उन्हें त्याग-पत्र देनेके लिए नहीं कहा गया हो, तो वैधानिक दृष्टिसे दो प्रश्न उपस्थित होते हैं। पहला यह कि पञ्जाबके प्रधान-मंत्री मि० खिजर हयात खांने गवर्नरको सलाह दे, उनके द्वारा सरदार शौकत हयात खांको बर्खास्त कराकर मन्त्रित्वकी पवित्र मर्यादाको तिरस्कृत रूपसे नीचे गिरा दिया है और प्रधान-मन्त्रित्वके अपने अत्यन्त महान् उत्तरदायित्वकी अवहेलना की है। दूसरा यह कि पञ्जाबके गवर्नरने वहांके प्रधान-मन्त्री खिजर हयात खांकी राय लिये बिना यदि किसी अन्यायपूर्ण कार्यके लिए सरदार शौकत हयात खांको मन्त्रित्वसे पदच्युत किया है, तो उनका यह कार्य वैधानिक नहीं है और इस कारण अनुचित है।

हमारा तात्पर्य यह नहीं कि हम सरदार शौकत हयात खांकी वकालत करते हैं। उनके दृष्टिकोणसे हमारा सर्वथा मतभेद है। उनकी नीतिको हम बुरा और देश-द्रोहपूर्ण समझते हैं। फिर भी हम यह नहीं चाहते कि राजनीतिक मतभेदोंके लिए मन्त्रित्वकी मर्यादापर आघात किये जायं तथा अधिकारियोंके द्वारा ऐसे कार्य हों, जिन्हें वैधानिक दृष्टिसे अनुचित तथा अशिष्ट कहनेमें किसी प्रकार संकोच न हो।

'विश्वमित्र' प्रेस, १४।१ ए, शम्भू चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्तासे नवलकिशोर सिंह द्वारा मुद्रित और प्रकाशित।

सचित्र मासिक
जून
१९४४
विश्वमित्र
मूल्य
॥)
विश्वमित्र कार्यालय
कलकत्ता

सम्पादक—
रामाशीष सिंह

जून, १९४४ वर्ष १२, संख्या ९ ज्येष्ठ, २००१

गीत

जीवन का प्रतिपल अगर-धूम
रे, प्रतिपल होता आराधन !
कब हुई चेतना लुप्त देव !
सपनों में भी तो पास रही
वंदन के स्वर में बार-बार
आती-जाती यह श्वास रही।
वह रूप देखने को असीम
प्रतिपल मुँदते-खुलते लोचन
रे, प्रतिपल होता आराधन !

आलोक उसीका मधुर हास
तम जिसका अवगुंठन अपार
दोनों की छायामें विभोर
मैं बनता जाता निराकार—
पूजा-प्रदीप की ज्यों अधीर
अन्तिम लौ का अन्तिम कम्पन
रे, प्रति पल होता आराधन !

मैंने 'मैं' का जो रचा जाल
वह एक कल्पना, एक गीत
मनमें इस 'मैं' से भी समीप
बैठा कोई वर्णनातीत
ले रहा वही युग-कर पसार
कल आँसू-सुमनों का अर्पण
रे, प्रति पल होता आराधन !

केदारनाथ मिश्र एम० ए० 'प्रभात'

मौर्य-कालमें राजकीय आयके साधन

श्री ब्रजकिशोर वर्मा 'श्याम'

राजकीय आय राष्ट्रकी उन्नतिका एक प्रधान साधन है। सभी युगों और सभी देशोंके राजाओंको राजकीय आयपर ध्यान देना पड़ता है। व्यक्ति और राष्ट्र, दोनोंका आर्थिक सिद्धान्त प्रायः एक-सा होता है। वस्तुतः राष्ट्रके जीवनमें आर्थिक स्वाधीनता ही स्वतन्त्रताका वास्तविक आधार है, क्योंकि 'सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति'। मौर्य-कालमें राजाकी आयकी जानकारीके लिए, कौटिल्य अर्थशास्त्र सबसे प्रमाणित ग्रन्थ है। इस अर्थशास्त्रको मौर्यकालका 'इम्पीरियल गैजेटियर' तक कहते हैं। कौटिल्यने मौर्य-काल के राजकीय आयके स्रोतोंको सात भागोंमें विभक्त किया है। ये सात आयके स्रोत इस प्रकार हैं—दुर्ग, राष्ट्र, खनि, सेतु, वन, व्रज, तथा वाणिक् पथ। लेकिन हम इन स्रोतोंके अनुशीलनके लिए कौटिल्यके विभागका उपयोग न करके वर्तमान परिपाटीका अनुसरण करना अधिक अच्छा समझते हैं। कारण, राजस्व-शास्त्रके विशेषज्ञोंको, इसमें विशेष आनन्द प्राप्त होगा और इससे विषयका स्पष्टीकरण भी अच्छी तरह हो जायगा। अतः हम राजकीय आयके स्रोतोंको निम्नलिखित भागोंमें विभक्त कर उनपर विचार करेंगे। (१) भूमिकर, (२) आयात और निर्यात कर, (३) बिक्रीपरके करसे आय, (४) प्रत्येक कर, (५) राज्य द्वारा अधिकृत व्यवसायोंकी आय, (६) राज्य-द्वारा अधिकृत व्यापारों और व्यापार-साधनोंकी आय, (७) जुरमानोंसे आय, (८) विविध, (९) आपत्तिकालमें सम्पत्तिपर विविध प्रकारके कर।

भूमिकर

भूमिकर सदाकी भांति मौर्य-कालमें भी आयका प्रधान मार्ग था। मौर्य-कालमें भूमि राज्यकी सम्पत्ति थी या नहीं, इस विषयमें मतभेद है। कौटिल्यके अर्थशास्त्रमें इस प्रकारके निर्देश मिलते हैं, जिनसे पता चलता है कि भूमिपर राज्यका ही स्वत्व था। राज्यकी ओरसे कृषकोंको खेत मिलते थे, वे खेत वंश-परम्पराके साथ न चलते थे, और जो व्यक्ति खेती न करते थे, उनसे भूमि छीन ली जाती थी। लेकिन जहां यह है, वहीं ऐसे निर्देश मिलते हैं, जिनसे यह प्रतीत होता है कि भूमि जनताकी वैयक्तिक संपत्ति होती थी। भूमिसे जो आय होती थी, वह दो प्रकार की थी—सीता और भाग। जिस भूमिपर राज्यकी मिलकियत होती थी, उसकी आयको सीता कहते थे। जिस भूमिपर कृषकोंकी मिलकियत होती थी, उससे सरकार एक निश्चित भाग लिया करती थी। राज्यकी भूमिमें खेती करवानेके लिए एक अलग राज-कर्मचारी होता था। उसे 'सीताध्यक्ष' कहते थे। भूमिके मालिक किसानोंको 'स्ववीर्योपजीवी' कहते थे। कौटिल्य लिखता है—"जब भूमिको बेचनेका प्रश्न उपस्थित हो, तो पहले सम्बन्धियोंसे खरीदनेके लिए कहा जाय। उनमेंसे किसीके तैयार न होनेपर पड़ोसियोंसे कहा जाय। उनके भी तैयार न होनेपर धनिकसे कहा जाय।" इसका यह स्पष्ट अभिप्राय है कि व्यक्तियोंके पास अपनी भूमि भी होती थी, और उसको वे बेच भी सकते थे।

मौर्यकालमें नियमित रूपसे भूमिकी नाप होती थी। उसका समय-समयपर नया बन्दोबस्त भी किया जाता था। यह बन्दोबस्त कितने समयके लिए होता था, इसका पता अर्थशास्त्रसे नहीं लगता। परन्तु यह तो स्पष्ट ही प्रतीत होता है कि नये बन्दोबस्तके समय करमें परिवर्त्तन आदि किये जाते थे।

भूमिका जो कर लिया जाता था, उसकी मात्रा बहुत अधिक होती थी। जो कृषक सर्वथा स्वतन्त्र होते थे, जो पानीका प्रबन्ध भी स्वयं करते थे, उनसे उनकी जमीनके अनुसार कुल उपजका $\frac{1}{6}$ या $\frac{1}{4}$ भाग भूमि-करके रूपमें लिया जाता था। जो सिंचाईके लिए राज्यसे सहायता लेते थे, उनसे भूमि-करकी दर और थी। जिन खेतोंको हाथसे पानी भरकर सींचा जाता था, उनसे $\frac{1}{5}$ भाग, जिनको बहंगीसे पानी भर कर सींचा जाता था, उनसे $\frac{1}{4}$ भाग, जिनमें सिंचाईके लिए पम्प लगे होते थे, उनसे $\frac{1}{3}$ भाग और जिनमें नदीके पानीसे सिंचाई होती थी, या कूप और तालाब बने होते थे, उनसे $\frac{1}{4}$ भाग भूमि-कर लिया जाता था।

दुर्भिक्ष आदिके समय भूमि-कर माफ भी कर दिया जाता था। कौटिल्यने और भी अनेक ऐसी अवस्थाओंका उल्लेख किया है, जिनमें कर माफ कर दिया जाता था। एक स्थानपर लिखा है—"यदि कोई तालाब या पक्के मकानको, नये सिरेसे बनवाये, तो उसको पांच वर्षके लिए

राज्य-करसे मुक्त किया जाय। टूटे-फूटेके सुधारनेमें ४ वर्ष तक और बने हुएको बढ़ानेमें तीन वर्ष तक राज्य-कर न लिया जाय। यदि किसीने ऐसी जमीन गिरवी रखी या बेची हो, जो खेतीके लिए तैयार न हो, तो उस खेतसे दो साल तक राज्य-कर न लिया जाय।"

आयात और निर्यात-कर

मौर्य-कालमें आयात और निर्यात-कर भी राजकीय आयका आवश्यक अङ्ग समझा जाता था। कौटिल्य कहता है, शुल्क दो प्रकारके होते हैं—निष्क्राम्य (Export duty) और प्रवेश्य (Import duty)। मौर्य-कालमें आयात माल पर साधारणतः $\frac{1}{5}$ या २० प्रतिशत कर लिया जाता था। पर इस सामान्य नियमके अपवाद भी थे। पुष्प, फल, शाक, मूल, कन्द, पालक, बीज, सूखी मछली और मांसपर $\frac{1}{6}$ या १६$\frac{2}{3}$ प्रतिशत कर लिया जाता था। शङ्ख, हीरा, मणि, मोती, मूंगा तथा हारके लिए इन कामोंके करने वाले जानकार चुङ्गी नियत करते थे। सनिया, मलमल, रेशमीमाल, कवच, हड़ताल, मैनसिल, लोहा, रङ्ग बनानेकी धातुएं, चन्दन, अगर, मिर्च, मद्य-सामग्री, परदा, शराब, दांत, चमड़ा, रेशेदार पदार्थ, पतला कपड़ा, गलीचा, ऊपर डालनेका विशेष कपड़ा, ऊनका बना वस्त्र तथा क्रिमियोंसे बनाये वस्त्र, इनपर $\frac{1}{10}$ और $\frac{1}{15}$ अर्थात् १० प्रतिशत और ६-७ प्रतिशत कर लिया जाता था। साधारण वस्त्र, दो पैरके पशु, चौपाये, सूत, रूई, गन्ध, दवा, लकड़ी, बांस, वल्कल, चमड़ा, मिट्टीके बर्तन, धान्य, तेल, घृत, खार, नमक, मिठाई आदिपर ५ प्रतिशत या ४ प्रतिशत कर लिया जाता था। इतना ही नहीं, इस आयात-करके सिवा मालके नगर-द्वारमें प्रविष्ट होनेपर आयात-करका $\frac{1}{5}$ भाग और चुङ्गीके नामसे लिया जाता था। इस द्वार-देय चुंगीको भिन्न देशोंके अनुसार, कम भी किया जाता था। जो देश मौर्य-साम्राज्यके मालके साथ रियायत करते थे, मौर्य-साम्राज्यमें भी, उनके इस द्वार-देय चुङ्गीमें रियायत की जाती थी।

देश और जातिके अनुसार केवल द्वार-देय चुंगीमें ही रियायत नहीं की जाती थी, आयात-करपर भी की जाती थी। चाणक्य कहता है—"देश और जातिके चरित्रके अनुसार नये और पुराने मालपर शुल्क स्थापित करे, और अन्य देशोंके अपकार करनेपर शुल्कको बढ़ा दे।" इसका अभिप्राय यही है कि रियायती कर मौर्यकालमें भी विद्यमान था, और शत्रु देशों या अपकारक देशोंपर आयात कर बढ़ा भी दिया जाता और कम भी कर दिया जाता था।

जिन पदार्थोंपर राज्यका एकाधिकार होता था, उनके विदेशोंसे स्वदेशमें आनेपर आयात-कर और द्वार-देय करके सिवा अन्य कर भी लिया जाता था। उदाहरणके लिए नमकके ही व्यवसायको ले लीजिए। उसपर राज्यका एकाधिकार था। जब विदेशी नमक स्वदेशमें आता था, तब उसपर १६$\frac{2}{3}$ प्रतिशत—आयात-कर लिया जाता था। इसके सिवा ३$\frac{1}{3}$ प्रतिशत द्वार-देय चुङ्गी भी ली जाती थी। और इसके साथ ही, उतना हरजाना भी देना पड़ता था, जितनी विदेशी नमकके आनेसे राजकीय नमकके व्यवसाय को हानि पहुंची हो। इसी तरह शराब, तेल आदि राजकीय एकाधिकृत व्यवसायोंके आयातपर भी राज्य हरजाना लेता था।

आयात करकी जो मात्रा हमने देखी है, उससे अनुमान तो ऐसा होने लगता है कि मौर्य-कालमें संरक्षण नीतिका अनुसरण किया जाता था, पर वास्तवमें बात ऐसी नहीं है। आयात-करका उद्देश्य संरक्षण नहीं था, केवल आय और कोष-वृद्धिकी दृष्टिसे ही आयात और निर्यात कर लगाया जाता था। इतना ही नहीं, भिन्न उपायोंसे विदेशी व्यापारको बढ़ानेका भी यत्न किया जाता था। कौटिल्य लिखता है—'विदेशी मालको अनुग्रहसे स्वदेशमें प्रवेश कराया जाय। इसके लिए नाविकों तथा विदेशी मालके व्यापारियोंको लाभके अनुसार चुङ्गी माफ कर दी जाय। विदेशी माल लानेवालोंपर मुकदमे न चलाये जायं, सिवा उस हालतमें, जब कम्पनीके हिस्सेदारोंको लाभ होता हो।' इस तरहके और भी निर्देश आते हैं, जिनसे यही पता लगता है कि जानबूझ कर विदेशी मालके आयातको उत्साहित किया जाता था। विदेशी मालके व्यापारियों-को अनेक प्रकारकी सुविधाएं दी जाती थीं और यह प्रयत्न किया जाता था कि विदेशी व्यापारियोंको नुकसान न हो। मौर्य-कालमें मुक्त-द्वार वाणिज्य की ही नीति थी। संरक्षण-की नहीं। पर राजकीय आयके लिए भारी आयात-कर लिए जाते थे। किन्तु आयात-करकी मात्राके द्रव्यानुसार कम-अधिक होनेसे, यह भी सम्भव है कि इन न्यूनाधिक करोंका निश्चय किसी सिद्धान्तके आधारपर किया जाता रहा हो, और वह सिद्धान्त यही हो सकता है कि स्वदेशी व्यवसाय कहीं नष्ट न हो जांय।

स्वदेशी मालको विदेशोंमें बिकवानेके लिए अनेक प्रकारसे यत्न किया जाता था। पण्याध्यक्ष एक विशेष कर्मचारी होता था, जिसका अन्य कार्योंके साथ यह भी कार्य होता था कि स्वदेशी मालको विदेशोंमें बिकवानेका प्रयत्न करे। चाणक्य लिखता है—"पर देशमें व्यापारके लिए पण्य एवं प्रति पण्यके मूल्यमें से चुङ्गी, सड़क-कर, गाड़ीका खर्च, छावनीका कर, नौकाके भाड़े आदिका खर्च घटाकर शुद्ध लाभका अनुमान करे। यदि इस ढङ्गपर लाभ न मालूम पड़े, तो यह देखे कि स्वदेशी चीजके बदलेमें कोई ऐसी विदेशी चीज ली जा सकती है कि नहीं, जिससे लाभ हो।"

बिक्रीपरके करसे आय

मौर्य-कालमें बिक्रीपर चुङ्गी ली जाती थी। आचार्य कौटिल्यका कहना है कि उत्पत्ति-स्थानपर कोई भी पदार्थ बेचा नहीं जा सकता। कोई भी बिक्री चुङ्गीसे बच न सके, इसीलिए यह नियम बनाया गया था। जो इस नियमका उल्लङ्घन करते थे, उनपर जुर्माना किया जाता था। इन जुर्मानोंकी मात्रा बहुत अधिक थी। खानोंपरसे खनिज पदार्थ खरीदने पर ६०० पण, बगीचेसे फूल-फल लेने पर ५४ पण, शाकके खेतोंपरसे शाक, मूल तथा कन्द लेनेपर ५१$\frac{३}{४}$ पण, तथा खेतोंपरसे नाज मोल लेनेपर ५३ पण जुर्माना किया जाता था। उत्पत्ति-स्थानपर सीधा क्रय-विक्रय नहीं हो सकता था, क्योंकि इससे राजकीय आयको हानि होती थी। इसलिए सब माल पहले शुल्काध्यक्षके पास, चुङ्गीघरमें लाया जाता था। वहींपर चुङ्गी ली जाती थी। फिर उसपर सिन्दूरसे अभिज्ञान-मुद्रा लगायी जाती, तभी कोई माल बिक सकता था, अन्यथा नहीं।

चाणक्यने चुङ्गी घरका वर्णन बड़े मनोरञ्जक ढङ्गसे किया है। वह लिखता है, "शुल्काध्यक्ष नगरके मुख्य द्वारके निकट, उत्तर या दक्षिणमें—चुङ्गीघर बनवावे, और उसपर चुङ्गीघरका झंडा लगावे। शुल्क लेनेवाले चार या पांच आदमी विक्रेय माल लेकर आये हुए व्यापारियोंसे पूछें—"आप कौन हैं? आप कहांसे आये हैं? कितना माल आपके पास है? आपकी अभिज्ञान मुद्रा कहां है?" यदि मालपर मुहर न लगी हो, तो दुगुनी चुङ्गी ली जाय, और यदि झूठी मुहर लगी हो, तो अठगुनी। जिसकी मुहर टूट गयी हो, उस मालको चुङ्गीघरमें पड़े रहनेका दण्ड दिया जाय।"

चुङ्गी सभी चीजोंपर नहीं ली जाती थी। जो माल विवाहसे सम्बन्ध रखता था, दहेजमें मिला होता था, उपहारके लिए आता था, यज्ञ या प्रसवके लिए होता था, मन्दिर, मुण्डन, जनेऊ, विवाह, व्रत, दीक्षा, आदि कार्योंके लिए मंगाया जाता था, उनपर चुङ्गी नहीं लगती थी। इसी तरह अन्य कुछ मालपर भी चुङ्गी माफ थी।

राष्ट्रको नुकसान पहुंचानेवाला माल, या कुछ भी फल जिससे न मिल सकता हो, ऐसा माल नष्ट कर दिया जाता था, और जो बहुत हितकर माल होता, या जो दुर्लभ बीज होता, उसपर किसी तरहकी चुङ्गी नहीं लगायी जाती थी।

चुङ्गीकी मात्रा क्या होती थी, इसका निश्चित रूपसे पता नहीं लगता। चाणक्यने एक स्थानपर यही लिखा है कि मालकी उपयोगिता देखकर अंदाजसे चुङ्गी लगायी जाय। प्रोफेसर विनयकुमार सरकारने लिखा है—"नाप कर बेचे जानेवाले पदार्थोंका $\frac{१}{१६}$ भाग या ६$\frac{१}{४}$ प्रतिशत, तोलकर बेचे जानेवाले पदार्थोंका $\frac{१}{२०}$ भाग या ५ प्रतिशत और गिन कर बेचे जानेवाले पदार्थोंका $\frac{१}{११}$ भाग या ९$\frac{१}{११}$ प्रतिशत चुङ्गीके रूपमें लिया जाता था।"

शुल्काध्यक्ष चुङ्गी घरपर, ऊपर वर्णित चुङ्गीके सिवा, और चुङ्गी भी लेता था। कौटिल्य लिखता है—"बाजारी मालको ढोनेवाले एक खुरवाले पशुओंपर माल ढोनेका $\frac{१}{२}$ पण प्रति पशु, छोटे पशुओंपर $\frac{१}{४}$ पण तथा बहंगी वालोंपर एक माषक चुङ्गी लगायी जाय।" इस ढोनेके करके सिवा एक कर और था, जिसे वर्तनी कहते थे। इस करको अंतपाल वसूल करता था। यह कर सड़कके उपयोगका था। इसकी मात्रा १$\frac{१}{४}$ पण होती थी।

इन करोंके लेनेपर मौर्य-कालकी सरकार अपनी पूरी जिम्मेदारी समझती थी। यदि किसीका माल नष्ट हो जाय, या चुराया जाय, तो उसे सरकार पूरा करनेके लिए कानूनन् बाध्य थी।

प्रत्यक्ष कर

प्रत्यक्ष करोंका उपयोग प्रायः आपत्तिके समय किया जाता था। जब राज्यको धनकी बहुत बड़ी आवश्यकता होती थी, तभी जनतासे प्रत्यक्ष रूपसे कर लिये जाते थे। पहला प्रत्यक्ष कर तोल और मापपर था। राज्यकी ओरसे तोल और मापके साधन प्रमाणित किये जाते थे—या प्रामाणिक तोल और माप प्रचलित किये जाते थे। इसके

लिए ४ मापक कर लिया जाता था। प्रामाणिक बट्टों तथा मापके साधनोंको काममें न लानेपर दण्डके रूपमें २७¼ पण लिया जाता था। तोल और मापका राज-कर्मचारी व्यापारियोंसे प्रामाणिक तोल और मापका उपयोग करनेके लिए १ कौड़ी प्रतिदिन कर रूपमें लेता था।

दूसरा प्रत्यक्ष कर जुआरियोंपर था। यह कर लाइसेंसके रूपमें था। जुआरी लोग निर्दिष्ट स्थानपर ही जुआ खेल सकते थे, जो ऐसा नहीं करते थे, उनपर १२ पण जुर्माना होता था, जुआ खेलनेकी आज्ञा प्राप्त करनेके लिए धन देना पड़ता था। इतना ही नहीं, ५ प्रतिशत विजित द्रव्य भी करके रूपमें विजयी जुआरीको राज्य-कोषमें देना पड़ता था।

तीसरा प्रत्यक्ष कर वेश्याओंसे लिया जाता था। वेश्याएं दैनिक आमदनीका दुगुना प्रतिमास राज-करके रूपमें देती थीं। इसके सिवा राज्यकी ओरसे गणिकाध्यक्ष भी होता था, जो निश्चित वेतनपर वेश्याओंको रखता था। इन वेश्याओंका उपयोग राजकीय कार्योंके लिए किया जाता था। वेश्या विषयक अनेक नियम राज्यकी ओरसे बने हुए थे। उनका उल्लङ्घन करनेपर सरकार बड़े बड़े जुर्माने करती थी।

इसी तरहके कर नाटक करनेवालों, तमाशा दिखानेवालों, गायकों, वादकों, और नर्तकोंपर भी लगाये गये थे। इनके सब दण्ड-कर वेश्याओंके दण्ड-करके ही समान थे। परन्तु यदि ये लोग विदेशी हों, तो उनसे तमाशा आदि करनेके लिए ५ पण और लिया जाता था। इन्हें नियत स्थानपर रहना होता था। इस नियम तथा अन्य नियमोंके न माननेपर १२ पण जुर्मानेके रूपमें लिये जाते थे।

कारीगरोंसे भी प्रत्यक्ष कर लिये जाते थे। धोबियोंके लिए कपड़े धोनेके स्थान निश्चित होते थे। यदि वे अन्य स्थानपर वस्त्र धोते, तो ६ पण जुर्माना किया जाता था। यदि कपड़ा फट जाता, तो भी ६ पण जुर्माना किया जाता। धोबियोंको अपने वस्त्रोंपर मुग्दुरका चिह्न लगाना पड़ता था। यदि वे बिना इस चिह्नवाले कपड़े पहने हों, तो ३ पण जुर्माना भरना पड़ता था। यदि धोबी ग्राहकोंके कपड़ोंको किरायेपर दे, गिरवी रखे, या बेचे, तो १२ पण दण्ड होता था।

पशुओंपर कोई अलग कर नहीं था, पर पशुओंके बेचनेपर प्रति पशु १ पण कर लिया जाता था। किस व्यक्तिके पास कितने पशु हैं, इसकी सूची रखी जाती थी।

अधिकृत व्यवसायोंसे आय

मौर्य-कालमें अनेक व्यवसायोंपर राज्यका एकाधिकार था। उन व्यवसायोंसे राजकोषको बहुत आमदनी थी। सबसे आवश्यक व्यवसाय, जिसपर राज्यका एकाधिकार था, खानें और खनिज द्रव्य थे। खानोंपर राज्यका एकाधिकार था। उनके प्रबन्धके लिए एक अलग कर्मचारी होता था। उसको आकराध्यक्ष कहते थे। मौर्य-कालमें खानोंका व्यवसाय अच्छी तरह प्रचलित था, और खानोंकी खुदाई राज्यकी ओरसे होती थी। कच्ची धातुको साफ करनेके लिए अलग-अलग कारखाने होते थे। उनसे जो आय होती थी, वह राज्यकी ही समझी जाती थी।

मौर्य-कालमें खानें दो भागोंमें विभक्त की हुई थीं, स्थलकी और जलकी। स्थलीय खानोंके अध्यक्षको आकराध्यक्ष कहते थे और जलीय खानोंके अध्यक्षको खन्यध्यक्ष कहते थे।

यद्यपि खानोंपर राज्यका एकाधिकार था, पर यह आवश्यक नहीं कि राज्यके कर्मचारी ही उनका प्रबन्ध करते हों। खानें ठीकेपर भी दी जाती थीं। इन ठीकोंसे भी राज्यको बहुत आय होती थी। ठीकेपर दी हुई खानोंसे राज्य एक निश्चित भाग लिया करता था।

दूसरा आवश्यक व्यापार, जिसपर राज्यका अधिकार था, नमकका व्यवसाय था। इस व्यवसायके सञ्चालनके लिए एक अलग पदाधिकारी था, जिसे लवणाध्यक्ष कहते थे। लवणका व्यवसाय भी ठीकेपर दिया जाता था। पर लवण तैयार होते ही राज्य अपना लवण-भाग ले लेता था। लवणाध्यक्ष स्वयं नमकके व्यवसायका सञ्चालन कर जो नमक तैयार करता था, उसपर भी लवण-भाग लिया जाता था। यह तो हुई उस अवस्थाकी बात, जब नमक तैयार होते ही बिक जाय; पर यदि वह तैयार होते ही नहीं बिक जाता था, तो उसके धीरे-धीरे बिकनेपर मूल्य तो बिक्रेताओंसे लिया ही जाता था, साथ ही व्याज भी लिया जाता था—व्याज उस रुपयेका, जिसका नमक लवणाध्यक्षके गोदाम में पड़ा रहा।

नमकके व्यवसायको विदेशी नमकके मुकाबलेसे बचानेके लिए यह नियम था कि विदेशी नमकको स्वदेशमें आने तो दिया जाय, पर उससे उतना हर्जाना ले लिया जाय, जितना उसके आनेसे स्वदेशी व्यवसायको नुकसान हुआ हो।

इसी प्रकार अन्य अनेक व्यवसाय थे, जिनपर राज्यका

अधिकार था। तेलका व्यवसाय इसी प्रकारका था। जङ्गलों-पर भी राज्यका अधिकार था। इनके लिए एक राज-कर्मचारी होता था, जिसे कुप्याध्यक्ष कहते थे। इसका काम होता था द्रव्यवालों और वनवालों कुप्यका संग्रह करवाना। जो लोग जङ्गलोंको काटते थे, उनसे राजस्व और जुर्माना लिया जाता था, बशर्ते कि वे किसी आपत्तिमें पड़ कर ऐसा करनेके लिए वाध्य न हुए हों। शाक, महुआ, तिल, लोघ्रसांगवान, शीशम, खैर, खिन्नी, शिरीष, ताड़, राल, तथा कत्था आदि कुप्य पदार्थ कहलाते थे। कुप्योंकी तरह अनेक प्रकारके बांस-बल्ली, वल्कल, पत्र-पुष्प, औषधि और विष आदिको भी कुप्याध्यक्ष एकत्र कराता था। अनेक प्रकारके प्राणियोंका चमड़ा, हड्डी, पित्त, अंतड़ी, दांत, सींग, खुर, पूंछ, आदि एकत्र कराये जाते थे। इन सब वस्तुओंको एकत्र कराकर जङ्गलमें ही इनके कारखाने बनवाये जाते थे, इनकी आमदनीसे राजकीय-कोषकी बहुत वृद्धि होती थी।

राज्यकी ओरसे अनेक प्रकारके हथियारोंका निर्माण भी होता था। आयुधागाराध्यक्ष तरह-तरहके खड्ग, यन्त्र, अस्त्र, कवच, आयुध तथा उपकरण तैयार कराता था। चाणक्यने अस्त्र-शस्त्रोंका विस्तारसे वर्णन किया है। मौर्यकालमें भारत अस्त्र-शस्त्रोंके लिए किसी विदेशपर आश्रित न था। सब हथियार यहीं तैयार होते थे।

शराबका व्यवसाय भी राज्यके अधीन था। शराब तैयार करानेके लिए भी एक अध्यक्ष होता था, जिसे सुराध्यक्ष कहते थे। शराब बनानेवाला, बेचनेवाला और खरीदनेवाला निश्चित रहता था। निश्चित व्यक्तियोंको छोड़कर जो कोई ग्रामसे बाहर या अन्दर शराब ले जाता था, उसके लिए ६०० पण जुर्माना नियत था। चाणक्यने शराबखानोंका मनोरंजक वर्णन किया है, और शराबकी किस्मों तथा उनके तैयार करनेकी विधि भी अच्छी तरह दर्शायी है। शराबके व्यवसायसे भी राज्यको अच्छी आय होती थी।

राज्यके व्यापारकी आय

जिस प्रकार अनेक व्यवसायोंपर राज्यका एकाधिकार था, उसी प्रकार व्यापारपर भी। जिन चीजोंकी उत्पत्ति राज्यकी ओरसे होती थी, उनकी बिक्रीके लिए भी राज्यकी ओरसे प्रबन्ध था। इसके लिए पण्याध्यक्ष नियुक्त था। कीमत निश्चित रखी जाती थी। चाणक्य लिखता है—"सब कीमतोंमें प्रजाके हितको ही मुख्य रखना चाहिए। प्रजाको जिससे नुकसान पहुंचे, ऐसा कोई लाभ न ले; चाहे वह कितना ही अधिक क्यों न हो।"

इस प्रकार राजकीय माल बेचनेसे राज्यको अच्छी आमदनी होती थी। मौर्य-कालमें व्यापारके अनेक साधन थे। साधनोंसे अभिप्राय आवागमनके साधन—गाड़ी, नौका, जहाज आदिसे है। गाड़ी आदि स्थलके साधनोंका प्रबन्ध राज्यकी ओरसे होता था या नहीं, इसका अर्थशास्त्रमें कोई निर्देश नहीं मिलता। पर सामुद्रिक मार्ग और जलमें ले आने—ले जानेके साधनोंपर कौटिल्यने बहुत कुछ लिखा है। व्यापारके लिए नौकाओं और जहाजोंका उपयोग करनेपर व्यापारियोंको कर देना होता था। यात्री लोगोंसे भी नौकाओंका कर लिया जाता था। कौटिल्यने अनेक प्रकारकी नौकाओंका वर्णन किया है और उनके लिए नियम लिखे हैं। नदियोंमें भी राज्यकी ओरसे नौकाएं चलती थीं। राज्याज्ञाके बिना कोई भी नदीके पार नहीं जा सकता था। यह आज्ञा स्थानीय राज-कर्मचारीसे लेनी होती थी। राजाज्ञा प्राप्त करनेके लिए धन देना पड़ता था। पर ब्राह्मण, संन्यासी, बच्चे, बूढ़े, बीमार तथा गर्भिणी स्त्रियोंको राजाज्ञा मुफ्तमें ही दी जाती थी।

नदी पार करनेका भाड़ा इस प्रकार था—भार सहित मनुष्यसे १ माषक, भार सहित छोटे जानवरके लिए दो माषक, सिरपर भार रखे हुए मनुष्यसे दो माषक, गऊ और घोड़ेके लिए दो माषक, ऊंट और भैंसके लिए चार माषक, बैलगाड़ीके लिए ६ माषक, व्यापारी मालसे भरी हुई गाड़ीके लिए एक पाद।

जुर्मानासे आय

मौर्य-कालमें अनेक अपराधोंके लिए जुर्मानेका दण्ड दिया जाता था। बड़े-से-बड़े और छोटे-से-छोटे अपराधके लिए न्यूनाधिक जुर्माने नियत थे। मौर्य-कालमें जुर्मानोंकी मात्रा यद्यपि अधिक थी, तथापि जुर्मानोंसे राजकीय कोषको अधिक आय नहीं होती थी। मेगस्थनीज चन्द्रगुप्त मौर्यके शिविरमें चिरकाल तक रहा, पर वह लिखता है कि उसने चोरी आदि कुकर्म नहींके बराबर देखे। मेगस्थनीजके भारत-यात्रा-वर्णनसे यही प्रतीत होता है कि मौर्यकालमें अपराध बहुत कम होते थे, और इसीलिए राज्य-कोषमें जुर्मानोंके द्वारा बहुत आय नहीं होती थी।

राजकीय आयके इन स्रोतोंके अतिरिक्त भी अनेक स्रोत थे, जिनके द्वारा राज-कोषकी वृद्धि होती थी। आपत्तिकालमें विविध प्रकारके करसे आयकी वृद्धि की जाती थी। धर्म मन्दिरोंसे भी आय होती थी। मुद्रा-पद्धति भी आयका एक मुख्य साधन था।

पुराना कलकत्ता

पं० झावरमलजी शर्मा

जो कलकत्ता इस समय ब्रिटिश साम्राज्यका एक प्रधान वैभव-सम्पन्न परिगणनीय विशाल नगर समझा जाता है, उसका यह आकर्षक रूप—यह वैभव बहुत पुराना नहीं है। पुराने कलकत्ते का शब्द-चित्र हिन्दीके ख्यातनामा लेखक स्वर्गीय पं० अमृतलाल चक्रवर्तीजी द्वारा यों अङ्कित है :—

"......आजकी इतनी बड़ाई और इतनी रौनककी कलकत्ता नगरी डेढ़ सौ वर्ष पहले अङ्गरेजी अधिकारकी आदि अवस्थामें जैसी थी, उसके सुननेसे मालूम होगा कि "अलिफ लैला" के अलादीनने अपने "दीये" की बदौलत 'दैत्य' निकाल कर वनस्थानको जनस्थान बनवाया है। सत्य ही पलासीका युद्ध हो जानेके बाद भी कलकत्ता भयङ्कर बनसे परिपूर्ण था। जो गङ्गातट सजीले राज-पथमें परिणत होकर आज दिन सन्ध्याकी वायुमें विचरनेवाले शौकीन नर-नारियोंकी कलकलाहटसे मुखरित होता है, वह अपनी वन-भूमिमें हरिन पर लपके हुए भीषण व्याघ्रके गुरु-गर्जनसे गूंजा करता था। चौरङ्गीके चकार तककी चर्चा तबतक नहीं हुई थी। केवल फोर्ट विलियम दुर्गका बनना उस समय आरम्भ हो गया था। इन दिनों जहां पर्मिट व कस्टम हाउस है, वहीं अङ्गरेजोंका पुराना किला था और उसके पास एक छोटा-सा डक वा बन्दरगाह था, वहीं कम्पनीकी नावें मरम्मत होती थीं। तब जहाज और स्टीमरोंकी इतनी भरमार न थी। कभी एक-आध जहाज आता, तो उसे दुनियाका आठवां आश्चर्य समझनेवालोंकी भीड़ लग जाती थी। कम्पनीका व्यवसाय रङ्ग-बिरङ्गी बड़ी-बड़ी देशी नावोंके सहारे चलता था। उस समय गङ्गाजीके इतने घाट भी नहीं बने थे। पुराने किलेके पास एक बड़ा तथा कई छोटे-छोटे घाट थे। किलेके घाटसे कम्पनीके आदमी चढ़ते-उतरते थे।"

सन् १७५६ ई० में नवाब सिराजुद्दौलाके कलकत्तेपर धावा करनेके पीछे कलकत्ते के निवासियोंको एक बड़ा लाभ हुआ था। यह समझ कर कि मेरे हमला करनेसे लोगोंको नुकसान उठाना पड़ा है, उन्होंने सब दर्जेके लोगोंको हानि भरनेके लिए बड़ी-बड़ी रकमें दीं। क्या अङ्गरेज, क्या हिन्दुस्तानी, सबको ही इन रुपयोंका भाग मिला। बहुतेरोंकी टूटी-फूटी झोपड़ियोंकी जगह इस अति उदार दानके परिणामसे इमारतें खड़ी हो गयीं। इसी समयसे मानो कलकत्ते की रौनककी नींव पड़ी। पहले अङ्गरेज लोग राधाबाजार, चीनाबाजार, मुर्गीहट्टा और अर्म्मानी गिर्जेकी अगल-बगलमें दुकानें रखते थे। नवाबकी उक्त मदद पाकर उन्होंने लालदीघी, धर्मतल्ला और चौरङ्गीमें जाकर दुकानें बनवायीं और तबसे उनके छोड़े हुए बाजारोंमें हिन्दुस्तानियोंने दुकानें खोलीं। आज दिन अङ्गरेजोंका खास वासस्थान होनेके कारण चौरङ्गीकी जो इज्जत है, उन दिनों लालबाजारकी वही इज्जत थी। अङ्गरेजोंका बाजार होनेके सबबसे ही उसका नाम उन दिनों लालबाजार पड़ा था।"

पुराने किलेके उत्तर भागमें कम्पनीका कपड़ेका गोदाम था और उसके और-और भागोंमें कम्पनीके कर्मचारी रहते थे। जहां चौरङ्गी बनी है, वहां घना बन था। केवल कलिङ्गेमें एक छोटी-सी बस्ती थी। जहां किलेका विशाल मैदान है, वहां कुछ जगहमें जङ्गल काटकर धानकी खेती होने लगी थी और कुछ जगहें जङ्गलसे परिपूर्ण थीं। जहां धानकी खेती होती थी, वहां दो-चार महज मामूली झोपड़े दिखायी देते थे। उन झोपड़ोंके बीचसे एक पगडण्डी निकल कर कलकत्ते से अलीपुर और खिदिरपुरको मिलाती थी। अलीपुर और खिदिरपुर भी तबतक नाममात्रके ग्राम थे।......"

इस समय आदि गङ्गा व "टोली जनाला" पार करनेके लिए लोहेके कई पुख्ता पुल बने हैं। उन दिनों आदमीके भारसे डोलनेवाले सिर्फ दो लकड़ीके पुल, दो स्थानोंमें दिखायी देते थे। उनपरसे अन्य गाड़ियोंकी बात दूर रहे, बैलगाड़ियां भी चल नहीं सकती थीं। अन्य गाड़ियां भी तब आजकलकी तरह नहीं बनी थीं। बढ़ियां गाड़ियां सिर्फ दो-एक क्लाइव साहबकी और दूसरी वाट साहबकी कभी-कभी शहरमें फिरती हुई लोगोंमें देखनेकी असीम उत्सुकता भरती थीं। उनमेंसे किसीकी आवाज पानेसे बच्चोंकी तरह अनेक जवान-बूढ़े भी घरोंके बाहर दौड़ आते थे। हिन्दुस्तानी बड़े आदमियोंमें तबतक गाड़ी-चढ़नेका शौक नहीं हुआ था। वे पालकियोंकी सवारी ही इज्जतकी समझते थे और उनके मुहल्लोंमें गाड़ी

बढ़कर चलने लायक सड़कें भी नहीं बनी थीं। सर्वत्र जङ्गल और तालाबोंकी ही भरमार थी। सिर्फ एक ही अच्छी सड़क चितपुर रोड उन दिनों बनी थी। आजकल जो अंश कलकत्तेका उत्तर प्रान्त कहलाता है, वहां तब भी हिन्दुस्तानी ही बसते थे।"

अङ्गरेजोंने जिस समय कलकत्तेको बसाया, उसमें उस समय अबकी तरह पुलिस कोर्ट नहीं खुली थी। उन दिनों

पुराना फोर्ट विलियम (सन् १७८७ ई०)

मेयर कोर्ट नामक एक तरहकी अदालत थी। सन् १७२१ ई० में ईस्ट इण्डिया कम्पनीके कर्मचारियोंने यह अदालत जारी की थी। जज और मजिस्ट्रेटोंके बदले मेयर और अल्डरमैनोंके द्वारा विचार होता था। वह विचार बेशक मजेदार था। "जिसकी लाठी उसकी भैंस" ही उन दिनोंके विचारकी पक्की नीति थी।"

कलकत्तेके म्युजियममें सन् १९०६ ई० में विक्टोरिया मेमोरियल प्रदर्शिनी हुई थी। उसमें कलकत्ता गजटकी पुरानी जिल्दें भी प्रदर्शनार्थ रखी गयी थीं। कलकत्ता गजटका जन्म सन् १७८४ ई० की ४ मार्चको हुआ था। मि० एफ० ग्लाडविन नामक अङ्गरेज सज्जनने भारत-गवर्नमेण्टकी आज्ञासे इस पत्रको प्रकाशित किया था। सम्पादक वही था। तरह-तरहके गद्य-पद्यमय लेख और प्रेरित पत्रादि दूसरे अखबारोंकी तरह इसमें भी निकलते थे। जानने-योग्य सरकारी खबरें भी रहती थीं। गजटके सम्पादकको स्वाधीनता थी। वह राजनीतिक विषयोंमें भी स्वाधीन राय दे सकता था। किन्तु उस समयके नियमानुसार सरकारके इशारेपर उसे चलना पड़ता था। पहले साहित्य विषय ही प्रधान था। इस समय भी कलकत्ता गजट निकलता है, किन्तु वह सरकारी हुक्मोंकी नकल मात्र है। पहले यह बात न थी। यह तो हुआ गजटका परिचय, अब उस गजटके आधारपर लिखित और साहित्यसे सङ्कलित तत्सामयिक कलकत्तेका वर्णन इस प्रकार है।

उस समय आजकलकी तरह सड़कआदिका अच्छा प्रबन्ध न था। कलकत्तेके साथ बाहरके सिर्फ थोड़े स्थानोंका लगाव था। वह भी बरसातमें टूट जाता था। इन्हीं कारणोंसे मुफस्सिलमें चिट्ठी भेजना या वहांसे उत्तर पाना सहज नहीं था। डाक-महसूल दूरीके हिसाबसे लगता था। छोटी-छोटी चिट्ठियोंके सिवा बड़े-बड़े कागज या पुलिन्दे सप्ताहमें सिर्फ दो-बार जा सकते थे। डाकमें साढ़े नौ इञ्च लम्बी और चार इञ्च चौड़ी तककी चिट्ठी ली जाती, उससे आकार बड़ा होनेपर वह सिर्फ सोमवार और वृहस्पतिवारको जाती थी। ढाई तोला तक एक ही महसूल लगता था। साढ़े तीन तक इसका दूना, साढ़े चार तोले तक तिगुना और साढ़े पांच तोले तक चौगुना था। आगे इसी हिसाबसे महसूल बढ़ता और दूरीके हिसाबसे भी घटता-बढ़ता था। आजकल बेशुमार डाकखाने हैं। परन्तु सन् १७८४ में इतने ही डाकखाने थे :—
बारकपुर, हुगली, चन्दननगर, मुंगेर, पटना, बक्सर, बर्दवान, मुर्शिदाबाद, राजमहल, भागलपुर, ढाका, चटगांव, कालपी, मेदिनीपुर, बालेश्वर, कटक और गंजाम।

ढाई तोलेकी चिट्ठी कलकत्तेसे भेजनेके लिए बारकपुर हुगली और चन्दननगरका एक आना, राजमहल और भागलपुरका तीन आना, दिनाजपुर और मुंगेरका चार आना, पटनेका पांच आना और बक्सरका छे आना लगता था। आगे इसी हिसाबसे समझ लीजिये। एक जगहसे दूसरी जगह जानेमें बड़ी-बड़ी कठिनाइयां थीं, परन्तु पुलिससे प्रार्थना करनेपर वह डाककी नावका बन्दोबस्त कर देती। एक साधारण नावका रोजाना भाड़ा दो रुपया मुकर्रर था। कलकत्तेसे मुर्शिदाबाद जानेके लिए २६ दिनका भाड़ा ६०) दे देना पड़ता था।

कलकत्तेकी पुलिसके जिम्मे शहरकी रक्षा और दूसरे काम थे। उस समय यहां निम्नाङ्कित ३१ थाने थे :—

अरमनी गिरजा, पुराना किला, चांदपाल घाट, लालदीघी, धर्मतल्ला, ओल्ड कोर्ट हाउस, डोमतल्ला, अमड़ागली, पञ्चाननतल्ला, चीना बाजार, चांदनी चौक, टुरूल बाजार, झामा पोखर, चकडांगा, शिमला बाजार, लनलङ्का बाजार, मलङ्गा, पटल डांगा, गोबर डांगा, बैठक खाना,

श्यामपोखर, श्यामबाजार, पद्मपोखर, कुम्हारटोली, जोड़ासांको, मछुआबाजार, जानबाजार, डिंगाभांगा, सूतानटी हाटखोला, दहीहट्टा, हंसपोखरिया, कलिङ्ग और जोड़ाबागान। हर थानेमें एक थानेदार, और एक सुपरिण्टेण्डेण्ट रहते थे। वे सब बङ्गाली थे। सन् १७८९ ई० की लिस्टमें देखा जाता है कि थानेदारोंमें १८ हिन्दू, और सुपरिण्टेण्डेण्टोंमें ८ हिन्दू, बाकी मुसलमान थे। आज-कलकी तरह थानोंमें अङ्गरेजोंकी भरती नहीं थी।

शहरमें अङ्गरेजोंकी ही प्रधानता थी। वे छोटे-छोटे नवाबकी तरह ठाट-बाटसे रहते थे। उनके घरोंमें इतने नौकर-नौकरानी रहती थीं कि उनकी गिनती सुनकर आज-कलके साहब भी आश्चर्य करेंगे। उनकी तनखाह भी कम नहीं थी। अङ्गरेजोंने एक बार उनकी तनखाह घटानेको कमेटी की थी। उस समयके अङ्गरेजोंको लाचार होकर इस देशके कितने ही रस्म-रिवाज सीखने पड़े थे। उनमें तमाखू पीनेकी बात पहले कहने लायक है। आज-कल भी अङ्गरेज धूम्रपानमें किसीसे पीछे नहीं हैं, किन्तु हिन्दुस्तानी ढङ्गसे पीनेके विरोधी हैं। उस जमानेके अङ्गरेज हुक्का पीते थे। किन्तु कोई दूसरेका हुका छूता न था। वे जब किसीके घर भोज खाने जाते, तो अपना हुक्का और चिलम साथ बांध ले जाते। पर गवर्नमेंट हाउसके भोजमें कोई अङ्गरेज हुक्का ले जाने नहीं पाता और किसी आम नाच या तमाशे या सभा-समाजमें भी हुक्का-चिलम नीचे ही रख देनी पड़ती।

विलायती चीजोंकी आमदनी बहुत कम थी। कभी-कभी विलायती माल आता और तब उसपर अङ्गरेज टूट पड़ते थे। लाचार होकर अङ्गरेजोंको इस देशकी बनी चीजें लेनी पड़तीं, उस समय इस देशमें जो ऊनी और सूती कपड़े बनते, वह विलायतमें भी बेशकीमती समझे जाते थे, इससे यहांके अङ्गरेज उनका निरादर नहीं करते। इसके सिवा बहुत-सी चीजें अङ्गरेजोंके लायक इस देशमें भी बनने लगी थीं। उस समयके बङ्गाली शिल्प-चातुरीमें प्रसिद्ध थे। अङ्गरेज कर्मचारी और अङ्गरेज जहाजी विलायत जाते समय इस देशकी बनी इतनी चीज ले जाते कि उसे रोकनेके लिए घोषणा-पत्र प्रचार करनेकी आवश्यकता होती।

अङ्गरेज इस देशमें आकर वाणिज्य-व्यवसायसे रुपया पैदा करते और थोड़े दिनमें खूब मालदार होकर देशको लौट जाते। अपने ऐशो-आरामका परिचय देनेके लिए इस देशके काले नौकरोंको विलायत तक पकड़कर ले जाते। कुछ दिनों बाद बेचारे बङ्गाली नौकरीसे छुड़ा दिये जाते और वे गलियोंमें रोते फिरते। पास खर्च न होनेके कारण लौट सकते नहीं। अङ्गरेजोंकी इस चालको रोकनेके लिए कोर्ट आफ डायरेक्टर्सने कानून बनवाया कि जो अपने साथ हिन्दुस्तानी नौकर विलायत ले जायगा, उसे ५००) रुपया अमानतके तौरपर कम्पनीके यहां जमा करना होगा।
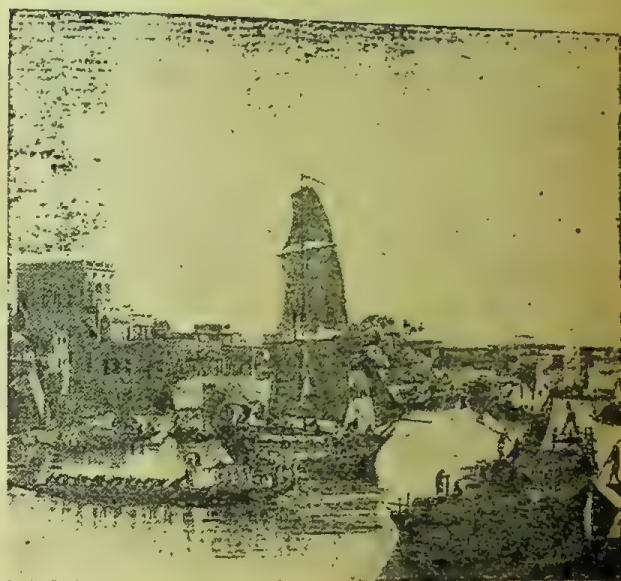
सन् १७८८ ई० में हुगली नदीसे कलकत्तेका दृश्य

तबसे अभागे बङ्गाली नौकरोंका पिण्ड छूटा। बङ्गालियोंके सिवा अङ्गरेजोंके यहां मलय देशके निवासी भी काम करते थे। वह कभी-कभी भाग जाते, तो पकड़ कर मंगाये जाते। उस समय गिरजोंकी तरह थियेटरोंकी रौनक भी खूब थी। उनमें सामयिक नाटकोंके सिवा शेक्सपीयरके नाटक खेले जाते थे। साहबों और मेमोंमें बड़ी धूम पड़ जाती थी।

पुराने कलकत्ता गजटसे दो-चार मजेदार मुकदमोंकी खबर भी मिलती है। एक मुकदमा विचित्र था। मीर कासिमको गद्दीपर बिठानेके बदले, उसने अङ्गरेज मेम्बरोंको जो इनाम देनेका वादा किया था, उसकी हिस्सेदारीके लिए अङ्गरेजोंमें परस्पर लड़ाई हुई थी। कर्नल प्रिस्को, मि० पेट्री, मेजर बोवन और एण्टनी श्लोयन साहबके एउमिनिस्ट्रेटर मि० जानने सन् १७७९ ई० में उक्त इनामका हिस्सा ठीक करनेके लिए मुकदमा दायर किया था। दोनों ओरके वकील-बैरिस्टरोंने बहस की थी। अन्तमें सुप्रीम कोर्टके विचारसे मुद्दइयोंको डिगरी मिली।

उक्त गजटके विज्ञापनोंमें अङ्गरेजी भागवद्गीताका एक

सन् १८०५ ई० में पश्चिमी कलकत्ते का दृश्य

विज्ञापन है। चार्लस बिलकिन्सने अङ्गरेजी अनुवाद किया था। कोर्ट आफ डाइरेक्टर्सके सभापति मि० स्मिथने विलायतमें छपवा कर इस देशमें भेज दिया। मूल्य एक मोहर। गवर्नर जनरल हेस्टिङ्ग साहबके अनुरोधसे कम्पनी-के खर्चसे अङ्गरेजी गीता छपी और लाभ तथा कापी राइटका हक अनुवादकको दिया गया।

उस समय अङ्गरेजोंके नामका दबदबा इतना बढ़ गया था कि उनके नामपर देशके आदमी देशवासियोंपर अत्याचार करनेसे नहीं चूकते थे। अङ्गरेजोंकी कृपासे कितने ही बङ्गाली, कितने ही उपायोंसे धनी हो गये थे। उनके वंशधर अब भी मौजूद हैं। वे लोग अपने बरकन्दाजोंको कम्पनीके सिपाहियोंकी वर्दी-चपरास पहनाकर देशके लोगोंपर मनमाना अत्याचार करते थे। उनका अत्याचार रोकनेके लिए गवर्नर साहबकी कौंसिलसे ७ एप्रिल सन् १७८६ को घोषणा-पत्र प्रचारित हुआ था।

सरकारी दफ्तरोंमें बङ्गाली लोग आज-कलकी भांति उस समय भी क्लर्क होते थे और दीवानी सरिश्तेमें अच्छे पद पाते थे। उन दिनों दफ्तरका समय महाजनी ढङ्गका था। वे लोग सवेरेसे शाम तक काम करते थे। छुट्टी भी ज्यादा न थी। साल भरमें कुल २९ दिनकी छुट्टी थी, जिनमेंसे रथ-यात्रा १, सलोना १, जन्माष्टमी २, दुर्गाष्टमी २, दुर्गापूजा ९ दिन, दिवाली ३ दिन, देवठन एकादशी १ दिन, बसन्त पञ्चमी १ दिन, शिवरात्रि २ दिन, होली ५ दिन, रामनवमी १ दिन। बाकी दो-तीन बङ्गला पर्व।

उस समय भी दुर्गापूजा आदि पर्वोंमें बङ्गाली लोग साहबोंको न्योता देते, और नाच-गानसे आमोद करते। नाच-गान करनेवाली उस समय अधिक मुसलमान रण्डियां थीं। एक बार मुहर्रम और दुर्गापूजा एक साथ पड़ी। मुसलमान वेश्याओंने बङ्गालियोंकी दुर्गापूजाके सामने नाचनेसे इनकार कर दिया। बहुत रुपयेका लालच दिखाया गया, फिर भी उन्होंने मुहर्रम मनाया, नाचने नहीं आयीं।*

संवत् १९०२ (सन् १८४६ ई०) का एक विज्ञापन है, जिसमें बङ्गला टाइप और भाषा हिन्दी उस समय की है। विज्ञापन 'राग सागर' नामक पुस्तकका है। पुस्तकके अनुमोदक रूपसे हस्ताक्षर करनेवालोंमें उस समयके देशी नरेशों और कलकत्तेके व्यापारियोंके नाम हैं। भाषाका नमूना इस प्रकार है :—

जाकुं यह पुस्तक लेने की इच्छा होय से ठिकाना नगर कलकत्ते में बड़ाबाजार थानेके नजिक सराफ महाजनसो पूछ लेवे। श्रीकृष्णानन्द व्यासदेव, राग-सागर पास मिले। इस पुस्तकका चार खण्ड, एक-एक खण्डका मूल्य नछावर रुपैय २५—चार खण्डका जुमले रुपैय १०० अङ्के एक-सौ कम्पनी निखरचे लगेंगे और बाहर भेजनेमें डाकका मासूल गाहकको लगेगा, शुभ मिती फालगुण शुक्ल २ शुक्रवार संवत् १९०२ ई० १८४६ श्रीरस्तु, कल्याणमस्तु, × × किंवा हस्ताक्षर कारिणा नामानि।

× × × ऊदेपुर मेवाड़ देशाधिपति श्रीमहाराज रनजीश्वरूप सिंहजी जोदपुर मारवाड़ि देशाधिपति श्रीमहाराज तखतसिंह बहादुर बिकानेर मारवाड़ि देशाधिपति श्रीमहाराज तखत सिंह बहादुर बिकानेर मारवाड़ देशाधिपति श्री महाराज रतनसिंह सरदारसिंह बहादुर जेयपुर देशाधिपति श्री महाराज सवाई रामसिंह बहादुर कोटाधिपति श्रीमहाराव रामसिंह बुन्दी हाडोति देशाधिपति श्रीमहाराज रामसिंह × × × इत्यादि

किम्बा सा-अक्षर कारिणी मानि सराफ महाजन श्रीयुक्त सेठ मतीराम लक्ष्मीचन्द्र श्रीयुक्त बाबू व्रजवल्लभदास श्री कुञ्जलदास (१) मनोहरदास हनुमानदास श्रीयुक्त साह

* भारतमित्र ३ जून सन् १९०५

बिहारीलाल गोविन्दलाल रघुवरदयाल श्री सिवचरण (१) लाल शिवसाइलाल श्रीयुक्त बाबू रामसेवक रामसेवक-राम मिश्र श्री जदुनन्दन मिश्र श्रीयुक्त बाबू लक्ष्मल, काशीनाथ, श्रीयुक्त बाबू हरिदास हरिकृष्णदास श्रीयुक्त बाबू मोतीचन्द गुजराती श्रीयुक्त कलेबाबू लालचन्द श्रीयुक्त बाबू परसराम अयोध्याप्रसाद श्रीयुक्त बाबू सीताराम श्री तुलसीदास श्रीयुक्त बाबू श्रीकृष्णदास पुनीमल (१) श्रीयुक्त बाबू दानमल जोरावरमल श्रीयुक्त बाबू बहादुरसिंह प्रताप-चन्द बहादुर श्रीयुक्त बाबू पदमसीन नेवगी श्रीयुक्त बाबू रूपचन्द स्वरूपचन्द जगमोहनदास जोरावरमल केशरीचन्द मालकचन्द श्री देवचन्द पनमचन्द सर्वेश्वर मूलचन्द लक्ष्मी-चन्द पुरनचंन्द मातुलाल नारायणदास श्री बल्लभदास सिव-रामदास सालमसिंह गणेशदास, लछमनदास सदासुख जुगलकिशोर श्री राजरूप घनसुखदास जुगललाल बैज-नाथ सीताराम लछमनदास मानदास परमसुख फकीर-दास गम्भीरचन्द बालजी रतनजी कल्याणजी रणछोड़दास मनजी मूलचन्दजी प्रेमचन्दजी नानजी करनजी।

यह नकल 'मक्षिका स्थाने मक्षिका' वाली कहावतके अनुसार ज्यों-की-त्यों है।

संवत् १९३९ की कलकत्तेकी धर्मसभाका विवरण पत्र हमारे सामने है, जो सारसुधा निधि यंत्रका छपा हुआ है। धर्मसभाका कार्यालय बड़ाबाजार (तुलापट्टी) काटन ष्ट्रीट नं० ९७, बाबू गुलाबरायजी शिवबकसजी बागलाके मकान में था। यही धर्मसभा कलकत्तेके मारवाड़ी और देशवाली आदि सभी पश्चिमोत्तर-निवासियोंकी आदि संस्था थी। धर्मभाव और सार्वजनिक हित-साधनकी भावनाका सर्वप्रथम सञ्चार करनेवाली यही सभा हुई। इसके संस्था-पक पण्डित देवीसहायजी, श्री स्वामी सोमेश्वरानन्द नारा-यणजी, पण्डित सदानन्दजी मिश्र, सेठ सूरजमलजी झुंझुनू-वाला, शिवबक्सजी बागला, नाहरमलजी लोहिया, प्रभृति सज्जन थे। पण्डित देवीसहायजी पाटन-निवासी द्वारा सम्पादित 'धर्म दिवाकर' नामक मासिक पत्र इसी सभाका मुखपत्र था, जो संवत् १९४० से संवत् १९४३—चार वर्ष तक निरन्तर बड़ी उत्तमताके साथ निकला। भारत मैत्र-मण्डल, जिसकी स्थापना संवत् १९४१ में हुई थी, इसी धर्मसभाका अङ्गभूत था। इसके मन्त्री अथवा कार्य-सम्पादक पण्डित ज्वालानाथजी शर्मा, बी० ए० बी० एल० और उनके सह-कारी पण्डित सदानन्दजी मिश्र बनाये गये थे। इसका प्रधान उद्देश्य सर्व साधारण हिन्दू समाजका ऐक्य तथा परस्पर मैत्री विस्तार रखा गया था। उस समयके 'धर्म-दिवाकर' से पता चलता है कि पण्डित ज्वालानाथजीने बड़ा उत्साह प्रकट किया था। उन्होंने दूर तक यात्रा करके कई स्थानोंमें धर्म-सभा और मैत्र-मण्डलकी शाखाएं स्थापित करनेमें सफलता प्राप्त की थी। बम्बईकी धर्म-सभाका नाम इस सिलसिलेमें उल्लेखनीय है। उसके तत्त्वविधायक पण्डित नान्हूरामजी शास्त्री महोदय बनाये गये थे।

धर्म-सभाके सभापति-पदपर आर्य संस्कृतिके आधार वेद भगवान्‌की पुस्तक पूजनोत्तर प्रतिष्ठापित करके सह-कारी सभापति रूपसे उस अधिवेशनके कार्य-निर्वाहार्थ किसी विद्वान्‌को (उपस्थित सज्जनोंमेंसे) चुन लिया जाता था। यही स्थायी व्यवस्था थी। अधिवेशनोंमें नवद्वीपके न्यायशास्त्राध्यापक पण्डित यदुनाथ सार्वभौम भट्टाचार्य, पण्डित वेणीमाधव शास्त्री, स्वामी सोमेश्वरा-नन्द नारायणजी महाराज, पण्डित गोविन्दनारायणजी मिश्र आदि विद्वद्वर शास्त्रीय विवेचनात्मक-कर्तव्य निर्णा-यक भाषण किया करते थे—यह 'धर्म दिवाकर'से प्रकट है। इस सभाका समाज-संशोधनका पहला क्रान्तिकारी कार्य, असदाचारिणी—विपथगामिनी ब्राह्मणियोंको अपांक्तेय करना था, जिससे बड़ी हलचल मच गयी थी। यह घटना संवत् १९४८ में हुई थी। दूसरा उल्लेखनीय कार्य घीमें दूषित पदार्थ मिलानेवाले स्वार्थी व्यापारियोंको दण्ड देनेका था, जिसकी रिपोर्ट उस समयके समाचार-पत्र 'उचित वक्ता' की ३१ अगस्त सन् १८८६ ई०की संख्यामें छपी हुई है। इस धर्म-सभाकी संस्कृत पाठशाला तो संवत् १९६२-६३ तक श्री सत्यनारायणके मन्दिरमें इन पंक्तियोंके लेखकने अपनी आंखसे देखी है। यह पाठशाला प्रणम्य पण्डित बेणीमाधवजीके जीवन-काल तक ही चली। उनके साथ-साथ यह भी नाम शेष हो गया। कलकत्तेकी यह धर्म-सभा वास्तवमें बड़ेबाजारकी सभी सभा-समितियोंकी पितामही स्वरूपा थी। एक बात रह गयी। भारत धर्म महा-मण्डलके संस्थापक, व्याख्यान वाचस्पति पण्डित दीन-दयालुजी शर्मा इसी धर्मसभाके सदस्य थे और महामण्डलकी स्थापनामें 'धर्म-दिवाकर' सम्पादक पण्डित देवीसहायजीकी खास प्रेरणा और पूरा सहयोग था।

पड़ोस

मुझको पड़ोस प्यारा है !
सीधी-टेढ़ी गलियां, घर-आंगन,
दीवारें, दरवाजे, वातायन ;
झांकते जड़े-से उनमें लोचन,
ले कभी वसन्त, कभी ले सावन।
जानता स्नेह क्या सीमा-बंधन ?
मुर्दों में भर देता है जीवन ;
वज्रोंमें भर देता आलोड़न,
दीवारोंका होता आलिंगन।
यह बहती हुई स्नेह-धारा है !
नित शाम-सुबह बच्चे जुट जाते,
वे लिपट-लिपट कर शोर मचाते;
खुलते हैं भाषाओंके बन्धन,
तुतले स्वरमें खुलता है जीवन।
चलती हैं उछल-कूद-क्रीड़ाएं,
मिटती हैं घर-घरकी रेखाएं ;
बादलसे मांगा जाता पानी,
बिजलीसे जलती हुई जवानी,
किरणोंसे मांगी कञ्चन-काया,
मिट्टीसे पौरुष—ममता—माया।
खायी जातीं सबकी सौगातें,
भूली हैं जाति—धर्मकी बातें ;
सबसे सबके रिश्ते—नाते हैं,
बहनोंको भाई अपनाते हैं।
यह कैसी मुक्तिमयी कारा है !
चिड़ियां आंगन-से-आंगन जातीं,
कुछ तिनके दे आतीं, कुछ लातीं;
खबरें लातीं, उत्तर पहुंचातीं;
आंगन-आंगनका मेल करातीं;
इस तरुको दे उस तरुका मर्मर,
करतीं मिश्रित दोनोंके लय-स्वर;
तरुओंका मिलन करानेवाली।
उड़तीं हैं चिड़ियां डाली-डाली;
उड़ जाते हैं मन भी कितनोंके,
आंखोंमें चित्र लिये सपनोंके,
हैं बने मुक्ति के मंजुल साधन।
दर्शनके प्यासे आतुर लोचन,
सब बंधे हुए सुख-दुख-उत्सवमें,
शामिल हैं सब-सबके अनुभवमें;
कर्त्ता हैं सब अपने कर्मों के,
हैं दास नहीं कृत्रिम धर्मों के,
सब स्वार्थबद्ध हैं सबकी कृतिसे,
खण्डित हो सके न निज संस्कृतिसे;
भूगोल नहीं भाजक भूपर है,
मानव इतिहासोंसे ऊपर है।
झगड़े बुद्-बुद् जीवन सागर है।
बुद्बुद्पर उठती प्रेम-लहर है।
जीवन जगतीका बंधा लहरमें,
देशान्तर-प्रान्तर--ग्राम--नगरमें;
पृथ्वी मानवका मधुमय डेरा,
पार्श्विक प्यारा पड़ोस है मेरा।
सुनता हूं सबकी उथल-पुथल मैं;
सुनता हूं क्षितिजोंकी हलचल मैं।
सबके सुखसे-दुखसे निर्मित मैं ;
इसलिए मृत्युसे भी अविजित मैं।
सचमुच सब सबके निर्माता हैं;
सब सबके मर्मों के ज्ञाता हैं।
क्या भेद यहां, किससे क्या गोपन ?
अपना है इस धरतीका कण-कण।
ये क्षण भरके तूफान मिटेंगे ;
बिखरे-बिछुड़े फिर गले मिलेंगे।
यह आशा ध्रुवतारा है !

—श्रीरामदयाल पाण्डेय

शहनाई

श्री विश्वमोहन, एम० ए०,

माना कि उसके चेहरेमें काफी परिवर्तन हो चुका है। रङ्ग सांवला-सा पड़ गया है। आंखें गड्ढेमें चली गयी हैं। गालोंकी हड्डियां उभर आयी हैं। इतना कुछ होनेपर भी वह है तो वही! उसीकी तरह चाल है। बातें करते समय आंखें उसीकी तरह चमक उठती हैं। और फिर, बांई भौंके ऊपरका दाग! हां वही है वह! बिलकुल वही!······पर उसने एक क्षणके लिए उसे पहचाना क्यों नहीं। पहचाने भी कैसे? इस दो-ढाई सालके सङ्घर्षमें वह खुद भी तो काफी बदल चुकी होगी।

इतनी कुछ परेशानीके बाद शोभा तय कर पायी कि वह प्रमोद ही था। इस निश्चयके साथही उसके तन-मनमें एक जहर-सा व्याप्त हो गया। अवसाद, प्रतिहिंसा और घोर घृणा उसके रोम-रोममें रिस गयी। मुंहका स्वाद भी कड़वा लगने लगा। जैसे आंच पाकर घीका मैल सतहपर उफना आया हो। वह अन-मनी होकर बरामदेमें लेट गयी। चेहरा विवर्ण हो गया। लग-भग दो बजे तक वैसे ही पड़ी रही। पर, बाहर डाक्टर साहब-के आनेकी आहट पाते ही वह उठ बैठी।

> अपने काले और भयङ्कर अतीतका चित्र देख शोभा कांप उठी। वह सोच रही थी—"उसकी अवस्थाकी लड़कियोंमें सबको परिवार होगा। पति होंगे। माता-पिता होंगे। जीवन-धारा शायद बिना बाधाके शान्ति-पूर्वक बहती होगी। उसमें कमसे कम एक क्रम तो होगा! केवल एक मैं ही वह पुच्छल-तारा हूं, जिसमें एक साथ इतना अमङ्गल छिपा है।"
>
> ······उस शहनाईकी मादक ध्वनिसे वह कांप उठी। वह सोचने लगी—"किसी कुमारीके भालपर सिन्दूर-रेखा जग उठेगी··· पर मैं भी तो आज पत्नी बनी हूं। पर मैं कैसी पत्नी हूं? मेरे लिए न तो वेदी ही सजी और न शहनाई ही बजी!!" उसका हृदय वेगसे धड़कने लगा और डाक्टरके सीनेमें मुंह छिपाकर वह सिसकने लगी।

डाक्टर भी कमरेमें आते ही बिस्तरपर पड़ गये। बुखारसे देह जल रही थी। इससे शोभाकी सारी अकुलाहटके ऊपर एक दबाव-सा पड़ गया। आंधीमें टेबुलपरके उड़ते पन्ने भी पेपर-वेटके नीचे पड़कर अपनी हलचल भूल जाते हैं।

डाक्टर कई दिनों तक ज्वरकी तीव्रतामें छटपटाते रहे। डिलीरियममें वह क्या-क्या बकते। शोभा उद्वेगपूर्ण तत्परतासे उनके पास दिन-रात पड़ी रहती। वक्तपर दवा पिलाती, गोदमें सिर लेकर सहलाती रहती। लगता, जैसे कुछ दुराव उन दोनोंके जीवनमें कभी थे ही नहीं। केवल एक उत्तेजना महसूस करती थी। पर कभी-कभी कुछ सोचकर उसका रोम-रोम सिहर उठता था। कंप-कंपी बंध जाती थी। गोदमें डाक्टरका सिर लिये बैठे-बैठे आंखें झंप जातीं, तो प्रमोद उल्कापिण्ड-सा अंधेरेमें जलती लकीर खींच देता और शोभा घबड़ा कर चिहुंक पड़ती।

(२)

डाक्टर अच्छे हो गये हैं, यद्यपि कमजोरी कुछ-कुछ बनी है। अतः वे घरपर ही रहते हैं। घरमें पुराना जीवन लौट आया है। धाराकी सतह-पर जो आवर्त्तन आ गया था, वह मिट चला है। निर्द्वन्द्वता लौट आयी है। डाक्टरको शोभा-की सहायताकी जरूरत बिल्कुल नहींके बराबर है। यह समझ-कर ही शोभा धीरे-धीरे खिंच रही है। वह अपनेको उसी दूरीपर फिर ले जाना चाहती है, जहां वह ढाई सालसे रहती आ रही है। बनावटी अलगाव लाकर अपनी तुच्छता बनाये रखना चाहती है। इस प्रयासमें डाक्टर-की बीमारीके बाद उसे घोर संग्राम करना पड़ता है। दोपहर-को महरीके काम करके चले जाने-पर डेरेमें वह और डाक्टर बच जाते हैं। केवल वे ही दोनों। उस समय जीवनका सूनापन सजीव हो शोभाको अपनी बांहोंमें बांध लेना चाहता है और उसकी सांस रुकने लगती है।

एक दिन दोपहरको डाक्टरको पानी पिलाकर वह लौट रह ही रही थी कि कमरेमें कोई धड़धड़ाता चला आया। शोभा झटपट कमरेसे खिसक गयी। डाक्टर दिल खोलकर उस व्यक्तिसे मिला। दोनों पुराने दोस्त थे, स्कूलके जमाने से ही; और बहुत दिनोंके बाद आज भेंट हुई थी। बातोंका लम्बा सिलसिला शुरू हो गया। कहकहेसे कमरा गूंजने

लगा। शोभा सब कुछ बगलके कमरेसे सुनती रही। एकाएक उसने सुना—

"...वह थी कौन ?"

"क्यों, मेरी पत्नी थी। शककी कोई गुञ्जाइश नहीं।"

"सच ?"

"बिल्कुल सच। भगवानकी शपथ।"

"............"

इससे अधिक सुननेका उसका साहस न हुआ। उसके शरीरकी बोटी-बोटी हिल रही थी। वह आमूल कांप रही थी। उसे कुछ समझमें नहीं आ रहा था कि यह वरदान है, या अभिशाप। इधर-उधरके विचार उसके दिमागमें उठ-उठ कर उसे पागल बनाने लगे। ढाई सालसे समाज उसे क्या-क्या समझ रहा था, और वह सब कुछ सहती जाती थी। दूसरा कोई चारा न था। समाज असम्बद्ध स्त्री-पुरुषके जीवनको कबूल नहीं करता। किन्तु डाक्टरके व्यवहार और सहृदयताके बलपर ही वह सब कुछकी उपेक्षा कर सकी थी। किन्तु आज डाक्टरके मार्फत पत्नीत्वकी उपाधि पानेसे शोभाका जीवन समूल उखड़-सा गया था। अपने जीवनकी सभी गुत्थियोंको एक बार ही आज सुलझाने की कोशिश करने लगी। ऐसे ही रात कट गयी, दिन भी खतम होनेको आया, किन्तु शोभा क्षण-भरके लिए अपने अन्तर्द्वन्द्वसे छुट्टी न पा सकी। प्रमोदका जीवित-प्रेत उसे चतुर्दिकसे घेरकर उसके अन्तरमें हाहाकार मचा रहा था। वह डाक्टरके स्वामित्वको एक तिरस्कार और विद्रूपसे ठकरा देता। शोभा त्रस्त हिरणी-सी व्यग्र हो जाती।

प्रमोदकी स्मृति निरन्तर प्रश्न-चिह्न-सा उसके सामने आ-आकर सभी प्रश्नोंको जटिल कर देती थी और वह अपनी समस्या हल नहीं कर पाती।

उसी प्रमोदने उसे पत्नीत्वका अधिकार मिलनेके पहले ही मातृत्वका दुर्द्धर्ष बोझ दे और पुनः उसे त्यागकर उसके कुसुम-कोमल जीवनको पीस डाला। सच है कि उसके कलङ्कका सजीव प्रतीक आजसे दो-ढाई साल पहले ही अस्पतालमें नष्ट हो गया। पर उसका सामाजिक परिणाम तो ज्यों-का-त्यों है। वह आज भी अपनी गर्दन सीधी नहीं कर सकती, दूसरेकी कौन कहे, अपने सामने भी नहीं।

डाक्टरने उसे अस्पतालमें निस्सहाय जानकर, शरण ही नहीं दिया, बल्कि अपने घरका सारा सिलसिला ही सौंप डाला। और तबसे वह मालकिन-जैसी रहती आ रही है। परन्तु यह सब कुछ तो केवल दूसरेकी कृपाके आधारपर ही है। यह उसे भुलाये भी नहीं भूलता। वह खूब समझती है, दयाके इस स्रोतके बन्द होते ही उसका सब कुछ घरौंदे-सा नष्ट हो जायेगा।

शोभाका नारीत्व अपनी विवशतापर झुंझला उठता था। उसकी आंखें भींग जाती थीं। प्रमोदकी याद पके फोड़े-सी उसके दिलमें रह-रहकर टीस मारती थी। अपनी तुच्छता और अपने जीवनके उस भीषण भूलको वह विस्मृत नहीं कर पाती। प्रमोदको भुलाकर भी उस भयानक भूलके कारण उसे अपने सामाजिक स्वत्वका दावा पेश करनेका अधिकार नहीं मिलता था। इसी निषेधसे बंधकर शोभाका हृदय क्षुब्ध और उसका मन अधीर हो जाता !

(३)

इस अन्तर्द्वन्द्वके चलते दो-तीन दिनोंमें ही वह हतचेत हो चली। उसे अब खुद अपनेसे डर लगने लगा था। अकेलेमें चुपचाप पड़ते ही उसके अपने ही विचार भूखे जानवरोंकी तरह उसे घेर लेते। वह निश्चेष्ट हो जाती थी, जैसे लड़ाईके मैदानमें कोई घायल विवश पड़ा रहता है और चील-कौए उसके घावोंसे मांस नोंच-नोंच कर खाते रहते हैं। शोभाका सारा शरीर खोखला मालूम पड़ने लगा था, जिसके भीतर स्मृतियोंके असंख्य कीट उसके मर्मस्थलोंको खा रहे थे। कभी प्रमोद, कभी डाक्टर और फिर प्रमोद.........।

वह निश्चित नहीं कर पाती थी, उसके जीवनका उद्देश्य क्या है। शायद वह किसी अनन्त मरुमें भटक गयी है। वहां एक छोटी-सी हरियाली छोड़ कर, न कोई दूसरी छाया है और न कोई साथी-सङ्गी; केवल जलते रेत हैं।

अन्ततः इसी निर्णयपर वह पहुंचती कि लता भी जहां कोई सहारा पाती है, उसीसे लिपट कर आगे बढ़ती है। डाक्टरने जब उसे स्वीकार कर ही लिया, तो वह क्यों फिजूल व्यस्त होती है। आत्म-समर्पणमें उसे लगता ही क्या है। माना कि उन्होंने उससे रूबरू कुछ नहीं कहा है। पर दूसरेके सामने तो स्वीकार कर चुके। वह सिन्दूर लगाना शुरू क्यों न कर देती है ?

किन्तु प्रमोद और फिर वही अधिकारकी बात......।

(४)

दिन भर बड़ी उमस थी। कुछ सांझ होते ही ठण्ढी हवा चलने लगी। मटमैले बादलोंके टुकड़े क्षितिजकी छोर पर घिरने लगे। थोड़ी रात जाते-जाते सारा आसमान प्रगाढ़ कालिमामें डूब गया। लगता था, पानीके बदले केवल

स्याही बरसेगी। उद्विग्न चित्तसे डाक्टरको पहले ही खाना खिलाकर सब कामसे वह निबट गयी और सोनेके पहले एक बार डाक्टरको देखने उनके कमरेमें आयी।

वे चुपचाप बिछावनपर लेटे थे। पतली-सी चादर देह-पर पड़ी थी। उन्हें जगा देख शोभा लौट ही रही थी कि डाक्टरने अनायास कहा—"शोभा"

वह रुक गयी।

"कोई तकलीफ तो तुम्हें नहीं है ?" डाक्टरका स्वर कुछ उखड़ा-सा था।

इस नये प्रश्नसे शोभा बिल्कुल चकित हो गयी। संभ-लते-संभलते बोली—"नहीं तो।"

"फिर दिन-दिन छीजती क्यों जाती हो ? इधर बेहद खिन्न देखता हूं, चेहरा सूखकर आधा हो गया है।"

वह लज्जा और परेशानीसे सिर गड़ाये चुपचाप खड़ी रही। डाक्टर आवेगके साथ बोलने लगे—"मुझे अब तुम-पर खास खयाल रखना होगा। मैंने पूरा सोच लिया है। ऐसे तो कुछ रोज हुए एक दोस्तको मैंने तुम्हें अपनी पत्नी बतलाया है। पीछे कुछ पश्चाताप भी हुआ। आखिर मुझे इसका हक ही कौन-सा है। इस अनधिकार चेष्टाके पहले तुम्हारी राय भी उतनी ही जरूरी है। यह सब कुछ एहसानके परेकी चीज है। इसके निर्णय······।"

एकाएक उनका स्वर टूट गया। कलेजेसे कोई चीज जैसे बड़ी तेजीसे बाहर आना चाहती थी, किन्तु गलेमें आकर वह अटक रही थी।

डाक्टरको अपने प्रयासपर आश्चर्य हो रहा था। दुनिया उन्हें जो कुछ भी समझती आ रही हो, वे अपनी नजरमें इतने नीचे कभी न गिरे थे। अपनी इस कमजोरी-के क्षणमें शोभाके आगे वे जिस रूपमें खुले थे, कुछ मनोरम नहीं जंचता था। क्षोभसे विह्वल होकर उन्होंने चादरमें मुंह छिपा लिया।

कुछ देर बाद शोभा भी अपने कमरेमें चली आयी। उसकी सारी चेतनता कुण्ठित हो रही थी। निस्सहाय हो तकियेमें सिर डालकर वह सिसकने लगी। और न मालूम कब नींदमें पलकें झंप गयीं।

करीब आधी-रात गयी होगी कि वर्षाके कुछ छींटोंने शोभाको भिगो दिया। ठण्डकसे आंखें खुल गयीं, किन्तु वह उठ न सकी, अपने सूनेपनमें खोई-सी थी। यद्यपि कुछ हल्कापन महसूस करती थी, फिर भी कहींका उलझा छोर जैसे झिटक-झिटक देता था।

एकाएक डाक्टरका खयाल आया। उठकर उनके कमरेमें दौड़ी आयी। वह खुद काफी भीग चुकी थी। डाक्टरके कमरेमें धीमी रोशनी जल रही थी। पानीके छींटोंसे डाक्टरकी चादर कुछ नम हो गयी थी। शोभाने खिड़की बन्द कर दी। चादरको भी बदल डाला। फिर कुछ क्षण तक डाक्टरके सुषुप्त चेहरेको गौरसे देखती रही। वह जैसे डाक्टरको एक बार ही समूचा पढ़ लेना चाहती थी। जितना ही वह गौरसे देखती—अपनेमें एक अस्वस्थता भरती जाती थी। पुराना दर्द जैसे फिर उभड़ना चाहता था।

वह उसी कमरेमें इधर-उधर घूमने लगी। वह दिमागके सभी कोने बन्द कर समझ लेना चाहती थी कि अब वह डाक्टरकी पत्नी है। उसका भी अब अपना घर है। उसे किसी तरहकी बाधा नहीं है। कमरेमें उसे भी पूरा अधिकार है। डाक्टरके कमरेमें घूम-घूम कर वह अपनेको यही समझा देनेकी कोशिश करती थी।

पर अन्दर कोई कहता था, वह सीमाके बाहर जा रही है। डाक्टर अगर जगे होंगे, तो क्या सोचेंगे। इतनी रातको इस कमरेमें आनेका अधिकार उसे समाजने तो दिया नहीं है ! इतना सोचकर वह कमरेके बाहर निकल गयी। आते-आते लगा कि डाक्टर उसका नाम लेकर पुकार रहे हैं। अपराधी-जैसे वह लौट पड़ी। किन्तु डाक्टर अभी भी गाढ़ी नींदमें थे। उफ, सपनेमें भी वे उसीको सोच रहे थे। शोभाको थोड़ा आत्मतोष भी हुआ।

अपने कमरेमें आकर वह आइनेमें अपना चेहरा देखकर अपनेको पहचाननेकी कोशिश करने लगी। अब वह शोभा कहां रही। वह तो डाक्टरकी पत्नी है। शोभाका अस्तित्व समाजकी छातीपर एक फोड़ा-सा है। पर स्थायी चीज वह नहीं है, परन्तु डाक्टरकी पत्नीका अस्तित्व चिरन्तन है। शोभाका मर जाना ही अच्छा है, बिलकुल अच्छा। अपने लिए, डाक्टरके लिए और सबसे ज्यादा, समाजके लिए। उसकी उमरकी लड़कियोंमें सबको परिवार होगा। पति होंगे। माता-पिता होंगे। जीवन-धारा शायद बिना किसी बाधाके शान्तिपूर्वक बहती होगी। उनमें कमसे कम एक क्रम तो होगा। केवल शोभा ही एक पुच्छल तारा है, जो इतना-सा अमङ्गल अपनेमें छिपाये है।

इन सभी बातोंके ऊपर उसका अपना स्वर दृढ़ था। हृदय कहता था कि वही क्यों इतना कुछ सहती है ? प्रमोद बिना किसी अवरोधके उसकी अन्तरात्मामें क्यों घूम रहा है ?

शोभा जान नहीं पाती, क्यों उसकी स्मृति इस आधी रातको इतनी तीव्र हो रही है। पुराना प्रश्न बहुरूपिये-सा नया-नया वेष धरकर क्यों उसके सामने आ रहा है?

इन सब विचारोंके बावजूद भी उसकी दबी आग भड़क उठी और वह खुद जलने-सी लगी। खिड़कीको खुला ही छोड़ दिया। भीगे कपड़ेके साथ ही बिछावनपर लेट गयी। वह जैसे उलझी झाड़ियोंके बीच तन्मय होकर राह ढूंढ़ रही थी। जितना ही प्रयत्न करती, उतना ही भटक जाती थी। कांटे चुभते थे। व्यग्रता क्षण-क्षण बढ़ती जा रही थी।

घबड़ा कर वह खिड़कीके बाहर देखने लगी। अचानक हवाके दो-तीन झोंके लगातार शिथिल गतिसे उससे लिपटने आये। किसी सुदूर कोनेसे शहनाईकी मीठी ध्वनि भटकते-भटकते उन झोंकोंके साथ चली आयी और शोभाका तन-प्राण अभिभूत कर लौट गयी।

शोभा अपना सब कुछ भूलकर सोचने लगी। किसी कुमारीके भालपर सिन्दूर-रेखा जग उठेगी। उसका सारा जीवन एक अनिर्वचनीय मिठाससे भर जायेगा। बदनसे लिपटी चूनर, और मांगपर सुहागका भार होगा। बगलमें कल्पनाओंका सजीव रूप बनकर पति होगा। शहनाईका मधुर राग उनके सारे जीवनमें बस जायेगा, जैसे उसकी मिठास अभी उस गहन अन्धकारमें, सृष्टिके रोम-रोममें भर रही थी। वह कुमारी पत्नी बनकर आजीवन वह राग सुनती रहेगी, सुनती रहेगी।

शोभा भी तो आज ही पत्नी बनी है। डाक्टरने अचानक ही उसके जर्जर कन्धेपर सुहागका मीठा भार लाद दिया है। पर उसके लिए न वेदी सजी और न शहनाई ही बजी। और न बजेगी। कैसी पत्नी है वह कि जीवनमें कोई राग नहीं, मिठास नहीं। केवल सूनापन सांय-सांय करता है!

उदास होकर शोभा डाक्टरके कमरेमें भीगे देह चली आयी। कलेजेके अन्दर एक तूफान सहेजे घूमती रही। फिर शहनाई बज उठी। इस बारकी ध्वनि और भी उन्मादक थी। तीखी, पतली, किन्तु रसमें डूबी। स्वरकी एक-एक गतिमें उल्लास था। शोभा सम्पूर्ण ध्वनि-धाराको पी जाना चाहती थी। उसका रोम-रोम कान खोले उस स्वरको सुनता रहा। वह तिल-तिल उखड़ती गयी। आखिर झुककर धीरेसे डाक्टरके सीनेपर सिर रख दिया। और अप्रस्तुत ही उसकी पीठपर डाक्टरका हाथ आ गया। वे शायद मीठे सपनेमें थे। शोभाका हृदय वेगसे धड़कने लगा। धीमी-धीमी सिसकियोंसे उसकी छाती फूलती-दबती थी। एक बार कुछ जोरसे डाक्टरके सीनेमें अपना मुंह छिपाकर सिसकने लगी।

सुदूर अन्धकारमें अभी भी शहनाईकी मीठी ध्वनि प्रतिपल धीमी होती गूंज रही थी। जहां-तहां स्वर मन्द पड़कर टूट जाता था। किन्तु उस शून्यको हवा अपनी सीटीसे भर-भर देती थी।

गीत

मेरी सागरके बीच तरी
है दूर यहां से नील गगन,
है दूर यहांसे भूमि हरी।
मैं जगके मगसे छुटा हुआ
असहाय, अकिञ्चन, लुटा हुआ,
मेरा अन्तर सूना-सूना
हैं मेरी आंखें भरी-भरी।
मेरी सागरके बीच तरी।
घुमड़ी काली-काली बदली,
भर तिमिर, तुषार बयार चली,
बचता हूं एक भंवरसे जब
घिर आती लहरी पर लहरी।
मेरी सागरके बीच तरी।
मत मिलें मुझे मोती-दाने,
मेरा श्रम कोई मत जाने,
पर बीच सिन्धुसे लौट चलूं—
कैसे लेकर सूनी गगरी?
मेरी सागरके बीच तरी।

—श्री जानकीवल्लभ शास्त्री

प्रजातन्त्र और नागरिक स्वाधीनता

लेः—श्री रामनारायण यादवेन्दु बी० ए०, एल-एल० बी०

नागरिक स्वाधीनता प्रजातन्त्रका तीसरा प्रमुख तत्व है। सुख और समानताके भावोंसे स्वाधीनताका घनिष्ट सम्बन्ध है। आप किसी ऐसे समाजकी कल्पना नहीं कर सकते, जिसमें उसका लक्ष्य सब व्यक्तियोंके लिए समान सुख और राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक समानता हो, परन्तु उन्हें इन श्रेष्ठ अधिकारोंके स्वतन्त्रतापूर्वक भोगका अधिकार न हो। सब व्यक्तियोंके समान सुख तथा समानताकी भावना उस समाजमें पैदा नहीं हो सकती, जिसमें व्यक्तियोंको पूरी नागरिक स्वाधीनता प्राप्त न हो।

हाब्सने लिखा है—"स्वतन्त्र मनुष्य वह है जो उन कामोंके करनेमें, जिनके सम्पादनकी उसमें शक्ति तथा क्षमता है, यदि उसकी उन्हें करनेकी इच्छा है, तो उसे रोका न जाय।"

इस प्रकारकी स्वाधीनता किसी भी सभ्य राष्ट्रके लिए उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकती। यह अनियन्त्रित स्वतन्त्रताकी परिभाषा है। परन्तु समाजमें व्यक्तियोंको ऐसी स्वतन्त्रता कहां प्राप्त हो सकती है? असभ्य समुदायोंमें भी निरपेक्ष स्वतन्त्रतापर बन्धन है।

लन्दन-विश्व-विद्यालयके राजनीतिके प्रसिद्ध समाजवादी प्रोफेसर हैराल्ड जे० लास्कीने अपनी सबसे नवीन अङ्गरेजी रचना "आधुनिक राज्योंमें नागरिक स्वाधीनता" नामक पुस्तकमें लिखा है :—

"नागरिक स्वाधीनतासे मेरा प्रयोजन उन सामाजिक अवस्थाओंके अस्तित्वपर प्रतिबन्धोंके अभावसे है, जो आधुनिक सभ्यतामें, वैयक्तिक सुखकी आवश्यक गारण्टी हैं।" इसके आगे विद्वान प्रोफेसरने लिखा है—"अब स्वाधीनता ऐसे राज्यमेंही कायम है, जहां मनुष्य यह जानता है कि अन्तिम शासन-सत्ता द्वारा जो निर्णय किये जाते हैं, वे उसके व्यक्तित्वको आक्रान्त नहीं करते।"

जब हम राजनीतिक और सामाजिक दृष्टिसे प्रत्येक मानवको एक व्यक्तिके रूपमें मानते हैं, तो निश्चय ही इस व्यक्तित्वकी भावनामें उसकी स्वाधीनताका भाव भी आ जाता है। यदि हम प्रत्येक व्यक्तिकी सुख-प्राप्तिके समानाधिकारको स्वीकार करते हैं, यदि हम प्रत्येक व्यक्तिके राजनीतिक तथा सामाजिक जीवनमें समान अधिकारको स्वीकार करते हैं, तो इसका तात्पर्य तो यह है कि हमें यह स्वीकार करना होगा कि प्रत्येक व्यक्तिको बिना किसी हस्तक्षेपके अपने व्यक्तित्वके प्रकाशमें अपना जीवन-निर्माण करनेका अधिकार है।

अब यदि व्यक्तिकी स्वाधीनता उसके विकासके लिए आवश्यक है, तो इसकी रक्षा उसी समय हो सकती है, जब कि सम्पूर्ण समाजके हाथमें राजनीतिक सत्ता और अधिकार हो। अतः जो व्यक्ति अपने समाजके साथ ऐसी राजनीतिक सत्ता, अधिकार और नियन्त्रणमें भाग नहीं लेता, वह कदापि स्वतन्त्र नहीं रह सकता।

इस समस्याका सर्वश्रेष्ठ समाधान यही है कि राजनीतिक सत्ताका प्रयोग करनेके निमित्त उन समस्त अधिकारों एवं विशेषाधिकारोंका नाश कर दिया जाय, जो किसी वर्ग विशेषकी पैत्रिक सम्पत्ति हों। इस प्रकार शासन-सञ्चालन तथा देशके कानूनोंके निर्माणमें समस्त व्यक्तियोंको भाग लेनेका अधिकार ही स्वाधीनताका सार है।

यूरोपके प्रत्येक देशमें व्यक्तियोंकी स्वतन्त्रताके भोगके लिए राज्यकी सत्ताको मर्यादित करनेका प्रयत्न किया गया। व्यक्तियों—नागरिकोंके मौलिक अधिकारोंको स्वीकार किया गया। नागरिक स्वाधीनतामें व्यक्तित्व तथा जीवनकी रक्षाका अधिकार, वैयक्तिक स्वाधीनता, विचार-स्वाधीनता, मत-प्रकाशनकी स्वाधीनता, सभा या सम्मेलनमें शामिल होनेकी स्वाधीनता, आर्थिक स्वाधीनता, सामाजिक स्वाधीनता, समाचार-पत्रोंकी स्वाधीनता आदि शामिल हैं।

सोवियट, समाजवादी रूसके शासन-विधानके दसवें अध्यायमें नागरिकोंके मौलिक कर्तव्यों तथा अधिकारोंका विधान है। यहां हम संक्षेपमें उनका उल्लेख करना उचित समझते हैं :—

धारा ११८—सोवियट राज्यके नागरिकोंको काम करनेका अधिकार है। प्रत्येकको निर्धारित काम और कामकी मात्रा तथा गुणके अनुसार वेतन प्राप्त करनेका अधिकार है।

११९—नागरिकोंको आराम करनेका अधिकार है।

१२०—नागरिकोंको वृद्धावस्था, रोगावस्था अथवा किसी अङ्गके हीन होनेपर भौतिक सुरक्षा पानेका अधिकार है।

१२१—नागरिकोंको शिक्षा पानेका अधिकार है।

१२२—पुरुषोंके साथ स्त्रियोंको आर्थिक, सांस्कृतिक, सार्वजनिक तथा राजनीतिक जीवनमें समान अधिकार प्राप्त हैं।

१२३—रूसके समस्त नागरिकोंको राष्ट्रीयता अथवा जातीयताके बिना किसी बन्धनके राज्यके राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक जीवनमें समान अधिकार है। यह राज्यका अपरिवर्त्तनशील कानून है।

१२४—नागरिकोंको बौद्धिक स्वतन्त्रता देनेके हेतु रूसमें चर्च-धर्म-संस्थाको राज्यसे अलग कर दिया गया है और स्कूलोंको भी चर्चसे अलग कर दिया गया है। समस्त नागरिकोंको धार्मिक मतोंको ग्रहण करने तथा धर्म-विरोधी प्रचार करनेकी स्वाधीनता है।

१२५—श्रमिकोंके हितोंके अनुसार तथा समाजवादी व्यवस्थाको शक्तिशाली बनानेके लिए रूसके नागरिकोंको निम्नलिखित स्वाधीनता कानून द्वारा सुरक्षित है—

(१) भाषण-स्वातन्त्र्य।

(२) प्रेस-स्वातन्त्र्य।

(३) सभा-स्वातन्त्र्य।

(४) राजमार्गपर जुलूसकी स्वतन्त्रता।

१२६—नागरिकोंको सङ्घ, सभा तथा विविध प्रकारके सङ्गठन बनानेका अधिकार है।

१२७—राज्यके कानूनके अनुसार या न्यायालयके निर्णयके अनुसार ही कोई नागरिक गिरफ्तार किया जा सकता है।

१२८—प्रत्येक नागरिकका निवास-स्थान भी सुरक्षित है—और उसके पत्र-व्यवहारकी गोपनीयता भी सुरक्षित है।

सोवियट रूसके नागरिकोंके कर्त्तव्य भी हैं। उन्हें सोवियट शासन-विधानका पालन करना चाहिये; कानूनका पालन करना चाहिये, सार्वजनिक कर्त्तव्यको पवित्र मानना चाहिये और समाजवादी समाजके नियमोंका पालन करना चाहिये। नागरिकोंको समाजवादी सम्पत्तिकी रक्षा करनी चाहिए। जो इस सम्पत्तिपर आक्रमण करें, वे शत्रु हैं। सैनिक-सेवा प्रत्येक नागरिकका कर्त्तव्य है। यह नागरिकोंके मौलिक कर्त्तव्य हैं।

आज संसारके प्रत्येक प्रजातन्त्रवादी राष्ट्रके विधानमें मौलिक अधिकारोंको प्रमुख स्थान प्राप्त है। परन्तु नाजी तथा फासिस्ट राज्य नागरिक स्वाधीनता और नागरिक समताके आदर्शोंके विरुद्ध हैं।

नाजी राज्य-भावना और प्रजातन्त्र

जर्मनीमें हर हिटलरने जिस राजनीतिक विचार-धाराका प्रचार किया है, उसे वह राष्ट्रीय समाजवाद (National Socialism) कहता है। नाजी शब्द इसीका संक्षिप्त रूप है। यद्यपि यह शब्द बड़े आकर्षक हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि जर्मनीका यह अधिनायक समाजवादका समर्थक होगा, परन्तु वास्तवमें यह कोरा शब्द-जाल है। इस राजनीतिक विचारधाराके अन्तरमें न समाजवादी भावना है और न प्रजातन्त्रवादी विचार। यह नाजीवाद तो इन दोनोंके विपरीत है।

नाजीवादकी राष्ट्र-कल्पनाका पूर्ण आभास हिटलरके आत्म-चरितके निम्नलिखित अवतरणोंसे मिल जाता है—

"आज-कल 'राष्ट्र' के जीवनमें जाति या नस्लको कोई महत्व नहीं दिया जाता। सभी जगह लोगोंमें ऐसी धारणा हो गयी है कि सभी आदमी बराबर हैं। कार्ल मार्क्सका सिद्धान्त ही इसी नींवपर खड़ा किया गया था। पर वास्तवमें इस प्रकारकी विचार-धारा तो और पहले भी प्रचलित रही थी। कार्ल मार्क्सने सिर्फ यह किया कि इस विचार-धारामें अपने मतलबकी बातोंको इकट्ठा करके इसको अन्तर्राष्ट्रीय भ्रातृत्वका रूप देकर संसारके सामने रखा।" १

"इस सिद्धान्तके प्रतिकूल हमारे राष्ट्रीय सिद्धान्तमें जाति या नस्लको मानवताके संसारमें सबसे अधिक महत्व दिया गया है। जो जाति सर्वश्रेष्ठ है, उसीका प्रभुत्व सबके ऊपर हो सकता है। हमारा सिद्धान्त यह नहीं स्वीकार करता कि सभी आदमी या सभी जातियां बराबर हैं। संस्कृति या सभ्यताके अनुसार कुछ जातियोंका पद औरोंसे ऊंचा रहा है।" २

"इस पृथ्वीपर आर्य-जातिके अस्तित्वपर ही सभ्यता और संस्कृति निर्भर करती है। जिस दिन यह जाति अपनी मौलिक श्रेष्ठताकी रक्षा करनेसे उदासीन हो जायगी, उस दिन संसारके सभी श्रेष्ठ आदर्शोंका लोप होना

१ हर हिटलर :—मेरा सङ्घर्ष (हिन्दी अनुवाद) सरस्वती सीरीज इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद (१९४१) पृ०—८४

२ „ „ पृ०—८९

निश्चित है। ईश्वरकी सबसे सुन्दर रचना हम इस जातिके लोगोंमें पाते हैं।" ३

इस प्रकार नाजीवादकी राष्ट्र-भावना जातीय-भावना (Racial Conception) के आधारपर खड़ी की गयी है। हिटलर जर्मन जातिको 'आर्य जाति' और उसे ही वह संसारकी सर्वश्रेष्ठ जाति मानता है। इसका अर्थ यह है कि संसारमें जर्मन जातिको ही शासन करनेका अधिकार है।

इस प्रकार नाजी राष्ट्र-कल्पना न केवल राष्ट्रीयताकी उग्र भावनाको उत्तेजन देती है, प्रत्युत वह अन्तर्राष्ट्रीयताका विरोध करके संसारमें अशान्तिके बीज बोती है। हिटलरने आत्म-चरितमें लिखा है —

"हमें जाति सम्बन्धी एक ऐसे दृष्टिकोणको जनतामें प्रचलित करनेकी आवश्यकता है, जो मार्क्सवादकी घातक अन्तर्राष्ट्रीय विचारधाराको कुचल दे।"

नाजी विचारधारा राज्यके सब व्यक्तियोंको राजनीतिक तथा सामाजिक दृष्टिसे समान नहीं मानती और न सबके सुखकी समान व्यवस्था करना ही उसका लक्ष्य है। एक दूसरे स्थलपर हिटलरने लिखा है—

"सब बातोंमें जाति और नस्लकी उच्चताका ध्यान रखना राष्ट्रका पहला कर्त्तव्य होगा। आज अगर कोई नीग्रो (हबशी) वकालत पास कर लेता है, तो इसके मानी यह नहीं कि वह हमारे बराबर हो गया। यहूदी कहेगा कि यह इस बातका प्रमाण है कि आदमी सब बराबर हैं। अक्लके दुश्मन हमारे मध्यवर्गके लोग प्रशंसा-सूचक आश्चर्यके साथ उस नीग्रो वकीलको देखते ही रह जायंगे। पर ये मूर्ख यह नहीं समझते कि प्रकृतिने जिस आदमीको जिस कामके लिए नहीं बनाया, उसको उस बातकी शिक्षा देना प्रकृतिके विरुद्ध बड़ा भारी पाप है।......"

"हमारा राष्ट्र इस मामलेमें बड़ा सतर्क रहेगा कि जो आदमी जन्मसे जिस प्रकारकी शिक्षा, व्यवसाय या पदके लिए उपयुक्त हो, उसको वैसी ही शिक्षा दी जाय।"

नाजीवाद प्रत्येक मनुष्यके जन्म या जातिके आधारपर ही उसकी—शिक्षा, व्यवसाय तथा पदका निर्णय करता है। यह व्यक्तित्वके विकास तथा समग्र राष्ट्रके उत्थानके लिए कितना घातक सिद्धान्त है।

नाजीवाद प्रजातन्त्रका विरोधी है; वह इस सिद्धान्तमें विश्वास नहीं करता कि बहुमतके निर्णयके अनुसार समाजका निर्माण या शासन-सञ्चालन किया जाय। हिटलरने लिखा है—

"जातीय राष्ट्रका मुख्य उद्देश्य होगा बहुमत द्वारा शासन-पद्धतिका अन्त करना और इसके स्थानपर एक व्यक्ति द्वारा शासन-पद्धतिकी प्रथा चलाना। राष्ट्र या विधान वही अच्छा कहा जा सकता है, जिसमें समाजके सर्वश्रेष्ठ मस्तिष्क वाले व्यक्ति नेतृत्वके काममें लगाये जा सकें। इसके अन्तर्गत फैसला करनेके लिए बहुमतकी डिग्रीकी जरूरत न होगी।" (मेरा सङ्घर्ष १०५-१०६)

इस प्रकार यह स्वतः प्रमाणित है कि नाजीवाद व्यक्तियोंके सुख, व्यक्तियोंकी समानता तथा उनकी स्वाधीनताका प्रबल विरोधी है। नाजीवाद एक व्यक्तिके शासनको श्रेष्ठ मानता है और सब नागरिकोंको अन्धा बनकर उसके आदेशोंका पालन करना चाहिये। राष्ट्रका शासन विधान कैसा हो, तथा शासन-सञ्चालन किस प्रकार किया जाय— इन विषयोंमें व्यक्तियोंकी सम्मतिकी आवश्यकता नहीं है। फासिज्मका सिद्धान्त भी नाजीवादसे मिलता-जुलता है।

फासिस्ट राज्य-कल्पना

फासिज्मके जन्मदाता बेनितो मुसोलिनीने फासिज्मके सिद्धान्तकी विवेचना करते हुए यह स्पष्ट शब्दोंमें लिखा है कि फासिज्म समाजवाद और प्रजातन्त्र दोनोंका विरोधी है। वह पवित्रता और वीरतामें विश्वास करता है और उन कार्योंमें विश्वास करता है, जिनकी प्रेरणा किसी आर्थिक भावनासे नहीं होती। वह समाजके पुनर्निर्माणमें वर्ग-सङ्घर्षको आवश्यक नहीं मानता। मुसोलिनीने अपनी पुस्तक "फासिज्मके राजनीतिक और सामाजिक सिद्धान्त" में लिखा है—"फासिज्म इसे अस्वीकार करता है कि बहुमत, केवल इसलिये कि वह बहुमत है, मानव-समाजका सञ्चालन कर सकता है; वह इसे भी अस्वीकार करता है कि केवल बड़ी संख्यामें लोग समय समयपर परामर्श द्वारा शासन कर सकते हैं, और वह मानव जातिकी शाश्वत, फलवती तथा हितकारी विषमताको स्वीकार करता है, जो किसी यान्त्रिक-क्रिया द्वारा स्थायी रूपसे नहीं मिटायी जा सकती।"

राज्यके विषयमें मुसोलिनीने लिखा है :—

"फासिज्मका आधार राज्यकी भावना है...। फासिज्म राज्यको एक निरपेक्ष सत्ता मानता है।... फासिस्ट राज्य स्वयं चेतन है और उसकी निजी आकांक्षा है तथा उसका निजी व्यक्तित्व भी है।...."

३ हर हिटलर :—मेरा सङ्घर्ष (हिन्दी अनुवाद) सरस्वती सिरीज इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद पृ० ८५

इस प्रकार फासिज्म भी व्यक्तियोंके समानाधिकार, सुख तथा स्वाधीनताको स्वीकार नहीं करता।

आज संसारमें व्यक्ति और समाज या राष्ट्रके पारस्परिक सम्बन्धोंमें सामञ्जस्यका अभाव ही वर्तमान सङ्घर्षका आधारभूत कारण है और यह सङ्घर्ष सम्पत्तिके लिए है।

सम्पत्ति, सङ्घर्ष और शान्ति

आज संसारमें सम्पत्तिका वितरण ही इस युगकी प्रधान समस्या है और हमारे सङ्घर्षों के मूलमें यही समस्या प्रमुख है। समाजमें दो प्रकारकी विचारधाराएं रही हैं। एक विचार-धाराके अनुसार सम्पत्तिपर अधिकार एक विशेष वर्गके आधीन रखनेका प्रयत्न किया गया और व्यक्तिवादकी आड़ लेकर इसने पूंजीवाद तथा पूंजीवादी वर्गको जन्म दिया और दूसरी विचार-धाराके अनुसार सब व्यक्तियोंके सुखके लिए सम्पत्तिके समान वितरणके निमित्त आन्दोलन हुआ। यह आन्दोलन सम्पत्तिहीन व्यक्तियोंकी ओरसे किया गया। इस प्रकार इन दो विचार-धाराओंमें सङ्घर्ष स्वाभाविक और अनिवार्य ही था और इस सङ्घर्षका परिणाम राज्यमें आन्तरिक कलह, विद्रोह, बेकारी, गरीबी तथा महामारी की व्यापकताके रूपमें प्रकट हुआ और संसारमें अन्तर्राष्ट्रीय युद्धके रूपमें। जब प्रत्येक राज्यके पूंजीवादियोंमें अपने स्वार्थों के लिए सङ्घर्ष होने लगा, तब उन्होंने अपनी सहायताके लिए अपनी-अपनी सरकारोंसे यह अपील की कि राष्ट्रीय स्वाधीनता खतरेमें है।

प्रजातन्त्रका नाश हो जायगा और हमारा राष्ट्र रसातलको पहुंच जायगा। इस प्रकार पूंजीवादी मनोविज्ञानको राष्ट्रीय स्वरूप देकर राष्ट्रकी पूरी सत्ताका उपयोग अपने स्वार्थों की रक्षाके लिए किया जाने लगा। इस प्रकार यह प्रमाणित हो चुका है कि सम्पत्तिका विषम विभाजन ही अशान्तिका कारण है। प्रसिद्ध समाजवादी अङ्गरेज नेता श्री० एच० एन० ब्रेल्सफोर्डने अपनी विचार-पूर्ण पुस्तक 'पीस और प्रोसपेरिटी' में लिखा है—

"जो बात हमारे लिए स्पष्ट है, वह तो यह है कि सम्पत्ति, प्रेस-सरंक्षण और मालिक तथा मजदूरके दमनकारी सम्बन्धों द्वारा राजनीतिक समानताको व्यर्थ कर देती है और प्रजातन्त्रका ऐसा प्रयोजन निर्देशित करती है कि जो सम्पत्तिशाली वर्गकी तानाशाहीसे मिलता-जुलता होता है।

कोकिल

किसने मुझे पुकारा ?

यह आज किस परी ने,
किस कण्ठ बाँसुरी ने,
बेसुध मुझे बनाया
किस कुञ्ज की पिकी ने,
उर बीच यों बहा कर
मधुकी अथाह धारा—
किसने मुझे पुकारा ?

यह कौन उर्वशी सी,
किस लोक में बसी सी,
मुझमें जगा रही है
अज्ञात बेबसी सी ?
टूटी कभी नहीं जो
वह तोड़ मौन–कारा—
किसने मुझे पुकारा ?

पहचान मैं न पाया,
कुछ जान मैं न पाया,
अनजान कौन स्वर यह
मन–प्राण में समाया ?
भर प्राण–रन्ध्र मेरे
स्वर इन्द्रजाल द्वारा—
किसने मुझे पुकारा ?

— श्री शम्भूनाथ सिंह

युद्धके बाद पूर्वीय देशोंकी समस्या

लेखक—प्रो० जगन्नाथप्रसाद मिश्र

युद्धके बाद एक नूतन विश्व-व्यवस्था कायम करनेकी जो चर्चा चल रही है, उस नूतन विश्व-व्यवस्थामें सुदूर पूर्व के देशोंकी क्या स्थिति होगी? यह एक ऐसा प्रश्न है, जिसपर युद्धोत्तर कालकी नूतन विश्व-व्यवस्था एवं विश्व-शान्तिकी सफलता-असफलता बहुत-कुछ निर्भर करती है। अभी तक तो यही सुननेमें आ रहा है कि अमेरिका, इङ्गलैण्ड और रूस तीनों राष्ट्र पृथक्-पृथक् युद्धोत्तर यूरोपके पुनर्निर्माणकी योजनाएं तैयार कर रहे हैं और जर्मनीकी सम्पूर्ण पराजय हो जानेके बाद फिर तीनों महाशक्तियां सम्मिलित होकर एक संयुक्त योजना तैयार करेंगी, जिसके आधारपर यूरोपके समस्त छोटे-बड़े राष्ट्रोंका सीमा-निर्धारण एवं पुनर्निर्माण होगा। वास्तवमें यदि देखा जाय, तो यूरोपके राष्ट्रोंकी समस्या उतनी जटिल नहीं है, जितनी प्रशान्त महासागरसे सम्बन्ध रखनेवाले पूर्वीय देशोंकी। कारण जर्मनी द्वारा कवलित होनेके पूर्व यूरोपके छोटे-बड़े सभी राष्ट्र स्वाधीन थे। उनकी स्वाधीनताका बलपूर्वक अपहरण कर लिया गया है। युद्धके बाद इन सब देशोंकी स्थिति फिर स्वाधीन राष्ट्र—जैसी हो जायगी। हां, सीमान्तको लेकर कुछ हेर-फेर हो सकता है। किन्तु पूर्वीय देशोंके साथ यह बात नहीं है। इनमें एक जापानको छोड़कर बाकी सभी छोटे-बड़े देश पूर्ण या आंशिक रूपमें पराधीन हैं। सम्पूर्ण स्वतन्त्र राष्ट्र—जैसी स्थिति एकमात्र जापानको ही प्राप्त है। भारत—जैसा विशाल देश पूर्णतः पराधीन है। भारत महासागरके द्वीप पुञ्ज जावा, सुमात्रा, बोर्नियो भी स्वाधीन नहीं हैं। बर्मा और इण्डोचीनकी भी यही स्थिति है। कोरिया, फर्मोसा और मंचूरियाके साथ भी यही प्रश्न है। चीनकी स्वतन्त्रता भी युद्धके पूर्व तक नाम-मात्रको ही कही जा सकती थी। पूर्वके अधिकांश देश जापान द्वारा आक्रान्त एवं अधीनस्थ होनेके पूर्व भी पराधीन थे। प्रशान्त महासागरके असंख्य द्वीप समूहोंकी समस्या भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। इस प्रकार हम देखते हैं कि युद्धोत्तर कालमें यूरोपके पुनर्निर्माणकी अपेक्षा एशियाके पुनर्निर्माणका समस्या कहीं जटिल और महत्वपूर्ण है और जबतक इन सब देशोंमें स्थायी शान्ति एवं नूतन व्यवस्थाकी स्थापना नहीं होती, तबतक विश्व-शान्तिका स्वप्न-स्वप्न ही बना रह जायगा। कारण, युद्धकी तरह शान्ति भी अखण्डनीय है। यूरोपमें शान्ति एवं सुव्यवस्था हो और एशियामें अशान्ति एवं अव्यवस्था बनी रहे, यह स्थिति विश्व-शान्तिके लिये कदापि अनुकूल नहीं हो सकती। युद्धके कारण ऐसे कितने ही राजनीतिक, आर्थिक, जातीय एवं राष्ट्रीय प्रश्न उठ खड़े हुए हैं जिनका घनिष्ट सम्बन्ध सुदूरपूर्वके देशोंके साथ है। सुदूरपूर्वके देशोंके स्वार्थ एवं हिताहितपर ध्यान रखकर इन सब प्रश्नोंका निर्णय करना पड़ेगा। इसके सिवा रणनीतिकी दृष्टिसे भी इस प्रश्नका काफी महत्व है। कारण, जापानकी ओरसे इस समय "एशिया, एशिया वासियोंके लिए" अथवा वृहत्तर पूर्व एशियाई देशोंका सङ्घ :—"Greater East Asia Co-Prosperity Sphere" वगैरह नारोंके द्वारा जो प्रचार कार्य चलाया जा रहा है, उसका भी बहुत कुछ प्रतिकार हो जायगा, यदि सम्मिलित पक्षकी ओरसे इस बातकी स्पष्ट घोषणा कर दी जाय कि अटलाण्टिक चार्टरके सिद्धान्त पूर्वके देशोंके लिए भी समान रूपमें लागू होंगे और युद्धोत्तर कालमें प्रशान्त महासागरके क्षेत्रमें जो नूतन व्यवस्था कायम की जायगी, उसमें प्रशान्तसे सम्बन्ध रखनेवाले देशोंके मतामतकी ही प्रधानता रहेगी। इस प्रकारकी स्पष्ट घोषणा हो जानेपर उन सब पूर्वीय देशोंके लोग भी, जो इस समय जापानके अधीनस्थ हो रहे हैं—उसके मिथ्या भुलावेमें न पड़कर अपनी स्वतन्त्रताके लिए प्राणपणसे युद्ध करेंगे।

पूर्वीय देशोंकी समस्याओंपर विचार करनेके प्रसङ्गमें सबसे पहले जापानका प्रश्न आता है। सच पूछा जाय, तो वर्तमान महायुद्धका सूत्रपात सन् १९३१ में ही जापान द्वारा हुआ, जब कि उसने बलात् मंचूरियापर आक्रमण करके उसे अपने अधिकारमें कर लिया। उस समय राष्ट्रसङ्घ, संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका या इङ्गलैण्ड किसीने भी जापानके जोर-जुल्मके खिलाफ चूं तक नहीं की। जापानका हौसला बढ़ता गया और उसने क्रमशः चीनके एक-एक प्रदेशको उदरस्थ करना शुरू किया। इतना ही नहीं, बल्कि इङ्गलैण्डकी ओरसे जापानके अनुकूल कुछ ऐसे कार्य भी हुए, जिनसे जापानकी आक्रमणशील प्रवृत्तिको और भी प्रोत्सा-

इन मिला। जापानके प्रति इङ्गलैण्ड और अमेरिकाकी इस पंगुताको देखकर ही यूरोपके फासिस्ट राष्ट्रोंको भी अपनी साम्राज्य-विस्तार-लालसा चरितार्थ करनेका अच्छा मौका मिला, जिसका परिणाम आगे चलकर वर्तमान महासमरके रूपमें प्रकट हुआ। अतएव पूर्वीय देशोंमें शक्ति एवं सुव्यवस्था कायम करनेके लिए पहली बात जो सबसे आवश्यक है—वह है जापानकी साम्राज्य-विस्तार-लालसाकी प्रवृत्ति और उसके औद्धत्यको नष्ट कर देना। जापानको निरस्त्रीकरणके लिए बाध्य करना होगा, उसकी सैनिक शक्तिको संकुचित करना होगा और उसकी सामरिक प्रवृत्तिपर सम्पूर्ण नियन्त्रण रखना होगा। अवश्य ही यह सब जापानकी सम्पूर्ण पराजयके बाद ही सम्भव हो सकता है। गत दस वर्षोंके अन्दर सुदूर पूर्वके देशोंमें संकटके बादल जिस प्रकार घनीभूत हुए हैं, उसे देखते हुए संसारको यह विश्वास हो गया है कि जापानकी आक्रमणात्मक नीति उसके पड़ोसी राष्ट्रोंकी सुरक्षाके लिए बराबर भय एवं आशङ्काका कारण रही है। जापानमें समरवादी नेताओंका प्रभाव बराबरसे इतना अधिक रहा है कि देशकी राजनीति उनके द्वारा पूर्ण रूपसे नियन्त्रित होती रही है। यही कारण है कि जापानकी राष्ट्र नीतिने उग्र राष्ट्रीयताका रूप धारण करके साम्राज्य विस्तारको एक राष्ट्रीय आदर्शके रूपमें ग्रहण किया है। इसलिए जापानके शासनमें जब तक इन समरवादी नेताओंकी प्रधानता बनी रहेगी, तबतक सुदूरपूर्वके देशोंमें स्थायी शान्तिकी सम्भावना बहुत कुछ सन्दिग्ध ही बनी रहेगी। जापानी लोग अत्यन्त स्वाभिमानी एवं कट्टर देशभक्त होते हैं। इसलिए जापानकी समरवादिताको नष्ट करने तथा उसकी स्थल, जल एवं आकाश सेनाओंको परिमित करनेमें यह भी ध्यान रखना होगा कि प्रतिशोध एवं प्रतिहिंसाकी भावनासे प्रेरित होकर जापानके साथ इस प्रकारका व्यवहार न किया जाय, ताकि समग्र जापानी जाति उसे राष्ट्रीय अपमान समझे। जापानी जनताके मनोभावपर ध्यान रखकर ही यह सब करना होगा। और जापानी जनता सम्पूर्ण रूपसे वहांके समरवादी फासिस्ट नेताओं एवं शासकोंकी समर्थक रही है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। इसके विपरीत हम इस बातके प्रचुर प्रमाण पाते हैं कि जापानके किसान और मजदूरोंने वहांके जमींदारों और शासकोंके विरुद्ध समय-समयपर उग्र आन्दोलन किये हैं, अपने ऊपर किये गये शोषण एवं अत्याचारोंका तीव्र प्रतिवाद किया है और इसके लिए उन्हें कारागार और निर्यातन सहन करने पड़े हैं। जापानके पूंजीपतियोंके निष्ठुर लोभके विरुद्ध मजदूरोंने सङ्घबद्ध होकर संग्राम किया है, जिसके फलस्वरूप वहांके कितने ही कार्य्यकर्त्ता कम्यूनिस्ट बता कर जेलोंमें ठूंस दिये गये हैं। सन् १९३६ में जापानकी मजदूर सभाओंकी ओरसे प्रबल रूपमें युद्ध-विरोधी आन्दोलन शुरू किया गया था। फासिस्ट साम्राज्यवादी और सामरिक नेताओंके शासनमें जापानी जनताकी कम दुर्गति नहीं हुई है। इसलिए जापानी जनताके राष्ट्र-प्रेमकी भावनापर किसी प्रकारका आघात न पहुंचा कर यदि उसके प्रति नर्मी और उदारताका भाव दिखलाया जायगा और जापानमें इस प्रकारकी शासन-व्यवस्था कायम करनेकी चेष्टाकी जायगी, जिससे फासिस्टों और समरवादियोंकी प्रधानता बिलकुल न रह जाय और जापानी जनताकी सुख-शान्ति एवं समृद्धिके विकासके लिए पूर्ण सुयोग हो, तो अवश्य ही जापानके जन साधारण इस प्रकारके प्रयत्नोंका स्वागत करेंगे और सहयोग प्रदान करेंगे। जापानकी सामरिक शक्तिको संकुचित एवं नियन्त्रित और वहांके फासिस्ट और समरवादी नेताओंकी प्रधानता नष्ट कर देनेके बाद जापानमें जो राष्ट्र-व्यवस्था स्थापित होगी, वह अवश्य ही इस योग्य होगी कि उसके द्वारा सुदूर पूर्वमें स्थायी शान्ति कायम रखनेकी किसी योजनामें जापानकी जनताका सहयोग प्राप्त हो। इसमें सन्देह नहीं कि जापान जैसे कट्टर राष्ट्रवादी देशको सम्पूर्ण निरस्त्र करने तथा वहांके सामरिक नेताओंका प्रभाव नष्ट करनेमें अनेक कठिनाइयां होंगी, किन्तु सुदूर-पूर्वके देशोंकी शान्तिको मद्देनजर रखकर ऐसा करना ही होगा।

निरस्त्रीकरणके साथ-साथ जापानकी प्रादेशिक सीमाओंमें भी बहुत कुछ परिवर्तन करना होगा। सन् १८९४ ई० से जापानका विजयाभियान आरम्भ हुआ है। इस समयसे लेकर अबतक जापानने जिन सब प्रदेशोंपर बलपूर्वक अपना आधिपत्य जमा लिया है अथवा गत महायुद्ध में जो सब द्वीप उसे मित्रराष्ट्रोंके साथ मैत्री सम्बन्ध रखनेके फलस्वरूप प्राप्त हुए हैं, उन सबोंपर जापानी आधिपत्य नहीं रह जाना चाहिये। सन् १८९४ से लेकर वर्तमान महायुद्धके पूर्व तक जापानने कोरिया, फरमोसा, प्रशान्त महासागरके Mandated द्वीप समूह तथा मंचूरिया और चीनके कितने ही प्रदेश हस्तगत कर लिये। वर्तमान महायुद्ध छिड़नेके बाद उसने चीनके कुछ अंश, हांगकांग,

शाङ्घाई, हेनान, फिलीपाइन, जावा, सुमात्रा, बोर्नियो, इण्डोचीन, मलाया, वर्मा, सिङ्गापुर, अण्डमन निकोबार द्वीप तथा प्रशान्तके और भी कितने ही द्वीप पुञ्जोंपर अधिकार कर लिया है। इन सब प्रदेशोंसे उसे अधिकारच्युत कर देना होगा। मंचूरिया तथा चीन साम्राज्यके अन्यान्य प्रदेश चीनको वापस मिल जाने चाहिये। फरमोसा प्रदेश भी पहले चीनका ही था और वहांकी आबादी भी बिलकुल चीनी है। सन् १८९५ में जापानने चीनके साथ सन्धिकी एक शर्तके रूपमें इसे हड़प लिया था। अतएव न्यायतः यह प्रदेश बिना किसी शर्तके चीनको मिल जाना चाहिये।

कोरियाकी समस्या उतनी कठिन नहीं है। कोरियाको जापानने जबर्दस्ती और छलपूर्वक अपने साम्राज्यमें मिला लिया था। कोरिया-वासियोंने बराबर जापानी शासनका विरोध किया है और इस समय भी कर रहे हैं। कोरिया-वासियोंका स्वाधीनता-संग्राम बहुत दिनोंसे चल रहा है। इस संग्रामके सैनिकके रूपमें वहांके कितने ही देशभक्तोंको निर्मम अत्याचार एवं उत्पीड़न सहन करने पड़े हैं। आज भी वहांके कितने ही देशभक्त और राष्ट्रकर्मी जेलोंमें बन्द हैं। यहांकी आबादी २ करोड़ २० लाखकी है। सभ्यता जापानसे भी प्राचीन है। ऐसी स्थितिमें यह सर्वथा उचित एवं न्याय्य प्रतीत होता है कि कोरियाको एक पूर्ण स्वतन्त्र राष्ट्रके रूपमें परिणत कर दिया जाय। इसके बाद यदि कोरिया आत्मरक्षाके लिए अथवा अपनी आर्थिक एवं व्यावसायिक उन्नतिके लिए अमेरिका या अन्य किसी स्वाधीन राष्ट्रसे मैत्री सम्बन्ध स्थापित करना चाहे, तो इसकी उसे पूरी स्वतन्त्रता होगी। राष्ट्रपति रूजवेल्टने अपने एक भाषणमें कोरियाका विशेष रूपमें नामोल्लेख करते हुए कहा था कि सम्मिलित राष्ट्रोंकी विजयपर उसकी स्वाधीनता बहुत-कुछ निर्भर करती है।

प्रशान्तकी समस्याओंमें दूसरा प्रमुख स्थान चीनका विदेशी राष्ट्रोंके साथ सम्बन्ध है। केवल जापानने ही नहीं, बल्कि यूरोपके प्रायः सभी राष्ट्रोंने चीनके प्रति अन्याय व्यवहार किया है। चीनको बाध्य करके उसके साथ इस प्रकारकी सन्धियां की गयी हैं, जिनसे चीनका राष्ट्रीय अपमान तो हुआ ही है, साथ ही इससे उसके समृद्धि-साधनों का शोषण भी कम नहीं हुआ है। बाध्यतामूलक सन्धियों द्वारा यूरोपके राष्ट्रोंने अपने लिए चीनके कुछ प्रदेशोंमें विशेष अधिकार एवं सुविधाएं प्राप्त कर ली थीं, जिनसे चीनकी आर्थिक एवं व्यावसायिक उन्नतिका मार्ग अवरुद्ध बना रहा और एक स्वाधीन राष्ट्रके रूपमें उसकी मर्यादा क्षुण्ण होती रही। यह सन्तोषकी बात है कि सम्मिलित पक्षकी ओरसे इस बातकी घोषणा की गयी है कि चीनमें ब्रिटेन और अमेरिकाके जो Extraterritorial Rights के रूपमें विशेष अधिकार और खास सुविधाएं हैं, उनका अन्त कर दिया जायगा। सोवियट रूसने बहुत पहले ही अपने इन सब अधिकारोंका परित्याग कर दिया था। वर्तमान महायुद्धमें चीन, ब्रिटेन और अमेरिकाके साथ मिलकर धुरी राष्ट्रोंके विरुद्ध संग्राम कर रहा है। गत ६ वर्षोंसे जापानके विरुद्ध अकेले संग्राम करनेमें चीनकी धनजनकी अपार क्षति हुई है। इसलिए वर्तमान महायुद्धके बाद चीनकी स्थिति एक सम्पूर्ण स्वाधीन राष्ट्र जैसी हो जानी चाहिये। यूरोप और अमेरिकाके राष्ट्रोंने चीनके साथ अन्यायपूर्ण सन्धियां करके जो सब विशेषाधिकार प्राप्त किये हैं, उन सबका अन्त हो जाना चाहिये। किसी भी राष्ट्रको चीनमें वाणिज्य-व्यवसाय करने या उसके किसी प्रदेश, बन्दर या रेल-मार्गपर अधिकार रखनेकी विशेष सुविधायें नहीं रह जायेंगी। चीनकी राजनीतिक स्थिति इङ्गलैण्ड या अमेरिका जैसी ही होगी। उसकी राष्ट्रीय मर्यादा स्वीकार करनी होगी। युद्धके बाद विदेशी राष्ट्रोंके साथ चीनकी मैत्री समानताके आधारपर होगी और परस्पर आदान-प्रदानकी नीति द्वारा दोनों पक्षके बीच सारे व्यवहार परिचालित होंगे। चीनमें किसी विदेशी राष्ट्रका किसी स्थान विशेषपर आधिपत्य नहीं रह जाना चाहिये। इजारे पर जो सब प्रदेश विदेशी राष्ट्रके अधीनस्थ हों, वे बिना किसी शर्तके लौटा दिये जायं। विदेशी राष्ट्रोंको चीन साम्राज्यके किसी भी भागमें फौज रखने या जङ्गी नाव रखनेका अधिकार नहीं होना चाहिये, विदेशी राष्ट्रोंके साथ इस प्रकार समानताके आधारपर सम्बन्ध स्थापित होनेसे ही चीन सब प्रकारके विदेशी प्रभुताके जालसे मुक्त होकर राजनीतिक एवं आर्थिक प्रगतिके पथपर दृढ़तापूर्वक अग्रसर हो सकता है। एक शक्तिशाली राष्ट्रके रूपमें चीनके साथ अन्तर्राष्ट्रीय मैत्री सम्बन्ध स्थापित करके ही पाश्चात्य राष्ट्र विश्व शान्तिके अनुकूल वातावरणकी सृष्टि कर सकते हैं। शक्तिशाली चीनसे पाश्चात्य राष्ट्रोंको भय करनेका कोई कारण नहीं होना चाहिये। चीनी लोग स्वभावसे ही शान्तिप्रिय होते हैं। वे शक्तिशाली बनकर किसी अन्य देश या राष्ट्रको हड़पनेकी चेष्टा नहीं करेंगे। प्रशान्त महासागरसे सम्बन्ध रखने वाले देशोंमें स्थायी शान्ति

कायम रखनेके लिये यह आवश्यक है कि चीनमें गणतन्त्र शासनकी स्थापना हो और वह स्वाधीन, शक्तिशाली एवं समृद्ध समान्न बनकर युद्धोत्तर नूतन विश्व-व्यवस्थामें अपना उचित स्थान ग्रहण करे।

इण्डोचीनपर इस समय जापानका अधिकार है। जापानकी पराजयके बाद इण्डोचीनकी क्या स्थिति होगी? क्या वह फ्रांसको एक उपनिवेशके रूपमें सौंप दिया जायगा? युद्धके पूर्व फ्रांसके शासनके फलस्वरूप इण्डोचीनकी कम दुर्दशा नहीं हुई है। जनताकी आर्थिक, राजनीतिक एवं नैतिक उन्नतिकी अपेक्षा शासन एवं शोषण ही वहांके विदेशी शासकोंका प्रधान उद्देश्य रहा है। इसलिए युद्धोत्तर नूतन विश्व-व्यवस्थामें इण्डो चीनपर फ्रांसका आधिपत्य किसी भी रूपमें नहीं रह जाना चाहिये। वहांकी जनताको स्वायत्त शासनके पथपर अग्रसर होने देनेके लिए पूर्ण सुयोग देना चाहिये और जब तक वे इस योग्य न बन जायं, तब तक उनकी देख-भाल और रक्षाकी व्यवस्था किसी अन्तर्राष्ट्रीय कमीशन द्वारा की जाय, जिस कमीशनमें केवल प्रशान्त महासागरसे सम्बन्ध रखनेवाले देशोंके ही प्रतिनिधि हों।

मलाया, जावा, सुमात्रा, बोर्नियो आदि उपनिवेशोंकी स्थितिमें भी पूर्ण परिवर्तनकी आवश्यकता है। आयतन एवं जनसंख्याकी दृष्टिसे ये सब उपनिवेश इस योग्य अवश्य हैं कि इन्हें पूर्ण स्वाधीनता अथवा औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त हो। यह अवश्य है कि ये सब उपनिवेश अभी राजनीतिक दृष्टिसे इतने उन्नतिशील नहीं हुए हैं कि फौरन इन्हें पूर्ण स्वाधीनता मिल जाय। किन्तु साथ ही इसके यह भी आवश्यक है कि युद्धके पूर्व इनकी जैसी पराधीनता एवं परवशता-पूर्ण स्थिति थी, वह स्थिति अब नहीं रह जानी चाहिये। स्वाधीन राष्ट्रके रूपमें जबतक ये सब देश परिणत न हो जायं, तबतक इन्हें अन्तर्राष्ट्रीय कमीशनके तत्वावधानमें स्वायत्त शासनकी राजनीतिक शिक्षा मिलनी चाहिये। शिक्षाका विस्तार एवं उद्योग-धन्धोंका प्रसार होना चाहिये। संयुक्तराष्ट्र अमेरिकाने फिलीपाइन द्वीपके सम्बन्धमें जिस प्रकारकी नीतिका अनुसरण किया था और जो नीति काफी सफल हुई है, उसी नीतिका अनुसरण इन सब देशोंके सम्बन्धमें भी होना चाहिये। यदि किसी राष्ट्र विशेषके तत्वावधानमें इन्हें एक निश्चित अवधि तक रखना आवश्यक प्रतीत हो, तो वह तत्वावधान भी इस रूपमें हो, जिससे इन सब देशोंको सब दिशाओंमें उन्नति करनेका पूर्ण सुयोग मिले और उस निश्चित अवधिके बाद ये स्वायत्त शासनके योग्य बन जायं। सारांश यह कि इन सब देशोंकी जनताके स्वार्थपर ध्यान रखकर ही उनकी देख-भाल की जाय, शासन एवं शोषणकी दृष्टिसे नहीं।

बर्मा और फिलीपाइनकी समस्याका समाधान तो सहज ही किया जा सकता है। फिलीपाइनके सम्बन्धमें तो संयुक्तराष्ट्र अमेरिकाकी सरकारकी ओरसे पूर्ण स्वाधीनता प्रदान करनेकी घोषणा हो ही चुकी है। इसलिए युद्धके बाद जापानी आधिपत्यसे मुक्त हो जानेपर फिलीपाइनको पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त हो और जब तक वह सैनिक दृष्टिसे आत्मरक्षाके योग्य न बन जाय, तबतक उसकी बाह्य शत्रुओंसे रक्षाका दायित्व अमेरिकाके ऊपर हो।

यदि फिलीपाइनको पूर्ण स्वाधीनता प्रदान की जा सकती है, तो कोई कारण नहीं कि बर्माको भी स्वाधीनता क्यों न मिले। और यदि बर्माकी रक्षाके लिए यह आवश्यक समझा जाय कि वह ब्रिटिश सरकारके तत्वावधानमें रहे, तो कमसे कम एक उपनिवेशके रूपमें उसकी वही स्थिति होनी चाहिये, जो कनाडा, आस्ट्रेलिया या दक्षिण अफ्रीका, की है।

प्रशान्त महासागरके बहुसंख्यक द्वीपोंकी समस्या अलग ही है। इनका महत्व राजनीतिक अथवा आर्थिक दृष्टिसे उतना नहीं है, जितना कि सामरिक दृष्टिसे। ये सब द्वीप आयतनमें छोटे हैं, और इनकी आबादी बिखरी हुई है। निकट भविष्यमें इनके स्वावलम्बी राष्ट्रके रूपमें गठित होनेकी सम्भावना भी नहीं है। इनके शासनका सर्वोत्तम प्रबन्ध यही हो सकता है कि प्रशान्त महासागरको लेकर जिन सब राष्ट्रोंका स्वार्थ—सम्बन्ध हो, उनको लेकर एक अन्तर्राष्ट्रीय कमीशन गठित किया जाय और इस कमीशन द्वारा इन सब द्वीपोंका इस रूपमें शासन हो, ताकि वहांके आदि निवासी सभ्य एवं शिक्षित बन कर अपनी राजनीतिक एवं आर्थिक उन्नति करनेमें समर्थ हों।

प्रशान्त महासागरके बहुतसे देशोंमें बहुसंख्यक चीनियों का वर्षोंसे निवास रहा है। अकेले श्याम या थाइलैण्डमें ही चीनियोंकी संख्या ३० लाखसे अधिक है। देशकी आर्थिक उन्नति एवं समृद्धिमें इन चीनियोंका दान कम नहीं है। फिर भी इनके साथ भेदभाव मूलक व्यवहार किया जाता है और राजनीतिक अधिकारोंसे ये वञ्चित कर दिये गये हैं। श्याम देशमें वहांके प्रवासी चीनियों के विरुद्ध कितने ही कठोर कानून बनाये गये हैं। प्रवासी

चीनियोंके ऊपर नाना उपायोंसे अत्याचार एवं निर्यातन किये जाते हैं। युद्धके बाद चीनके लिए यह स्थिति सह्य नहीं हो सकती। अतएव युद्धके बाद अन्तर्राष्ट्रीय कमीशन द्वारा इस प्रकारका विधान अवश्य होना चाहिये, जिससे यूरोपके स्वतन्त्र राष्ट्रोंमें अल्प सम्प्रदायोंको जो सब राजनीतिक एवं नागरिक अधिकार प्राप्त हैं, वे सब अधिकार इन प्रवासी चीनियोंको भी प्राप्त हों और इनके प्रति किसी प्रकारका भेदभाव मूलक व्यवहार न किया जाय।

सबसे अन्तमें हम भारतवर्षकी समस्यापर विचार करेंगे। पूर्वके देशोंमें भारतकी समस्या अन्य सब देशोंकी अपेक्षा विशेष महत्वपूर्ण है। भारत एक विशाल देश है। यहांकी जनसंख्या ४० करोड़ है। यहांकी सभ्यता एवं संस्कृति अत्यन्त प्राचीन एवं प्रतिष्ठित है। ज्ञान-विज्ञानके भाण्डारमें प्राचीन कालसे लेकर अब तक भारतने बहुमूल्य दान किये हैं। विद्याके कितने ही क्षेत्रोंमें यह प्राचीन कालमें संसार भरका गुरु रहा है। प्राकृतिक समृद्धि-साधनोंकी यहां प्रचुरता है। भौगोलिक दृष्टिसे भारतवर्ष एक अखण्ड राष्ट्र है। प्रकृतिने अपने अजस्र दान एवं शोभा-सम्पद्से इसे समृद्ध किया है। भारत-जैसे एक अत्यन्त प्राचीन,प्रतिष्ठित एवं सुसभ्य देशको इतने समय तक सम्पूर्णतः पराधीन रखना सभ्य मानव जातिके लिए वस्तुतः कलङ्क एवं लज्जाका विषय है। आज केवल प्राच्यकी राजनीतिमें ही नहीं, बल्कि विश्वकी राजनीतिमें इसी भारतकी समस्याने अन्तर्राष्ट्रीय रूप धारण कर लिया है। स्वाधीन भारत युद्धोत्तर कालमें केवलपूर्वीय देशोंकी शान्ति एवं सुव्यवस्थामें ही नहीं, बल्कि विश्व-शान्तिकी स्थापनामें भी बहुत बड़ा भाग ले सकता है। वर्तमान महायुद्धमें—विशेष कर जापानके विरुद्ध दक्षिण पूर्व एशियाकी ओरसे अभियान चलानेमें भारतवर्षका कितना बड़ा महत्व है, यह बतानेकी आवश्यकता नहीं। संयुक्त पक्षके लिए भारत इस समय एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सामरिक अड्डा (Military Base) हो रहा है। जापानपर विजय प्राप्त करनेके लिए यह आवश्यक है कि भारतका पूर्ण सहयोग प्राप्त हो। उसकी विशाल जनशक्ति एवं प्रचुर प्राकृतिक साधनोंका सम्यक् रूपमें उपयोग किया जाय। और यह तभी हो सकता है जब कि भारतको इस बातका पूर्ण विश्वास हो जाय कि युद्धके बाद उसकी स्थिति एक सम्पूर्ण स्वाधीन राष्ट्रके रूपमें होगी। पराधीनताकी छाया तकके स्पर्शसे वह मुक्त हो जायगा। यही कारण है कि संयुक्त पक्षके दूरदर्शी एवं उदारमना राजनीतिज्ञ विश्वशान्तिकी स्थापनाके लिए यह आवश्यक समझते हैं कि युद्धके बाद भारतकी राष्ट्रीय आकांक्षाओंकी, उसकी न्यायोचित मांगोंकी बिना किसी द्विधाके पूर्ति की जाय। इङ्गलैण्ड और अमेरिकाके अनेक ख्यातनामा व्यक्तियों एवं मनीषी विद्वानोंने भारतीय समस्याके महत्वको अच्छी तरह महसूस करके मित्रराष्ट्रोंके कर्णधारोंसे इस ओर ध्यान देने तथा भारतीय समस्या एवं वर्तमान राजनीतिक गतिरोधको दूर करनेके लिए निवेदन किया है। जेनरल चियाङ्ग काई-शेकने ब्रिटिश सरकारके अधिकारियोंसे भारतको स्वतन्त्रता देनेके लिए आग्रहपूर्ण शब्दोंमें कहा था, "मुझे पूर्ण आशा एवं विश्वास है कि ब्रिटेन भारतवासियोंकी मांगकी अपेक्षा किये बिना ही, यथासम्भव शीघ्रसे शीघ्र भारतको वास्तविक राजनीतिक अधिकार प्रदान करेगा, जिससे वे पूर्ण रूपसे अपनी भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति कर सकें, और इस बातको महसूस कर सकें कि वे युद्धमें धुरी राष्ट्रोंके विरुद्ध केवल सम्मिलित राष्ट्रोंकी विजयके लिए ही सम्मिलित नहीं हुए हैं, बल्कि इसलिए कि यह विजय उनके स्वाधीनता-संग्रामके लिए भी विजयका सन्देश-वाहक बनेगी।" किन्तु आश्चर्यकी बात तो यह है कि भारतकी राजनीतिक समस्याके महत्वको समझते हुए भी अभी तक ब्रिटिश सरकारकी ओरसे इस प्रकारकी न तो कोई स्पष्ट घोषणा हुई है और न ऐसा रुख ही दिखलाया गया है, जिससे यह विश्वास हो कि युद्धके बाद भारतकी राष्ट्रीय आकांक्षाओंकी पूर्ति करनेमें ब्रिटिश-सरकार किसी तरह आना-कानी नहीं करेगी। इतना ही नहीं, बल्कि ब्रिटिश सरकारका भारतके प्रति इस समय जैसा रुख हो रहा है, उससे तो भारतको अपने भविष्यके सम्बन्धमें आशाकी अपेक्षा निराशा ही अधिक हो सकती है। भारतके प्रायः सभी लोकमान्य नेता इस समय जेलोंमें बन्द हैं। सात प्रान्तोंमें जनताके प्रतिनिधियोंके शासनके स्थानपर प्रान्तीय गवर्नरोंका निरंकुश शासन चल रहा है। राजनीतिक दृष्टिसे देशमें अचल अवस्था उत्पन्न हो गयी है। युद्धकी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए स्वदेशी व्यवसाय और उद्योग-धन्धोंकी उन्नतिके खयालसे भारतके सामने जो स्वर्ण सुयोग उपस्थित है, उनसे पूरी तरह लाभ उठानेका भी उसे मौका नहीं दिया जाता और न सरकारकी ओरसे किसी प्रकारका प्रोत्साहन ही मिलता है। गत महायुद्धकी तरह इस बार भी भारत धनजनसे मित्र पक्षकी धुरी राष्ट्रोंके विरुद्ध सहायता कर रहा है। भारत बराबरसे शान्ति एवं सुव्यवस्था

के पक्षमें रहा है। भारतीय नेताओंने स्पष्ट रूपसे फासिज्म की निन्दा एवं भर्त्सना की है और गणतन्त्रका पक्ष-समर्थन किया है। भारतने राष्ट्रीयताकी अपेक्षा अन्तर्राष्ट्रीयता एवं विश्व-मानवताको विशेष महत्व दिया है। भारतकी आकांक्षा शक्तिशाली बन कर साम्राज्य विस्तार करने, दूसरे देशकी स्वाधीनताका अपहरण करने या देशजय करनेकी कभी नहीं रही है। इसलिए स्वाधीन एवं शक्तिशाली भारत नूतन विश्व-व्यवस्था एवं विश्व-शान्तिमें बहुत बड़ा सहायक सिद्ध हो सकता है। सुदूरपूर्वके देशोंमें स्थायी शान्तिकी स्थापनाके लिए तो यह अनिवार्य रूपमें आवश्यक है कि चीन और भारत दोनों देश सम्पूर्ण स्वाधीन एवं शक्तिशाली बनकर रहें। दोनों ही शान्तिप्रिय देश हैं। इस समय दोनोंके बीच सौहार्द भी घनिष्ट रूपमें वर्तमान है। दोनों ही अत्यन्त प्राचीन सभ्यताकी परम्पराको धारण करनेवाले देश हैं। विशाल जन-संख्या वाले भारत और चीन, ये दो पड़ोसी राष्ट्र स्वाधीन एवं शक्तिशाली बन कर केवल एशिया महादेशकी शान्तिमें नहीं, बल्कि विश्व-शान्तिकी स्थापनामें भी बहुत बड़े सहायक सिद्ध होंगे। इन दोनों देशोंके सहयोगसे एशियामें जो अन्तर्राष्ट्रीय सङ्घ स्थापित होगा, वह सुदूरपूर्वके देशोंकी सब-शान्ति एवं सुव्यवस्थाकी सबसे बड़ी गारण्टी होगी।

प्रशान्त महासागरसे सम्बन्ध रखनेवाले देशोंको लेकर जो अन्तर्राष्ट्रीय सङ्घ स्थापित होगा, उसके सदस्य निम्नलिखित राष्ट्र हो सकते हैं:—चीन, सोवियट रूस, भारत, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, फिलीपाइन, ग्रेट ब्रिटेन, जापान, श्याम और स्वतन्त्र कोरिया। इस सङ्घका मुख्य उद्देश्य होगा अपने सम्मिलित प्रभाव द्वारा या निषेधात्मक उपायों द्वारा युद्धकी सम्भावनाको रोकना, जिससे शान्ति एवं सुरक्षा कायम रहे। और यदि युद्ध छिड़ जाय, तो आक्रान्त राष्ट्रकी सब प्रकारसे सहायता करना और आक्रमण शील राष्ट्रके विरुद्ध आर्थिक दण्डाज्ञा (Sanctions) का प्रयोग करना। सङ्घके सदस्य राष्ट्र परस्पर एक समझौते द्वारा आबद्ध हों, जिसकी शर्तें होंगी, एक राष्ट्र दूसरेपर आक्रमण नहीं कर सकता, आपसमें किसी विषयको लेकर झगड़ा उपस्थित होनेपर पञ्चायत द्वारा उसका निपटारा करा लेना और एक राष्ट्र, दूसरे राष्ट्रकी सब प्रकारसे सहायता करेगा। यदि एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रके विरुद्ध युद्ध छेड़ दे, तो अन्य सब राष्ट्र आक्रमणशील राष्ट्रके विरुद्ध आक्रान्त राष्ट्रका पक्ष ग्रहण करेंगे। सङ्घके तत्वावधानमें एक अन्तर्राष्ट्रीय सेना होगी। इस सेनाके सङ्गठनमें प्रत्येक सदस्य राष्ट्रको अपना निश्चित अंश ग्रहण करना पड़ेगा। यह सेना सामरिक दृष्टिसे महत्वपूर्ण स्थानोंपर नियुक्त की जायगी और संकट कालके लिए बराबर सन्नद्ध रहेगी। इसके सिवा आक्रमणशील राष्ट्रके विरुद्ध आर्थिक उपाय भी काममें लाये जा सकते हैं। उनके साथ आयात-निर्यात, वाणिज्य बन्द करके तथा अन्य रूपमें।

जापान इस समय "एशिया एशिया-वासियोंके लिए" Asia for the Asiatics" तथा "liberation of the Asiatic peoples from the white man's yoke" अर्थात्—"एशियाकी जातियोंकी श्वेताङ्ग जातियोंके पराधीनता-पाशसे मुक्ति" इस तरहके नारे लगाकर मिथ्या प्रचार कार्य्य चला रहा है। इस प्रचार-कार्य्यके प्रभावको नष्ट करनेके लिए सबसे अच्छा उपाय यही होगा कि मित्रराष्ट्रोंकी ओरसे इस बातकी स्पष्ट घोषणा कर दी जाय कि युद्धके बाद जो नूतन विश्व-व्यवस्था स्थापित होगी, उसमें एशियाकी समस्त पराधीन एवं अर्ध स्वाधीन जातियोंकी राष्ट्रीय आकांक्षाओंपर न्यायोचित दृष्टिसे सहानुभूतिके साथ विचार किया जायगा और वर्षोंसे जो सब जातियां अपने शासकोंके विरुद्ध मुक्ति-संग्राम चला रही हैं, उनकी आकांक्षाओंकी पूर्तिमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं डाली जायगी। चूंकि मित्रराष्ट्र संसार भरकी स्वतन्त्रता एवं शान्तिके लिए वर्तमान महासमरमें धन-जनका भीषण क्षय कर रहे हैं, इसलिए न्याय एवं नीतिकी दृष्टिसे उनके लिए यह किसी प्रकार भी समीचीन नहीं होगा कि वे एशियाकी पराधीन जातियोंकी राष्ट्रीय आकांक्षाओंकी पूर्तिमें अकुण्ठित भावसे सहायता नहीं पहुंचावें। और यदि इन सब जातियोंके असन्तोष एवं क्षोभके कारणोंको दूर करनेका सच्चा प्रयत्न नहीं किया जायगा, और युद्धके बाद भी इनकी समस्यायें ज्यों-की-त्यों रह जायंगी, तो इसका परिणाम केवल सुदूर पूर्वकी शान्तिके लिए ही नहीं, बल्कि विश्वशान्तिके लिए भी विघातक होगा। एशियाकी पराधीन जातियां इस समय जाग्रत होकर राष्ट्रीय चैतन्य, देशात्मबोध एवं स्वाजात्याभिमानकी भावनासे अनुप्राणित हो रही हैं। उनकी इस भावनाको दबाया नहीं जा सकता। उनकी राष्ट्रीय आकांक्षाओंकी उपेक्षा करना, उनके स्वाभिमानपर आघात पहुंचाना, उनके भाग्यके साथ खेलवाड़ करना जान-बूझकर भावी महायुद्धका बीज बोना होगा। राष्ट्रपति रूजवेल्ट अपने एक भाषणमें स्पष्ट रूपसे

इस बातकी घोषणा कर चुके हैं कि—"The people of Asia know that if there is to be an honourable and decent future for any of them or for us, that future depends on victory by the United Nations over the forces of Axis enslavement... ......the Atlantic charter applies not only to the parts of the world that ' order the Atlantic, but to the whole world "—अर्थात् एशियाके लोग यह जानते हैं कि मित्र पक्षकी विजयपर ही उनके लिए और मित्र पक्षके लिए भी सम्मानजनक भविष्य निर्भर करता है। अटलाण्टिक चार्टरके सिद्धान्त केवल यूरोप और अमेरिकाके प्रति ही लागू नहीं होंगे, बल्कि समग्र विश्वके प्रति।" अब जरूरत इस बात की है कि मित्रराष्ट्रोंके दूरदर्शी राजनीतिज्ञ अभीसे अपनी इन प्रतिज्ञाओं और घोषित सिद्धान्तोंको कार्य्य रूपमें परिणत करनेका आयोजन आरम्भ कर दें, और इस बातकी स्पष्ट घोषणा करें कि वे ऐसा कर रहे हैं।

एकांकी नाटक

फाहियान

श्री केशवचन्द्र मिश्र, बी० ए०, साहित्य रत्न

प्रथम दृश्य

(चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यका राजभवन—चन्द्रगुप्त सिंहासनपर बैठा है।)

चन्द्रगुप्त—मुझे सन्देह है अमात्य।

वीरसेन—सन्देहका अवकाश नहीं देव, बङ्गके शिविरसे अभी चर आया है। शत्रुओंकी एकत्र सैन्य-घटा युद्धकलासे छिन्न-भिन्न कर दी गयी है। विद्रोही आत्म-समर्पणके लिए तैयार हैं।

चन्द्रगुप्त—तब तो बिलम्ब उचित नहीं ?

वीरसेन—मैं वाह्लीकोंके शिविरकी सूचनाके लिए रुका था, अब प्रस्थान करना ही शेष है। परन्तु सिन्धु पार विदेशियोंका जमाव हो, उसके पूर्व ही देवपादका आटविकों के साथ वहां पहुंचना आवश्यक है।

(प्रतिहारीका प्रवेश)

प्रतिहारी—(झुककर) चीनी अभ्यागत एक श्रमणके साथ पधार चुके हैं। (प्रतिहारी लौट जाता है।)

चन्द्र०—अमात्य, कितना निर्भीक है यह भिक्षु। देखते नहीं, मध्य एशियाके गहन वनोंको चीरता, लोपनोरसे चीनी तुर्किस्तान और खोतान होकर आर्यभूमिमें पदार्पण किया है। अभ्यागतकी यात्राका प्रबन्ध.........।

वीर०—आर्यपुत्र, पामीरको लांघकर गांधारमें जब प्रवेश किया, तभी तक्षशिलाका एक श्रमण स्नातक उनकी सहायतामें निर्धारित हो गया। उसके बाद यात्राकी व्यवस्थाकी कोई सूचना नहीं मिली। उत्तरापथसे कुशीनगर तककी भूमि उनके पदचिह्नसे भरी है।

(चीनी अभ्यागत फाहियान चीनी ढङ्गसे झुकता हुआ प्रवेश करता है। साथ ही श्रमण भी। अमात्य उठकर बैठाता है।)

चन्द्र०—स्वागत भिक्षु प्रवर, इतनी विस्तृत यात्रामें राजकीय प्रबन्धकी कमीसे कष्ट तो नहीं हुआ ?

फाहियान—आर्य, अपने देशकी ओरसे आपका अभिवादन करता हूं। तुर्किस्तान और पामीरसे ही भारतीय आचार-सौरभकी गन्ध मिलने लगी थी। सारी एशिया तथागतके शीलका प्रतिरूप बनी है।

वीरसेन—आर्यभूमि तो.........

फाहियान—अरे, तक्षशिला, मथुरा, श्रावस्ती, कपिलवस्तु और कुशीनगर प्रभृति सब स्थानोंमें राजपुरुषों द्वारा मेरे स्वागतका उत्तमोत्तम प्रबन्ध, मार्गमें नागरिकों और ग्रामीणोंका स्नेह और सौहार्द्य तो मैंने इसी भूमिमें और पहले-पहल देखा है।

चन्द्र०—नहीं, आपको यहां तथागतके चरित्रका दर्शन धर्मग्रन्थोंसे करना है, तीर्थोंमें भ्रमण करना है, अच्छा होगा कि आपके साथ रक्षकोंकी व्यवस्था हो।

फाहियान—जहां सारा देश ही रक्षक हो, जहां दूसरोंके लिए आंखोंमें इतना शील हो, वहां रक्षकों और विशेष आतिथ्यका आयोजन उपहास है, राजन। मैं तो स्तम्भित हूं। जिस आलोककी किरणें अखिल विश्वको प्रकाशित कर रही हैं, वह दीप्त पर शीतल है—सौहार्द्य, आतिथ्य और शौर्य जिसका आभूषण है।

चन्द्र०—फिर भी राजधर्म बाध्य करता है। अब आपको क्या करना है—उसकी व्यवस्था……।

फाहियान—पाटलिपुत्रमें रहकर कुछ दिनों तक संस्कृत और बौद्ध ग्रन्थोंका अध्ययन करना चाहता हूं। अब यही एक कार्य शेष है।

श्रमण—तक्षशिलाके कुलपतिकी आज्ञासे सारे देशके विद्यालयोंके निरीक्षणमें भिक्षु प्रवरके साथ मुझे रहना पड़ा है। मुझे विश्वास है कि देशने अपनी सुजनताका प्रमाण पड़ोसी यात्रीके साथ पूर्ण सतर्कताके साथ दिया है। प्रत्येक सङ्घमें आपके व्याख्यानोंके पाण्डित्यपर विद्वानोंने स्वीकृति दी है। ब्राह्मण और बौद्ध ग्रन्थ आपको भेंट किये गये हैं।

चन्द्र०—वाह्लीकोंके उपद्रवसे विद्यालय सङ्घमें कोई बाधा तो नहीं?

श्रम०—कभी नहीं, रक्षकोंकी सतर्कतासे बड़ी शान्ति है। इस वर्ष चीन, कम्बोडिया और सिंहलके छात्र अधिक स्नातक हुए हैं।

अमा०—अभ्यागत भिक्षुके लिए सब प्रबन्ध हो चुका है, अतः राजधानीमें रह कर चीनी शिक्षाका कुछ कार्य कर जाना दोनों राष्ट्रोंके बीच सांस्कृतिक मिलापके लिए आवश्यक है। अतएव स्थानीय सङ्घाराममें कुछ दिन तक आपका रहना अनुचित नहीं जान पड़ता।

चन्द्र०—मैं भी यही चाहता हूँ कि अरुणका बाल रूप जो प्राचीमें धूमिल आभाके साथ उपस्थित हुआ,वह आर्यावर्तके प्राङ्गणमें अपने सहस्र किरणोंसे उद्दीप्त हो। भिक्षु प्रवर, भारत छोड़नेके पूर्व मैं चाहता हूं कि यह कार्य आपके ही पुनीत हाथोंसे सम्पादित हो।

फाहियान—निस्सन्देह ऐसा करके भी हम उऋण नहीं होंगे। जो कार्य नानकिङ्गमें भारतीय स्नातक सदियों पूर्वसे कर रहे हैं, वह मैं अब करूं, तो कोई आश्चर्य नहीं।परन्तु मैं एक भिक्षु हूं राजन्!

चन्द्र०—अमात्य, नगरके ही सङ्घाराममें इनका प्रबन्ध होना चाहिए।

(अमात्य, फाहियान और श्रमण जाते हैं, चन्द्रगुप्त खड़ा हो आगे बढ़ आता है।)

चन्द्र०—साहसका पुतला है यह भिक्षु; धर्मकी परिचर्याकी भावना दुर्गमता और पर्वतमालाएं नहीं देखती। इसकी सुजनता तो देख कर मन अतृप्त ही रह जाता है। प्रतिहारी! (प्रतिहारीका प्रवेश, नत होता हुआ) महामात्यसे निवेदन करो कि शिविरके लिए प्रस्थान करनेसे पूर्व मन्त्रि-परिषद्की उपस्थिति आवश्यक है। भवनके ही बड़े प्रकोष्ठमें गुप्त मंत्रणाका आयोजन होना चाहिए—मैं अभी उपस्थित होता हूं। (प्रतिहारी चला जाता है) धर्म-भीरुता भूषण है, इसे ही तो सीखनेके लिए आज पड़ोसियोंने दुर्गम पर्वतोंको कोमल पथ बना लिया है। परन्तु शक्ति-भीरुता राष्ट्रका घुन है। बर्बर शकोंसे देश अभी खाली ही हुआ था कि विदेशी वाह्लीकोंका उपद्रव। पर भारत इनके लिए नहीं। (कहता हुआ चला जाता है।)

दूसरा दृश्य

(पाटलिपुत्रका सङ्घाराम, ब्राह्मण-कुमार आचार्य मंजुश्री प्रवेश करते हैं।)

मंजुश्री—चारो ओरके महात्मा, श्रमण, विद्यार्थी और सत्य-हेतुके जिज्ञासु इस स्थानका आश्रय लेते हैं। सङ्घके भिक्षु यहांकी कीर्ति-पताका ले दूर-दूर तक तथागतके मन्त्र देते हैं। परन्तु इस चीनी भिक्षुके साहस और ममताने तो मुझे मुग्ध कर दिया है। आइए भिक्षु प्रवर—(फाहियानका प्रवेश) पिटकके सूत्र कहां तक लिखे गये हैं?

फाहियान—वैपुल्य सूत्रका एक अध्याय लिखा गया है। परन्तु आचार्य, हमें केवल सूत्र लिखकर नहीं रहना है, हमें भारतको समझना भी है।

आचार्य—भद्र, यहां कुछ गुह्य नहीं। सदियोंसे सबने इसे समझा है। यवनों और शकोंने इसे अस्त्रसे समझा, पारसीयोंने उद्योगसे समझा, और कुशानोंने इस गम्भीर सिन्धुमें डूबकर समझा।

फाहियान—इतना व्यंग्य! नहीं आर्य, यह तो शास्त्र-जिज्ञासु है।

आचार्य—नहीं नहीं, भिक्षु, तुम्हारे सब प्रश्नोंका स्वागत करता हूं। वार्तिकका पाठ तो कठिन पड़ता होगा।

फाहियान—वीरता और विद्या,शौर्य और लोक-नीति, शस्त्र और शास्त्रका यह अद्भुत सहयोग देख कर मैं तो स्तम्भित हूं। वह आर्यभूमि अद्भुत आयोजनका भवन है। वीरसेन, सन्धि-विग्रहिक, जिसके विद्वताका दर्प प्रत्येक शब्दसे टपकता है।

आचार्य—स्तम्भित क्यों होते हो, भिक्षु। जिस शस्त्रमें विवेक नहीं, जिस शौर्यमें नीति नहीं, उन्हींके स्वार्थकी प्रवञ्चना तो सारे देशको आक्रान्त किये रहती है?

फाहियान—क्या जगत इस शिक्षाका अधिकारी नहीं! सम्राटको चाहिए कि अपने शस्त्रके प्रवाहमें नृशंसताको

शान्त करते, विजयिनी पताकाको बाहर फहराते चलते और इस भारतीय आलोकको समस्त भूमण्डलमें प्रदान करते—राज्य लिप्सासे नहीं तो संसृतके कल्याणके लिए।

आचार्य—नहीं भद्र, कोई भी विजय चाहे वह लिप्सा-युक्त हो, चाहे लोक-कल्याणके लिए हो, वह विजय है। शस्त्र-बलसे आलोकका प्रसार न तो श्लाघ्य है, न चिर-साध्य। आचरणकी ही शिक्षा तो हमने दी है। चीनको हमने विजित नहीं किया, फिर भी सारा पूर्वीय मण्डल आर्य-सभ्यतामें सराबोर हो रहा है।

फाहियान—पर क्या यह सन्तोष कदर्थना नहीं समझा जायेगा ?

आचार्य—कभी नहीं; उत्तरापथके उन सहज प्राचीरोंके बाहरकी विजय, विजय नहीं। वह विजय अनधिकार और घृणित है। जो दूसरोंकी स्वतन्त्रताका मूल्य नहीं जानता, वह स्वतन्त्र होकर भी आत्म प्रवञ्चित है।

फाहियान—क्या मैं समझूं………

आचार्य—सन्देह मत करो, भिक्षु। आर्यवंशने ऐसा ही वर्ता है। पर आर्यभूमिको कोई स्पर्श करे, यह हम कभी नहीं देख सकते।

(एक शिष्यका प्रवेश)

शिष्य—गुरुवर्य, बोधगयासे एक श्रमण आया है और आश्रमके गोपुरमें ही खड़ा है। अभ्यागत भिक्षु और आपसे भेंट करना चाहता है।

आचार्य—उनका स्वागत करो और शीघ्र यहां आनेके लिए निवेदन।

(दूसरी ओरसे आगन्तुक श्रमणका प्रवेश। प्रणाम कर कहता है।)

श्रमण—बोध गयामें आज-कल सङ्घका महोत्सव होने जा रहा है। आचार्य और भिक्षु प्रवरकी उपस्थिति प्रार्थनीय है।

आचार्य—निश्चय ही मेरी अभिलाषा इस अवसरपर देशके विद्वानोंका सम्मिलन देखनेकी है। शीघ्र ही उपस्थित होऊंगा।

फाहियान—पर आचार्य, मेरे लिए इस समय कहीं भी जाना उचित न होगा।

आचार्य—फिर भी आप वहींसे लौटे हैं।

फाहियान—(श्रमणकी ओर) भद्र, तावचिङ्ग पाटलिपुत्रमें कबतक पधारने वाले हैं ?

श्रमण—तावचिङ्ग सङ्घाराममें इतने मिल गये हैं कि वहांसे जानेका विचार ही उठ गया है। उन्होंने आचार्यसे कहा है कि इस भूमिको त्याग कर अब चीन नहीं लौटूंगा।

आचार्य—एक भिक्षुका इतना मोह !

फाहियान—मोह नहीं आचार्य, यह कर्तव्य है। उत्कृष्ट आचारके सौरभने ही तो चांगगानसे यहां लाया है—यहां आनेपर वह यदि कोषमें बन्द कर ले तो आश्चर्य ही क्या ? तावचिङ्ग अपने लक्ष्यपर पहुंच गया है। तथागतके अङ्कमें आकर वह इस प्रकार हठ कर ले, तो शुभ ही है। मैं तो अभी अपने मार्गके आधे तक ही पहुंचा हूं। आलोक लेने आया था और अब इसे नानकिङ्ग पहुंचाना है।

आचार्य—विलम्ब न करो श्रमण।

(श्रमण प्रणाम करके जाता है।)

फाहियान—यह अच्छा ही हुआ, बोध गयाके खण्डहरोंसे लेकर नालन्दाकी अमराइयों तक तथागतकी संस्मृति आस्तिक भिक्षुओंके लिए सर्वस्व है। हर एक क्यों इससे वञ्चित किया जाय।

आचार्य—बोध गयाका महोत्सव समाप्त हो, तबतक मैं वहीं रहूंगा, पर सङ्घाराममें मेरी अनुपस्थितिको अन्यथा न मानेंगे।

(आचार्य जाते हैं।)

फाहियान—कितना विनयका अनुसरण है आचार्यमें। (कहता हुआ चला जाता है।)

तृतीय दृश्य

(चन्द्रगुप्तकी राजसभाकी बैठक, बीरसेन प्रवेश करता हुआ।)

वीरसेन—आततायी शकोंका पलायन तो एक खेल था, पर बर्बर बाह्लीक तो उनसे भी दुर्दान्त हैं। स्वयं देव, बिक्रमांकको आम्रकार्दवके साथ शिविरकी रक्षा करनी पड़ी। शताब्दियोंसे जिनकी जड़ें जम गयी थीं, ऐसे शक क्षत्रपोंको उखाड़ फेंकनेमें देर नहीं लगी, परन्तु इनके साथ उलझनेमें इतना विपुल ह्रास।

(दूसरी ओरसे परम भट्टारक महाराजाधिराज चन्द्रगुप्तका प्रवेश)

चन्द्रगुप्त—नहीं अमात्य, ऐसे नृशंसोंको समूल नष्ट करना ही उचित है। राजसत्ताके शान्ति-प्रहरमें इनके दर्शन न हों, तभी ठीक है। महामात्यके यहांसे कोई नवीन समाचार ?

वीरसेन—और कुछ नहीं आर्यपुत्र, केवल एक सूचनापत्र आया है कि इस वर्ष नालन्दासे दश स्नातकोंका सङ्घ जावा

और बालीमें आचार्य-पदपर प्रतिष्ठित कर भेजा जाता है और बोध गयाका सङ्घाराम चीनमें पांच श्रमणोंका एक सङ्घ भेजने जा रहा है।

चन्द्र०—इन्हें आज्ञा मिल गयी ?

वीरसेन—दशवें दिन उनका पोत खुल जायेगा। परन्तु देव, श्रमणोंके साथ राजाज्ञाका भेजा जाना आवश्यक है, क्योंकि लम्बी यात्रामें, विदेशी पोतोंकी छेड़-छाड़ तो नहीं होगी, परन्तु बन्दरोंपर चरोंकी छेड़-छाड़ हो सकती है। पोत व्यापारी है।

चन्द्र०—पोत व्यापारी है, तब तो ताङ्ग-काङ्ग प्रदेशमें ठहरेगा ?

वीरसेन—हां देव, वहांका शासक तो एक समर्थ बौद्ध हैं। उसके पड़ोसी राज्यमें ही आर्यपुत्रका राजदूत गया है। यदि आज्ञा हो तो उसके यहां भी दूत जाय ?

(प्रतिहारीका प्रवेश)

प्रतिहारी—नगरश्रेष्ठी पधारे हैं।

(नगरश्रेष्ठी प्रवेश करता हुआ—) आर्यपुत्रकी जय हो।

अमात्य—नगरमें कला-केन्द्रोंकी व्यवस्था जो नये रूपमें की गयी है, अनुचित तो नहीं ?

न० श्रे०—बहुत उचित है आर्य, परन्तु चिनांशुकका भाव गिरता हुआ है।

अमात्य—तब तो बृहद् पोतोंका आगमन बहुत कम होगा ?

चन्द्र०—श्रेष्ठिन, वृहद् भारतके भविष्यका ध्यान रख कर हस्त-कला-केन्द्रोंका प्रसार······।

न० श्रे०—परन्तु मेरी एक अभिलाषा है, देव।

चन्द्र—मैं सब अभिलाषाओंका स्वागत करता हूं।

न० श्रे०—दस लाख पण सेवामें उपस्थित है। मेरी इच्छा है कि जावामें विष्णु मन्दिर, पंथ शाला और एक शिक्षा-केन्द्रका निर्माण हो।

चन्द्र०—यह कार्य शीघ्र सम्पादित होना चाहिए, अमात्य।

वीरसेन—अविलम्ब यह कार्य होगा। नगरश्रेष्ठीके इस विचारकी प्रशंसा कौन नहीं करेगा। आपका राज्यकी ओरसे मैं सम्मान करता हूं।

न० श्रे०—मैं चाहता हूं कि आर्य-सभ्यताका धवल यश सुदूर प्रान्तोंमें अविकल फैलता जाय।

चन्द्र०—मैं सोचता हूं कि इस पूत कार्यमें शस्त्रका प्रयोग निन्दनीय है।

न० श्रे०—यथार्थ है देव, आचारमें स्वयं इतनी शक्ति है कि उसके प्रसारके लिए शस्त्रोंकी सहायता अपेक्षित नहीं। चलते हुए अश्वको उत्तेजित किया जा सकता है, परन्तु दौड़ता हुआ अश्व उत्तेजना नहीं चाहता।

नगरश्रेष्ठीका दूसरी ओरसे प्रस्थान)

अमात्य—वैदेशिक विभागके कार्योंकी अधिकतासे यह उचित जान पड़ता है कि राज्यके अतिरिक्त इन कार्योंका उत्तरदायित्व थोड़ा विषयों और नगर समितियोंपर भी छोड़ा जाय। महामात्यने आज इसके प्रबन्धका आयोजन किया है।

चन्द्र०—तब तो वहां चलना चाहिए।

(दोनोंका प्रस्थान)

चतुर्थ दृश्य

(पाटलिपुत्रका एक भाग)

आचार्य—मैं नहीं चाहता कि दो सङ्घाराम बनें—एक ब्राह्मण सङ्घाराम और एक बौद्ध।

(एक शिष्यका प्रवेश)

शिष्य—परन्तु आचार्य वर, बोध गयामें सङ्घने एक ऐसी ही ज्ञप्ति निकाली है—उसका विरोध भी तो नहीं हुआ। जब स्वयं राज-पदोंपर ब्राह्मण-बौद्ध बराबर सम्मानित हैं, विद्यालयोंमें कोई अन्तर नहीं, तो सङ्घाराममें ही क्या दुर्नीति आयी है ?

आचार्य—फिर भी दुर्नीतिका निवारण होना चाहिए। आधारका नाश नहीं। आज अभी तक चीनी भिक्षुके दर्शन नहीं हुए।

शिष्य—आज भिक्षु प्रवर यहांसे विदा होंगे, क्या उनके सूत्र पूरे हो गये ?

आचार्य—हां, पूरे हो गये। अब वे यहां रुकना भी नहीं चाहेंगे। जाकर देव विक्रमाङ्कसे निवेदन करो; अमात्य, सन्धि विग्रहिकको भी सूचित करो।

(शिष्य जाता है, दूसरी ओरसे फाहियानका प्रवेश)

फाहियान—तीन वर्षोंके परिश्रमसे जो कार्य मैं कर सका हूं, वह सम्भवतः सारे जीवनमें भी नहीं कर सकूंगा। यह सब आपकी ही शुभेक्षा और अनुग्रहका परिणाम था।

आचार्य—कह सकते हो भिक्षु, पर यह अनुग्रह नहीं, कर्तव्य था, आज मुझे सन्तोष है।

(राजाका अमात्यके साथ प्रवेश)

अमात्य—जिन ग्रन्थोंका संग्रह भिक्षु प्रवरने किया है,

उनके अतिरिक्त अन्य ग्रन्थोंकी भेंट आर्यपुत्रके आज्ञानुसार की जाती है।

चन्द्र०—चीनी भिक्षु सङ्घों तक इनका प्रवेश केवल आपके लिए ही सन्तोष-प्रद नहीं है, हम लोगोंके लिए भी है, क्योंकि आपका देश इसका अधिकारी है।

फाहियान—हम अब भी स्तम्भित हैं आर्य, युद्धोंके आरोह-अवरोहके बीच यह देश-व्यापी शान्ति, यह अलका-का विभव और आचरणकी सभ्यताकी मनोहर प्रतिकृति, सब आपकी ही भुजाओंका फल है। बौद्ध चीन आभारी है।

आचार्य—भिक्षु प्रवरको यहांसे अठारह योजन दक्षिण गङ्गाके किनारे होते महाजनपद चम्पामें जाना है। वहांसे तांबालीपी भी जाना है—सम्भवतः वहां कुछ ठहर भी जांय।

चन्द्र०—मार्गकी व्यवस्था ?

आचार्य—तक्षशिलाके श्रमण और आश्रमके दो भिक्षु साथ हैं। छुधाके लिए एक रथ भी प्रस्तुत है।

चन्द्र०—लोक-नीति प्रान्तीयतासे परे है। भारतीय इसमें पीछे नहीं भिक्षु; आप सन्तुष्ट होंगे।

फाहियान—(आचार्यकी ओर घूम कर) धर्मगुरु, मैं मूक हो रहा हूं।

आचार्य—मैं भी रुद्ध-कण्ठ।

(फाहियान चीनी ढङ्गसे नत सिर होता है। आचार्य ऊपर हाथ रखता है।)

(पटाक्षेप)

गीत

जागरण की मुग्ध बेला!

पलक खुल-खुल झपक जाते
दृष्टिमें दर्शन न भाता,
फिर सुलाने के लिए
कोई विपुल वीणा बजाता;
मिलन की आशा लिये,
उठता हृदय रहता अकेला।

वरुनियों में सघन आलस
पुतलियों में सजल कम्पन;
पाश में आबद्ध आकुल
तड़पता है विहग का मन;
स्वप्न के ही अङ्कमें
करती निमिष भर मुक्ति हेला।

बीत जाता युग कभी पर
एक पल-सा ज्ञात होता;
पर कभी पलका बिताना
एक युग प्रतिभात होता;
जलधिका सङ्कोच जल-कण,
बिन्दु ने सागर उंडेला।

तिमिर में आलोक जगता
शून्य में सङ्गीत भरता;
खिले शतदल से अमल
द्रुतगति तरल मकरन्द झरता;
भावना की भूमि पर
पल भर प्रणयका मान-मेला।

—रामप्रकाश अग्रवाल; एम० ए०

भारतीय नृत्य कलाका इतिहास

ले०—श्री 'मिलिन्द'

बहुत प्राचीन समयसे, भारतीय कला, धर्म, एवं दर्शन यथार्थताके भिन्न-भिन्न प्रवेश-रूपमें विकसित हुए हैं। यहां तक कि देशकी दूसरी-दूसरी कलाओंके सदृश नृत्यने भी अपने विकासका मार्ग धर्ममें ही पाया। हिन्दुओंके लिए यह कला काफी विशेषता रखती थी, और समयकी दौड़ानके साथ, इसने अपनेको सभी कलाओंमें सर्वोच्च-रूपसे विकसित पाया।

नृत्य एवं सङ्गीतका इतिहास उतना ही प्राचीन है, जितना मनुष्य जातिका इतिहास। समयके प्रारम्भसे ही इसकी चमत्कारिक शक्तिका पता चल चुका था। जङ्गली जाति और प्राचीन जातियोंकी यह पक्की धारणा थी कि कुछेक निश्चित नृत्य करनेसे अथवा सङ्गीत दुहरानेसे, वे भूत और प्रेतको इस बातके लिए विवश कर सकेंगे कि वह उनकी मर्जीके अनुकूल काम करे। उनका विश्वास था कि प्रकृतिकी शक्तिके पीछे भूत और प्रेतका अस्तित्व है। वेदोंमें विधि-सम्बन्धित नृत्योंका उल्लेख है। वीरतापूर्ण युगमें नृत्य, बकायदे दरबारसे सम्बन्धित था, और राजा अथवा राज्याधिकारियोंके सम्मानार्थ इसका आयोजन किया जाता था।

आगे चलकर नृत्यने उत्सवोंमें महत्वपूर्ण स्थान बना लिया और प्रत्येक नृत्यमें उसके उद्गमकी पूरी कहानी सन्निहित रहती थी। नृत्य करते समय अनेकानेक देवी-देवतायें साक्षात् दिखलाये जाते थे। शिव-नृत्य, अच्छाईका उत्पादन करता है और बुराईको नष्ट करता है; कालीका स्वरूप श्मशानमें नृत्यसे सम्बन्धित है। अमर "प्रेमी" श्रीकृष्ण बांसुरी बजाते हुए दिखायी पड़ते हैं और सभीकी आत्माको आकर्षित करते हैं, साथ ही, सर्प-राज कालियकी छत्रछायामें और वृन्दावनकी गोप-गोपियोंके साथ नृत्य करते भी दिखायी देते हैं। इन पौराणिक-कथाओंका विवरण, हमें अनगिनत-पर्व, चित्रकारी, अस्तरकारी परके चित्र एवं शिल्प-सम्बन्धी स्मारक चिन्ह बतलाते हैं। बात यह है कि हिन्दू-नृत्यमें विषयका प्रयोग, सांसारिक वस्तुओंको देने योग्य बहुत थोड़े रहते हैं। वे लोगोंको अधिकाधिक आनन्द-प्रदान करनेके लिए बनाये गये हैं। साथ ही उनके बनाये जानेका अर्थ यह भी है कि मनुष्योंको जीवनके आनन्द और विषादके बन्धनोंसे मुक्त किया जाय। पुराण, जिनमें हिन्दुओंकी धार्मिक कहानियां संग्रहीत हैं, ब्रह्मा, विष्णु और शिवके रूपमें यथार्थताका रहस्य खोलते हैं। शिव विनाशके अधिष्ठाता हैं, ब्रह्मा-जगतीके निर्माण-कर्त्ता हैं, विष्णु-जगतीके पोषक हैं, साथ ही वे तीनों ही महालयकी तीन छबि हैं, जो हिन्दू-नृत्यमें भावोन्माद करनेके लिए खोजे जाते हैं।

बङ्गालकी सुप्रसिद्ध नृत्य प्रवीण बालिका कुमारी कविता मित्रा

नृत्य-सम्बन्धी असंख्य ग्रन्थ इस देशमें लिखे गये हैं। परन्तु उनपर टीका-टिप्पणी करनेके पहले हमें यह जान लेना अत्यावश्यक है कि वास्तवमें नृत्य क्या है? यह स्पष्ट गतिकी कला है, न कि खेल या जिमनास्टिक-सदृश है। नृत्यमें वाणी मूक रहती है, परन्तु पूरा शरीर स्पन्दित होता रहता है। नृत्यकी भाषा, यथोचित, कलात्मक और प्रतिरूपक है। नृत्यकी भाषाकी शब्दावलियां, भाव एवं सङ्केत हैं, साथ ही वे लयपूर्ण भी हैं। वैदिक-कालके मन्त्रमें हाथके अदभुत सङ्केत काममें आते थे, जिन्हें

'मुद्रा' कहते हैं। तन्त्रके अनुसार देवी-देवताओंके लिए 'मुद्रायें' आनन्दके सूत्र हैं, और पाप एवं लालसाकी अपवित्रताके लिए आजादीके चिह्न-स्वरूप हैं। मुद्रायें हाथकी एक विशेष भाषा हैं। अब ऐसा बहुधा देखा जाता है कि ब्राह्मण-पुजारी-गण देवताओंकी पूजा करते समय 'मुद्राओं' का प्रयोग करते हैं। व्यवहारमें भिन्न-भिन्न प्रकारकी मुद्रायें हैं, और पुजारीगण ठीक-ठीक 'मुद्रा' का प्रयोग करना जानते हैं, ताकि देवता विशेष, जिनकी पूजा की जाये, वे प्रसन्न हों। प्रत्येक देवताकी अपनी-अपनी मुद्रा है, जैसे गरुड़-मुद्रा और चक्र-मुद्रा विष्णुको पसन्द हैं, पाश मुद्रा सभी देवियोंको पसन्द है, पट मुद्रा शिवको पसन्द है। नृत्यमें हाथोंके ये सङ्केत बहुत प्रभावशाली भाव उत्पन्न करते हैं। प्राचीन हिन्दू अभिनयके बजाय नाटकोंका नृत्य करते थे और जावा और बालीके निवासी अभी भी पुराण, रामायण, और महाभारतकी कहानियोंका नृत्यके द्वारा चित्रण करते हैं।

प्राचीन-युगमें नृत्य सदा कुछेक वाद्योंसे सुसज्जित रहता था, जिनमें सबसे साधारण हाथसे ताली बजाना या नगाड़ेपर चोट देना था। इसके द्वारा समयका पता चलता था और लयपर काफी जोर दिया जाता था। नृत्यकी गतिकी सीमा पहलेके आदमियोंके बीच बहुत विस्तृत थी। शरीरके सब अङ्गोपांग प्रयोगमें लाये जाते थे—सिर, पीठ, उङ्गलियां, पुट्ठा, भुजायें और यहां तक कि चेहरेसे सम्बन्धित मांसपेशियां भी प्रयोगमें लायी जाती थीं। कुछेक प्रदर्शनोंमें काफी शारीरिक थकावटकी आवश्यकता है। इसलिए, जङ्गली जातियोंके बीच इस नृत्यका उत्तर जीवन, हम लोगोंको यह विश्वास करनेको विवश करता है कि नृत्य-जीवनका एक प्रमुख अङ्ग और भावपूर्ण बहावको संवारनेवाला पथ है। नृत्यका सङ्गीतमय-पृष्ठ-देश साधारण है, इसका एकमात्र उद्देश्य यह है कि मधुर आवाजके द्वारा भाव और रस पैदा किया जाय, जो विभिन्न वाद्यों द्वारा सङ्गीतपूर्ण स्वर हो।

शास्त्रोंके मतानुसार हिन्दू-नृत्य मुख्यतः दो भागोंमें विभाजित हैं:—लास्य और ताण्डव! ताण्डव नृत्यमें भयानक-फुर्तीकी अत्यावश्यकता है और साधारणतया यह पुरुषों द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। हिन्दुओंके लिए नृत्य लौकिक लयके प्रतिनिधि स्वरूप हैं। शिव लौकिक अभिनेता एवं नर्तक हैं, जिनका सङ्केत और रूप संसार है, और जिनके वस्त्र एवं विधान चन्द्र एवं तारेगण हैं। शिवके नृत्यको ताण्डव कहते हैं। लास्य-नृत्य गायन-सम्बन्धी आकर्षण एवं जीवनकी स्वच्छताकी स्पष्टता है और इसका स्वरूप नारी-सम्बन्धी है। ताण्डवसे मानवी-कटुताका पता चलता है, लेकिन लास्य अधिक कोमल, आकर्षक और विनम्र है।

कुमारी कविता "रणचण्डी" की नृत्य-भङ्गिमामें

मुख्य भागोंका पुनः इस रूपमें विभाजन हो सकता है:—
ताण्डव—(१) पेबाली ताण्डव! (२) बहुरूपी ताण्डव!!
लास्य—(१) चुरिता लास्य! (२) यौवन लास्य!!
नृत्यके उन असंख्य रूपोंका वर्णन करनेके पहले, जो

हमारे देशमें पाये जाते हैं, हमें चाहिये कि हम साधारण नृत्योंको उत्साही नृत्योंसे अलग कर दें। उत्तम कोटिके नृत्य उन साधारण नृत्योंसे भिन्न हैं, जो इस देशमें प्रचलित हैं। नर्तक अपनेको किसी नृत्य विशेषकी भावनाओंके अनुकूल बना लेते हैं और उसमें जीवन डाल देते हैं। खड्ग-नृत्यका अस्तित्व सम्पूर्ण भारतवर्षमें है, और दक्षिणमें इसका नाम वेलेरू (Velleru) है। दूसरे साधारण खेल भी हैं, जैसे—'एक्रोबेटिक डान्स' रस्सीपर नृत्य करना, डण्डोंके

श्रीमती जोहरा सहगल। आपने हालमें ही "भारतीय नृत्य" पर रेडियो-भाषण किया था।

सहारे कूदना आदि। यह नृत्य मालाबारमें अत्यधिक प्रचलित है। इसके अलावा समूह-नृत्यका अस्तित्व श्रीकृष्ण के समयसे है। समूह नृत्य अधिकतर गुजरातके गर्बा-नृत्यमें, राजपूतानाके झूमर नृत्यमें और बङ्गाल आदिके नृत्योंमें भी पाया जाता है।

ग्राम्य-नृत्य सम्पूर्ण भारतवर्षमें कृषक एवं युक्त-प्रान्तके अहीरोंके बीच रोपाई और कटाईके समय या राजपूतानामें होलीके अवसरपर और बनारस और मिर्जापुरके इलाकोंमें कजरी आदिमें प्रायः होता है। आदिम-निवासी, नृत्यकी सहायतासे सभी चीजोंका उत्सव मनाते एवं धूमधाम करते हैं। पहलेके नृत्य घटना विशेषके शब्दानुरूप नियम एवं कानून हैं। समर-भूमिमें सफलता प्राप्त करनेके लिए ही भीलगण नृत्य करते थे। भील, कोल और सन्थालोंके पुरातन-नृत्य एक बड़ी जमायतमें नगाड़ोंकी चोट-के साथ देखे जाते हैं। 'गज्जन' पर्वके अवसरपर कुछेक नृत्य बङ्गालियों द्वारा प्रदर्शित किये जाते हैं। जब कि नर्तक धार्मिक जोशसे अपनी जिह्वा और चर्म तकको काट डालते हैं। आदिम निवासियोंके नृत्यसे एक जबर्दस्त फायदा यह हुआ है कि कुछ सुन्दर गीत एवं स्वर भूल जानेसे बच गये हैं और वे अभी भी याद रखे जाते हैं। ग्राम्य-नृत्य पुनर्जीवित करनेवाला नृत्य है।

सन्थालोंके बीच ब्याह-नृत्यमें चांदनी रात्रिमें मृदङ्ग बजता है और युवतियां बसन्तमें पुष्पोंसे और शरतमें पत्तों-से सुसज्जित हो एक बड़े वट या बरगदके घने पेड़की छाया-में एकत्रित होती हैं और युवक धानके खेतमें साजो-सामानके साथ जमा होते हैं। तब मृदङ्ग बजता है। युवक युवतियोंकी प्रशंसा करते हैं और उनके निकट पहुंचते हैं, जो एक-एक जोड़ेके साथ बाहोंमें बाहें डाल एक कतारमें खड़े होते हैं। युवतियां सङ्गीतकी प्रति-ध्वनिके सहारे इधर-उधर झुकती हैं। वे धीरे-धीरे आगे बढ़ती हैं और फिर अलग-अलग हो जाती हैं। परन्तु वास्तवमें कभी भी वे पुरुषोंके साथ नहीं मिलती हैं। नृत्यकी समाप्तिके बाद युवक और युवतियोंको परस्पर मिलनेकी पूर्णाज्ञा होती है और वे चाहें तो ब्याह भी कर सकते हैं। उन लोगोंमें कुछ बहुत सुन्दर और सुसज्जित नृत्य होते हैं, जैसे-'नीलका जमाव' आदि। बङ्गालमें 'इन्द्र पूजा' पर्वके अव-सरपर चांदनी रातमें स्त्रियोंके व्यवहारिक नृत्य होते हैं, जिसमें वे नृत्य करती हैं और सुबहमें प्रेमपूर्ण गीत गाती हैं और स्नानके हेतु नदीकी ओर जाती हैं। दक्षिण-भारत एवं लङ्कामें एक विशेष प्रकारका सुन्दर नृत्य प्रचलित है, जिसका नाम 'पिशाच नृत्य' (Devil dance) है। खासीकी पहाड़ियोंमें नंगक्रम-नृत्य एक बहुत बड़ा पर्व है और इसमें नंगक्रमके 'सायम' काफी भाग लेते हैं। इसमें बकरेका बलिदान दिया जाता है। इस बलिदानमें बाईस आदमी तलवार लेकर बलि-वेदीके सामने नृत्य करनेके बाद पुजारिणी-सायमके मकान पर पहुंचते हैं और अन्यान्य नृत्य करते हैं। उसके बाद पुरुष और स्त्रियोंका नृत्य

होता है। थोड़ी देर बाद दो आदमी तेजीसे एक दूसरेके समीप पहुंच जाते हैं और मिथ्या लड़ाई करते हैं।

बैजी-नृत्यको हम भारतीय नृत्यमें नहीं गिनते हैं, चूंकि यह फारससे निकला है। बहुतसे दर्शकों एवं समालोचकोंने जङ्गली नृत्यमें समानता एवं सौन्दर्य-क्षीणतापर टीका-टिप्पणी की है, लेकिन हम इसे अधिक महत्व नहीं देते हैं। मालावार और केरलमें कलात्मक और सौन्दर्य-पूर्ण उत्तम नृत्योंकी बहुतायत है। मनीपुर और उत्तरी भारतवर्षमें कृष्णके चारों ओर लड़कियोंके नृत्यका स्थान बहुत आदरणीय एवं सर्वोच्च है। मनीपुर साधारण आदिम-निवासियोंका घर है। उनकी जिन्दगीकी मामूली आदतोंमेंसे एक नृत्य है। वे अपने जीवनके सम्पूर्ण दर्शन-तथ्यको परम्परागत नृत्यके रूपमें वर्णित करते हैं। मनीपुरका प्रत्येक कलाकार दृढ़तया विश्वास करता है कि जब कभी वे अपने नृत्यमें उलझ जाते हैं, ईश्वर स्वयं आते हैं और छिपे-छिपे अपने भक्तोंकी लीलाएं देखते हैं, एवं सबोंपर अमर-आशीर्वादकी वर्षा करते हैं। इन युवतियोंका नृत्य उनका प्यारा शृङ्गार, और नीरव वातावरण सभी प्रशंसनीय है। इसके अलावा और भी दर्शनीय नृत्य मनीपुरमें हैं। जैसे—थाबल-चोंगवा, लाय हरोबा, आदि। जिस तालमें वे नृत्य करते हैं, वह भी बहुत कठिन है। मालावारमें 'कूटा-नृत्य' नाटकके रूपमें अभिनीत किया जाता है। यह कलाके दृष्टि-कोणसे बहुत महान् नृत्य है और 'कथाकाली' नृत्यादि कुछ या बहुत अंशों तक इसी नृत्यसे निकले हैं, ऐसा जान पड़ता है। सचमुचमें कथाकाली-नृत्य कलाके विचारसे एवं सङ्गीत, कहानी, सङ्केत एवं चेहरेके भावोंके साथ-साथ एक मूक-नृत्य है। इस नृत्यमें स्त्रियां भाग नहीं लेती हैं। कठिन मुद्राओंका सफल प्रदर्शन करना उनके वशकी बात नहीं है। सङ्गीतज्ञ एवं गायक पीछे खड़े रहते हैं और महाभारत एवं रामायणके कुछ अंश नर्तकोंके पीछेसे पढ़े जाते हैं और नर्तक उन्हें मुद्राओं द्वारा प्रदर्शित करते हैं। इस नृत्यमें एक साधारण प्रकारका शृङ्गार प्रयोग किया जाता है। इस नृत्यके सम्बन्धमें यह बात अस्वीकार नहीं की जा सकती है कि यह केरलसे बाहर भी साधारण प्रसिद्धि प्राप्त कर लेगा। दूसरा नृत्य 'छाऊ' सिराईकेलामें पाया जाता है। छाऊ-नृत्य हर साल चैत्रमें वसन्तागमनपर सिराईकेलाके राज्याधिकारियों द्वारा शिवकी उपासनामें किया जाता है। रामायण, महाभारत और दूसरे हिन्दू धर्म-ग्रन्थोंसे वे विषय चुन लेते हैं। यह एक घूंघट-पूर्ण नृत्य है और सच पूछा जाय, तो कलात्मक-दृष्टि-कोणसे अपूर्व सौन्दर्यपूर्ण है। जिस तालमें वे नृत्य करते हैं, वह भी सचमुच ही बहुत कठिन है।

नृत्य विशेषज्ञ देवताओंके विषयमें वेदान्तोंमें उल्लेख है। इन्द्रके विषयमें ऐसा कहा जाता है कि वे भी वृद्ध-नर्तकके रूपमें प्रकट हो चुके हैं और युद्धमें विजयकी भविष्यवाणी की है। 'ऊषा' अपने आपको सजानेवाली नर्तकी कही जाती है। परन्तु इनमेंसे शिवको छोड़कर और किसीने भी नाम नहीं पैदा किया है। सिर्फ शिव ही नटराज कहे जाते हैं। शिवको की गयी स्तुतिसे पता चलता है कि उन्हें अभिनय और नाटकका रक्षक कहा गया है। उनका नृत्य ताण्डव है, जो उत्साहपूर्ण और पौरुष सम्बन्धी है। इस नृत्यकी विशेषताका उल्लेख शैव-साहित्यमें है। कैलाश पर्वतपर देवताओंके सम्मुख शिव-सांख्य नृत्य भी करते हैं और गणेशजी भी इसमें भाग लेते हैं, ऐसा कहा जाता है।

सम्भवतः उपर्युक्त नृत्य अनार्योंसे सम्बन्धित है और शिव-रुद्रके व्यक्तित्वमें द्रविड़ोंके गुण पाये जाते हैं। इस नृत्यमें अप्सरायें भी भाग लेती हैं; ऐसा लोगोंका विश्वास है। अन्यान्य गृह-नृत्य कृष्ण भगवान सम्बन्धी हैं। इनमें एक गगरी-नृत्य है, जो मूल रूपेण चारागाहोंका ग्राम्य-नृत्य है। यह श्रीकृष्ण द्वारा बाणासुरकी हारके बाद प्रदर्शित किया गया था और जब जहरीला सर्प कालिया सम्पूर्णतः अधीनस्थ कर लिया गया, तब एक नृत्य विजय सम्बन्धी हुआ। परन्तु उनके नृत्योंमेंसे अधिक महत्वपूर्ण रास-लीला या रास-मण्डाला है, जो कहा जाता है कि लालसाओंका व्रत है। एक गोलाकार नृत्य है, जिसमें ग्वालिनें दूध-सी उज्ज्वल चांदनी रातमें यमुना नदीके तीरपर भाग लेती हैं।

सर्वप्रथम मानव-विशेषके बीच देवताओंको प्रसन्न करनेके हेतु सङ्गीत और नृत्यको प्रचलित किया गया और समयके प्रवाहमें ये आनन्द और प्रेमके स्रोत बन गये। हम लोगोंके देशमें दूसरे किस्मके नृत्य भी मौजूद हैं, परन्तु समय और स्थान विशेषकी कमीके कारण हम उनका यहां उल्लेख कर सकनेमें असमर्थ हैं।

पाश्चात्य आचार

राम बालक प्रसादजी, साहित्य-रत्न

पाश्चात्य देशोंमें अन्य विद्याओंके अतिरिक्त आचार शास्त्र (Ethics) का भी अभ्युदय स्वतन्त्र रूपसे हुआ और हो रहा है। दर्शन, धर्म आदि सबसे अलग रह कर आचारने अपना अस्तित्व कायम किया। धर्मके जितने भी विवेच्य विषय हैं—ईश्वर, जीव, स्वर्ग, नर्क, पैगम्बर आदि, या तो आचार इसे मानता ही नहीं, या एक परिभाषा विशेषके अन्दर मानता है। भारतवर्ष धर्म और ईश्वर-परायण देश है। इसलिए पाश्चात्य आचारसे भारतीय आचार कुछ भी साम्य नहीं रखता।

पाश्चात्य आचारने धर्मसे अपना पल्ला इसलिए छुड़ा लिया कि प्रत्येक धर्ममें अधिकाधिक मात्रामें अन्ध-विश्वास विद्यमान रहता है। इसकी विद्यमानता मनुष्योंको वस्तुओंकी प्रकृतिके कारण और कार्यके सामञ्जस्यपर शास्त्रीय विचार नहीं करने देती। अतः धर्मने अनेक आख्यानोंके बल अपने जालमें युग-युगसे बहुतोंको फंसा रखा है। प्रत्येक धर्मके अनेक उपाख्यान उद्धृत किये जा सकते हैं। आचार कहता है कि ईश्वरवादी मतोंने एक ही व्यक्तिमें सम्पूर्ण नैसर्गिक गुणोंका आरोप कर और उसको अपनेसे बिलकुल अलग मान कर एक बड़ी भूल की है। वह पूर्ण व्यक्ति ईश्वर, मनुष्यकी बुद्धिसे परे है,न्याय कर्त्ता है, आनन्दमय है, सर्वज्ञ है और सर्व व्यापक है, ऐसा मानना मनुष्योंको आगे नहीं बढ़ने देता। जीवको ईश्वरका अंश और उसी अनुपातमें उसको सच्चिदानन्द मानना और यह नहीं स्वीकार करना कि उसमें पशुत्व भी है, सुधारका कार्य नहीं होने देता। स्वर्गके प्रलोभनने, नर्कके भयने प्रेमसे कर्त्तव्यका पालन नहीं करने दिया। ईसाई, महिला सन्त थिरेसा कहती हैं कि यदि मेरे एक हाथमें वारिद हो और दूसरे हाथमें अग्नि-स्फुलिङ्ग, तो वारिदसे नर्ककी धधकती ज्वालाको शान्त कर दूं और अग्निसे स्वर्गके प्रलोभनोंको भस्मसात्। अन्य देवी-देवता ईश्वरोपासनाकी भावना और दृढ़ करते हैं। अधिकांश पैगम्बर भी ईश्वर और जीवका सम्बन्ध अधिक मजबूत बनाते हैं। जीव अपना स्वतन्त्र अस्तित्व मान कर नैतिक उत्थान करनेमें सहायक नहीं होते। धर्म और रूढ़िगत जीवनके प्रति प्रतिकूलता रख कर आचार एक नये संसारकी रचना करता है। क्या था और क्या है, यह आचारका व्यवहार-क्षेत्र नहीं है। नैतिकता जो सर्वोच्च नियम है, उसके लिए क्या होना चाहिये, यही उसका व्यवहार-क्षेत्र बनता है। यही 'चाहिये' जीवनका लक्ष्य बनता है। इस 'चाहिये' के लिए वे सभी गुण चाहिये, जिनका आरोप मनुष्य दूसरे किसी अवतारी पुरुष या साक्षात ईश्वरमें ही करता है। इन गुणोंका समावेश वह अपनेमें करता है, न कि इन गुणोंसे युक्त माने जाने वाले किसी महापुरुषकी रूढ़िगत पूजा करता है।

नैतिकताका निरूपण इसी प्रकार किया जा सकता है। यह नैतिकता आदिसे अन्त तक न्यायसे ही प्रभावित है। न्यायके द्वारा ही वह मानव-हितकी चिन्ता करती है। सार्वजनिक आनन्दकी प्राप्ति वह न्यायके द्वारा ही सम्भव समझती है। यह नैतिकता, न्याय, और आनन्दकी भावना मनुष्यके अन्तःकरणसे ही उद्भूत होती है। तब प्रश्न यह होगा कि मनुष्यका उद्गम नैसर्गिकता क्यों न माना जाय, पशुता क्यों माना जाय? किन्तु बात यह है कि उपरोक्त भावनाएं स्वभावकी सीमामें पशुओंको प्राप्त हैं। मनुष्योंको वे ही भावनाएं सीमा-रहित, प्रकृत रूपमें मिली हैं। पशु स्वभावकी सीमासे सीमित होकर उन भावनाओंका अतिक्रमण नहीं कर सकते। किन्तु मनुष्य चाहे तो उन भावनाओंका विकास या ह्रास कर सकता है। इसलिए, सार्वजनिक आनन्दकी उद्भावना अन्तःकरणसे ही माननी चाहिए, न कि वाह्य सुख-दुखके अनुभवसे। उस आनन्दकी भीति न्याय ही होना चाहिये। वास्तवमें नैतिकता मनुष्यका स्वभाव है। तब प्रश्न होगा—फिर कुछ मनुष्य अनैतिक क्यों देख पड़ते हैं? सचाई यह है कि अनैतिकता मानव प्रकृतिका रोग है; स्वास्थ्य नहीं। स्वभावकी जांच स्वास्थ्यसे होनी चाहिये, रोगसे नहीं।

जब नैतिकता मानव जीवनका स्वभाव-सिद्ध लक्ष्य बन गया, तब मनुष्य आजीवन इसके लिए प्रयत्न करेगा। यों तो जितने भी नैतिक कार्य हैं, सब मनुष्यके ही लिए हैं। इसलिए साधक अपनी योग्यता और परिस्थितिके अनुसार अनेक नैतिक कार्योंमेंसे कुछको अपने लिए चुन लेता है और उन कार्योंको आदर्श नैतिक कार्य कह कर प्रकट करता है। अपने लिए आदर्श कार्य चुनते समय मनुष्यका

मस्तिष्क बहुधा एक प्रकारकी भूल करता है। वह यह कि अपने अनुकूल कई नैतिक कार्योंकी केवल कल्पना कर अपनेको विलास-जन्य काल्पनिक आनन्दसे आनन्दित करता है।

आदर्श-कार्यके सिलसिलेमें आदर्श और यथार्थका प्रश्न उठ खड़ा होता है। यह निर्विवाद है कि आदर्श अयथार्थ नहीं हो सकता। क्योंकि प्रत्येक आदर्शका उद्देश्य मङ्गल होता है। जो अयथार्थ तथा अव्यवहार्य्य है, वह मङ्गलकी सिद्धि कैसे कर सकता है ? दूसरी बात यह है कि आदर्शके प्रतीक भलाई, न्याय, नैतिक विचार—ये सब सत्य और पूर्णतः स्वतन्त्र हैं। प्लेटो (Plato) तो इन्हें स्वयम्भू (Self-existent) मानकर इनसे एक दूसरी दुनियाकी ही कल्पना करने लग गया था। प्रत्येक आदर्श निश्चय ही यथार्थ है, पर प्रत्येक यथार्थ आदर्श नहीं हो सकता।

किसी कार्यको क्यों आदर्श माना जाय ? इस प्रश्नका निश्चित उत्तर दिये बिना कार्यके साथ अनुराग नहीं होगा। अपनी पुस्तक "यूरोपीय आचारका इतिहास" में हार्ट-पोल लेकी लिखते हैं कि नैतिकताके सिद्धान्तको यह तो बताना ही होगा कि मेरा कौन-सा कर्त्तव्य है, साथ ही यह भी बताना होगा कि हम लोग उस भावनाको कैसे प्राप्त करते हैं, जो अमुक-अमुक कार्योंको कर्त्तव्य मानती है। कार्य तो सभी जड़ हैं, उनका आदर्श होना उनके परिणामपर निर्भर करता है। कुछ ऐसे भी कार्य होते देखे जाते हैं, जो पहले दुखद जान पड़ते हैं, पर वे थोड़े ही दुःखके बाद, चूंकि बहुत बड़े आनन्दके देनेवाले होते हैं, इसलिए मनुष्य सहर्ष करता रहता है, जैसे—सन्तानोत्पत्ति। किन्तु आदर्शकी यह एक जांच मात्र है। इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि कर्त्ता बाह्य परिणामों (Ulterior Consequences) को देख कर ही कार्यमें संलग्न होता है, उसके अन्दर ऐसी कोई शक्ति नहीं, कोई सहज-ज्ञान (Intuitive Sense) नहीं, जिससे प्रेरित हो वह लोक हिताय कार्य करता हो। परिणामको मानकर चलने-से उपयोगिता वादके दलदलमें फंस जाना पड़ेगा। नैतिक आदर्श जितना अपने सिद्धान्तके प्रति जागरूक रहता है, उतना अपने तथा दूसरोंके स्वार्थ या उसकी सिद्धि स्वरूप बाह्य परिणामोंके प्रति नहीं। चूंकि उसके सिद्धान्त ही इतने मङ्गलप्रद होते हैं कि उनसे अन्यथा परिणाम हो ही नहीं सकता।

मनुष्यका विकास-आचार (Ethics) के सिद्धान्तोंपर ही निर्भर है। डार्विनका विषय आचार नहीं था। उनका विषय मानवका विकासवाद था। परन्तु आचार और विकासवादमें इतना घनिष्ट सम्बन्ध है कि एकके विवेचनमें दूसरेके विवेचनका आ जाना अत्यन्त स्वाभाविक है।

विकासके लिए डार्विन शान्त प्रकृति (Peaceful disposition) को प्रथम स्थान देते हैं। जीवनमें छोटी या बड़ी भूलें जब-जब घटित होती हैं, तब-तब विकासको कई पग पीछे खींच लेती हैं। फलतः जीवन मुश्किलसे आगे बढ़ पाता है। दूसरी बात यह है कि जब ये भूलें उपस्थित होती हैं, तब उनकी उपस्थितिके पूर्व ही सद्गुण निर्वासित हो जाते हैं। अनेक बार इसी प्रकार सद्गुण निर्वासित होते-होते सदाके लिए अन्तर्धान हो जाते हैं। प्रकृति शान्ति और सौम्यतासे 'चित्त' को अचञ्चल और सचेतन रखनेमें समर्थ होती है। इस अवस्थामें छोटी भूल भी दृष्टि-पथसे दूर नहीं होती,और जीवन आगे बढ़ता चला जाता है।

डार्विन संयम-शीलता (Temperate habits) को द्वितीय स्थान देते हैं। जब जीवन दण्डसे जर्जरित हो जाता है, तब विकासकी प्रगति रुक जाती है। चाहे वह दण्ड शारीरिक हो, सामाजिक हो, राजकीय हो या मानसिक। मनुष्यको दण्डसे बचानेके लिए संयम एक महान् अस्त्र है। संयमी दण्डसे हासित न होकर सदा विकसित होता रहता है। राजनीतिक शासनकी व्यवस्था सुदृढ़ नहीं, तो मनुष्य राजकीय दण्डसे बच सकता है, किन्तु प्रकृतिका शासन तो इतना व्यवस्थित है कि कोई भी असंयमी बच नहीं सकता। चोरीको ही लीजिये। चोर पुलिसकी आंखसे बच जाय, फिर भी उसका नैतिक अधःपतन मानव-जीवनका स्वाभाविक आनन्द उसको नहीं लेने देगा।

तीसरी चीज, जिसपर डार्विनका ध्यान जाता है, वैवाहिक सम्बन्धकी पवित्रता और नारीके प्रति समादरकी भावना है। नर-नारीका यौन सम्बन्ध विकासके दृष्टि कोणसे एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस सम्बन्धकी पवित्रता न केवल नर-नारीको पवित्र बनाती है, बल्कि एक अन्य पवित्रतम संसारकी सृष्टि भी करती है। यदि यह सम्बन्ध अपवित्र हो गया, तो जीवनकी इह लौकिक लीला विफल ही समझनी चाहिये। इसके भयङ्कर परिणामको मौडस्लेने इस प्रकार कहा है—By it a man may succeed in manufacturing insanity in his progeny, and that insame persons if they are allowed to propogate, become at last a race

of sterile idiots. अर्थात् इस सम्बन्धकी अपवित्रतासे मनुष्य भ्रष्टबुद्धि सन्तान उत्पन्न करेगा। और इन भ्रष्ट सन्तानोंका विस्तार यदि न रोका जाय, तो अन्तमें अनुत्पादक मूर्खोंकी एक जाति ही बस जायेगी। ईसाई धर्मानुकूल विवाह वैध नहीं है, बल्कि मानवकी दुर्बल प्रकृतिके लिए वह एक रियायत (Concession) है। यदि हम इस रियायतका सदुपयोग न करें, तो वह दुर्बल प्रकृति मनुष्योंको और दुर्बल कर दे।

डार्विनकी तरह अनेक मनीषियोंने विकासके क्षेत्रमें अनुपम कार्य किया है। उन लोगोंकी खोज अवश्य ही ध्यान देने योग्य है। यद्यपि वे सर्वांशमें इतना पूर्ण नहीं थे कि उनमेंसे किसी एकको भी अपनाकर अपने कण्टकाकीर्ण पथको छमन-संकुल किया जा सके, तथापि उनके खोजे हुए एक-एक सत्यको लेकर अपनी रिक्तताको भरकर पूर्णताकी ओर हम अग्रसर हो सकते हैं। एथेन्स दर्शनका पीठ था, जहां महर्षि छकरातकी अध्यात्म-ज्योति पथ-भ्रष्टोंके लिए पथ-प्रदर्शिका थी। उन्होंने जनताको सोची-सोचाई कोई आज्ञा या निर्णय नहीं दिया। स्वयं निर्णय करनेके लिए प्रवृत्त किया। हर बातकी नाप-तोल करना उन्होंने सिखलाया। विवेक शक्तिको दिया नहीं, वरन् उसे जगाया। किन्तु प्रत्येक मनुष्य ज्ञानके इतने ऊंचे स्तर पर न रह सकनेके कारण पूर्णतः इससे लाभान्वित न हो सका। फिलस्तीन भी धर्मका पीठ था। ईसाने यद्यपि दया, क्षमा, सहिष्णुता, धैर्य आदि सद्गुणोंसे मानवका अत्यधिक कल्याण किया, तथापि कुछ खटकने योग्य बातें रह गयीं, जिनसे अनेक मत-मतान्तर निकल पड़े। ईसाने मनुष्यके हाथमें न्याय नहीं दिया। एक गालपर थप्पड़ मारनेवाला दूसरे भी गालपर थप्पड़ मार ले, देखने वाला प्रभु है। कृत दोषोंसे मुक्तिको उन्होंने आसान बतलाया, तथा स्वर्ग-नर्ककी कल्पना की। उनका ध्यान वस्तुओंकी प्रकृति (Nature of things) की ओर तथा कारण और कार्य (Cause & effect) की ओर नहीं था। गौतम बुद्धने काम क्रोधादिसे छुटकारा दिलानेमें, अहिंसा-जैसे सर्वोच्च सिद्धान्तके प्रसारमें संसारका बड़ा कल्याण किया। किन्तु युवा अवस्थामें संन्यास लेकर निकल पड़ना और अपनी सभी आवश्यकताओंके लिए दूसरे पर निर्भर रहना बौद्धमतके भावी दूषणोंका निमन्त्रण था।

इस प्रकार हमने प्राचीन धर्म-गुरुओंके गुण दोषपर विचार कर लिया। आज हम उनसे जितना लाभ उठा सकें, उठा लें। साथ ही अपने अनुसन्धानके कार्यको भी मन्द न पड़ने दें, कारण और कार्यकी अधिकसे अधिक वैज्ञानिक मीमांसा करें, फैले हुए मत मतान्तरोंकी कड़ी परीक्षा करें। और इस प्रकार आचार (Ethics) का अत्यधिक विकास कर जीवनको सफल बनायें।

गीत

क्यों धीरज छूटा जाता है ?
घुट-घुट कर स्वांसें रह जातीं,
आंखें जल-धारा बरसातीं।
अन्तरमें तूफान उठा क्यों,
मन मेरा डूबा जाता है।
खोयी-खोयी-सी मैं पथपर,
खोज रही हूं क्या छिप-छिपकर।
किसकी दग्ध-स्मृतिमें मेरा,
जग-बन्धन टूटा जाता है।

सबल विश्व दुर्बलको कसकर,
पोंछा करता आंसू हंस कर।
पीड़ा देकर—प्यार हृदयका,
अनजाने लूटा जाता है।
है अपना या कौन पराया,
यह सब दिन ढलतेकी छाया।
किसका हो विश्वास स्वयं जब,
मन अपना रूठा जाता है।
क्यों धीरज छूटा जाता है ?

—होमवती

विद्रोहिनी

श्रीमती उषादेवी मित्रा

(१)

परीक्षा फल जानते समय भी कदाचित परीक्षार्थीके मनका चाञ्चल्य वैसा दुर्निवार नहीं होता है—जैसा कि उस समय उस शहर निवासियोंके मनमें हो उठा था।

शहरके छोरमें सिक्खोंका प्रकाण्ड मठ और पथके उस पार ठीक मठके सामने राजपुरी-सी अट्टालिका। भीड़ लगी हुई थी, अट्टालिकाके प्रवेश द्वारपर। सङ्गीतकी सुमिष्ट, अस्पष्ट ध्वनि वायुकम्पमें मिलकर एक कम्पनकी भांति जनता-में स्पन्दित हो उठती—"लागे तोसे नैना—"

जनताको हटाती हुई मठके महन्त नीलकण्ठकी हथिनी आगे बढ़ी। सिक्ख-संन्यासियोंने आगे बढ़कर भीड़को हटाना चाहा, और उस कोलाहलमें नीलकण्ठका गुरु-गम्भीर स्वर ध्वनित हो उठा—"यहां भीड़ क्यों है? तुम लोग यहां क्या कर रहे हो?"

महन्तके स्वरसे परिचित जन भय-शङ्कासे कांप उठे। हाथ जोड़ कर एक व्यक्ति सामने खड़ा हो गया, बोला—"गाना सुन रहे थे, प्रभु।"

"गाना; किसका गाना?" नीलकण्ठने उस प्रासादकी ओर आंखें उठायीं, विस्मयसे पूछा—"क्या इस प्रेतावासमें कोई नयी बात हो गयी है?"

"आज्ञा महाप्रभु, वर्षोंके बाद एक नर्तकीने डेरा डाला है।"

उतावलीसे दूसरा कह उठा—"नर्तकी? नहीं, अप्सरा कहो रमेश, वैसा सौन्दर्य, वैसा ललित कण्ठस्वर मानवीमें सम्भव कहां?"

आरक्त नेत्रोंसे द्वितीय वक्ताको देखकर नीलकण्ठने लल-कारा—"चुप रहो। हां, क्या कहा रमेश? नर्तकी? कब आयी और कहांसे आयी?"

"सुना है, किसी दूर देशसे आयी है मायापुरी, उन्हें आये अभी तीन ही चार दिन तो हुए।"

"इस मकानमें तीन-चार दिनसे वह रह रही है? और प्रेतका उपद्रव—" सहसा मध्य पथमें नीलकण्ठ चुप हो गया, विस्मयके मुक्त रूपके सामने जैसे उसका स्वर दब-सा गया। पुरीके उन्मुक्त वातायनसे नारी-कण्ठ-निसृत सुस्वर लहरी वैसे ही विश्वकी वायुमें जीवनकी स्फूर्ति भरने लगी—"जबसे देखी तोरी सांवली सुरतिया।"

सङ्गीतका वह पद, नारीका वह स्वप्नातुर स्वर नील-कण्ठके संयमी चित्तपर पदचिह्न आंक पाया या नहीं, यह उस आकृतिको देखकर समझ सकना जिस प्रकार कठिन था, ठीक उसी प्रकार सहज-बोध्य हो रहा था जनताके चित्तके चाञ्चल्यको समझ सकना। तीक्ष्ण दृष्टिसे जनताको देखते हुए नीलकण्ठने कहा—"तो आज इस नगरका धर्म-कर्म मठमें आवद्ध नहीं है, एक तुच्छ नर्तकीके द्वारपर आवद्ध है, यही समझूं न?"

"मायापुरी नर्तकी हैं अवश्य, परन्तु तुच्छ नहीं। उनका दर्शन कल मुझे हठात् ही गोमतीके किनारे मिल गया था, रवि-किरण-सी तेजस्विनी, सावित्री-सी पवित्र हैं वह, प्रभु।" मठका संन्यासी सुमेरु अकारण ही कह उठा।

उत्तप्त होते हुए भी नीलकण्ठ जाने क्यों शान्त स्वरसे बोला—"ऐसा।" और फिर जैसे विस्मयके घेरेमें जकड़ा वह चल पड़ा—मठकी ओर।

(२)

कभी किसीने कहा था—मानवकी एकान्त किन्तु मिलित इच्छा कहीं विनाशहीन हुआ करती है। कदा-चित इसी कथनके प्रमाण स्वरूप अथवा और कुछ हो, एक दिन मायापुरीके स्वर्ण नूपुरने रामधनुषके सातों रङ्गको आकार विशिष्ट कर दिया—मठके उस प्रशस्त प्राङ्गणमें। मठके वास्तरिक उत्सवमें आगत शत-शत श्रोता उस सङ्गीत-नृत्यसे चित्रार्पितकी भांति रह गये। "सुन्दरी विश्वमें जाने कितनी ही हुआ करती हैं, परन्तु लालित्य पूर्ण ज्योति कभी देखा था तुमने?" जमींदारने अपने साथीसे पूछा।

"शापभ्रष्ट अप्सरा है।"

परन्तु जिसे लेकर प्रशंसा, स्तुति वादोंका मानिक सिंहासन रचा जा रहा था—वह थी निर्विकार, उन प्रशंसा आदिके स्तव-गानकी ओर शायद ही उसने भ्रूक्षेप किया हो।

स्वर्ण दीपकी राज कन्या-सी मायापुरी नूपुर झङ्कार करती हुई पहुंच गयी, नीलकण्ठके मञ्चके निकट। वृहत् प्राङ्गणके मध्यमें मञ्च, व्याघ्र छालपर उपविष्ट नीलकण्ठ। सामने नर्तकीके नृत्यके लिए स्थान, चारों ओर विपुल जनता।

जिस मायापुरीके दर्शनके लिए जनता उन्मत्त थी, उसी मायापुरीको महन्तने एकबार आंख उठा कर भी नहीं देखा। हाथकी पुस्तक बन्द कर आदेश दिया—"नृत्य बन्द करो। गान आरम्भ करो।"

और तब सन्ध्याकी मयूर-पुच्छ वेलामें लगी माया-माया-का मोह-जाल बुनने—"श्याम तोरी तिरछी नजर लागे।"

चारो ओर स्तब्धता थी। जनता आनन्द पुलकित हो रही थी और कदाचित संन्यासीका सर्वत्यागी चित्त भी एक बार मोह-मुग्ध हो पड़ा हो, तो कहा नहीं जा सकता, परन्तु दूसरे ही पल नीलकण्ठका विराग-विरक्त, रुष्ट स्वर ध्वनित हो उठा—"माधव,क्या यही तुम्हारी हैं सर्वसाजिनी गौरी? यही हैं तपस्विनीका तप-उज्ज्वल गीता गान?"

कम्पित कलेवर संन्यासी कर जोड़कर खड़ा हो गया—"इनकी देवी-सी आकृति मैंने देखी थी, और मेरी बातकी सत्यता प्रभुके सामने उपस्थित है। परन्तु गानके विषयमें दूसरोंसे सुना था।"

"दूसरोंकी बातोंपर विश्वास करना एक अपनी ही कमजोरी है। पवित्र मठमें पवित्रताका ही स्थान हो सकता है। रोको नर्तकीको।"

नृत्य-गीत जब पूर्ण स्फूर्तिमें उपस्थित था, उसी स्थिति में बाधा पाकर मायापुरीका मुख गम्भीर विस्मय, अपमान-से रक्ताभ हो उठा।

"रोको—रोको—नर्तकी अपने गानको।" महन्तने कहा।

वह खड़ी हो गयी, पूछा—"किन्तु इस अपमानका कारण जाननेके लिए मैं उत्सुक हो रही हूं, महन्त।"

"कारण? मठ-मन्दिर आदिका अर्थ समझती हो न?"

"कुछ-कुछ। विश्वमें व्यापी महापुरुषका स्थान।"

"ठीक है। और वहां—उस पावन स्थानमें भक्ति-श्रद्धा, प्रेमकी जगह हुआ करती है; लालसा, मोह, मदिराकी नहीं, कुत्सित वचन-विन्यास युक्त गीतका नहीं।"

"गानके शब्दोंमें लालसा आदिको कैसे और कहांसे ढूंढ़ निकाला है, आपने?"

उस धृष्टतापूर्ण वाद-प्रतिवादसे जनता सिहरी, नगरके प्रभु विशेष, राज-सम्मानसे सम्मानित, योगबल सिद्ध शिवतुल्य महन्त नीलकण्ठसे आज यह विद्रोहिनी नारी किस स्पर्द्धासे प्रश्न-उत्तर कर रही है?

"क्या आज एक नर्तकीसे नीलकण्ठको पाठ लेना पड़ेगा? गानके शब्द—"तिरछी नजर—"

बात काटकर मायापुरी बोली—"क्या भक्तको भगवान्-की दृष्टि प्यारी नहीं लग सकती है?"

"किन्तु नर्तकी, ईश्वरको प्रेमका रूप भी तो समझो।"

"प्रेमका रूप?" वह मुस्करायी।

"अवश्य।"

"तो प्रेमका रूप भी है? फिर वह होता कैसा है?" उस परिहासके प्रति दृष्टिपात तक न कर नीलकण्ठने कहा—"जिसे कि नर्तकी नहीं समझ सकती है। प्रेमका रूप है त्याग।"

मायापुरीके विद्रोही मनमें जैसे विद्रोहका ज्वाला-मुखी परिहासकी शिखामें फूट पड़ा। उङ्गलियोंको नचाती हुई वह कहने लगी—"रूप प्रेमका रूप, महन्त नीलकण्ठकी कल्पनामें प्रेमका रूप भी होता है, और जब वह कल्पना आगे भागती है, तो पकड़ लाती है त्याग को। तो मैं भी कहूँ—प्रेमका यदि रूप है ही तो वह पकड़ लाता है, विश्वासको—"

"सावधान, नर्तकी, यह कोई नाट्यशाला नहीं है।"

परन्तु माया वैसे ही झूम-झूम कर कह चली—"गिनिये सब भद्र जन, हां तो प्रेमका रूप है विश्वास, विश्वासका रूप है आनन्द, आनन्दका शान्ति, शान्तिका पूर्णमासी-सी स्निग्धता और—"

"बस करो नर्तकी।" नीलकण्ठके उस निषेध आज्ञाके सामने जैसे चन्द्र किरण-सी वह शान्त हंसी—"परन्तु महन्त नीलकण्ठ, प्रेमका भी कहीं रूप हुआ है? जो कि सनातन सत्य है, उसका भी कहीं रूप हुआ करता है? क्या वह मानव-मनकी कल्पना मात्र नहीं है,जो कि सनातन सत्यको रूप-रङ्ग-रससे भूषित करना चाहे?"

कठोरतर कुछ कहने जाकर नीलकण्ठ सहसा चुप हो रहा, हां तब जनता मायापुरीको घेरे खड़ी थी—वैसे ही जैसे कि हठात् ही उन्हें गौरीकी प्राप्ति हो गयी हो।

नीलकण्ठने मुंह फेर लिया, सङ्केत मात्रसे ग्राम्य लोगोंने सङ्कीर्तन आरम्भ कर दिया। उस सामूहिक सङ्की-र्तनमें नर्तकीकी आवाज डूब गयी।

(३)

काले-काले धब्बे, चारों ओर लोहूके छींटे। लोहूके छींटे? हंस पड़ी, मायापुरी—पड़ी-पड़ी पलङ्ग पर। कहां हैं लोहूके छींटे? भोरके प्रकाशमें उषा अपनी गुलालकी झोली खोल बैठी है न।

और वे काले धब्बे? और? हां, आंखके सामने हैं न,

उसके रातके सपनेका एक भग्न अंश, अतीत ? कदाचित ही अतीत आज सपनेका एक भग्न अंश मात्र ही हो। हो भी सकता है—आजके वातावरणमें मिलकर अतीत उसका भोरके रङ्गमें लोहूके छींटे ही क्यों न बन गया हो ?

रातका सपना ? नारी रूपका भिखारी एक, मलिन बसना नारी एक—भिक्षा-पात्र हाथमें, मांगती हुई भिक्षाद्वार पर। एक गोल शून्य, स्वप्नका देवता हंस पड़ता—टूटी-सी झोपड़ी एक, नवजात शिशु एक, ज्ञानशून्य भिखारिन एक, स्वप्न देवता चांदीका झरना हिलाता, वारण्ट लिये हाथमें पुलिस एक…।

द्वारपर मायापुरीके घन-घन आघात होने लगा। उठकर उसने द्वार खोला। संन्यासियोंपर दृष्टि पड़ते ही वह मुसकराई—"गान सुनने आये हैं आप लोग ? इस प्रातः वेलामें ही ? और छिपकर ही ? क्यों—महाशय, छिपकर किया अपराध पापकी परिधिसे बाहर होता है न ?"

"तुम बन्दिनी हो मायापुरी।"

मायापुरीका मुख कठोर हो उठा, मनमें मानों हजारों विद्रोहके दीप जल उठे, पूछा—"किसकी आज्ञासे ?"

"महाप्रभु नीलकण्ठकी आज्ञासे।"

"अपराध ?"

"नगरमें विद्रोह प्रज्ज्वलित करना, अपराध-लालसा उपजाना। चलो, देर मत करो, नगरवासी अभी सो रहे हैं।"

"याने जनताकी आंखोंके सामने अत्याचार करनेका साहस उस पाखण्डी बैरागीको नहीं है, यही न ?"

और जबतक मायापुरी संभले, तबतक संन्यासीगण उसपर लपके। नर्तकीने हंसते हुए कहा—"छुओ मत, चलो—मैं चलती हूं।"

मठके किस कमरेमें वह बन्दिनी थी, सो भी मायापुरी नहीं जानती थी, देखती थी एक कमरा और उसमें बन्दिनी वह, भोजनके लिए कुछ सामग्री, जल, सामान्य शय्या।

द्वार खुला, पहुंचा नीलकण्ठ, नर्तकीने उस ओर आंख उठाकर भी न देखना चाहा। केवल पूछा—"मुझे बन्दी क्यों कर रखा है ?"

"क्योंकि भक्ति-मार्गमें तुम लालसाको प्रज्ज्वलित कर रही हो।"

वह व्यङ्गसे मुसकराई—"तो क्या आज मुझे मानना पड़ेगा कि सङ्गीतके कुछ शब्दोंके लिए एक ऐसे मठके प्रभु एक नारीको निर्यातित करना ही अपना गौरव समझ रहे हैं ?"

"निर्यातित, मनुष्यको, नारीको निर्यातित ?"

"हां, वरन यों कहिये कि मनुष्यत्वको।"

"महन्त नीलकण्ठको एक नर्तकीके निकट आज उपदेश सुननेकी जरूरत है, यही कहना चाहती हो न ?"

"हानि ही क्या है ?"

"नर्तकी।"

जैसे उस कठोर आह्वानपर उपहास करती कह उठी मायापुरी—"किन्तु एक ही शब्दके अनेक अर्थ होते हैं, इस सहज बोधसे वञ्चित कब हुए नीलकण्ठ ?"

"मठके महन्तसे बात कर रही हो, नर्तकी, सावधान।"

यद्यपि क्रोधपूर्ण स्वर था नीलकण्ठका, यद्यपि उसके मठ-जीवनमें वही प्रथम बार था—किसीका उससे तर्क-वितर्क, व्यङ्ग-विद्रूप करना, उसके विरुद्ध विद्रोहकी सूचना करना, परन्तु फिर भी जिस परिमाणमें उसे उष्ण, कठोर होना था, कठोर दण्डकी व्यवस्था करना था, उस परिमाणमें वह कुछ भी नहीं कर सका। धीरे-धीरे नीलकण्ठ कमरेमें टहलने लगा। सहसा एक समय उसकी गति रुद्ध हुई, कहा—"इस धृष्टताका दण्ड जानती हो ?"

"प्राणदण्ड, क्योंकि नीलकण्ठकी पोथीमें मनुष्यका प्राण तुच्छ होता है। हां, उसके हुक्मतके नीचे।"

वक्र दृष्टिपात कर नीलकण्ठने कहा—"उपस्थित प्राण-दण्डके बदले तुम्हें इस देशको छोड़ देनेका आदेश दिया जा रहा है। चली जाओ।"

"क्यों ?"

"क्योंकि तुम इस मठमें विद्रोह फैलानेकी चेष्टा कर रही हो। सफल भी कुछ हो सकी हो, तुम पाठ दिया करती हो—"

"समझी, दूसरा प्रश्न है मेरा—मृत्यु-दण्ड क्यों नहीं दिया जा रहा है ?"

उस तेजस्वी प्रश्नके सामने संन्यासी जैसे अप्रतिभ हो गया। देरके बाद उसने कहा—"तुम इसी वक्त चली जाओ।"

मायापुरी खिलखिला पड़ी—"तुम नहीं कह सकते, तो मैं कह सकती हूं कि किसलिए प्राण-दण्ड नहीं दिया जा रहा है। मैं जानती हूँ।"

"बस करो, अपनी जानकारीको अपने ही पास रखो, जाओ।"

"नहीं।"

उस दृढ़ स्वरको सुनकर नीलकण्ठ जल-सा उठा—"इस आज्ञा उल्लङ्घनका क्या दण्ड है, जानती हो ?"

"जाननेकी जरुरत नहीं।"

नीलकण्ठका मुख कठोरतर- हुआ, ताली बजायी, खुले द्वारसे प्रधान शिष्य पहुंचा। नीलकण्ठने कहा—"इस अविनयी नर्तकीको आजीवन काल-कोठरीमें बन्द रखो।" आज्ञा देकर वह निकल गया।

(४)

मायापुरीके ऊपर-नीचे, आस-पास चारों ओर धूमिल प्रकाश। वायुकी गति अवरुद्धप्राय। वातायनके स्थानपर छोटे-छोटे, गोल-गोल छिद्र। उसी प्रकाशमें बैठी मायापुरी माया जाल-सा एक चित्र बनानेमें लगी हुई थी, चित्र समाप्तप्राय था कि द्वारके जञ्जीरमें झन-झनाहट उठी। मायाने उस ओर देख कर भी देखना न चाहा।

पहुंच गया नीलकण्ठ; न भूमिका थी, न वाक्य आडम्बर। कहा—"अब देश छोड़नेको तैयार हो न नर्तकी?"

"नहीं।"

"नहीं?"—अमिट विस्मयसे नीलकण्ठ स्तब्ध हो रहा। और जब कि वह कुछ कह सकने योग्य हुआ, तब नेत्र उसके हठात ही अटकसे रहे उस चित्र पर। देखा और फिर देखा, इस प्रकार वह कांप उठा—जैसे विषधर सर्पसे अचानक ही भेंट हो गयी हो—"तुम—तुम—कौन हो—तुम मायाविनी?" इसके बाद निकट जाकर मनोयोगसे नर्तकीको देखने लगा। मायापुरी चित्रमें तूलिका फेरती हुई वैसे ही मृदु-मुसकाने लगी।

चित्रमें—प्रसूति गृह, अचेतन सुन्दरी युवती, दण्डायमान युवक, शिशु, रक्तके लाल-लाल धब्बे।

नीलकण्ठ चीत्कार कर उठा—"तुम- तुम मायारानी तुम—।" इसके बाद महन्तके अचेतन शरीरको लेकर मायापुरी व्यस्त हुई।

नीलकण्ठने जब आंखें खोलीं, तब रात्रि बहुत बीत चुकी थी। शिष्य मण्डली उसे घेरकर खड़ी थी। मायापुरी सिरहाने बैठी पङ्खा झल रही थी। भय-आतङ्कसे महन्तने आंखें बन्द कर लीं। यदि नीलकण्ठ जानता कि उसके असीम साहसी मुखपर भय-आतङ्ककी छाया उस दिन किस प्रकार मूर्तिमान हो रही थी, एवं उस मुखने शिष्योंको किस विस्मयके सागरमें पहुंचा दिया है, तो शायद वह आत्म-हत्या ही कर लेता।

"गुरुदेव—गुरु—नीलकण्ठ।"—एक मत्त-विद्रोह जैसे धधक उठा उस कमरेमें।

"तुम लोग बाहर जाओ, मैं विश्राम करना चाहता हूं और मायापुरी पांच मिनट ठहरो।"—तब नीलकण्ठ सहम चका था।

निस्तब्ध गृह, सामने खड़ी हास्य मुखी मायापुरी।

"वह चित्र।"—नीलकण्ठके स्वरमें यदि भय था, तो प्रार्थना-विनय भी उसी परिमाणमें अवश्य ही थे।

"मेरे पास है।"

"अनुरोध, अन्तिम अनुरोध, नहीं-नहीं भिक्षा।"

"तो आज मैं नहीं, तुम भिखारी हो संन्यासी?"

वह चौंक उठा।

तब शान्त स्वरसे एक अन्तर्यामीकी भांति कहने लगी माया—"नहीं, तुम्हें भागनेकी जरुरत नहीं, वह चित्र मेरे अपने लिए है, न कि संसारके लिए, डरो मत।"

"अपने लिए।" वह अविश्वास मायाकी मलिन हंसी मात्र खींच ला सका।

"उसे बनाया है मेरे ही अन्तरकी विद्रोहिनी नारीने, मैंने नहीं, हां अपने ही लिए। क्यों? सो मैं कह नहीं सकती, शायद विद्रोहिनीका धर्म, स्वभाव ही विद्रोह करना हो। शायद उसका सन्तोष अपने विद्रोहके रूपको देखकर हो। हो सकता है, मनके विद्रोहको रूप-रङ्ग देकर संसारको नष्ट-भ्रष्ट करना चाहती हो। अथवा अन्तरकी दबी आगको वह जलाकर ही रखना चाहती हो।"

स्तब्ध आतङ्कसे नीलकण्ठ चुप रह गया। धीर-मन्थर गतिसे मायापुरी मठसे बाहर हो गयी।

आज भी रात्रिमें नीलकण्ठ चिल्ला उठता है—"बचाओ, बचाओ, जला दो उस चित्रको।" प्रधान शिष्य उसे जगा दिया करता है। "वह एक मिथ्या सपना था—" कह देता है महन्त नीलकण्ठ।

बाल्य-जीवनके आदि-प्रेरक

श्री पं० नन्दकिशोर तिवारी

(संस्मरण और विचार-धारा)

जीवनके चालीस वर्ष समाप्त करनेपर मनुष्य स्वभावतः अपने अतीतके उन शान्त और कोलाहलपूर्ण अध्यायोंकी झांकी करना चाहता है, जिनमें उसने भिन्न-भिन्न अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियोंके भीतर हार और जीतका निर्माण किया है। उस समय उसे इस बातकी प्रबल उत्कण्ठा हो उठती है कि वह अपने पिछले जीवनका एक खरीता तैयार करे और उसके द्वारा वह उसकी एक मधुर झांकी ले तथा साथ ही इस बातका अनुभव करे कि उसके पिछले आवेगों और उद्वेगोंने जीवनके चित्रपटपर कौनसे रङ्गीन-सादे, सुन्दर-असुन्दर, शान्त-तीव्र तथा प्रेम और घृणाके चित्र निर्मित किये हैं। उन चित्रोंको वह देखता है, प्यार करता है, चाहे वे असुन्दर ही क्यों न हों। पर उसका काम यहीं रुक नहीं जाता। वह आगे बढ़ता है, कल्पनाके सहारे। सोचता है—जीवनके नाटकमें अबतक जो कुछ भी अभिनय किया है, वह इस अनन्त-जीवन-शृङ्खलामें भविष्यके लिए कहां तक सहायक होगा। अतीतके सुन्दर और असुन्दर, दोनों ही रूप उसके लिए मधुर और प्रिय होते हैं, कारण वे उन क्षणोंकी प्यारी स्मृतियां हैं, जो एक बार जीवन-धारामें प्रवाहके आरोहकी भांति आयी थीं, पर जिन्हें महाकालकी परिधिने हमसे सदाके लिए छीन लिया है। चिन्तनकी इस गम्भीर शृङ्खलामें उसके सामने उस "महाकाल" का रूप खिंच जाता है और वह सोचने लगता है, उस महाकालके भीतर अर्घ्यके रूपमें विलीन होनेके लिए हमें किन रिक्त स्थानोंकी, किन अधूरे चित्रोंकी पूर्ति करनी है। वह समझने लगता है—जीवनके समस्त आवेश, यौवनकी सारी तीव्रता, हमारी मानवताकी समस्त विजय-पराजय, सभी अन्तमें मृत्युकी छायामें विलीन हो जायेंगी। वह अनुभव करने लगता है, जीवनकी ये सारी विभूतियां, उसकी समस्त भौतिक सफलतायें निःसार और तत्वहीन हैं और अमर-जीवनकी चिर-उपासनामें हमें उस सत्यका आश्रय लेना होगा, जो जन्म और मृत्यु दोनोंसे ही परे, दोनोंसे ही निर्विकार है, तथा जो हमें चिर-आनन्द, चिर-प्रकाशकी ओर प्रेरित करेगा।

जब कभी भी मैंने अपने अतीत-जीवनकी झांकी की है, मेरे मनमें जाने कितनी भावनायें अनायास ही और एक साथ ही उठी हैं। अतीत स्वभावतया मधुर होता है, पर एक चिन्तकके लिए उसकी सीमा मधुरता तक ही सीमित नहीं रहती। वह तो अपनी चिन्तन-धारामें सत्यकी कसौटीपर उस अतीतकी जांच करता है। जब कभी भी मैंने अपने सम्बन्धमें तथा अपने अतीतके सम्बन्धमें सोचा है—उसकी मीमांसा की है—मैं अपनी हंसी रोक न सका; पर उस हंसीके साथ मेरी आंखें बरबस बरस भी पड़ीं। कौतूहल, आश्चर्य, विस्मय और आत्म-सन्तोषकी मात्रा भी कम न रही है। वे पिछली बातें, वे अनेक पिछले कार्य, जिन्हें पूरी सचाई और इमानदारी तथा अधिकसे-अधिक गम्भीरतासे प्रेरित होकर किया, कभी-कभी ऐसे जान पड़ते हैं, जैसे उनके आदि-अन्तमें लड़कपनके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। किन-किन छोटी बातोंके लिए मचल पड़ता था, छोटी-छोटी अभिलाषाओंकी पूर्तिमें कितना आनन्द मिलता था—समस्त बचपन जैसे एक तमाशा, एक खिलवाड़ हो। और उसके बाद यौवन—मनुष्यका वह उन्मादकारी यौवन, जब प्रेमकी पागल-पुकारमें यह पुराना जर्जर संसार पूर्णतः नवीन बोध होने लगता है और जब कि शिशिरमें भी बसन्तके ऊष्ण निःश्वास कांप उठते हैं! प्रेमका उद्गम-स्थान, वह यौवन कितना मादक है। वह बरबस हमारी आंखोंके सामने रूपका उन्मुक्त प्रवाह खोल देता है और उस रूप-राशिमें हम अपने-आपको विलीन कर लेते हैं। मनुष्यने यौवनमें कितनी बार प्रेमकी आत्म-विस्मृतियोंमें अपने आपको खो दिया। उस समय यौवनके आवेग और प्रणयके आवेशमें यह आत्म-विस्मृति कितनी मधुर होती है। जान पड़ता है, जैसे मानव-जीवनका यह अन्तिम छल, अथवा उसकी चरम-सीमा हो। पर मनुष्य जब अधिक गम्भीर हो जाता है, तब वह भगवानकी दयासे प्रेम रूपी मायाके प्रपञ्च और मोहिनी-जालसे ऊंचा उठकर देखता है कि उस उन्मादकारी यौवन और मादक प्रणयका अन्त आनन्दकी आत्म-विस्मृतिमें नहीं, पर श्मशानकी उस धू-धू करती

हुई चितामें है, तो उसकी आंखें खुल जाती हैं। वह देखता है, जीवन और यौवनने जिस पुरुष और नारीको देव-दुर्लभ रूपके वरदान दिये थे और जिन रूपोंकी एक झांकी चित्तको उद्भ्रान्त करनेके लिए पर्याप्त थी……… मृत्युने उन मर-मिटने वाले रूपोंपर कितना घृणित और बीभत्स आवरण डाल दिया है। महाकालके आवर्त्तनमें मनुष्य-जातिकी असंख्य पीढ़ियां निकल गयीं। उन सभीने जीवनके सुख-दुख, यौवनके उन्माद और प्रणयको आत्म-विस्मृति देखी और अनुभव की थी। जन्मके पथसे निकल कर जीवन, यौवन और प्रणयकी अभिन्न-धाराओंसे जाते हुए, मृत्युके अमर-सत्यमें विलीन होकर हम जिस रहस्य-लोकको जाते हैं, उस पथके लिए यह यौवन और उसकी मादकता; यह प्रणय और उसकी आत्म-विस्मृति किस कामकी ? हमें तो जीवनके इन समस्त सङ्घर्षों में रहते हुए भी उनसे अनासक्त होकर उस सत्यके अञ्चल स्पर्श करने होंगे, जो हमें भावीके आत्म-निर्माण और अमर-प्रकाशकी प्राप्तिमें सहायक हों। अस्तु।

भगवानकी दया है, आज आस्तिक हूं। जीवनमें इस विश्वासका सबसे बड़ा सहारा है। इसी कारण आज जीवनके भिन्न-भिन्न सङ्घर्षों, उसकी अनेक अनुकूलताओं और प्रतिकूलताओंसे निर्द्वन्द्व हूं। आज तो श्रद्धा और विश्वास-का भी पाठ पढ़ सका हूं और उसकी उपयोगितासे प्रायः परिचित हूं। यह श्रद्धा और विश्वास मनुष्यके समस्त अशुभ, उसकी सारी बाधाओंको दूर कर देता है—ऐसा अनुभव होने लगा है। कभी नास्तिक भी था—घोर, भीषण अनियन्त्रित। सम्भवतः यौवनका समस्त पौरुष, उसका समस्त उन्माद उसीमें केन्द्रीभूत हो गया था। जीवनकी प्रचण्ड-धारा अचानक उसी शक्तिमें परिवर्तित क्यों हो गयी, यह नहीं जानता। केवल यही अनुभव करता हूं कि विजयके गौरवपूर्ण क्षणों और हारकी निराशाजनक घड़ियों-में जब कभी भी पथ-भ्रष्ट होनेका अवसर तथा प्रलोभन मिला है, भगवानने अपनी विशेष दयासे मुझे त्राण दिया है, जैसे किसी चमत्कारिक शक्तिने हाथ पकड़ कर मुझे सङ्कटसे छुड़ाया हो। जीवनके अनेक भीषण सङ्घर्षों में भी मुझे ऐसा लगा है, मानों कोई विशिष्ट शक्ति मेरी बाधाएं नष्ट कर मेरा मार्ग प्रशस्त कर रही हो। जब कभी भी जीवनमें विकासकी आवश्यकता हुई, मुझे प्रायः सभी अवसरोंपर प्रेरणाएं मिलती रहीं। इस प्रकार जीवनमें जो कुछ भी थोड़ा-बहुत आत्म-निर्माण कर सका हूं, उसका समस्त श्रेय चार उदारमना व्यक्तियोंपर है। उनमें अन्तिम तीन तो सार्वजनिक जीवनके प्रमुख व्यक्ति रह चुके हैं। बाल्य जीवन और तरुणायीमें पं० शिवगोविन्द मिश्र "नन्द" तथा स्वामी सत्यदेवने मेरे अज्ञात-जीवनमें जीवनके महान आदर्शोंकी ओर सङ्केत किया था। बादमें अर्थात् तारुण्यके उत्तर भाग और यौवनके प्रारम्भमें भाई परमानन्दजी तथा लाला लाजपतराय जी गुरुके रूपमें मिले। जीवनमें मान-वताने मेरे सम्मुख जो कुछ भी आदर्श रखा, इन्हीं चार श्रद्धास्पद और वन्दनीय गुरुजनोंके रूपमें। जीवनकी अनेकों त्रुटियां और अपूर्णतायें, जो आज मुझमें हैं, मेरी अपनी, मौलिक सम्पत्ति है। मैं उनके दायित्वसे भागता नहीं। भागनेकी शिक्षा मुझे आज तक मिली नहीं। युद्ध और सङ्घर्ष ही मेरे प्रारम्भिक और मध्यके जीवनके आभूषण रहे हैं। जीवनका अन्त, अपनी अर्चित शान्ति और प्रार्थनाके बीच भी इससे हीन न होगा, ऐसा सोचता हूं।

पं० शिवगोविन्द मिश्र "नन्द" उन अमूल्य रत्नोंमें थे, जिनकी नैसर्गिक स्निग्धता उन्हें समुद्रका अतल-तल छोड़कर संसारकी बाजारू दृष्टिमें नहीं आने देती। संसारमें उन वन्य-कुसुमोंकी कमी नहीं है, जो अपने सौरभ मरुभूमिमें निसृत कर कालकी सीमामें विलीन हो जाते हैं और जिन्हें संसारके सामने अपने गुणोंके प्रदर्शनकी लालसा कभी भी नहीं होती। पं० शिवगोविन्दजी मिश्र "नन्द" इन्हीं रत्नों और वन्य कुसुमोंमें एक थे। वे मेरे आदि प्रेरक थे। उनके पिता मेरे पिताके अभिन्न मित्र थे और वे भी मेरे बड़े भाईके अभिन्न मित्र थे, पर मेरा उनका पारस्परिक सम्बन्ध इन पारिवारिक सम्बन्धोंसे परे था। अवस्थामें वे मुझसे बहुत बड़े थे। जिस समय उन्होंने बी० ए० पास कर लिया था, मैं स्कूलकी नीची कक्षामें पढ़ता था। अवस्था और बुद्धि-भेदसे हमारा पारस्परिक सम्बन्ध स्कूलके एक अध्यापक और विद्यार्थीकी भांति था। उनका बड़ा लड़का मुझसे थोड़ा ही, कुछ वर्ष ही छोटा था।

"नन्द" जी अत्यन्त सरल और सन्त प्रकृतिके पुरुष थे। आचार, नैतिक बल और प्रार्थनामें उनकी पूरी आस्था थी और उन्होंने अपने जीवनको इन्हीं गुणोंके अनुकूल कर लिया था। अपने युगके वे बड़े अच्छे लेखक और विद्वान थे। हिन्दी और अङ्गरेजी साहित्यके अतिरिक्त ज्योतिष शास्त्रमें उनकी विशेष गति थी। हिन्दीके वे एक सफल लेखक तथा नाटककार थे, परन्तु ज्योतिष शास्त्रके वे एक महान् पण्डित थे। इसकी चर्चा हम आगे चलकर करेंगे।

बिहारके शाहाबाद जिलेके बक्सर सबडिविजनमें सोनवरसा नामक गांवमें आपका जन्म एक सम्भ्रान्त कुलमें ६ जनवरी सन् १८८७ ई० में हुआ था। आपके पिता दानापुरमें रेलवेके एक ऊंचे कर्मचारी थे, अतः आपकी प्रारम्भिक और स्कूली शिक्षा दानापुरमें ही हुई। विद्यार्थी-जीवनमें ही आपने अपनी प्रतिभा और मेधाशक्तिसे लोगोंको आश्चर्यचकित कर दिया था। सोलह वर्षकी अवस्थामें आपने स्कूलकी शिक्षा समाप्तकर पटनाके बी० एन कालेजमें प्रवेश किया और चार वर्षोंके बाद वहांसे बी० ए० परीक्षा पास की। कालेजके अध्ययनके दिनोंमें आपने अपनी प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया। हिन्दी, संस्कृति और अङ्गरेजी साहित्यमें आपकी विशेष रुचि और गति थी, पर साहित्य-के इस प्रेमके साथ ही आपको गणित और विशेषकर ज्योतिषसे नैसर्गिक अनुराग था, मानो पूर्वजन्ममें ही आप-की इन विषयोंमें पर्याप्त गति रह चुकी हो। कालेजके अध्ययन-कालमें ही आप हिन्दी तथा अङ्गरेजीकी अच्छी कवितायें कर लेते थे और बी०ए० पास करते-करते ज्योतिष-के गणित और फलित, दोनों ही अङ्गोंमें आपकी विशेष गति हो चुकी थी। आप मूक-प्रश्नोंके उत्तर देनेमें भी सिद्धहस्त थे। यह ऐसी बात है, जिसपर आज-कलका संसार विश्वास करनेमें सङ्कोच करेगा, पर वस्तुतः बात ऐसी ही थी।

"नन्द" जी जिन दिनों कालेजमें पढ़ते थे, उन दिनों हिन्दीका न तो कोई अच्छा प्रचार ही था और न अधिक संख्यामें हिन्दीके लेखक और कवि ही थे। यह सन् १९०४-७ की अवधिकी बात है, जब कि 'सरस्वती' को निकले कुछ ही वर्ष हुए थे, और जब कि खड़ी बोलीकी कविताके आदि प्रेरक बाबू मैथिली शरणजी गुप्तने अपने काव्य-जीवन का प्रारम्भ ही किया था। उस समय बिहार, संयुक्त प्रान्त तथा अन्य हिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तोंमें उर्दूका बहुत अधिक प्रचार था। हिन्दीको लोग भाषाके नामसे पुकारते और बड़े-बूढ़ोंमें ऐसे लोगोंकी कमी न थी जो "भाषा" के नामसे नाक-भौं सिकोड़ते। स्कूलोंमें पढ़ने वाले हिन्दू विद्यार्थियोंमें ९० प्रतिशत ऐसे थे, जो या तो अपने अभि-भावकोंकी प्रेरणासे अथवा उस समयकी प्रथाके अनुसार उर्दू ही पढ़ते। यह बिहार प्रान्तकी बात है, जो हिन्दीका विशुद्ध प्रान्त माना जाता है। संयुक्त प्रांतकी तो बात ही निराली थी। वहां तो हिन्दू और मुसलमान सभी विद्या-र्थियोंके लिए प्रारम्भिक कक्षाओंमें हिन्दी और उर्दूकी शिक्षा अनिवार्य थी। आगे चलकर वे अपने इच्छानुसार हिन्दी या उर्दूमें कोई एक विषय ले सकते थे। फिर भी संयुक्त प्रान्तमें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा तथा "सरस्वती" के हिन्दी प्रचारपर भी सन् १९२० तक स्कूलोंमें पढ़ने वाले हिन्दू विद्यार्थियोंमें लगभग ७९ प्रतिशत ऐसे थे, जो हिन्दीके बदले उर्दू ही पढ़ते। इस दृष्टिकोणसे सन् १९०४ से सन् १९०७ की बात तो निराली ही थी। समस्त हिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तोंमें उर्दूका ही बोल-बाला था। वे दिन मेरी शिक्षाके प्रार-म्भिक दिन थे और आज मुझे रह-रह कर इस बातपर आश्चर्य होता है कि मेरे पिताने मुझे किस भांति स्कूलमें हिन्दी लेनेकी अनुमति दी। वे उर्दू और फारसीके अच्छे विद्वान थे और अङ्गरेजीमें भी उनका प्रवेश साधारण न था। उर्दू और फारसीके लिए उनके मनमें श्रद्धाके भाव थे और "भाषा" को वे एक प्रकार तिरस्कारकी ही दृष्टि-से देखते। जब वे मुझे अङ्गरेजी पढ़ाते, अङ्गरेजी शब्दोंका अर्थ उर्दूमें ही बतलाते, जैसे फिलहकीकत, दरहकीकत, वाकेया हुआ आदि। हिन्दी साहित्यके लिए वह युग भविष्यकी उज्ज्वल आशा रखते हुए भी एक अत्यन्त अन्ध-कारमय युग था। उस समय "नन्द" जीने हिन्दीकी दर्जनों पुस्तकें लिखीं, जिनमें बहुत तो परिस्थितियोंकी प्रतिकूलतामें प्रकाशित न हो सकीं, पर कुछ उस समय बिहारकी एकमात्र प्रकाशक-संस्था 'खड्गविलास प्रेस' से प्रकाशित हुई थीं। आपके लिखे हुए नाटक "ऊषा-अनिरुद्ध", "द्रौपदी-चीर-हरण", "केशर-गुलबहार", "मोरध्वज" 'प्रह्लाद', आदि उस समय बिहार प्रान्तके रङ्ग-मञ्चोंपर बड़े चावसे खेले जाते थे। आप हिन्दीमें एक ऐसा पञ्चाङ्ग तैयार कर रहे थे, जिसे प्रत्येक व्यक्ति बिना कठिनाईके समझ सकता था और साथ ही उससे लाभ भी उठा सकता था। साथ ही आप हिन्दीमें ज्योतिष शास्त्रपर एक बहुत ही बड़ा और उपयोगी ग्रन्थ लिख रहे थे; पर इन कार्योंको अभी समाप्त भी न कर सके थे कि सन् १९२० ई० में ३३ वर्षकी अवस्था में आपकी मृत्यु हो गयी।

मैंने ऊपर इस बातकी चर्चा की है कि "नन्द" जी मेरे बाल्य-जीवनके आदि प्रेरक थे। बी० ए० पास करनेके बाद आपने अध्यापकका जीवन आरम्भ किया। विद्यार्थियों-के बीच आप बहुत ही प्रसिद्ध थे। आपके जीवनका परम उद्देश्य परहित व्रत ही था। अध्यापकके रूपमें आप अपनी सारी आय गरीब विद्यार्थियोंकी सहायतामें खर्च करते।

घरपर कुछ देनेकी चिन्ता नहीं रहती। सम्पन्न होनेके कारण घरकी चिन्तासे कुछ स्वतन्त्र भी थे। अध्यापन-जीवन आपने इसलिए पसन्द किया था कि आपकी ऐसी धारणा थी कि इस जीवनके द्वारा आप योग्य तथा देश-भक्त नवयुवकोंके जीवनका सुन्दर निर्माण कर सकेंगे, पर परिस्थितियोंसे विवश होकर अन्तमें आपको बिहार सरकारकी सब रजिस्ट्रारी स्वीकार करनी पड़ी। आपने ७-८ वर्षों तक इस कार्यको बड़ी योग्यतासे निभाया। आफिसके बादका समय आप साहित्य-सेवा तथा रोगियोंकी सेवामें व्यतीत करते। आप होमियोपैथीके एक सुन्दर अनुभवी और यशस्वी चिकित्सक भी थे। नैतिकता और परहित-व्रतसे पूर्ण आपका जीवन स्वयं अपना दृष्टान्त था। सदाचार और लोक-कल्याण आपकी चरम वासना थी। साहित्यानुराग और साहित्यिक अभिरुचिने आपकी इस जीवन-धारामें विशेष प्रगति की। आपका शील एवं सौजन्य अद्भुत था। जो भी आपके सम्पर्कमें आता, आपके गुणों-पर मुग्ध हो जाता।

"नन्द" जी यदि कुछ दिन और भी जीते होते, तो आजके हिन्दी-साहित्यमें अपेक्षाकृत अधिक गति और विकास होता, परन्तु भगवानको सम्भवतः यह बात स्वीकार न थी और अकालमें ही वे इस संसारसे चल बसे।

सन् १९१० ई० में प्रथम बार मुझे प्रेरकके रूपमें उनके दर्शन हुए थे। उस समय मैं बालकथा और स्कूलकी नीची कक्षामें पढ़ता था। "सरस्वती" भी देखनेको मिल जाती, पर अधिक कुछ समझ न पाता था। उनके दर्शन और स्वाभाविक स्नेहसे ही मुझे बहुत प्रेरणा मिली और मैंने मन-ही-मन निश्चय कर लिया कि जीवनकी सारी बाधाओंसे युद्ध करते हुए मैं अपनेको केवल साहित्य और लोक-सेवाके लिए ही अर्पित करूंगा। सन् १९१४ ई० में मेरी उनसे दुबारा मुलाकात हुई। उन दिनों स्कूलकी ऊंची कक्षामें मैं पढ़ता था। बहुत कुछ समझने लगा था। सरस्वतीमें प्रकाशित बाबू मैथिली शरणजी गुप्तकी कविताओंमें आनन्दका अनुभव भी करने लगा था, फिर भी जीवन जैसे उस तिनकेकी भांति मालूम होता, जो प्रवाहके सहारे डूबते-उतराते किसी अज्ञात दिशाकी ओर अनुद्देश्य जा रहा हो। उन्होंने मुझे जीवनकी बहुत-सी उपयोगी बातें बतलायीं और यह विश्वास अधिक दृढ़ कर दिया कि मानव-जीवनका परम उद्देश्य लोक-कल्याण ही है। उस समय ऐसा जान पड़ा जैसे जीवनकी स्वच्छन्द धाराको किसीने सहज स्नेह और करुणासे कल्याण-पथकी ओर सदाके लिए प्रेरित कर दिया—उसी भांति, जिस भांति आध्यात्मिक गुरु अपने प्रिय शिष्यमें अपने तनिक स्पर्शसे ही विद्युतकी असीम धारा प्रवाहित कर देता है और वह शिष्य अपने अभ्यन्तरका प्रकाश पाकर गुरुदेवकी कृपासे स्वयं ही जाग उठता है। यदि "नन्द" जीकी प्रेरणा न मिली होती, यदि उनके आदर्शकी एक स्थूल कल्पनाका चित्र अपने हृदयमें स्थापित न किया होता, तो सम्भवतः आजकी जीवन-धारा किसी दूसरी दिशामें प्रवाहित होती रहती। जीवनकी दुर्बलताओंके क्षणोंमें अथवा जीवनकी अशान्ति और अस्थिरताकी घड़ियोंमें उनकी सौम्यमूर्ति सदा आंखोंके सामने आ जाती है और उनकी प्रेरणायें पुनः नवीन हो जाती हैं। मालूम होता है जैसे उस आदि-प्रेरककी महान् आत्मा हमारे अभ्यन्तरको स्पर्श कर रही हो और हमें कल्याण-पथकी ओर एक नवीन आग्रह और नवीन आकर्षणके साथ प्रेरित कर रही हो। वह पाठ आज तक उसी तरह स्मरण है और उस समयसे आजतक निरन्तर एक ही दिशाकी ओर जा रहा हूं—श्रद्धापूर्वक, विश्वासके साथ और निष्कपट होकर। यह पथ सुगम नहीं है। सुगम जानकर इसमें पैर भी नहीं दिया था। आगसे खेलनेवाले इस पथका सबसे बड़ा विषय सङ्घर्ष ही रहा है। आज ऐसा प्रतीत होता है, मानो जीवनके सङ्घर्षोंमें पलकर स्वयं सङ्घर्षमय हो गया हूं और इसी वन्दनीय पथसे होकर इस संसारसे विदा मांगनी होगी। बाल्य-जीवनके मेरे वे प्रेरक आज इस संसारमें नहीं हैं। फिर भी ऐसा अनुभव करता हूं, जैसे वे अपने लोकसे मेरे इन सङ्घर्षोंके साक्षी हैं और साथ ही इस बातके भी साक्षी हैं कि युद्धमय—सङ्घर्षमय जीवनमें सत्य, श्रद्धा और विश्वास ही मेरा साथी रहा है। इन सङ्घर्षोंकी कहानियां कम मनोरञ्जक नहीं हैं—मर्मस्पर्शी भी! वे अनेकों लेखकी सामग्री होंगी। जगतकी स्थूलतामें वे प्रकट होंगी या नहीं, मैं नहीं जानता; पर उनके अज्ञात और अप्रकाशित रूपको भगवानके चरणोंमें अर्घ्य रूपमें समर्पित करनेमें आनन्द और सुखका अनुभव करता हूं।

पत्रकार-कलाके शिक्षणकी व्यवस्था

हिन्दी पत्रकार-कलाके शिक्षण तथा हिन्दी पत्रकारोंकी आर्थिक तथा अन्य हित-साधनकी चर्चा आजकल हिन्दी-संसारमें होने लगी है। लोग भारतीय और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिके महत्वपूर्ण परिवर्त्तनों तथा विश्व-राष्ट्रोंकी वैयक्तिक और सामूहिक विचार-धाराओं तथा उनकी प्रतिक्रियाओंकी गहराईमें जानेका प्रयत्न करने लगे हैं। भारतीय तथा हिन्दी भाषा-भाषी जनता आज इस बातका अनुभव करने लगी है कि समयकी दौड़में आगे बढ़नेवाले राष्ट्रोंके मुकाबलेमें अपनी स्थिति दृढ़ रखनेके लिए इस बातकी विशेष आवश्यकता है कि भारतीय जनताको युग-धर्म तथा युगकी क्रान्तिकारी विचार-धाराओंसे केवल अवगत ही न कराया जाय, वरन् युगकी परिवर्तित परिस्थितियोंके अनुसार आगे कदम बढ़ानेके लिए उन्हें प्रेरित भी किया जाय। इस कार्यके लिए आजके आधुनिक युगमें पत्रोंका बहुत महत्व है। पत्रोंके द्वारा ही हम राष्ट्रीय प्रगतिको भली-भांति कायम कर सकते हैं, तथा भारतीय एवं प्राच्य संस्कृतिकी सुदृढ़ आधार-भित्तिपर अन्तर्राष्ट्रीय विचार-धाराओंकी उपयोगिताका व्यावहारिक रूप दे सकते हैं। इसलिए आज इस बातकी विशेष रूपसे आवश्यकता है कि हम भारतकी राष्ट्र-भाषा हिन्दीकी पत्रकार-कलाको विशेष रूपसे उन्नत और परिष्कृत करें, तथा साथ ही उसके शिक्षणकी सुन्दर व्यवस्था करें, जिससे कि इस क्षेत्रमें आने वाले प्रतिभाशाली नवयुवकोंको इस विषयकी अनिवार्य शिक्षा सुन्दर ढङ्गसे मिल सके और पत्रकार-कलाके लिए उनका मार्ग प्रशस्त और निर्बाध हो जाय।

उपरोक्त शुभ विचारसे प्रेरित होकर "विश्वमित्र" के सञ्चालक बाबू मूलचन्द्रजी अग्रवालने "विश्वमित्र" की रजत-जयन्तीके अवसरपर हिन्दी-पत्रकार-साहित्य-सेवी कोषमें दश हजार रुपये दान दिये थे। उस समय उन्होंने इस बातकी भी घोषणा की थी, कि उपरोक्त रकम सङ्कट-ग्रस्त हिन्दी-साहित्य-सेवियोंके लिए तथा पत्रकार-कलाके शिक्षणके निमित्त व्यय की जायगी। कोषके मन्त्री श्रीकृष्ण-चन्द्रजी अग्रवाल बी० ए० ने बाबू मूलचन्द्रजीकी प्रेरणासे पत्रकार-कलाके शिक्षणके लिए पहली जून, सन् १९४४ ई० से एक सुन्दर व्यवस्था की है। इस व्यवस्थाके अनुसार हिन्दी और अङ्गरेजीकी अच्छी योग्यता रखनेवाले पत्रकार-कला-प्रेमी युवकोंको छात्र-वृत्ति देकर लाहौर, दिल्ली, झांसी, कानपुर, बनारस, पटना, नागपुर, बम्बई और कलकत्तामें शिक्षणकी व्यवस्था की जायगी। तीनसे छः महीनेमें योग्यता सम्पादन कर लेनेपर स्थायी नौकरी दिलानेका प्रबन्ध किया जायगा। शिक्षण-कालमें तीस रुपये मासिक मिलेंगे। नौकरी पचास रुपये मासिकसे प्रारम्भ होगी और योग्यतानुसार पचहत्तर रुपये प्रतिमास तथा इससे अधिक होती जायगी।

यह एक शुभ प्रयत्न है और हिन्दी पत्रकार-कलाके प्रेमी नवयुवकोंको पत्रकार-कलाके व्यवहारिक ज्ञानकी प्राप्तिके लिए सुन्दर साधन है। आज तक इस प्रकारका कोई प्रयत्न हिन्दी संसारमें नहीं हुआ, यद्यपि आजसे वर्षों पहले ही इसकी परम आवश्यकता थी। इस सम्बन्धमें हर्ष की बात यह है कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन पत्रकार-कला-की परीक्षा ले रहा है तथा काशी नागरी प्रचारिणी सभा विद्यापीठ स्थापित करनेमें हाथ बंटानेको तैयार है।

हमारी आन्तरिक इच्छा है कि हिन्दी पत्रकार-कलाके शिक्षणके लिए नियमित रूपसे एक सुन्दर और साधन सम्पन्न विद्यापीठकी स्थापना हो। ऐसे तो बीस करोड़

हिन्दी भाषा-भाषी जनताके लिए कमसे कम हिन्दी बोलने वाले सभी प्रान्तोंके बड़े-बड़े नगरोंमें तथा कलकत्ता, बम्बई, करावो, मद्रास जैसे अहिन्दी प्रान्तों व नगरोंमें भी हिन्दी पत्रकार-कलाके शिक्षणके निमित्त अलग-अलग विद्यापीठोंकी आवश्यकता है। फिर भी भारतमें यदि आज एक भी साधन सम्पन्न विद्यापीठ हो जाय, तो एक बहुत बड़े अभाव-की पूर्ति हो जाय। हमें यह बात विस्मरण नहीं करनी चाहिये कि इस युद्धने बहुत अंशोंमें आजके संसारकी काया-पलट कर दी है और इसका अन्त होते ही हमें अपने तथा विश्वके भावी निर्माणकी अगणित आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए तैयार रहना पड़ेगा। वर्त्तमानकी इस तैयारी और भविष्यके कार्यक्रमका एक महत्वपूर्ण दायित्व हिन्दीके पत्रों और पत्रकारोंपर ही होगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। यदि बाबू मूलचन्द्रजी अपनी वृहद शक्ति, प्रभाव और अनुभवके द्वारा कलकत्ते अथवा काशी, किसी भी स्थानमें पत्रकार कलाके शिक्षणके लिए एक सुव्यवस्थित और सुसम्पन्न विद्यापीठको स्थापित करनेका महान् दायित्व अपने हाथमें लें, तो हमारा ध्रुव विश्वास है कि भारत और हिन्दी संसारके लिए उनकी यह सेवा सर्वथा मौलिक और निराली होगी।

समालोचना

पत्रकारकी आत्म-कथा—लेखक श्री मूलचन्द्रजी अग्रवाल, प्रकाशक श्री कृष्णचन्द्रजी अग्रवाल बी० ए०, "विश्व मित्र" कार्यालय, कलकत्ता; मूल्य सवा रुपया। "पत्रकार की आत्म कथा" हिन्दी साहित्यमें अपने ढङ्गकी पहली पुस्तक है—करुण, तीव्र, ओजस्वी, मर्मस्पर्शी और कहीं-कहीं हंसाकर लुढ़का देनेवाली। बाबू मूलचन्द्रजी हिन्दी-संसारके एक सफल पत्रकार और सफलतम पत्र-सञ्चालक हैं, परन्तु सफलताके इन वरदानोंके अन्तःकोष्टमें जीवनकी कितनी करुणा, कितना भीषण अभिशाप और कितने दारुण हाहाकार छिपे हैं, इसकी चर्चा इस पुस्तकमें सरल और ओजपूर्ण भाषामें की गयी है। आठ वर्षके बाल्यकालसे यौवनके सुनहले प्रारम्भ तक जीवनके जिन रक्त-कणोंका निर्माल्य आजकी सिद्धिके लिए समर्पित किया गया था, उसका सुन्दर मनोवैज्ञानिक विश्लेषण "आत्म कथा" में है। साथ ही इस विश्लेषणमें एक मौलिकता है। साधक अपना अभीष्ट नहीं जानता, स्वप्नमें भी वह जीवनके सुनहले वरदानोंकी तृष्णा नहीं पालता, आजकी स्वर्ण-सिद्धिकी कल्पनासे वह सर्वथा अपरिचित है। वह एक बीहड़ साधक है, भाग्यकी दारुण परिस्थितियोंका वह ठीक वस्तुस्थितिके रूपमें स्वागत करता है। उसका सङ्घर्ष जीवनके अस्तित्वकी रक्षाके लिए है, पर साथ ही उसका सङ्घर्ष जीवनकी परम साधनाके लिए है और फिर भी उस सङ्घर्षकी अपनी विचित्रता, अपनी मौलिकता है। साधककी परम साधना उसकी दृढ़ नैतिकता, उसके रक्त-अर्घ्यमें ही है—किसी स्वर्ण भविष्यकी चिन्ता उसके संयमशील चित्तको चञ्चल नहीं करती।

"आत्म कथा" के पढ़ लेनेके बाद मनकी चिन्तनधारा नैसर्गिक रूपसे उस स्वर्गीय, परन्तु अमर रूसी कलाकार गोर्की के जगत-जीवनकी ओर आकर्षित हो जाती है, जिसने "आत्म-कथा" के लेखककी भांति जीवनकी दारुण-निर्धनता और भीषण हाहाकारमें पद-पदपर ठोकरें खाकर अपना आत्म-निर्माण किया था। परन्तु गोर्की और मूलचन्द्रजी-के आत्म-निर्माणमें अन्तर है—वही जो रूस और भारतके बीच। गोर्कीकी आत्मा जीवनके भौतिक वैषम्यसे कांप उठी थी। अपने जीवनके कटु सङ्घर्षों में उसने जिस स्वर्ण-भविष्यकी कल्पना की थी, वह भौतिकवाद तक ही सीमित था। मूलचन्द्रजीके सङ्घर्षोंमें आदिसे अन्त तक नैतिक बलका आश्रय रहा है। जीवनकी कटुताओंने उनकी नैतिकताको साहस और शक्ति प्रदान की है।

"आत्म-कथा" वस्तुतः बहुत ही आकर्षक, मनोरञ्जक और उपयोगी ग्रन्थ है। एक बार प्रारम्भ कर देनेपर बिना अन्त किये मनको शान्ति नहीं मिलती। प्रारम्भिक अंश इतना मार्मिक है कि कठोरसे कठोर हृदय भी अपने आंसू नहीं रोक सकता। मूलचन्द्रजीने जिस नैतिक बल और अभिमानसे अपनी भीषण दरिद्रताका वर्णन किया है, वह सर्वथा असाधारण और मौलिक है। कोई भी साधारण व्यक्ति अपनेमें अधिकसे-अधिक साहस सञ्चय कर भी इतनी स्पष्टता और गौरवके साथ अपने जीवनकी मार्मिक परिस्थितियोंका इतना सत्य रूप नहीं दे सकता।

आत्म-कथामें एक बड़ा अभाव है। वह यह कि लेखकने अपने लम्बे सार्वजनिक जीवनके अनुभवोंपर भली भांति प्रकाश डालनेका प्रयत्न नहीं किया। मूलचन्द्रजीके ये अनुभव हिन्दी पाठकोंके लिए बड़े कामकी चीज होते।

"आत्म-कथा" हिन्दी-साहित्यमें अपने ढङ्गका यह मौलिक प्रयास है। पुस्तककी समस्त आय हिन्दी पत्रकार साहित्य-सेवी कोषको प्रदान की जायगी। आशा है, हिन्दी संसार इस अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थको अपनायगा।

—नन्दकिशोर तिवारी

"वेदना"—लेखक श्री विश्वनाथ सिंह शर्मा, प्रकाशक सत्साहित्य-प्रसारक मण्डल, नम्बर ३९।१, विवेकानन्द रोड, कलकत्ता, मूल्य २।।) रुपया।

इसमें लेखकने समाजके सामने कितने ही महत्वपूर्ण आवश्यक प्रश्नोंको उपन्यासके रूपमें उपस्थित किया है। लेखकके हृदयमें सामाजिक क्रान्तिकी भावना पूर्णरूपेण जागरूक है। समाज-व्यवस्थामें परिवर्त्तनकी बहुत बड़ी आवश्यकता है और "वेदना" इसका पूर्ण पक्षपाती है। सच तो यह है कि जिसे समाज अवहेलनाकी आंखोंसे देखता है, उसे सहानुभूतिकी दृष्टिसे देखनेकी चेतावनी देते हुए 'वेदना' की सृष्टि की गयी है। समाजका सुसङ्गत-सजीव चित्र आपकी लेखनीका चमत्कार है। कथानक मार्मिक एवं मनोहर है। इसमें सन्देह नहीं कि पुस्तक पढ़कर किसी भी सहृदय मनुष्यके हृदयमें वेदनाकी हूक उठ सकती है और यह हूक लेखकके हृदयसे उठी भी है। समालोच्य पुस्तक वर्तमान समाज वादियोंके बड़े उपयोग की है। न तो इस पुस्तकमें क्रान्तिका भावुकतापूर्ण राग अलापा गया है और न लचर दलीलोंपर वर्तमान मनोवृत्तियोंका समर्थन ही किया गया है, किन्तु समाजकी अछूत सम्बन्धी कठिनाइयां बड़ी खूबीसे धर्मको सामने रखकर हल की गयी हैं। वेदनाको प्रकाशित करके शर्माजीने सचमुच समाज-पतियोंको बुद्धिसे काम लेनेका सङ्केत किया है। वे अपने इस प्रयासमें सफल हों, यही हमारी हार्दिक इच्छा है।

"जीवन-नैया"—लेखक श्री विश्वनाथ सिंह शर्मा, प्रकाशक सत्साहित्य—प्रसारक मण्डल नम्बर ३९।१, विवेकानन्द रोड, कलकत्ता। मूल्य ३।।) रु०।

"जीवन-नैया" शर्माजीका मनोरञ्जक, मौलिक उपन्यास है। उपन्यासका प्लाट बहुत सिलसिलेवार भाषा, परिमार्जित एवं अश्लीलताका नामोनिशान न होनेपर भी इसमें मनोरञ्जनकी काफी सामग्री है। यदि लेखकको समय और साधन मिले, तो इस लाइनमें यह अच्छा नाम पैदा करेंगे, इसमें सन्देह नहीं, कारण इनमें चरित्र चित्रण और विश्लेषण करनेकी क्षमता तथा योग्यता है।

जन-साधारणके जीवनकी व्याख्या "जीवन-नैया" की आत्मा है। लेखककी सूक्ष्म कल्पनामें भी अतिरञ्जनाका सर्वथा अभाव ही है, यह एक बहुत बड़ी खूबी है। चरित्र-चित्रण और वस्तु-विधानमें सर्वत्र उपयुक्त सामञ्जस्य देखनेमें आता है। शर्माजी यथार्थताकी भित्तिपर आदर्श संसार-की कल्पना करते हैं। तथा कला केवल कलाके लिए नहीं है, इस तथ्यका स्पष्टीकरण करते हुए वास्तविकताके अङ्कमें आनन्दका अनुभव करते हैं। सचमुच आपकी इस विचार-धारासे हिन्दी-साहित्य तथा हिन्दू समाजका अत्यधिक कल्याण होगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। पुस्तक-के बाहरी आकार-प्रकार तथा अन्तर, दोनोंमें गुरुता है। भाषा परिमार्जित मुहावरेदार तो है ही, पुस्तककी छपाई और सफाई आकर्षक है।

—ललिताप्रसाद वर्मा
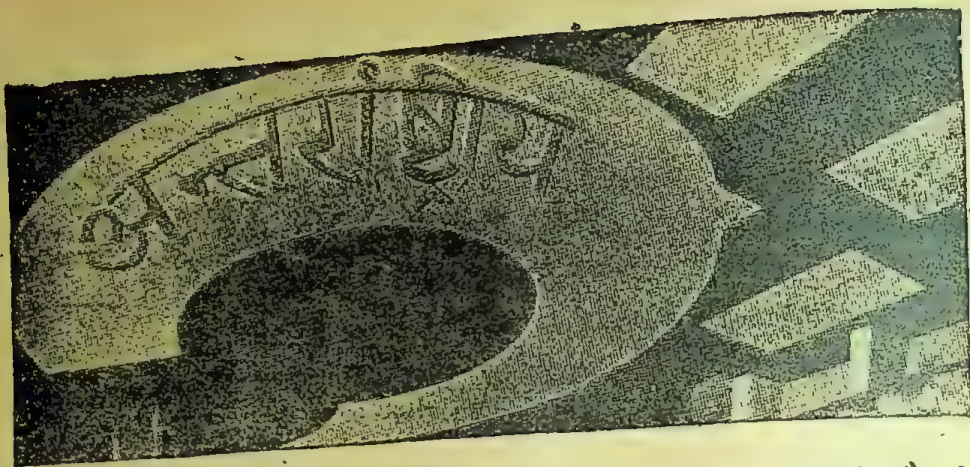
फिनलैण्डने रूसी शर्तें क्यों अस्वीकार कीं ?

रूसी शर्तें—

हालमें ही फिनलैण्डकी सरकारने सोवियट सरकारकी सन्धि-शर्तें दो बार अस्वीकार कर दीं। पहली बार कुछ महीने पूर्व जब सोवियट सरकारने फिनलैंडको आत्म-समर्पण करनेको कहा, उस समय अमेरिकाकी ओरसे फिनलैण्डपर काफी दबाव डाला गया कि वह रूसी शर्तें मान कर रूसके सामने घुटने टेक दे। प्रेसिडेण्ट रूजवेल्टने तो फिनिश सरकारको आत्म-समर्पणके लिए धमकियां भी दीं। पर इन धमकियोंका फिनिश सरकारपर कोई प्रभाव न पड़ा। उसने रूसी शर्तोंका अध्ययन किया और अस्वीकृत कर दिया। पर रूसने अपना प्रयत्न बन्द नहीं रखा। उसने फिनलैण्डके सामने कुछ परिवर्तित शर्तें रखीं। वे शर्तें संक्षेपमें इस प्रकार हैं :—

(१) फिनलैण्ड जर्मन सरकारसे राजनीतिक सम्बन्ध विच्छेद कर दे और फिनलैण्ड-स्थित जर्मन सेना और युद्ध-बेड़ोंको या तो गिरफ्तार कर अपने अधिकारमें कर ले अथवा शीघ्र ही उन्हें फिनलैण्डसे हटा दे।

(२) सन् १९४० की फिनिश-सोवियट सन्धि फिरसे चालू हो जाय और फिनिश-सेनाएं सन् १९४० की सीमामें चली जायं।

(३) युद्धकालीन सैनिक तथा नागरिक बन्दियोंका दोनों देशोंमें शीघ्र ही आदान-प्रदान हो जाय।

(४) वर्त्तमान फिनिश सेना ५० प्रतिशतके हिसाबसे भङ्ग कर दी जाय।

(५) फिनलैण्ड पांच वर्षोंमें रूसको हर्जानेके रूपमें ६० करोड़ डालर दे।

(६) पेटसामोका बन्दरगाह रूसको वापस कर दिया जाय।

(७) यदि उपरोक्त छः शर्तें फिनलैण्डको स्वीकृत हो गयीं, तो सोवियट सरकार हैंगोके बन्दरगाहपरसे अपना दावा बिना किसी हर्जानेके हटा लेगी।

अमेरिका और ब्रिटेनके कूटनीतिज्ञोंने रूसकी इन शर्तोंको उदार तथा अच्छा बतलाया है। उनके इस कथनका एक कारण भी है। वह यह कि आज जर्मनीको पराजित करनेमें रूस उनका साथ दे रहा है। कल जिस रूस और सोवियट सरकारको वे घृणाकी दृष्टिसे देखते थे, आज अपनी अनेकों भिन्नताओंके होते हुए भी वे उसको शह दे रहे हैं; कारण आज रूस उनके महान् उद्देश्यके साधनमें उनका सबसे महत्वपूर्ण साथी और सहयोगी है। वह महान् उद्देश्य है हिटलरकी नात्सी जर्मनीको पराजित करना।

कूटनीति अन्धी है—

कहते हैं, प्रेम और युद्धमें कोई भी बात दोषपूर्ण नहीं होती। इस पाश्चात्य लोकोक्तिके विपरीत यदि प्रेम और युद्धमें कोई बात दोषपूर्ण हो भी, तो निश्चय ही वर्त्तमान कूटनीतिमें तो दोष और गलतियोंकी सम्भावना ही नहीं। अभी अधिक दिन बीतने नहीं पाये, जब कि फिनलैण्ड और रूस, दोनोंके ही प्रति अमेरिका और ब्रिटेनकी सरकारोंके भाव आजसे ठीक विपरीत थे। सन् १९३९ ई० के अक्टूबर मासमें रूसने अचानक अपने पड़ोसी फिनलैण्डके सामने ये दावे रखे :—

(१) फिनलैण्डके द्वीपोंमें, फिनलैण्डकी खाड़ीमें, रूसी नौ-सेनाके अड्डे बनाये जायं।

(२) फिनलैण्डके हैंगो बन्दरगाहपर भी रूसी कब्जा हो, तथा वहां नौ-सेनाके अड्डे बनानेका अधिकार सोवियट सरकारको मिले।

(३) पेटसामोका फिनिश बन्दरगाह रूसको दे दिया जाय।

इन मांगोंके अतिरिक्त सोवियट सरकारने फिनिश सरकारके सामने सीमा-सम्बन्धी और मांगे भी रखी थीं। फिनलैण्डने जब इन मांगोंमें कुछको अस्वीकार कर दिया, तो सोवियट रूसने सन् १९३९ के ३० वीं नवम्बरको फिनलैण्डपर आक्रमण कर दिया। उस समय अमेरिका और ब्रिटिश साम्राज्यकी भिन्न-भिन्न सरकारें रूसको कोसते थकती न थीं। फ्रांस उस समय स्वतन्त्र था। शीघ्र ही रूसके इस आक्रमणपर राष्ट्र-सङ्घका अधिवेशन आमन्त्रित किया गया और उसमें सोवियट रूसको आक्रमणकारी घोषित कर उसके विरुद्ध फिनलैण्डकी सहायता करनेकी अपील की गयी तथा ब्रिटेन, फ्रान्स, स्वीडन आदि देशोंने उसकी सहायतामें युद्ध-सामग्रियां भी भेजीं। इतना ही नहीं, १० मार्च सन् १९४० ई० को ब्रिटेन और फ्रान्सके प्रधान मन्त्रियोंने इस बातकी घोषणा की कि यदि फिनिश सरकार मददके लिए अपील करे, तो मित्र राष्ट्रोंकी एक लाख सेना उसकी मददके लिए भेजी जा सकती है। परन्तु स्केण्डीनेवियाके देशोंने, जर्मनीके भयसे इस सेनाको रास्ता देना स्वीकार नहीं किया, इसलिए अपील नहीं की गयी।

उस समयके मित्रराष्ट्रोंके पत्रकारों, राजनीतिज्ञों और पत्रों द्वारा रूसके विरुद्ध बहुत कुछ प्रचार किया गया। ब्रिटेन तथा फ्रान्सके पत्रोंमें ऐसे कार्टूनोंकी कमी न थी, जिनमें सोवियट रूसको एक विराट् राक्षसके रूपमें तथा फिनलैण्डको एक बावनेके रूपमें इस प्रकार प्रकट किया जाता था, मानो दोनों युद्ध-स्थलमें अपनी शक्तिका समतुलन कर रहे हैं। उन कार्टूनोंके नीचे लिखा रहता था—महान् राक्षस और बवनेकी लड़ाई। इस प्रकार तत्कालीन मित्रराष्ट्रोंकी ओरसे सोवियट रूसके विरुद्ध प्रचार करनेमें किसी प्रकारकी कोर-कसर न की गयी। उसके लिए अन्यायी, अत्याचारी, धोखेबाज, तथा अनेकों विशेषणोंका प्रयोग किया गया। बात भी कुछ ऐसी ही थी। सोवियट रूसको इस बातका तनिक भी अधिकार न था कि अपनी सीमाकी रक्षाके बहाने अपने एक छोटे पड़ोसी, तथापि स्वतन्त्र राष्ट्रके जल और स्थलके एक विशाल भागपर तथा उसके प्रमुख बन्दरगाहोंपर अधिकार करनेकी अन्यायपूर्ण मांग उपस्थित करे। विशेषकर उन परिस्थितियोंमें, जब कि फिनलैण्डके साथ रूसके पिछले सम्पर्कका इतिहास काला और बीभत्स है।

सन् १९४० की सन्धि—

अमेरिकाके राजनीतिज्ञों तथा प्रेसिडेण्ट रूजवेल्टने इस बातकी भरपूर चेष्टा की कि फिनलैण्ड रूसकी उपरोक्त शर्तों को मान ले। प्रेसिडेण्ट रूजवेल्टने तो धमकियोंसे भी काम लिया। ब्रिटेन यद्यपि फिनलैण्डसे युद्धकी स्थितिमें है और इस कारण अमेरिकाकी भांति ब्रिटेनऔर फिनलैण्डका राजनीतिक सम्बन्ध बना नहीं है, फिर भी ब्रिटिश और अमेरिकन कूटनीतिज्ञोंमें सोवियट रूस और फिनलैण्डकी समस्याके सम्बन्धमें एक ही राय है। दोनों ही देश चाहते हैं कि फिनलैण्ड सोवियट रूसकी अन्यायपूर्ण शर्तोंके सामने घुटने टेक दे— उन शर्तोंके सामने, जिसमें सन् १९४० की काली सन्धि भी सम्मिलित है।

पर यह काली सन्धि क्या है? छोटे फिनलैण्डने महान् रूससे चार महीनोंसे अधिक वीरतापूर्वक लड़नेपर जब यह देखा कि सोवियट रूससे अधिक दिनोंतक लड़ना सम्भव नहीं, तो उसे विवश हो, युद्ध बन्दकर आत्म-समर्पण करना पड़ा। फिर लड़ाई बन्द होनेके बाद दोनोंमें सन्धि हुई। वह सन्धि ठीक वैसी ही थी, जैसी विजित और विजयी राष्ट्रोंके बीचमें होती है। उसके अनुसार फिनलैण्डके करेलियन थल-डमरूमध्यका लगभग एक हजार मील लम्बा प्रदेश, लादोगा झीलका पश्चिमी भाग, मैनरहीमकी किलेबन्दी, विबोर्गका बन्दरगाह और फिशर्मैनका प्रायद्वीप सोवियट रूसने फिनलैण्डसे बलपूर्वक लिया। इसके साथ ही फिनलैण्डको अपने हैंगोके बन्दरगाहमें नौ-सेनाके अड्डेके लिए पट्टेपर रूसको जमीन देनी पड़ी। इस सन्धिको अन्यायपूर्ण बतलाते हुए तथा रूसकी शिकायत करते उस समयके मित्रराष्ट्र थकते न थे। इसके कारण भी थे। वह यह कि वे किसी प्रकार स्कैण्डेनेवियन राष्ट्रपर सोवियट रूसका प्रभाव नहीं देखना चाहते थे। साथ ही यद्यपि उस समय रूससे ब्रिटेन और फ्रान्सका राजनीतिक सम्बन्ध बना हुआ था, तथापि जर्मनीके साथ उसकी अनाक्रमणकी सन्धि थी तथा उसकी जर्मन-सहानुभूतिके कारण ये राष्ट्र उसे अपना शत्रु समझते थे। ऐसे भी सोवियट विचार-धाराके कारण साम्राज्यवादी देशोंमें पहलेसे ही रूसके प्रति घृणा थी। परन्तु कूटनीतिके गन्दे दृष्टिकोणसे ऊपर उठनेपर भी सत्य और न्यायके दृष्टिकोणसे भी सोवियट रूसने फिनलैण्डके साथ अन्याय किया था। फिनलैण्ड और रूसकी सन् १९४० वाली सन्धि काली और अन्यायपूर्ण थी, जिसमें सोवियट रूस अत्याचारी और फिनलैण्ड अत्याचार-पीड़ित था।

फिनलैण्डका स्वर्ण-अवसर—

सोवियट रूसकी अपेक्षा अत्यन्त छोटा और नगण्य राष्ट्र

होनेके कारण फिनलैण्डको आत्म-समर्पण करना पड़ा था, पर वह उस अवसरकी प्रतीक्षामें था कि कब वह अपना जल तथा स्थल भाग रूससे ले सकेगा। ऐसा स्वर्ण अवसर उसे २२ जून, १९४१ को मिला, जब कि जर्मनीने अचानक रूसपर चढ़ाई कर दी। अपनी स्वतन्त्रताके इतिहासके प्रारम्भमें जब कि सोवियट रूसने फिनलैण्डको अपनेमें मिलाना चाहा था, उसने जर्मन-सेनाकी सहायतासे अपनी स्वतन्त्रताकी रक्षा की थी। इतिहास अपनेको दुहराने लगा था। फिनलैण्डने जर्मन-सेनाका साथ इसलिए दिया कि रूसके द्वारा उसके अधिकृत प्रदेश उसे पुनः वापस मिल जांय। परन्तु आज युद्धका पासा पलट गया है। रूसी सेनाएं जर्मनोंको अपने प्रदेशसे खदेड़ रही हैं और आज प्रायः समस्त सोवियट भूमिसे जर्मन सेना निकाल दी गयी है। ऐसे अवसरपर संसारके लिए निश्चय ही इसी बातमें कल्याण होता, यदि रूस और फिनलैण्डकी सन्धि हो जाती। हम यह भी मानते हैं कि सन्धि-प्रस्तावके लिए रूसने ही प्रथमतः हाथ बढ़ाया। यह उसकी वीरताका प्रमाण है। परन्तु साथ ही उस वीरतामें उदारताका अभाव है। सोवियट रूसकी प्रतिष्ठा संसारके राष्ट्रोंमें आज बहुत अधिक हो जाती, यदि उसने सन्धिके प्रस्तावमें सन् १९४० की सन्धिको पुनः चालू करनेकी बात न जोड़ी होती। इसका अर्थ यह है कि फिनलैण्डकी भूमि-भागपर उसका अधिकार सदाके लिए बना रहे। यह बात राजनीतिके विरुद्ध है और कोई भी स्वतन्त्र राष्ट्र, चाहे वह जितना भी छोटा और निर्बल क्यों न हो, इसे तब तक गवारा नहीं कर सकता, जब तक कि वह सारी परिस्थितियोंसे विवश न हो जाय। आज यद्यपि फिनलैण्ड रूससे सन्धि करना चाहता है, परन्तु वह चाहता है कि रूस उसके भू-भागपर किसी प्रकार अधिकार न रखे और रूस यदि ऐसा करना चाहता है, तो फिनियोंको स्वाभाविक रूपसे जर्मन-सेनाकी सहायताका बल है। वे समझते हैं कि रूसके लिए फिनलैण्डपर विजय प्राप्त करना यदि असम्भव नहीं, तो उतना सहज भी नहीं जितना सन् १९४० में था। आज जर्मन सेनाएं जर्मन टैंके और तोपें अपने ही स्वार्थ-साधनके लिए सही, पर रूसियोंके विरुद्ध फिनलैण्डकी रक्षा कर रही हैं।

चीनकी भयावह-स्थिति—

... रके द्वारा जो कुछ भी अन्तर्राष्ट्रीय समाचार इस देशमें भेजे जाते हैं, तथा आये हैं, उन्हें पढ़कर चीनकी भयावह स्थितिका कुछ-कुछ पता लग जाता है। फिर भी यह कहना अप्रासङ्गिक न होगा कि चीनकी वास्तविक स्थितिके सम्बन्धमें हमें अपूर्ण और नगण्यमात्रामें ही खबरें दी जाती हैं और उन खबरोंके आधारपर जापानसे लड़नेवाले उस महान् देशकी वास्तविक अवस्थाका परिचय पाना सहज नहीं। फिर भी इतना निश्चित है कि चीन सङ्कटापन्न अवस्थामें है और उसकी स्थिति डावांडोल है।

जापानसे लड़ते हुए चीनको सात वर्ष हो चुके और वह आज युद्धके आठवें वर्षमें है। सन् १९३७-४१ तक वह अकेला ही जापानसे लड़ता रहा। निश्चय ही जून १९४१ के पहले, जबतक कि जर्मनीने रूसपर चढ़ाई न की थी, चीनको सोवियट रूससे थोड़ी-बहुत सहायता मिलती रही, पर जर्मन आक्रमणके बाद वह सहायता भी बन्द हो गयी। इधर सन् १९४१ के दिसम्बर मासमें जब कि जापानने अमेरिका और ब्रिटेनके विरुद्ध युद्धकी घोषणा कर अचानक प्रशान्त महासागरके अमेरिकन और ब्रिटिश द्वीपोंपर धावा बोल दिया तथा छः महीनोंके भीतर लगभग दो हजार मीलतक फैले हुए ब्रिटिश,अमेरिकन और डच टापुओंपर अपना अधिकार पूर्णतः जमा लिया तथा हाङ्गकाङ्ग, बर्मा, मलाया भी अंगरेजोंसे जीत लिया, उस समय चीनकी स्थिति एक बार डावांडोल हो उठी। उसका कारण यह था कि हाङ्गकाङ्ग और पूर्वी चीनी प्रान्तोंपर तथा प्रशान्त महासागरके विस्तृत टापुओंपर और साथ ही बर्मापर जापानी अधिकार होनेके कारण चीनको ब्रिटिश तथा अमेरिकन सहायता मिलनी बन्द हो गयी। उधर रूससे भी सहायता मिलनेकी कोई आशा न रही। इसके दो कारण थे। एक तो जर्मन आक्रमणसे रूसको स्वयं अपने बचावकी चिन्ता रही और दूसरे उसने जापानसे अनाक्रमणकी सन्धि कर ली थी। चीन अपने महान् नेता मार्शल च्याङ्ग काईशेककी अधीनतामें अकेले ही जापानका मुकाबला करने लगा। आज भी लगभग उसकी वही स्थिति है।

अपनी संस्कृति, सभ्यता, जन-संख्या तथा क्षेत्रफलमें चीन महान् होते हुए भी अकेले जापानका मुकाबला नहीं कर सकता; कारण जहां जापानके पास युद्धके सभी आधुनिक साधन प्रचुर मात्रामें मौजूद है, वहां चीनमें युद्धके आवश्यक आधुनिक अस्त्र-शस्त्रोंका सर्वथा अभाव है। इतना ही नहीं, उद्योग-धन्धोंके विचारसे चीन इतना पिछड़ा हुआ है कि वहां मोटरें, टैंकें, वायुयान आदि युद्धके आवश्यक सामान नहीं बनते और इस कारण स्वाभाविक रूपसे उसे इन वस्तुओंके लिए मित्र-राष्ट्रोंपर ही निर्भर रहना पड़ता है।

परन्तु मित्र-राष्ट्रोंने कहांतक चीनकी सहायता की है और कर रहे हैं, यह एक विचारणीय प्रश्न है। हम देखते हैं कि रूसको अमेरिका और ब्रिटेनकी ओरसे युद्ध-सामग्रीके रूपमें जो कुछ सहायतायें मिलती रही हैं, उनका उल्लेख प्रायः पत्रोंमें प्रकाशित होता रहता है। अमेरिकन सरकारकी ओरसे मिस्टर लियो क्रौलेने अभी हालमें ही एक विज्ञप्ति प्रकाशित की थी, जिसमें अमेरिकाके द्वारा रूसमें भेजे जानेवाले टैंकों, विमानों, अन्य अस्त्र-शस्त्रोंके साथ ही खाद्य-पदार्थों और दवाइयोंकी एक सूची दी गयी थी। मि० चर्चिलने भी ब्रिटेन और ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा रूसमें भेजी जानेवाली इन आवश्यक वस्तुओंका विस्तृत उल्लेख किया था। पर ये दोनों ही देश चीनके सम्बन्धमें, उसे भेजी जानेवाली सहायताओंके सम्बन्धमें प्रायः मौन ही रहे हैं। इसके कारण हैं। वे सहायतायें इतनी नगण्य हैं कि चीनके भारत-स्थित कमिश्नर डाक्टर शेनने उनकी चर्चा करते हुए "घड़ेमें बूंद" की भांति बतलाया है। शेन महोदयने इस सम्बन्धमें आगे चलकर यह भी बतलाया है कि स्थितिमें अब कुछ सुधार होने लगा है, कारण युद्धके कई आवश्यक सामान विमानोंके द्वारा भेजे जाने लगे हैं। भगवान करे चीनको, जो मित्र-राष्ट्रमण्डलका एक आवश्यक अङ्ग है, मित्रराष्ट्रोंकी सहायता अधिकसे-अधिक मिले और वह जापानी आक्रमणसे अपने देशकी रक्षा कर उसे पूर्णतः स्वतन्त्र कर सके। फिर भी यहां तो प्रश्न यह उठता है कि आकाश मार्गके द्वारा तो चीनको एक छोटे और सीमित परिमाणमें सहायता भेजी जा सकती है, इतने सीमित परिमाणमें जो बलशाली जापानके मुकाबलेके लिए आंशिक रूपमें भी पर्याप्त नहीं कहा जा सकता। हम स्वीकार करते हैं कि ब्रिटेन और अमेरिकाकी सरकारें इस कमीका अनुभव करती हैं। हम यह भी मानते हैं कि इसी अभावकी पूर्तिके लिए आसामसे होकर भारत और चीनको मिलानेके लिए एक नयी सड़क, जिसे लीडो सड़क कहते हैं, बहुत परिश्रम और तेजीसे बनायी जा रही है। हम साथ ही यह भी स्वीकार करते हैं कि जेनरल स्टिलवेलकी सेना उत्तरी बर्मामें इसलिए लड़ रही है कि अपर बर्मापर अधिकार कर बर्मा-

रोडको फिरसे चालूकर सके और उसके द्वारा भारतसे चीनको पर्याप्त रूपमें युद्ध-सामग्री मिल सके। फिर चीनमें जापानी सेनाने इतने महत्त्वपूर्ण स्थान ले लिए हैं और लेनेके प्रयत्नमें हैं, जिसकी सफलता केवल चीनके ही लिए नहीं, वरन् मित्रराष्ट्रोंके लिए भी भयावह सिद्ध हो सकती है। कुछ ही पहले जापानने चीनके होनान प्रान्तपर अस्सी हजार सेनाके द्वारा चढ़ाई की थी और उसमें उसे पर्याप्त रूपसे सफलता भी मिली। तीन सप्ताहके युद्धमें ही होनान प्रान्तका एक विशाल भूमि-खण्ड जापानियोंके हाथ लगा। पीपिङ्ग-हैङ्को रेलवेका १६० मील लम्बा हिस्सा, जो अभीतक चीनियोंके अधिकारमें रह गया था, उसपर जापानियोंने अपना अधिकार जमा लिया। इसके अतिरिक्त लोयाङ्गसे ४० मील पश्चिम जापानने लुङ्गाई रेलवेकी लाइनें काट दी हैं, जिससे चीनी सेनाके पीछे हटनेका मार्ग भी बन्द हो गया है। पिछले सप्ताहके रूटरकी खबरोंका सारांश यह है कि जापानने होनान प्रान्त जीतकर भयानक पीत नदीको पार कर लिया है और युद्धके दृष्टिकोणसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उत्तरी-दक्षिणी पीन्हान रेलवेपर अपना आधिपत्य पूर्णतः स्थापित कर लिया है।

सच बात तो यह है कि जापानियों द्वारा पीत नदी-जैसी सुदृढ़, भयानक और प्राकृतिक किलाबन्दी पार कर लेना तथा उत्तरी-दक्खिनी पीन्हान रेलवेपर अधिकार कर लेना चीनके लिए जितना भयावह है, उससे अधिक जापानियोंके लिए सुविधाजनक। ऐसे भी समाचार आने लगे हैं, जिनका आशय यह है कि जापानी दक्खिनी चीनके भूमि-मार्गको मलाया तथा बर्माके साथ जोड़ना चाहते हैं। यदि उन्हें इस कार्यमें सफलता मिल गयी, और सफलता न मिलनेका कोई कारण भी नहीं है, तो निश्चय ही जापानकी सैनिक स्थिति आजसे कहीं अधिक सुदृढ़ हो जायगी। यह एक ऐसी महत्वपूर्ण सैनिक चाल है, जिससे समस्त मित्रराष्ट्रोंको सतर्क रहना आवश्यक है। उस स्थितिमें जापानी युद्ध-सामग्रियोंके यातायात प्रश्नको बहुत आसानीसे हल कर लेंगे, और मंचूरिया तथा अधिकृत चीनसे मलाया और बर्माको जोड़कर केवल अपनी सैनिक स्थितिको सुदृढ़ ही नहीं कर सकेंगे, वरन् मित्रराष्ट्रोंकी कठिनाइयोंको काफी अधिक बढ़ा देंगे।

चीनकी उपरोक्त सैनिक स्थितिके अतिरिक्त उसकी आर्थिक स्थिति भी कम भयावह नहीं है। मुद्रा-प्रसार इतने भयानक रूपसे बढ़ गया है कि एक मामूली कुलीके रहने और खानेका साधारण खर्च ६५० रुपये मासिक त[क] पहुंच गया है। चीन सरकार ३२५० रुपये प्रति औंस[के] हिसाबसे सोना बेंचती है। चारसे पांच हजार डाल[र] प्रतिमास वेतन पानेवाले प्रोफेसरोंके लिए अपना ख[र्च] निकालना कठिन हो गया है और वे प्रोफेसरी छोड़क[र] अन्य धन्धोंके द्वारा अपने उदर-पालनकी चेष्टा करने ल[गे] हैं। चीनकी इस भयानक आर्थिक स्थितिको सुधारना [म]ित्रराष्ट्रोंके लिए उचित ही नहीं, वरन् लाभदायक भी है। हमें इस बातसे हर्ष है कि उस दिन ब्रिटेनके वैदेशिक मन्त्री मि० इडेनने हाउस-आफ-कामन्समें इस बातकी घोषणा की थी कि उनकी सरकार और चीन सरकारके द्वारा चीनको ५ करोड़ पाउण्ड कर्ज देनेके समझौतेपर हस्ताक्ष[र] हो गये हैं। फिर भी हम इस बातका अनुभव करते हैं कि चीनकी रक्षा और मध्य तथा पूर्वी एशियामें मित्रराष्ट्रोंकी सैनिक स्थिति सुदृढ़ करनेके लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि अमेरिका और ब्रिटेन चीनकी आर्थिक स्थितिका पूर्णतः सुधार करें। साथ ही उससे भी कड़ी आवश्यकता इस बात की है कि अमेरिका और ब्रिटेनकी टैं[क], मशीनगनें, वायुयान तथा अन्य युद्ध-सामग्री चीनमें इतनी प्रचुर मात्रामें भेजी जाय, कि केवल वह अपनी ही रक्षा कर सके, वरन साथ ही पूर्वी एशियासे जापानी सङ्कट सदाके लिए दूर करनेमें सहायक और समर्थ हो। इस स्थानपर यह कहना अप्रासङ्गिक न होगा, कि अन्ति[म] उद्देश्य अर्थात् पूर्वी एशियासे जापानी सङ्कट दूर करनेके लि[ए] मित्रराष्ट्रोंके लिए यह भी अत्यन्त आवश्यक है कि भारत[का] जन-मत पूर्णतया अपने पक्षमें करनेका प्रयत्न करें। [यह] तभी सफल और सम्भव हो सकेगा, जब कि ब्रिटेन अप[नी] पिछली भूलोंको स्वीकार करते हुए कांग्रेसकी ओर मि[त्रता] और सहयोगका हाथ बढ़ाये। कांग्रेस और सरका[रके] समझौतेपर भारतमें जो राष्ट्रीय सरकार स्थापित हो[गी] उसके द्वारा जापानियोंका यह मिथ्या प्रचार, कि वे भार[त]को स्वतन्त्र करनेके लिए युद्ध कर रहे हैं, सबके सा[मने] प्रकट हो जायगा। उस समय स्वतन्त्र भारतकी [सेना] जापानी सैनिकोंको भारतकी ही सीमासे नहीं, [वरन्] एशियाके समस्त जापान-अधिकृत भूमिखण्डोंसे दूर [कर] देगी। पर क्या ब्रिटिश राष्ट्र युगकी इस पुकार—सम[य]के इस तकाजेको सुन और समझ सकेगा? क्या ब्रिटेन अ[पने] साम्राज्यवादके मोहसे ऊपर उठकर संसारके सामने [एक] नैतिक दृष्टान्त उपस्थित कर सकेगा?

घृणित और लज्जाजनक—

बम्बईसे प्रकाशित होनेवाले अङ्गरेजी साप्ताहिक "पिपुल्स वार" ने चटगांवके मातृ-मण्डलके सम्बन्धमें एक मार्मिक लेख प्रकाशित किया है। योग्य लेखकने वहांकी बहनोंकी दयनीय दशापर प्रकाश डालते हुए लिखा है— "दो लाख पुरुष तो मर चुके हैं और हजारोंकी संख्यामें मरते जा रहे हैं। पुरुष तो मर गये, अथवा कामकी तलाशमें चले गये, स्त्रियां बहुत बड़ी संख्यामें वेश्यालयोंकी शरण ले रही हैं। हर जगह छोटे-बड़े वेश्यालय खुल गये हैं। बाराखेन नामक एक छोटेसे ग्राममें १०० से अधिक वेश्यायें हैं। यहां तक कि बारह वर्षकी कुमारियां भी इन पाप-केन्द्रोंकी शरण ले रही हैं। कुछ स्त्रियां ऐसी भी हैं, जो इन वेश्यालयोंसे अलग रहकर सेना द्वारा खोले गये नये कार्योंमें मेहनत-मजदूरी कर अपना पेट पाल रही हैं। इस समय उनका जीवन बहुत ही सङ्कटमें है और किसी प्रकार वे अपनी जीवन-यात्रा पूरी कर रही हैं।"

कहना नहीं होगा कि चटगांवकी बहनोंकी यह स्थिति सचमुच ही समाज और सरकार दोनोंके लिए लज्जाजनक और घृणास्पद है। बङ्गालके विगत अकालमें लाखों जानें चली गयीं, हजारोंकी संख्यामें स्त्रियोंको अपने परम प्रिय धन सतीत्वसे हाथ धोना पड़ा, सहस्रों बच्चे अनाथ हो गये और बङ्गालके नगरों और गांवोंके पुराने वेश्यालय अपनी पाप-लीलाओंसे जाग उठे, तथा नये वेश्यालयोंकी उत्पत्ति हुई। यदि सन् १९४० की जन-संख्याके अनुसार बङ्गालकी वेश्याओंके आंकड़ोंकी उनकी आजकी संख्यासे तुलना की जाय, तो निश्चय ही उनकी संख्यामें लाखोंकी वृद्धि पायेंगे। अभी हालमें ही बङ्गालकी व्यवस्थापिका सभामें इस सम्बन्धके एक प्रश्नके उत्तरमें सरकारने बतलाया था कि जांचके बाद उन्हें एक दृष्टान्तोंकी सत्यताके प्रमाण मिले हैं, जिनमें सम्भ्रान्त घरोंकी ललनाओंको पेटकी ज्वाला शान्त करनेके लिए केवल अपना सतीत्व और अपनी लज्जा ही नहीं बेचनी पड़ी, वरन् वेश्यालयोंकी भी शरण लेनी पड़ी। बङ्गालके दुर्भिक्षने तो यहांकी सामाजिक अवस्थामें इतना वैषम्य पैदा कर दिया था कि बच्चों और स्त्रियोंकी खरीद-बिक्रीके बाजार जोरोंसे गर्म हो गये।

भारतकी पवित्र वसुन्धराने सदाचार और नैतिकताका सबसे बड़ा आदर्श संसारको दिया है। आजकी अपनी राजनीतिक दासतामें भी भारतने अपनी संस्कृति और अपनी आत्माको केवल नैतिकता और सदाचारके द्वारा ही निष्कलुष रखा है; परन्तु आज उसकी इस नैतिकता और सदाचारपर भी आघात होने लगा है। इस आघातसे भारतीय संस्कृतिकी नींव खोखली हो जायगी और उसकी आत्मा तिलमिला उठेगी, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। हम स्वीकार करते हैं कि हमारी बहनोंके इस दयनीय पतनकी जड़में हमारी सामाजिक व्यवस्थाके वैषम्यके साथ ही हमारे आदर्शोंका भीषण पतन भी है। फिर भी हम यह बात अस्वीकार नहीं कर सकते कि इस मामलेमें सरकारका दायित्व समाजसे अधिक है। सरकारका यह पवित्र कर्त्तव्य है कि वह जनताको पेटकी ज्वालासे बचाये और समाजकी उस अव्यवस्थाका जड़-मूलसे ही नाश करे, जिसमें दो मुट्ठी अन्नके बदले सतीत्वका बलिदान किया जाता है। और जो सरकार समाजके इस भीषण ताण्डवको रोकनेमें असमर्थ है, उसे नैतिक और कानूनी, दोनों दृष्टियोंसे शासनकी बागडोर हाथमें लेनेका अधिकार नहीं।

आवश्यक प्रतिकार—

हालमें लाहौरमें एक शिक्षाप्रद घटना घटी। विगत १९ वीं मईको लाहौरके लारेन्स गार्डेनमें सिविल लाइन पुलिसने गुलाम रसूल तथा उसके दो साथियोंको एक अद्भुत

घटनाचक्रके सिलसिलेमें गिरफ्तार किया। कहा जाता है कि गुलाम रसूल आदि चार व्यक्ति प्रति दिन प्रातःकाल सम्भ्रान्त परिवारकी महिलाओंसे मजाक किया करते थे। एक दिन वहांके सनातनधर्म कालेजके प्रोफेसर श्री विद्याधरने उन गुण्डोंको इस असभ्य कार्यसे रोका। उन्होंने प्रोफेसर साहबका अपमान ही नहीं किया, वरन् उन्हें पीटा भी। दूसरे दिन प्रातःकाल प्रोफेसर महोदय अपने कालेजके कुछ छात्रोंको लेकर फिर लारेन्स गार्डेन आये। गुण्डे सदाकी भांति महिलाओंसे छेड़खानी कर रहे थे। प्रोफेसर साहबके मना करनेपर उन्होंने उनपर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। इसपर प्रोफेसर साहबके छात्रोंने, जो हाकी स्टिकसे सुसज्जित होकर आये थे, प्रोफेसर महोदयकी सहायता करते हुए गुण्डोंकी भली भांति मरम्मत की तथा जनताकी सहायतासे तीन गुण्डोंको पकड़ लिया, एक भागकर निकल गया।

आज हमारे नगरोंमें गुण्डोंका आतङ्क जोरोंसे फैल रहा है। नगरोंमें पर्दा-प्रथाका प्रायः अभाव ही है, विशेष कर पञ्जाब, बङ्गाल, बम्बई और महाराष्ट्र तो ऐसे प्रान्त हैं, जहां पर्देका नाम-निशान भी नहीं। इन प्रान्तोंमें स्त्रियां स्वतन्त्रतापूर्वक अपने घरोंसे बाहर, सभा-सोसाइटी, स्कूल-कालेज और सार्वजनिक स्थानोंमें आती-जाती रहती हैं। उनके साथ उनके घरवाले पुरुषोंके अभावमें गुण्डोंकी बन आती है, और वे अपनी स्वाभाविक नीच प्रवृत्तिके कारण उनसे छेड़खानी आरम्भ कर देते हैं। कभी-कभी तो हमारी महिलाओंकी स्वच्छन्दताके कारण भी उन्हें ऐसा करनेका दुस्साहस होता है। गुण्डे इस मामलेमें बहुत दक्ष होते हैं और उन्हें इस बातका नशा हो जाता है कि महिलाओंके साथ छेड़खानी करने तथा अवसर पाते ही अपनी उद्दण्डताको चरितार्थ करनेके लिए उन स्थानोंके चक्कर काटें, जहां प्रायः महिलाएं स्वतन्त्रतापूर्वक आती-जाती रहती हैं। आप जहां भी जायं—बाजार, सभा-सोसाइटी, सिनेमा, पार्क, बगीचे, स्टेशन—सभी जगह आपको गुण्डे मिलेंगे, जो केवल महिलाओंकी चिन्तामें ही नित्य चक्कर काटते हैं। यह भी आवश्यक नहीं कि ये गुण्डे मूर्ख, अपढ़ और अशिक्षित हों। पढ़े-लिखे, शिक्षित समुदायमें भी गुण्डोंकी आबादी आये दिन बढ़ने लगी है और हमारे देशके दुर्भाग्यसे आज हमारे शिक्षित गुण्डोंकी संख्या प्रचुर मात्रामें है।

गुण्डोंकी इस बाढ़को तथा उनकी बढ़ती हुई उच्छृङ्खल प्रवृत्तिको रोकनेके कई उपाय हैं। पहली बात तो यही कि हमारी बहनोंमें इतना साहस और नैतिक बल होना चाहिये, जिससे गुण्डोंको उनकी ओर आंख उठानेका साहस न हो। साथ ही जो बहनें अपने स्वाभाविक शील-सङ्कोच और शिष्टताके कारण गुण्डोंके प्रति अपना उग्र रूप धारण नहीं कर पातीं, उन्हें चाहिये कि घरसे बाहर जाते समय अपने परिवारके किसी पुरुषको साथ ले लें। पुरुषोंको भी चाहिये कि वे अपने घरकी महिलाओंको यथासाध्य अकेले बाहर जानेसे रोकें और इस बातका ध्यान रखें कि उनकी महिलायें घरके किसी पुरुषको साथ लिये बिना यथासम्भव बाहर जानेकी चेष्टा न करें।

साथ ही इस सम्बन्धमें सबसे आवश्यक कार्य यह है कि हमारे समाजके भीतर एक ऐसे वर्गका सङ्गठन हो, जो उपरोक्त प्रोफेसर विद्याधर तथा उनके अनुयायी विद्यार्थियोंके आदर्शको केवल प्रतिष्ठित ही न करें, परन्तु उसका धार्मिक रूप दें। दुर्गा सप्तशतीके उस महामन्त्रके अनुसार कि—"संसारके सभी विद्यायें तुम्हारा ही भेद और सारी स्त्रियां तुम्हारा ही रूप हैं—" हमें सत्साहससे गुण्डादलको दबाने और समाजसे उन्हें निर्मूल करनेके लिए अपनेमें नैतिक बलका सञ्चय और अखिल भारतीय सङ्गठनको व्यवस्थित रूप देना चाहिये। हमारा सङ्गठन इतना दृढ़ होना चाहिये कि भारतके किसी कोनेमें मातृत्वके तनिक अपमानसे भी सारा देश एक साथ ही प्रतिकारकी भावनाओंसे कांप उठे। ऐसे अवसरपर हम प्रोफेसर विद्याधर तथा उनके वीर विद्यार्थियोंको बधाई देना अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

लड़कियोंके भगानेके प्रयत्न—

लड़कियोंके भगानेके घृणित कार्य आज भी उसी प्रकार जारी हैं, जैसे आजसे दस वर्ष पहले थे। प्रान्तीय सरकारें, केन्द्रीय सरकार तथा हमारे राजनीतिक सुधार अभीतक समाजकी इस भीषण बीभत्सताको निर्मूल करनेमें असमर्थ रहे हैं। हालमें ही संयुक्त प्रान्त और पञ्जाबमें दो ऐसी घटनायें हुई हैं, जिनसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हमारे सामाजिक जीवनमें यह पाप कहांतक घुस गया है। संयुक्त प्रान्तकी घटना इस प्रकार है कि शाहजहांपुरकी कालीबाड़ीसे पांच व्यक्तियोंने आठ-दस वर्षकी एक हिन्दू कन्याको दिन-दहाड़े उड़ा लिया। उसके चिल्लानेपर उन्होंने उसका मुंह बन्द कर दिया और जमा हुए लोगोंसे कहा कि

इसका मस्तिष्क खराब हो गया है और हम लोग डाक्टर-के यहां इसका इलाज करानेके लिए ले जा रहे हैं। बादको कन्याको सीतापुरमें बरामद किया गया और पांचों व्यक्ति गिरफ्तार किये गये, जो सभी सिक्ख हैं। पञ्जाबकी घटना इससे भिन्न होते हुए भी कम उत्तेजक नहीं। अमृतसरके अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट श्री मुश्ताक अहमदकी अदालतमें बयान देते हुए एक पन्द्रह वर्षीया अभागिनी मुसलमान लड़कीने जिसका नाम अख्तर है, कहा—डेढ़ साल हुए जब कि मैं इस्लामिया गर्ल्स स्कूलमें अपनी बहन भर्ती कराने जा रही थी, अभियुक्ता असगर मुझे मिली और उसने कहा कि उस स्कूलमें पढ़नेवाली औरङ्गजेब नामक लड़की मेरी भतीजी है। मैं स्वयंभी उस स्कूलमें पढ़ती थी और औरङ्गजेबसे मेरा परिचय हो गया। तीन महीने हुए, अभियुक्ता असगरने अपना नौकर मेरे यहां भेजा कि औरङ्गजेब उसके यहां आयी है और आवश्यक कार्यसे मैं उससे मिलूं। मैं शहबाज (एक दूसरी लड़की) के साथ उसके घर गयी, किन्तु औरङ्गजेब वहां न थी। असगरने कहा कि औरङ्गजेब वहां शीघ्र ही आ जायगी। एक घण्टे बाद जब मैं वापस जाने लगी, तो असगरने कहा कि मैं तुम्हें अच्छी जगह ले जाना चाहती हूं, यदि इन्कार किया तो मार डालूंगी। एक दूसरे मुहल्लेके एक घरमें मुझे और शहबाजको तीन दिनोंतक रखा गया और बाद हम दोनोंको जालन्धर और वहांसे बम्बई ले जाया गया। वह मुझसे वेश्या-वृत्ति कराना चाहती थी, किन्तु मैंने इनकार कर दिया। इसके बाद वह मुझे श्यामलाल नामक एक व्यक्तिके पास ले गयी। श्यामलालसे मैंने सारी कहानी कही और वह हम लोगोंको वापस घर भेजनेको तैयार हो गया, पर असगर उससे लड़ पड़ी। श्यामलालने हम लोगोंको दो टिकट दिये और हम दोनों बम्बईसे लौट आयीं। दूसरी लड़की शहबाज केवल नौ सालकी है।

ये घटनायें नयी नहीं हैं। प्रति दिन इस अभागे देशमें ऐसी घटनायें होती रहती हैं और हमारे कानोंतक उनकी खबरें नहीं आतीं। कभी-कभी, इक्के-दुक्के यदि प्रकट हो गयीं, तो उनकी चर्चा हमें पढ़नेको मिल जाती है। इस अभागे देशमें लड़कियोंके व्यापारका काम सङ्गठित दलोंके द्वारा होता है और इसमें सन्देह नहीं कि ये सङ्गठन अन्तर्प्रान्तीय हैं। उपरोक्त दोनों घटनायें भी हमारे इस कथनकी पुष्टि करती हैं। पांच पुरुषोंके एक गिरोहके द्वारा दिन-दहाड़े एक लड़कीको उड़ा ले जाना और लड़कीके चिल्लानेपर उपस्थित व्यक्तियोंसे यह कहना कि यह पागल है और इलाजके लिए डाक्टरके पास ले जायी जा रही है, यह एक साधारण बात नहीं। इस काण्डको गुण्डोंका वही गिरोह कर सकता है, जो इस कार्यमें अत्यन्त कुशल हो। दूसरी घटनामें असगर-जैसी एक स्त्री द्वारा दो लड़कियोंको धमकाकर अधिकारमें कर लेना, तथा उन्हें जालन्धर होते हुए बम्बई भेज देना तभी सम्भव है, जब एक सङ्गठित गिरोह साथमें सहायक हो।

तात्पर्य यह कि हमारे देशमें इन सङ्गठित गुण्डोंका दल नियमित रूपसे अपने कार्यमें संलग्न है। हमारी नाकके नीचे लड़कियोंके भगानेकी घटनायें होती हैं और हमारे कानों तक इनकी खबरें नहीं पहुंचतीं। गुण्डा-दलोंके द्वारा लड़कियोंके भगाये जानेके दो प्रमुख कारण हैं। या तो उन्हें वेश्यालयोंके लिए कलकत्ते, बम्बई जैसे शहरोंमें बेचा जाय अथवा वे पञ्जाब, सिन्ध, बलूचिस्तान जैसे प्रान्तोंमें बेंची जायं, जहां स्त्रियोंका अभाव है।

बालिकाओं और युवतियोंके इस क्रय-विक्रयपर यदि समाज ध्यान न देगा, तो हमारी स्थिति प्रतिदिन अधिक खराब होती जायगी। अब समय आ गया है, जब हम इस बढ़ते हुए सामाजिक कोढ़पर गम्भीरतापूर्वक सोचें और इसके प्रतिकारका उपाय निकालें। निश्चय ही इस सम्बन्धमें प्रान्तीय सरकारोंका दायित्व कम नहीं है। मातृ-जातिके प्रति होनेवाले इन गुप्त, परन्तु जघन्य अपराधों और पापोंको केवल भारतकी प्रान्तीय सरकारें सह सकती हैं। किसी भी सभ्य देशकी सरकार अपनी सीमामें इन पाप-कृत्योंको बर्दाश्त नहीं कर सकती। पर भारत गुलाम और पराधीन है !!

बापू हमारे बीचमें—

बापू आज हमारे बीचमें हैं! बीस महीने और सत्तादस दिनोंकी नजरबन्दीके बाद विगत् ६ ठीं मईके प्रातःकाल ८ बजे महात्मा गांधी चिरस्मरणीय आगा खां पैलेससे भीषण अस्वस्थताके कारण बिना किसी शर्त के मुक्त कर दिये गये। आगा खां पैलेसकी चिर-परिचित दीवारोंको छोड़ते समय पूज्य बापूके स्थितप्रज्ञ हृदयमें भी कितना भीषण हाहाकार उठा होगा, यह कल्पनातीत है। आगा खां पैलेसकी उन मनहूस, परन्तु प्यारी दीवारोंने यदि विश्व-मानवके सर्वश्रेष्ठ नेता और उत्कृष्ट तपस्वीकी चरम साधनाओंके दृश्य देखे हैं, तो साथ ही उसने जीवनकी करुणा और मृत्युकी कठोरताके दृश्य भी देखे हैं। आगा खां की उन चिरस्मरणीय दीवारोंने जीवन और मृत्युके सङ्गमकी उन दो सिसकती हुई कथाओंके मर्मस्पर्शी अभिनय देखे हैं, जब कि सन्तके स्थिर प्राण भी कांप उठे थे, जब कि उनका चिर शान्त हृदय भी मानवताकी तुच्छतापर उद्विग्न हो गया था, और जब कि एक दृष्टि पातसे ही मानवको सत्य और अहिंसाके अमर सन्देश देनेवाली वे संयमशील, परन्तु शून्य आंखें भी बरस पड़ी थीं!! मृत्यु और जीवनके कठोर अभिशापोंके बीच ही अपना पथ निर्देश करनेवाले, परन्तु दोनोंसे ही असङ्ग बापूके इन आंसुओंका रहस्य कौन समझेगा? कौन उन अमूल्य आंसुओंकी गहराईमें डूबकर बापूके चिर-कोमल हृदयके अमर स्पन्दनोंका स्पर्श कर सकेगा?

बापू आज हमारे बीचमें हैं। जिन्ना और मुस्लिम लीगको छोड़कर भारतका कोई भी ऐसा राजनीतिक दल न था, जिसने बापूकी रिहाईके लिए भारत सरकारसे प्रार्थना न की हो। विदेशी विद्वानों, विचारकों, राजनीतिज्ञों, धर्माचार्यों, नेताओंने भी गांधीजीके बन्दी जीवनपर खेद प्रकट करते हुए उनकी मुक्तिकी इच्छा प्रकट की थी, पर ब्रिटिश तथा भारतीय सरकारोंने किसीकी एक भी न सुनी और अपनी टिर्रपर अटल रह गांधीजी तथा अन्य कांग्रेस-नेताओंको मुक्त करनेसे स्पष्ट इनकार कर दिया। परन्तु विधिके विधानको कौन समझ सकता है? वह अव्यक्त शासक, जो भारत, ब्रिटेन, विश्व तथा समस्त सृष्टि मण्डलका पोषक और रक्षक है, कुछ और ही चाहता था। बापू जेलमें बीमार पड़े। रोग साधारण था—मलेरिया ज्वर। पर बापूकी अवस्था चिन्ताजनक हो गयी। ब्रिटेन और भारतकी वर्तमान हृदयहीन और प्रतिक्रियावादी सरकारें भी सिहर उठीं, और बापूके अमूल्य प्राणोंके गुरु-गम्भीर दायित्वको अपने हाथोंमें लेनेसे स्पष्ट इनकार कर दिया। बापू—आगा खां पैलेसके नजरबन्द बापू—बिना किसी शर्त के मुक्त कर दिये गये।

...पर यह मुक्ति कितनी भीषण—कितनी ज्वालापूर्ण है! केवल इसीलिए नहीं कि आगा खां पैलेसके शून्य वातावरणमें मृत्युके निर्मम आघातोंने बापूसे उनके सर्वश्रेष्ठ शिष्य महादेव और उनकी चिरसङ्गिनी, चिरसती धर्मपत्नी "बा" को सदाके लिए उनसे छीन लिया है, पर इसलिए भी कि उनकी दृष्टिमें उनकी यह मुक्ति भाग्यका निष्ठुर उपहास—जीवनका एक तीक्ष्ण परिहास है! जब भारत पराधीन है—जब हजारोंकी संख्यामें देशभक्तोंकी बेगुनाह टोलियां बिना प्रमाणित अपराधोंके, जेलोंके सीखचोंमें बन्द हैं—उस समय बापूकी यह मुक्ति उनके लिए लज्जापूर्ण-ज्वालापूर्ण है। बापू—चिर-मुक्त, चिर-वन्दनीय बापूकी इस पागल-दार्शनिकताको कौन समझेगा—समझ सकेगा? यही दार्शनिकता तो भारतकी अमर आत्मा है। इसी दार्शनिकताने तो बापूको विश्व-मानवकी सर्वश्रेष्ठ विभूति, उसका जीवित पैगम्बर बना डाला है!

विगत २० वीं मईको डाक्टर जयकरको लिखते हुए बापूने जिन उद्गारोंको प्रकट किया है, वह बापूके संयम,

विवेक और दूरदर्शिताका ही नहीं, वरन् उनकी मानवता और सत्य-प्रियताका भी द्योतक है। बापूने लिखा है— "देश मुझसे बहुत अधिक आशा रखता है। मैं नहीं जानता, इस मुक्तिको आप किस रूपमें देखते हैं। इससे मुझे तनिक भी प्रसन्नता नहीं है, वरन् मुझे लज्जाका अनुभव होता है। मुझे बीमार नहीं होना चाहिये था। मैंने कोशिश की थी कि न पड़ूं, पर अन्तमें मुझे सफलता न मिली। मुझे ऐसा लगता है कि जैसे ही मैं वर्त्तमान दुर्बलतासे मुक्त घोषित किया जाऊंगा, वे पुनः मुझे कैद कर लेंगे। यदि वे मुझे गिरफ्तार न करें, तो इसमें मेरा क्या वश है। मैं अगस्त-का प्रस्ताव वापस नहीं ले सकता, जैसा कि आपने बिल-कुल उचित ही कहा है कि यह निर्दोष है। आप इसके साधनोंसे मतभेद रख सकते हैं, पर मेरे लिए तो यह जीवनके श्वासके समान है।"

बापूके ये उद्गार उन सारी अटकलबाजियोंका अन्त कर देंगे, जो आज भारतके राजनीतिक दलोंमें सरकार और कांग्रेसके बीचमें गतिरोधकी समाप्ति और नये सम-झौतेको कार्यान्वित करनेके सम्बन्धमें हो रही हैं। भारतका राजनीतिक समझौता कोई कठिन और दुर्लभ बात नहीं है, पर जबतक सरकार नहीं चाहती, वह कैसे हो? एक दलके चाहनेसे तो कोई समझौता नहीं होता, जब कि दूसरा दल इस बातपर अड़ा हुआ है कि किसी प्रकार भी सम-झौता न हो। जबतक मि० चर्चिल और मि० एमरी ब्रिटेन तथा भारतके भाग्यविधाता हैं, तबतक हमें न तो भारतीय स्वतन्त्रताकी आशा है और न किसी राजनीतिक समझौतेकी। गांधीजी इस बातको भली भांति जानते और अनुभव करते हैं। गांधीजी इस बातको समझते हैं कि कांग्रेस तथा उनके आदर्शोंके अनुसार भारतको स्वतन्त्र कर देनेपर ब्रिटेनके साम्राज्यका अस्तित्व नहीं रह जाता और जब साम्राज्य ही न रहा, तो इस विनाशकारी युद्धमें ब्रिटेनके धन-जन स्वाहा करनेका कुछ अर्थ ही नहीं होता।

फिर भी बापू आशावादी हैं। भगवानकी चमत्कारिक और अनहोनी लीलाओंमें उनका दृढ़ विश्वास है। वे स्वयं नहीं जानते, अगले क्षण भगवान उनसे किस कार्यकी पूर्ति करायेंगे। प्रत्येक शुभ कार्य और पुण्य-उद्देश्यके लिए उन्हें भगवानके सङ्केत—उनके प्रकाशकी आवश्यकता होती है। सम्भव है, विश्व-नाटकका सूत्रधार अपनी विश्व-लीलाके सम्पादनमें ऐसी भी अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियां उत्पन्न कर दे कि मि० चर्चिल और एमरीका पत्थर-हृदय भी मोम हो जाय और उनके राजनीतिक और अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण परि-वर्तित हो जायं। पर बापू अपने हृदयमें इन आशाओंको नहीं पालते! निष्काम-धर्मकी आधार-भित्तिपर सत्य और अहिंसाके अमर अस्त्रोंसे बापू जगत और जीवनके जिस निर्माण-कलाके द्वारा विश्व-मानवका अभिषेक करते हैं, उस स्तरको मि० चर्चिल और ब्रिटेनकी समस्त कूटनीति स्पर्श नहीं कर सकती। ब्रिटेनके समस्त राजनीतिज्ञ उन पद-चिह्नोंका अनुसरण नहीं कर सकते—करनेकी क्षमता नहीं रखते। इसीलिए हम कहते हैं कि बापू मानवताके जीवित पैगम्बर हैं। वे आज हमारे बीचमें हैं—अपने दुर्भाग्यसे, पर हमारे सौभाग्यसे !!

महात्मा गांधी और मि० जिन्ना—

सुप्रसिद्ध खाकसार नेता अल्लामा मशरिकीने महात्मा गांधीको तार देकर मि० जिन्नासे हिन्दू-मुस्लिम समस्यापर वार्तालाप करनेका अनुरोध किया था। साथ ही आपने मि० जिन्नाको भी एक तार दिया था, जिसमें आपने उनसे इस बातका अनुरोध किया था कि वे महात्मा गांधीके साथ मिलकर हिन्दू-मुस्लिम समझौता कर लें। मि० जिन्नाको आपने शिष्टताका एक छोटा-सा पाठ पढ़ानेका भी साहस किया था और इस उद्देश्यसे लिखा था कि महात्मा गांधी बहुत बीमार हैं और इस दशामें उनसे मिलकर उनकी अस्वस्थताके लिए सहानुभूति प्रकट करनेमें आपके आत्म-सम्मानको कोई धक्का न लगेगा, वरन् यह बात आपकी प्रतिष्ठा और शिष्टताके अनुकूल होगी।

परन्तु, जैसा कि सुना जाता है, मि० जिन्नाने अल्लामा-को उत्तर देनेका भी कष्ट नहीं उठाया है। महात्मा गांधीने तो अपनी स्वाभाविक शिष्टता और शालीनतासे अल्लामा मशरिकीके तारका उत्तर दिया और उसमें इस बातकी भी चर्चा की कि कायदे आजमसे गत वर्षवाला किया गया मेरा निवेदन आज भी उसी प्रकार कायम है। अल्लामाको भेजे हुए महात्मा गांधीके इस उत्तरपर मि० जिन्नाके खास पत्र "डान" ने यह सुझाव उपस्थित किया कि महात्मा गांधी पिछले वर्षवाला अपना वह पत्र प्रकाशित करें, जो उन्होंने मि० जिन्नाको लिखा था; कारण जनता उस पत्रकी बातोंसे पूर्णतः अनभिज्ञ है। "डान" के इस सुझावके अनुसार महात्मा गांधीने अपने उस पत्रकी प्रतिलिपि प्रका-शित करा दी, जिसमें उन्होंने मि० जिन्नाके कहे अनुसार उनसे मिलनेकी तथा हिन्दू-मुस्लिम समस्या हल करनेकी

प्रबल इच्छा प्रकट की थी। पर, इसपर मि० जिन्नाने न तो गांधीजीको कोई पत्र ही लिखा और न उनसे भेंट ही की। मि० जिन्ना उन लोगोंमें हैं, जिनके अहङ्कार और आत्म-सम्मानकी झूठी भावनाओंने उनके भीतर अनेक दुर्गुणोंके अतिरिक्त अशिष्टता और असहिष्णुताकी मात्रा आवश्यकतासे अधिक भर दी है। उन्हें देखकर और राजनीतिमें उनकी शतरञ्जी चाल देखकर कभी-कभी विस्मय और कौतूहलकी सीमा नहीं रहती।

मि० जिन्नाने राजनीतिमें एक कट्टर राष्ट्रवादीके रूपमें प्रवेश किया था। उस समय राष्ट्रीयताका माप-दण्ड सुन्दर भाषण ही था। मुस्लिम-लीगको आप बराबर भला-बुरा सुनाते रहे। उन दिनों कदाचित ही कोई व्यक्ति साम्प्रदायिकताका आपसे अधिक कट्टर विरोधी हो। सन् १९०६ ई० में मुस्लिम लीगका जन्म हुआ था। उस समय आप इसे राष्ट्र-विरोधी संस्था कहते। मौलाना मुहम्मद अली और सर वजीर हसनके आग्रहसे आप सन् १९१३ ई० में मुस्लिम-लीगमें सम्मिलित हुए थे, फिर भी आपका दृष्टिकोण सर्वथा राष्ट्रीय था। सन् १९२० ई० तक आपने कांग्रेसका साथ दिया था। सन् १९२० ई० के नागपुरवाले कांग्रेस-अधिवेशनमें, जब आपके घोर विरोधके बाद भी असहयोगका प्रस्ताव पास हो गया, आपने पैंतरेबाजी शुरू की। बात यह थी कि आपमें त्यागका सर्वथा अभाव रहा है और रचनात्मक कार्य करते हुए जेल जानेकी कठिनाइयोंके सहनेका धैर्य आपमें कभी न रहा। ऐसी अवस्थामें कांग्रेसको छोड़ना आपके लिए आवश्यक था। पर बिना नाम और लीडरीके जीवन व्यतीत करना भी आपके लिए सम्भव न था। आप अवसरकी तलाशमें थे। सन् १९२० में मुस्लिम-लीग भी कांग्रेसकी ही भांति खतरनाक थी, कारण खिलाफतके प्रश्नपर उसका भी एक कार्यक्रम जेल जाना ही था। इसलिए कई वर्षोंतक मि० जिन्ना मुस्लिम-लीगसे भी कांग्रेसकी तरह भागते रहे। अन्तमें अवसरवादी मि० जिन्नाको अवसर प्राप्त हुआ। प्रतिक्रियावादी मुसलमान नेताओंने कांग्रेसके विरुद्ध आवाज उठायी। मुस्लिम-लीगने राष्ट्रीयताको त्यागकर साम्प्रदायिकताका चोगा धारण किया और मि० जिन्नाको लीडरी मिल गयी।

तबसे आजतक मि० जिन्नाने अपने विष-वपनके द्वारा राष्ट्रीयता तथा भारतीय स्वतन्त्रताका घोरतम विरोध किया है और आज भारतकी भौगोलिक एकाईको नष्ट करनेके प्रयत्नमें हैं। महात्मा गांधी तथा कांग्रेसने इनके सिरको आसमानपर चढ़ा दिया है। जिन परिस्थितियोंसे होकर मि० जिन्नाकी मनोवृत्ति काम कर रही है, उनसे हिन्दू-मुस्लिम समझौता आकाश-कुसुमके समान है और जितना भी महात्मा गांधी मि० जिन्नाके सामने समझौतेके लिए सिर पटकेंगे, मि० जिन्ना अपनी स्वाभाविक अशिष्टतासे मार्गमें रोड़े अटकायेंगे। हमारी पराधीनताका यह भी एक अभिशाप है कि मि० जिन्ना-जैसे लोग भी देशके एक महत्वपूर्ण सम्प्रदायका नेतृत्व करते हैं।

साम्राज्यवाद बनाम मानववाद—

बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटीके वाइस चांसलर सर सर्वपल्ली राधाकृष्णनकी गणना विश्वके उन इने-गिने विचारकों और मनीषियोंमें है, जिनका प्राच्य और पाश्चात्य, दोनों ही सभ्यता और संस्कृति तथा दर्शनपर समान रूपसे अधिकार है। चीन-सरकारके आमन्त्रणसे आप हालमें ही चीन गये थे और वहांके विद्यालयों तथा अन्यान्य संस्थाओंमें आपने भारतीय और चीनी संस्कृति तथा एकतापर अनेकों उपयोगी एवं विचारपूर्ण भाषण दिये। धर्म और दर्शनपर चीनमें आपने जो व्याख्यान दिये, उन्हें चीनी सरकार प्रकाशित कर देना चाहती है।

विगत २१ वीं मईको सर राधाकृष्णन चीनसे कलकत्ते वापस लौटे। इस यात्राके अनुभवके बाद आपने जो विचार प्रकट किये हैं, वे सर्वथा आदरणीय और स्तुत्य हैं। आपने कहा—मेरी समझमें तो यही उचित है कि सभी राष्ट्रोंका समानाधिकार रहे, तथा समृद्ध राष्ट्र पिछड़े हुए राष्ट्रोंकी आर्थिक उन्नतिमें सहायक हों। न तो अब साम्राज्यवाद ही चल सकता है और न न्यारे रहनेकी नीति ही। यदि पहलेकी भूलें पुनः नहीं दुहरानी हैं, तो विभिन्न देशोंमें प्रगतिशील वर्गोंका वहांकी सरकारोंपर नियन्त्रण होना चाहिये, तथा उन्हें भविष्यको सुरक्षित बनाना चाहिये। इस प्रशंसनीय लक्ष्यकी पूर्त्तिमें चीनका प्रमुख हाथ होगा।

चीनके वर्तमान सङ्कटपूर्ण युद्धके सम्बन्धमें चीनियोंको सन्देश देते हुए सर राधाकृष्णनने कहा—चीनी विद्यार्थियोंके अध्यवसाय पर मैं मुग्ध हूं। वे नाना प्रकारकी कठिनाइयोंका सामना करते हुए अपने कार्यमें लगे हुए हैं। मेरा विश्वास है कि क्षणिक विफलता चाहे भले ही हो ले, पर अन्तमें चीन कदापि पराजित नहीं हो सकता।

चीनकी अन्तिम विजय और आजके साम्राज्यवादकी समाप्तिकी आशावादिता और दृढ़ विश्वासमें हम प्रार्थना-

पूर्ण हृदयसे सर राधाकृष्णनका समर्थन करते हैं। हम उन लोगोंमें हैं, जो भविष्यके मानववाद और विश्व-मानवके भावी कल्याणमें केवल आशा ही नहीं, वरन् परम विश्वास रखते हैं। वर्त्तमान युद्ध छिड़नेके शीघ्र ही बाद महात्मा गांधीने यह विचार प्रकट किया था कि युद्धमें चाहे जिस पक्षकी भी विजय हो, एक बात स्पष्ट है और वह यह कि युद्धकी समाप्तिके बाद संसारमें गरीबोंका शासन होगा। महात्मा गांधीके उस कथनका सर कृष्णनने दूसरे शब्दोंमें और अपने ढङ्गसे समर्थन किया है। युद्धके बाद, भीषण जन-संहारसे क्षुब्ध संसारमें मानवताके बदले हुए दृष्टि-कोणके कारण आजका संसार पूर्णतः परिवर्तित हो जायगा। उस परिवर्तित संसारमें मानव-समाजकी विचार-धाराएं साम्राज्यवादको सहन नहीं कर सकेंगी और स्वाभाविक रूपसे आजके राष्ट्रीयवादके स्थानपर अन्तर्राष्ट्रीयवाद और विस्तृत मानववादका प्रचार होगा।

इस मानववाद और चीनकी विजयमें घनिष्ट सम्बन्ध है और यदि यह बात कही जाय कि ये दोनों एक ही समस्याके भिन्न-भिन्न पहलू हैं, तो अत्युक्ति न होगी। चीनकी विजयमें हम केवल फासिस्टवाद और नाजीवादका ही अन्त नहीं देखते, वरन् उस साम्राज्यवादके भी अन्तकी कल्पना और विश्वास करते हैं, जो फासिस्टवादका एक आवश्यक अङ्ग है और जिसके द्वारा एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र अथवा राष्ट्रोंपर शासन करता है। यदि वर्त्तमान युद्धका उद्देश्य संसारमें शान्ति, सुख, सुरक्षा और प्रजातन्त्रवादको स्थापित कर अन्तर्राष्ट्रीय लूटको सदाके लिए निर्मूल करना है, तो भारतकी इस गतिरोध और पराधीनताका कोई अर्थ नहीं। पर किसी देशकी स्वतन्त्रता दूसरे देशोंकी इच्छा और अनिच्छापर निर्भर नहीं करती। भारतकी समस्या भी इस नियमका अपवाद नहीं है। भारतीय गतिरोध तथा भारतीय स्वतन्त्रताके मार्गमें मि० चर्चिल तथा एमरी आज जितनी भी बाधा उपस्थित करें, युग-धर्मकी इस तीव्र प्रगति और विस्तृत अन्तर्राष्ट्रीयताके प्रवाह अत्यन्त निकट भविष्यमें संसारमें भीषण और महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन लानेवाले हैं। कोई भी शक्ति और साम्राज्यवाद इन परिवर्त्तनोंको रोक नहीं सकता। आवश्यकता इस बातकी है कि भारत आनेवाले उस स्वर्ण-प्रभातके लिए तैयार रहे और इस बातके लिए पूर्ण प्रयत्नशील हो कि विश्व-राष्ट्रमें उसे अपना उचित स्थान और सम्मान प्राप्त हो। चीनकी विजय और चीनकी स्वतन्त्रता भारतको अछूता नहीं रख सकती। भारत चीनके परिवर्त्तनोंसे बञ्चित नहीं रह सकता। इसीलिए हम चीनकी विजय और जापानी साम्राज्यवादकी हारमें संसारके भावी कल्याणकी कामना करते हैं। साथ ही जापानकी अन्तिम पराजयके लिए हम चाहते हैं कि ब्रिटेन आज भी अपनी भूल समझे और उसे स्वीकार कर भारतमें राष्ट्रीय सरकार स्थापित करनेमें प्रयत्नशील हो। भारतका सम्पूर्ण सहयोग प्राप्त करनेपर पूर्वी एशियामें मित्रराष्ट्रोंकी महान् कठिनाइयां सरल और विजयोन्मुख हो जायंगी।

सत्यार्थ प्रकाश—

विगत २९ वीं मईको रातको लाहौरमें सङ्गठित गुण्डोंके एक दलके द्वारा कुछ ऐसे कार्य सम्पन्न किये गये, जिससे लाहौर की सर्वसाधारण हिन्दू जनता और विशेषकर आर्यसमाजी भाइयोंमें सनसनी फैल गयी। मुसलमान गुण्डोंके एक सङ्गठित दलने सत्यार्थ प्रकाशमें आग लगा दी। घटना इस प्रकार बतलायी जाती है कि 'सत्यार्थ प्रकाश'के छपे फर्मोंमें, जो दफ्तरीके यहां जिल्द बांधनेके लिए ले जाये जा रहे थे, कुछ मुसलमान गुण्डोंने आग लगा दी और आग बुझानेके प्रयत्नमें व्यस्त एक नवयुवककी पीठमें उन्होंने छुरा भोंक दिया। घटनास्थलपर पुलिसके पहुंचते ही वह अस्पताल पहुंचा दिया गया और वहां उसकी मृत्यु हो गयी।

लाहौरके कुछ मुसलमान गुण्डोंके सङ्गठित दलके इस नीचतापूर्ण और अदूरदर्शी कार्यसे देशकी केवल हिन्दू जनताका ही नहीं, वरन् प्रत्येक राष्ट्रवादीका हृदय, चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, क्षोभसे अशान्त है। विश्वकी इस बढ़ती हुई प्रगतिमें भारत ही ऐसा अभागा देश है, जहां आज भी कठमुल्लाओंकी चल रही है और जहां आज भी धर्मान्धताके नामपर हत्यायें की जा रही हैं। मध्यकालीन युगके इस बर्बर कार्यका प्रदर्शन किसी सीमातक धर्मान्धता की आड़में सह्य हो सकता था, पर आज बीसवीं शताब्दीके इस युगमें, जब कि राष्ट्रीयताके भग्नस्तूपोंपर अन्तर्राष्ट्रीयता और मानववादकी नींव डाली जा रही है—ये बातें समस्त समझदार और राष्ट्रीय व्यक्ति द्वारा घृणा और क्षोभसे ही देखी जायंगी।

आर्यसमाजका इतिहास—उसके संस्थापक स्वामी दयानन्दसे लेकर आजतक—त्याग, बलिदान और शहादतका इतिहास रहा है। आर्यसमाजका जन्म उस समय हुआ था, जब कि रूढ़िवादके प्राबल्यके कारण और युग-धर्मके पहचानने तथा उसके अनुकूल जातीय-जीवनको सङ्गठित करनेके अभावमें हिन्दू जाति मरणासन्न थी। स्वामी

दयानन्दने हिन्दुओंके सामने एक नये जातीय सङ्गठन और सामाजिक-जीवनका आदर्श रखा था और उस आदर्शकी पूर्तिमें आर्यसमाजने नर-रक्तकी आहुतियां जगायी हैं। स्वामी दयानन्द, धर्मवीर लेखराम, पं० गुरुदत्त, स्वामी श्रद्धानन्द, श्री राजपाल तथा अनेक आर्यसमाजी नेताओंकी हत्यायें इस बातके जीवित प्रमाण हैं। बलिदानोंके पथसे जानेवाले आर्यसमाजके लिए यह नया बलिदान उसकी प्रगतिमें और भी उत्तेजना और ओज देगा, इसमें सन्देह नहीं। हम आर्यसमाजी नहीं हैं, आर्यसमाजकी बहुत-सी बातोंसे हमारा घोर मतभेद है, फिर भी हम आर्यसमाजके बलिदानोंको श्रद्धा और आदरसे देखते हैं।

लाहौरके उक्त मुसलमान गुण्डोंके इस निन्दनीय कार्यको हम अत्यन्त घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं। यदि हिन्दुओंके दलने इसी परिस्थितिमें कुरानमें आग लगा दी होती, तो उनके उस कार्यको भी हम उतनी ही घृणासे देखते, जितना आज उपरोक्त घटनाको देखते हैं। इस अवसरपर हम समझदार मुसलमानोंको ऐसे निन्दनीय कार्यसे सतर्क करना अपना आवश्यक कर्त्तव्य समझते हैं। हम उन्हें इस महत्त्वपूर्ण बातपर विश्वास दिलाना अपना कर्त्तव्य समझते हैं कि रक्तपातों और हत्याओंके द्वारा किसी धर्म एवं जातिकी प्रगतिका अवरोध नहीं किया जा सकता। निर्दोष रक्तोंसे कलङ्कित तलवारें एक दिन अपने सिरपर ही टूट पड़ती हैं। इतिहास इस बातका साक्षी है। तलवार और रक्तपातोंके बलपर फैलनेवाला मुस्लिम साम्राज्य, जिसका झण्डा एक समय स्पेनसे लेकर भारत तक फैल रहा था, अपनी नृशंसताओंमें आप ही मिट गया और उनके भस्मावशेषों पर बीती हुई शताब्दियोंने न जाने कितने शासनोंकी नींवें रखीं।

लाहौरकी इस दुर्घटनाकी तहमें "सत्यार्थ-प्रकाश" के विरुद्ध कुछ दिनोंसे उठाये जानेवाले मुस्लिम आन्दोलनका स्पष्ट हाथ है, इस बातसे कोई भी समझदार व्यक्ति इनकार नहीं कर सकता। यह आन्दोलन कितना विषैला और उन्मादपूर्ण है, इस सम्बन्धमें कहनेकी आवश्यकता नहीं। आज "सत्यार्थ-प्रकाश" के विरुद्ध आन्दोलन है, कल वेदों और पुराणोंके विरुद्ध हो सकता है और वे धर्म-ग्रन्थ जलाये जा सकते हैं।

पर हमारी दृष्टिमें लाहौरकी दुर्घटनामें उन मुसलमान गुण्डोंसे अधिक हिन्दुओंका दोष है। जो जाति दुर्बल है और सङ्गठनके अभावमें पीड़ित और जर्जर है, वह दुतरफा अपराधी है, कारण जातीय सङ्गठनके अपने अभावमें और इसलिए अपनी दुर्बलताके द्वारा वह केवल स्वयं पीड़ित और पददलित नहीं होती, वरन् दूसरोंको अपनेपर अत्याचार करनेका प्रलोभन और आमन्त्रण देती है। हिन्दुओंका सबसे बड़ा पाप उनमें सङ्गठनका अभाव और हिन्दू-संस्कृतिसे उनकी उदासीनता ही है।

शिक्षा-क्षेत्रमें घातक साम्प्रदायिकता—

आखिर लीगी कायदे आजम मि० जिन्ना बङ्गालमें भी कूद पड़े। पञ्जाब और सिन्धमें कायदे आजमको सफलता मिली थी और पिछले दिनों जब पञ्जाबमें उन्हें मुंहकी खानी पड़ी,तो बङ्गालके लीगी मन्त्रिमण्डलके सहारे उन्होंने बङ्गालमें अपने पाकिस्तानी स्वप्नकी योजना बनानेकी चेष्टा की। इधर बङ्गाल व्यवस्थापिका सभामें जो नया बिल "माध्यमिक शिक्षा बिल" के नामसे उपस्थित है, इस दिशामें उनका एक जबर्दस्त कदम है और हिन्दुत्वके मुख्य अङ्गपर चोट करनेकी घातक चाल है। उन्हें किस प्रकार सह्य हो सकता था कि हिन्दू अपनी संस्कृति, सभ्यता और रुचिके अनुसार ही शिक्षा प्राप्त करें, इसलिए शिक्षाके क्षेत्रमें भी साम्प्रदायि-

कताका जामा पहनकर आप कूद पड़े। अभीतक कमसे-कम शिक्षाके क्षेत्रमें साम्प्रदायिकताका भूत न था, पर १९४० में कुछ हलचल शुरू हुई और ढाकामें पिछले दिनोंकी अव्यवस्था और साम्प्रदायिक भावनासे लाभ उठाकर वहांकी यूनिवर्सिटीमें साम्प्रदायिक बोर्डोंकी स्थापना हो गयी और परिणाम-स्वरूप शिक्षा-भवनमें भी हिन्दू-मुसलमानोंके बीच तू-तू मैं-मैं हो रही है,वह नितान्त शोचनीय है। इस अव्यवस्थासे लाभ उठाकर बङ्गालके लीगी मन्त्रिमण्डलको न्यायतः यह बिल व्यवस्थापिका सभामें नहीं लाना चाहिये था, पर उन्हें इस झगड़े और गन्दगीसे क्या मतलब ? उन्हें तो अपना लीगी झण्डा अलग खड़ा करना है। वर्त्तमान मन्त्रिमण्डलका कहना है कि बङ्गाल असेम्बलीमें उपस्थित माध्यमिक शिक्षा बिल १९४२ में उपस्थित माध्यमिक शिक्षा बिलका ही रूप है और हिन्दू इसका विरोध क्यों कर रहे हैं, पर वर्त्तमान बिलका अध्ययन करनेपर इसका भेद साफ हो जाता है। वर्त्तमान बिलमें साम्प्रदायिक निर्वाचन-पद्धति रखी गयी है, जब कि पिछले समझौतेमें यह बात न थी। पहलेके बिलमें जो बोर्ड बनाये जानेकी बात थी, उसे पूर्णरूपसे अधिकार दिया गया था कि अपने क्षेत्रमें किसी प्रकारकी बाहरी बाधा स्वीकार न करे, किन्तु वर्त्तमान बिलमें ऐसी बात नहीं रह गयी है। बोर्डका सभापति सरकार द्वारा निर्वाचित होगा और हिन्दू-मुसलमान समान संख्यक सदस्योंके अतिरिक्त धारा सभाके भी सदस्य लिये जायेंगे। सभापतिके चुनावके लिए पहले बोर्डको कुछ नामोंके सिफारिश करनेका अधिकार था; किन्तु वर्त्तमान बिलमें यह न होकर पूर्णतः सरकारी हाथोंमें ही छोड़ दिया गया है कि वे जिसे चाहें बोर्डका चेयरमैन बना दें। सरकार अभी दुर्भाग्यवश मुस्लिम लीगी है और वह निश्चय ही अपने ही पक्षके आदमीका निर्वाचन करेगी और इस तरह समान संख्यामें बोर्डके सदस्य होनेपर भी चेयरमैन लीगी होगा और जिधर चाहेगा, शिक्षाकी नकेल घुमा देगा।

उपर्युक्त तथ्योंके अतिरिक्त अन्य अनेकों ऐसी बातें हैं, जिन्हें कोई भी स्वाभिमानी हिन्दू या राष्ट्रीय मुसलमान स्वीकार नहीं कर सकता, पर बङ्गाल मन्त्रिमण्डल तो इस बिलको किसी तरह असेम्बलीमें पास करानेपर तुला हुआ है। १९४२ का समझौता भी भद्दा था, पर उसे हिन्दुओं-

ने राष्ट्रीय एकताके नामपर स्वीकार कर लिया था। पर बिलका वर्त्तमान रूप तो अत्यन्त आपत्तिजनक है और हिन्दू संस्कृतिपर भविष्यमें एक घातक चोट पहुंचायेगा। यह पाकिस्तानकी एक सरल सड़क है। हिन्दू कहीं भी अल्प-संख्यकोंमें नहीं हैं। उन्हें अल्प-संख्यक कहना और उसके बहाने एक कानून लादना घोर नाजी मनोवृत्ति है। आश्चर्य है कि अङ्गरेज सरकार इस तरहकी मनोवृत्तिकी एक तरफ तो निन्दा करती है और दूसरी ओर उसी तरह की कार्यवाहियोंको चुपचाप बैठी हुई देखती है। बहुसंख्यक हिन्दू जातिपर अल्पसंख्यकों द्वारा कानून लादना कैसे उचित कहा जा सकता है। अगर मान भी लिया जाये कि हिन्दू अल्पसंख्यक हैं, तो उन्हें अल्पसंख्यकका परम अधिकार "सरकारी रक्षण" प्राप्त होना चाहिये। जिस कानून के खिलाफ समस्त हिन्दू जाति और बहुत बड़ी संख्यामें मुसलमान भी हैं, उसे किस प्रकार असेम्बलीमें गृहीत किया जा रहा है?

अभीतक शिक्षा ही साम्प्रदायिकताके कलङ्कसे बची थी, पर उसमें भी मि० जिन्नाके अधीन लीग अपना अधिकार बताना चाहती है। अभीतक शिक्षकोंका निर्वाचन योग्यताके आधारपर होता रहा है, अब होगा हिन्दू और मुसलमानोंकी गिनतीपर; अभी तक हिन्दू अपनी सभ्यता और संस्कृतिके प्रतीक-पुस्तक पढ़ते रहे हैं, अब उन्हें ऐसी पुस्तकें पढ़नी होंगी, जिन्हें नवीन बोर्ड पास करेगा; अभी-तक हिन्दुओंके भिन्न-भिन्न अङ्गोंमें कोई भेद न था, पर शिक्षा के पवित्र प्राङ्गणमें अब भाई-भाईको लड़ाया जायेगा। अगर मुसलमान या संसारकी कोई भी जाति अपनी उन्नतिके उपाय करती है, तो हमें आपत्ति नहीं; पर उस उन्नतिको हिन्दुओं और हिन्दुत्वके बलिदानकी आधार-शिलापर क्यों किया जा रहा है?

जैसा कि सर राधाकृष्णन एवं भारतके अन्य विद्वानोंने एक स्वरसे इस बिलका विरोध करते हुए कमसे-कम युद्ध-पर्यन्त इसे स्थगित करनेका प्रस्ताव किया है, उस प्रस्तावका हम आजके दुर्भिक्ष और क्षुधा पीड़ित बङ्गालमें बैठ कर हार्दिक समर्थन करते हैं। इस समय जरूरत है एकताकी, आपसमें गले काटनेकी नहीं। हम इस बिलपर भविष्यमें अधिक प्रकाश डालेंगे।

'विश्वमित्र' प्रेस, १४।१ ए, शम्भू चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्तासे नवलकिशोर सिंह द्वारा मुद्रित और प्रकाशित।

REGD. NO. C. 2230

विश्वमित्र कार्यालय
कलकत्ता

REGD. No. C. 2230

जुलाई, १९४४ वर्ष १२, संख्या १० आषाढ़, २००१

मानव-जीवन

यह जीवन ही तो जीवन है।
हंसना ही पड़ता है यद्यपि,
रोया-रोया अपना मन है॥

नास्तिकता या आस्तिकताको,
जिसको जी चाहे बलि करिये।

मानव-प्रेम बिना मानवता
अपनी, अपनों की दुश्मन है॥

रवि-शशिसे जो आंख लड़ाये,
नभको झुका भूमि पर लाये।

वह मानव है सच्चा मानव,
सच्चा उसका मानवपन है॥

प्रेम-लहर दुख-तटपर आयें,
मिटकर भी उसपर छा जायें।

ऐसी लहरोंका सागर मानवका,
दिल है जीवन-धन है॥

देव और दानव लोकोंकी-
सीमा मानवता कहलायी।

दोनों लोक समायें जिसमें,
वह मानवका दिल है, मन है॥

यह अंधियाला प्राणि जगत है,
प्रेम-ज्योतिसे जगमग जगमग।

ज्योति-पुञ्ज ऐसे कितने ही,
रखता हर मानवका मन है॥

—पद्मकान्त मालवीय

यूरोपमें द्वितीय मोर्चा

श्री डा० उमेशचन्द्र डी० लिट्०

जिस समय नाजी सेनाओंने युद्ध-घोषणा किये बिना ही सोवियट पितृभूमिपर अभियानका श्रीगणेश कर दिया, उस समय नाजी जर्मनीका यूरोप भरमें गहरा आतङ्क छाया हुआ था। फिनलैण्ड, नार्वे, स्वीडन, बेलजियम, हालैण्ड और फ्रान्स, यह सभी उत्तरी-पश्चिमी देश उसके अधिकारमें आ चुके थे। इटली तो उसका शिष्य अथवा अनुचर बन ही गया था। रूमानिया, बलगेरिया, हंगेरी, अलबानिया यूनान आदिपर भी उसने अपना अधिकार जमा लिया था। आष्ट्रिया तो सन् १९३८से ही उसके कब्जेमें था। जेकोस्लोवाकिया उसके अधिकारमें युद्ध आरम्भ होनेसे १ वर्ष पहले ही म्यूनिक पैक्टके प्रतापसे आ ही चुका था। पोलैण्डका आधा भाग जर्मनीके अधिकारमें था और आधे-पर रूसका कब्जा था। टर्की तटस्थ राष्ट्र था; पर वह अपना झुकाव मित्र राष्ट्रोंकी ओर दिखलाता रहा। इसी प्रकार पश्चिमी कोनेपर स्पेन भी तटस्थताका ढोंग रचता रहा। परन्तु वह छिपे-छिपे जर्मनीको हर तरहकी मदद पहुंचाता रहा। इस प्रकार हम देखते हैं कि जब नाजी जर्मनीने रूस-पर आक्रमण किया, तब वह यूरोपका शासक बन बैठा था। यदि यूरोपीय महाद्वीपपर उसका कोई सबल प्रतिद्वन्द्वी था, तो वह सोवियट रूस ही था।

फ्रेञ्च-तटपर अभियानके लिये मित्र सैनिक प्रतीक्षा कर रहे हैं।

हिटलरकी महत्वाकांक्षा

सोवियट रूस और जर्मनीमें अगस्त १९३९में जो गठ-बन्धन हो गया था, वह तो एक कूटनीतिक अभिनय था। दोनों ही देश यह भली भांति समझते थे कि हमारी यह मैत्री टिकाऊ नहीं, कामचलाऊ ही है और जब तक चले तभी तक वह सन्धि है, नहीं तो उसके पीछे युद्धकी भावना तो छिपी ही थी। जर्मनीके नेता हिटलरने अपनी आत्मकथा "मेरा सङ्घर्ष" में सबसे अधिक विष सोवियट रूस, समाज-वादी व्यवस्था, मार्क्सवाद और यहूदियोंके प्रति ही उगला है। अनेक स्थलोंपर हिटलरने स्पष्ट शब्दोंमें यह कहा है कि हमारे लिए-हमारी सुरक्षा, हमारे कल्याण और औपनि-वेशिक साम्राज्य विस्तारके लिए यह बोल्शेविज्म एक महान खतरा है। और यह यहूदी जाति तो जर्मन-जाति (जो संसारमें सर्वश्रेष्ठ आर्य जातिकी प्रतिनिधि है) की जानी दुश्मन है। इसलिए जर्मनीको इन दोनोंका सर्वनाश करके ही दम लेना होगा।

अतः जब यूरोपके पश्चिम-उत्तरी तथा पूर्वीय भागके सभी देशोंपर हिटलरी जर्मनीका अधिकार जम गया, तब उसके सामने दो ही रास्ते थे। या तो वह ब्रिटेनसे युद्ध कर उसका सर्वनाश कर दे, अथवा रूससे उलझ कर उसका मटियामेट कर दे। इनमें पहले तो उसने प्रथम मार्गको ही अपनाया और फ्रान्सपर जून १९४० में जर्मनीका अधिकार हो गया। सितम्बर १९४० में जर्मनीने लन्दनपर विद्युत हवाई आक्रमण शुरु किये।

टेम्स नदीकी ओर भारी हमले किये गये। इन हमलोंमें ३०६ व्यक्ति मरे और १३३७ आहत हुए।

सुना जाता था कि नाजी सेनाएं ब्रिटेनमें उतरेंगी और इसके प्राथमिक प्रयोगके लिए क्रीटमें परीक्षण किया गया था। अक्तूबर १९४० में इटलीने यूनानपर हमला कर दिया। इसमें उसकी अग्नि-परीक्षा हो गयी। यूनानियोंने ३ मास तक डटकर इटालियनोंसे युद्ध किया और अन्तमें उन्हें न केवल अपनी मातृभूमिसे प्रत्युत अल्बानियासे भी निकाल बाहर कर दिया। इससे इटलीके डिक्टेटर मुसोलिनीकी शान मिट्टीमें मिल गयी और उसके परम गुरु हिटलरने निश्चय किया कि इसका बदला नाजी सैनिक लेंगे। अतः ६ अप्रेल १९४१ को जर्मन सेनाओंने एक साथ ही यूनान और यूगोस्लाविया पर हमला कर दिया। यूगोस्लाव सेनाने १०-१२ दिनोंमें ही आत्मसमर्पण कर दिया। लेकिन यूनानी अङ्गरेजोंकी सहायतासे जूझते रहे, और २१ अप्रेलको यूनानके बादशाहने आत्म-समर्पण कर दिया।

इसके बाद क्रीटका युद्ध आरम्भ हुआ। इस टापूपर ब्रिटेनने अपने हवाई अड्डे कायम कर लिये थे। २० मई १९४१ को १९०० छद्मवेशी जर्मन पैराशूटोंके द्वारा टापूपर उतरे। फिर तो कुछ ही सप्ताहोंमें ३०००० जर्मन सैनिक इस टापूमें विमानों द्वारा उतारे गये। भीषण संग्रामके बाद क्रीटपर जर्मनीका अधिकार।

अब जर्मनीके सामने यह प्रश्न था कि वह किस दिशामें अपना अगला क़दम उठाये। उसके लिए दो ही मार्ग थे, जैसा कि हमने ऊपर कहा है-या तो ब्रिटेनमें नाजी सेनाएं उतारी जांय और ब्रिटेनको रण-भूमि बनाया जाय, अथवा सोवियट रूस का खात्मा करके एशियामें नाजी साम्राज्यकी नींव डाली जाय। पहला मार्ग जरा जटिल और कम लाभप्रद था। ब्रिटेनमें सेनाएं उतार कर लड़ना टेढ़ी खीर थी, क्योंकि ब्रिटेनकी सरकारने अपने गृहकी रक्षाके लिए बड़े पैमानेपर तैयारियां कर ली थीं। फिर, ब्रिटेनको लेनेसे साम्राज्य-विस्तारका प्रश्न हल नहीं होता था। क्योंकि इसके लिए पूर्व ही उचित दिशा थी। दूसरे हिटलरको सोवियट भालूसे भी बड़ा खतरा बना हुआ था।

अतः हिटलरने यही सोचा था कि पहले रूससे ही निबट लिया जाय।

रूसपर आक्रमण

अतः २२ जून १९४१ को प्रभातमें हिटलरने अपनी सेनाएं लेकर रूसकी १८०० मील लम्बी सीमा पर चढ़ाई कर दी। सारे संसारको इससे विस्मय हुआ। लेकिन हिटलरने जिस आशा और उल्लासके साथ अभियान शुरु किया, वह अन्त तक पूरा नहीं हो सका। रूसकी रणभूमिपर जर्मन सेनाओंकी इतनी भारी पराजय हुई है, कि जिसकी किसीको कल्पना भी नहीं थी। लेकिन सोवियट संघकी दृढ़ता, वीरता और मातृभूमिके प्रति अटूट भक्तिको देखिए कि वे प्राणपणसे नाजी सेनाको नष्ट करनेके लिए उद्यत हो गए।

हिटलरी यूरोपको मुक्त करनेके लिये अमेरिकन सैन्यदलोंका प्रयाण

द्वितीय मोर्चेकी मांग

जून, जुलाई और अगस्त१९४१ तक जर्मन सेनाओंने बड़ी विद्युत गतिसे हमले किये और अन्त तक इसी प्रकार वे करते रहे। तब स्टेलिनने मित्रराष्ट्रोंसे यह अपीलकी कि यदि वे रूसकी वास्तवमें सहायता करना चाहते हैं, तो

यह आवश्यक है कि हिटलरकी सैन्य-शक्तिको नष्ट करने तथा रूसपर उसका चाप कम करनेके लिए यूरोपमें शीघ्र ही मित्रों द्वारा दूसरा मोर्चा कायम किया जाय। इस प्रकार सितम्बर १९४१ से ही सोवियट रूसकी यह मांग रही थी कि यूरोपमें दूसरा मोर्चा कायम किया जाय। अगस्त १९४२ में राष्ट्रपति रूजवेल्टकी ओरसे वैण्डल विल्की मध्यपूर्व, अफ्रिका, टर्की, ईरान, रूस और चीनका निरीक्षण करने गये। जिस समय वह मास्कोमें थे, उसी समय उन्होंने पत्रकारोंके सम्मेलनमें इस आशयका एक वक्तव्य दिया था कि रूसमें खाद्य,वस्त्र,औषध और युद्ध सामग्रीकी बड़ी कमी है। इसलिए अविलम्ब रूसको प्रचुर मात्रामें ये चीजें भेजी जायं। लेकिन मित्रराष्ट्र यूरोपमें दूसरा मोर्चा कायम करके ही रूसकी असली मदद कर सकते हैं। इस वक्तव्यसे ब्रिटेन और अमेरिकाके सरकारी क्षेत्रोंमें बड़ा सन्नाटा छा गया और महीनों तक न रूजवेल्टने और न चर्चिलने ही इसपर कोई विचार या मत प्रकट किया।

लेकिन मित्रराष्ट्र रूसको बराबर यह आश्वासन देते रहे कि शीघ्र ही यूरोपमें मोर्चा कायम होगा। पहले चर्चिल ने अपने एक वक्तव्यमें यह कहा कि सन् १९४२ में यह मोर्चा कायम हो जायगा। जब मई १९४२ में रूसके परराष्ट्र मंत्री मोलोटोव लन्दन गये और रूस-ब्रिटेनके सन्धि-पत्रपर हस्ताक्षर किये, तब ब्रिटेनकी ओरसे ब्रिटिश परराष्ट्र सचिव एन्थोनी ईडेनने पार्लमेंटमें स्पष्ट रूपसे यह कहा था कि इस सम्बन्धमें दोनों देशोंमें समझौता हो गया है कि इस वर्ष (अर्थात् १९४२ में) यूरोप में द्वितीय मोर्चा कायम हो जायगा।

हिटलरका मानमर्दन

लेकिन सन् १९४२ भी खत्म हो गया। और सन् १९४२ के अन्तके साथ रूसकी स्थितिमें भी कायापलट हो गयी। उन दिनों वह स्टेलिनग्रेडकी लड़ाईमें जुटा हुआ था। उसके सामने जीवन-मरणका सवाल था। लेकिन फिर भी मित्रोंने दूसरे मोर्चेको स्थगित ही रखा। रूस अपनी अपूर्व वीरता, देशभक्ति और अतुलनीय बलिदानके प्रतापसे स्टेलिनग्रेडकी लड़ाईमें विजयी रहा और जर्मन सेनाओंको बुरी तरह परास्त होना पड़ा। लाल-सेनाने नाजी सेनाको खदेड़ नगरसे बाहर ही नहीं कर दिया, प्रत्युत तीन-चार मासमें ही अपने नाजी अधिकृत बहुतसे प्रदेशोंपर पुनः अधिकार प्राप्त कर लिया। तबसे लाल सेनाएं जर्मन-सेनाओंको खदेड़ती रही हैं। सन् १९४३ के अन्तमें तो रूसकी सेनाएं पोलैण्डमें उस सीमापर जा पहुंचीं, जो सन् १९३९ में निर्धारित की गयी थी। उसने रूमानियामें भी हमला कर दिया और क्रीमिया पर भी रूसका अधिकार हो गया। उत्तरमें उसने फिनलैण्डसे कुछ मांगें की थीं। लेकिन वे उसने मंजूर नहीं कीं। इसलिए अब लाल सेनाएं फिनलैण्डमें घमासान युद्धमें संलग्न हैं।

इस प्रकार पूर्वमें जर्मनीका जैसा मानमर्दन हुआ है, उससे हिटलरको एक बड़ा सबक मिला है। उधर मई सन् १९४३ में ट्यूनिसिया-विजयके बाद मित्रराष्ट्रोंने सिसलीपर अपना अधिकार जमा लेनेपर इटलीके शासक बेडोग्लियोके साथ विराम-सन्धि करके इटलीपर आक्रमण कर दिया, क्योंकि मुसोलिनीका पतन तो गत जुलाईमें ही हो चुका था। कहा जाता है कि बेडोग्लियोने यह षड़यन्त्र रचा था कि मुसोलिनीको पकड़कर मित्रराष्ट्रोंके हवाले कर दिया जाय। *

इटलीमें जर्मनोंके काफी फौजी दस्ते मौजूद थे। अतः मित्र सेनाओं और बेडोग्लियो की इटालियन सेनाओंको गत ३ सितम्बर १९४३ से जर्मन सेनाओंसे जूझना पड़ा। मित्रोंको आशा तो यही थी कि दो-तीन महीनोंमें ही रोम पर अधिकार हो जायगा। परन्तु इसमें उन्हें ९ मास लग गये और और गत ४ जूनको मित्र सेनाओंने रोममें प्रवेश किया। रोमको जर्मन सेनाओंने अरक्षित नगर (Open-city) घोषित कर अपनी सेनाएं उत्तरकी ओर हटा ली थीं। इस प्रकार मित्र आसानीके साथ रोममें प्रविष्ट हो सके।

रोमकी विजयके बाद ही यूरोपमें द्वितीय मोर्चेका भी श्री गणेश हो गया। द्वितीय मोर्चा कहां स्थापित किया जाय, इसके सम्बन्धमें सैनिक विशेषज्ञोंने नाना प्रकारके अनुमान किये थे। कुछेककी राय थी कि वह मोर्चा बालकानमें स्थापित होगा। लेकिन कुछेक नार्वेको उपयुक्त स्थान समझते थे। जिब्राल्टरके सम्बन्धमें भी कुछ रण-विशेषज्ञोंने अपना मत प्रकट किया था। फ्रांसके पश्चिमी तटसे मित्र अभियानकी योजनापर भी विचार किया जा रहा था

---

* हालमें ही जर्मन-पत्र 'हमबर्गर फ्रेमडेनब्लाट' में मुसोलिनीने अपनी गिरफ्तारी, बेडोग्लियोके षड़यन्त्र और जर्मनों द्वारा अपनी रक्षाके सम्बन्धमें एक लेख लिखा है। उसमें भी यह बतलाया है कि इस षड़यन्त्रका लक्ष्य मुझे पकड़ कर वाशिंगटन भेजना था।

और ऐसा अनुमान किया जा रहा था कि फ्रान्समें ही दूसरा मोर्चा कायम किया जायगा।

फ्रान्सका अभियान

गत ६ जूनको प्रभातमें मित्रराष्ट्रों—ब्रिटेन और अमेरिकाकी सेनाएं फ्रान्सके उत्तरी तटपर पैराशूटों द्वारा उतरीं और इस प्रकार वे यूरोपमें दूसरा मोर्चा कायम करनेमें पूर्णतया सफल हुई हैं। ब्रिटेनसे ४००० लड़ाकू जहाजी बेड़ा, सहस्रोंकी संख्यामें, सामरिक विमानों के साथ फ्रान्सके तटपर आ लगा। जिस दिन फ्रान्समें मित्र सेनाएं उतरीं, उसी दिन पार्लमेण्टमें ब्रिटिश प्रधान मन्त्री चर्चिलने यह घोषणा की कि इस समय मित्र सैन्यकी सहायताके लिए ११००० सामरिक विमान सुरक्षित हैं और जब आवश्यकता होगी, उनका उपयोग किया जायगा।

फ्रान्सके अभियानसे पूर्व मित्र सैन्यके प्रत्येक सैनिक एवं अफसरको मित्रराष्ट्रीय सेनाके प्रधान सेना-नायक जनरल आइसेन होवरका सन्देश दिया गया, जिसमें उन्होंने मित्र सैन्यके प्रत्येक सैनिक, नौ सैनिक एवं विमान चालकको सम्बोधन करते हुए यह कहा कि अब आप लोग एक महान धर्म-युद्धके लिए रणभूमिपर पग रखनेवाले हैं। सारे संसार की आंखें आपकी ओर लगी हुई हैं। अपने वीर मित्रों तथा दूसरे मोर्चेके सशस्त्र सैनिक बन्धुओंके सहयोगसे आप लोग जर्मन युद्ध-यन्त्र और यूरोपमें नाजी आतङ्कका सर्वनाश करने और स्वतन्त्र संसारमें अपनी सुरक्षा कायम रखनेके लिए समराङ्गणमें पग रखेंगे।

जनरल मोण्टगोमरी फ्रान्सकी रणभूमिपर मित्र सैन्यका सञ्चालन कर रहे हैं। जनरल आइसेन होवरका सदर मुकाम ब्रिटेनके दक्षिणी तटपर एक गुप्त स्थानपर स्थित है। और वह यहींसे यूरोपके द्वितीय मोर्चेका सञ्चालन कर रहे हैं। इस समय फ्रान्सके उत्तरी प्रान्त नारमण्डीमें घमासान युद्ध हो रहा है। मित्र-सैन्य उत्तरी फ्रान्सके प्रसिद्ध बन्दरगाह शेरबर्गको हस्तगत करनेके लिए अथक लड़ाई लड़ रही है। यह भी कहा जाता है कि मित्र सैन्यके आक्रमणका प्रतिरोध करनेके लिए सैन्य-सञ्चालनका भार हिटलरने अपने कन्धोंपर ले लिया है और इस समय वह उत्तरी फ्रान्समें मौजूद हैं।

मार्शल स्टेलिनकी दृष्टिमें

सोवियट रूसके प्रमुख सरकारी पत्र 'प्रवदा' के एक संवाददाताने जब मार्शल स्टेलिनके फ्रान्समें मित्र अभियानके सम्बन्धमें विचार जाननेकी इच्छा प्रकट की, तब मार्शलने उत्तर दिया—"यह निःसन्देह हमारे मित्रराष्ट्रोंकी एक शानदार सफलता है। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि युद्धोंके इतिहासमें इतने विशाल पैमानेपर, इतनी महान रण-कुशलताके साथ कोई आक्रमण नहीं किया गया।"

आगे मार्शल स्टेलिनने अपने इसी वक्तव्यमें मित्रोंके इस अभियानकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा करते हुए कहा कि जिस चैनलको पारकर ब्रिटेनपर अधिकार जमानेमें 'अजेय' नेपोलियनको विफल होना पड़ा और जिसके पार करनेके लिए हिटलर दो वर्षोंसे अपनी योजनाएं बना रहा था, उसे इतनी सफलताके साथ ब्रिटिश-अमेरिकन सेनाओंने कर दिखाया है। इतिहासमें यह एक महान घटना मानी जायगी।

मित्रसेनाओंके सुप्रीम कमाण्डर जनरल आइसेनहोवर

फ्रान्सका भविष्य

फ्रान्सके देशद्रोही पूंजीपति नेताओंकी स्वार्थपरता एवं नाजी मनोवृत्तिके कारण ही जून १९४० में फ्रान्सका पतन हुआ और वह नाजी कुचक्रका शिकार बन गया। यहां हमें फ्रान्सके पतनके कारणोंपर विचार नहीं करना है। लेकिन हम संक्षेपमें उनका उल्लेख मात्र कर देना उचित समझते हैं जिससे हम यह जान सकें कि जिस समय फ्रान्सका पतन हुआ, उस समय उसकी अवस्था

कैसी थी और क्या फ्रान्सके नेता आज भी उसी अवस्था-को फ्रान्समें फिरसे पैदा करनेके लिए सन्नद्ध हैं। ब्रिटिश पार्लमेण्टके प्रभावशाली समाजवादी सदस्य और सुप्रसिद्ध राजनीतिक लेखक श्री डी० एन० प्रिट महोदयने "फ्रेञ्च लोकतन्त्रका पतन" (The Fall of the French Republic) नामक पुस्तकमें इस सम्बन्धमें अच्छा विवेचन किया है। प्रिट महोदयका यह मत है कि फ्रान्सके पतनके कई कारण हैं, परन्तु उनमें उल्लेखनीय निम्नाङ्कित हैं :—

(१) फ्रान्समें आन्तरिक गृह-कलह, श्रमिक वर्ग तथा धनिक वर्गमें सङ्घर्ष और अन्तमें धनिक वर्गका शासन।

(२) श्रमिकों तथा कृषकोंका शोषण और दमन। *

(३) साम्यवादी पार्टीका दमन और उसके नेताओं-पर नाना प्रकारके अत्याचार।

(४) फासिस्टवादी प्रवृत्तियोंको प्रश्रय तथा फासिस्ट राष्ट्रोंके साथ फ्रेञ्च सरकारका सहयोग।

(५) युद्धके आरम्भके समय फ्रान्सका शासन-सूत्र लोकतन्त्री नेताओंके हाथसे हटा दिया गया और फासिस्ट नेताओंके हाथमें आ गया। सेनामें भी जनरल फ़ासिस्ट मनोवृत्तिके नियुक्त किये गये।

(६) सैनिक सामग्री और सामरिक प्रणाली पुराने ढङ्गकी रही, जब कि सन् १९१६ और सन् १९४० की लड़ाईमें आकाश-पातालका अन्तर हो चुका था।

(७) फ्रेञ्च पार्लमेण्टका गला घोंट दिया गया।

दालेदियर, रिनौ, वेगां, पेतां, बौडिन, लावल आदि देशद्रोही नेताओंके हाथमें शासन-सूत्र आ जानेसे फ्रान्सके पतनका मार्ग और भी साफ हो गया। फ्रान्सकी सरकारके प्रधान-मन्त्री पाल रिनौंकी प्रेमिका हेलेन डी पोर्टेस नाम्नी एक जर्मन महिला थी। रिनौ उसीके हाथका कठपुतला था। इस गुप्तचर महिलाका फ्रान्सकी राज-नीतिपर गहरा प्रभाव था। अन्तमें इसीकी सलाह मान कर रिनौने जर्मन सेनाका प्रतिरोध करना त्याग दिया। जनरल डी गालेने लाख कहा कि हमें जर्मनोंसे लड़ना चाहिये, पर उसकी एक न चली। अन्तमें पेतां प्रधान-मंत्री बनाये गये। १७ जून ४० को रिनौने त्यागपत्र दे दिया और पेतांने जर्मन सेनाके सामने आत्म-समर्पण कर दिया।

जनरल गाल और जनरल जिरौ कुछ फ्रेञ्च सेनाओं तथा युद्धपोतोंको लेकर ब्रिटेन चले गये। वहां उन्होंने स्वतन्त्र फ्रेञ्च आन्दोलन (Free French Movement) के अन्तर्गत फ्रान्सके बाहर समस्त स्वतन्त्र फ्रेञ्चोंका सङ्गठन किया और गालने उसका नेतृत्व स्वीकार किया। तबसे जन-रल डी गाल मित्रराष्ट्रोंके साथ उत्तरी अफ्रीकाकी लड़ाइयोंमें जुझता रहा। स्वतन्त्र फ्रेञ्च सेनाओंने मित्रराष्ट्रोंकी खूब सहायता की और अफ्रीकाके रण क्षेत्रोंमें वे बड़ी बहादुरीसे लड़े। ट्यूनीसिया विजयके बादमें इस आन्दोलनका नया नामकरण किया गया और वह फ्रेञ्च राष्ट्रीय मुक्ति कमेटी

ब्रिटिश सेनाओंके कमाण्डर जनरल मांटगोमरी

(National Committee of French Liberation) के नामसे प्रसिद्ध हुई। इसके अध्यक्ष जनरल डी० गाल नियुक्त किये गये। इस कमेटीका प्रत्येक सदस्य एक विभागका अध्यक्ष नियुक्त किया गया। एक प्रकारसे यह मन्त्रि-मण्डलके अनुरूप बनायी गयी। इससे वाशिङ्गटन और लन्दन सर-कारोंके कान खड़े हो गये। अब वाशिङ्गटन सरकारने डी गालके उत्साहको मन्द करनेके लिए उसपर—शीतल जलके छींटे देना शुरू किया। और यह ऐलान कर दिया गया कि अमेरिकन सरकार फ्रेञ्च स्वतन्त्र समितिको फ्रान्सकी सरकार नहीं मान सकती। रूजवेल्टके पद-चिह्नोंपर चल-

---

* इडगर मौवररने न्यूयार्क पोस्टमें लिखा था—"कुछेक धनी फ्रेञ्च इस युद्धमें पराजयकी अपेक्षा विजयसे अधिक आतङ्कित हैं। क्योंकि विजयसे क्रान्तिका उदय होगा।"

कर चर्चिल सरकारने भी डी गालको टका-सा जवाब दे दिया कि हम भी उनकी कमेटीको फ्रेञ्च सरकारके बतौर नहीं मान सकते । *

इसमें सन्देह नहीं कि वाशिङ्गटन और लन्दनके इस निर्णयसे डी गालको घोर निराशा हुई होगी। हम नहीं समझते कि जब पोलेण्ड, यूनान, हालैंड, बेलजियम, नार्वे जेकोस्लोवाकिया आदिके लन्दनमें भागे हुए मन्त्रियोंकी सरकारें लन्दन द्वारा वास्तविक एवं कानूनी सरकारें स्वीकार कर ली गयीं, तब जनरल डी गालकी कमेटीके साथ यह सौतेली-मा जैसा व्यवहार क्यों किया गया।

अब तो फ्रान्सपर अभियान भी शुरू हुए तीन सप्ताह बीत चुके। लेकिन इस बीच मित्रोंने फ्रांसके सम्बन्धमें अपनी नीतिका स्पष्टीकरण नहीं किया।

गत ९ जूनको जनरल आइसेन होवरने फ्रान्सके नागरिकोंके नाम जो सन्देश दिया है, उसमें उन्होंने यह कहा कि—"यह फ्रेञ्च जनताके लिए उचित ही होगा कि वे अपने नागरिक शासन (Civil Administration) प्रबन्धकी व्यवस्था करें और उचित रूपसे शान्ति और व्यवस्थाका प्रबन्ध करके हमारी सेनाओंकीसुरक्षाका उपाय करें।" लेकिन जनरल डी गाल उस व्यवस्थासे सन्तुष्ट नहीं हैं। फ्रेञ्च उन्मुक्त प्रदेशोंमें शासन किस प्रकार हो, इस सम्बन्धमें अभी उचित समझौता नहीं हो सका है। डी गालको यह आशङ्का है कि मित्र राष्ट्रीय सैनिक कमाण्ड फ्रान्समें सत्ता ग्रहण करेगा। लेकिन इसे स्वतन्त्र फ्रेञ्च कमेटीके नेता स्वीकार करनेको तैयार नहीं हैं। इसलिए इस प्रश्नको लेकर काफी बखेड़ा पैदा हो सकता है। हम नहीं समझते कि लड़ाईका अन्त ज्यों-ज्यों निकट दीख पड़ता है, त्यों-त्यों मित्रराष्ट्रोंका आदर्शवाद यूरोपके दूषित वायुमण्डलमें क्यों विलीन होता जा रहा है? क्या जनरल स्मट्सकी भविष्यवाणी सच तो नहीं होने जा रही है?

मेरे जीवनकी मनोरञ्जक घटनाएं

(१)

श्री गोपालराम गहमरी

सन् संवत् नहीं बतलायेंगे, लेकिन वैशाखका महीना था, नातेदारोंके बहुत मना करनेपर भी हमारे मित्र बाबू दशरथ सिंहकी लड़कीका व्याह वैशाख सुदी दूजको ठीक हुआ। अब वह मित्र हमारे ही ऊपर लड़कीके गहनोंका भार देकर हमारे सिरहाने दो हजार रुपये रखकर चले गये। उन दिनों तीन बजे सवेरे गहमरसे पैंसिंजर पश्चिम जानेके लिए पहुंचती थी। रातके बारह बजे वह दो हजारका बोझा हमारे ऊपर आ पड़ा।

अब हम ऐसे असमञ्जसमें पड़े कि तीन घण्टे तीन पांच करनेमें बीत गये। गाड़ी आनेकी घण्टी बजी। मित्रकी रकम लेकर हम अपने झोपड़ेसे निकल कर स्टेशन पहुंचे। गाड़ी आयी और टिकट लेकर हम तीसरे दरजेमें जा बैठे। सीटी देकर ट्रेन गहमर स्टेशनसे चल पड़ी।

बात यों हुई कि शादीके सात ही दिन रह गये थे। देहातके सुनारोंसे श्रद्धा उठ गयी थी। फिर आधा धन खोकर उनसे गहने बनवायें भी तो सात दिनमें वे घाऊघप्प सुनार किसी तरह दे भी नहीं सकते थे।

कलकत्तेसे भी तैयार माल मंगानेसे पूरा नहीं पड़ता, क्योंकि उधरके बाबुओंमें गिन्नी सोनेका चलन इतना बढ़ गया था कि असल सोनेके गहनोंका प्रबन्ध इतने थोड़े समयमें नहीं हो सकता था। काशीमें सरजूप्रसाद मुकुन्दलाल और राधाकृष्ण शिवदत्तराम इन दो व्यापारियोंकी प्रसिद्धि अखबारोंसे हम पा चुके थे।

जब गाड़ीमें बैठ गये, तब देखा तो अभी कुछ रात बाकी है। खिड़कियोंको बन्द करके चुपचाप बेञ्चपर सो रहे। संयोगसे सेकण्ड क्लासके बगल वाले सर्वेण्टका डब्बा मिल गया था, इस कारण उसमें हम अकेले थे।

जब गाड़ी मछौरा पहुंची, तब मालूम हुआ कि कोई दबे पांव दरवाजा खोलकर भीतर आया। वह चुपचाप एक कोनेमें जाकर नीचे बैठ गया, इससे यह समझमें आ गया कि उसका इरादा अच्छा नहीं है।

हमनेअपनेवेस्टकोटकी जेबपर हाथ रखा और मनमें कहा

* देखिये, प्रधान-मन्त्री चर्चिलका ता० २४ मई १९४४ को ब्रिटिश पार्लमेण्टमें दिया गया भाषण।

कि मेरा पिस्तौल साथ है। कुछ डरकी बात नहीं। अकेले कईको गिरा सकते हैं। यह कर ही क्या सकता है हमारा ?

थोड़ी देरमें मालूम हुआ कि वह उठकर हमारी ओर आ रहा है। अब हमसे चुप नहीं रहा गया। जेबसे मेरा पिस्तौल हाथमें तानकर बैठ गये।

जब उसने हमारा रुद्र रूप देखा तब—"अरे बाप रे" कहकर पीछे हट गया। हमने भी जोशमें उठकर कहा—"खबरदार,एक पग भी आगे बढ़ा कि खोपड़ी उड़ा दूंगा।"

वह लटपटाती जीभसे बोला—"हमने आपको देखा नहीं बाबू! आप अपना बन्दूक जेबमें कर लीजिये। मैं कुछ नुकसान करनेवाला नहीं हूँ। पेशाबकी जगह देख रहा था।"

"बस, जहां हो वहीं नीचे बैठ जा, हमसे चालबाजी तो करना नहीं।"

अब वह गर्म होकर बोला—"तो क्या आप हमको चोर-डाकू समझते हैं ?"

"हम क्या जानें, तू कौन है। इस तरह गाड़ी खुलनेपर चढ़ आया है।"

"हां, यह बात सही है, लेकिन स्टेशनके भीतर आते ही गाड़ी खुल गयी, तो मैं करता ही क्या !"

"क्यों नहीं। तुम दूसरी गाड़ीमें आते, ऐसी क्या जल्दी पड़ी थी। क्या डाका डाल कर आये हो !"

"डाका नहीं साहब ! इस गाड़ीमें नहीं आनेसे मेरी जान जोखिममें थी। तब न ऐसा किया है।"

"अजी हम भी इसी दुनियामें रहते हैं, ऐसे मौके हमको भी बहुत आये हैं। जरूर दालमें कुछ काला है। यह सब बातें दूसरेको सिखलाना।"

"तो क्या आप समझते हैं कि रेलका पैसा बचानेके लिए ऐसा किया है ?"

"ऐसा तो मैंने कहा नहीं तुमको।"

"तो क्या हम चोर-डाकू-से जान पड़ते हैं आपको ?"

"हम तो देखते हैं कि तुम कोई भगोड़े हो। कपड़ा तुम्हारा कई जगहसे फटकर लटक रहा है। जूतेमें कीचड़ भरा है। हाथसे खून टपक रहा है। फिर हम तुम्हें कैसे परमहंस महात्मा समझें ? खाली इस लम्बी दाढ़ी या वस्त्र चमकदार चश्मेके रोबसे ?"

उसने हंसकर कहा—"हां,यह तो ठीक है कि मैं गेरुआ पहने हाथमें कमण्डल लिए होता, तो महात्मा-सन्त कहनेमें सन्देह नहीं होता। इस वक्त आपको मुझपर सन्देह के लिए बहुत-सा सामान मुहैया है। देखिये न दौड़ते-दौड़ते मेरा पैर भी रास्तेमें गिर गया। तारमें लगनेसे यह मेरा कपड़ा भी कई जगह फट गया, लेकिन करता क्या ? आपने तो दुनिया देखी है। कभी ऐसा भी मौका आता है कि भला आदमी भगोड़ा और चोरकी तरह नजर आता है। इस बातको तो आप मानेंगे जरूर।"

"तो ऐसोंके साथ कोई बात कैसे करे ?"

"आप पहले सब सुन लीजिये। क्योंकि मेरी बीती सुन लेनेसे आपको पाप तो लगेगा नहीं। यह मेरी दाढ़ी नकली है और चश्मा भी धोखेकी टट्टी ही समझिये।"

अब हमारे मनका विस्मय बहुत बढ़ा। उसका चेहरा अच्छी तरह देख कर कहा—"तब तो तुम अपना कसूर खुद ही कबूल करते हो। बेगुनाहको यह सब नकली रूप बनानेकी क्या जरूरत है ?"

अब वह कहने लगा—"यह सब गुप्त बातें मैं आपसे नहीं कहता, साहब ! लेकिन जब आपके साथ बैठकर चल रहा हूँ। आपको मुझपर सन्देह हो गया है,और तब आपका भ्रम दूर कर देना उचित है। इसी कारण भेष बदलनेकी सब बातें अब आपसे नहीं छिपाऊंगा। लेकिन विनती यह है कि मुझसे मेरा नाम-पता मत पूछियेगा। इसका कारण भी मेरी सब बातें सुन लेनेपर आप समझ लेंगे कि ऐसे अवसर पर मेरा भेष बदलना जरूरी था। मैंने यह सब कार्रवाई और दौड़-धूप एक भलेमानसकी लड़कीका सत बचानेके लिए ही किया है।"

उसकी बातोंपर अब हमको दया आयी और पिस्तौल जेबमें करके उसकी सब कहानी सुन लेनेपर उतारू हुआ, हमने कहा—"इन बातोंसे तो आप बेगुनाहसे जान पड़ते हैं। आपके इस तरह चढ़नेके ढङ्गसे जो मनमें भ्रम हुआ था, वह जाता रहा, अब सब बातें बिसार कर अपनी सब बीती मुझे बतलाइये।

अब वह तसल्लीसे पास बैठकर कहने लगा—"यह बड़ी खुशीकी बात हुई कि आपका सन्देह जाता रहा। आप सज्जन आदमी हैं। आपसे भेंट हो गयी, यह भी मेरे भाग्यकी बात है। दूसरा होता तो न जानें क्या करता।"

"अच्छा आप अपना सब कहिये।"

अब वह कहने लगा—"बात यों हुई साहब कि चन्द्रमा छिप रहे थे, स्टेशनकी लालटेनें भी किफायतके मारे कम जली थीं। मैं जब दौड़कर आया तो तार फांदकर गाड़ी की ओर बढ़ा। खलासी एकबार "के है हो ?" कहके

चुप हो रहा। मैं अब भीतर सिकुड़ कर बैठा, जब पेशाबकी जगह देखी तो कहीं नहीं, इधर आप बन्दूक ताने बैठ गये। आपकी दया हुई जो जान बच गयी।"

यही कह कर वह हंस पड़ा। हमको भी हंसी आयी। फिर पूछा—"अच्छा यहां तो जान बच गयी। अब फिर मोगलसरायमें कैसे बचोगे बिना टिकटके।"

उसने कहा—"इसके वास्ते कुछ चिन्ता नहीं। स्टेशनके बाहर ही यह गाड़ी रोज खड़ी होती है। मैं वहीं उत्तर पड़ूंगा। इसके सिवाय और कोई उपाय नहीं है।"

हमने कहा—"आप यह कैसी बात करने लगे। ऐसा काम तो कोई खूनी या डाकू-चोर भी नहीं करता। नहीं जानता, आपका मन ऐसा क्यों हो रहा है। इस तरह अधीर होकर कूदनेका कौन काम है भला।"

यही कह कर हमने उसको सिरसे पांव तक देखा। तब वह फिर कहने लगा-"सुनिये साहब, सब बातें खोलकर कहे बिना आपका सन्देह दूर नहीं होगा। 'बसुकाके पास ही एक गांवमें मेरा मकान है, लेकिन अब कार्यवश मुझे बनारस रहना होता है। मेरे पड़ोसीके एक विधवा लड़की सोलह-सत्रह बरसकी गुणवती-सती है। हमारे गांवके जमीदारका एक बदचलन लड़का है। वह बदमाश अपने गुण्डोंसे उस लड़कीको निकाल ले जानेकी फिक्रमें था। लेकिन जब उसका इरादा पूरा नहीं हुआ, तब अपने कई साथियोंके साथ वह आज रातको उस भले आदमीके घरमें घुस गया। लड़कीके बापने अपनी आफत देखकर मुझे गोहार करनेको पुकारा था, आज ही काशीसे हम आये थे। मित्रकी गुहार के लिए उनकी कन्याका सत बचाना अपना कर्तव्य समझ उनके घरमें एक जगह छिप गया। वह बदमाश जब अपने साथियोंके साथ दीवार टपकर भीतर पहुंचा, तब देखा कि उस आंगनमें खड़े होकर अपने साथियोंको ललकार कर भीतर घुसाया। मैंने घात पाकर उस पाजीके कपार पर ऐसा लट्ठ मारा कि वह वहीं गिर गया। उसकी गति देखकर उसके साथी तो भाग निकले, लेकिन जब मैं बाहर निकला, तब उन बदमाशोंने मेरा पीछा किया। मैं अकेला क्या करता, गिरता-पड़ता, रास्तेके कुश-कांटे लांघता हुआ अंधेरेमें स्टेशन पहुंचा। एक जगह मूंजके पत्ते से मेरी उङ्गली कट गयी। इसीसे खून बहुत निकला। मेरे कपड़े उसी धुनमें फट गये। भागते समय ओढ़ना नहीं संभाल सकनेके कारण उसको रास्तेमें फेंक आया हूँ। मुझे स्टेशनमें बहुत आदमी पहचानते हैं। इसीसे चुपचाप निकल आया कि कोई देख न लेवे। उस बदमाशका सिर फोड़नेके लिए मुझे फौजदारीमें पड़नेका कुछ डर नहीं था, लेकिन भेद खुलनेसे उस भले आदमीकी इज्जत बिगड़ जायगी और कचहरीमें न जाने कैसे-कैसे सवाल उठेंगे, इन्हीं बातोंको सोचकर मैं भाग आया हूं। इसीसे मैंने कहा था कि ऐसे मौके आते हैं कि भले आदमीको भी चोर-डाकूकी तरह भागना पड़ता है।"

अब उसकी बातें सुनकर हमको दया आयी। कहा—तब तो आपने अच्छा नहीं किया, वह ओढ़ना आपका कोई पा लेगा तो आप बेतरह फंसेंगे।"

"नहीं, आप चिन्ता न करें, आजकल वैसा ओढ़ना सब ओढ़ा करते हैं। उसमें मेरा कोई खास निशान नहीं है।"

"तो क्या गाड़ीसे कूद पड़नेके सिवाय और कुछ उपाय नहीं है?"

इतना कहा तो लेकिन हमको उस भले आदमीके लिए बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने एक आदमीका सिर फोड़कर कसूर किया है, लेकिन जिस पाजीके सरपर उस विधवा विदुषीका सत बिगाड़नेके लिए भूत सवार था, उसका इलाज बहुत अच्छा किया है। ऐसी दशामें इस परोपकारीको बचाना उचित है। फिर मैंने पूछा कि आपने यह नकली दाढ़ी-मूंछ क्यों लगायी।

तब उसने कहा—"बात यों है कि यहां हमें बहुत लोग जानते हैं। जब शोर-गुल मचेगा, तब बहुतेरे आकर मुझे पकड़ लेंगे, तब बड़ी भद्द होगी, इसीसे मैंने रूप बदल लिया कि कोई रास्तेमें पकड़ न ले। मैं समझता हूँ कि गांववाले स्टेशनमें पहुंचे होंगे। उस जमीदारका बड़ा दबदबा है। तार-वार भी दौड़ रहे होंगे। पुलिसका सिपाही भी रहता है, वह भी रिपोर्ट किये होगा। अगर बाबुओंने खलासीसे सुनकर बेटिकटके चढ़नेकी खबर भी तारमें भेजी हो, तो कुछ अचरजकी बात नहीं है। इन सङ्कटोंसे बचनेके लिए स्टेशनसे बाहर ही उतर पड़ना बहुत ठीक होगा।"

अब यह देखकर कि बेचारेने परोपकार करके अपनी जान खतरेमें डाली है, इसे अपना ही टिकट देकर उबारना चाहिये। हम तो, टिकट गिर गया है, कह कर निकल चलेंगे क्योंकि हम बेचनेको बरतन लगेजमें ले जाते हैं, उस लगेज टिकटमें हमारे टिकटका नम्बर मौजूद ही है। यही सोचकर कहा—"देखिये पहले आपका ढङ्ग देखकर हमने जो बरताव आपसे किया है, उसे भूल जाइये। आप परोपकारी हैं।

हमारा टिकट आप लीजिये, इसीसे मोगलसरायमें आप पार हो जाइयेगा।"

उन्होंने कहा—"नहीं साहब! मैं ऐसा नीच नहीं कि अपने लिए आपको सङ्कटमें डालूं, क्योंकि आपके पास दो टिकट थोड़े हैं।"

"हां हमारे दो टिकट हैं। मालकी जो रसीद मेरे पास है, उसपर मेरा टिकट नम्बर है। मुझपर कोई सङ्कट नहीं आ सकता।"

"लगेजके टिकट नम्बरसे काम नहीं चलेगा। आपसे टिकट वे लोग जरूर मांगेंगे।"

"मांगेंगे तो मैं गहमरसे मोगलसरायका महसूल दे दूंगा। आप यह टिकट ले लीजिये, इसमें सङ्कोचका कुछ काम नहीं है।"

"अगर आप मुझपर इतनी दया करते हैं तो मुझसे वहां से मोगलसरायका महसूल ले लीजिये।"

यही कहकर उन्होंने पांच रुपयेका एक नोट दिया। हमने उनको बाकी दाम देकर अपने मनीबैगमें रखा और वहीं लेट गये। अब दोनों साथी गाड़ीमें मैत्री भावसे रहे। उन्होंने आगे मेल-जोल बढ़ानेके लिए हमारा बनारसका पता-ठिकाना भी पूछ लिया।

(२)

जब गाड़ी मोगलसराय पहुंची,एक टिकट कलेक्टर अपनी कटही मशीन ठकठकाते हुए मेरे कम्पार्टमेण्टके द्वारपर आ पहुंचे। उनको टिकट देकर साथी तो बाहर निकल गये। हम ओढ़नेमें लिपटे पड़े थे। पास आकर जब उन्होंने टिकट मांगा, हमने जेब टटोल कर कहा—"टिकट तो हमारा खो गया साहब! जो दाम कहिये मैं दे दूं।"

अब तो उन्होंने हमको सरसे पांव तक घूर कर देखा औरकहा—"हम दाम नहीं ले सकते, आप स्टेशन मास्टरके यहां चलें, वहीं फैसला होगा।"

"फैसला क्या कुछ मुकदमा थोड़े है। टिकट खो गया, आप दाम ले लीजिये। फैसलेका तो इसमें कुछ काम नहीं है।"

"हमको आपसे बहस नहीं करनी है," कहकर उन्होंने पुलिस जमादारको पुकारा और कहा—"आप इनके साथ साहबके पास जाइये।" और जमादारके कानमें कुछ सांय-सांय फुस-फुस करके आगे बढ़ गये।

गाड़ीसे उतरते ही वहां पैसिञ्जर ट्रेनके गार्ड आ गये। पञ्जाबी पोशाकमें एक साफावाले सरदार साहब भी आये। और भी दो-तीन लाल पागधारी पधारे। झब्बेदार पाग-वाले एक दारोगा भी आये, हम उनको पहचानते थे, उनका नाम दलगञ्जन दुबे था। हमने दुबेजीको प्रणाम कर कर उनका अभिवादन किया। लेकिन उन्होंने ऐसा भाव दिखाया गोया कभीकी कुछ जान-पहचान नहीं है। हमको नहीं मालूम हुआ कि उन्होंने सचमुच नहीं पहचाना या अवसर देख कर नजर बदल दी।

हमने कहा—हमारा टिकट खो गया है, साहब, आप लोग दाम मुझसे ले लीजिये, और रसीद दे दीजिये। हमको वापस जाना है। बहुत जरूरी कामसे आया हूँ। देर होनेसे नुकसान होगा।

उनमेंसे एक महाशयने कहा—"आपको देर तो हो रही है, लेकिन इसके वास्ते माफ ही करना होगा। और अभी हम लोग दाम नहीं लेंगे। आपको हम लोगोंके साथ पुलिस आफिस तक चलना होगा।"

हमने अकचकाकर पूछा—"क्यों साहब! इसका क्या मतलब! हम चार्ज देनेसे इनकार तो करते ही नहीं, तब पुलिससे क्या सरोकार?"

"इसका जवाब हम लोग नहीं दे सकते। ऊपर बड़े साहबसे जो हुक्म मिला है, उसीकी तामीली हम लोग कर रहे हैं।"

अब तो हमको क्रोध आया। हमने कहा—"यह आप कैसी बात कर रहे हैं, साहब? किसका हुक्म है कि जिसका टिकट खो जाय, उसको पुलिसमें जाना होगा। किसी भले-मानस मुसाफिरके साथ ऐसा व्यवहार क्यों हो रहा है?"

अब टिकट कलेक्टर, पीले झब्बेवाले दुबेजी, गार्ड साहब, जमादार और वह पञ्जाबी सब मिलकर आपसमें सलाह करने लगे। हमने बातोंसे समझ लिया कि पञ्जाबी पोशाक में प्रयागसे आये हुए कोई जासूस-विभागके माननीय अहल-कार हैं।

गार्ड साहबने दियासलाईसे चुरुट जलाया और धुआं खींचते हुए हमारे मुंहपर बिना गोलीके पिस्तौल-फायरकी तरह फेंककर कहा—"आप कौन स्टेशनमें गाड़ीपर बैठा है बाबू!"

हमने जवाब देनेसे पहले उनका रूप देखा। आप दोनों पांव अलग कर अकड़े हुए थे। गर्दन तिरछी करके बड़ी ऐंठसे हमारी ओर देख रहे थे। मुंहका चुरुट तर्जनी और मध्यमाके निचले पोरोंमें दबाकर अंगूठेका शासन उसपर

बढ़ा रहे थे। उनका इस तरह अकड़नेगकी तरह मुरब्बियाने ढङ्गसे पूछना और बेहूदगीसे हमारे मुंहपर धूआं फेकना सहा नहीं गया। कहा—"हम आपको इसका जवाब देनेकी जरूरत नहीं समझते। जब आप लोग मुझे किसी और जगह ले चलते हैं, तब वहींपर हम सब कहेंगे।"

अब तो उनके मिजाजका पारा इतना उछला कि जान पड़ा, थर्मामीटर तोड़ कर बाहर हो पड़ेगा। लेकिन न जानें किस कारणसे उन्होंने रुककर कहा—"अच्छा बस! आओ, मेरे साथ सीधे चले आओ।"

अब हम उनके साथ चल पड़े। टिकट कलेक्टर और सफेद साफेवाले साथमें दुबेजी भी थे जिस बड़े हालमें हमको ले गये उसके द्वारपर बड़े-बड़े अक्षरोंमें G.R P.Office लिखा था।

भीतर उसके एक बड़ा गोल मेज था। उसके चारों ओर कुर्सियां पड़ी थीं। एक ओर बेञ्च भी था। दारोगाजीने एक कुर्सी खींचकर सफेद साफावाले महाशयकी ओर कर दी। जब आप बैठ गये, तब आप भी बैठे। गार्ड साहब एक बेण्टउड चेयरपर बिराजे, हमने भी एक कुर्सी खींचकर आसन लगा लिया।

अब हम मनमें सोचने लगे कि बात क्या है, कुछ समझमें नहीं आती। टिकट मेरे पास नहीं है, तो चार्ज लेकर रसीद दे देनेसे बखेड़ा साफ था। जान पड़ता है कि इन लोगोंको कोई तार ऐसा मिला है, जिससे हमको किसी तरहका अपराधी समझ रहे हैं। हो सकता है कि वह हमारा साथी कुछ अपराध करके आया हो। लेकिन कुछ परवा नहीं, जब हमने कुछ अपराध नहीं किया है, तब किसीसे दबनेकी क्या जरूरत है। यह बात सही है कि पुलिसवाले हैरान कर सकते हैं और कर ही रहे हैं, लेकिन अफसोस इसी बातका है कि जिन मित्रकी लड़कीका ब्याह सिरपर आ गया है, उनके काममें देर हो रही है। उनको कहीं और कष्ट न हो, इसीकी चिन्ता है। गहने लेकर लौटना होगा। कौन पसन्द आवे, कौन न पसन्द हो—लौटाना पड़े इसका कुछ ठीक नहीं है। हम यही सोच रहे थे कि एक मोटरसे साहब भीतर आये। उनको देखते ही सबने उठकर अभिवादन किया। हमने समझा कि यही वह साहब होंगे, जिनके लिए लोग कह रहे थे कि साहबका हुक्म नहीं है।

(क्रमशः)

विदेशोंमें राजदूतोंके कार्य

श्री सन्तराम, बी० ए०,

प्रायः प्रत्येक स्वतन्त्र राष्ट्रका एक-एक दूत प्रत्येक दूसरे देशमें रहता है, ज्योंही कोई राष्ट्र स्वाधीनता लाभ करता है, वह सबसे पहले अपने दूत संसारके दूसरे स्वतन्त्र देशोंमें भेजता है। लन्दनमें जापानका और टोकियोमें अङ्गरेजोंका राजदूत रहता था। हमारे परतन्त्र भारतमें भी अफगानिस्तान, रूस, ईरान और चीन आदि देशोंके दूत रहते हैं। ये दूत तब जाते हैं, जब इन राष्ट्रोंका परस्परका सद्भाव भङ्ग होकर युद्ध छिड़ जाता है। ये दूत हमारे देशोंमें ठहर कर क्या काम करते हैं, इसका ज्ञान शायद बहुत थोड़े पाठकोंको होगा।

अमेरिकाके संयुक्त राज्योंकी राजधानी, वाशिङ्गटनमें ५६ दूतावास हैं। वहां सभ्य संसारके सभी राज्योंके प्रतिनिधि रहते हैं। उनमेंसे सत्रह तो राजदूत (Ambasador) हैं। वे मानो व्यक्तिगत रूपसे अपने राष्ट्रके प्रधानाधिकारीके प्रतिनिधि हैं। वे अमेरिकाके राष्ट्रपतिसे व्यक्तिगत रूपसे मिल सकते हैं। बाकी मन्त्री (मिनिस्टर) या कार्याध्यक्ष (Cbarges d affa'rs) हैं। वस्तुतः वे सबके सब कारगुजारी वाले आदमी हैं। ये परराष्ट्र-सेवाके द्वारा अपनी योग्यताके अनुसार उन्नति करके क्रमशः इस पदपर पहुंचे हैं।

अमेरिकाके संयुक्त-राज्योंकी डिप्लोमेटिक सर्विस (राजदूत विभाग) में सबसे अधिक महत्वपूर्ण पद कारगुजारी दिखलाने वाले आदमियोंको नहीं, वरन् उन मनुष्योंको दिया जाता है, जिन्होंने नवीन निर्वाचित राष्ट्रपतियोंकी राजनीतिक सेवाकी होती है, ये बिना कारगुजारी दिखाये आगे आये हुए आदमी बहुधा, अनुभव-हीनताके कारण हलचल पैदा कर देते हैं—जैसा कि अमेरिकन राजदूत डाडने जर्मनीमें किया था। एक भोजनशाला प्रमुख नाजियोंसे भरी हुई थी। नाजीदल डिक्टेटर हिटलरका दल है। परन्तु डाडने इस बातका कुछ भी विचार न करके वहां कह दिया कि कोई डिक्टेटरशिप कभी बहुत दिन तक नहीं बनी रही, क्योंकि डिक्टेटरशिप, कहीं भी क्यों न हो, बुरी है।

सभी महत्वपूर्ण परराष्ट्र दूत ऐसी भद्दी भूलोंसे बचते हैं। राजदूत-विभागमें प्रायः उसी युवकको लिया जाता है, जो अच्छे परिवारका हो और आयका कोई निजी साधन रखता हो। उसे मालूम रहना चाहिये कि संसारमें सब कहीं—क्या कुछ हो रहा है। उसमें कौशल, चातुर्य और साहस होना चाहिये। वह तीन-चार भाषाएं बोल सकता हो और सब प्रकारके लोगोंके साथ निर्वाह कर सकता हो। बहुत-सी ह्विस्की, वाइन और ब्राण्डी पीकर भी बदमस्त न होना राजदूतके लिए एक आवश्यक गुण है। कारण यह कि एक राष्ट्रसे दूसरे राष्ट्रमें जानेवाले अधिकांश विचार सहभोजोंके अवसरपर ही मधुर और शिष्ट भाषामें व्यक्त किये जाते हैं।

बहुत दिन नहीं हुए हिरोश सैतो जापानका दूत बनकर वाशिङ्गटन गया। उसके सामने बड़ा नाजुक काम था, टोकियो और वाशिङ्गटनमें भारी मतभेद हो रहे थे। उसका पहला काम यह था कि एक रात्रि-भोजमें जाकर भाषण करे। वहां कहा हुआ उसका एक-एक शब्द जापान-सम्राटका ही निरूपित भाव समझा जानेको था। भोजमें सम्मिलित होनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको पहलेसे ही पता था कि सैतो क्या कहेगा—अर्थात् यह समझना कि अमेरिका और जापान-जैसे दो समझदार मित्र कभी घूंसोंपर उतर आयेंगे, इससे बढ़कर हास्यजनक बात और क्या हो सकती है, परन्तु यदि असम्भव सम्भव हो जाय, तो जापान वस्तुतः अमेरिकासे डरता नहीं, और जब तक उसका एक भी मनुष्य जीता है, वह अपनी रक्षाके लिए लड़ेगा। सब कुछ इस बातपर निर्भर करता था कि राजदूत सैतो यही बातें किस ढङ्गसे कहता है—क्या वह एक क्षणमें मधु-वर्षण करेगा और दूसरे ही क्षणमें इतना निष्ठुर हो जायगा कि अमेरिका चिढ़ उठेगा? क्या वह एक मिनटमें धमकी देगा और दूसरे ही मिनटमें लल्लो-पत्तो करने लगेगा? परन्तु हुआ यह कि उसने एक आदर्श भाषण दिया। उसमें सत्यता, मित्रता और बलका वह सारा भाव विद्यमान था, जिसे डिप्लोमेसी अर्थात् दौत्यकार्यमें दक्षता समझा जाता है। इस प्रकार जापानी राजदूतकी सफलता मान ली गयी और जापानी प्रजाके सम्राट्का जय-जयकार किया गया। अब आप समझ गये होंगे कि किस प्रकार राजदूतका व्यक्तित्व अनिष्टको रोक या उत्पन्न कर सकता है।

परन्तु परराष्ट्र-दूत भाषण करनेके अतिरिक्त और भी काम करते हैं। उनका कर्त्तव्य होता है कि जिस देशमें वे दूत बनकर गये हैं,वहां अपने राष्ट्रका माहात्म्य बनाये रखें। जब अमेरिकाके मेडिसन स्क्वेयर गार्डनमें नाजी-विरोधी लोगोंने इकट्ठे होकर हिटलरके प्रति घृणाका भाव प्रकट करना चाहा, तो जर्मन दूतने नियमपूर्वक अमेरिकाके राष्ट्रपतिसे प्रतिवाद किया और ऐसी सभाओंको रोक देनेकी प्रार्थना की। राष्ट्रपतिने बड़ा सहानुभूति-पूर्ण उत्तर दिया, परन्तु साथ ही बतलाया कि अमेरिकाका राजनियम अमेरिकन लोगोंको किसी भी समय ऐसे कामके लिए एकत्र होनेका अधिकार देता है,जिससे देशके शासन और शान्तिके भङ्ग होनेका डर न हो। बादको जब जर्मन राजदूतने फिर प्रतिवाद किया—इस बार एक चल-चित्रके दिखाये जानेके विरुद्ध जिसमें हिटलरको एक घातक दुर्जन प्रकट किया गया था—तो उसे सफलता हो गयी। सरकारी तौर पर वाशिङ्गटनने कुछ अधिक नहीं किया, परन्तु चित्रको प्रायः रोक दिया गया। इसपर जर्मन दूतने अपनी कृतज्ञता प्रकट की।

अपने देशको आगे लानेका आन्दोलन जारी करना भी राजदूतका ही कर्तव्य होता है, हो सकता है कि उसकी सरकार उस देशमें, जहां वह दूत बन कर गया है, अपनी साख जमाना या अपने ऋणोंको हलका करना चाहती हो, अथवा वह चाहती हो कि वह देश उसका अधिक माल खरीदे, अथवा किसी दूसरे राष्ट्रके साथ झगड़ा हो जानेकी दशामें उसका साथ दे। इसलिए वहां मित्रताके सिद्धान्तका प्रचार निरन्तर किया जाता है—न केवल राजदूत द्वारा वरन् उस विदेशमें रहनेवाले उसके सभी स्वदेश-बन्धुओं द्वारा। राजदूत अपने प्रवासी देश-बन्धुओंको यह नाटक खेलनेकी प्रेरणा कर सकता है।

प्रत्येक राजदूतका यह प्रधान कर्तव्य होता है कि वह अपनी सरकारको,जिस देशमें वह बैठा हुआ हो, उसके व्यापार एवं राजनीतिक तथा सामाजिक बातोंके विषयमें बहुमूल्य जानकारी देता रहे। यह एक प्रकारकी सम्भ्रान्त जासूसी है—सम्भ्रान्त इसलिए कि इसे एक आवश्यकता मान लिया गया है, और सभी राष्ट्र प्रायः यह काम करते हैं। अमेरिका भी उतनी ही पूरी तरहसे करता है, जितनी कि अङ्गरेज करते हैं। उदाहरणार्थ, अमेरिकाकी राजधानी वाशिङ्गटनमें रोज सैकड़ों राजदूतोंकी रिपोर्टें आती हैं—बोलिविया हवाई जहाज खरीदनेकी तैयारी कर रहा है, हमारे कारखाने वालोंको सूचना दे दो, अर्जण्टाइन हमारे देशमें बहुत-सा मांस भेजनेकी तैयारीमें है, हमारे

व्यापारियोंको सामना भेजनेके लिए तैयार हो जाना चाहिये।

एक विदेशी राजदूतने अपनी कार्य-पद्धतिकी रूप-रेखा इस प्रकार बतायी थी-मैं प्रत्येक चीज पढ़ता हूँ-अनेक नगरोंसे निकलनेवाले सभी आवश्यक समाचार-पत्र और सभी महत्व-पूर्ण मासिक पत्रिकाएं। मैं थियेटर और सिनेमा जाता हूँ। मैं लोगोंको बातें करते सुनता हूँ। इन सब स्रोतोंसे मैं अपनी रिपोर्ट लिखता हूँ और अपनी सरकारको विदेश के लोगोंके विचारों और कार्योंसे सूचित रखनेका यत्न करता हूँ। मेरे स्थल-सेना एवं जल-सेनाके अटैची (सहा-यक) भी यही काम करते हैं। परन्तु मैं उनकी रिपोर्टें नहीं देखता। उनका काम इस बातकी खबर रखना होता है कि जिस देशमें वे ठहरे हुए हैं, वह अधिक जङ्गी जहाज बनाने या अधिक सिपाही भरती करनेपर कितना खर्च कर रहा है, वह इस वर्ष कितने हवाई जहाज खरीदेगा और कितने पनडुब्बी जहाज उसके पास हैं। इस जान-कारीको प्राप्त करनेके लिए उन्हें जासूसी नहीं करनी पड़ती, ये सब बातें पब्लिकमें आ चुकी होती हैं। राजदूत इन रिपोर्टोंको इसलिए नहीं देखता, ताकि वह किसी भी समय अपने देशको भेजे जानेवाले सैनिक समाचारोंके सम्बन्धमें अपनी अज्ञता प्रकट कर सके।

वस्तुतः संसारके सभी बड़े-बड़े राष्ट्रोंके जासूस एक दूसरेके देशमें काम करते हैं। कई जासूस पुराने ढङ्गसे भेष बदलकर फिरते, दस्तावेजें चुराते और खबरोंकी टोह लगाते फिरते हैं। अधिकांशका काम पूरा-पूरा सम्मानित है। वे पत्र-पत्रिकाओंसे अप्रसिद्ध परन्तु महत्वपूर्ण बातें संग्रह करके स्वदेशको भेजते रहते हैं। इन गुप्तचर-सङ्गठनोंमेंसे शायद सबसे अधिक समर्थ सङ्गठन एक राष्ट्रका है। उसे "ब्ल्यू" कहा जा सकता है। इसके सबसे अधिक सचेष्ट कर्मचारी ब्ल्यू समाचार-पत्रोंके अमेरिकन संवाददाता हैं। उनका व्यवसाय ही ऐसा है, जिससे वे भली-भांति जानकारी इकट्ठी कर सकते हैं। जो भी बात उनको मालूम होती है वे चट उसकी सूचना स्वदेशको दे देते हैं। ये उन बातोंका अर्थ ढूंढ़नेका यत्न नहीं करते। यह काम ब्ल्यू परराष्ट्र-कार्यालय-का है।

मान लीजिये कि अमेरिका-स्थित जापानका ब्ल्यू संवाददाता अमेरिकाके पत्रोंमें पढ़ता है कि हवाई जहाजको गिरानेवाली एक नयी तोप (Anti-aircraft Gun) का पेटेण्ट दिया गया है। वह इसकी सूचना जापानको भेज देता है। शायद महीनों बाद वह फिर पढ़ता है कि नवीन सिद्धान्तोंके आधारपर बनाये गये एक दूरी मालूम करने-वाले यन्त्र (रेञ्ज फाइण्डर) का एक और पेटेण्ट दिया गया है। यदि संवाददाता इस नवीन आविष्कारसे प्रभा-वित हो जाता है, तो वह अमेरिकाके पेटेण्ट-आफिसमें जाकर उसकी कच्ची रूप-रेखा (ब्ल्यू प्रिण्ट) देख सकता है, क्योंकि वह अभीतक सैनिक रहस्य बिलकुल नहीं जानता है।

हो सकता है कि इसके एक वर्ष बाद वह पढ़े कि अमे-रिकाकी जल-सेना हवाई जहाजको मार गिरानेवाली एक ऐसी नयी तोपसे काम लेने लगी है, जिसमें अपने आप काम करनेवाला रेञ्ज फाइन्डर है। तब वह अमेरिकन सरकारकी रिपोर्टोंमें ऐसी एक सौ तोपें खरीदनेके लिए रुपया खर्च करनेका उल्लेख पाता है। अब जापानके ब्ल्यू परराष्ट्र कार्यालयमें कोई मनुष्य बैठकर इन सब अलग-अलग पढ़े समाचारोंको इकट्ठा करता है और उनसे अनुमान कर लेता है कि किस प्रकारकी तोप और रेञ्ज-फाइण्डरका प्रयोग अमेरिकाकी जल-सेना कर रही है। तोपके नकशोंको चुरानेका यत्न करनेके लिए जासूसीकी आवश्यकता ही नहीं इसके सिद्धान्तोंका पर्याप्त ज्ञान पहले ही प्राप्त है।

कुछ वर्ष हुए अमेरिकाकी जल-सेनाने हवाई जहाजोंको ले जानेवाली कैरियर नामक नावोंके डेकोंपर हवाई जहाज-को उतारनेका एक क्रान्तिकारी उपाय निकाला था। विदेशी जल-सेना-विभाग इस उपायको जानना चाहते थे। इसके थोड़ी देर बाद, एक कैरियरके डेकपर एक बड़ी सिनेमा कम्पनी एक अद्भुत ड्रामा तैयार कर रही थी। जब वह चित्र थियेटरोंमें दिखलाया गया, तो डेककी सतहको छिपानेके उद्देश्यसे कई अनुक्रमोंके निचले अर्द्ध भागपर परदा डाला हुआ था। परन्तु परदा डालनेकी वह क्रिया अमेरिका के अन्तर्गत हालीवुडकी सिनेमा तैयार करनेकी अभिनयशाला (स्टूडियो) में की गयी थी। फोटोके निगेटिव पूरे-पूरे थे। इनमें डेकके मल्लाहोंकी सारी रुटीन (नित्य-क्रिया) और पकड़ने वाले गुप्त उपायोंकी क्रियाका चित्र मौजूद था। इस निगेटिवकी कमसे कम एक प्रति गुप्त रूपसे विदेश पहुंच गयी और दूसरे राष्ट्रके हवाई जहाजोंके कैरियर-विभाग (एयर क्राफ्ट कैरियर सर्विस) के अधिकारियोंने देख ली।

यह कहना युक्तियुक्त है कि अमेरिकाके सारे सैनिक प्रबन्धमें बाकी दुनियासे छिपा हुआ एक भी वास्तविक रहस्य नहीं। उसके राजकार्य सम्बन्धी रहस्य भी बहुत थोड़े हैं। जो भी आदेश वह अपने राजदूतोंको दूसरे देशोंमें

स्थल-तार या समुद्री तार द्वारा भेजता है, वे पृथ्वीके आधे स्टेट डिपार्टमेण्टों (राज्य-विभागों) में पढ़ लिये जाते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि वे कोड (गुप्त पद्धति) से भेजे जाते हैं, परन्तु सभी राष्ट्रोंके यहां कोड-आफिस हैं, जो रोज संसारके गुप्त राजकार्य-सम्बन्धी पत्र-व्यवहारका अर्थ निकाला करते हैं। केवल अमेरिका ही एक ऐसा राष्ट्र है, जो यह काम नहीं करता।

अलबत्ता इन षड्यन्त्रोंमें राजदूत बहुत कम भाग लेते हैं। वे सम्भ्रान्त सज्जन होते हैं। वे चौकसीके साथ प्रतीक्षा करते हैं, मित्रताएं गांठते हैं, वैमनस्यको हटाते हैं, और स्वराष्ट्रके स्पष्ट आदेशोंके अनुसार बड़ी सावधानीसे काम करते हैं। परन्तु इन आदेशोंका आधा बहुधा भेदिया-विभागके कर्मचारियों द्वारा दी गयी गुप्त जानकारी होती है। उदाहरणार्थ, अमेरिकामें काम करने वाले ये जासूस कर्मचारी व्यक्तिगत रूपसे अपने देशके अमेरिका-स्थित राजदूतसे कुछ नहीं कहते, यहां तक कि उसे यह भी पता नहीं लगने देते कि हम जासूस हैं। फिर भी वे स्वदेशको रिपोर्ट भेजकर वहांसे वही बात सरकारी और मुहर-बन्द सन्देशोंमें वापस अमेरिकामें मंगाकर राजदूतको भलीभांति बताते रहते हैं कि अमेरिका क्या कर रहा है।

भारतके प्राचीन अङ्गराग

श्रीमती गङ्गादेवी वर्मा

कुछ लोगोंका अनुमान है कि भारतवर्षमें अङ्गरागों का उपयोग पश्चिमी सभ्यताके साथ ही प्रारम्भ हुआ है, लेकिन यह धारणा बिलकुल ही गलत है। यहांके नागरिक अङ्गरागोंका उपयोग हजारों वर्ष पूर्वसे ही करते आ रहे हैं। यहांकी प्राचीन पुस्तकोंमें अङ्गराग और सुगन्धित पदार्थोंका वर्णन बहुधा पाया जाता है, जिससे पता चलता है कि प्राचीन कालमें अङ्गरागकी महत्ता आज-कलसे कहीं अधिक थी। उन अङ्गरागोंका उपयोग न केवल भारतवर्ष ही तक सीमित था, परन्तु विदेशोंमें भी इनकी मांग अत्यधिक थी। ईरान, मिश्र, ग्रीस और रोमन साम्राज्य आदि देशोंकी ऐतिहासिक पुस्तकोंमें हमारे यहांके अङ्गरागों और सुगन्धित पदार्थोंकी बड़ी प्रशंसाकी गयी है! मिश्रके हजारों वर्ष पुराने पिरामिडोंकी खुदाई करनेपर उनमेंसे हमारे देशके धूप और इत्र इत्यादि पदार्थ मिले हैं। पूजाके समय हिन्दू लोग मन्दिरोंमें देवताओं पर इत्र, पुष्प और सुगन्धित पदार्थ सदा से ही चढ़ाते आये हैं।

प्राचीन भारतके अङ्गरागोंका सबसे अधिक वर्णन वात्स्यायनकी पुस्तक कामसूत्र और नागर सर्वस्वम्‌में मिलता है। परन्तु इस विषयपर और भी बहुत सी पुस्तकें हैं। शारंगधर का 'गन्धदीप' ईश्वरकी 'गंधायुक्ती' और वराह मिहिर की बृहत्संहिता, इसी सम्बन्धकी पुस्तकें हैं। इन पुस्तकोंमें बालोंके तेल बनाने, शरीरकी दुर्गन्ध दूर करने, और घरोंको सुगन्धित रखनेके लिए अनेकों विधियां बतायी गयी हैं। संस्कृत और प्राकृतके नाटकों, उपन्यासों और काव्योंमें भी अङ्गरागोंके उपयोगके बहुत विस्तृत और मनोरञ्जक वर्णन मिलते हैं। नट नटियां अभिनय से पूर्व प्रत्येक अङ्गकी सजावट इतने अच्छे ढंगसे किया करती थीं कि मानों वे अङ्गरागकी कलामें बहुत ही प्रवीण हों। स्त्रियां अपने प्रियतमके स्वागत करनेसे पूर्व आंखोंमें काजल, पलकोंमें अञ्जन, माथेपर सौभाग्य विन्दु लगा कर तथा सुन्दर—सुगन्धित वस्त्र पहन कर तैयार हुआ करती थीं। इन प्रमाणोंसे यही सिद्ध होता है कि प्राचीन कालमें अङ्गरागकी महत्ता हमारे देशमें एक उच्च सीमा तक पहुंची हुई थी और प्रत्येक स्त्री और पुरुषके लिए इस कलामें निपुण होना गार्हस्थ्य धर्ममें प्रवेश करनेके पहले आवश्यक समझा जाता था।

'नागर सर्वस्वम'के लेखकने पुरुषोंको निम्नलिखित सम्मति दी है ···—

"प्रवीण पुरुष अपने शरीरपर सुन्दर वस्त्र धारण करें, वस्त्रोंपर ऋतु और समयके अनुसार इत्र लगावें, बहुमूल्य रत्नजटित आभूषण और फूलोंकी माला गलेमें पहने और सुवासित मुखवासका उपयोग करके अङ्गरागोंसे शरीरके प्रत्येक अङ्गको विभूषित करे।"

भारतमें प्राचीन कालमें वैज्ञानिक यन्त्र और साधन न

होनेके कारण लोग सभी अङ्गराग अपने हाथोंसे ही सुगन्धित वनस्पतियों, भस्मों और कस्तूरी आदि पदार्थोंसे ही बनाया करते थे।

कामसूत्रमें गृहस्थोंकी दिनचर्याका उल्लेख इस प्रकार किया गया है —

"प्रातः काल उठकर मनुष्य दांत साफ करे, स्नान करे, शरीर और वस्त्रोंपर सुगन्धित द्रव्योंका प्रलेप करे, अलक-रससे ओष्ठ लाल करे,गलेमें फूलोंकी माला पहनकर मुंहमें कोई सुगन्धित वस्तु चबावे। प्रत्येक तीसरे दिन हजामत करे, शरीरपर मालिश करे और फेनक लगावे"

हिन्दू लोग प्राचीन कालसे ही सुगन्धित वृक्षोंकी ताजी शाखाओंसे दांत साफ करते चले आ रहे हैं। वर्त्तमान कालमें वैद्य और वैज्ञानिक भी प्राचीनकालके दांतुनकी अधिक प्रशंसा करते हैं। तेजबड और मौलसिरीकी शाखाएं इस कार्यके लिए सबसे उत्तम मानी जाती हैं। यह अधिकतया गङ्गाके उत्तरी पश्चिमी मैदानों और कुल्लूकी घाटीमें पायी जाती हैं। प्राचीन कालमें दांतुनका उपयोग किस प्रकार किया जाता था, यह भी बताया गया है। सुगन्धित वृक्षकी ताजी शाखाको लेकर गायके मूत्रमें भिगो दिया करते थे और उसके पश्चात इसको दालचिनी, इलायची,शहद, कालामिर्च कूटके सुगन्धित किये पानीमें डाल दिया जाता था। प्राचीन कालके वैज्ञानिक और अङ्गराग कलाके विशेषज्ञ लोग गायके मूत्रको बहुत अधिक महत्व देते थे, क्यों कि उन्होंने यह सिद्ध कर दिखाया था कि गायका मूत्र कई प्रकारके कीटाणुओंका नाशक है। इसे रोग-जन्तुघ्न और रक्षोघ्न कहा जाता था। दांतुनमें काम आनेवाली ये लाभदायक शाखायें हैं— बट, मधुक, करञ्ज, पलाश, अश्वत्थ, खदिर, बिल्व, साल, अश्वकर्ण, कदम्ब, नीम, करवीर, शमी, अर्जुन, दाड़िम, प्रियंजन, अपामार्ग, जम्बू और चतुरक्क।

हिन्दू-रतिशास्त्रोंमें 'स्नानीयवास' और वसनांरागके वर्णन बहुत मिलते हैं। शरीरपर मालिश करनेके लिए क्षार और खरीका मिश्रण सर्वोत्तम माना गया है। ये दोनों वस्तुएं शरीरके रोम-कूपोंको साफ करके चिकनाहट लाती हैं। स्नानके पानीको दालचीनी, नखी, कस्तूरी, खस और अगर या अगरके इत्रसे सुगन्धित किया जाता था। भारत गरम देश है। गरमीके कारण पसीना यहां बहुत आता है और बहुधा शरीरमें से दुर्गन्ध आने लगती है। दुर्गन्धको दूर करनेके लिए कस्तूरी, कपूर,चन्दनकी लकड़ी, नागपुष्प, और अगर—इन सब वस्तुओंको एक साथ पीस शरीरपर दुर्गन्ध-हरके रूपमें लगाया जाता था। खस,चन्दन, बिल्व वृक्षके पत्ते, नागपुष्प,मिमोंसा और पदमकका मिश्रण इसी कामके लिए बहुत लाभदायक माना गया है, पसीनेको रोकनेके लिए लोध्र, चन्दनकी लकड़ी, कई प्रकारके सुगन्धित फूल, कमल फूलकी जड़ और अनारके छिलकेका चूर्ण लगाया जाता था।

भारतमें अनेक राजवंशोंके उत्थान-पतनके साथ कई व्यवसायोंमें घोर परिवर्तन हुए हैं, परन्तु दूधके व्यवसायकी प्रसिद्धि वैसे ही अचल रही। सबसे प्रथम मुगल बादशाह जहांगीरकी पत्नी नूरजहां द्वारा अकस्मात ही गुलाबके इत्रका आविष्कार हुआ था। उसके स्नानका पानी गुलाबके फूलोंसे सुगन्धित किया जाता था। एक दिन जब वह स्नान कर रही थी, उसने पानीकी सतहपर कुछ तैलकी बूंदें तैरती हुई देखीं। नूरजहांने उनको इकट्ठा कर लिया। परीक्षा करनेपर पता चला कि उस तैलकी सुगन्धि तो गुलाबके फूलोंकी तरह है। फिर गुलाबका इत्र जिसे 'रूह-गुलाब' भी कहा जाता है, इस विधिसे तैयार किया जाने लगा— ताजे गुलाबके फूलोंको उनसे दुगुने पानीके साथ तांबेके बर्तनमें डालकर आगके ऊपर श्रावण किये गये पदार्थको रात्रिकी शीतलतामें बाहर खुला रख देते हैं। ठण्डकके कारण गुलाबका सुगन्धित तैल जम जाता है, फिर तैरते हुए तैलको पोंछकर अलग रख लिया जाता है।

प्राचीन कालमें लोग साबुनके स्थानपर 'फेन' का उपयोग करते थे। संस्कृतमें फेन झागको कहते हैं और जो पदार्थ फेनको पैदा करता है उसे फेनक कहते हैं। फेनकमें इत्र और खुशबू भी मिला दी जाती है, यह शरीरको कोमल और सुगन्धित बनाता है और रोमछिद्रोंको साफ करता है।

हिन्दुस्तानमें स्त्रीका सौन्दर्य लम्बे, काले और घने बालोंमें भी माना जाता है। बालोंको सुन्दर काले, लम्बे और घने बनानेके लिए कई प्रकारके तैलोंका उपयोग किया जाता था और उन तैलोंको सुगन्धित बनानेके लिए उनमें इत्र मिलाये जाते थे।

आजकल पाश्चात्य देशोंमें तैल बनानेकी पुष्पोद्यान विधि बहुत प्रचलित है। यह विधि भारतवर्षमें हजारों वर्षोंसे चली आ रही है। तिल्लीके बीजको बहते हुए पानीके साथ खूब अच्छी तरह धो लिया जाता है,ताकि वह साफ होकर बिलकुल सफेद हो जाय। तैलको साफ और केश-

वर्द्धक बनानेके लिए तिल्लीको अच्छी तरह धोना आवश्यक है। तब उस तिल्लीके ऊपर इच्छानुसार, गुलाब, बेला, केतकी इत्यादि फूलोंसे पुष्पोपासना करते जाना चाहिये, जबतक कि आवश्यक सुगन्ध तिल्लीमें संतृप्त न हो जाये। इसके पश्चात बीजोंको तैल बनाने वाले यन्त्रमें डाल कर पेरते हैं। इस कामके लिए चन्दनकी लकड़ीके बने हुए यन्त्र अधिक उपयोगी हैं। इस प्रकारके बनाये गये तैल अपने शीतल और सुगन्धित गुणोंके लिए प्रसिद्ध हैं।

केश-हीनताके लिए गुआंका फल, शहद और तिल्लीमें अच्छे प्रकारसे जला हुआ हाथी-दांतका चूर्ण बहुत लाभदायक माना जाता है। 'सुभग करणम्' अथवा शरीरके चर्मको सुन्दर और कोमल बनानेके लिए प्राचीन पुस्तकोंमें बहुत-सी विधियां बतायी गयी हैं। इसके लिए कूट और तुलसीपत्रका अवलेपन अत्यन्त लाभदायक समझा जाता था। राईके बीज, तिल्ली, हरिद्रा और कूटका मिश्रण शरीरको बहुत कोमल और सुगन्धित बनाता है। स्त्रियां अपने चेहरेको कोमल और आकर्षक बनानेके लिए सफेद राईके बीज, साफ जौ और लोध्र लगाया करती थीं। कच्चे दूधमें आटा और नीबू मिलाकर चेहरेपर लगानेका लेप बनाया जाता था। स्त्रियोंमें ऐसे मिश्रणोंका उपयोग बहुत प्रचलित था और आज कल भी है। वे चर्मके रोमकूपों को साफ करनेके लिए सबसे उत्तम माने जाते हैं। हिन्दुस्तान में आकर मुसलमान लोगोंने भी यह प्रथा हिन्दुओंसे ग्रहण कर ली। उनके दो प्रसिद्ध चूर्ण निम्नलिखित हैं—

(१) अबीर, जो गुलाब, अगरकी लकड़ी, चन्दनकी लकड़ी, हरिद्रा और सिवेर मिलाकर बनता है।

(२) चिक्सा, जौका आटा, पानड़ी, चन्दन, राईके बीज, फलुगरीक और खसके मिलानेसे बनता है।

प्राचीन कालमें स्त्रियां आंखोंमें काजलका उपयोग करती थीं, पलकोंमें अञ्जन लगाती थीं और हाथों और पांवोंकी हथेलियोंपर मेंहदी लगाती थीं। वे प्रायः शरीरके ऊपर केतकी और लोध्रके चूर्णका उपयोग करती थीं। शरीरको सुगन्धित बनानेके लिए चन्दनका लेप और वस्त्रोंको सुगन्धित बनानेके लिए धूप लगाती थीं। प्राचीन कालके लोग नाखूनोंका बहुत ध्यान रखते थे। वात्स्यायनने लिखा है कि नाखून प्रत्येक चौथे दिन काटने चाहिये और गोल, सुन्दर और साफ होने चाहिये।

लोम-नाशक पदार्थोंके लिए शंख और हड़तालका चूर्ण अथवा चूना और पीली हड़तालका चूर्ण बहुत प्रचलित है। ऐसे मिश्रण लोमोंको जड़से ही नष्ट कर देते हैं। और इन मिश्रणोंके उपयोगके बाद कुसुम्ब-फूल व बादामके तेलका उपयोग अवश्य करना चाहिए, जिससे रोम-कूप और चर्म कोमल हो जांयगे।

इस तरह विविध प्रकारके अङ्गराग प्राचीन कालमें हमारे यहां प्रचलित थे, परन्तु उनकी महत्ता वर्तमान कालमें विदेशी, सस्ते और अधिक आकर्षक अङ्गरागोंके आनेसे कम हो गयी है, नये वैज्ञानिक यन्त्रों द्वारा विविध अङ्गराग शीघ्र तैयार हो जाते हैं, किन्तु प्राचीन पदार्थ साधारणतया बड़ी कठिनाईसे तैयार होते हैं। विदेशी, सस्ते और अधिक आकर्षक अङ्गराग आनेपर भी हिन्दुस्तानके ९९ प्रतिशत लोगोंकी मांग अभी प्राचीन अङ्गरागों द्वारा ही पूरी होती है।

आज युद्धके कारण जब विदेशी चीजोंका मूल्य बहुत अधिक हो गया है, और अधिक मूल्य देनेपर भी उनका मिलना कठिन हो गया है, तब, अपने इन प्राचीन अङ्गरागोंकी महत्ता एक बार फिर बढ़ायी जा सकती है, और इनके उपयोगसे थोड़े खर्चमें आसानीसे काम चलाया जा सकता है, ऐसा करनेसे हमारा ख्याल है कि सहस्त्रों वर्षकी पुरानी कला एक बार फिर पुनरुज्जीवित हो उठेगी। आशा है देशकी बहनें इस ओर ध्यान देंगी।

पन्द्रह वर्षीय आर्थिक-योजना

श्री० जी० एस० पथिक

इस युद्धके बाद क्या होगा ? संसारकी आर्थिक स्थिति क्या होगी ? अमेरिका और इङ्गलैंड आपसमें कैसे निज-स्वार्थोंके लिए लड़ेंगे, भारतकी स्थिति कैसी रहेगी, श्रमिक और पूंजी-पतियोंकी वर्त्तमान दशा क्या युद्धके बाद भी ऐसी ही रहेगी ? अमेरिका और लन्दनके "साहब" किस प्रकार भारतको फिर चूसना चाहते हैं—इस लेखमें पढ़िये ।

भारतवर्षके औद्योगिक पुनर्निर्माणके लिए अर्थ, पूंजी और उद्योग तथा व्यावसायिक क्षेत्रके आठ प्रमुख प्रतिनिधियोंने १०,००० करोड़ रुपयेकी एक महत्त्वपूर्ण योजना तैयार की। युरोपके प्रमुख देशोंने आर्थिक योजनाओंके द्वारा ही अपनी आश्चर्यजनक उन्नति की है। इस प्रकारकी योजनाओंका आरम्भ रूस और जर्मनीसे हुआ। रूसकी योजना भारतके अनुकूल हो सकती है, क्योंकि दोनों देशोंकी परिस्थितियोंमें बहुत कुछ साम्य है, पर एशिया खण्डमें जापानने अपने ही ढङ्गसे औद्योगिक विकास किया। उसकी औद्योगिक उन्नतिने अमेरिका और युरोपीय देशोंको भी चकित कर दिया। उसने पूंजीवादी उद्योग-प्रधान देशोंकी नकल न कर, अपनी ही आर्थिक और औद्योगिक व्यवस्थाओं द्वारा इतना सुन्दर और सस्ता माल तैयार किया कि जिसका कोई भी मुकाबला न कर सका।

किसी देशकी राजनीतिक स्वाधीनता उसके औद्योगिक विकासपर ही निर्भर है। अपनी औद्योगिक उन्नतिके कारण रूसने जो शक्ति प्राप्त की, उससे उसकी राजनीतिके आगे पूंजीवादी देशोंको भी झुकना पड़ा। एशिया और अफ्रीकाके देश युरोपवालोंके लिए उपभोगके क्षेत्र हैं, मगर जापानने अपनी औद्योगिक उन्नतिके द्वारा विश्वके राष्ट्रोंमें अग्र स्थान प्राप्त किया। कम्युनिज्म या राष्ट्रीय साम्यवाद आदिका कोई आदर्श सम्मुख न होते हुए भी उसने अपने उद्योग-धन्धोंके निर्माणमें बड़े पूंजीवादियोंको कोई स्थान नहीं दिया। बड़े-बड़े धन्धोंका निर्माण छोटे-छोटे सङ्घोंके रूपमें राज्य और साधारण लोगों द्वारा हुआ। इसीसे उसकी औद्योगिक उन्नतिको देखकर संसारको आश्चर्य में पड़ जाना पड़ा। अतएव भारतमें जहां मानव-शक्तिकी प्रधानता है, वहां औद्योगिक पुनर्निर्माण की दौड़में युरोपीय योजनाएं अधिक बेकारी पैदा करनेका साधन बनती हैं। इसलिए हम किसी अंश तक जापानका अनुकरण कर सकते हैं। पर जो कुछ भी हो, अपने देशके लिए योजनाका रूप निश्चित करते समय हमें अपनी परिस्थितियोंको न भूल जाना चाहिए।

ये योजनाएं एक शस्त्रके समान हैं। उनसे बुरा और भला दोनों ही फल हो सकता है। औद्योगिक योजनाओंमें

पन्द्रह वर्षीय योजनाके एक प्रमुख प्रस्तावक
सेठ घनश्यामदासजी बिड़ला

अद्भुत सफलता प्राप्त करनेसे ही रूसको युद्धमें प्रवृत्त होनेकी शक्ति प्राप्त हुई। जर्मनी इन्हीं योजनाओंके द्वारा ऊपर उठा और फिर उसका इतना साहस हुआ कि जिससे उसे यह महा भयानक युद्ध लड़ना पड़ा। जापानकी भी करीब-करीब यही दशा है। उसने भी चीन और अन्य

पूर्वीय देशोंपर सत्ता कायम करनेके लिए कदम बढ़ाया। इसलिए यह मानना पड़ेगा कि जिस प्रकार वैज्ञानिक अनुसन्धानसे संसारका कल्याण और ह्रास दोनों होता है, उसी प्रकार आर्थिक योजनाओंके द्वारा शान्ति और युद्ध दोनों ही सम्भव हैं। इन योजनाओंके सञ्चालनपर ही संसारकी स्वतन्त्रता और दासता निर्भर है। इससे यह प्रकट है कि किसी देशकी राष्ट्रीय आर्थिक योजना तभी सार्थक हो सकती है, जब कि वह मानव समाजको जीवन, स्वतन्त्रता और सुख प्रदान करे।

पर भारतकी आर्थिक योजनाओंमें युरोपियन राष्ट्रोंकी व्यवस्थाओंका अन्धानुकरण नहीं किया जा सकता। ये योजनायें बड़े-बड़े आदर्शोंको लेकर कार्यक्षेत्रमें आती हैं, पर व्यावहारिक पथमें वे कोसों दूर जा पड़ती हैं। योजनाओंकी सफलता और उनके रूपका निर्माण राज्य-शासनकी पद्धतिपर बहुत कुछ निर्भर है। यदि किसी देशमें वास्तविक रूपमें लोकतन्त्र-शासन है, तो वह किसी एक वर्गके नागरिकोंको दूसरोंकी अपेक्षा अधिक सुख साधन प्राप्त करनेके साधन नहीं दे सकता। वह चाहेगा कि उसके सभी वर्गके लोग समान रूपसे उन्नत जीवन बितायें। उसका लक्ष्य होगा कि समस्त देशवासी खूब खायें, अच्छा पहनें और समस्त सुविधाओंसे युक्त अच्छे घरोंमें रहें। उनके स्वास्थ्य, शिक्षा और चिकित्साकी समुचित व्यवस्था हो। इसी प्रकार व्यक्तिगत जीवन और राजनीतिक स्वतन्त्रताके सम्बन्धमें है।

हमारी योजनाओंका लक्ष्य युद्धकी तैयारी या भीतरी सङ्घर्ष पैदा करनेवाला न हो। जब योजनाका लक्ष्य अन्य देशोंका शोषण होता है, वह युद्ध अनिवार्य हो जाता है। आज तक जिन-जिन देशोंने आर्थिक योजनाओंका प्रयोग किया, वे सब युद्धमें लड़नेके लिए तत्पर हुए। उनके द्वारा मानव-समाजका कितना ह्रास हुआ, और संसारकी कितनी सम्पत्ति नष्ट हुई, उसका अनुमान करना भी सम्भव नहीं है। कहना न होगा कि सैनिक विजय या आर्थिक सङ्घर्षके लिए ही योजनाओंका उपयोग हुआ है। आर्थिक तत्वोंके आधारपर ही योजनाओं द्वारा नयी-नयी शासन-पद्धतियोंका निर्माण हुआ। रूसमें कम्युनिज्म, जर्मनीमें नेशनल सोशलिज्म और इटलीमें फासिज्म तथा जापानमें इन्हींके समान, मिलता जुलता शासन कायम हुआ। पर पूंजीवादी देश भी इस दौड़-धूपमें खामोश नहीं बैठे रहे। उनकी औद्योगिक उन्नतिके लिए उनकी आर्थिक सत्ता ही काफी हुई।

गांधीजी और नेहरूजीका दृष्टिकोण

भारतकी वर्तमान अर्थनीतिका निर्माण महात्मा गांधीके नेतृत्वमें हुआ। पर उनकी नीति विश्वकी योजनाओंसे मेल नहीं खाती और न पूंजीवादियोंसे ही कोई प्रकट मुकाबला करती है। ऐसी स्थितिमें भारत किसी एक आदर्शपर नहीं चला। पर इस क्षेत्रमें पण्डित जवाहरलाल नेहरू युरोपीय आदर्श रखते हैं। रूस उनका पथ-प्रदर्शक है, किन्तु फिर भी योजनाओंके निर्माणमें वे भारतीय परिस्थितियोंका खयाल रखते हैं। यह स्पष्ट है कि उनकी योजनाके सामाजिक जीवनमें पूंजीवादियोंका प्राधान्य नहीं है। उनके कार्यक्रममें पूंजीवादियोंका उपयोग होते हुए भी—पूंजीवादी सत्ताकी कोई प्रधानता नहीं है। इधर महात्मा गान्धी भी रूसी आदर्शोंके समीप आ गये हैं। कुछ दिन हुए, लूइस फिशरको गान्धीजीने लिखा था कि—"शासनका केन्द्र दिल्ली, कलकत्ता या बम्बईमें कहींपर हो, पर उसका विभाजन भारतके सात लाख ग्रामोंमें होगा।" मगर अभी कोई ऐसी शक्ति नहीं है, जो सबको स्वेच्छापूर्ण सहयोगके लिए केन्द्रीभूत करे, या सोवियट रूसके नये आदर्शसे कोई उच्चतम व्यवस्था कायम करे। कुछ लोग कहते हैं कि रूसमें भयानक अत्याचार होते हैं, पर वे किसके उद्धारके लिए, दलितों और गरीबोंके लिए ही न?

उद्योग-पतियोंकी इस योजनाके पूर्व पण्डित जवाहरलाल नेहरूके सभापतित्वमें आर्थिक योजना कमेटीने कांग्रेसी शासन-कालमें भारतके औद्योगिक पुनर्निर्माणका कार्य शुरू किया था। भारतके अर्थवेत्ताओं और विशेषज्ञोंके सहयोगसे आर्थिक योजनाकी विविध रूप-रेखाएं तैयार की गयीं। सभी प्रान्तीय सरकारें और देशी रियासतोंने इस कार्यमें सब प्रकारसे सहयोग दिया।

पर जो उद्योगपति उस समय अग्रसर नहीं हुए, वे इस युद्ध-कालमें राजनीतिक नेताओंकी अनुपस्थितिमें आर्थिक योजना लेकर सामने आये। यह मानना होगा कि यदि भारतकी औद्योगिक उन्नति अभीष्ट है, तो युद्धोपरान्त ही उसकी आर्थिक योजनाके आधारपर नये-नये धन्धोंका सञ्चालन शुरू हो जाना चाहिए। अभीसे बड़ी सावधानीसे आर्थिक योजना तैयार कर सङ्गठित रूपमें कार्य शुरू होना चाहिये। यदि यह अवसर खो जाने दिया गया, तो बादमें यह स्थिति न रहेगी कि संसारके देशोंका सहजमें मुकाबला किया जा सके।

वर्तमान युद्ध और उद्योग-धन्धे

इस युद्धकालमें भारतीय उद्योगपति और अन्य पूंजीवादियोंने नये-नये धन्धोंके निर्माणमें कोई प्रगति नहीं की। १९१४ के महायुद्धमें जिस प्रकार इस देशने औद्योगिक उन्नति की थी, उस प्रकार इस बारके युद्धकालमें कोई प्रयत्न नहीं हो पाया। उद्योग-पतियों और जन साधारण की निर्बलताओंके सिवा भारत सरकारकी कड़ी बन्दिशोंने कोई कार्य नहीं होने दिया। स्वतन्त्र रूपसे पूंजी लगाकर नये धन्धे स्थापित करनेका अधिकार सरकारनेछीन लिया। नयी पूंजी लगानेके सम्बन्धमें इतने कठोर नियन्त्रण लगा दिये गये कि जिससे यह सम्भव नहीं रहा कि कोई धन्धा खड़ा किया जा सके। इसके सिवा अनेक बार भारी धन्धे खोलनेकी मांग की गयी, उसे भी सरकारने मंजूर नहीं किया। कई ऐसे प्रयत्नोंको भी उसने ठुकरा दिया, जिनके लिए पूंजी और सब साधन जुटा लिये गये थे। इतना ही नहीं, अमेरिकाने भी मशीनें और विशेषज्ञ भेजना स्वीकार कर लिया था। इस देशमें इन आयोजनोंके सफल होनेसे ब्रिटिश सरकारको युद्ध प्रयत्नोंमें पूरी मदद मिलती, मगर आस्ट्रेलिया और कनाडाके स्वार्थोंकी रक्षाके लिए भारतकी मांगोंपर अनेक अड़चनें बतला कर कोई ध्यान नहीं दिया गया। जो भारी धन्धे कनाडा और आस्ट्रेलियाके लिए युद्धकालमें सुलभ हुए, वे भारतके लिए अव्यावहारिक करार दिये गये। समुद्री जहाज, वायुयान, इञ्जिन, मशीनें और रासायनिक वस्तुएं तैयार करनेके किसी भी प्रयत्नको सरकारने सफल नहीं होने दिया। इससे यह स्पष्ट है कि ब्रिटिश सरकारकी नीति अब भी जातीय भेदभाव और इम्पीरियल प्रिफरेंसकी है। ऐसी स्थितिमें भारत सरकारकी देशके पुनर्निर्माण सम्बन्धी योजनाएं सर्वथा निर्जीव हैं। राष्ट्रके निर्माणमें उनका कोई भी महत्व नहीं है। इस पुनर्निर्माणके अन्तर्गत शिक्षा आदिकी जो रिपोर्टें प्रकाशित हुई हैं, वे यह साबित कर रही हैं कि इस मार्गपर चलनेसे देश सदियों तक गुलाम बना रहेगा। ऐसी स्थितिमें—क्या कोई स्वतन्त्र योजना सफल हो सकती है? घटनाचक्रके कारण ही भारत सरकारके सदस्य इस गैर-सरकारी योजनापर विचार करनेके लिए विवश हुए हैं। अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियोंने ही उन्हें मजबूर किया। विदेशी पूंजीपति और अर्थविद् इस योजनाके प्रति आकर्षित हुए और अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक क्षेत्रमें जैसे-तैसे उसे स्थान मिला। ऐसी स्थितिमें किसी भी स्वतन्त्र योजनाकी सफलता राज-शासनकी व्यवस्थापर निर्भर है। इसलिए योजनाकार यह मानते हैं कि राष्ट्रीय सरकारके शासनमें ही यह योजना सफल होगी। विश्वकी नयी परिस्थितियां भारतको नये धन्धोंमें अग्रसर होनेसे न रोक सकेंगी।

इस योजनाका यह लक्ष्य है कि पन्द्रह वर्षकी अवधिमें राष्ट्रीय आयमें तिगुनी वृद्धि हो। इस अवधिमें जनसंख्याकी वृद्धि वर्तमान पैमानेपर होते हुए भी राष्ट्रीय आय २२०० करोड़ रुपयेसे ६६०० करोड़ रुपये हो जाय। इस तिगुनी वृद्धिमें सबका अनुपात समान रूपसे नहीं है। उसका क्रम यह है कि उद्योग-धन्धोंके निर्माणमें ५०० प्रतिशत, कृषिमें १३० प्रतिशत और अन्य पेशोंमें २०० प्रतिशतकी वृद्धि हो। इस प्रगतिसे उद्योग-धन्धोंकी वर्तमान १७ प्रतिशत आय ३५ प्रतिशत हो जायेगी। कृषि और अन्य पेशोंमें ४० और ५३ प्रतिशतकी वृद्धि होगी, जिनका अनुपात इस समय २० और २२ प्रतिशत है। इस प्रकार इस योजनाके जारी होनेसे १५ वर्षकी अवधिमें औद्योगिक उत्पादनसे २२४० करोड़ रुपये, कृषिसे २६७० करोड़ रुपये और अन्य पेशोंसे १४५० करोड़ रुपयेकी आयका अनुमान है। इस आयसे प्रत्येक व्यक्तिकी आयका औसत १३५ रुपये तक होगा। पर अन्य उन्नत देशोंकी तुलनामें यह औसत फिर भी बहुत नीचा है।

योजनाके अन्तर्गत भारत कैसे चमकेगा

इस योजनाके प्रस्तुतकर्त्ता जिन मूलभूत-धन्धोंकी प्रधानता चाहते हैं, उनमें विद्युत, खनिज, धातुशोधन, इञ्जीनियरिङ्ग, छोटी-मोटी सब तरहकी मशीनें, रासायनिक वस्तुएं, युद्ध-सामग्री यातायात (ट्रान्सपोर्ट) के लिए रेलवे इञ्जिन, मोटरें, बसें, समुद्री जहाज, नौकायें और वायुयान तथा सीमेण्ट आदि हैं। ये ही खास धन्धे हैं, जिनपर योजनाकी आर्थिक स्थितिका निर्माण होगा। वर्तमान कालमें कोई भी धन्धा विद्युत, मशीनें और रासायनिक-वस्तुओंके अभावमें नहीं चल सकता। इसी प्रकार कृषिकी उन्नति भी नयी-नयी खाद और वैज्ञानिक साधनोंके अभावमें सम्भव नहीं है। इसके साथ ही यातायातके अनुकूल और सस्ते साधनोंके न होनेपर भारत-जैसे विस्तृत देशमें आर्थिक जीवन अवरुद्ध बना रहेगा। जहाज, मोटरें तथा रेलगाड़ियोंकी कमीसे भारतीय धन्धों और व्यवसायोंका विदेशी प्रतिद्वन्दितामें टिकना सम्भव नहीं है। अतएव आर्थिक योजनाकी सफलताके लिए इन मूलभूत धन्धोंका सर्वप्रथम निर्माण होना चाहिये। देशकी आर्थिक प्रगतिका

सारा दारमदार इन्हीं धन्धोंकी उन्नतिपर अवलम्बित है। इन सबमें विद्युतकी प्रधानता सबसे ही अधिक है। भावी कृषि और बड़ेसे छोटे धन्धोंतकके लिए विद्युतका उपयोग अनिवार्य है। सोवियट रूस, अमेरिका और जापानकी उन्नति विद्युत द्वारा हुई। सोवियट रूसकी प्रथम पञ्च-वर्षीय योजनामें ही देशके विद्युत-करणकी व्यवस्था प्रधान थी। उसने गांव-गांवमें बिजलीकी रोशनी पैदा कर उजड़े हुए देशकी काया पलट दी। अमेरिकामें भी वही हुआ। वहां भी कृषिके विकासमें बिजलीने अद्भुत काम किया। जापानमें बड़े-बड़े धन्धे छोटे आयोजनोंसे, बिजलीके द्वारा चले। सम्प्रति इस युद्धकालमें कनाडाने भी इस दिशामें आश्चर्यजनक उन्नति की। भारतमें बिजलीका विकास अभी कुछ नहीं-सा हुआ है। इस हाइड्रो-इलेक्ट्रिक धन्धेके लिए देशभरमें विस्तृत साधन मौजूद हैं।

इसके सिवा जो राष्ट्रीय धन्धे इस समय देशमें चल रहे हैं, उनके उत्पादनमें भी अधिक वृद्धिकी आवश्यकता है। कपड़ा, रेशम, ऊन, कांचकी चीजें, चमड़ेका सामान, कागज, तमाखू, तेल, सीमेण्ट और चीनी आदिके अनेक धन्धे हैं, जो इस समय देशमें चल रहे हैं और जिनके विस्तारकी आवश्यकता है। इतना ही नहीं, युद्धोपरान्त उनमें भारी फेर-बदल होना आवश्यक होगा। इनमें भी नयी-नयी मशीनोंकी जरूरत पड़ेगी। युद्धकालमें अत्यधिक उत्पादनसे बहुतसे कारखानोंकी मशीनोंका बदलना अनिवार्य हो गया है। इसके सिवा विदेशी प्रतिद्वन्द्विताके खयालसे भी नयी-नयी मशीनोंकी जरूरत पड़ेगी। बम्बई और अहमदाबादके कपड़ेकेकारखानोंकी नयी मशीनोंने ही लङ्काशायर और मैञ्चेस्टरके डेढ़ सौ वर्षकी पुरानी मशीनों द्वारा तैयार मालको भारतमें नहीं टिकने दिया। इन मौजूदा धन्धोंके नये कारखाने भी खोले जा सकते हैं। खपत होनेवाली वस्तुओंमें ऐसी अभी बहुत-सी हैं, जिनके इस देशमें कारखाने नहीं हैं, और जो बड़ी सुविधासे खोले जा सकते हैं। मगर इन धन्धोंकी प्रगति खपतपर निर्भर है। यदि उनका उत्पादन देशके लिए काफी है, तो उनमें और अधिक वृद्धि विदेशी मांगपर ही हो सकती है। पर प्रत्येक देशकी स्वावलम्बी आर्थिक नीतिके कारण विदेशी बाजार एकायक मिलना सम्भव नहीं है। इस युगमें विदेशी बाजार स्वेच्छासे नहीं मिलते। उनपर अपना अधिकार कायम करनेके लिए तलवार चलानी पड़ती है। यह महायुद्ध इन्हीं बाजारोंको हथियानेके लिए हुआ। इस आर्थिक शोषणसे संसारके निर्बल देश सावधान हो गये हैं और अब वे अधिक नहीं लुटना चाहते। यदि युरोप और अमेरिकाका हस्तक्षेप न हो, तो सुदूरपूर्व और पश्चिमीय एशियाके बहुतसे ऐसे देश हैं, जिनमें भारतके तैयार मालकी बराबर खपत हो सकती है। भारत इन सब देशोंके लिए औद्योगिक केन्द्र बन सकता है। पर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारमें सफलता प्राप्त करनेके लिए सस्ते यातायातकी बड़ी आवश्यकता है। इस सस्तेपनके कारण ही इस देशमें जापानी मालपर सौ-दो सौ प्रतिशतकी ड्यूटी लगनेपर भी उसकी मांग बनी रही और वह अन्य देश तथा इस देशके तैयार मालकी प्रतिद्वन्द्वितामें सस्ता बिका। पर अबतक भारतकी हालत बड़ी विचित्र रही है। अफ्रीकासे बम्बई आनेवाले कोयलेका इतना किराया नहीं है, जितना अधिक किराया रानीगञ्जसे बम्बई तकका है। अफ्रीकाके कोयलेके मुकाबलेमें रानीगञ्जका कोयला बम्बईमें महंगा पड़ता है। यही अवस्था अन्य तैयार मालकी भी है। देशमें रेल आदिका किराया इतना अधिक रखा गया कि जिससे देशका माल हरएक शहरमें महंगा पड़ा। इसलिए सस्ते यातायातकी व्यवस्थाके साथ-साथ भिन्न-भिन्न वस्तुएं तैयार करनेवाले नये धन्धोंकी वृद्धि होनी चाहिए। अतएव २२४० करोड़ रुपयेकी नयी वस्तुएं तैयार करनेके कारखाने स्थापित करनेके लिए ४४८० करोड़ रुपयेकी पूंजी चाहिए। आगे चलकर इतनी पूंजी भी पर्याप्त न होगी। इसमें रेलवे और ट्रान्सपोर्टकी ७०० करोड़ रुपयेकी पूंजीका कोई शुमार ही नहीं है।

योजनाकारोंने छोटे धन्धों और ग्रामीण धन्धोंके लिए कोई पूंजी पृथक रूपसे नहीं नियत की। केवल इच्छामात्रसे ही छोटे धन्धोंका विकास न होगा। इसलिए यदि आर्थिक योजनामें छोटे धन्धोंके विकासकी व्यवस्था न हो, तो उससे देशको कोई सन्तोष न होगा। इसके अभावमें इस योजनाकी प्रगतिका यह परिणाम होगा कि वर्तमान पूंजीपतियोंके पास आजसे कई गुना पूंजी बढ़ जाय और कई लाख मजदूरोंको धन्धा मिल जाय। पर इस तरीकेसे क्या देशका आर्थिक उद्धार सम्भव है। वर्तमान आर्थिक सङ्घटनमें उत्पादन और वितरणके जो तरीके हैं, वे भविष्यमें बने न रहेंगे। उनमें क्रान्तिकारी परिवर्त्तन होना अनिवार्य है। जबतक वर्तमान व्यवस्थाके आधारपर वस्तुओंका वितरण होगा, देशकी बेकारी कदापि दूर न होगी। देश नये आर्थिक सिद्धान्तोंपर समाजकी रचना चाहता है। उसके लिए केवल इतनेसे सन्तोष न होगा कि पूंजीवादी

इस बातके लिए राजी हो जायं कि बड़े पैमानेके धन्धोंकी व्यवस्था राज्यके हाथमें हो। ग्रेट ब्रिटेनमें फेडरेशन आफ ब्रिटिश इण्डस्ट्रीजकी योजना और लेबर योजना उपस्थित की जा रही है, उनकी मंशा यह है कि वर्तमान स्थिति कायम रखनेके लिए राज्यसे अधिक-से-अधिक सहायता प्राप्त की जाय और देशकी जनताको बेकारी, क्षुधा और दरिद्रतासे बचानेके लिए उन्हें काम देकर जीत लिया जाय। अमेरिका और इङ्गलैण्डमें सरकारी कण्ट्रोल बोर्डोंकी व्यवस्था जिन उद्योगपति—पूंजीपतियोंके हाथमें है, वे भविष्यमें भी अपना अधिकार कायम रखना चाहते हैं। भारतमें भी यह आर्थिक योजना संसारकी गतिविधिके आधारपर ही उद्योगपति-पूंजीपति चलायेंगे। वे आज राज्यके सहयोगसे अपने कार्यक्षेत्रका नया पट्टा चाहते हैं। उन्हें मुनाफेमें वृद्धिकी चिन्ता नहीं है। वे यह जानते हैं कि बहुत अधिक धन जमा हो जानेके कारण नफेकी दरमें वृद्धि सम्भव नहीं है। इसके सिवा बढ़ती हुई प्रतिद्वन्दितामें भी भारी शोषण नहीं हो पायेगा। पिछले महायुद्धके उपरान्त जो भयानक मन्दी आयी थी, उससे अमेरिका और इङ्गलैण्डमें सरकारी सिक्यूरिटियोंमें अधिक नफा कमानेके उद्देश्यसे पूंजी लगायी गयी थी। युद्धोपरान्त राष्ट्रोंमें फिर भारी प्रतिद्वन्दिता होगी। इङ्गलैण्ड अभीसे अपना निर्यात बढ़ानेकी सोच रहा है, जिससे कि युद्धोपरान्त उसके वर्तमान जीवनका स्टैण्डर्ड कायम रखा जा सके। भारी विदेशी ऋणके होते हुए वह बेवरिज सिक्यूरिटियोंके शब्दोंमें अपनी सुरक्षा चाहता है। अमेरिकामें भी युद्धकालका नफा युद्धोपरान्त कायम रखनेकी कोशिश की जा रही है, जिससे वहांके लोगोंका जीवन भविष्यमें आजकी तरह बना रहे। अतएव इस देशके पूंजीपति भी प्रभावशाली प्रतिद्वन्दिताके खतरेको महसूस करते हैं। वे यह भी देखते हैं कि भावी औद्योगिक विकासमें फ्रीफ्रेड और कच्चे मालकी आम तौरपर अधिकताके कारण भारी रुकावटें पैदा होंगी। इङ्गलैण्ड अभीसे चेतावनी देता है कि वह किसी उदारताके खयालसे भारतका कच्चा माल अधिक न खरीद सकेगा। उल्टे उसे अपना भारी युद्धऋण अदा करनेके खयालसे अधिक निर्यात करना पड़ेगा, भारतके उद्योगपति और पंजीपतियोंको इस देशकी वास्तविक स्थितिका खयालकर अग्रसर होना चाहिये। यदि छोटे पैमानेपर अधिक धन्धोंका निर्माण होगा, तो विदेशी पूंजीकी जरूरत न पड़ेगी। पर इन छोटे-बड़े धन्धोंका हल तबतक सम्भव नहीं है, जबतक कि उनका निर्माण नयी आर्थिक नीतिके आधारपर न हो। जर्मनी और रूसके समान भारतकी स्थिति नहीं है। उन देशोंमें मानव शक्तिकी न्यूनता थी, पर भारत—जैसे चालीस करोड़की आबादी वाले देशमें औद्योगिक निर्माण जबतक साम्यवादी तरीकोंपर न होगा, तबतक कोटि-कोटि मनुष्योंके जीवनका प्रश्न हल होना सम्भव नहीं है। इसलिए जहां अधिकसे अधिक छोटे आयोजनों द्वारा बड़े व छोटे पैमानोंके धन्धोंका निर्माण हो, वहां उनकी व्यवस्था साम्यवाद पद्धतिके आधारपर ही हो।

सोनेका देश हमारा

कृषिके उत्पादनपर भी योजनामें विचार किया गया है। मगर इस सम्बन्धमें कोई नया सुझाव नहीं रखा गया। सहकारी पद्धतिपर खेती, नये ढङ्गसे सिंचाई, अच्छा बीज और खाद और नये औजारोंकी योजनामें नान-रिकरिंग व्यय ८५० करोड़ रुपये और रिकरिङ्ग व्यय ४०० करोड़ रुपये होंगे। पर क्या यह सम्भव है कि इतने द्रव्यसे सात लाख गांवोंकी दरिद्रता जादूकी तरह दूर हो जायगी। जबतक योजनामें वर्तमान ऋणसे किसानोंका उद्धार न होगा और उन आधे पेट खाकर जिन्दगी बिताने वालोंके लिए नये तरीकोंपर उनके उत्पादन और खपतकी व्यवस्था न होगी, तबतक उनका उद्धार होना सम्भव नहीं है। भारतमें खाद्य-पदार्थ और कच्चे मालका उत्पादन दिनपर दिन गिर रहा है। बढ़िया किस्मकी रूई, गेहूं और तेलहनका अभाव हो रहा है। आज देशकी कपड़ेकी मिलोंको महीन वस्त्र तैयार करनेके लिए मिश्र और अमेरिकासे रूई मंगानी पड़ती है। गेहूं और अलसी आदिकी पैदावार भी भारतमें अमेरिका, कनाडा, रूस और आस्ट्रेलियासे पिछड़ गयी है। यह मानना होगा कि औद्योगिक योजनाकी सफलता बढ़िया किस्मके अत्यधिक कच्चे मालके उत्पादन पर निर्भर है। पर इस अधिक उत्पादनका अर्थ वर्तमान गन्नेकी पैदावारके समान न होना चाहिये। हम विदेशियोंके समान कच्चे मालका उपयोग न करें। हमारे उद्योगपति अपनी औद्योगिक योजनाओंकी सफलताके लिए यह नजर रखें कि भारतीय किसानोंका स्टैण्डर्ड भी अमेरिका और रूसके किसानोंके समान उन्नत हो। इस सम्बन्धमें जहांतक विदेशियोंका प्रश्न है, वे हमारे कृषि उत्पादनसे प्रसन्न हैं, क्योंकि वे यह समझते हैं कि इस ओर हमारी शक्ति लगी रहनेसे बड़े उद्योग-धन्धोंके निर्माणमें हम न पड़ेंगे और उस स्थितिमें उनका तैयार माल

खरीदनेके लिए हमें सस्ते भावोंमें कच्चा माल बेचना पड़ेगा। विदेशी व्यापारी और अर्थविद् इस देशके व्यापार और उद्योग-धन्धोंकी अपेक्षा खरीदारोंके स्वार्थोंकी अधिक चिन्ता करते हैं। वे कहते हैं कि किसानोंका हित इसीमें है कि वे विदेशियोंको कच्चा माल बेंचकर अधिक धन प्राप्त करें। इससे साधारण खरीदारोंको तैयार माल सस्ता मिलेगा। योजनाकार कृषिके उत्पादनमें वृद्धि करनेके लिए नहरोंकी व्यवस्थामें १३० करोड़ रुपये लगाना चाहते हैं। खेतीके क्षेत्रफलमें भी वृद्धि करनेके सिवा उसकी व्यवस्था सहकारी पद्धति द्वारा सोची गयी है। सहयोग समितियों द्वारा खेतीका उत्पादन होनेसे नये साधनोंका उपयोग सम्भव होगा और तब उत्पादन भी अधिक होगा। इस स्थितिमें उनके लिए यह सम्भव रहेगा कि वे अपना उत्पादन ऊंचे भावोंमें बेंचे। नये आयोजनकी व्यवस्थामें १२४० करोड़ रुपयेकी नयी पूंजी लगेगी।

यातायातके धन्धेमें रेलवे, सड़कें, मोटरें और जहाज आदिका निर्माण है। और उनके लिए कमसे कम ९४० करोड़ रुपयेकी पूंजी चाहिए। इस उद्योगकी वृद्धि होनेसे देशकी भारी बचत होगी। अभी विदेशी आयात-निर्यातके सिवा देशके समुद्री तट द्वारा मालके यातायातमें प्रतिवर्ष करोड़ों रुपये विदेश चले जाते हैं।

औद्योगिक सफलताके लिये आवश्यक कुछ तथ्य

पर औद्योगिक योजनाकी सफलताके लिए जनसाधारणका शिक्षित, स्वस्थ और कार्यदक्ष होना भी जरूरी है। शिक्षित होनेपर ही लोगोंके रहन-सहनमें परिवर्तन होगा और तब वे देशमें बनी हुई नयी-नयी चीजें खरीदेंगे। औद्योगिक क्षमताकी दृष्टिसे भी ये सब सुधार आवश्यक हैं। इस दृष्टिसे उद्योगपतियोंकी इस ओर दिलचस्पी होना स्वाभाविक है। वे यह खूब समझते हैं कि मजदूर और किसानोंके शिक्षित तथा स्वस्थ होने तथा अच्छे मकानोंमें रहनेसे उनमें अत्यधिक औद्योगिक क्षमता प्राप्त होगी। इसलिए योजनामें यह व्यवस्था की गयी है कि ४९० करोड़ रुपये शिक्षामें व्यय किये जायं। लोगोंके स्वास्थ्यके लिए अस्पताल जच्चाखाने, डिस्पेंसरियां और भयङ्कर रोगोंके चिकित्सालय आदि भी हों। इस मदमें ४९० करोड़ रुपये व्यय किये जायं। प्रत्येक मनुष्यके रहनेके लिए सौ वर्ग फीटका मकान हो। इस दृष्टिसे नये मकान तैयार करनेके लिए २२०० करोड़ रुपयेका धन लगाया जाय। इस प्रकार कुल योजनामें १०,००० करोड़ रुपये की पंजी लगेगी। यह पूंजी यातायातके सिवा हमारे वर्तमान उद्योग-धन्धोंमें मौजूदा लगी हुई पूंजीसे चौदह गुना अधिक है।

भारी मतभेद होनेपर भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि इस योजनाका कार्य मूलभूत धन्धोंके निर्माणका है। इञ्जीनियरिङ्ग, खनिज, भारी रासायनिक, धातु-शोधन और यातायातके साधन-निर्माणकी मांग समस्त भारतकी है और इस दृष्टिसे योजनाकारोंने वर्तमान योजना प्रस्तुत कर देशकी भारी सेवा की। इस योजनाकी प्रगतिसे इस देशमें विदेशी प्रयत्नोंको ठेस पहुंचेगी और थोथे सरकारी आयोजनोंको भी कोई स्थान न मिलेगा। युद्धोपरान्त देशके पुनर्निर्माणके लिए ये प्रयत्न अत्यन्त उपादेय हैं।

वह जानते हैं, भारत मुहताज नहीं रहेगा

यह प्रकट है कि ब्रिटिश साम्राज्यवादको भारतका औद्योगिक विकास कभी अभीष्ट नहीं हुआ। ब्रिटिश सत्ता भारी और मूलभूत धन्धोंके निर्माणके कभी भी पक्षमें नहीं रही। इन धन्धोंके लिए उसका विरोध स्वाभाविक है। इङ्गलैण्ड जानता है कि इन धन्धोंकी उन्नति होनेपर भारत मशीनें और अन्य चीजोंके लिए ब्रिटिश धन्धोंका मुहताज न रहेगा। यह मानना पड़ेगा कि अङ्गरेजोंने मूलभूत धन्धोंके स्थापित होनेमें प्रत्येक कदमपर विघ्न पहुंचाया। अङ्गरेजोंने भारतके यातयात—जहाजी धन्धेको निर्बल बनानेके लिए कौनसे प्रयत्न उठा रखे। युद्धजन्य आवश्यकताओंका खयाल करके भी अङ्गरेजोंके स्वार्थपूर्ण रुखमें भारतके लिए कोई परिवर्तन नहीं हुआ। राजर्स मिशनका प्रभुत्व कायम करते हुए ग्रेट ब्रिटेनने यही कहा कि भारतमें बड़े पैमानेके धन्धे स्थापित होना मुमकिन नहीं है। इसके सिवा अमेरिकाके ग्रेडी-मिशनकी साधारण सिफारिशोंको भी ब्रिटिश सरकारने ठुकरा दिया। अङ्गरेजोंको यह स्वीकार हुआ कि युद्ध-जन्य वस्तुओंके निर्माणमें भले ही देरी हो, किन्तु भारतमें नये धन्धोंकी स्थापना न होने पाये।

विदेशियोंने इस देशकी आर्थिक भित्ति इसी आधारपर निर्मित की, जिसका परिणाम यह हुआ कि प्रतिवर्ष निर्धनता बढ़ती गयी। भारतको अङ्गरेज पूंजीपतियोंकी दयापर छोड़ दिया गया। इसलिए भारी और मूलभूत धन्धोंकी मांग वे कब सहन कर सकते हैं। वे कब सोच सकते हैं कि इस देशमें मोटरें, मशीनें और कलें तैयार होने लगें। मगर भारतका इस ओर अग्रसर होना आर्थिक उद्धारकी चेष्टा करना है। इन प्रयत्नोंसे ही देशमें सच्ची स्वतन्त्रता कायम

होती। इन धन्धोंकी प्रगतिपर हमारा नवीन आर्थिक जीवन-निर्माण होगा। इस तत्वको, आर्थिक योजना कमेटी-के विवेचनमें पण्डित जवाहरलाल नेहरूने इन शब्दोंमें प्रकट किया था :—

आर्थिक योजना कमेटीकी नियुक्तिका प्रस्ताव ही यह प्रकट करता है कि हम भारी प्रधान धन्धे, मध्यम श्रेणीके धन्धे और ग्रामीण धन्धोंका निर्माण करें। वह हमें बताता है कि औद्योगीकरणके बिना देशका आर्थिक उद्धार सम्भव नहीं है। इसलिए हमें नये उद्योग-धन्धोंके निर्माणमें तेजीसे आगे बढ़ना है और यह तय करना है कि प्रधान और मूल-भूत धन्धे कैसे और कहां स्थापित हो सकते हैं।

इससे यह स्पष्ट है कि इस योजनाके निर्माणकर्ताओंने राष्ट्रकी महान् मांगके प्रति अपनी आवाज प्रकट की। यह वह मांग है, जो सबसे पहले भारी और मूलभूत धन्धे स्थापित करनेका क्षेत्र तैयार करती है। योजनाकारोंने स्वयं ही स्पष्ट शब्दोंमें यह प्रकट किया कि दूसरी कोई भी योजना, जो इन प्रधान धन्धोंको स्थापित न होने देकर हमारे कोरे आंसू धोती है और हमारे मुख्य प्रश्नकी उपेक्षा करती है, वह हमें कभी भी स्वीकार नहीं हो सकती। अत-एव अंङ्गरेज पूंजीपतियोंका चाहे जो रुख हो, पर हमारा बढ़ा हुआ कदम न रुकेगा। हम किसीके भुलावेमें न पड़ कर आगे बढ़ेंगे और साथ ही ऐसी परिस्थिति उत्पन्न न होने देंगे, जिससे कि देशमें इन धन्धोंका निर्माण होनेपर भी हम पंगु बने रहें। इसलिए विदेशी पूंजीपतियोंकी आशा और भयसे हम सचेत बने हुए हैं। वे कहते हैं कि भारतमें बड़े पैमानेपर औद्योगिक केन्द्र स्थापित न हो सकेंगे और उद्योग-धन्धोंमें काम करनेवाले मजदूर गांवों-से अपना सम्पर्क फिर भी बनाये रखेंगे। पर पूंजीपति और इञ्जीनियरोंके सहयोगके लिए भारतको चिन्ता न करनी पड़ेगी। अङ्गरेज व्यापारी यह मानते हैं कि भारत-का आर्थिक उत्थान संसारको धनशाली बनानेके लिए होगा, जिससे कि सभी लाभान्वित हुए बिना न रहेंगे।

निर्गुण ज्ञानमार्गी मत : एक विश्लेषण

लेखक—प्रो० धर्मेन्द्र, पटना कालेज

यदि सामूहिक दृष्टिसे देखा जाय, तो निम्नलिखित विशेषतायें प्रायः सभी निर्गुनियां सन्तोंकी भावनाओंमें पायी जायंगी :—

(१) ईश्वर एक है, वह निर्गुण है।

(२) पैगम्बर अथवा सगुण अवतार ईश्वरसे भिन्न है।

(३) ईश्वर, जीव तथा प्रकृति तत्त्वतः एक ही हैं।

(४) नाम रूपात्मक संसार मायाजन्य तथा मिथ्या है।

(५) ईश्वरकी प्राप्तिके लिए ज्ञान अथवा अनुभूति (Intuition) की आवश्यकता है।

(६) इस ज्ञानको पानेके लिए भक्ति और साधनाकी अपेक्षा है। सद्गुरु भी अनिवार्य है।

(७) ज्ञानीके लिए जात-पांत, तीर्थव्रत, मूर्ति आदि पाखण्डोंकी कोई आवश्यकता नहीं।

(१) निर्गुण सन्तोंने एकेश्वरवाद (monism) का एक स्वरसे प्रतिपादन किया है। उनके अनुसार ब्रह्मा, विष्णु, महेशादिको पूजनेवाला बहु-देववाद वेश्यावृत्ति है। तुलना कीजिये—

नारि कहावै पीवकी रहै और सङ्ग सोय
जार सदा मनमें बसै, खसम खुशी क्यों होय

(सन्तवानी संग्रह पृ० १८)

उसी प्रकार दरिया साहबने भी लिखा है—

एक भरोसा एक बल, एक आस विश्वास।
एक भरोसा नामकर, जाचक तुलसीदास॥

बूझहु तुलसी कर एह साखी।
पतिवरता एक पति चित राखी॥
एह जग वेस्वा बहुत भतारी।
एक भगति करु तन-मन वारी॥
एकै नाम आस चित धरहू।
दूजो दुविधा सब परिहरहू॥

कबीरने स्पष्ट शब्दोंमें घोषित किया कि—

दुइ जगदीश कहां ते आये, कहु कौने भरमाया

कुछ आलोचकोंने भ्रमवश कबीरी एकेश्वरवादको मुस-लमानी खोदावादका प्रभाव माना है। किन्तु यह धारणा भ्रान्त है। हजारीप्रसाद द्विवेदीने इस विषयपर विचार करते हुए यह बतलाया है कि "सही बात यह है कि कुछ

नामों, शब्दों और खण्डन करनेके उद्देश्यसे कुछ सिद्धान्तों-के अतिरिक्त मुसलमानी प्रभाव कबीरमें नहींके बराबर है।" निर्गुण मतवादी सन्तोंकी वानियोंकी सामान्य रूप-रेखा सम्पूर्णतः भारतीय है और बौद्ध धर्मके अन्तिम सिद्धों और नाथपन्थी योगियोंके पदादिसे उसका सीधा सम्बन्ध है।

यदि कबीरका एकेश्वरवाद इसलामी खोदावादका रूपान्तर रहता, तो उसमें पैगम्बर मोहम्मदका स्थान अवश्य रहता, उसी प्रकार यदि वह पौराणिक रहता, तो अवतारोंका समावेश होता ही। किन्तु तत्व तो यह है कि कबीर आदि सन्तोंका ईश्वरवाद न इसलामी है, न पौराणिक; वह दोनोंसे परे है और वज्र यानी शून्यवादका कालगत प्राकृतिक विकास है। जैसा गिबन (Gibbon) ने कहा है, मुसलमानी खोदावाद सत्य और कल्पना (an eternal truth and necessary fiction) दोनोंका सम्मिश्रण है। और बड़थ्वालके अनुसार कबीरने सत्यका तो अनुसरण किया, किन्तु कल्पनाका तिरस्कार किया।

सन्तोंके एकेश्वरवादपर औपनिषदिक वेदान्तकी भी गहरी छाप थी और उसने सारे संसारको ब्रह्ममय माना है—

'खालिक खलक खलकमें खालिक सब घट रह्यो समाई'

किन्तु सभी सन्तोंका एकेश्वरवाद एक ही प्रकारका हो, सो बात नहीं। यद्यपि सामूहिक दृष्टिसे सन्तमतके अनुसार बहुत्वका अस्तित्व एकत्वसे पृथक् नहीं है; तथापि डा० बड़थ्वालने इसका विश्लेषण करके निर्गुण अद्वैतवादके तीन उपविभाग किये हैं :—

(क) अद्वैत—कबीर, दादू, सुन्दरदास, जगजीवन-दास, भीखा, मलूक आदि।

(ख) विशिष्टाद्वैत—शिवदयाल, प्राणनाथ, बाबा-लाल, दरिया साहब आदि।

(ग) भेदाभेद—नानक आदि।

(क) कबीर आदिने जीव, जगत् और ईश्वर तीनोंको एक माना है :—

हेरत-हेरत हेरालली, रह्या कबीर हिराइ
बूंद समानी समन्दमें, सो कत हेर्या जाइ।
'हम सब माहिं सकल हम मांहीं
कहै कबीर तरक दुइ साधे, तिनकी मति है भोरी।

अण्डरहिल (Under-hill) ने कबीरके अद्वैतमें रामा-नुजीय विशिष्टाद्वैतका भान किया है और फर्कुहर (Farquher) ने उसकी निम्बार्कीय भेदाभेदसे समानता प्रतिपादित की है। किन्तु बड़थ्वालका विचार है कि यद्यपि कबीरकी रचनाओंमें बहुतसे सिद्धान्तों और वादोंकी झलक मिलती है, तथापि वे इन सबोंसे परे अद्वैतवादका ही प्रति-पादन करती हैं। फलतः हम इस निर्णयपर पहुंचे कि कबीर तत्वतः अद्वैतवादी हैं, जिसके अनुसार जीव और ईश्वर अभिन्न हैं और नाम रूपात्मक सृष्टि असत्य एवं माया रूप है। तुलना करें :—

'सुनु सखि पिउ महं जिउ बसै
जिउ महं बसै कि पीउ'

(ख) विशिष्टाद्वैत मतके अनुसार जीव और पर-मात्मामें अभेद अवश्य है। किन्तु सर्वतो भावेन नहीं, अंश मात्र ही, परमात्मा समष्टि है और जीवात्मा उस समष्टिके अन्तर्गत व्यष्टिके रूपमें विराजमान है। देखिये—

'सुरत अंशका भेद न पाया
जो सतपुरुषसे आन समाया'
—शिवदयाल (सार वचन)

दरिया साहबने भी अपनेको 'सत्त सुकृत अंश दरिया साहब' की संज्ञा देकर अंशांशि भावको व्यक्त किया है।

इस विचारधाराके अनुसार जीवात्मा ईश्वर नहीं है, बल्कि ईश्वरीय (Devine) है। वह गुमराह होकर संसारमें विचरण करता है, किन्तु मोक्षावस्थामें अपने अंशी परमेश्वरमें जा मिलता है। सृष्टि इस विचारोंके अनुसार भी अनित्य और मायानिर्मित है।

(ग) भेदाभेद—इस सरणिके सन्तोंके अनुसार ईश्वर जीवमें भेद और अभेद दोनों सम्बन्ध है। यह भी सत्य है कि वे दोनों अभिन्न हैं, और यह भी कि वे दोनों भिन्न हैं। उन दोनोंमें सायुज्य सम्बन्ध (Inseparable Asso-ciation) है और मुक्तावस्थामें भी दोनोंमें अन्तर रह ही जाता है। जीव ईश्वरमें सर्वतोभावेन विलीन होकर अपना अस्तित्व नितान्त खो नहीं देता। देखिये :—

'सांचे तेरे खण्ड सांचे ब्रह्मण्ड
सांचे लोऊ, सांचे आकार'
—नानक (ग्रन्थ साहब)

नानकके अनुसार जगत मायाजाल होनेपर भी व्यवहारिक दृष्टिसे सत्य है।

प्रकृतिके सम्बन्धमें निर्गुण सन्तोंकी विचारधारा सांख्यमतसे मिलती-जुलती है। सुन्दरदासने जो पचीस तत्वोंका उल्लेख किया है, वह स्पष्टतः सांख्यसे लिया गया है, किन्तु कुछ सन्तोंने पचीसकी संख्या तो ली है, किन्तु

इसकी स्वतन्त्र व्याख्या की है। 'प्रकृति' का भी अर्थान्तर-व्यवहार किया गया है। उदाहरणतः दरिया साहबने अनेक स्थलोंपर तीन गुणों, पांच तत्त्वों और पचीस प्रकृतियोंका निर्देश किया है, जिनका विवरण निम्नलिखित है :—

३ गुण—सत्त्व, रज, तम।

५ तत्त्व—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश।

२५ प्रकृतियां—

तत्त्व...उसकी प्रकृतियां

पृथ्वी—अस्थि, मेद, त्वचा, रोम, नाड़ी।

जल—रक्त, वीर्य, पित्त, लार, पसीना।

अग्नि—आलस्य, तृषा, नींद, भूख, तेज।

पवन—चलन, गान, सङ्कोच, बल, विवाद।

आकाश—लोभ, मोह, शङ्का, भय, लज्जा।

२—पिछली पंक्तियोंमें कहा गया है कि कबीरने मुसलमानी खुदावादके सत्यका निरूपण किया, किन्तु कल्पनाका तिरस्कार। इस प्रसङ्गमें कल्पनासे मतलब पैगम्बरवादसे है। पैगम्बर अवतारका ही एक नूतन संस्करण है, अतः यदि त्रिगुणात्मक होनेसे अवतार ईश्वर नहीं हो सकते, तो उसी विचारसे पैगम्बरकी भी कोई आवश्यकता नहीं। भक्त और भगवानके बीच किसी मध्यस्थ अथवा घटक (Go-between) की जरूरत नहीं है; वह तो हृदयगम्य है।

किन्तु सिद्धान्ततः अवतारवादका खण्डन करते हुए भी निर्गुणियोंने कबीर, दरिया आदिको अवतार—स्थानीय अवश्य माना है। बल्कि दरिया साहबने कबीरको सत्पुरुष का 'अवतार' और अपनेको कबीरका अवतार माना है। अवतारोंके खण्डन करनेमें सन्तोंका मुख्य उद्देश्य है—उन गोपी-विहार आदि लीलाओंका खण्डन, जिनके आदर्श जनतामें अनाचार फैलानेके कारण हो सकते हैं। यदि राम-कृष्ण आदि उसी तरह मायाके बन्धनमें ग्रस्त हैं, जिस तरह अन्य प्राकृत जन, तो फिर उन्हें गौरवान्वित करना निरर्थक है।

सगुण अवतारवादका खण्डन करते-करते कहीं-कहीं सन्तोंने ईश्वरका, निर्गुण-सगुण दोनोंसे परे वर्णन किया है। यथा—

निर्गुन-सगुन दुनहूं ते न्यारा,
या गमि बिरलहिं पाई—दरियासाहब

३—ईश्वर, जीव एवं जगतकी एकताका सिद्धान्त निर्गुनियोंने शङ्कर अद्वैतवादसे लिया है, जिसका प्रचार सारे उत्तर एवं दक्षिण भारतमें अपने नैसर्गिक अथवा रूपान्तरित व्यावहारिक रूपमें फैल रहा था। उन्होंने इसकी दार्शनिक विवेचनाके लिए कोई विशेष प्रयत्न न किये।

४—मायावादको भी इन सन्तोंने अद्वैतवादसे ही लिया है। किन्तु क्रमशः इसे नाम—रूपात्मक जगतका आधारभूत स्त्रीको स्त्रीतत्व मानकर मनकी पुरुषत्वके रूपमें कल्पना की है। फलतः यह सारा संसार मन-मायाके संयोगका परिणाम बताया गया है। मायाको 'आदि भवानी' या 'शक्ति' की भी संज्ञा दी गयी है और मनको 'निरञ्जन' की; तथा 'निरञ्जना धुन्ध तेरी दरबार' जैसी पंक्तियोंके द्वारा संसारके बन्धनों और उसकी उलझनोंका उत्तरदायित्व उसीके सिर मढ़ा गया है। हिन्दू आस्तिकवादका असुर, इसलाम और ईसाइयतका शैतान एवं निर्गुण मतका निरञ्जन—ये प्रायः एक कोटिकी भावनायें समझी जानी चाहिये।

५—यद्यपि निर्गुण तथा सगुण दोनों शाखायें भक्तिमार्गी हैं, तथापि निर्गुण मतमें ज्ञानको प्रधानता दी गयी है, किन्तु यह ज्ञान वेदान्तका तत्वानुशीलन-जन्य ज्ञान नहीं है, यहां तो साधनाजन्य सहज ज्ञान (Intuition) से तात्पर्य है—हृदयकी उस अनुभूतिसे मतलब है, जो भेद की द्विकोटिकतासे परे है—

'दरिया जो कहें जब ज्ञान हुआ,
तब काहेको पूछत जाति अजाती।'

—आदि पंक्तियां उस सिद्धावस्थाको द्योतित करती हैं, जब साधक भेदभावसे बिलकुल ऊपर उठकर अनुभूति और समदर्शिताके अनुपम लोकमें विचरण करने लगता है।

फ्रांसीसी दार्शनिक बर्गसों (Bergson) ने तर्क (Intelligence) और सहज ज्ञान (Intuition) के बीच सहज ज्ञानकी प्रधानता प्रतिपादित करनेमें यही दलील दी है कि तर्क-विधि निषेध एवं पूर्व पक्ष, उत्तरपक्षकी द्विकोटिकतासे ऊंचा नहीं उठ सकता; किन्तु ईश्वरकी प्राप्तिमें जो आनन्द है, उसका तभी आस्वादन हो सकता है, जब आत्मा भेदभावसे रहित हो, किन्तु ऐसी एक रसता केवल सहज ज्ञान द्वारा ही सम्भव है, न कि द्विकोटिक एवं विश्लेषणात्मक तर्क द्वारा। अतः सन्तोंने इसीका आश्रयण किया।

६—जब तर्क गौण है और अनुभूति प्रधान है, तो इससे यह सिद्ध हो जाता है कि भक्तको तप और योगके साधन द्वारा अपने हृदय-मुकुरके माया-मालिन्यको हटाना पड़ेगा।

किन्तु योगकी क्रियायें उसीको बतायी जा सकती हैं, जो उनका पात्र हो। अतः प्रत्येक साधकको एक सद्गुरुकी अनिवार्य आवश्यकता है, जो उसको क्रियात्मक साधना-पथकी ओर क्रमशः अग्रसर करे। सन्तोंने केवल साधना पक्षको गुह्य मानकर उसका यत्रतत्र केवल अस्पष्ट उल्लेख किया है और कुछ संतमतवादी तो अपने सद्गुरु-बचनको प्रकाशित करना पाप समझते हैं—जिसमें वे कुपात्रके हाथ न पड़ जायं। दयालबागी सम्प्रदाय अथवा दरिया पन्थके माननेवाले इसी कोटिमें रखे जायंगे। यही कारण है कि दरिया साहबकी लगभग सारी रचनाएं अबतक अप्रकाशित रही हैं। सन्तोंके इस गुह्यवादपर वज्रयानसिद्धों एवं तान्त्रिकोंका भी प्रभाव पड़ा था, इसमें सन्देह नहीं।

७—जब हृदयमें ईश्वर है और जब हिन्दू-मुसलमान अथवा अन्य मतावलम्बी एक ही ईश्वरके बन्दे हैं, तो ऐसी दशामें तीर्थाटन, जात-पांत, व्रत-पर्व आदि पाखण्डोंकी आवश्यकता नहीं रह जाती; दोनोंको समान मार्गका आश्रयण करना चाहिये :—

'हिन्दू तुरुककी एक राह है सदगुरु इहै बताई।'

उपसंहार—निर्गुणवादी सन्तोंका ज्ञानमार्ग-जिसकी संक्षिप्त रूपरेखा ऊपर दी गयी है, क्रान्तिका प्रतीक बनकर खड़ा हुआ; फलतः परम्परायुक्त समाजके उस अंशने इसे अधिक प्रश्रय दिया, जो अपेक्षाकृत दलित थे, निचले स्तरके थे। पहले तो मुसलमानोंने भी इसे खुलकर अपनाया, किन्तु कालक्रमसे हिन्दुत्वकी वेलि इसपर भी छा गयी, और अब यह उसीकी छत्र-छायामें अपना जीर्ण-जीवन यापन कर रहा है।

गीत

संसृति हो सुषमा-समन्विता !
सम्पूर्ण तिमिर हो
छिन्न — भिन्न
मिट जायें सारे
जीर्ण — शीर्ण
विधुरा वसुधा हो मधुर-स्मिता !
हो सतत सौख्य
श्री का वर्षण
क्षण — क्षण हो
वैभव का वर्द्धन
यह पृथ्वी हो हरिता-भरिता !
हो स्नेह हृदय का
मृदु — बन्धन
सर्वत्र स्नेह का
हो शासन !
बहती हो अक्षय सुख-सरिता !

—जितेन्द्र कुमा[र]

मां

श्री विष्णु

ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, निर्मलाकी बेचैनी भी बढ़ती गयी। वह समस्याका हल न पा सकी। केवल खीझ ही उसे मिली और खीझके कारण उसमें क्रोध उमड़ आया। उसने कहा—बेशक वह कलङ्किन है, पापिन है।

पापिन ?

हां, हां पापिन, हजार बार पापिन !

सोचो निर्मला, फिर सोचो।

सोचा है तभी तो कहती हूं, जिसे अपनी सन्तानके भविष्यसे अपना भविष्य प्यारा है, जिसे कर्त्तव्यसे अधिक वासनाकी भूख है, वह पापिन नहीं तो क्या है। जिसने क्षणभंगुर वासनाके लिए अपने ही रक्त, अपनी ही आत्माको धूलमें लोटनेको विवश किया, जिसने यह नहीं सोचा कि वह अपने अधूरे जीवनको सुधारनेके लिए अपनी सन्तानके समस्त जीवनको कुचले दे रही है, उसे आप ही बतलाइये, आप क्या कहेंगे···बतलाइये······।

लेकिन बताता कौन ? वहां तो कोई भी नहीं था। वह अकेली पलङ्गपर पड़ी थी। चारों तरफ सन्नाटा था, अन्धकार था, केवल पासके पलङ्गपर लेटे उसके पति अमरनाथ प्रगाढ़ निद्रामें निमग्न धीर गम्भीर गतिसे सांस ले रहे थे। वह हड़बड़ायी, चौंकी, उठकर बैठ गयी, लेकिन आंखें फाड़-फाड़ कर देखनेपर भी उसे कुछ नजर नहीं आया; केवल पानीकी चन्द बूंदें गालोंपर गिर पड़ीं। फिर न जाने क्या हुआ, बूंदें अविरल गतिसे बह पड़ीं। वह सुबक-सुबक कर रोने लगी। उसकी अन्तर आत्माकी टीसोंने उसके दिलको कचोट-कचोट कर त्रस्त कर दिया।

फिर अमरनाथ जागकर उठ बैठे—निमि···निमि···।

निमि एकदम कांप उठी।

'निमि ! कौन रोता है ?'

निर्मला संभलकर बोली—कोई नहीं।

पर बातोंमें रुदन भरा था। अमरनाथने कहा—कोई नहीं, नहीं निमि। तुम रो रही हो, क्यों ?

·······

'बोलो।'

'स्वप्न देख रही थी। बड़ा भयङ्कर स्वप्न था।'

'क्या ?'

'कि एक मांने अपने सुखके लिए अपनी सन्तानका गला घोंट दिया और······"

अमरनाथ बीचमें ही बोल उठे—जानता हूं निमि, रात दिन बङ्गालके दुर्भिक्षकी तसवीरें देखते-देखते तुम्हारे मस्तिष्क पर वे ही चित्र खिंच गये हैं।

'शायद।'

'लेकिन इसमें इतना रोनेकी क्या बात थी।'

'जी ! मेरा हृदय तो अब भी बड़े जोरसे धक-धक कर रहा है। मैंने देखा कि जैसे मैं एक छोटी-सी लड़की हूं और मेरी मां मुझे अथाह जलके किनारे छोड़कर नावमें बैठ कर चली गयी। मैं दौड़ी, जलमें गिर पड़ी। देखते-देखते एक मगर मेरी ओर दौड़ा और मुझे निगल गया।

'मगर तुम्हें निगल गया !'

'जी।'

'तब तुम्हें प्रसन्न होना चाहिए।'

'प्रसन्न क्यों ?'

'क्योंकि भयङ्कर स्वप्न सदा सुखदायी होते हैं।'

'सच !'

'हां ! लेकिन एक बात पूछूं निमि।'

'पूछिये।'

'तुम्हें मांकी बात याद आती है।'

निमि इस बार कांपी, बोली नहीं।

'बोलो निमि।'

सहसा निमि फिर सुबकियां लेने लगी, बांध फिर टूट गया। अमरनाथ घबरा कर उठे, निमिके पलङ्गपर आकर उसे अपने अङ्कमें भर लिया। आंसू पोंछते बोले—तुम्हें दुख होता है, तो अब न पूछूंगा।

निमिने सुबकते-सुबकते कहा—स्वामी ! मैं अनाथ बालिका हूं। मेरे सब कुछ तुम ही हो।

जानता हूं निमि, अमरनाथ बोले—परन्तु कहता हूं इच्छायें या कामनायें सब पानीकी तरह होती हैं, जो सदा अपना मार्ग टटोल लेती हैं। उनको दबानेसे तो जोर और भी बढ़ता है। नलका पानी इसीलिए तेजीसे निकलता है, क्योंकि उसे रोका गया है। और सुनो, जिन इच्छाओंको मनुष्य सत्य दुनियामें पूरा नहीं कर पाता है, उन्हींके पीछे

वह स्वप्नोंकी दुनियामें भागा फिरा करता है। हमारे कुचले हुए अरमान ही स्वप्न बन कर हमारे सामने आते हैं।" निर्मलाने सब सुना, परन्तु बोली नहीं, उसी तरह लेटी रही; परन्तु कब तक। आखिर प्रकृतिने करवट बदली, दिन सामने आ गया। चिड़ियोंकी चहचहाटने शान्ति भङ्ग कर दी। पड़ोसकी गाय रम्भा उठी। अमरनाथ चौंककर उठे, बोले—निमि, निमि! उठो दिन निकल आया है।

निमि भी हड़बड़ा कर उठी—अजी वाह, आपने उठाया ही नहीं। मुझे तो पीसना था। अमरनाथ इस तरह मुस-कराये कि निमि लजा गयी। रातकी बात याद आ गयी थी, फिर दोनों अपने-अपने काममें लग गये। चौका-बासन झाड़ू-बुहारी, स्नान-ध्यान, भोजन-छाजन सब रोजकी तरह अबाध गतिसे होता रहा। बीच-बीचमें अमरनाथ अखबार पढ़ते, काम करते, या निमिसे आकर बातें कर जाते कि सन्ध्याको क्या-क्या लाना होगा? फिर जब दस बजे, तो कपड़े पहिन कर दफ्तर चले गये, लेकिन निमि आज क्या करे? उसका जी तो भरा पड़ा है। क्रोध और करुणा सभीकी हल्की-हल्की झलक उसे नजर आती, सभीका सहारा लेकर वह बार-बार विचारमें डूबने, उतराने लगती है। देखती है तो देर तक देखती रहती है। रोटी बेलनी शुरू की कि एक खयाल आ गया, बस बेलन तबतक चलता रहा, जबतक वह रोटी चकलेसे चिपक नहीं गयी और तवेकी रोटी जलकर धुआं देने लगी। गन्ध आयी तो खीझ कर तवा उतार डाला, चकला उठाकर दूर फेंक दिया और जो चीजें सामने थीं, उन्हें भी इधर-उधर बिखेर दिया। लेकिन दूसरा क्षण आया कि उसे ग्लानि हो आयी—मैं कैसी बेवकूफ हूं। मूर्खा, गधी... कि आंसू बहने लगे। क्रोध उमड़ आया, बोली—काश मैं मर जाती लेकिन सुननेको वहां कोई नहीं था। वह देरतक इसी तरह अकेली बैठी रही, सोचती रही, रोती रही। धूप नीचे उतर कर आंगनमें फैल गयी। बाहर गलीमें बालक शोर मचाने लगे। कोई पड़ोसिन आयी तो यह अस्त-व्यस्तता देखकर बोली—क्यों बहू, ऐसे क्यों बैठी हो?

घबड़ा कर जवाब दिया—आज तबीयत खराब है, जी।

'हां बहू, आजकल बुखारके दिन हैं, जरा ख्याल रखा करो।'

'जी।'

पड़ोसिन चली गयी, तो उठी। अपनी सन्दूकची उठा लायी। नीचेके खानेमें एक सादा लिफाफा था, उसमेंसे पत्र निकालकर पढ़ने लगी :—

......तुम्हें क्या कह कर सम्बोधन किया जा सकता है, यह मैं जानती हूं, परन्तु उसे प्रयुक्त करनेका अधिकार मुझे है, यह नहीं जानती। पत्र जब लिखने लगी, तो जीमें उठा कि तुम्हें उसी सम्बोधनसे पुकारूं, लेकिन तभी मुझे वे शब्द याद आ गये, जो तुम्हारी दादीने कहे थे और जिन्हें सुनते-सुनते तुम्हारा हृदय पक गया होगा। सच तो यह है कि वे शब्द गलत नहीं हैं। उनकी सत्यता तुमपर प्रकट है और इतनी दूर बैठी हुई मैं भी उस नग्न सत्यको देख रही हूँ। यह सब देखकर मेरे हृदयपर क्या बीती, यह बताना कोरी विडम्बना होगी। उसपर तुम विश्वास करोगी?

तुम्हारा हृदय कोमल है। नारी हो, इस कारण तुम विश्वास तो कर सकती हो, परन्तु आज नहीं। भविष्यमें किसी दिन जरूर करोगी। वह दिन कब आयेगा और उस दिनको देखनेके लिए क्या मैं जिन्दा रहूँगी? और अगर रही तो क्या तुम तक पहुंच सकूंगी, यह सब मैं नहीं जानती। तुम नहीं जानतीं केवल परमात्मा जानते हैं। वे हैं या नहीं, यह मनुष्यने कभी नहीं जाना, केवल माना है। उस मन्युताके सहारे ही वह जी रहा है। इसीलिए मैं आशावादी हूं और मानती हूँ कि एक दिन तुम मेरे हृदयकी व्यथाको पहचान सकोगी। इसी मन्युतामें मेरा निर्वाण है।

तुम कहोगी, यह क्या दर्शन शास्त्र बघारने लगी। मैं भी सोचती हूँ, तुम्हारी—जैसी नव परिणीताको लिखनेको क्या ये ही बातें शेष रह गयी हैं; परन्तु इन बातोंके अति-रिक्त और मेरे पास क्या है, जिसके द्वारा अपना विश्वास तुम तक पहुंचा सकूं। जिस जघन्य पापकी मैं करनेवाली मानी जाती हूँ—जिस महान और पवित्रतम सम्बोधनको मैंने कलङ्कित किया बताया जाता है, उसके रहते स्नेह और वात्सल्यकी बात क्या कोरी विडम्बनाके अतिरिक्त कुछ और लगेगी? वेश्याके मुंहसे सतीत्वकी गुणगाथा और डाकू द्वारा दया और प्रेमकी चर्चा होनेका मतलब यही कि समाजके ये शत्रु समाजमें अपना जाल बिछाना चाहते हैं। मैं तुमसे प्रेमकी बातें करूं, तो क्या किसीका यह कहना गलत होगा कि मैं तुम्हें भी पथभ्रष्ट करना चाहती हूँ। तुम्हारे हृदयमें भी वे बीज बो देना चाहती हूँ, जिनका जहरीला फल मेरे जीवनमें फूल—फल रहा है। मैं कुछ

क्यों न हूँ, पापिन, कलङ्किन, हत्यारिन, जो कुछ भी चाहो तुम कह सकती हो; परन्तु मेरे कारण अब और तुम्हारी बदनामी हो, यह मैं नहीं चाहूँगी। इसपर चाहो तो तुम विश्वास कर सकती हो, क्योंकि कहते हैं कि पापी जब सच बोलता है, तो उसका मतलब सचसे ही होता है।

लेकिन तुम कहोगी कि अगर बात ऐसी ही है, तो तुमने पत्र क्यों लिखा। भूली बातको भूली क्यों न रहने दिया। तुम ठीक कहोगी। काश कि मैं ऐसा कर पाती, काश कि मैं अपने मनको वशमें रख सकती। मैं उस दिन भी इसी मनके जालमें फंसकर इस रास्ते चली आयी। आज भी इसी मनके चक्करमें पड़कर दूसरे रास्तेपर चल पड़ी हूँ। मैं क्या करूं, मैं कमजोर हूँ—नारी हूँ, लेकिन इस कमजोरीका इतिहास ही तो मनुष्यका इतिहास है, यह क्या भूलते बनेगा। यही सोच कर क्या समाज मुझे क्षमा नहीं कर सकेगा? काश कोई कर सकता, काश कोई मेरे भीतर झांक कर देख सकता कि वहां अब भी प्रेम-स्नेह और वात्सल्यकी धारा उसी अबाध गतिसे बह रही है। क्या तुम सोच सकोगी, समझ सकोगी? अगर केवल तुम मुझे एकबार क्षमा कर सको, केवल एक बार पुकार सको······ नहीं नहीं···वह पवित्र सम्बन्ध मैं अपनी कलमसे नहीं लिखूंगी·········

सरस्वती।

निर्मला इसी पत्रको पढ़ती रही, आज ही क्यों—कलसे इस पत्रको वह कई बार पढ़ चुकी है। बार-बार पढ़कर शब्दोंके नये-नये अर्थ खोजना चाहती है, परन्तु हर बार उसे केवल एक ही बात सूझ पड़ती है, वह यह कि जिस प्रेमकी दुहाई इस पत्रमें दी गयी है, वह अब तक कहां सोता रहा था। उसमें अब तक उबाल क्यों नहीं आया? क्यों मेरे जीवनमें कांटें बोकर उसने अपने उपवनमें फूल खिलने दिये और आज, जब मुसीबतोंकी चोटें खाकर दुनियाके अपमानोंको झेल कर मैं अपना जीवन-उपवन सुधारनेमें समर्थ हो सकी हूँ, तो क्यों वह फिर उसमें कांटे बो देना चाहती है······नहीं नहीं, यह सब ढोंग है, व्यर्थ है। मैं उससे कोई वास्ता नहीं रख सकती—हरगिज नहीं रख सकती। इतना सोचते उसका मन क्रोधसे उमड़ आया। उसने पत्रके टुकड़े-टुकड़े कर डाले और फिर चूल्हेमें डाल दिया। कागज थे, जल उठे, धुआंके साथ झाइयां इधर-उधर बिखर गयीं, लेकिन निर्मला यह सब करके भी शान्ति न पा सकी। दिलपर एक बोझ पड़ा था, पड़ा रहा। पत्र सामनेसे हटा, तो पुरानी-पुरानी बातें याद आने लगीं। मन उसे दूर—बहुत दूर ले उड़ा। जब वह निरी बच्ची थी, उसे याद आने लगा कि किस तरह अंगूरोंके चमनमें, जहां उसके पिता इञ्जीनियर थे, वह अपने माता-पिताके साथ सन्ध्याकी सुहावनी वेलामें घूमने जाया करती थी। किस तरह उसको लेकर वे दोनों आंख मिचौनीका खेल खेला करते थे। एक दिन उसके पिताने कहा था—निमिको इङ्गलैण्ड भेजेंगे।

मां बोली थी, मुस्कराकर—जरूर भेजेंगे। डाक्टर बनायेंगे।

'अजी डाक्टर नहीं, बैरिस्टर।'

'बैरिस्टर!'

'जी हां; यह बैरिस्टर बनेगी। मिस निर्मला मितल बार-एट-ला'

मां खिलखिलाकर हंसी थी—इसके साथ मैं भी विलायत जाऊंगी।

निमि तब कुछ भी नहीं जानती थी कि विलायत या बैरिस्टर किसे कहते हैं। उसके माता-पिता हंसे थे, इसीलिए वह भी हंसी थी, खूब हंसी थी मानो चमनकी सुन्दरता उनके हृदयमें समा गयी हो, परन्तु कुछ ही दिन बीते कि एक दिन निमिने सुना—उसके पिताका देहान्त हो गया। उसने अपने दादा-दादीको हा-हा करते देखा, देखा अपनी मांको पछाड़ खाते, बेहोश होते। मौतकी मनहूस छायाको उसने सारे घरमें व्याप्त देखा। देखकर वह भी सहमी थी, रोयी थी। मांकी गोदीमें लिपट कर पूछा भी—मां! पिताजी कहां गये। उत्तरमें मां केवल रो दी थी। यह सब उसे याद था। उसे यह भी याद था कि उसके कई महीने बाद एक दिन उसके दादा गाड़ीसे लौटे, तो बड़े चिन्तितसे जान पड़ते थे। वे सीधे अन्दर मांके पास आये, बोले—बेटी······

फिर उनसे बोला नहीं गया। गला रुंध गया। टोपी उतार कर मांके पैरोंपर डाल दी। मां सकपका कर उठी। टोपी उसने उठाली, तबतक दादा आंसू पोंछ चुके थे, बोले—बेटी! तू ही अब मेरे बेटेके समान है। मेरी लाज तेरे हाथ है···।

इतना कहकर वे चले गये थे। निर्मला तब इन बातोंको समझती नहीं थी। वह केवल सात वर्षकी थी, लेकिन उसके कुछ बाद ही अचानक उसने सुना कि उसकी मां भी चल बसी, तो उसका दिल टूट गया। वह तब किसी नाते-

दारके यहां गयी थी, वहांसे लौटी नहीं। केवल चल बसनेका समाचार ही दादीने उसे सुनाया—बिटिया! तुम्हारी मां भी गयी।

"कहां गयी"—उसने चौंककर पूछा।

"तुम्हारे पिताके पास"—दादीने रोते-रोते कहा।

"अब नहीं आयेगी······?"

"नहीं·········"

वह रोने लगी, दादीने पुचकारा—छातीसे लगाया, परन्तु निमिने देखा कि पिताके मरनेपर जो कोहराम घरमें मचा था, उसका अंश मात्र भी आज नहीं है। घरपर मनहूसियत-सी छायी रहती है। दादा बार-बार अपना सिर पीट लेते हैं, परन्तु बोलते नहीं। दादी पागलोंकी तरह इधर-उधर देखती फिरती है, लेकिन बोलती वह भी नहीं। वह सोचती है, आखिर क्या बात है। सोचमें रुदन कम होता है, अनमनापन बढ़ता है। फिर वह देखती है कि दादा खाट पकड़ लेते हैं। दादी बार-बार आंसू भरकर कहती है—बिट्टी, तुम्हारे दादा बीमार हैं। तुम उनके पास बैठा करो।

वह चुपचाप उनके पास जा बैठती है, और वे चुपचाप आंखें फाड़े ऊपर छतको देखा करते हैं। कभी ध्यान आ जाता है, तो पुकार उठते हैं—बेटा है?

निमि बोलती है—दादा।

—बिट्टो।

और फिर आंखोंमें अविरल अश्रुधारा बह पड़ती है। दादा सुबुक-सुबुक कर रोने लगते हैं कि निमि भी रो उठती है, कि दादी भागकर आती है—क्या हुआ जी? अरे, रोते क्यों हो?······अपने भाग्यका दोष है जी···इसे तो देखो, यह भी पराया धन है······।

पराया धन···कहते-कहते दादाने तकदीर ठोंक ली,और फिर न जाने कहांसे सारी शक्ति बटोर कर उन्होंने कहा—सुनो! सुरेनकी अम्मा! आज तुमसे कहता हूं कि निर्मला कभी यह न जान सके कि उसकी मां···कि उसकी मां···।

वे आगे न बोल सके। सच तो यह है कि वे फिर कभी भी न बोल सके। कई दिन तक गुम पड़े रहे। डाक्टर हकीम, वैद्य आये और गये। सबने सिर हिला-हिलाकर कहा—आशाका दीपक बुझता जा रहा है, और तीसरे दिन ही वह दीपक मन्द होते-होते एक झोंकेके साथ बुझ गया। अन्तिम बार आंखें खोल कर उन्होंने चारों तरफ देखा, पुकारा—निर्मला···।

दादीने जल्दीसे निर्मलाको आगे बढ़ा दिया। उन्होंने सिरपर हाथ फेरा, और साथ ही आंखें भी फेर लीं। वे फिर नहीं खुलीं। दादीने देखा, एक बार फिर अपना सिर जमीनपर दे मारा। इस प्रकार दो सालके भीतर-भीतर निर्मला मां-बाप, दादा सबको खो बैठी। उस समय वह इन बातोंका असर ठीक-ठीक नहीं समझती थी। उसे केवल इतना ही याद था कि जब लोग उसके दादाकी अरथी उठाकर चले, तो वह—"दादाजी, दादाजी" चिल्लाती; पीछे-पीछे दौड़ी थी, और तब पड़ोसके एक दयालु सज्जनने उसे पकड़ कर अपने घर भिजवा दिया था।

यही सब सोचते-सोचते निर्मला आज भी रो उठी। दिलमें दरारें पड़ गयीं। आंखें लाल हो आयीं। कोई देखता, कह देता—अरे बहू! तुम्हारी तो आंखें जल रही हैं।

परन्तु सौभाग्यसे उस दिन कोई नहीं आया, और इसीलिए निर्मला बिना किसी रोक-टोकके सोचती चली गयी······धीरे-धीरे उस मांके बारेमें तरह-तरहकी बातें सुननेको मिलने लगीं। एक दिन दादी पड़ोसिनसे बातें कर रही थी—"उस हरामजादीका नाम मत लो। वह मर चुकी।"

पड़ोसिन बोली—'मर जाती, तो सब पाप धुल जाते। मरी ही तो नहीं।'

'हां बहिन! मौत नहीं आयी उसे।'

'वह बात है जीजी। अगर मर जाती, तो ये तरसाव कौन देखता। पाप तो तुमने किये थे।'

दादी रो पड़ी—मेरे पाप-पुण्य तो बीत लिये बहिन; पर इसका क्या होगा? इसे कौन संभालेगा?"

"बेशक जीजी! इसे कौन संभालेगा।"

'बड़ी होती जा रही है। देखकर छाती बैठी जाती है। जिसको देखकर एक दिन सब खिल उठते थे, उसे ही देखकर मेरा दिल दर्दसे टीसने लगता है। कभी तो दिलमें पाप घुस आता है कि यह मर क्यों नहीं जाती।"

'जीजी'—पड़ोसिनने लम्बी सांस लेकर कहा—'इस पापमें भी तुम्हारा प्रेम भरा पड़ा है।'

दादी अब कुछ कह न सकी। आंसुओंकी धार बह चली, और छातीके तेज उफानने उसे बेबस बना दिया। निमिने यह सब देखा और सुना। उसके दिमागमें ठेस लगी, उसने समझनेकी कोशिश की। यह बात नहीं कि उसे मां की याद भूल गयी थी, लेकिन उसे बताया गया था कि

वह भी पिता और दादाकी तरह वहां चली गयी है, जहां जाकर लौटा नहीं जाता। अब, जब उसने दादीको बार-बार इस तरहकी बातें करते सुना, और सुना कभी-कभी अपनी सखी-सहेलियोंका उसे ताने देते, तो उसे यह दर्द भरा विश्वास होने लगा कि उसकी मां मरी नहीं, जिन्दा है और कि उसने अवश्य ऐसा काम किया है, जो अच्छा नहीं है। एक दिन वह स्कूलसे लौटी, तो रो रही थी।

दादीने पूछा—'क्या हुआ बेटी?'

पड़ोसिनकी एक लड़कीका नाम लेकर निर्मला बोली—'सीताने मुझे गाली दी कि मेरी मां वेश्या है।'

सुनकर दादी धक्से रह गयी। ऊपरकी सांस ऊपर और नीचेकी नीचे। एकदम बोला नहीं गया। निमिने दादीको देखा, तो डर गयी। लेकिन साहस करके बोली—'दादी। मेरी मां क्या जिन्दा है?'

'तुम्हारी मां···' दादी हठात चौंक पड़ी।

'हां दादी! क्या मेरी मां जिन्दा है, क्या वह वेश्या है?'

दादी एकदम क्रोधसे भर उठी, बोली—'खबरदार जो मां का नाम लिया। कौन कहता है, वह जिन्दा है? वह मर चुकी, बिलकुल मर चुकी।'

और इतना कह कर जल्दी-जल्दी वहांसे चली गयी। निर्मला पागल-सी वहीं खड़ी रह गयी। वह अभी बालिका ही थी, उसे कुछ सूझ नहीं पड़ा, इसीलिए रोने लगी, और जबतक बहुत देर बाद दादी लौट कर नहीं आयी, वह उसी तरह रोती रही। दादी अब अपेक्षाकृत शान्त थी, उसने निर्मलाको छातीसे लगा लिया, आंसू पोंछ बोली—"अब मत रोओ, बेटी। मैं सीताकी मांसे कह आयी हूं। तुम उनके कहनेका खयाल मत करो। चलो रोटी खालो।'

निर्मला चुपचाप दादीकी ओर देखती हुई उठी। रसोई घरमें जाकर उसने देखा, जबतक वह रोती रही है, तबतक दादीने उसके लिए गरमागरम पूरियां बना दी है, आलू का हलवा भी है। वह हंस पड़ी, और सब कुछ भूल कर खानेमें लग गयी······।

लेकिन यह सब सोचती-सोचती निर्मला आज हंस न सकी, उसका दिल भरा था, भरा ही रहा। उसे यह बात विशेष तौरसे याद आने लगी कि किस तरह बार-बार दादीने यह कोशिश की कि वह अपनी मांकी बात न जाने, लेकिन आखिर एक दिन आया, जब दादीने आप ही सब बातें खोल कर उसे बता दी। निर्मलाने सुन लिया, सुनकर उसे अचरज नहीं हुआ, दर्द भी नहीं। केवल शङ्का-का झीना आवरण दूर हो गया। और मांके प्रति जो कुछ थोड़ा-बहुत अपनत्व बचा था, वह भी घृणामें बदल गया।

और आज भी सोचती-सोचती वह तीव्र घृणासे बोल उठी—बेशक वह पापिन है, कलङ्किन है। लेकिन जितनी तीव्रतासे उसने अपनी मांको पापिन कहा, उतनी ही तीव्रतासे उसे फिर धक्का लगा। अन्दर-ही-अन्दर किसीने कहा—कुछ भी हो, मां तुम्हें प्यार करती हैं।

नहीं नहीं···।

नहीं, यह ठीक है।

ठीक है तो क्यों, उसने मुझे छोड़ा क्यों···।

और इस क्योंका विश्लेषण करते-करते फिर हृदयमें ऐसी चोट लगी कि आगे वह कुछ भी ठीक-ठीक नहीं सोच सकी। फिर उसी समय पड़ोसकी दो-तीन नवयुवतियां वहां आ गयीं। उनके हाथोंमें कसीदे थे और वे चाहती थीं कि निर्मला उन्हें आगेके फन्दे लगाना सिखा दें। वे प्रसन्न थीं, इठला रही थीं। सीखना था इसीलिए और भी ज्यादा हंस रही थीं। निर्मलाने उन्हें देखा। और बरबस मुस्करा पड़ी। हंसीमें छूत होती है, इसीलिए इतना त्रस्त होकर भी निर्मला सब कुछ भूल गयी और मनसे हो—चाहे बेमनसे, कुछ ही देरमें नवागन्तुकोंसे घुल मिल गयी।

पांच दिन बीते कि अमरनाथने फिर एक पत्र निर्मलाको दिया, जिसे देखते ही कंपकंपी-सी चढ़ गयी, चेहरा पीला पड़ गया, लेकिन लिफाफा लेकर लापरवाहीसे एक तरफ रख दिया, जिससे अमरनाथ कुछ शङ्का न करे और पूछ न बैठे, किसकी चिट्ठी है। तब वह क्या जवाब देगी? इतना सोचते ही दूसरे क्षण उसमें क्रोध उमड़ आया—क्यों, वह मुझे मुसीबतमें डालना चाहती है। दादीने न जाने किस-किसकी खुशामद की, पैर पूजे कि वह निर्मलाको अपनी बहू बना ले। सबने नाक-भौं सिकोड़ कर यही कहा था—जिसकी मां दूसरोंके पीछे भागती फिरी, उसकी बेटीका क्या भरोसा। दादी खूनके घूंट पीकर आगे बढ़ गयी। आखिर एक दिन किसीने उसकी भी सुनी। अमरनाथने कहला भेजा—मैं निर्मलासे विवाह कर सकता हूं।

मां-बाप उसके थे नहीं। मामाने पाल-पोसकर पैरोंपर खड़ा होने लायक बना दिया था। ठोकरें खाते-खाते बुद्धिने बहुत-कुछ सीखा था। इसीसे घर बसा हुआ था। और उस बसे हुए घरमें उसकी प्रेम जतानेवाली 'मां' आग लगाने

की कोशिश कर रही है···इतनेमें अमरनाथ पूछ बैठे—निमि! इनकी पहली चिट्ठीका जवाब नहीं दिया तुमने।

निमि कांप उठी! बोली—'जवाब?'

'हां! बेचारीने तभी इतनी जल्दी लिखा है। खतका जवाब जरूर देना चाहिये। हम हिन्दुस्तानियोंमें यह एक बहुत बड़ी कमी है। तुम्हारी यह सखी सोचती होगी कि विवाह करके निर्मला मगरूर हो गयी है।'

सुनकर धक-धक करती निमि मुस्कराने लगी—आप ठीक कहते हैं। कल मैं जरूर जवाब लिखूंगी। और अगले दिन जब अमरनाथ दफ्तर चले गये, तो निर्मलाने उस पत्र-को पढ़ा, लिखा था—

"······सोचती हूँ, पहला पत्र पढ़ कर तुम्हें कैसा लगा होगा। अवश्य तुमने सोचा होगा, कैसी विडम्बना है, जिसने जन्म भर ठोकरें मारी, जिसके कारण जीवन नष्ट हो गया है, वही आज स्नेह और वात्सल्यकी दुहाई देकर अधिकारकी बात कहती है। बात कुछ ऐसी ही है और मैं भी सोचती हूँ कि ये पत्र लिखकर मैं तुम्हारे साथ अन्याय ही कर रही हूं। मैंने निश्चय भी कर लिया कि अब तुम्हें कोई पत्र नहीं लिखूंगी, पर इसी हफ्तेमें दो घट-नायें ऐसी हुईं कि मैं बेबस हो उठी और अपनी इच्छाके विरुद्ध मुझे यह पत्र लिखना पड़ा।

अभी उस दिन मेरा दूसरा लड़का ज्वरकी तेजीमें बेहोश हो चला था। वह बार-बार चौंक कर 'मां-मां' पुकारता था। उसके पिता, चाचा, बुआ और सब ही उसे पुचकारते, स्नेह प्रकट करते, परन्तु वह खीझता, रो उठता और पुकारता "मां-मां।" आखिर मैं बुलायी गयी। न जाने उसे क्या मिला। मुझसे चिपटकर एक बार पुकारा—मां। मैंने कहा—'मेरे बच्चे!' 'मां अब तुम मत जाना।'

'नहीं जाऊंगी बेटे।'

और फिर वह शान्त होकर सो गया। बैठे-बैठे तब मेरा मन उड़ चला। मुझे खयाल आने लगा कि तुम भी कभी बुखारमें पड़ी होगी। तुमने भी मां-मां पुकारा होगा······लेकिन···लेकिन मैं पागल थी। बहुतसे बच्चोंकी मां मर जाती हैं। तुम्हारी भी मां मर गयी। यही सोचते-सोचते न जाने क्या हुआ बच्चेकी शकल बदलने लगी। धीरे-धीरे उसके स्थानपर मैंने देखा, मेरी गोदीमें एक बालिका बिल्कुल तुम्हारी तरह, बिल्कुल उसी पोशाकमें जो तुम क्वेटामें पहना करती थी। इस वक्त मेरी हालत क्या हुई, यह तुम नहीं जान सकोगी। जानकर करोगी भी क्या? मैं इस बातको भी भूल जाती, परन्तु उसके दूसरे दिन ही पण्डितजी आये कि बच्चेकी ग्रह शुद्धि कर दें। जन्मपत्री देखते वे बोले—बहू। जरा अपना हाथ दिखाना।

मैंने हाथ आगे कर दिया। देख कर खिल उठे—तुम भाग्यवती हो।

'लड़का अच्छा हो जायेगा।'

'जरूर अच्छा होगा, और उसके साथ तुम्हारे मनकी दूसरी कामनायें भी पूरी होंगी।'

मेरा दिल प्रसन्नतासे न जाने क्यों धक-धक कर उठा। यही बात पहले भी कई पण्डितोंने बतायी थी। बादको भी बतायी, परन्तु मैं सोचती हूँ कि ये पण्डित लोग यही बताते कि तुम अभागिन हो, तुम्हारी कोई इच्छा पूरी नहीं होगी, तो सच जानो, मुझे बड़ी खुशी होती। मैं तुम्हारे शान्त जीवनको अशान्त बनानेसे बच जाती। अथाह-सागरमें डूबते हुए प्राणीको ये सहारे तैरनेकी शक्ति ही देते हैं, भले ही वे उसे और भी अगम जलका मार्ग सुझावें।

तो भी मैं विश्वास दिलाती हूँ, अगर एक बार तुम मुझे लिखोगी कि तुम मुझसे नफरत करती हो, तो मैं फिर कभी भी तुम्हें तङ्ग न करूंगी।·········"

निर्मलाने यह पत्र पढ़ा। पढ़ते-पढ़ते रोयी। पढ़ चुकी, तो आंखें अङ्गारोंकी तरह चमकने लगीं। शीघ्रतासे कलम-दवात उठा लायी। सामने पैड पड़ा था। पत्र लिखा—

"·········मैं तुम्हें नहीं जानती। जानना भी नहीं चाहती। हां, अगर तुम सुनना ही चाहती हो तो सुनो, मैं तुमसे नफरत करती हूँ। हजार बार नफरत करती हूँ।

तुम मुझे लिखो या न लिखो, इसकी मुझे बिल्कुल परवा नहीं।

वही जिसे तुम जानती हो···"

उसने नीचे अपने दस्तखत नहीं किये, लेकिन वह नहीं जानती थी कि जो कुछ उसने लिखा, वह दस्तखतसे कहीं ज्यादा था। इस पत्रको लिखनेके बाद निर्मलामें एक विशेष परिवर्तन आ गया। उसकी सब घबराहट मिट गयी और वह पहलेकी तरह मुस्कराने और अपना काम करने लगी। उसे यह भी विश्वास होने लगा कि अब इस पत्रको पानेके बाद वह और पत्र लिखनेका साहस न कर सकेगी।

सन्ध्याको अमरनाथ लौटे, तो पत्र उन्हें दिया और बोली—जरूर डाल देना। भूल न जाना।

अमरनाथ मुस्कराया—विश्वास रखिये जनाब। आपकी सहेलीका पत्र जरूर डाल दिया जायेगा।

निर्मला हंस पड़ी। वैसे एक बार उसकी छातीमें धक-धक जरूर हुई, परन्तु उसने कोई ख्याल नहीं किया, और अपने काममें लग गयी। लेकिन उसके अचरजका ठिकाना नहीं रहा, जब कि अमरनाथने दूसरे हफ्ते ही एक और पत्र उसी तरहका लाकर दिया। उसके हाथ कांपने लगे। हृदय धक-धक कर उठा। आंख खुली ही रह गयी। उसने क्रोधमें भरकर शीघ्रतासे पत्रको खोल डाला। वह भूल गयी कि अमरनाथ वहीं खड़े हैं। पत्रमें लिखा थाः—

प्यारी बेटी,

तुमने पत्र लिखकर मुझे चिन्ताओंसे मुक्त कर दिया। तुम भले ही मुझे नफरत करो, लेकिन इस नफरतमें भी जो अपनत्वका नाता है, उसे तुम नहीं भुला सकती। उसीका सहारा लेकर मैं तुम्हें आज निस्सङ्कोच 'प्यारी बेटी' कहकर सम्बोधन कर सकती हूँ। क्योंकि कहते हैं नफरत प्रेमका स्वरूप है। कौन जाने कब तुम्हारी नफरत प्रेममें पलट जाय और न भी पलटे, मुझे इतना सन्तोष क्या कम है कि तुम्हारा मेरा कोई सम्बन्ध है।

तुम्हें बेटी कह कर मैंने मांकी स्वीकृति पाली। एक दिन तुम मेरे पेटसे जन्मी थी, उस सम्बन्धको मिटानेकी शक्ति विधातामें भी नहीं है। मांका यह पद मैंने प्रेयसी बनकर पाया था। प्रेयसीका यही पद एक दिन मैंने खो दिया था, उसीको फिर पानेके लिए मैं दुनियाकी दृष्टिमें कलङ्कित और पापिन बनी, परन्तु तुम्हें अलग करके प्रेयसी बननेकी चाह मेरे दिलमें कभी नहीं थी, यह मैं विश्वासके साथ कह सकती हूँ। यही सब बतानेके लिए ही मैंने यह पत्र लिखा है।

मेरे स्वर्गीय पहले पतिके माता-पिताने मेरे साथ जो बर्ताव किया, उसकी निन्दा मैं नहीं कर सकती, परन्तु दुख यही है कि वे स्त्रीके स्त्रीत्वको भुला बैठे। मैं उनके अनुरोध-की रक्षा न कर सकी; तो वे और तो कुछ न कर सके, केवल तुम्हें ही उन्होंने मुझसे छीन लिया। वे ठीक थे। उनका सब कुछ लुट चुका था। तुम ही उनका सहारा थीं। तुम ही उनके स्वर्गीय पुत्रकी यादगार थीं। उनका दर्द मैं जानती हूँ, काश मैं उनका कहना मान सकती; परन्तु मुझमें शक्ति नहीं थी और समझती हूं, हर किसीमें यह शक्ति होती भी नहीं। बहुत-सी नारियां जबर्दस्ती इस शक्तिका प्रदर्शन करती हैं, परन्तु उसका परिणाम तुम जानती हो?

तुम मेरी पुत्री हो, परन्तु नारीके नाते तुम मेरी जाति-की हो। इसीलिए तुम्हारे सामने अपना दिल खोलते मुझे जरा भी सङ्कोच नहीं होता, इसी नाते मैं इतना ही कह सकती हूँ कि वे चाहते तो मैं अपने प्रियतमको पाकर भी उन्हींकी रहती, परन्तु उन्होंने झूठे गर्वके कारण इस परिस्थितिको पैदा कर दिया, जिसमें आज हम सब तड़प रहे हैं।

तुम यह सब पढ़कर नाराज होगी, होना अस्वाभाविक नहीं है। परन्तु तुम्हारे शब्दोंमें अब तुम मुझे लिखो या न लिखो, मुझे इसकी कोई चिन्ता नहीं है। तुम न सही, तुम्हारी याद ही काफी है। केवल इतना याद रखना होगा कि बेटी, बहिन, बहू और मां ये चारों रूप नारीमें सदा एक साथ रहते हैं। किसी एकको खोकर नारी कभी नारी नहीं रह सकती। इसीलिए मैं यह कभी नहीं भूल सकी और भूल सकूंगी कि तुम मेरी बेटी हो।

तुम्हारी—मां

निर्मलाने पत्र पढ़ लिया। पढ़ कर उसका मन एक विषादसे भर आया। उस विषादमें क्रोध नहीं था, यह बात नहीं, परन्तु उस क्रोधमें बेबसी अधिक थी। इसी-लिए वह अपनेको संभाल न सकी, घबड़ा गयी, आंखोंमें आंसू भर आये और सहसा जब उसकी आंखें अमरनाथसे मिलीं, तो वह बड़े जोरसे कांप उठी, मानों चोर चोरी करते पकड़ा गया हो। अमरनाथने यह सब देखा। बोला—"क्या है, निमि।"

निमिको न जाने क्या हुआ, आगे बढ़ कर पत्र उनके हाथमें थमा दिया। बोल नहीं सकी, चुपचाप दोनों हाथोंसे मुंह छिपाकर वहीं बैठ गयी। अमरनाथने बिना उसे देखे पत्र पढ़ डाला। पढ़ कर मुस्कराये और निर्मलाको सम्बो-धित करते हुए कहा—"तो निमि, ये पत्र तुम्हारी सखीके नहीं हैं।"

निमि उसी तरह बैठी रही, बोली नहीं।

अमरनाथने फिर उसी तरह पूछा—बोलो निमि।

निमिने अब आंखें उठा कर अमरनाथको देखा। वे आंसुओंसे भरी हुई थीं। न जाने क्या हुआ, वह फफक-फफक रो उठी, और निर्जीवकी तरह वहीं लुढ़क पड़ी—मैं उसे नफरत करती हूँ।

अमरनाथने शीघ्रतासे उसे उठाया। आंसू पोंछ डाले; बोले—निमि! मुझे देखो।

निमिने देखा तो नहीं, परन्तु उनसे चिपट गयी। अमरनाथने कोई बाधा उपस्थित नहीं की। उलटे अपने हाथसे उसकी कमर सहलाने लगे। कई क्षण इस मौन

आवेदनकी स्थितिमें बीत गये। फिर निर्मला शान्त हुई, तो अमरनाथ उठ खड़े हुए। धीरे-धीरे टहलने लगे। फिर रुक कर बोले—"निमि! एक बात बताओगी।"

निमिने मौन स्वीकृति दी।

अमरनाथने पूछा—"तुमने पहले ही मुझे क्यों नहीं बताया।"

निमि कांपी और मौन रही।

अमरनाथने आप ही प्रश्नका उत्तर दिया—"इसीलिए न कि तुम मेरा विश्वास नहीं करती थी।"

निमि बड़े भयङ्कर वेगसे हिली, और विह्वल होकर बोली—"नहीं, नहीं, यह बात नहीं है।"

"तब ?"

"तब।......"

"हां, तब क्या कारण था, जो तुमने यह सब बात मुझसे छिपायी।"

निमि एकदम बोली—"मैं बताती हूँ, उसका कारण यही था कि शायद आप मुझपर शङ्का करते कि मैं भी...।"

अमरनाथ उसी तरह गम्भीर रहे, बोले—"और अब भी कहूं तो ?"

'तो मैं आत्म-हत्या कर लूंगी। आपके विश्वासको खो देनेसे तो यह कार्य कहीं सरल है।

निमिमें अब कातरताका लेश भी नहीं था। वह प्रकृत रूपसे दृढ़ थी। अमरनाथने उसे देखा। देखकर मुस्कराये। पास आकर उसका हाथ अपने हाथमें ले लिया। बोले—निमि, एक बात कहता हूं कि आजके बाद यह कभी अपने मनमें भी न लाना कि मैं तुम्हारा अविश्वास करूंगा। आज मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ।

निमिके ओठ फड़के। उनको मींचकर उमड़ते हुए आंसुओंको रोक कर बोली नहीं, केवल अपनेको समेटते-समेटते वह अमरनाथमें एकाकार होना चाहने लगी। उनके हाथको धीरे-धीरे अपने दोनों हाथोंमें मीचते-मीचते छातीसे लगा लिया।

तब उन दोनोंने 'मां' के बारेमें कोई चर्चा नहीं की। बहुत दिन बीत गये, कोई पत्र भी नहीं आया। निर्मला जाकर दादीके पास कुछ दिन रही, तो वह भी इस बातका जिकर न कर सकी। कई बार बात ओठपर आकर रह गयी। अमरनाथ भी आये और गये। दोनोंकी दुनियां बड़ी शान्तिसे पूर्ववत चलती रही कि एक दिन सन्ध्याको लौटकर अमरनाथ बोले-"निमि! जल्दी ही देहली चलेंगे।"

"देहली ?" वह चौंकी।

'हां।'

'क्यों।'

'मित्रके घर विवाह है। वे मित्र भाईके समान हैं, उनकी मां मेरी मां है। उन्हींकी बहनका विवाह है।'

'कब चलेंगे तब ?'

"यही दो-तीन दिनमें। तुम तैयारी करो। लम्बी छुट्टी लूंगा। देहलीसे देहरादून जानेका विचार है। तुम पहाड़ चढ़नेको कह रही थी न ?'

निमि मुस्करायी—"तुम बड़े अच्छे हो।"

तब खुशी-खुशी वे जानेकी तैयारी करने लगे। लेकिन बीच-बीचमें निर्मलाके दिमागमें एक प्रश्न उठ आता—देहली ही तो वे भी रहती हैं।

रहती होंगी—देहली तो बहुत बड़ा शहर है...कौन किसीको पहचानता है...लेकिन अगर कहीं भाग्यसे मिल गयी तो...वह शायद पहचान न सकेंगी...लेकिन मैं तो पहचान लूंगी......नहीं, नहीं मैं उससे बात नहीं करूंगी" कहते हैं वहां बड़ी भीड़ होती है।

और उसकी बात ठीक थी। देहली पहुंच कर उसकी आंखें खुल गयीं। नर-नारियोंकी अपार भीड़, अपार कोलाहल, तांगे, मोटरें, फौजी लारियोंका अनवरत आवागमन, नाना रूप-अलंकृता नारियां, हिन्दू-मुसलमान, सिख, अङ्गरेज, चीनी, अमेरिकन, पारसी, मद्रासी, बङ्गाली सबकी अलग-अलग सूरत, अलग-अलग पहनावे, अलग-अलग बोलियां...।

देखकर निमि बोली—"कितनी बड़ी दुनिया है।"

अमरनाथ हंसे—देखती चलो। सड़कपर चलना मौत है। न जाने कब मोटरके नीचे आ जांय।'

निमि कुछ जवाब दे कि तांगा एक बड़े मकानके आगे आ खड़ा हुआ। अमरनाथने उतरकर पुकारा—"अशोक, अजित।"

अन्दरसे दो बालक दौड़े-दौड़े आये। दोनों सुन्दर, दोनों स्वस्थ, निमिको देखकर झिझके। अमरनाथने हंस कर कहा—"ये तुम्हारी जीजी हैं।"

बालक खिल उठे—"जीजी।"

निर्मला चौंकी—"जीजी!"

अमरनाथ बोले—"हां! जीजी है। जाओ प्रभासे कहो कि जीजी आयी है।"

बालक भागे—"भाभी! भाभी! जीजी आयी है।"

अन्दर किसीने पूछा—'कौन ? जीजी !'

'अमरनाथ भाई साहबके साथ आयी हैं।'

अन्दर आते-आते अमरनाथने कहा—जी, मैं आया हूं और निर्मला भी है।

'निर्मला···।'

निर्मलाने अचरजसे देखा कि न जाने कहांसे आकर चार-पांच बच्चों और युवतियोंने उसे घेर लिया है। वह लज्जासे सिकुड़ी-सिकुड़ी उनके बीचमें खड़ी ही रह गयी कि एक युवतीने कहा—'आओ, आओ। तुम्हारा ही घर है यह। निर्मलाने साहस बटोर कर कहा—"मैं आपको जानती नहीं, इसीलिए" युवती विद्रूपसे हंसी—"अरे! अमरनाथने अभीतक तुम्हें बताया नहीं। बड़ा शैतान है।"

दूसरी युवती भी हंसी—तुम्हारा नाम तो निर्मला है न। मेरा नाम है कमला, पर मैं तुम्हारी बुआ लगती हूँ।

निर्मला सकुचायी, पर वह युवती बोलती रही—और ये भी तुम्हारी बुआ हैं।

निर्मला मुस्करायी, बोली—"और ये बच्चे ?"

'तुम्हारे भाई-बहन।'

'और इनकी माताजी कहां हैं।'

'मिलोगी ?'

'क्यों नहीं। सबसे पहले तो मुझे उन्हींके चरण छूने हैं।'

'वे सामनेके कमरेमें हैं। बुखारके कारण स्वयं नहीं आ सकतीं।'

कमला उसे सामनेके कमरेमें ले गयी। परदा उठा और जैसे निर्मलाने अन्दर झांका, तो उसका खिला हुआ चेहरा न जाने क्यों मुरझाने लगा। उसने देखा, सामने पलङ्गपर एक गतयौवना नारी लेटी है। उसका चेहरा लाल हो रहा था। आंखें गीली थीं। गालोंपर आंसुओंके दाग गहरे थे। मालूम होता था, वह बहुत देरसे रो रही है। उसने निर्मिको देखा, आंसू अविराम गतिसे बहने लगे। ओठ फड़फड़ाये, पर दिल बैठने लगा।

निर्मला बोली—आपकी तबीयत खराब है, कि उसी क्षण वह चौंकी—'आप ऐसे क्या देख रही हैं, आप कौन हैं······?'

'मैं ?'

'हां आप···।'

वह गतयौवना नारी उठ बैठी, और निर्मलाके दोनों हाथोंको अपने हाथोंमें रखती हुई बोली—'मैं तुम्हारी मां हूं ?'

'मां'···निर्मलाके प्राण अब खिंचने लगे!

'हां मां! तुम्हारी मां······'

एक भूचाल-सा आया और सरस्वतीने शीघ्रतासे गिरती हुई निर्मलाको अपनी छातीमें भर लिया। निर्मलाने एक बार झटकेसे छुड़ाना चाहा, पर उसका बदन ढीला पड़ गया, सांस जोरसे चलने लगी। उसने आंखें मीच लीं और फफक-फफक कर रोने लगी। सरस्वतीने देखा तो कांप उठी, बोली - 'निर्मला! मेरी बच्ची,मेरी बेटी। मेरी तरफ देखो।'

लेकिन निर्मलाने उसी तरह आंखें मीचे हुए इतना ही कहा—'मां! तुम मेरी मां हो ?

बङ्गालकी ग्राम्य-कला

श्री "मिलिन्द"

बङ्गालकी अनेकानेक सुन्दर ग्रामीण कलाओंमें सम्भवतः 'अल्पोना', 'कथा' और 'गर्बा' ही एकमात्र उदाहरण हैं, जो सदियोंके चक्रमें घूमनेपर भी आज देशकी सर्वोच्च-कला मानी जाती हैं। साथ-ही-साथ इसमें बङ्गाली युवतियोंके सौन्दर्य-प्रेम विषयक पसन्दगीका सुन्दर रूप अङ्कित है।

इन कलाओंका विकास धार्मिक-उत्सवों और व्रतादिमें हुआ, जिनका मुख्य सम्बन्ध सामाजिक कहावतोंसे है। साथ ही सभी बङ्गाली घरोंमें विवाहिता अथवा कुमारियों द्वारा इसका प्रदर्शन होता है। वास्तवमें इन्हीं व्रतादिके द्वारा कुमारियां धार्मिक जीवनसे परिचित हुईं और पारिवारिक-कर्तव्यकी पुजारिणी भी बनीं।

पुनः इन्हीं उत्सवोंपर वे भावपूर्ण भजन गाती थीं, जो अन्यान्य ग्राम्य गीतोंके सदृश ही मधुर स्वर-पूर्ण होते थे और इसी समय अपनी इच्छाओंकी पूर्तिके हेतु वे देवता को प्रसन्न करती थीं—चाहे उनकी इच्छा आध्यात्मिक हो या सांसारिक। बङ्गालमें कौमार्य-जीवनमें, जब कि शरीर और मस्तिष्क स्फूर्तिसे परिपूर्ण रहता हो, ये ग्राम-कलाएं उन्हीं नव-यौवनाओंके सौन्दर्यकी प्रतिबिम्ब मात्र समझी जाती रही हैं।

अल्पोना—

अल्पोना बङ्गालकी एक पुरानी कला है और यह उन कलाओंमेंसे एक है, जिनका यूरोपीय प्रभावसे काफी ह्रास हुआ है। एक ही उङ्गलीको मांड़में डुबोकर—चित्र अङ्कित करनेकी यह कला कई सदियोंसे हिन्दू माताओं द्वारा—कन्याओंको सिखायी जा रही है। कई शताब्दियोंतक बङ्गालमें जवान और वृद्ध स्त्रियोंकी परम्पराने आपसमें देखा-देखी की है—इन आकर्षक आकृतियोंको अपने घरके छत या दरवाजे और सभी पर्वोंपर, पूजा-स्थानमें, शादी जन्म और मुख्यतः व्रतादिके समय—रंगनेमें।

धार्मिक उत्सवोंके व्रतादि छोटे रूप हैं—जिस प्रकार पुरुष-सन्तानका जन्म या ईश्वरीय अर्चना। सबोंमें जो महत्वपूर्ण है, वह दशहरेके ही दिन पहले प्रारम्भ होता है। यह एक प्रारम्भिक रस्म है, जिसके द्वारा मनुष्य स्नानादिसे निवृत्त हो, आत्मा और शरीरकी शुद्धि करता है। इस रस्मको आपार-पक्ष-तर्पण कहते हैं। इसका प्रारम्भ प्रतिवादके प्रथम दिन होता है—और अन्त अमावस्याको, पूरे एक पक्ष तकके इसी समयमें देवी पक्ष आता है जब कि 'पूजा' की जाती है।

प्रायः अजन्ताकी चित्रकारीसे भी अल्पोनाकी तुलना की गयी है। दोनोंमें अन्तर यही है कि अल्पोनाकी उत्पत्ति ग्रामीण स्त्रियोंके बीच उङ्गलियों द्वारा हुई है, जब कि अजन्ताकी चित्रकारी कुशल-कलाकारोंकी कुशल-तूलिकासे। अजन्ताकी चित्रकारीके अ-सदृश अल्पोनामें चिड़ियां, मछली, पेड़, रेंगनेवाले जीव, सूर्य-चन्द्र-तारागण, साथ ही पशु एवं कृषि-प्रधान वस्तु विशेष भी सन्निहित हैं। सालके प्रत्येक भिन्न-भिन्न पर्वके लिए शादी और आनन्दके दिनों के लिए मुख्य-मुख्य और विभिन्न अलङ्कार समयानुकूल उत्सवोंके लिए होते थे। यथा-सम्भव रङ्गोंका मेल अति-सुन्दर होता था।

कथा—

कथा एक प्रकारकी रङ्गीन चिकन-दोजी है, जो बङ्गालकी ग्रामीण-स्त्रियोंके गर्व-पूर्ण धैर्य, दस्तकारी एवं गतिपूर्णताका द्योतक है। इसका प्रयोग अनेकानेक गृह-कार्यों में होता है। विशेष कर रजाई बनाने या एक कपड़ेपर दूसरा कपड़ा रखकर सी देनेपर, एक कर देनेके काममें होता है।

कथाके चार रूप हैं—रूमाल, अर्शीलता तकियाका खोल और दुर्जनी (झोला) —साधारणतः सबोंमें शृङ्गारकी कमी रहती है।

अन्य चिकनदोजीमें विभिन्न आकृतियोंकी बाह्य-रेखा पहले अंकित कर ली जाती है, तब रङ्गीन धागोंसे चिकनदोजीका काम होता है। यह चिकनदोज़ी बहुत ही प्रभावोत्पादक होती है, जब साथ-साथ चलनेवाली सिलाई काम में आती है। खद्दरपर इसका अच्छा परिणाम होता है। चिकनदोजीका यह काम बड़ा ही मन-मोहक होता है।

मण्डाला-आकृतिमें इस प्रकारके कामकी कलाका अंग-भाग है, जो वैष्णव धर्मके कास-मण्डालासे मिलता-जुलता है। पृष्ठ-भूमिकी रङ्गीनी और विचित्रतासे कलामें आकर्षण आ जाता है। बङ्गालके कुछ भागोंमें किसान

लोग सिर्फ पृष्ठ-भागको भरकर आकृति बना लेते हैं। इसका परिणाम सर्वथा नवीन और प्रभावपूर्ण होता है। मण्डलाकार आकृति, अल्पोना—रेखा-चित्रकी तरह ही, कहा जाता है कि बहुत प्राचीन है और सम्भवतः आर्योंके पूर्व इसका विकास हुआ है। इस प्राचीन दस्तकारीके पुनर्जीवनने एक नवीन प्रथाके झुकावको जन्म दिया है, जो फैशनकी पुतलियों द्वारा सराहा जा रहा है। नारी-सौन्दर्य-वृद्धिके लिए कथाके विभिन्न रूपोंकी कमी नहीं है।

गर्बा—

अल्पोना—सदृश गर्बा, दुर्गोत्सवका एक अङ्ग है। साथ ही नव-रात्रिका यह मुख्य रूप है, जो नवरात्रि-पूजाके दिन समाप्त होता है। स्त्रियोंका यह 'वृत्तिका' नृत्य है, जो कोरस गाती हैं। यह रासका एक रूप है, जिसके विषयमें पुराणोंमें उल्लेख है कि गोपियां, श्रीकृष्णके चतुर्दिक रास करती थीं। काठियावाड़में आज भी सम्मिलित रास होता है, जिसमें स्त्री और पुरुष दोनों ही भाग लेते हैं।

'गर्बा' का दूसरा रूप यह है कि श्रीकृष्णके आनन्दमें प्रेम-गीत गाये जाते हैं, जो मादक होते हैं। वर्तमान कवियों द्वारा रचित 'गर्बा' से अधिक प्रभावशाली—पुरातन 'गर्बा' के प्रेम पूर्ण गीत हैं। चूंकि उनकी शैली साधारण है और वे सङ्गीतमय काव्य हैं, इनमेंसे मीराके 'गर्बा' और नरसिंह मेहताके रास अधिक परिचित हैं।

ग्राम-गीतों और गर्बाकी लोक-प्रियता देरसे हुई। इन दिनों समस्त बङ्गालकी शिक्षित नारियों द्वारा बड़े-बड़े शहरोंमें यह पाया जाता है। उनका काव्य-रूप अधिक महत्वपूर्ण नहीं है। किम्बा इसके साधारण और मधुर-सङ्गीतमें अपना ही अनूठा आकर्षण है। ये साधारण और अशृङ्गारिक हैं। यथा पढ़नेसे अधिक आनन्द गानेमें मिलता है। वर्तमान रूपमें यह कुछ-कुछ 'नेपोल' (Naypole) नृत्यसे मिलता-जुलता है। इसकी सुन्दरतामें चार चांद लगानेके लिए अनेकानेक उपाय किये जा रहे हैं।

भारत-जैसे विस्तृत देशमें किसानोंके दुःख और आनन्द-पूर्ण गीत विभिन्न-भाषाओंमें पाये जाते हैं और वे ग्राम्य-संस्कृतिके असली पथ-दर्शक हैं—जिसका सम्बन्ध बहुत प्राचीन समयसे है। मानव-श्रमकी मर्यादा ग्राम्य-गीतोंमें ही है और रहेगी।

ईर्ष्या

लेo—श्री लालजी राम शुक्ल, एम० ए०,

ईर्ष्या एक व्यापक मनोभाव है। बाल, वृद्ध, स्त्री-पुरुष, धनी-अमीर सभीको ईर्ष्या होती है। जब कोई मनुष्य अपने बराबरीके मनुष्योंकी वृद्धि देखता है, तो उसे ईर्ष्या होती है। देवता लोग भी दूसरेकी वृद्धि नहीं देख सकते। जब वे किसीको बढ़ते देखते हैं, तो उसे गिरानेकी इच्छा करने लगते हैं। जब मनुष्य दूसरेको बढ़ते देखता है, तो उसके हृदयमें दो प्रकारके मनोभाव उठते हैं, सकारात्मक और नकारात्मक। सकारात्मक विचारोंके आनेपर मनुष्य अपनी वृद्धि करनेकी चेष्टा करता है। इस प्रकारकी मनोवृत्तिको स्पर्धा कहते हैं। यह मनुष्यकी उन्नतिका कारण होती है। जो मनुष्य अकेले रहकर किसी प्रकारकी अपनी उन्नतिमें मन नहीं लगाता, वही मनुष्य समाजमें आकर अपनी उन्नति करनेमें मन लगाने लगता है। दूसरोंको बढ़ते देख उसे भी बढ़नेकी इच्छा होती है। बालकगण जितना क्लासमें रहकर अच्छी तरह पढ़-लिख सकते हैं, अकेले वैसे नहीं पढ़-लिख सकते। प्रत्येक बालककी इच्छा होती है कि दूसरे बालक उससे आगे न निकल जायं। अतएव जब और बालक परिश्रम करते हैं, तो वह भी परिश्रम करने लगता है। जिस क्लासमें एक-दो परिश्रमी बालक नहीं होते, वह क्लास ही पिछड़ जाती है, चाहे उसकी पढ़ाई कितनी ही अच्छी क्यों न हो। इस तरह हम देखते हैं कि एक व्यक्तिकी दूसरेके प्रति स्पर्धा रहना बुरा नहीं है, कई एक शिक्षा-शास्त्रियोंने इसे भी बुरा माना है। उनका कथन है कि मनुष्यको अपने आपसे ही तुलना करते रहना चाहिये। उसे अपनी तुलना दूसरोंसे कदापि न करनी चाहिये। ऐसा करनेसे मनुष्य थोड़े ही कालमें दूसरोंका ईर्ष्यालु बन जाता है। उनके इस कथनमें बहुत-कुछ सत्य है। किन्तु मनुष्यको एकाएक अन्तर्मुखी नहीं बनाया जा सकता। अपने आपकी ही उन्नतिका विचार रखना और दूसरोंके विषयमें कुछ भी न

सोचता यह कितने ही दिनोंके अभ्यास और शिक्षाके पश्चात् आता है। अतएव स्पर्धा मनुष्यकी उन्नतिके लिए एक अनिवार्य मनोभाव माना गया है।

जहां स्पर्धा सकारात्मक मनोभाव है, ईर्ष्या नकारात्मक मनोभाव है। स्पर्धा करने वाला व्यक्ति अपनी उन्नति चाहता है। वह दूसरेको अवनत नहीं करना चाहता। दूसरेको अपने स्थानसे गिरानेकी चेष्टा नहीं करता। ईर्ष्यालु पुरुष अपनी उन्नति न कर दूसरेको अपने स्थानसे गिराना चाहता है। वह न तो स्वयं अपनी बृद्धि कर सकता है और न दूसरोंकी बृद्धि अपनी आखों देख सकता है। जहां कहीं उसने दूसरोंकी उन्नति सुनी, उसे भारी अन्तर पीड़ा होती है। वह सोचता है कि दूसरेकी उन्नति होना ठीक नहीं। यदि वह किसी उन्नत पुरुषके आत्म पतनका बृतान्त सुन ले, तो उसे आत्म-सन्तोष होता है। जहां तक उससे बनता है, वह उसे गिरानेकी चेष्टा करता है। यदि वास्तवमें वह गिरने योग्य नहीं है या गिर नहीं सकता है, तो वह उसे दूसरोंकी दृष्टियोंसे गिरानेकी चेष्टा करता रहता है। वह उसकी निन्दा करके आत्म-सन्तोष पाता है। ईर्ष्या, निन्दा मनोवृत्तिकी जननी है। सभी मनुष्योंको दूसरोंकी बड़ाई सुनकर उतना आनन्द नहीं आता, जितना कि उनकी निन्दा सुननेसे आता है। जो मनुष्य अपने आप दूसरोंकी निन्दा नहीं करते, वे दूसरोंकी निन्दा सुनकर आत्म-सन्तोष पाते हैं। चतुर मनुष्य दूसरोंकी निन्दा अपने आप न कर दूसरों द्वारा ही पर व्यक्तियोंकी निन्दा कराते रहते हैं या निन्दा करनेका उन्हें प्रोत्साहन देते हैं। इस प्रकार उनकी ईर्ष्या भी अपनी तृप्ति पाती रहती है और वे स्वयं दूसरोंकी निन्दाके परिणामसे बच जाते हैं।

ईर्ष्याके मनोभावसे न तो ईर्ष्यालु व्यक्तिकी उन्नति होती है और न ईर्ष्या किये गये व्यक्तिकी ही। इससे दोनोंका ही पतन होता है। ईर्ष्या किये गये व्यक्तिका पतन चाहे बादको हो, किन्तु ईर्ष्यालु व्यक्तिका आध्यात्मिक पतन तुरत हो जाता है। जब मनुष्य ईर्ष्याके कारण बार-बार दूसरोंके पतनकी इच्छा करने लगता है, तो उसके इस प्रकारके नकारात्मक विचार उसीके शत्रु बन जाते हैं। वह ईर्ष्यित व्यक्तिसे डरने लगता है। उससे अनेक प्रकारकी अपनी हानिकी आशङ्का करने लगता है। वह उससे सदैव सतर्क रहता है कि वह हमारी कोई बुराई न कर दे, चाहे ईर्ष्यित व्यक्तिकी मनोवृत्ति दूध-जैसी उज्ज्वल ही क्यों न हो। वह उसके साथ इस प्रकारका बर्ताव करता है, मानों वह मित्रके रूपमें शत्रु हो। इस प्रकारके कुविचार तथा मलिन व्यवहारसे वह सचमुच उस व्यक्तिको अपना शत्रु बना लेता है।

ईर्ष्याकी भावना जब एक बार किसी व्यक्तिके मनमें स्थान पा लेती है, तो वह अपना विषय बदलती रहती है। जब एक व्यक्ति ईर्ष्याका विषय नहीं रहता, तो दूसरा व्यक्ति उसका विषय बन जाता है। जो व्यक्ति एक व्यक्तिसे ईर्ष्या करता है, वह किसी दूसरेका भी ईर्ष्यालु हो जाता है। ईर्ष्या एक प्रकारकी ग्रन्थि है। एक बार इस ग्रन्थिके पड़ जानेसे उसका निवारण होना कठिन होता है। मनुष्यका मन जब विकृत हो जाता है, तो वह अपने आस-पास अपने शत्रुओंको पैदा कर लेता है। पहले वह शत्रुओंकी कल्पना करता है, पीछे स्वयं ही वह शत्रुओंसे घिरा पाता है। जब ईर्ष्यालु व्यक्तिके सामने कोई व्यक्ति ही नहीं रह जाता, तो वह अपने आपको ही कोसने लगता है। अर्थात् जो ध्वंसात्मक विचार किसी अन्यके ऊपर आरोपित किये गये थे, वे विचार अब आत्माको ही आश्रय बना लेते हैं। ऐसा होनेसे जितने संवेगके साथ हम दूसरोंके नाशकी चिन्ता करते थे, स्वयं अपने नाश और पतनकी इच्छा करने लगते हैं।

ईर्ष्यालु पुरुष कदापि सुखी नहीं रह सकता। वह सदा बेचैन रहता है। अपने आस-पासके लोगोंको अपना शत्रु बनाये रहता और उनके भयसे सदा भयभीत रहता है। उसके स्वप्न अच्छे नहीं होते। ईर्ष्याके बढ़ जानेपर नींद भी ठीकसे नहीं आती। एक बुरे मनोभावसे दूसरे बुरे मनोभावोंकी बृद्धि होती है। ईर्ष्या घृणामें परिणत हो जाती है। जब कोई मनुष्य दूसरेको गिरानेमें असमर्थ रहता है, तो वह उससे घृणा करके ही सन्तोष पा लेता है। ईर्ष्या मनुष्यको तभीतक रहती है, जब तक कि वह दूसरे व्यक्तिको अपनेसे ऊँचा समझता है। यह अधिक काल तक एक सी नहीं बनी रहती। ईर्ष्यालु व्यक्ति अपने आत्म-सन्तोषके लिए ईर्ष्या किये गये व्यक्तिके दुर्गुणोंकी खोज करने लगता है। जब उसे इन दुर्गुणोंका ज्ञान हो जाता है, तो फिर वह उस व्यक्तिके प्रति घृणाका भाव धारण कर लेता है। घृणा मनुष्यको दूसरेके पतन चाहनेमें नैतिक आधार दे देती है। घृणित व्यक्तिका पतन चाहना बुरा नहीं समझा जाता।

ईर्ष्याकी मनोवृत्तिसे प्रत्येक मनुष्यको बचना चाहिये। परन्तु इसके पहले कि हम ईर्ष्याकी चिकित्सा करें, ईर्ष्याके कारणको समझ लेना चाहिये। ईर्ष्या एक प्रकारकी मानसिक बीमारी है। किसी भी बीमारीको आनेसे रोकना

उसकी चिकित्सा करनेसे कहीं अच्छा है। बाल मनोविज्ञान-की दृष्टिसे ईर्ष्या बालककी हीनता-सूचक भावना-ग्रन्थिका परिणाम है, जो बालक बचपनमें अति त्रस्त होता है, जिसे अपने माता-पिता और परिवारके लोगोंसे उचित प्यार तथा सम्मान नहीं मिलता, उसके मनमें हीनता-सूचक भावना-ग्रन्थि बन जाती है। वह दूसरोंकी वृद्धि कदापि नहीं चाहता, वह देखता है कि दूसरे बालककी वृद्धि होनेपर उसीकी ओर सभी लोगोंकी दृष्टि जाती है और उसे कोई पूछता ही नहीं। अतएव वह अपने मनमें दूसरे बालकोंके पतनकी इच्छा करने लगता है। यही ग्रन्थि आगे बढ़कर मनुष्यको सभी दूसरे उन्नति करनेवाले मनुष्योंका ईर्ष्यालु बना देती है।

स्त्रियोंमें पुरुषोंकी अपेक्षा ईर्ष्याकी मात्रा अधिक रहती है। एक स्त्री दूसरी स्त्रीकी उन्नति नहीं देख सकती। जिस तरह स्कूलके लड़के एक दूसरेके साथ मिलकर पढ़ लेते हैं, उसी प्रकार लड़कियां एक दूसरेके साथ मिलकर नहीं पढ़तीं; और कालेजमें तो महिलाओंको एक दूसरेसे मददकी आशा करना व्यर्थ है। गुलाम लोग स्वतन्त्र लोगोंकी अपेक्षा अधिक ईर्ष्यालु होते हैं। नौकरोंमें भारी ईर्ष्या रहती है।

इस प्रकारकी स्थितिका कारण हीनता-सूचक भावना-ग्रन्थि ही है। लड़कियोंको लड़कोंकी अपेक्षा घरमें कम महत्वका स्थान दिया जाता है। उन्हें माता-पिता प्रायः भार रूप ही मानते हैं। उनका बात-बातमें तिरस्कार किया जाता है। इसलिए वे लड़कोंके प्रति ईर्ष्या-भाव रखती हैं। यही ईर्ष्या-भाव स्थानान्तरित होकर भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंपर आरोपित होता रहता है—अर्थात वह अपना विषय परिवर्तन करता रहता है। जिस व्यक्तिमें हीनता-सूचक भावना-ग्रन्थि पड़ जाती है, वह सभीका ईर्ष्यालु रहता है। वह सदा अपने आपको दूसरोंसे भला या बड़ा सिद्ध करनेकी चेष्टा करता रहता है। जो लड़का पीटा जाता है वह बड़ा होनेपर दूसरेको पीटकर अपनी हीनता-सूचक भावना-ग्रन्थिका प्रतिकार करता है। निर्धन घरमें पैदा हुआ बालक यदि बड़ा होनेपर धन पाये, तो वह उसे सभीको दिखाते फिरता है। इसी तरह सम्मानहीन कुटुम्ब में पैदा हुआ बालक अपनी प्रौढ़ावस्थामें दूसरोंसे सम्मान पानेकी विशेष चेष्टा करता है। वह दौड़-दौड़कर ऐसे स्थानमें जाता है, जहां उसे कुछ भी सम्मान पानेकी आशा होती है। जो बचपनमें तिरस्कृत रहता है, वह किसी भी व्यक्तिके सम्मानित होनेमें प्रसन्न नहीं होता। भले घरमें पाले गये बालकोंमें ईर्ष्याकी कमी होती है। जिस बालकमें आत्मोद्धारके विचार प्रबल हैं, वह दूसरोंसे ईर्ष्या नहीं करता। काममें लगा हुआ व्यक्ति अपने आपमें ईर्ष्याके विचारोंको आनेका मौका ही नहीं देता। ईर्ष्याके विचार जितने निकम्मेपनमें आते हैं, उतने काममें लगे रहनेपर नहीं आते। ईर्ष्याके विचार एक ओर निकम्मेपनसे उत्पन्न होते हैं और दूसरी ओर मनुष्यको और भी निकम्मा बना देते हैं। ईर्ष्यालु व्यक्ति अपने नकारात्मक विचारोंके कारण किसी भी कामको सफलतापूर्वक नहीं कर पाता।

ईर्ष्या-निवारणके लिए व्यक्तिका वातावरण भला होना चाहिये। बालकोंका उचित लालन-पालन तथा प्यार करनेसे उनमें ईर्ष्याकी भावना-ग्रन्थि न बनेगी। किसी बालकके प्रति तिरस्कारका भाव न लाना चाहिये। उसे दूसरे बालकोंकी अपेक्षा नीचा न देखना चाहिए। उसे सदैव काममें उत्साह देते रहना चाहिये। उसकी दूसरे बालकसे तुलना कर नीचा न सिद्ध करना चाहिये। जिस बालकमें बचपनसे ही ईर्ष्याके भाव न उठेंगे, वह प्रौढ़ावस्थामें कदापि ईर्ष्यालु न होगा। हम देखते हैं कि गरीब घरका बालक, धनी घरके बालकसे अपनी प्रौढ़ावस्थामें अधिक ईर्ष्यालु होता है। इसी तरह एकाएक बढ़ जानेवाले व्यक्तिमें भी ईर्ष्या अधिक रहती है। इसका कारण उसका बढ़ जाना नहीं, वरन् पिछले तिरस्कारके संस्कार हैं। यदि बालकको पहलेसे ही नेक दृष्टिसे देखा जाय, तो ईर्ष्याका कारण ही न रहेगा। ईर्ष्याके निवारणके हेतु मनुष्यको योग-सूत्रमें बतायी गयी इन चार भावनाओंका अभ्यास करना चाहिये—मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा। सब लोगोंसे मैत्री-भाव स्थापित करना और सबकी वृद्धि चाहना ये मैत्री-भावनाके स्वरूप हैं। दूसरोंके दुःखमें दुःख मानना, उससे सहानुभूति प्रकट करना करुणा है। दूसरोंकी उन्नतिमें प्रसन्नता प्रकट करना मुदिता है। दूसरेके अवगुणोंका चिन्तन न करना उपेक्षा है। हम दूसरोंके प्रति अहितके विचार लाकर स्वयं अपने ही शत्रु बन जाते हैं। अतएव दूसरेके हितका चिन्तन करके ही हम अपने मित्र बन सकते हैं। किसी भी दुर्भावनाके प्रभावको विपरीत भावनाके द्वारा नष्ट किया जा सकता है। स्वार्थ-भावनाके प्रभावको लोक-सेवाकी भावनासे नष्ट किया जा सकता है। इसी तरह ईर्ष्याकी मनोभावनाके दुष्परिणामको दूसरोंकी वृद्धिकी इच्छा दृढ़ करनेसे मिटाया जा सकता है। हम जितने

संवेगके साथ दूसरोंके पतनकी इच्छा करते हैं, उतने ही संवेगके साथ जब हम दूसरोंकी उन्नतिकी इच्छा करने लगें, तो हमारे पुराने दुश्चिन्तनका परिणाम नष्ट हो जाय।

यह ध्यानमें रखना चाहिये कि मनके बुरे विचार सबसे अधिक हानि स्वयंको पहुंचाते हैं। संसारमें जिन लोगोंको हम अपना शत्रु और मित्र देखते हैं, वे हमारी कल्पना-मात्र हैं। हमारे विचार ही दूसरे लोगोंमें मित्र और शत्रु-भावना-का आरोपण करते रहते हैं। भले विचारोंके स्वागतसे ही हमारा कल्याण हो सकता है, जिस तरह कि बुरे विचारोंसे विनाश। बुरे विचार उठकर जरूर किसीका अनिष्ट करेंगे। यदि वे लक्षित व्यक्ति तक न पहुंच सके, तो लौटकर अपने ही पास आकर उत्पात मचाते हैं। भले विचार सकारात्मक, उत्साहवर्द्धक हैं। बुरे विचार नकारात्मक और निराशा बढ़ानेवाले होते हैं। एक प्रकारके विचार सृजनात्मक और दूसरे प्रकारके ध्वंसात्मक होते हैं।

जीवन और यौवन

मैं आया हूं जीवन लेकर,
मैं यौवन लेकर आया हूं,

* * * *

आतुर कण-कणसे मिलनेको
फड़क रही हैं मेरी बाहें !
निकल गया मैं जिधर, उधर ही
टूटे शिखर, गयीं बन राहें !
मुझमें जादू है, मिट्टीको
छू दूं, तो बन जाये सोना !
मेरे हृदय-कमलसे सुरभित
है पृथ्वीका कोना - कोना।
दिनमें चमका प्रखर सूर्य-सा,
निशिमें शशि बन मुसकाया हूं !
मैं आया हूं जीवन लेकर,
मैं यौवन लेकर आया हूं !

* * * *

सावनकी घनघोर घटा-सा
मैं बरसूंगा, मैं लरजूंगा;
और वज्र-सा भीम-व्योमके
वक्षस्थलपर मैं गरजूंगा !
चूमा करती है बिजलीको
बादलमें हंस मेरी हस्ती !
रज-रजके जर्जर प्राणोंमें
भर दूंगा मैं अपनी मस्ती !
जगतीके सौन्दर्य - फूलपर
भौंरा बन कर मंडराया हूं !
मैं आया हूं जीवन लेकर
मैं यौवन लेकर आया हूं !

* * * *

कीट-पतङ्गों-सा मैं भी क्या
यों ही जगमें मर जाऊंगा ?
दो दिनके फूलों-सा खिलकर
मैं भी क्या यों झड़ जाऊंगा ?

मैं पाऊंगा विजय मृत्युपर;
निश्चित ही है, मैं पाऊंगा !
मुझको है विश्वास चिरन्तन,
मैं बुझ कर भी जल जाऊंगा !
बारम्बार मौतके पञ्जोंसे
यद्यपि मैं टकराया हूं !
मैं आया हूं जीवन लेकर,
मैं यौवन लेकर आया हूं !

* * * *

आंखें क्या दिखलाते मुझको ?
क्या तुमसे भी डर जाऊं मैं ?
देते हो अभिशाप मुझे क्यों ?
काट कालको भी खाऊं मैं !
झूम गया हूं मैं लहरोंमें,
खेल गया हूं मैं द्वन्द्वोंमें;
ताल-तालपर थिरक-थिरककर
नाचा हूं सौ-सौ छन्दोंमें !
गति मेरी कब रुकी, कभी क्या
कठिनाईसे घबड़ाया हूं ?
मैं आया हूं जीवन लेकर,
मैं यौवन लेकर आया हूं !

* * * *

बात अमृतकी क्या है, विष भी
पी लूं और पचा डालूं मैं !
जिसको जगत 'असम्भव' कहता,
उसका नाम मिटा डालूं मैं !
मेरा खून गरम है, जैसे
पानीमें लग गयी आग हो !
मेघ-रन्ध्रसे जैसे फूटा
दीपकका वह प्रलय राग हो !
बर्षा बन रो लेता हूं मैं,
बन वसन्त गा लेता हूं मैं

मैं आया हूं जीवन लेकर
मैं यौवन लेकर आया हूं !

*　*　*　*

मुझमें तरुण व्याघ्रका पौरुष,
सिंह-नाद हृद्-कम्पन-कारी !
मलयानिल-सा डोल गया हूं
मन्द-मन्द मैं कुञ्ज-विहारी !
और कभी मैं फैल गया हूं
आंधी बन कर आसमानपर !
तोड़ कभी चट्टान फूट मैं
निकला हूं प्रपात-नद बनकर !

*　*　*　*

पैठा हूं पाताल - गर्भमें,
महा - सिन्धु - सा लहराया हूं !
मैं आया हूं जीवन लेकर
मै यौवन लेकर आया हूं !

—आरसीप्रसाद सिंह

विश्वकी विचित्रताएं--सागर और झील

लेखिका, श्रीमती आशादेवी

विधाताने विराट विश्वका निर्माण करके अपनी अलौकिकता, निपुणता एवं भव्यताका जो परिचय दिया है, उसका प्रमाण हमें भू-मण्डलपर स्थित लम्बी-चौड़ी अगणित नदियों, ऊंचे-ऊंचे पर्वतों, अथाह सागरों और अविरल गतिसे बहनेवाले झरनों आदि प्राकृतिक दृश्योंके अवलोकन करनेसे मिलता है। दुनियां कितनी विशाल और सीमा-रहित है, उसके ऊपर कितनी जाति एवं धर्मके मनुष्य बसे हुए हैं, उनकी संख्या कितनी अधिक है, उनके उदर-पोषण एवं जीवन-निर्वाहके लिए कितने प्रकारके अन्न, फल, मेवे आदि उत्पन्न होते हैं—इन बातोंपर जब हम विचार करते हैं, तो उस परम पिता परमेश्वरकी सुन्दर व्यवस्थाकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते। निश्चित समय पर भगवान अंशुमाली रात्रिका अन्धकार दूर कर पूर्व दिशामें अपनी सुनहली किरणोंका जाल फैला देते हैं। दो-पहर होती है। दिन उज्ज्वल धूपके प्रकाशसे जगमगाने लगता है। शाम होते-होते फिर रजनीका काला अञ्चल अपने सायेमें दुनियांको ढक लेता है। नीले आसमानपर रजनीपति चमकते हुए तारोंके साथ अठखेलियां करने लगते हैं। जाड़ा शुरू होते ही सर्द हवा बहने लगती है, झील और सागरका जल जम जाता है, ओलोंकी बारिश होती है और गर्वके साथ मस्तक उठाये हुए गगनचुम्बी गिरिराज बर्फसे ढंक जाते हैं। गर्मी पड़ती है, तो ज़मीन-आसमानसे व्याकुल कर देनेवाली आगकी लपटें निकलने लगती हैं। गर्म हवा और धूलकी आंधियोंके मारे नाकमें दम रहता है। नदियां सूख जाती हैं। सागरका जल भाप बनकर उड़ जाता है और कालान्तरमें वही भाप मौसमी हवाके रूपमें परिवर्तित होकर पावसकी हरी-भरी ऋतु ले आती है। रिमझिम मेहकी झड़ी लग जाती है। बादल गरजने लगते हैं और बिजलीकी चकाचौंध कर देनेवाली चमक एक निराली ही छटा उत्पन्न कर देती है। विधाताके इन आश्चर्यजनक करिश्मोंपर जितना ही विचार कीजिए उतना ही कौतूहल और आनन्दसे हृदय परिपूर्ण हो जाता है। सच बात तो यह है कि यह दुनियां इतनी विचित्रताओंसे भरी हुई है, कि उसकी मनुष्य कल्पना भी नहीं कर सकता। उदाहरणके लिए सागर और झीलोंको ही ले लीजिये। पृथ्वीका दो तिहाई भाग इन्हीं सागर और झीलोंसे भरा हुआ है। वह कितने गहरे हैं, उनके गर्भमें कितनी अपार धनराशि, मणिमुक्ता एवं अन्य अलभ्य वस्तुएं छिपी पड़ी हैं—इन बातोंका पता आजतक कौन लगा सका है। इन्हीं बातोंसे मनुष्यको अपनी सीमित शक्तिका पता लगता है और उसको अनुभव होता है कि उससे भी परे कोई महान शक्ति इस संसारको तरह-तरहके नाच नचाया करती है और उसीके सङ्केतपर प्रत्येक बात घटित होती है। अस्तु, इन सागर और झीलोंकी महिमा कितनी विशाल है और उनसे मानव जातिको कितना लाभ पहुंचता है, इससे हम सब परिचित हैं। यहां उनकी उपयोगितापर विचार न करके उनकी चमत्कारी बातोंके उपर ही प्रकाश डाला जायगा। पाठकोंकी जानकारीके लिए निम्न पंक्तियों-

में मृतसागरकी कुछ आश्चर्यजनक बातोंका उल्लेख किया जा रहा है।

मृतसागरकी आश्चर्यजनक बातें

फिलस्तीनमें मृतसागर (डेडसी) नामक सैंतालिस मील लम्बी और साढ़े नौ मील चौड़ी खारी पानीसे भरी हुई एक झील है। भूमध्य सागरसे लगभग डेढ़ हजार फीट नीची इसकी सतह है। यह झील कितनी पुरानी है, इसका अनुमान ईसाइयोंके धर्मग्रन्थ बाइबिलमें दी हुई एक कथासे लगाया जा सकता है। कहते हैं, इसके किनारे किसी समय सोडोम और गोमोरा नामक दो नगर आबाद थे। इनके निवासी बड़े भोग-विलासी और दुराचारी थे। उनका अधिकांश समय रास-रङ्ग और दुराचारमें ही व्यतीत होता था। कहीं नाच-गानेकी महफिलें जमी हैं, कहीं शराब-कबाबकी दावतें उड़ रही हैं। लोग नशेमें चूर होकर बदमस्त पड़े हैं और कहींपर चोरी और गिरहकटीका बाजार गर्म है। वहांका शासक भी वैसा ही निर्बुद्धि एवं निरंकुश था। अत्याचार और दमनकी चक्कीमें बेचारे निर्दोष एवं शान्तिप्रिय नागरिक कुचले जाते थे। इस प्रकार जब वहां पापके प्रचारने सार्वजनिक जीवनमें व्यापक रूपसे स्थान कर लिया और पृथ्वी पापोंके भारसे दबने लगी, तो परमेश्वरने पीड़ित प्राणियोंके उद्धारके लिए प्रकृतिका कोप उत्पन्न किया यह विनाशका दृश्य अत्यन्त भीषण और लोमहर्षक था। समूचे देशमें अचानक भूकम्प आ गया। ज्वालामुखी पर्वत उद्गार करने लगे। नदियोंमें तेजीके साथ बाढ़ आ गयी। फल यह हुआ, कि नगरवासी अग्निवर्षा और बाढ़के कारण अकाल कालके गालमें कवलित हो गये। वैज्ञानिकोंने बाइबिलकी इसी उपकथाके आधारपर अनुमान लगाया है कि प्राकृतिक विध्वंसके फलस्वरूप ही इस झीलका निर्माण हुआ था। यथार्थ बात चाहे जो कुछ भी हो, परन्तु वहांके लोग अब भी इस झीलको न केवल अशुभ समझते हैं, बल्कि उनकी यह भी धारणा है कि इसके आस पासका प्रदेश स्वास्थ्यकी दृष्टिसे अत्यन्त हानिप्रद है। लेकिन उनकी यह धारणा भ्रमात्मक है। अनुभवके आधारपर अब यह बात सिद्ध हो चुकी है, कि संसारमें उसके समान बहुत कम स्वास्थ्यप्रद स्थान हैं। झीलमें नमककी मात्रा अधिक होनेके कारण, उसका जल कुछ रोगोंके लिए रामबाण महौषधिके समान काम करता है। बात, गठिया तथा पुट्ठे सम्बन्धी बीमारियोंसे पीड़ित रहनेवाले रोगियोंको इस झीलमें स्नान करनेसे इतना आश्चर्यजनक लाभ पहुंचा है, कि उनमेंसे अधिकांश बिलकुल ही भले-चङ्गे हो गये हैं।

डेडसीकी दूसरी विशेषता यह है कि इसके गहरे जलमें स्नान करने वालेको डूबनेका भय बिलकुल नहीं रहता। कोई व्यक्ति निरापद भावसे उसमें कितनी ही गहराईमें क्यों न चला जाय, वह डूबनेके बजाय उसमें उतराता रहेगा। इसका कारण यह है कि अन्य सागरोंकी अपेक्षा इसमें नमककी मात्रा नौगुनी अधिक है। इसीलिए इसके किनारे नमक बनानेके अनेक कारखाने खुले हुए हैं। नमक निकालने के लिए, मजदूरोंको जब झीलकी तलहटीमें गोता लगानेकी आवश्यकता होती है, तो उनकी पीठमें भारी वजन बांधकर उन्हें डुबो दिया जाता है। इस प्रकार पानीसे डरने वाले लोगोंके लिए यह झील नहाने और जल-क्रीड़ा करनेके लिए स्वर्ग है।

झीलके उत्तरी तटपर समुद्रकी सतहसे १३०० फीटकी निचाईपर कालिया नामक कसबा बसा हुआ है। इसको आबाद करनेका श्रेय मेजर टी० जी० टूलोच और कर्नल टूलोच नामक दो भाइयोंको है। इन लोगोने पर्यटकोंको सुविधा और आरामके लिए वहां एक शानदार होटल स्थापित किया है। उसकी इमारत इतनी भव्य और विशाल है, कि उसके भीतर पांच सौ व्यक्ति एक साथ बैठकर भोजन कर सकते हैं और ऊपरकी छतोंपर उससे दूने मनुष्य धूप और वायुका सेवन कर सकते हैं। होटलकी नींव खोदी जानेके समय, उसके नीचे एक विशाल रोमन मकानकी दीवारें दिखलायी पड़ी थीं। इससे बाइबिलकी उपर्युक्त उपकथाकी सत्यता प्रमाणित होती है और यह विश्वास होता है कि किसी समय वहां सोडोम और गोमोरा-जैसे विशाल नगर आबाद रहे होंगे। होटल ऐसे महत्वपूर्ण स्थानपर स्थित है, कि उसकी छतसे बिना किसी दूरबीनकी सहायताके १४० मीलकी दूरीपर स्थित जोर डनकी हरी-भरी घाटी साफ देखी जा सकती है। इस भवनकी दूसरी आश्चर्यजनक बात यह है। कि वहां कोई बात कितने ही धीमे स्वरमें क्यों न कही जाय, वह १०० गजके फासले तक स्पष्टतया सुनी जा सकती है।

इस स्थानका स्वास्थ्य सम्बन्धी गुण इसके समुद्रकी सतहसे नीचा होनेके कारण है। पृथ्वीकी साधारण सतहसे नीचा होनें और वायुमण्डलका अतिरिक्त दबाव पड़नेके कारण यहां आक्सीजन प्रचुर मात्रामें उपलब्ध होती है। मौसम भी यहां सुहावना और स्वास्थ्य-बर्द्धक रहता है।

जाड़ेके दिनोंमें यहांकी सुखद धूप और हलकी वायु पर्यटकों-का मन मोह लेती है और वे अपने अवकाशका अधिकांश समय यहीं सैर-सपाटा करनेमें व्यतीत कर देते हैं। अबसे अनेक वर्षों पूर्व संसारको इस स्थानकी उपयोगिताके विषय-में कोई ज्ञान न था। लेकिन नमक तैयार करने वाले कार-खानोंके मजदूरोंके स्वास्थ्यमें जब आश्चर्यजनक उन्नति देखी गयी, तो लोगोंका ध्यान आकर्षित हुआ। कालियाके आस-पास ऐसे अनेक ऐतिहासिक स्थान पाये जाते हैं, जो ईसाई धर्मावलम्बियोंके विचारसे अत्यन्त धार्मिक महत्वके हैं। वहां प्रति वर्ष क्रिस-मस और ईस्टरके अवसरपर मेले लगते हैं। और उस समय कालियामें यात्रियोंकी बेतहाशा भीड़ बढ़ जाती है।

भविष्य बतानेवाली झील

इङ्गलैंण्डमें उत्तरी टाटनके डेवन-स्थित नगरमें एक ऐसी झील है, जिसके द्वारा भविष्यमें होने वाली दुर्घटनाकी सूचना पहले ही से मिल जाती है। वैसे तो इस झीलमें अधिक पानी नहीं रहता, किन्तु जब इसका जल बढ़ने लगता है, तो इसके आसपासके निवासी किसी अज्ञात सङ्कटके भयसे व्याकुल होने लगते हैं और चिन्ताके कारण उनका खाना-पीना और नींद तक हराम हो जाती है। उन्होंने इसका कटु अनुभव एकसे अधिक बार किया है। उन लोगोंका विश्वास है कि झीलमें जल बढ़नेसे वहांके राज परिवारमें किसीकी मृत्यु होनी अवश्यम्भावी है। कहते हैं कि राजकुमार कानसार्टकी मृत्यु होनेके ठीक पहले इसमें जल बढ़ने लगा था। इसी प्रकार ड्यूक आफ क्लारेंस और महारानी विक्टोरियाकी मृत्युके पूर्व भी इस झीलमें बाढ़ आ गयी थी। बादशाह पञ्चम जार्जकी मृत्यु-के तीन सप्ताह पूर्व जब इसमें जल बढ़ने लगा था, तो उसके तटवर्ती निवासी इस अशुभ सूचनासे बहुत भयभीत हुए थे। उसके बाद ही बादशाह पञ्चम जार्ज की मृत्यु हुई। झीलमें पानी कैसे और कहांसे आ जाता है, इसका कारण भी अभी रहस्यपूर्ण बना हुआ है। इसके अति-रिक्त सबसे अधिक आश्चर्यजनक बात तो यह है कि सङ्कटका निवारण होनेके पश्चात् ही इसका जल घटने लगता है और घटते-घटते अपनी पुरानी सतहपर फिर पहुंच जाता है। ऐसा जान पड़ता है कि राज-परिवारमें किसीके निधन होनेकी आशङ्कासे द्रवित होकर झीलका वक्षस्थल पिघल उठता है और शोक-प्रदर्शनके मिस वह बढ़ आती है।

कैस्पियन सागरकी मनोरञ्जक बातें

अब कैस्पियन सागरकी कुछ मनोरञ्जक बातोंपर दृष्टि-पात कीजिये। यह एशिया महाद्वीपमें एशिया और यूरोपकी सीमापर स्थित संसारकी सबसे बड़ी झील है। अबसे लगभग ६ शताब्दी पूर्व इसका धरातल समुद्रसे ३९ फीटकी ऊंचाई पर था, किन्तु प्रकृतिका चमत्कार देखिये कि इसका धरा-तल सदैव ही बदलता रहता है। कभी यह समुद्रकी सतहसे ऊपर हो जाती है और कभी नीचे। इस कारण इसके तट-पर अच्छे बन्दरगाहोंका बनाना अत्यन्त कठिन है। अबसे हजारों वर्ष पूर्व यहां एक महासागर था और दक्षिणी रूस तथा फारसका कुछ भाग उसीमें डूबा हुआ था। उस समय कैस्पियन सागर और काला सागरका समान धरा-तल होनेकी वजहसे वे भी एक दूसरेसे मिले हुए थे। लेकिन कालान्तरमें वह महासागर सूख गया और ये दोनों झीलें अलग-अलग निकल आयीं। आज कालेसागरसे कैस्पियन सागरका धरातल ८० फीट नीचे हो गया है। वाटर-लूके युद्धके समय इसका जो धरातल था, वह उसी शताब्दीके मध्य-कालमें बहुत नीचा हो गया, और कम होते-होते वह गत यूरोपीय महायुद्धके समय इतना कम हो गया, कि उसमें जहाज-रानीका कार्य करना अत्यन्त कठिन हो गया।

कैस्पियन सागरका विस्तार बाल्टिक सागरके समान ही है और कुछ स्थानोंपर इसकी गहराई बहुत अधिक है। यहां सालके बारहों महीने प्रायः तेज हवा चला करती है। शीतकालमें यह हवा बर्फकी तरह ठिठरन पैदा करने वाली बन जाती है। उसका उत्तरी भाग जाड़ेमें लगभग ३ महीनेके लिए जम जाता है। इसलिए यातायातके मामले-में समुद्र सुनसान पड़ा रहता है। जहाज भी कम दिखलायी देते हैं। वायुके प्रचण्ड वेगोंके कारण स्टीमर और छोटी डोंगियोंके उलट जानेका भय बना रहता है और मांझियों-को उसमें जहाजरानी करना अत्यन्त कठिन और खतर-नाक मालूम पड़ता है। इसमें चार बड़ी-बड़ी नदियां गिरती हैं। उनमेंसे वोल्गा और यूराल मुख्य हैं। जलका दो तिहाई भाग इन्हीं नदियों द्वारा मिलनेके कारण, इसके उत्तरी पश्चिमी भागका जल प्रायः पीने योग्य होता है। किन्तु शेष भागोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारका खारापन पाया जाता है। इसके पूर्वीय भागमें कराबुगज नामकी एक मनोहर खाड़ी है, जिसका जल एकदम खारी है। यहां खारेपनका अंश शेष भागकी अपेक्षा बीस गुना अधिक है।

कराबुगजकी खाड़ी प्राकृतिक दृष्टिसे एक कौतूहल पूर्ण स्थान है। यह चारों ओरसे ऊजड़ प्रदेशों द्वारा घिरी हुई है। इसका क्षेत्रफल लैगोडा झीलके समान है। मुख्यसागर से इसमें प्रवेश करनेका मार्ग ३०० गजसे अधिक चौड़ा नहीं है। कहीं-कहीं तो यह चौड़ाई केवल १५० गज ही रह गयी है। इस संकीर्ण मार्गके दोनों ओर बालूकी ऊंची-ऊंची दीवारें हैं, जो स्थानकी निर्जनताके कारण देखने में बड़ी भयानक मालूम पड़ती हैं। सागरका जल जब इस संकीर्ण मार्गसे बहता हुआ खाड़ीमें गिरता है, तो भीषण नाद उत्पन्न होता है। खाड़ी इतनी छिछली है कि उसका पानी तेजीके साथ भाप बनकर उड़ता रहता है। वह कहीं भी ४० फीटसे अधिक गहरी नहीं है। सूर्य और वायुकी गर्मीसे प्रतिवर्ष इसकी सतह ३ फीट कम हो जाती है।

कैस्पियन सागरमें मैगनेशियम सल्फेट नामक पदार्थ अत्यधिक मात्रामें पाया जाता है और कहीं-कहीं तो नमक की अपेक्षा इसकी मात्रा चार गुना अधिक है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, कुछ वर्ष पहले तक यहां जहाजरानी बिलकुल नहीं होती थी। लेकिन इधर सोवियट सरकारने इस सम्बन्धमें अच्छी क्रियाशीलता दिखायी है और इसकी रक्षाके लिए सोवियट सङ्घका एक छोटा-सा समुद्री बेड़ा भी रहने लगा है। तटके बन्दरगाहोंमें बाकू और अस्त्राखां सबसे प्रसिद्ध हैं। बाकू काकेशश प्रदेशका मुख्य नगर है और यहांसे जहाजों द्वारा अधिकतर तेल ही भेजा जाता है। रूसमें उसका वितरण करनेके लिए वोलगा नदीके मुहाने द्वारा जहाज देशके भीतरी भागमें काफी दूर तक चले जाते हैं। वोलगा नदीके मुहानेपर ही अस्त्राखां बन्दरगाह बना हुआ है। यह घना एक प्राचीन नगर है। कैस्पियन सागरमें प्रतिवर्ष लाखों रुपयेकी मछलियां पकड़कर विदेशोंको भेजी जाती हैं। वास्तवमें रूसको इसकी बदौलत बहुत बड़े लाभ हैं और इन्हीं स्वार्थोंके कारण वह अपने अधिकृत प्रदेशकी रक्षा करनेके लिए प्राणप्रणसे उद्यत है।

झीलके पानीका रङ्ग बदल गया

पाठकोंको स्मरण होगा, पिछले वर्ष जनवरीके महीनेमें नैनीतालकी झीलमें भी एक विचित्र परिवर्तन देखनेमें आया था। उसका नीला जल अकस्मात् भूरे मटमैले रङ्ग-जैसा हो गया था। इस परिवर्तनके साथ ही उसकी मछलियोंके ऊपर भी मुसीबत आ गिरी थी। उनमेंसे अधिकांश अकाल कालकी ग्रास बन गयीं और झीलके पानीकी सतह और किनारे उनसे पट गये थे। उनमेंसे कितनी ही तो जीवित निकाल ली गयी थीं। मछलियोंकी इस आकस्मिक मृत्यु और झीलके पानीके रङ्गके परिवर्तनके कारण वहांवाले हैरतमें पड़ गये हैं, और वे इसको प्रकृतिके प्रकोपका अशुभ चिह्न समझते हैं। अबसे ४० वर्ष पूर्व १८८२ ई० में भी नैनी झीलमें इसी प्रकारका असाधारण परिवर्तन देखा गया था। लेकिन उस वर्ष वहां भीषण तुषारपात हुआ था और सर्दी भी अधिक हुई थी। झीलका पानी ५ फीटकी गहराई तक जम गया था और वहांकी सर्दी उस वर्ष रेकार्ड स्थापित कर गयी थी। गतवर्ष अधिक सर्दी न होनेपर भी झीलमें इस प्रकारके परिवर्तन और जलचरोंके विनाशको प्रकृतिकी अद्भुत लीलाके अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है।

मुझे स्त्रियोंसे बातचीत क्यों पसन्द है ?

श्री शङ्कर भारद्वाज, एम० ए०, एल-एल० एम०

मैं स्त्रियोंसे मेल-मुलाकात रखना पसन्द करता हूँ। इनसे बात-चीत करनेमें मुझे विशेष आनन्द मिलता है। यह वास्तवमें कमनीय होती हैं। इससे मिलकर महाकवि बायरनका यह वाक्य स्मरण हो आता है :—मनुष्य कितना विचित्र है, और स्त्रियां तो विचित्रतम !

आप यह न समझ लें कि जर्मन दार्शनिक शोपनहार अथवा नीट्शेके समान मैं भी नारीसे घृणा करता हूँ। परन्तु महाकवि शेक्सपियरके इस वाक्य-कोमलता ! तेरा ही दूसरा नाम नारी है—में भी मेरा विश्वास नहीं है।

स्त्री जैसी है, वैसी ही मुझे पसन्द है। स्त्री-जातिसे न मुझे कोई विशेष आशा है, और इसीलिए मैं स्त्रियोंसे कभी निराश भी नहीं हुआ। चुलबुली तबीयत, हल्कापन, हठधर्मी, और परस्पर विरोधी बातें—यह सब दोष होते हुए भी मेरी इनमें श्रद्धा है। मुझे इनपर विश्वास है। केवल प्रखर और तीव्र, सहज बुद्धिके कारण ही हमें इन्हें "जीवन-रक्षक" मानना पड़ेगा। इसे चाहे आप इनका 'शिवनेत्र' समझ लें। बनावटी हल्केपनके अलावा इनका अन्तर्तम जीवन बड़ा गम्भीर होता है। ये जीवनकी वास्तविक समस्याओंको खूब समझती हैं। पुरुषोंका अधिकांश समय तो शिकार खेलना, सिगरेट-शराब पीना, गप्प-शप्प हांकना—इत्यादि व्यर्थ कामोंमें ही व्यतीत होता है। यह सच है कि कुछ ऐसे भी व्यक्ति होते हैं, जो समयका सदुपयोग काव्य-कला विनोद, वैज्ञानिक खोज एवं सामाजिक सेवामें व्यतीत करते हैं। अब स्त्रियोंकी समाज-सेवापर ध्यान दें। बच्चे पैदा करना, घरकी देख-रेख, परिवारके भोजन आदिका प्रबन्ध—इनका अधिक समय मनुष्य-जगतकी आवश्यकताओंकी पूर्तिमें ही जाता है। शायद ही कोई ऐसा पिता हो, जो अपने बाल-बच्चोंके लिए स्वयं एक दिन भी भोजन बना सके। यदि आज सब मातायें मर जायें, तो जानते हैं कितनी बड़ी आपत्ति हमपर आ जायेगी ? अधिक बच्चे तो पहले तीन वर्षोंमें ही चेचकसे मर जायेंगे। जो बचे रह जायेंगे, वह दश वर्षकी अवस्थाके अन्दर ही उठाईगीर, जेब कतरे, चोर, उचक्के बन जायेंगे। बच्चे स्कूल सदा देरसे पहुंचेंगे। बाबू लोग भी दफ्तर मुश्किलसे टाइम पर पहुंच सकेंगे। रूमाल प्रायः बिन धुले ही रहेंगे। छाते गुम जायेंगे। जन्म-दिवस भोज कतई बन्द हो जायेंगे। श्मशान यात्रा जलूस बहुत कम हो जायेंगे।

सच मानिये, हमारे रोजमर्राके जीवनको चलाना, यह स्त्रियोंका ही बूता है। जबतक हमारे प्राण-पखेरू इस पिंजड़ेको छोड़ नहीं जाते, हमें इन देवियोंकी अत्यावश्यकता रहती है और रहेगी। किसी भी जातिका सामाजिक सङ्गठन, राष्ट्रीय ऐक्य स्त्रियोंपर ही आधार-भूत है। स्त्रियोंसे शून्य मनुष्य जगत ही विचित्र होगा। न कोई धर्म रहेगा, न कोई रीति-रिवाजका बन्धन, न पूजा-पाठ और नित्य-नेम, और नाहीं सफेद-पोशी। मेरा विश्वास है कि कोई भी पुरुष न सम्मान योग्य ही है, और न वह सम्मान चाहता है। परन्तु स्त्रियां स्वभावतः आदर-सम्मानकी भूखी होती हैं। वे मर्यादा, उचित-अनुचितका सदा ध्यान रखती हैं। यदि स्त्रियोंका शासन घरोंसे उठ जाये, तब लोग बजाय शानदार कोठियों, भवनोंमें रहनेके छोटी-मोटी टेढ़ी-सीधी झोपड़ियोंमें रहकर ही सन्तुष्ट हो जायेंगे। कोई साहब सोनेके कमरेमें खायेंगे, और कोई महाशय खानेके कमरेमें सोयेंगे। बड़ेसे-बड़ा जेण्टिलमैन सफेद और काली टाईकी विशेष मौकोंके लिए आवश्यकताको ही न समझेगा एक शब्दमें यों कहिये कि हमारी सामाजिक व्यवस्थामें विचित्र उथल-पुथल हो जायेगी। सच तो यह है कि स्त्रियोंकी सहज बुद्धि पुरुषोंके तर्कसे कहीं ऊंची और गंभीर है।

आइये, अब तनिक यह विचारें कि स्त्रियां बात-चीतमें क्यों इतनी मजेदार होती हैं। वास्तवमें गप्प-शप्प, वाग्गोष्ठी, उनके जीवनका विशेष अङ्ग है। उनकी बात-चीतमें शुष्क पाण्डित्य या कोरे पुस्तकी ज्ञानको कोई स्थान नहीं है। यह सच है कि उनसे बातचीत करके हमें कोई बौद्धिक लाभ नहीं प्राप्त होता—तो भी उनके वार्तालापका विशेष महत्व है, क्योंकि उनकी बात-चीत जीवनी-शक्तिसे ओत-प्रोत होती है। कोरे ज्ञानकी चर्चा, फिलास्फी अथवा समाज-शास्त्रके शुष्क फार्मूले, उन्हें नहीं भाते। अतः ज्ञान-विज्ञानकी चर्चासे वे स्वभावतः ही दूर रहती हैं। परन्तु उनकी बात-चीतका केन्द्र जीते-जागते, चलते-फिरते मनुष्य होते हैं। क्या यह कोई छोटी बात है ?

आप एक महिलाको किसी दूसरेका परिचय देते हुए

हुन। मान लीजिये कि उसे किसी प्रोफेसरका परिचय देना है, वह झट यह न कहेगी कि आप अमुक व्यक्ति हैं—फिलास्फीके प्रोफेसर। उसके परिचय करानेका ढङ्ग इस प्रकार होगा :-आप हैं श्री गम्भीरानन्दके साले श्री मोदकानन्द। आपकी बहन धर्मशीला धर्म प्रचारमें रत हैं। आप कालेजमें पढ़ाते हैं, आपके दूसरे साले श्री भजनानन्द चीनमें धर्म प्रचारके लिए गये हुए हैं, पर शोक उनकी धर्मपत्नी हालमें ही पेटके आपरेशनके कारण मर गयीं! और फिर गप्पाष्टकका तांता शुरू हो जायेगा। देवीजीको उस बूढ़े सुन्दर दाढ़ीवाले डाक्टरकी याद आ जायेगी, जिसने उस अभागिनी स्त्रीका आपरेशन किया था—आदि आदि। नारीका यह सहज स्वभाव है कि वह यथार्थताको कभी नहीं भुलाती। वह फौरन भांप लेती है कि कौन बेकार बात है और कौन कामकी। उसे न्याय दर्शनके बजाय अपेन्डेसाइटस अवश्य याद रहेगा, क्योंकि स्त्री जगत आपरेशन, बीमारी, चेचक, प्रीति-भोज, इतर-फुलेल, रागरङ्ग—आदि वस्तुओंका ही तो एक विचित्र मिश्रण है। भला महिला संसारका फिलास्फी, अर्थ-शास्त्र, समाज-शास्त्र एवं विविध वैज्ञानिक चर्चाओंसे क्या सम्बन्ध? यह ठीक है कि कभी-कभी हमारे समाजको मैडम क्यूरी, श्रीमती वैब्स, इमा-गोल्डमैन-जैसी विदुषी देवियां भी अलंकृत करती हैं, परन्तु मैं तो एक साधारण स्त्रीका वर्णन कर रहा हूँ। स्त्रीकी मानसिक क्रियाओंका एक और उदाहरण लीजिये :—

"श्रीमती—जी, वह एक भावुक कवि हैं—" मैंने एक बार एक देवीसे रेलमें बात-चीतके दौरानमें कहा—"उसकी भाषा ओजमयी है। वह प्रवीण गायक भी है।"

"आपका अभिप्राय अमुक महाशयसे है? वही जिनकी स्त्री अफीम खाती है?"

"परन्तु—श्रीमतीजी, मैं तो उस कविकी भाषाकी प्रशंसा कर रहा हूँ। मुझे उसकी बीबीसे क्या मतलब?"
"वह स्वयं भी तो पीता है—क्या आपको पता नहीं है?" श्रीमतीजीने उलट कर उत्तर दिया। "अरे हां, उसीने तो अपनी बीबीको यह बुरी लत लगाकर उसका जीवन नष्ट कर दिया।"

"क्या आप अपने रसोइयेकी वेस्ट्री इसलिए नापसन्द करेंगी कि वह किसीकी बीबीके साथ भाग गया?" मैंने झुंझला कर कहा।

"वाह साहब? यह भी कोई तर्क है?

"श्रीमतीजी, आपका भी तो यही तर्क है।"

"नहीं जी, आप कैसी बात बनाते हैं।"

और इन अबलाओंकी पुरुष-हृदयपर शासनकी बातका किसे नहीं पता? जहां किसी अबलाने दिलपर असर डालना शुरू किया, चतुर पुरुष मैदान छोड़ भाग जाता है। अन्यथा हृदय संग्राममें विजय-श्री सदा रमणियोंका ही साथ देती है। *

* सुप्रसिद्ध चीनी दार्शनिक लिन युताङ्गके एक लेखके आधारपर लिखित।

विदूषक-कम्पोजिटर-साहित्यकार—

एक रूसी कलाकारकी बहुरङ्गी जीवनचर्या

श्री शंकरदेव विद्यालङ्कार

"मेरे पिताका नाम था काफयान। टर्कीके गवर्नर जनरलके यहां रहनेवाली एक दासीसे उसका जन्म हुआ था। मैं स्वयं १८९९ में पैदा हुआ, या १८९६ में—इसका मुझे ठीक पता नहीं।

ऊपर लिखित शब्दोंके साथ रूसी कथा-लेखक "इवानफ" अपने "शस्त्र सज्जित गाड़ी"—(Armoured car) नामक क्रान्तिकारी नाटककी प्रस्तावनामें अपनी संक्षिप्त जीवन कथाका प्रारम्भ करता है। यह सारी कहानी करुणा और विनोदसे भरी हुई है।

"गांवकी पाठशालासे भागकर मैं एक सर्कसमें विदूषक बन गया। वहांपर मुझे भरपेट भोजन नहीं मिलता था। कुछ ही समयमें मैं सर्कसके जीवनसे ऊब गया। चचाने मुझे कृषि-विद्या पढ़नेके विद्यालयमें प्रविष्ट कराया। इस विद्यालयकी दो बातोंकी ओर मेरा विशेष आकर्षण था। एक तो विद्यालयके यूनिफार्म (गणवेश) में चमकते हुए पीतलके बटन और दूसरे विद्यार्थियोंकी विलास-पूर्ण और मौजभरी जिन्दगीके विषयमें, गांवमें होनेवाली निन्दा !!

एक वर्ष रहकर वहांसे भी मैं भाग निकला और एक दूकानपर नौकरी कर ली। उसके बाद मैं एक छापेखानेमें रहा। सन् १९१२ से लेकर १९१८ तक मैं कम्पोजिटर रहा। परन्तु गर्मियोंमें तो मैं सर्कसकी कम्पनियोंके साथ घूमता था। मैंने अनेक धन्धे बदले। कुतूहलके कारण नहीं, अपितु तङ्ग आ-आकर मैं देश भरमें भटकता रहा।

मेरा अध्ययन विपद् था। अलेक्जेण्डर डूमासे लेकर हर्बर्ट स्पेन्सर तक मेरे लिए पाठ्यके विषय थे। छोटी-छोटी कहानियोंसे लेकर टालस्टायकी रचनाओंतक मैं सब कुछ बांच गया। परन्तु पुस्तकोंके वाचनका मेरे मनपर विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। मैं वांचता था केवल मानसिक उद्विग्नता मिटानेके लिए। क्योंकि मदिरा और ताड़ी तो मैं पीता ही नहीं था। मेरे शराबी पिताने मेरी मांके प्रति इतने अधिक दुर्व्यवहार किये थे कि जिन्हें देखकर आठ वर्षकी उमरमें ही मैंने शराब और ताड़ी न पीनेका संकल्प कर लिया था। यहां तक कि मैं बीड़ी भी नहीं पीता था। इस नियमका मैंने सन् १९१९ तक पालन किया। मैं स्त्रियोंसे भी डरकर दूर-दूर ही रहता था।

सन् १९१६ में मेरा पहला लेख एक अखबारमें छपा। दूसरा लेख मैंने एक मासिक पत्रिकामें भेजनेका साहस किया। दो सप्ताहके बाद, एक प्रभात मेरे जीवनका सबसे अधिक सुखी प्रभात बन गया। छापेखानेके सीलनवाले कमरेमें, जहांपर मैं कम्पोजिटरका काम करता था, डाकियेने आकर मुझे पुकारा। मेरे हाथमें उसने एक पत्र दिया।

यह पत्र था रूसके महान् साहित्यकार मेक्सिम गोर्कीका। मेरे साथियोंने उसे बांचनेके लिए मुझे चारों ओरसे घेर लिया। सबने वहांपर यह निश्चय पूर्वक मान लिया कि मैं एक महापुरुष हूँ। मेरे मैनेजरका अभिमत भी ऐसा ही था। इस आनन्दप्रद प्रसङ्गपर मौज मनानेके लिए उसने हमको दश रुपये अग्रिम रूपमें दे दिये! शराब पीकर सब लोग मदमस्त हो गये। मैं भी आनन्द विभोर हो गया, परन्तु शराब पिये बिना !

पन्द्रह दिनमें मैंने एकके बाद एक, बीस कहानियां लिख डालीं। उनमेंसे कुछेक मैंने मेक्सिम गोर्कीके पास भेज दीं। उत्तरमें गोर्कीने मुझे लिखा कि अब अधिक लिखनेसे पूर्व अधिक अध्ययन-अनुशीलन करो, अपना वाचन बढ़ाओ।

उसके बाद दो वर्ष तक मैंने एक भी अक्षर नहीं लिखा। इतनी अधिक पुस्तकें पढ़ डाली कि शेष जीवनमें भी शायद नहीं पढ़ सकूंगा।

इसके अनन्तर देशमें आन्तरिक विग्रह जाग उठा। उस समय साहित्यको मैंने भुला दिया और व्याख्यान-बाजीमें पड़ गया। राजनीतिक लेख लिखने लगा। और अन्तमें राष्ट्रीय सैन्यमें भर्ती होकर लड़ाईपर चला गया। लड़ने तो गया था, इस भव्य भावनासे कि मानव जातिका सुख सङ्कटमें पड़ा है। परन्तु कहते हुए लज्जा आती है कि मैं युद्धमेंसे चुपकेसे भाग निकला और जङ्गलमें जा छिपा।

रूसके स्वाधीन होनेके पश्चात् सन् १९२० में गोर्कीने मुझे लेनिनग्रेड तक पहुंचा दिया। पहले-पहल तो भूखके

कारण मैं मरा जाता था। गोर्की तो मास्कोमें था और मैं लेनिनग्रेडमें किसीको पहचानता नहीं था।

गोर्की जब मास्कोमें आया, तो उसने मुझे अपने पास बुलाया। मुझे पेट भरके उसने खिलाया। खाते-खाते मैं शर्मिन्दा हो गया। गोर्कीने मुझे धीर गम्भीर वाणीमें कहा था—"भुक्खड़ खूब खा, कुछ हर्ज नहीं, खूब खा।"

बड़े आदमियोंकी स्नेह-माया और ममतापर मुझे कभी विश्वास नहीं हुआ है, उनके अन्दर मुझे सदा आश्रयदाता पनेकी ही गन्ध आती रही है। परन्तु इस प्रकारकी मेरी अनेक धारणाओंको गोर्कीने छिन्न-भिन्न कर दिया।

मैंने अनेक पुस्तकें लिखी हैं। मुझे अनुभव हो रहा है कि लेखक बननेमें कुछ मजा नहीं। अन्य लोग अधिक अच्छा जीवन बिताते हैं। उनके आनन्द-आमोद अधिक सरल और विपुल होते हैं। तथापि जीवनकी अनेक बातें मुझे आनन्द दे रही हैं और जब मैं अपने मनसे पूछता हूँ कि तुझे क्या दुःख है, तो मुझे कुछ उत्तर नहीं मिलता।

रोमका उत्थान और पतन

श्री विश्वप्रकाश एम० ए०

इटली यूरोपका प्राचीनतम देश है और इसी देशमें यूरोपमें सबसे पूर्व सभ्यताका प्रादुर्भाव हुआ था। इसी लिए रोम शताब्दियों तक ज्ञान-विज्ञान और संस्कृतिका केन्द्र रहा। यह ईसाई-ससांरके कैथोलिक मतावलम्बियोंका धर्म-स्थान भी रहा है। इस कारण भी रोमका बड़ा महत्व है। रोमके पोपका न केवल धार्मिक जगतपर ही प्रभाव रहा है, प्रत्युत उसकी नीति और सिद्धान्तोंसे यूरोपकी राजनीति भी बहुत-कुछ प्रभावित रही है। रोममें पोपके लिए एक अलग नगर बना हुआ है, जिसे वेटिकन कहते हैं। इसका पूरा प्रबन्ध पोपके अधीन है।

रोम-साम्राज्य संसारके महानतम साम्राज्योंमें गिना जाता था और ससांर भरमें उसका सिक्का जमा हुआ था। लेकिन भाग्य-चक्र बदला और उसके साथ रोमका पतन हो गया। उसका वह गौरव विलीन हो गया।

विगत महासमरमें इटली युद्धके आरम्भमें कुछ दिनों तक तटस्थ रहा। वास्तवमें इटली कोई शक्तिशाली राष्ट्र नहीं था। लेकिन उसने तटस्थताका स्वांग इसलिये रचा था कि ऐसा करनेसे वह किसी न किसी पक्षसे अपनी मांगोंको स्वीकार कराकर अपने गौरवकी वृद्धि कर सकेगा। और वास्तवमें यही हुआ भी। इटली और मित्र-राष्ट्रोंके बीच सन्धि हो गयी, जिसके अनुसार इटलीको विजयके बाद कुछ उपनिवेश और प्रदेश दे देनेका निश्चय किया गया। उस समय मुसोलिनी राष्ट्रवादी विचारका था। उसने इटलीमें यह प्रचार किया कि उसे अवश्य युद्धमें शामिल होना चाहिए। इस कारण समाजवादी दलने उसे अपने सगंठनसे बाहर निकाल दिया। सन् १९१४ में मुसोलिनीने पोपलोद इटालिया नामक एक पत्र निकाला। वह सहज ही लड़ाईमें हस्तक्षेप करने वाले दलका नेता बन बैठा। मई १९१५ में इटलीके लड़ाईमें शामिल होनेपर, मुसोलिनी इटालियन सेनामें भर्ती होकर साधारण सैनिक बना।

मुसोलिनीकी सैनिक सेवा

मित्र राष्ट्रोंकी ओरसे उसने युद्धमें भाग लिया। फर्वरी १९१७में युद्धमें बुरी तरह घायल हो जानेसे वह अपने घर वापस आया। और समाचार-पत्रके सञ्चालनमें लग पड़ा।

इटलीकी निराशा और फासिज्म

युद्धके उपरान्त जब शान्ति-सम्मेलन हुआ और विजित देशों व उपनिवेशोंका बटंवारा किया गया, तो विजयकी लूटमें उसे सन्तोषप्रद हिस्सा नहीं मिला। इससे देशमें बाम पक्षीय क्रान्तिवादका उदय हो गया। तब मुसोलिनीने २३ मार्च १९१९को मिलान नगरमें राष्ट्रवादी और और साम्यवाद विरोधी कार्यक्रमको सामने रख कर फासिस्ट पार्टीकी स्थापनाकी आरम्भमें इस पार्टीमें ४० सदस्य थे। लेकिन सन् १९१९के चुनावमें इस पार्टीके उम्मेदवारोंको ४००० वोट मिले। उसनेलिबरल दलके नेताओंके साथ समझौता कर लिया। इस प्रकार चेम्बरमें इस पार्टीके ३८ सदस्य पहुंच गये।

रोमकी ओर

मन्त्रि-मण्डलमें ये लोग शामिल नहीं हुए। इस आन्दोलनका नाम फासिज्म पड़ गया, और सन् १९२२ में स्थिति

अत्यन्त अशान्तिपूर्ण हो गयी। क्रान्तिवादी समाजवादियों की सत्ता प्रबल थी; कारखानोंपर भी उनका ही नियंत्रण था और सरकार कमजोर हो रही थी। ४०२०० फासिस्टोंने, २८ अक्टूबर १९२२ को नेपल्सकी फासिस्ट दल कांग्रेसके बाद रोमकी ओर पग बढ़ाया। मुसोलिनी उसका नेता था। राजधानीमें आकर इन लोगोंने शासन-सत्ता अपने हाथमें लेनेकी मांग पेशकी। प्रधान-मंत्री फाक्ताकी कमजोर सरकार दब गयी और बादशाहने मुसोलिनीको प्रधान-मंत्री नियुक्त कर दिया। मुसोलिनीने जो नयी सरकार बनायी उसमें फासिस्टोंके अतिरिक्त दूसरे दलोंके भी नेता शामिल थे। समाजवादियोंने मुसोलिनीके शासनका विरोध किया; पर वह अधिक देर न टिक सका।
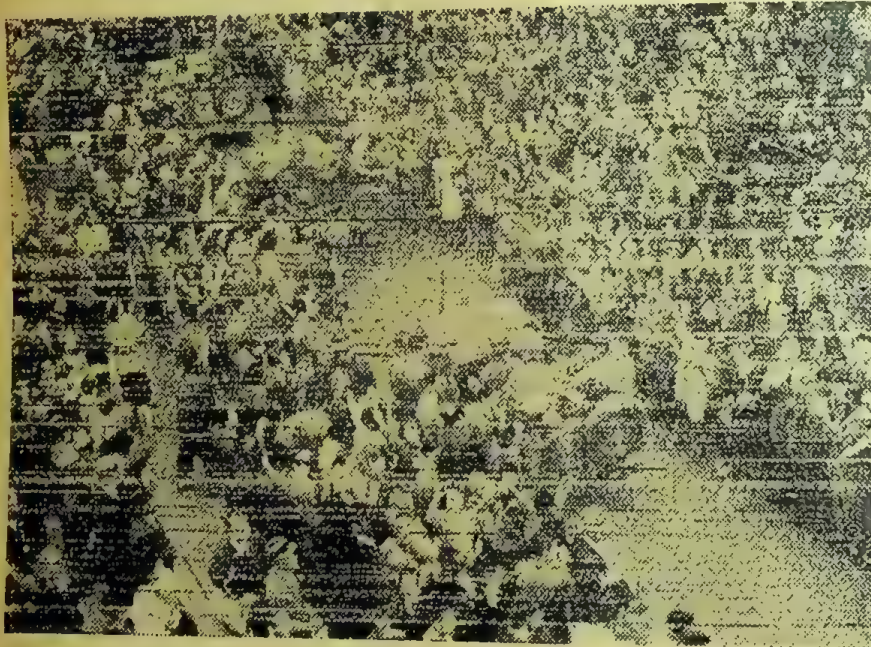
रोम नगरीमें मित्र सैन्य प्रवेशपर हर्षोल्लास

फासिस्टोंकी विजय

सन् १९२४में चुनाव इस ढ़ंगसे लड़ा गया कि फासिस्ट पार्टी बहुमतमें हो गयी और इस प्रकार इटलीमें फासिज्म का आंतक जम गया। १० जून १९२४को उग्र फासिस्टोंने समाजवादी नेता मेटोओरीका वध कर दिया। इस हत्या-कांडसे इटलीमें राजनीतिक संघर्ष उठ खड़ा हुआ। पार्लमेंटका विरोधी दल और समाजवादी,साम्यवादी लिबरल और पादरी सदस्य विरोधमें चेम्बरसे बाहर चले आये। उन्होंने सरकारका बहिष्कार कर दिया।

इटलीका अधिनायक मुसोलिनी

सन १९२५में मुसोलिनीने शासन सत्ता बलपूर्वक अपने हाथमें ले ली और वह इटलीका अधिनायक बन गया। विरोधी दलोंका घोर दमन किया गया; अगले वर्ष उनके नेताओंका वध कर दिया गया। उनमेंसे बहुतेरे विदेश भाग गये। इसके बाद मुसोलिनीने फासिस्ट ढंगपर इटलीका संगठन किया। राष्ट्रीय शिक्षाका प्रसार,देशका पुनर्शस्त्रीकरण और अनेक आर्थिक सुधार किए गये।

जर्मनीमें नाजीवादका उदय

सन् १९३३ में जर्मनीमें नाजीवादका उदय हुआ। नाजीवाद भी जर्मनीके नैराश्यपूर्ण वातावरणकी उपज ठीक उसी प्रकार है, जैसे कि फासिज्म इटलीकी दोनों दलों एवं विचारधाराओंमें बहुत कुछ साम्य था। लेकिन इतना होनेपर भी सन्१९३४में मुसोलिनीकी वैदेशिक नीति जर्मनीके पक्षमें नहीं थी। जब जुलाई १९३४ में हिटलरने आष्ट्रियाको हस्तगत करना चाहा, तब मुसोलिनी अपनी सेनाएं आष्ट्रियाकी सीमापर ले गया था।

साम्राज्य लिप्सा

इस प्रकार देशकी शासन सत्ता हाथमें आनेसे मुसोलिनीकी शक्ति बहुत बढ़ गयी और यूरोपभरमें उसका आतङ्क छागया। उधर एशियामें जापानने चीनपर हमला करके उसके मन्चूरिया प्रान्तको ले लिया और जिनेवामें राष्ट्रसङ्घकी बैठकें होती ही रहीं। ब्रिटेन, फ्रांस और इटली उसके विरुद्ध कुछ भी न कर सके। उससे जर्मनीको भी प्रेरणा मिली, क्योंकी राष्ट्रसङ्घकी कमजोरीका सबको ज्ञान हो चुका था। अतः जर्मनीने भी आष्ट्रियापर कब्जा करनेका प्रयास किया और १२ मार्च १९३८को वह इसमें कामयाब हो गया। इटलीके अधिनायकने भी अपनी सत्ताके विस्तारका स्वप्न देखा और उसने अपने उपनिवेशोंके लिए उत्तरी अफ्रीकाको उपयुक्त प्रदेश समझा।

अतः सन १९३५में इटलीकी आधुनिक सशस्त्र सेनाओंने अफ्रीकाके एकमात्र स्वाधीन देश अबीसीनियापर हमला कर दिया। अबीसीनियाके पास न आधुनिक शस्त्रादि सेना थीन विमान और टैंक ही। अतः उसे बहुत शीघ्र ही पराजय

हो जाना पड़ा। राष्ट्रसंघ ये सब देखता रहा और उसके महान सदस्य राष्ट्र अबीसीनियाके सम्राटको उचित कार्रवाई करनेके लिए आश्वासन देते रहे। पर कुछ भी न हुआ। राष्ट्रसंघकी कमजोरीका दुष्परिणाम यह निकला कि इटली-का पाश्चात्य यूरोपीय लोकतन्त्रोंसे विरोध हो गया और वह फासिस्ट जर्मनके नेतासे जा मिला। इस प्रकार इटली और जर्मनीकी वैदेशिक नीतिमें सामंजस्य स्थापित हो गया। मार्च १९३९में इटलीने अलबानियापर कब्जा कर लिया। मई १९३९में जर्मनी और इटलीके बीच संधि हो गयी। बस इसी समयसे युद्धका श्रीगणेश हो गया। यों अनेक राजनीतिक विचारकोंका यह कहना है कि वास्तवमें वरसाईकी संधि शान्ति संधि नहीं थी, वहतो एक विराम सन्धि थी, क्योंकि उसके बाद भी युद्ध जारी रहा और वह सन् १९३९के सितम्बर मासमें एक भयानक ज्वालामुखीकी भांति प्रकट हो गया।

द्वितीय विश्वयुद्धकी छायामें

यद्यपि जर्मनी और इटलीमें सन्धि हो चुकी थी, तथापि द्वितीय विश्वयुद्धके शुरु हो जानेके ८ मास तक इटली तटस्थताका ढोंग रचता रहा। वास्तवमें वह अपने भाग्यो-दयके लिए सुवर्ण अवसरकी तलाशमें था और जब फ्रान्सपर जर्मन सेनाओंने आक्रमण कर दिया, तब १० जून १९४० को मुसोलिनीकी सेनाओंने भी फ्रान्सके विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दी। मुसोलिनी स्टेलिनकी नकल करने चला था। लेकिन युद्धकी प्रचण्ड अग्निमें कूद पड़नेसे उसे लाभ न हुआ। उसे यह आशा थी कि हिटलर शीघ्र ही सारे यूरोपपर अपना आधिपत्य जमा लेगा और लड़ाई यहीं शान्त हो जायगी। युद्धमें भागीदार बन जानेसे लूटमें हिस्सा मिल जायगा। लेकिन पासा पलट गया। अक्टू-बर १९४० में मुसोलिनीने यूनानपर हमला किया। किन्तु इस युद्धमें यूनानियोंने उसके दांत खट्टे कर दिये। इटलीकी इसमें पराजय ही नहीं हुई, प्रत्युत उसे अपने अपहृत देश अलबानियासे भी हाथ धोने पड़े।

रोमन साम्राज्यका सुख-स्वप्न भङ्ग

समालीलैण्ड, लीबिया, इरीट्रिया, ट्यूनिसिया आदिमें दिसम्बर सन् १९४० से सन् १९४३ के मई मासतक घमासान युद्ध हुआ। पहले इटालियन और ब्रिटिश सेनाओंमें सङ्घर्ष होता रहा। इटालियन बुरी तरह पराजित हुए। उसके बाद जब हिटलरने देखा कि अफ्रीकाके मोर्चेपर इटलीकी पराजयसे भारी हानि होगी, तो उसने रोमेलको रेगिस्ता-नी युद्धके लिए जर्मन सैनिकोंके साथ भेज दिया। पूरे तीन वर्ष तक इस मरुभूमिपर मित्र और शत्रु सेनाओंमें युद्ध जारी रहा। अन्तमें रोमेलकी सेनाओंको पराहत होकर पलायन करना पड़ा। ट्यूनीसिया विजयसे मित्रराष्ट्रोंकी शक्ति और साहस बढ़ गया और मुसोलिनीका रोमन साम्राज्यका मधुर स्वप्न भङ्ग हो गया। कहते हैं कि इस पराजयसे मुसोलिनीको घोर सन्ताप हुआ और उसे मान-सिक दुर्बलता भी सताने लगी थी।

मुसोलिनीका पतन

युद्धके कारण इटलीकी आन्तरिक स्थिति अत्यन्त नाजुक हो गयी थी। इटलीकी नागरिक जनता और

नाजी शरणार्थी मुसोलिनी

सेनाएं दोनों ही इस पक्षमें थीं कि देशमें किसी प्रकार शान्ति स्थापित हो जाय, और इटली विनाश-पथसे बच जाय। देशका प्रबल लोकमत मुसोलिनीकी नीतिसे अस-न्तुष्ट था। इसलिए २४ जुलाई १९४३ को मुसोलिनीने प्रधान-मन्त्रित्व और नेतृत्वसे त्याग-पत्र दे दिया। बेडो-ग्लियोके हाथमें शासन-सत्ता आ गयी। बेडोग्लियो और मित्र राष्ट्रीय सेना-नायक जनरल-आइसेन-होवरमें गुप्त रूपसे सन्धि-चर्चा होने लगी। इसे अत्यन्त गुप्त रखा गया। ट्यूनि-सिया विजयके बाद मित्र सेनाओंने सिसली टापूपर हमला कर दिया। यह टापू इटलीके दक्षिणमें स्थित है। इस टापूपर अगस्त १९४३ के अन्त तक मित्रोंका आधिपत्य जम गया।

३ सितम्बरको मार्शल वेडोग्लियो और जनरल आइसेन-होवरके बीच विराम-सन्धिकी शर्तें तय हुईं। लेकिन उन्हें प्रकट नहीं किया गया और इटलीपर मित्रराष्ट्रोंने हमला कर दिया। लेकिन इटलीमें पहलेसे जर्मन सेनाएं बहुत भारी संख्यामें प्रतिरोधके लिए तैयार थीं। इटालियन नेता वेडोग्लियोसे सन्धि हो गयी। और इटली मित्रराष्ट्रों-की ओरसे जर्मनीसे लड़ने लगा। मित्रोंको यह आशा थी कि तीन महीनेमें ही वे रोमपर चढ़ाई करके उसे अपने अधिकारमें ले लेंगे। परन्तु इसमें उन्हें प्रायः दश मास लग गये। इसका कारण रणभूमिकी भौगोलिक स्थिति, मौसम और जर्मन प्रतिरोध ही था। लेकिन अन्तमें रोमपर मित्रोंने विजय पा ही ली।

रोमका पतन

गत ९ जून १९४४ को मित्रराष्ट्रीय सेनाओंने रोमपर अधिकार कर लिया। जर्मन सेना-नायक कैसरलिङ्गकी सेनाने हिटलरके आदेशानुसार रोमको अरक्षित नगर घोषित कर अपनी सेनाओंको उत्तरमें हटा लिया। मानवताके महान शत्रु जिस हिटलरने रूसके प्रसिद्ध नगर लेनिनग्राड, स्टेलिनग्राड, मास्को, कीव और खारखोवको नष्ट करनेमें किसी सङ्कोच-का अनुभव नहीं किया, जिसने लन्दनपर बम-वर्षा करके अनेक सांस्कृतिक केन्द्रोंको नष्ट करनेमें कोई आशङ्का नहीं की, उसने नाजी सेनाओंको रोम त्याग देनेकी आज्ञा कैसे दे दी? इसे देखकर सामान्य-जन आश्चर्यचकित रह जायेंगे। लेकिन वास्तवमें हिटलर यह जानता है कि अब उसके गढ़-पर आक्रमण शुरू हो गया है—पश्चिमी फ्रांसके तटपर मित्र सेनाएं उतर रही हैं, इसलिए ऐसी स्थितिमें वह रोममें लड़कर कैथोलिक धार्मिक जनताकी आलोचनाका लक्ष्य क्यों बने। यही उसके रोम-त्यागका रहस्य है। लेकिन यह तो निश्चय ही है कि रोमपर अधिकार हो जानेसे मित्रराष्ट्रों-की यूरोपमें स्थिति मजबूत हो गयी है। उन्हें एक बड़ा सामरिक अड्डा मिल गया है।
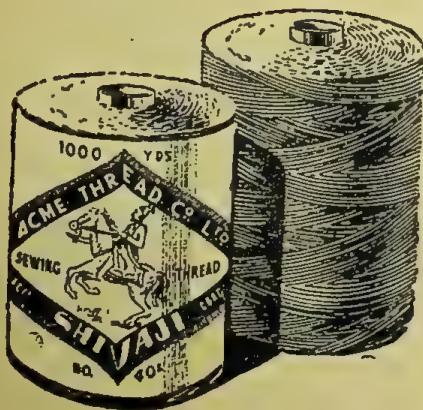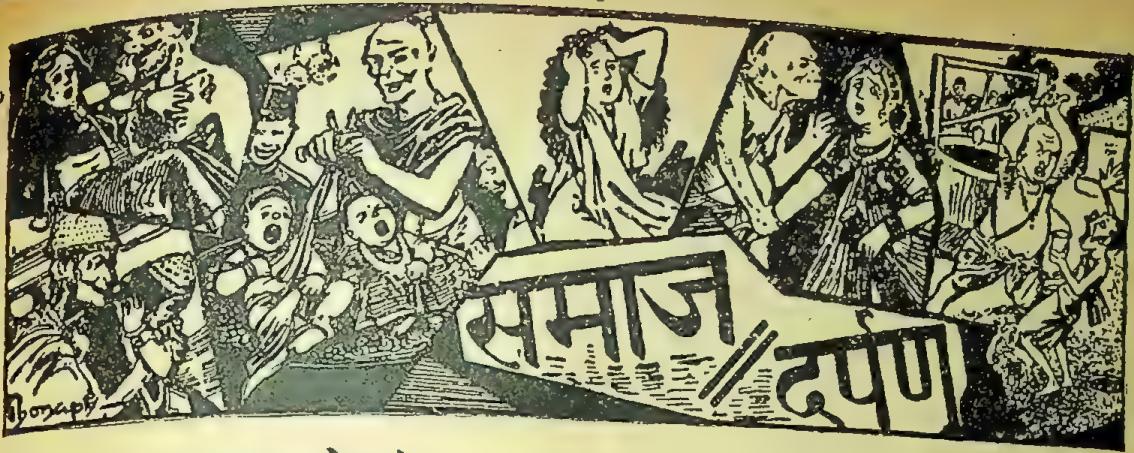
विवाह-विच्छेद वैद्य है!

प्राचीन समयसे आर्य जाति और आर्य संस्कृतिकी यह एक प्रमुख विशिष्टता रही है कि वह सदैव अपने कृत्योंको धार्मिक रूप देकर ही उनका संपादन करती रही। और यही कारण है कि प्राचीन कालका आर्य-जीवन पूर्णतः धार्मिक जीवन था। आर्य जातिके यह प्राचीन संस्कार आज भी आधुनिक हिन्दू-समाजमें मौजूद हैं। यद्यपि आज वेद और स्मृतिका युग नहीं है, आज गीताका युग भी नहीं है तथापि हमारे देशमें विवाह-विधान प्राचीन आर्य नियमोंकेअनुसार ही प्रचलित है। हम यह मानते हैं कि उसके पीछे जनतामें वह धार्मिक भावना और धर्मके प्रति वह अगाध श्रद्धा नहीं रही है, फिर भी जनता हिन्दू विधानके अनुसार ही अपने कर्तव्य-कर्मोंका पालन करनेमें अपना गौरव समझती है। आर्य जातिमें प्राचीन समयमें वयस्कता प्राप्त करनेपर विवाह होते थे और वह भी स्वयंवरकी प्रणालीके अनुसार। यद्यपि विवाह सम्बन्ध माता-पिताकी सम्मतिसे ही होते थे,तथापि उसके लिए दोनोंको पूरी स्वतन्त्रता थी कि वे अपनी इच्छानुसार अपने जीवन-साथीका चुनाव करें। लेकिन फिर भी इस प्रकारकी घटनाएं तो हो ही सकती थीं कि किसीका पति नपुंसक हो अथवा किसीकी पत्नी बंध्या हो। ऐसी स्थितिमें मनुस्मृतिमें यही आज्ञा है कि यदि पति नपुंसक हो, तो पत्नी एक पुत्रकी कामनाके लिए नियोग कर सकती है। नियोगकी प्रणालीका आविष्कार इस एक पातिव्रतकी रक्षाके लिएही किया गया था। लेकिन इस प्रथाको लोक-प्रियता प्राप्त न हो सकी। क्योंकि यह एक ऐसी प्रथा थी, जिसे सभ्य समाजमें कभी भी आदरकी दृष्टिसे नहीं देखा गया।

इसीलिए मनुके बाद जो स्मृतिकार हुए उन्होंने इस नियममें परिवर्तन कर दिये और नपुंसक पतिके परित्यागके लिए आज्ञा भी दे दी। हाल में ही हिन्दू विवाह सम्बन्धी एक बड़ा ही महत्वपूर्ण प्रश्न कलकत्ता हाईकोर्टने तय किया है। मामला इस प्रकार है। श्रीमती रत्नमणि देवी नाम्नी एक स्त्रीने अदालतमें अपने पति नागेन्द्र नारायण-सिंहके विरुद्ध :एक दावा किया था और अदालतसे इस प्रकारका ऐलान चाहा था कि प्रतिवादीके साथ उसका विवाह अवैध और अनियमित घोषित कर दिया जाय। रत्नमणिदेवीने यह भी प्रार्थनाकी कि यह भी घोषणा कर दी जाय कि वह प्रतिवादीकी स्त्री नहीं है। इन दोनोंका विवाह कलकत्तामें २० अप्रेल१९२८को हिन्दू कानूनके अनुसार हुआ था। उस समय रत्नमणिदेवीकी आयु पांच वर्षकी थी। वादीका दावा यह था कि विवाहके समय और उसके बाद भी प्रतिवादी अर्थात् नागेन्द्र नारायण-सिंह शारीरिक दृष्टिसे दाम्पत्य कृत्यका संपादन करनेमें अयोग्य था। इस मुकदमेंमें प्रतिवादी पक्षकी ओरसे कोई उपस्थित नहीं हुआ। लेकिन यह मामला अत्यन्त महत्वपूर्ण था। इसलिए अदालतकी आज्ञासे स्वर्गीय एस० एन० बनर्जीने और उनकी मृत्युके बाद श्री एन०सी०चटर्जीने प्रतिवादी पक्षकी ओरसे बहसकी। इसके सम्बन्धमें बहुत विचार विनिमयके बाद विचारपतिने जो निर्णय दिया है, उसका सारांश यह है कि इस मामलेमें किसी भी पक्षकी ओरसे ऐसा कोई उदाहरण पेश नहीं किया है जिससे यह साबित हो कि पत्नीकी वंध्यता या पतिकी नपुंसकताके आधारपर कोई विवाह अवैध घोषित कर दिया गया हो। इसलिए इस प्रश्नका निर्णय करनेके लिए समस्त हिन्दू स्मृतियोंकी छानबीन करनी पड़ेगी। मनुस्मृति उस विवाह-को अवैध नहीं मानती, जिसमें पत्नी स्वस्थ हो और पति नपुंसक। लेकिन मनुके बाद याज्ञवल्क्य स्मृति,नारद स्मृति कुल्लूभट्ट आदिने यह स्वीकार किया कि नपुंसकताको विवाहके लिए अयोग्य माना जाय। आधुनिक समयमें स्मृति कालीन नियोगकी 'पद्धति तो प्रचलित नहीं है।

अतः ऐसी स्थितिमें उसप स्त्रीके लिए कानून क्या सहायता देता है, जिसका पति विवाहके समय नपुंसक था। न्यायतः ऐसा विवाह अवैध है। विचारपतिने रत्नमणिदेवीके विवाहको पतिकी नपुंसकताके आधारपर अवैध घोषित कर दिया। अप्रेल १९२८में जब वह ९ वर्षकी अबोध बालिका थी, उसका विवाह कर दिया गया। जब जुलाई १९४१में वह १८ सालकी हो गयी, तब उसने अपने पतिकी अयोग्यता प्रकट हो जानेपर तुरत ही अदालतकी शरण ली। अतः विचारपतिने यह भी घोषणा कर दी कि प्रतिवादी वादीका पति नहीं है। यह निर्णय वास्तवमें उचित ही है। और ऐसी दुःखी बहनोंके लिए इससे बहुत कुछ लाभ पहुंचनेकी आशा है।

सार्वजनिक स्वास्थ्य और जननेन्द्रिय रोग

भारतवर्षमें सार्वजनिक स्वास्थ्यकी रक्षाके लिए आज पर्यन्त कोई उचित व्यवस्था नहीं की गयी। संक्रामक रोगोंके निवारणके लिए टीका लगाने अथवा म्युनिस्पल बोर्ड या कारपोरेशनकी ओरसे सड़कों और मुहल्लोंकी सफाईकी व्यवस्था कर देनेसे ही सार्वजनिक स्वास्थ्यकी रक्षा नहीं हो सकती। इसके लिए तो समाजव्यापी आन्दोलनकी आवश्यकता है। जबतक समाजमें सामाजिक और नैतिक बुराइयोंके निवारणके लिए कोई सङ्गठित प्रयास नहीं किया जायगा, तबतक समाजका स्वास्थ्य शारीरिक रोगोंके कारण नष्ट होता रहेगा। हमारे देशमें अन्य देशोंकी भांति-ही वेश्यावृत्तिका पापाचार और नारी-व्यापार बड़े भयङ्कर रूपसे चल रहा है। यही नहीं, समाजमें गुप्त रूपसे व्यभिचार भी दाम्पत्य जीवनके सुख और शान्तिको नष्ट कर रहा है। पति-पत्नीमें सदैव झगड़े खड़े रहते हैं। पति किसी स्त्रीसे गुप्त व्यभिचार करता है, अथवा उसके लिए वेश्यालय तो खुला ही है और स्त्री जब अपने पतिके साथ दाम्पत्य सुखानुभवसे वञ्चित रह जाती है, तो वह भी गुप्त रूपसे अपने पतिके किसी मित्र या परिचितके साथ व्यभिचारमें लीन हो जाती है। इस प्रकार गुप्त व्यभिचार, स्वास्थ्य-नियमोंकी अवहेलना तथा वेश्यागमनके कारण हमारे समाजमें जननेन्द्रिय व्याधियां बड़े भयङ्कर रूपमें प्रचलित हैं। युद्धजनित परिस्थितियोंके कारण तो इन व्याधियोंमें और भी अधिक वृद्धि हो गयी है। बड़े-बड़े नगरोंमें न केवल वेश्यालयोंकी ही वृद्धि हुई है, प्रत्युत व्यभिचार भी बढ़ गया है। इसलिए स्वभावतः यौन व्याधियां भी बढ़ती जा रही हैं। हमारे समाजमें नपुंसकता, वंध्यता, उपदंश, आतशक आदि भयङ्कर रोगोंको गुप्त-रोग माना जाता है और इन रोगोंके रोगी बड़े यत्नसे उन्हें छिपाये रखते हैं और अखबारी विज्ञापनोंका आश्रय लेकर अपना इलाज करते हैं। लेकिन इससे उन्हें लाभके स्थानमें हानि ही अधिक होती है। क्योंकि अधिकांश औषधियां जो अचूक और रामबाण घोषित की जाती हैं, वे व्यर्थ ही सिद्ध होती हैं। इसीलिए बङ्गाल-सरकारकी ओरसे कलकत्तामें पुरुष-स्त्रियोंकी जननेन्द्रिय व्याधियोंके उपचारके लिए अस्पतालोंमें विशेष रूपसे प्रबन्ध किया गया है। इन अस्पतालोंमें वैज्ञानिक विधिसे इन रोगोंकी चिकित्साकी निःशुल्क व्यवस्था की गयी है। इससे जनता लाभ उठा रही है और इन रोगोंसे पीड़ित स्त्री-पुरुषोंको अवश्य ही उपचार करानेकी इस सुविधासे लाभ उठाना चाहिये। बङ्गाल सरकारके यौन व्याधि विशेषज्ञ डा० सौरिन घोषका यह कथन है कि यौन व्याधियोंके नियन्त्रणकी समस्या आंशिक रूपमें चिकित्सासे सम्बन्ध रखती है। पर वास्तवमें यह तो सामाजिक और नैतिक समस्या ही है। यौन व्याधियां सामाजिक व्याधियां हैं और इनकी उत्पत्ति अस्वास्थ्यकर सामाजिक और दूषित आर्थिक दशाओंमें होती है। अतः यौन व्याधियोंके निवारणके लिए केवल चिकित्सापर ही निर्भर न रहना चाहिये। सरकारने इन रोगोंकी चिकित्साका जो मुफ्त प्रबन्ध किया है, उसका यह मतलब नहीं, वह इन व्याधियोंको उत्तेजन देना चाहती है। आपकी यह सम्मति है कि इन व्याधियोंके समूल विनाशके लिए वेश्याओंके अड्डोंको हटा दिया जाय और उन्हें समाजमें मिलाकर गृहस्थ-जीवन बितानेके लिए प्रोत्साहन दिया जाय, एवं इसकी व्यवस्था भी की जाय। तभी समाज इन भयङ्कर रोगोंसे मुक्ति पासकेगा। निःसन्देह ऐसा किये बिना हम अपने सार्वजनिक स्वास्थ्यकी रक्षा नहीं कर सकते।
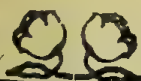
आशा और नैराश्यके बीच—

जब गत ६ मईको महात्मा गांधीको नजरबन्दीसे मुक्ति मिल गयी, तो इससे देशकी जनतामें सन्तोषकी एक लहर परिव्याप्त हो गयी। यद्यपि गांधीजी की यह मुक्ति उनके दुर्बल स्वास्थ्यके कारण ही हुई थी, तथापि लोगोंमें यह विचार स्थिर हो गया कि अब शीघ्र ही देशकी राजनीतिक उलझनका अन्त हो जायगा और इस मुक्तिका उपयोग इस गत्यावरोधका अन्त करनेके लिए किया जा सकेगा। ब्रिटिश पार्लमेण्टमें जब भारतमन्त्रीसे यह प्रश्न पूछा गया कि क्या सरकार भारतके नजरबन्द नेताओंको भी मुक्त करेगी, तो इसका उत्तर मिला 'नहीं।' इससे जहां निराशा हुई, वहां आशावादी वर्गके लोगोंकी आशा पूर्ववत् बनी रही। उनकी यह धारणा है कि जब लार्ड वावेल भारत-मन्त्रीके विरोध करनेपर भी गांधीजी की मुक्तिके प्रश्नको स्वयं हाथमें लेकर उसे हल कर सके हैं, तब क्या वह गांधीजीसे विचार-विनिमय कर देशकी स्थितिको सुधारनेका प्रयास न करेंगे। गांधीजीकी रिहाईके समय यह समाचार भी सुननेमें आया था कि यद्यपि भारत-मन्त्री श्री एमरीने गांधीजीकी रिहाईका विरोध किया, तो भी वायसराय लार्ड वावेलका प्रस्ताव ब्रिटिश-मन्त्रिमण्डलने स्वीकार कर लिया था। अभी तक न भारत सरकारने गतिरोधके सम्बन्धमें अपनी नीतिमें किसी परिवर्तन की घोषणा की है और न गांधीजीने ही कोई वक्तव्य प्रकाशित किया है। हां गांधीजी और भारतके वायसराय (लार्ड लिनलिथगो तथा लार्ड वावेल) के बीच जो पत्र-व्यवहार हुआ था, वह सरकारने पुस्तक रूपमें प्रकाशित कर दिया है। ३०–३९ दिन जुहू (बम्बई) में स्वास्थ्य-लाभके लिए विश्राम करनेके बाद वह गत १९ जूनको पूनाके लिए प्रस्थान कर गये और वहां वह डा० मेहताकी प्राकृतिक चिकित्सा-शालामें विश्राम कर रहे हैं। जुहूसे प्रस्थान करते समय डा० विधानचन्द्र रायने उनकी परीक्षा की और निश्चित रूपसे उनको पहलेकी अपेक्षा स्वस्थ पाया। अभी उन्हें पूर्णतः स्वास्थ्य लाभ करनेमें दो-तीन मास लग जायंगे। इस अवधिका गांधीजी पूर्णतः उपयोग कर रहे हैं। डा० जयकर, सर तेजबहादुर सप्रू, श्रद्धेय पं० मदन मोहन मालवीय, माननीय श्री. निवास शास्त्री आदि देशके राजनीतिज्ञोंसे उनका पत्र-व्यवहार जारी है और डा० जयकर, श्री के० एम० मुंशी, श्री भूलाभाई देसाई, श्री पूर्णचन्द्र जोशी, श्री एम० आर० मसानी आदि नेताओंसे वे विचार-विनिमय कर चुके हैं। डा० जयकरने राजनीतिक गतिरोधका अन्त करनेके लिए सुझाव भी पेश किये हैं गत फरवरीमें गांधीजीके अनशनके बाद उनका सरकारसे जो पत्र-व्यवहार हुआ है, उसकी कुछ प्रतियां नेताओंको दी गयी हैं। इस प्रकार गांधीजीका राज नेताओंसे सम्पर्क एवं राजनीतिक चर्चासे यह तो स्पष्ट ही है कि गांधीजी स्थितिका पूर्ण अध्ययन करनेके बाद अपना वक्तव्य प्रकाशित करेंगे। उस वक्तव्यके बाद ही हम यह जान सकेंगे कि सरकारका क्या दृष्टिकोण होगा। अतः इस समय हम आशा और निराशाके बीच ऐसी स्थितिमें हैं कि जिसका अन्त हुए बिना हमें अपने निर्दिष्ट पथपर अग्रसर होनेमें कठिनाई अनुभव होगी।

पराधीन राष्ट्रोंकी स्वाधीनता—

यद्यपि इस युद्धके आरम्भसे ही ब्रिटेन और अमेरिकाके राजनीतिज्ञोंकी ओरसे यह घोषणा की जा रही है कि यह युद्ध संसारमें स्वाधीनता और लोकतन्त्रके लिए लड़ा जा रहा है। लेकिन आजतक इनकी ओरसे एशिया और अफ्रीकाके पराधीन राष्ट्रोंके सम्बन्धमें नीतिकी कोई घोषणा नहीं की गयी है। गत जूनके आरम्भमें अमेरिकाके स्टेट-मन्त्री कार्डेल हलने एक प्रेस-कान्फ्रेंसके समक्ष अपने वक्तव्यमें यह स्पष्ट शब्दोंमें कहा कि—

"संयुक्त राज्य अमेरिकाकी १९० वर्षोंसे प्रचलित परम्परागत नीतिके अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय सङ्घका आधार छोड़े

व बड़े राष्ट्रोंके बीच समानताका सिद्धान्त होगा।" लेकिन १० मिनट तक वह पराधीन राष्ट्रोंके सम्बन्धमें अपने विचार प्रकट करते रहे। आपने अपने वक्तव्यमें आगे कहा—"यह हमारी शुरूसे ही परम्परा रही है कि हम हर देश और हर स्थानमें प्रत्येक व्यक्तिकी स्वतन्त्रताके रक्षक रहे हैं।" संवाददाताने इसी परसे यह अनुमान लगा लिया कि कूट-नीतिज्ञोंने कार्डेल हलके इस वक्तव्यको बड़ा महत्व दिया है। लेकिन हम नहीं समझते कि इस वक्तव्यमें पराधीन राष्ट्रोंके लिए क्या नया सन्देश है। अमेरिका स्वातन्त्र्य प्रिय है। लेकिन अमेरिकाका शुरूसे अबतकका इतिहास साम्राज्यवाद—आर्थिक साम्राज्यवादका इतिहास रहा है। यह ठीक है कि उसने यूरोपके राष्ट्रोंकी भांति एशियाके किसी भागपर अपना आधिपत्य—साम्राज्य कायम नहीं किया, लेकिन वह दक्षिणी अमेरिका और प्रशान्तको अपने प्रभाव-क्षेत्रकी सीमा मान कर ही उनके साथ अपने सम्बन्ध स्थिर किये रहा है। भारतकी स्वाधीनताकी मांगको लेकर युद्धके आरम्भसे ही महात्मा गांधी मित्र-राष्ट्रों और खास तौरसे राष्ट्रपति रूजवेल्ट, स्टेलिन आदिसे अपील कर रहे हैं। लेकिन उनकी इस अपीलका आजतक अमेरिका या रूसने कोई उत्तर नहीं दिया। सिद्धान्तोंकी घोषणा एक बात है और उनका निष्पक्ष भावसे प्रयोग दूसरी बात है। अमेरिकाको अपनी स्वाधीनताका गर्व है। वह उसका मूल्य समझता है। पर वह स्वाधीनताकी हर देश और हर स्थानमें रक्षा करता रहा है, यह हम उस समय तक कैसे स्वीकार कर लें, जबतक कि भारत अमेरिकाके मित्र ब्रिटेनके साम्राज्यकी छत्रछायामें है।

विज्ञानाचार्य रायका निधन—

गत १६ जूनको सन्ध्याको ६॥ बजे भारतके महान् विज्ञानाचार्य सर प्रफुल्लचन्द्र रायका कलकत्तामें अपने निवास-स्थानपर स्वर्गवास हो गया। निधनके समय आपकी अवस्था ८२ वर्षकी थी। कई सप्ताहोंसे आप ज्वरसे पीड़ित थे। लेकिन कुछ दिनोंसे ज्वर निमोनियाके रूपमें परिवर्तित हो गया था। इससे उनकी अवस्था कई दिनोंसे बड़ी चिन्ताजनक हो गयी थी। आचार्य रायने अपने जीवनका अधिकांश समय कलकत्ता विश्वविद्यालयके रसायन अन्वेषण विभागमें ही बिताया। उन्होंने रसायनके सम्बन्धमें कई ग्रन्थ भी लिखे हैं। यही नहीं, वह समाज-सुधार, शिक्षा और राष्ट्रीय प्रवृत्तियोंमें भी अग्रसर भाग लेते थे। भारतमें देशी औषधोंके निर्माणके लिए आपने बङ्गाल केमिकल एण्ड फारमूटीकल कम्पनीकी स्थापना की। आपके निधनसे भारतका एक महान वैज्ञानिक ही नहीं प्रत्युत एक महान समाज-सुधारक, शिक्षाविद् और दानी उठ गया। हमें आपके परिवारके साथ पूर्ण सहानुभूति है। ईश्वर आपकी दिवंगत आत्माको सद्गति प्रदान करें।

युद्धकी प्रगति—

गत जूनमें युद्धकी प्रगतिमें कई उल्लेखनीय घटनाएं घटी हैं, जिनका उसके भविष्यपर गहरा प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता। गत ५ जूनको नाज़ी सेनाओंने रोमका परित्याग कर दिया, और वे उत्तरकी ओर प्रयाण कर गयीं। अतः मित्र सेनाएं इटलीकी राजधानी रोममें प्रविष्ट हो गयीं। इस प्रकार आठ—नौ मासके सङ्घर्षके बाद आखिर रोमपर मित्रोंका कब्जा हो ही गया। रोमपर मित्रोंका अधिकार सामरिक दृष्टिसे बड़ा ही महत्वपूर्ण है। इटलीमें विजयके साथ ही मित्रोंने यूरोपमें द्वितीय मोर्चेके लिए फ्रांसको चुना। और गत ६ जूनको फ्रांसपर मित्र सेनाएं पैराशूटोंसे उतारी गयीं और तीन—चार दिनमें उन्होंने काफी लम्बे प्रदेशपर अपना आक्रमणांचल कायम कर लिया। इस दिशामें मित्र बराबर आगे बढ़ रहे हैं। चीन, बर्मा, आसाम आदिके मोर्चोंपर भी मित्रोंकी स्थिति में अब परिवर्तन हो रहा है और जापानी सेनाएं परास्त होती जा रही हैं। इस प्रकार मित्रराष्ट्रोंकी प्रगति युद्धका शीघ्रसे शीघ्र अन्त करनेकी ओर है। लेकिन फिर भी यह भविष्यवाणी करना सम्भव नहीं कि युद्ध साल-दो-सालमें समाप्त हो जाय। हां, यदि कोई चमत्कारिक घटना घट जाये तो सम्भव है, वह कभी भी समाप्त हो सकता है। फिर भी यह तो निश्चयपूर्वक कहा ही जा सकता है कि इस समय मित्रोंकी जैसी स्थिति है, वह सन् १९४२ अथवा सन् १९४३ की अपेक्षा कहीं अधिक सन्तोषप्रद है। रूस भी जर्मनीपर भयानक आक्रमण करनेके लिए भारी तैयारी कर रहा है।

———

नवलकिशोर सिंह द्वारा 'विश्वमित्र' प्रेस, १४।१ ए, शम्भू चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्तामें मुद्रित और प्रकाशित।
तथा रामनारायण यादवेन्दु बी० ए० एल-एल० बी० द्वारा सम्पादित।

केश शृंगार के लिये सर्वोत्तम

'वाथगेट'का

सुगंधित

कॅस्टर ऑयल

नक्कालों से सावघान
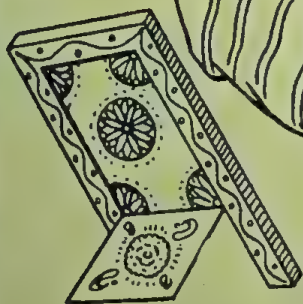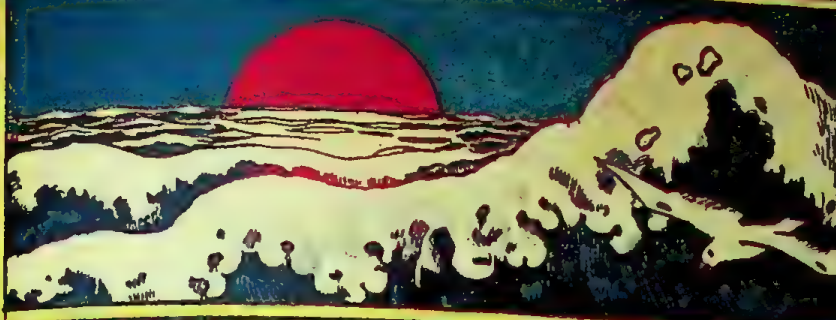
वार्षिक
६)
विश्वमित्र
मूल्य
॥)
विश्वमित्र कार्यालय
कलकत्ता

DELICIOUS
Lily
BISCUITS
MARIE
DIGESTIVE
SCHOOL
NICE
LILY'S CREAM CRACKERS
THE LILY BISCUIT Co.
CALCUTTA

नवम्बर १९४४ मार्गशीर्ष २००१

मनोभाव

चौपदे

है नहीं वह उड़ान अच्छी जो।
गत बनाती रहे किसी तन की।
हो भले ही सतोगुणी सितता।
पर मलिनता गयी नहीं मन की ॥ १ ॥

है न वह हिंस्र किन्तु नर छाती।
बोटियां नोचते नहीं छिलती।
मुक्त पथ है मराल माला का।
क्यों न मुक्तावली उसे मिलती ॥ २ ॥

हम गंवाते रहें न पत पानी।
पोत को ही समझ न लें मोती।
क्यों न हो नीर धीर ज्ञान हमें।
मति बुरे बीज क्यों रहे बोती ॥ ३ ॥

रंग लाती तरंग है जिसकी।
रख सका रस जिसे अतीव सरस।
केलि रत हंस है जहां रहता।
मूढ़ मानस बना न वह मानस ॥ ४ ॥

गीत गाते सदा सुगतिका हैं।
पर कुटिल गति पसन्द है आती।
हैं प्रशंसा मराल की करते।
पर कहां है मरालता भाती ॥ ५ ॥

—श्री हरिऔध

सङ्घर्षका बीज रोपा जा रहा है

श्री देवदत्त मिश्र

युद्ध अभी समाप्त नहीं हुआ। निकट भविष्यमें उसके समाप्त होनेके लक्षण भी नहीं दिखायी देते। किन्तु युद्ध स्थितिमें परिवर्तन अवश्य हो गया है। यह परिवर्तन स्पष्टतः मित्र कहे जाने वाले राष्ट्रोंके अनुकूल है। जो शक्तियां एक दिन जीत रही थीं, आज वे हार रही हैं। जो पहले हार रही थीं, आज वे जीत रही हैं। इस परिवर्तनके आधार पर ही यह समझा जाता है कि युद्ध, अधिकसे अधिक दो वर्षसे अधिक दिन तक न चल सकेगा। इसी परिवर्तनको दृष्टिगत रख कर मित्रराष्ट्र युद्धोत्तर कालीन समस्याओंपर गम्भीरतापूर्वक परस्पर विचार विनिमय करने और एक निश्चित निर्णयपर पहुंचनेके लिये प्रयत्नशील देखे जा रहे हैं। व्यवसाय-वाणिज्य, मुद्रा और बैंक, स्वास्थ्य और शिक्षा, रहन-सहनके स्टैण्डर्डको समुन्नत करने जैसे विभिन्न विषयोंपर विचार करनेके लिये कितने ही अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हो चुके हैं। इन सब सम्मेलनोंकी कार्यवाहीको वास्तविकताका रूप और स्थायित्व देनेके लिये गत मास अमेरिकाके डम्बर्टन ओक्स नामक स्थानमें एक विश्व-शान्ति-रक्षा सम्मेलन भी हुआ था। इस सम्मेलनमें इस बातपर विचार हुआ कि विश्वमें शान्तिको स्थायी और सुरक्षित रखनेके लिये तथा शान्ति भङ्ग करनेवाले अथवा शान्ति भङ्गका खतरा उपस्थित करने वाले राष्ट्रको, यदि आवश्यकता हो तो बल प्रयोग द्वारा भी, उचित शिक्षा देनेके लिए एक विश्व-सङ्गठन कायम करनेकी नितान्त आवश्यकता है। उक्त सम्मेलनने इस प्रश्नपर जो रिपोर्ट उपस्थित की है उसमें निम्नलिखित बातोंकी सिफारिश की गयी है :

एक ऐसा अन्तर्राष्ट्रीय सङ्गठन कायम किया जाये जो अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति स्थापना और संरक्षणके कार्यको इस भांति सञ्चालित करे कि शस्त्रीकरणके लिये कमसे कम जनशक्ति और आर्थिक साधनोंकी आवश्यकता पड़े। इस कार्यका उत्तरदायित्व, डम्बर्टन ओक्स कानफरेंसके निश्चयानुसार, मुख्यतः संयुक्तराज्य अमेरिका, ब्रिटेन, सोवियट रूस, चीन और कालान्तरमें फ्रांस पर रहेगा। अर्थात् विश्व-शान्तिकी रक्षाका भार एवं शान्ति भङ्ग-होनेकी स्थितिमें अपराधीको दण्ड देनेका काम इनके ही हाथमें रहेगा। यह कार्य करनेवाली संस्थाका नाम होगा यूनाइटेड नेशन्स लीग (संयुक्त-राष्ट्र-सङ्घ) और उक्त पांचों राष्ट्र इस सङ्घके स्थायी सदस्य होंगे।

प्रस्तावित योजनाके अनुसार सङ्घका कार्य चार मुख्य संस्थाओंमें बंटा रहेगा। १—सिक्यूरिटी कौंसिल, जो संसारकी सम्पूर्ण सैनिक शक्तिपर नियन्त्रण रखेगी। २—जेनरल असेम्बली, सभी शान्ति-कामी राष्ट्र इसके सदस्य होंगे। ३—अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय और ४—सेक्रेटेरियट। उपस्थित झगड़ों और सङ्घर्षोंको मिटानेकी प्रस्तावित योजना इस प्रकार है :—प्रथम, झगड़नेवाले राज्य स्वयं वार्तालाप, मध्यस्थता अथवा अन्य शान्तिप्रद ढङ्गोंसे झगड़ा मिटानेका प्रयत्न करें। यदि प्रयत्न सफल न हो और झगड़ा जारी रहे तो सिक्यूरिटी कौंसिल उस मामलेको अपने हाथमें ले और यदि उचित समझे तो झगड़ेको अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालयके सामने ले जाये अन्यथा वह स्वयं निर्णय करे कि किन अहिंसात्मक ढङ्गोंसे झगड़ेको निपटाया जाये। निर्णय न माननेवाले राष्ट्रपर कूटनीतिक और आर्थिक दबाव डाला जाये, उसे रेल, समुद्र, गगन, पोस्टल, टेलिग्राफिक, रेडियो एवं सम्पर्कके अन्य साधनोंसे वञ्चित किया जाये और उससे तमाम कूटनीतिक तथा आर्थिक सम्बन्ध तोड़ लिये जायें। सिक्यूरिटी कौंसिल जिस कार्यवाहीकी सिफारिश करे उसे जेनरल असेम्बली कार्यमें परिणत करे। यदि इन उपायोंसे काम न चले तो अन्तमें सिक्यूरिटी कौंसिल सङ्गठनके सदस्योंकी सैनिक शक्तिसे—जल, स्थल और गगन द्वारा,—काम ले। इस कार्यके लिये सङ्गठनके सब सदस्य सिक्यूरिटी कौंसिलके आह्वान पर अथवा आपसी किसी विशेष स्वीकृतिके अनुसार अपनी सैनिक शक्ति, सुविधाएं एवं सहायता सिक्यूरिटी कौंसिलको, शान्ति रक्षार्थ, प्रदान करें। आपसकी स्वीकृति अथवा समझौते द्वारा यह स्थिर हो जाया करे कि किस संख्या और परिमाणमें किसको कितनी सैन्य, और किस ढङ्गकी सैनिक शक्ति, सुविधाएं और सहायता दी जानी चाहिये। आवश्यकता पड़ने पर आनन-फानन सामरिक उपायोंसे काम ले सकनेकी व्यवस्थाको सुविधाप्रद बनानेकी दृष्टिसे सदस्योंको सब समय प्राप्त हो सकने

लायक राष्ट्रीय शक्ति तैयार रखनी चाहिये ताकि अनावश्यक विलम्ब हुए बिना ही अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति अपनी कार्यवाही कर सके। इस कार्यके लिये सदस्योंको किस परिमाणमें और कितनी शक्ति सब समय तैयार रखनी चाहिये, यह निश्चय सिक्यूरिटी कौंसिल करेगी।

यह बात स्पष्ट रूपसे खुलासा कर दी गयी है कि उक्त प्रस्तावित उपाय किसी राष्ट्रके घरेलू झगड़ेको शान्तिप्रद ढङ्गसे मिटानेके काममें नहीं लाये जायेंगे। उक्त रिपोर्टकी सिफारिशके अनुसार एक सैनिक स्टाफ कमेटी होगी। इसका काम होगा शान्ति रक्षाके लिये तमाम सामरिक आवश्यकताकी बातोंपर सिक्यूरिटी कौंसिलको परामर्श देना। उदाहरणार्थ, शस्त्रीकरणको किस तरह नियन्त्रित किया जाये और निरस्त्रीकरण कैसे सम्भव हो सकता है, आदि बातोंपर यह कमेटी सिक्यूरिटी कौंसिलको सलाह

संसारके भावी भाग्य विधाता

स्टालिन

चर्चिल
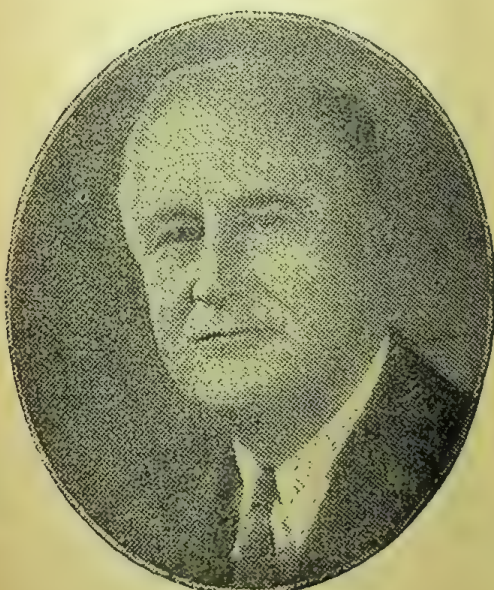
रूजवेल्ट

चांग कैशेक

देगी। इस कमेटीमें संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन, सोवियट रूस, फ्रांस और चीनके चीफ आफ स्टाफ अथवा उनके प्रतिनिधि रहेंगे। शान्ति रक्षाके लिये काममें लायी जाने वाली प्रादेशिक व्यवस्थाओंपर किसी तरहकी आपत्ति नहीं की जायेगी, यदि उनमें सङ्घके सिद्धान्तोंके प्रतिकूल कोई बात नहीं है। यह भी कहा गया है कि सिक्यूरिटी कौंसिल जब तक अपना काम आरम्भ न करेगी तब तक ब्रिटेन, अमेरिका, रूस, और चीन शान्तिरक्षाके लिये सम्मिलित कार्यवाही करनेके प्रश्नपर आपसमें विचार परामर्श करेंगे।

जेनरल एसेम्बली

जेनरल एसेम्बलीमें सङ्गठनके सभी सदस्य रहेंगे। रिपोर्टमें कहा गया है कि शान्ति रक्षार्थ सहयोगके सिद्धान्तोंपर विचार करनेका इसे अधिकार होगा। इन सिद्धान्तोंमें शस्त्रीकरण और निःशस्त्रीकरण भी शामिल रहेंगे। सदस्योंको इस सिद्धान्तका ध्यान रखकर कार्य करना चाहिये कि सङ्गठन सभी शान्ति-कामी राष्ट्रोंकी सार्वभौम समानताके आधारपर स्थित है। यदि किसी प्रश्नपर किसी तरहकी कार्यवाही आवश्यक समझी जाये तो उसे सिक्यूरिटी कौंसिलमें विचारार्थ उपस्थित किया जायेगा। सिक्यूरिटी कौंसिलके अस्थायी सदस्योंका चुनाव जेनरल एसेम्बली करेगी। यह सुझाव भी दिया गया है कि प्रथम निर्वाचनमें तीन राष्ट्र एक वर्षके लिये और तीन राष्ट्र दो वर्ष के लिये चुने जायं। जेनरल एसेम्बलीमें महत्वपूर्ण निर्णयोंके लिये दो तिहाई बहुमतका होना लाजिमी है। अन्य, साधारण, निर्णय सिर्फ बहुमतसे होंगे। जेनरल एसेम्बलीका अधिवेशन सालमें एक बार नियमित रूपसे होना चाहिये। सिक्यूरिटी कौंसिलकी वोटिंगका प्रश्न अबतक विचाराधीन है। सिक्यूरिटी कौंसिलका कार्य निरन्तर होते रहना चाहिये और प्रत्येक राष्ट्र-सदस्यका प्रतिनिधि स्थायीरूपसे सदर मुकाममें रहेगा।

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालयकी लिखित व्यवस्था (स्टेच्यूट) या तो स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालयकी संशोधित व्यवस्था हो या वर्तमान व्यवस्थाके आधारपर एक नयी व्यवस्था (स्टेच्यूट) बनायी जानी चाहिये। सेक्रेटरी जेनरल प्रधान कार्यकारी अध्यक्ष होगा और उसे अधिकार होगा कि जिस किसी मामलेको वह अन्तर्राष्ट्रीय शान्तिमें खलल डालने वाला समझे उसकी तरफ वह सिक्यूरिटी कौंसिलका ध्यान आकर्षित करे।

यह बताया गया है कि अन्य कितने ही प्रश्न अब तक विचाराधीन हैं और ब्रिटेन, रूस, अमेरिका एवं चीन इस बातपर सम्मत हैं कि योजनाका अध्ययन करनेके बाद जितना शीघ्र सम्भव होगा हम सम्पूर्ण प्रस्ताव तैयार करेंगे। पूर्ण सम्मिलित राष्ट्र-सङ्घमें, तब, उन प्रस्तावोंके आधारपर विचार होगा।

यह है रूप-रेखा जो डमबर्टन ओक्स कानफरेंसने विश्व-शान्ति-रक्षाके लिये एक अन्तर्राष्ट्रीय सङ्गठन कायम करनेके सम्बन्धमें तैयार की है। इस रूप-रेखाको देखनेसे सहसा गत महासमरके बाद सङ्गठित राष्ट्रसङ्घ (League of Nations) का स्वरूप सामने आ जाता है। गत महासमरके बाद अपना अपना अधिकार और प्रभुत्व स्थापित करनेकी भावना राष्ट्रसङ्घके नेता स्थानीय सदस्योंमें इतनी बलवती और वेगवती हो उठी थी कि उसीके परिणाम-स्वरूप यूरोपमें फासिज्म और नाजीवाद दोनोंने धीरे-धीरे इतना प्रचण्ड रूप धारण किया कि आज सारे संसारमें विनाशका ताण्डव हो रहा है। प्रस्तावित अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति-रक्षा सङ्घकी रूप-रेखा भी उसी अधिकार-वादके आधारपर खींची गयी है। संसारकी शान्तिके स्वयम्भू ठेकेदार—ब्रिटेन, अमेरिका, रूस और चीन,—अपने निकटस्थ और स्वार्थके क्षेत्रोंको आपसमें बांट लेना चाहते हैं। इस तरह संसारको 'प्रभाव क्षेत्रों' में विभक्त करनेका मतलब यह होगा कि अधिकारवादकी भावना मजबूत होगी और जब यह भावना एक बार मजबूत हो जाती है तो उसे सुरक्षित रखनेके लिये नीति-अनीति, न्याय-अन्यायकी परवाह न करके एक दूसरेके साथ मिलकर एवं अलग-अलग, एक दूसरेके खिलाफ, भीतर ही भीतर दांव-पेंच शुरू हो जाते हैं। अतएव डमबर्टन ओक्स कानफरेंसने जो रास्ता बताया है वह शान्तिका नहीं अशान्तिका मार्ग है।

जिन चार अथवा पांच राष्ट्रोंको विश्व-शान्तिका पहरेदार बनाया गया है अथवा जो स्वयं बन बैठे हैं, दर असल उनको संसारका सर्वेसर्वा बना दिया गया है। उनको अनियंत्रित अधिकार दे दिये गये हैं। उनपर किसी तरहका अंकुश नहीं रखा गया। छोटे-छोटे राष्ट्रोंकी इच्छाओं और भावनाओंसे मनमाने ढङ्गसे खेलने और उनको कुचलनेसे उन्हें कौन रोकेगा? न्याय और नीतिका अंकुश या रोक उसके लिए है जो अहंभाव और स्वार्थसे ऊपर उठ गया है। किन्तु

इन चारों ही महान् राष्ट्रोंमें अभी तक ऐसे कोई लक्षण नहीं दिखायी देते, जिनसे यह समझा जाये कि ये न्याय और नीतिको सर्वोपरि स्थान देंगे।

इसके विपरीत देखा जाता है कि अधिकार और शक्तिको प्राधान्य दिया गया है और गत १३० वर्षोंका इतिहास इस बातका साक्षी है कि जब जब महान् राष्ट्रोंकी शक्तिको प्रथम और प्रमुख स्थान दिया गया है और जब-जब उस अधिकार और शक्तिको शान्तिके एक केन्द्रीय स्तम्भमें परिणत होते देखा गया है तब तब रक्तकी गङ्गा बह चली है। संसारने "महाशक्तियों" के वास्तविकतावादी सिद्धान्तको बराबर विनाशका यथार्थ रूप धारण करते देखा है।

अतएव 'महाशक्तियों' के नाम पर भूलना दूसरे विश्व-सङ्घर्षको निमन्त्रण देना है। यह आदर्श 'महाशक्ति' माने जाने वाले राष्ट्रोंके स्वार्थ साधनका सदा सहारा बना है।

मित्र कहे जानेवाले राष्ट्र शान्तिकी खोजमें जिस सहाराको संसारके सामने रखते हैं, वह 'विश्व-संघ' की सामरिक शक्ति है। इस संघका नियंत्रण ब्रिटेन, अमेरिका, रूस, चीन और फ्रांसके मातहत रहेगा। ये पांच राष्ट्र संसारके शासक होंगे। संसारमें पहले पांच राष्ट्रोंकी धाक रहेगी। इन पांचोंके स्वार्थके खिलाफ यदि अन्य कोई राष्ट्र अपने स्वार्थके लिये सर उठायेगा तो यह 'महाशक्ति' उसे कुचल डालेगी। किन्तु प्रस्तावित रूपरेखामें एक बातका कोई संकेत नहीं मिलता। इन पांचों राष्ट्रोंके बीचमें जब परस्पर स्वार्थ संघर्ष होगा तो उसे कौन, कैसे मिटायेगा? अवश्य ही इस स्थितिमें संसारको फिर रक्त-गंगामें स्नान करने और अपना कलुष धोनेका पुनीत अवसर प्राप्त होगा!

यह पंच महाशक्ति सम्मेलन, दरअसल जैसा हम ऊपर कह चुके हैं, प्रभाव और अधिकार क्षेत्रके बटवारेको आधार बनाकर हुआ है। तेहरान कानफरेंसमें प्रेसिडेण्ट रूजवेल्टने यह सुझाव रखा था कि बाल्टिक और उत्तर समुद्रोंके बीच जर्मनीमें कील नहरके पार्श्ववर्ती प्रदेशको एक फ्री स्टेट बना दिया जाये और इस स्टेटकी वैदेशिक नीति या तो सम्मिलित राष्ट्रों द्वारा रहे अथवा एक महाशक्ति द्वारा नियंत्रित की जाये। निस्सन्देह वह शक्ति सोवियट यूनियन होगी। बाल्टिकमें यही एक महाशक्ति है। अमेरिका और ब्रिटेनको अपने-अपने प्रभावके क्षेत्रका पहरेदार बननेके लिये यह आवश्यक है कि रूसको सम्पूर्ण बाल्टिकका पहरेदार माना जाये। पोलैण्ड और स्वीडेन भी बाल्टिक शक्तियां हैं। इस तरहके बटवारेका अर्थ यह होगा कि ये दोनों देश एकमात्र सोवियट यूनियनकी छत्रछायामें रहेंगे। अभीतक इस तरहके तीन प्रभावक्षेत्रोंका नाम सुना जा चुका है। पहला क्षेत्र है अटलाण्टिक सम्प्रदाय। निस्सन्देह ब्रिटेन और अमेरिका इस क्षेत्रके स्वामी बनेंगे। दूसरा सोवियट और तीसरा चीन। स्विटजरलैण्ड अटलाण्टिक क्षेत्रमें आयेगा, यद्यपि वह समस्त अन्तर्राष्ट्रीय गरोहोंसे अपनेको अलग और सबसे तटस्थ रहना ही पसन्द करता है। हंगरीका भाग्य रूसके साथ बांधा जायेगा। यद्यपि यहांका प्रत्येक प्रभावशाली दल रूससे दूर रहना चाहता है। थाईलैण्ड (स्याम) चीनके सिपुर्द किया जायेगा। थाईलैण्ड चाहता है या नहीं,स्पष्ट ही वह कदापि नहीं चाहता फिर भी, चीनकी रक्षा-दीवालकी एक ईंट बनकर उसे रहना ही पड़ेगा। इस तरह किसी देशकी जनता चाहती हो या नहीं उसे किसी-न-किसीके प्रभाव-क्षेत्रमें रहना ही पड़ेगा। महाशक्तियोंको भोजन तो चाहिये। यह है लोकतन्त्रके लिये लड़नेवाले मित्रराष्ट्रोंकी शान्तिकालीन व्यवस्थाका आदर्श। और इस आदर्शकी रक्षाके लिये आज लोकतन्त्र और स्वतन्त्रताका सबसे बड़ा समर्थक अमेरिका भी यह कहता सुना जाता है कि विश्व-शान्ति तभी होगी जब एक महाशक्ति दूसरी महाशक्तिके प्रभाव-क्षेत्रमें शान्ति रखनेके लिये उसका, यदि आवश्यकता हो तो, युद्ध द्वारा भी समर्थन करेगा।

संघर्षका बीज

इसी जगह संघर्षका बीज रोपा जा रहा है। प्रश्न यह उठता है कि महाशक्तियोंके प्रभाव-क्षेत्रकी सीमा कौन निर्धारित करेगा। इस प्रश्नका उत्तर देनेकी चेष्टा भी की गयी है। संसारके अधिक भागको अटलाण्टिक क्षेत्रमें रखनेकी चर्चा सुनायी पड़ रही है। इस क्षेत्रमें अंग्रेजी-भाषी शक्तियोंका प्राधान्य सुझाया गया है। ग्रीस (यूनान) को भी इसी क्षेत्रमें घसीटा जा रहा है। लेकिन क्या कभी यह सम्भव हो सकता है। ग्रीस रूससे ३०० मील और अटलाण्टिकसे १५०० मील दूर है। क्या स्टेलिन ग्रीसको अटलाण्टिक क्षेत्रमें सम्मिलित करनेकी बात कभी मान सकते हैं।

यह भी कहा जाता है कि युद्ध समाप्त होनेपर जर्मनीको अटलाण्टिक क्षेत्रमें सम्मिलित किया जायेगा। क्या इस बातपर विश्वास किया जा सकता है कि कोई रूसी शासक जर्मनीको उस क्षेत्रमें जाने देनेकी बात शान्तिपूर्वक मान लेगा जिसका केन्द्र यूरोप महादेशके बाहरमें स्थित है,

फिर वह केन्द्र वाशिंगटन हो या लन्दन। झगड़ेकी जड़ तो यह क्षेत्र-भावना ही है।

१९ वीं शताब्दीके युद्ध इस बातके स्पष्ट प्रमाण हैं कि प्रत्येक क्षेत्र—विस्तारके प्रयत्नोंने ही साम्राज्यवादी संघर्षोंको जन्म दिया। अपने क्षेत्र-विस्तारके लिये १९ वीं शताब्दीमें रूसने तुर्कीसे तीन बार युद्ध किया। ब्रिटेन और फ्रांसने सोचा कि रूसका सीमा-विस्तार अत्यधिक हो रहा है। इन दोनोंने रूसको रोकनेके लिये १८५४ से १८५६ तक क्रीमियन युद्ध किया। रूस एशियाकी तरफ घूमा। ईरानसे सीमा-विस्तारके लिये तीनबार युद्ध हुआ। मध्य एशियाके तमाम प्रधान स्थानोंको रूसने जीत लिया। पूर्वकी ओर उसने साइबेरियाके आगे कदम बढ़ाया।

ब्रिटेनकी विजय यात्रा

१८ वीं शताब्दीमें ब्रिटेनके पैर भारत भूमिपर पड़े। कल-बल और छलसे गृहयुद्धको प्रोत्साहन देकर ब्रिटेन धीरे-धीरे भारतमें पैर जमाने लगा और १९ वीं शताब्दीमें पहुंचकर सम्पूर्ण भारतमें अपना एकछत्र राज्य स्थापित कर लिया। साम्राज्य लिप्सा इतनेहीसे तुष्ट नहीं हुई। अफ्रीकामें भी ब्रिटेनने अपना झण्डा गाड़नेके लिये एक नहींअनेकों युद्ध किये। इजिप्ट (मिस्र) सूडान और बोअर प्रजातन्त्रोंपर ब्रिटेनने आधिपत्य जमाया। इनके अतिरिक्त कितने ही अफ्रीकन प्रदेशोंको अपने साम्राज्यान्तर्गत किया। एशियामें ब्रिटेन ईरानसे लड़ा, अफगानिस्तानसे उसके दो युद्ध हुए। भारत और बर्मासे वह लड़ा और चीनसे दो युद्ध,एक फ्रांसके साथ मिलकर और एक अलग, किया। अन्तमें शंघाईमें ब्रिटेनने अपना प्राधान्य स्थापित ही कर लिया। इन युद्धोंने सोते हुए जापानको जाग्रत किया। महाशक्ति बननेकी भावना उसके भीतर भी जाग उठी। चीनके तटस्थ देशोंपर स्थापित रूसियों,फ्रांसीसियों और अंग्रेजोंका वर्षोंतक अच्छी तरह मनन करनेके बाद १८९४ में जापानने चीनपर आक्रमण कर दिया और जो कुछ हाथ लगा, लूटा और अपने आधिपत्यमें किया।

फ्रांसने १८१४ से १९१४ तक, एक सौ वर्षके बीचमें, एलजियर्स, मोरक्को, ट्यूनिस, पश्चिमी अफ्रीकाका अधिकांश, मेडागास्कर, इण्डोचीनपर युद्धों द्वारा, अपना क्षेत्र-विस्तार करनेके लिये, अधिकार किया। उधर यूरोपमें फ्रांसने सोचा कि इटालीमें आस्ट्रियाका अत्यधिक प्रभाव है। इटालियन भूमिसे आस्ट्रियनोंको मार भगानेके लिये फ्रांसने इटालीका साथ दिया और कई युद्धोंमें इटालीकी मदद की। जर्मनीके प्रशाका अत्यधिक क्षेत्र विस्तार भी फ्रांसको खटकने लगा। प्रशाके विरुद्ध फ्रांसने षडयन्त्र रचा। फ्रांसका दांव खाली गया। प्रशापर युद्ध घोषणा करनेका मजा १८७० में फ्रांसको मिला। प्रशा जीता और अलसास-लारेन प्रदेशको अपनी सीमामें मिला लिया। चौबेजी गये थे छब्बे होने दूबे ही रह गये। प्रशा भी जापानकी तरह देरसे जगा किन्तु जब जगा तो दुर्दान्त दानवकी तरह अपनी भूख मिटाने लगा। अफ्रीकामें उसने उपनिवेश जीते और चीनमें औपनिवेशिक रियायतें प्राप्त कीं।

घाटेमें आस्ट्रिया रहा

क्षेत्र विस्तारके व्यापारमें सबसे बड़े घाटेमें आस्ट्रिया रहा। इटाली और जर्मनीमें अपने पुराने क्षेत्रोंसे हाथ धो चुकनेके बाद आस्ट्रियाने नवीन क्षेत्रके लिये बाल्कन देशोंमें तुर्कीकी तरफ कदम बढ़ाया। १९०८ में आस्ट्रियाने तुर्कीके पहलेके बोसनिया और हर्जीगोविना प्रान्तोंको अपने राज्योंमें मिला लिया। १९१४ में उद्भ्रान्त होकर इसने पहलेके तुर्की प्रान्त सर्वियापर आक्रमण करके वह आग लगाय; जिसे हम आज विश्वयुद्ध नम्बर एक कहते हैं। और यह बात तो प्रत्येककी जबानपर है कि यह नम्बर दो विश्वयुद्ध नम्बर एक विश्व-युद्धका ही सिलसला है। अधिकार और प्रभाव क्षेत्रका यह परिणाम होता है। अभी विश्वयुद्ध नम्बर दो समाप्त भी नहीं हुआ और फिर उसी क्षेत्र विस्तारकी चर्चा होने लगी। जबतक क्षेत्र-विस्तार और प्रभाव-विस्तारका मोह महाशक्तियोंको लगा हुआ है तबतक शान्ति अथवा शान्ति सम्मेलनकी चर्चा व्यर्थ है। जबतक विभिन्न राष्ट्र साम्राज्यवादके चंगुलसे मुक्त होकर विभिन्न राष्ट्रोंको एक संसारके रूपमें मानकर तदनुकूल राजनीतिक और आर्थिक नीतिका अनुसरण न करेंगे, जबतक प्रत्येक राष्ट्र पहले हम, हमारा पेट और हमारी तिजोरीकी बात छोड़कर विश्वके स्वार्थ और हितकी बात न सोचेगा तबतक संसारमें भयंकरसे भयंकर विश्वयुद्ध होते रहेंगे।

और लक्षण अभी ऐसे ही दिखायी देते हैं कि यह विश्व युद्ध ही अन्तिम विश्व-युद्ध न होगा। अबतक यही देखा गया है कि कोई सामरिक मित्रता स्थायी नहीं होती। प्रत्येक हिस्सेदार अपने अपने अभीष्टकी प्राप्तिके लिये आगे कदम बढ़ाता है। इस समयकी जो चार महाशक्तियां हैं उनमें एक चीन सम्पूर्णतया एशियायी है। जिन प्रजातन्त्रोंसे मिलकर सोवियट यूनियन बना है उनमें आठ

एशियायी हैं और नब्बेभी अधिकांश एशियामें ही है। सोवियट यूनियनमें रहनेवाले यूरोपियन ही ऐसे यूरोपियन हैं जो एशियायियोंको सब दृष्टियोंसे, सामाजिक सांस्कृतिक और राजनीतिक,समान मानकर उनका स्वागत करते हैं। स्टालिनके युद्धोद्देश्यकी एक घोषणामें सर्वप्रथम वाक्य यही है, 'सब तरहकी जातीय असमानताका अन्त करना।'

३१ अक्तूबर १९३९ को स्टालिनके परराष्ट्र सचिव मो० मोलोटोवने एक वक्तृता दी थी। यह वक्तृता उस समय दी गयी थी जब स्टालिनका हिटलरसे मेल था। मो० मोलोटोवने कहा था कि'अपने उपनिवेशोंसे हाथ धोनेके भयसे ब्रिटेन और फ्रांसने हिटलरके खिलाफ युद्धाग्नि भड़कानेका काम किया है।" आगे चलकर मोलोटोवने यह भी कहा था कि 'अफ्रीका और एशियामें ब्रिटिश और फ्रेंच क्षेत्र-विस्तार ही युद्धका मूल कारण है'

प्रतिनिधि-स्थानीय चीनी नेता निरन्तर यह बात कहा करते हैं कि तमाम एशियायियोंको यूरोपियन-शासनसे मुक्त किया जाना चाहिये। यह सुझाव मुख्यतः ब्रिटेन और फ्रांसके खिलाफ है सोवियट यूनियनके विरुद्ध नहीं। सोवियट शासन यूरोपियन शासन नहीं है। समानताके आधार पर सभी जातियोंका यह एक ही शासन है। सोवियटके अन्तर्गत प्रभाव-क्षेत्र रूप-रंग आकार-प्रकारमें, सब तरह, एशियायी हैं।

इन बातोंसे तत्व क्या निकलता है? तत्व यही निकलता है कि यदि क्षेत्र-विस्तार और प्रभाव-विस्तारका चक्र पहलेकी तरह घूमता रहा तो चीनी एशियायी क्षेत्र और सोवियट एशियायी क्षेत्र मिलकर इस बातकी चेष्टा करेंगे कि ब्रिटिश और फ्रेञ्च प्रभावको एशियासे निकाल बाहर किया जाये। पहले वे तर्कों द्वारा निकालनेकी कोशिश करेंगे, बादमें धमकियां देंगे और अन्तमें 'प्रहारेण धनंजय' सिद्धान्तका प्रयोग होगा।

युद्धकालीन मैत्रीकी अवधि युद्धकाल तक ही समझनी चाहिये। युद्ध समाप्त होते ही संधियों और मैत्रियोंकी बात उसी तरह भुला दी जायगी जिस तरह नेपोलियनके विरुद्ध की गयी युद्धकालीन संधियोंको युद्ध समाप्त होते ही तत्काल भुला दिया गया था। एशियामें जो ब्रिटिश और फ्रेञ्च साम्राज्यवाद फल फूल रहा है उसका अन्त शनैः शनैः, रचनात्मक और मानवीय ढङ्गसे नहीं होगा बल्कि सहसा, विनाशात्मक और पाशविक ढङ्गसे होगा और इस विनाश-यज्ञको संसार विश्वयुद्ध नम्बर तीसरा कहेगा।

और यदि तबभी यह प्रभाव और क्षेत्र प्रणाली बनी रही तो एशियासे यूरोपियनोंको निकाल चुकनेके बाद चीन और सोवियट मुक्त किये गये एशियाको खण्ड खण्ड कर डालनेके लिये एक दूसरेपर ही टूट पड़ेंगे।

तो क्या भूमण्डल पर मनुष्योंके रहने और जीनेके लिये दूसरा बढ़िया तरीका नहीं है? है क्यों नहीं? वह तरीका, वह मार्ग भारत दिखावेगा। त्याग, संयम और निवृत्तिके आधार पर प्रेम, सत्य और अहिंसाको जब तक संसार अपनानेको तैयार न होगा तब तक संसारमें सदा रक्तकी गंगा बहती रहेगी। प्रेम, सत्य और अहिंसाका पाठ विश्वको भारत ही सही ढङ्गसे सिखा सकता है। अतएव जो राष्ट्र, समाज और व्यक्ति सचमुच विश्वमें शांति स्थापित होते देखना चाहते हैं उनका प्रथम कर्त्तव्य है भारतको विदेशी परतन्त्रतासे मुक्त कराना। आज शान्तिके पथ-पर यदि विश्वको कोई आगे ले जा सकता है तो वह महात्मा गांधी ही हैं।

कब तक ?

इतनी भी बात न मानोगी

ओ मधुकंठिनि मकरन्दमयी क्या इतनी बात न मानोगी

तुम चिर बसन्त की राका हो मैं हूं पतझड़ का अन्धकार
जीवन के गीतों की ममता तुम मैं संघर्षों का प्रहार
मैं मानव मानव के नूतन सम्बन्धों की संवाद - शिखा
तुम सपनों की मादकता में नव नव मधु चक्रों की पुकार
पर शोषण की इस हिंसा से तुम कब प्रतिहिंसा ठानोगी

तुमने देखा है मानव को मानव से कुत्तों सा लड़ते
तुमने देखा है श्रमियों को स्वामी के पैरों पर पड़ते
तुमने तो और अधिक भी देखा है ओ मेरी कल्याणी !
भूखी मां की गोदी से सूखे शिशु को फूलों सा झड़ते
साथिन ! सौन्दर्य साधना तज कब जन-ज्वाला पहचानोगी

पर-पीड़न और विषमता में तिल तिल कर जनता का जलना
नंगे अभाव के मरु-पथ में पशु सा जीवन व्यापी चलना
है उसके थके रुके पैरों पर सदियों के श्रम का बोझा
होगया आज पथका निर्णय—विद्रोह जगा—टूटी छलना
लो ! अपने कम्बु-कण्ठ से फिर तुम समता का जय घोष करो

छोड़ो काकली और मानव में फिर बलिदानी रोष भरो
लड़ते लड़ते मर जाय भले ही खींच रक्त-रेखा पथ पर
मानव न युद्ध से मुख मोड़े तुम वह भीषण आक्रोश भरो
सिरजन की ज्वाला सी उठ कर कब अपनी मुट्ठी तानोगी
कब अपने को युग युग की प्रेरक निष्ठा का बल जानोगी

इतनी भी बात न मानोगी।

—'अंचल'

गीत

तुम इतने करुणामय न बनो !
जीवन घन बरसा करो किन्तु छाया बन कर संशय न बनो !

आंखें उठती फिर झुक जाती
मन को कोई सहला जाता।
धारा के दोनों सजल किनारे से
संयम टकरा जाता।

बुदबुद बन मिटते चलो किन्तु सीपी गढ़कर संचय न बनो।

संध्या रजनी में, रजनी ऊषा में
ऊषा दिन बन जाती।
अंधियाले—से भूले पथिकों को
राह दिखा आगे लाती।

साधन हो नूतन बनो, किन्तु साधक बनकर जय-जय न बनो !

छल दुख के मंगल पंख लगा
उड़ता अनन्त की :ओर चला।
मैं अपनी आशा के बल पर
भव - भय का छूने छोर चला।

तुम बनो पुलक प्रतिक्षण गतिमें, मतिमें छिपकर विस्मय न बनो

तुम इतने करुणामय न बनो !

—पन्नालाल महतो 'हृदय'

अर्थ मनर्थं भावय नित्यं ?

प्रो० जगन्नाथ प्रसाद मिश्र

धर्म एवं अध्यात्मके चरम आदर्शके साथ अर्थका कोई मूलतः विरोध नहीं हो सकता। जीवनके लिये मनुष्योचित जीवन धारण करनेके लिये अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष ये चारों ही समान रूपमें अभीष्ट हैं। इनमें एककी भी अवहेलना नहीं की जा सकती। अर्थभी जीवनके लिये उतना ही काम्य है जितना धर्म। इतना ही नहीं बल्कि मानव-जीवनमें सबसे पहले अर्थका ही प्रयोजन है फिर और वस्तुओं का। जिस मनुष्यका पेट भूखकी आगसे जलता रहेगा वह अन्न को छोड़कर क्या किसी और वस्तुकी चिन्ता कर सकता है? अस्थि कंकाल शरीर, पेटमें बढ़ी हुई प्लीहा और यकृत, सिरपर ऋणका बोझा, घरमें क्षुधातुर पुत्र-कन्या, रुग्ण स्त्री, धूप और वर्षाके प्रकोपसे बचनेके लिये आश्रयका अभाव. इस प्रकारके जीवनमें धर्म एवं अध्यात्मकी चर्चा विडम्बनाके सिवा और क्या कही जा सकती है? इस प्रकारका अशान्त एवं चिन्ताग्रस्त जीवन धारण करके क्या कोई खाक धर्म-साधना कर सकता है। कहावत है "भूखे भजन न होहिं गोपाला" भूखे पेट भजन नहीं होता। वस्तुतः इस कथनमें जितना सत्य निहित है उतना चर्पट पंजरिका स्तोत्रकी इन पंक्तियों, "अर्थ मनर्थं भावय नित्यं, नास्ति-ततः सुखलेशः सत्यम्" की पुनरावृत्तिमें नहीं। अर्थ अनर्थका कारण नहीं, अर्थका दुरुपयोग अनर्थका कारण है। जिस प्रकार अर्थका दुरुपयोग अनर्थकी सृष्टि करता है उसी प्रकार धर्मका दुरुपयोग या धर्मके नामपर सब प्रकारके अनाचार एवं अत्याचार भी कम अनर्थकी सृष्टि नहीं करते। मध्य-युगमें धर्मके नामपर जो अत्याचार, उत्पीड़न एवं पाशविक कार्य किये गये थे वे धर्म एवं मनुष्यताके लिये कलंकजनक थे। धर्मके नामपर स्पेनके रोमन कैथलिक पादरियोंने मेक्सिको, पेरू और मध्य अमेरिकामें जिस प्रकार निष्ठुर रूपमें प्राणवध किया एवं असंख्य नर-नारियोंको क्रीतदासके रूपमें परिणत कर दिया वह क्या धर्मकी महिमाको बढ़ाने वाला था? किन्तु धर्मके नामपर सब प्रकारके अन्याय, अनीति, अत्याचार एवं बर्बरोचित कार्य होनेपर भी जिस प्रकार कोई विचारवान् मनुष्य धर्मको इन सारी बुराइयोंका मूल कारण नहीं कह सकता उसी प्रकार अर्थोपार्जनके लिये सब प्रकारके अन्याय, अनीति एवं कुकर्म किये जानेपर भी अर्थको सारे अनर्थों का मूल नहीं बताया जा सकता। प्रकृत सत्य तो यह है कि जिस देशमें अन्न नहीं, उस देशमें धर्म टिक ही नहीं सकता। कल स्वयं और परिवारके लोग क्या खायेंगे इसकी चिन्तासे यदि मन अशान्त एवं अस्थिर है तो फिर ऐसे लोगोंके जीवनमें धर्म, अध्यात्म और संस्कृति सम्बन्धी अत्यन्त रमणीय उपदेशोंका कुछ भी मूल्य नहीं हो सकता। इसलिये अर्थ अनर्थका कारण नहीं है। अनर्थका कारण है दैन्य एवं दारिद्रय। दैन्य एवं दारिद्रय-को आशीर्वादके रूपमें ग्रहण करके अलस, अकर्मण्य एवं उद्योगहीन जीवन व्यतीत करना मनुष्यत्वकी मर्यादाके लिये अत्यन्त विगर्हणीय एवं कलङ्कजनक है। जहां दैन्य होगा वहां मनुष्यत्वका परिपूर्ण विकास सम्भव नहीं हो सकता। मनुष्यके परिपूर्ण विकासके लिये अर्थका उतना ही प्रयोजन है जितना धर्मका। यदि धर्म मनुष्यकी मानसिक एवं आध्यात्मिक उन्नतिमें सहायता पहुंचाता है तो अर्थ भी उसके आत्मविकासके पथको प्रशस्त करता है। जिस प्रकार विद्या, बुद्धि, दान एवं श्रेष्ठ चरित्र द्वारा मनुष्यकी सेवा की जा सकती है उसी प्रकार अर्थ द्वारा भी सहज मानव सेवा की जा सकती है। दैन्य दारिद्रय एवं अभाव-अभियोगोंके भारको शान्त भावसे वहन करते हुए संतोष, त्याग एवं वैराग्यके नामपर जीवनमें सब प्रकारके पराभव, लांछन एवं अपमानको सहन करते रहना, अन्यायको अन्याय समझ कर भी उसके प्रतिकारसे विरत रहना जीवन-के लिये सबसे बढ़कर ग्लानिजनक है। जो समाजके निम्न-तम स्तरमें चिरकालसे पतितावस्थामें पड़े हुए हैं, जिनके पास तक ज्ञानका प्रकाश कदाचित ही पहुंचता है, जहां प्राणकी वायु नहीं बहती, जीवनमें कभी बसन्तोत्सव नहीं होता, उनसे बढ़कर दयनीय असहाय प्राणी संसारमें बहुत थोड़े ही होंगे। ऐसे लोगोंके जीवनमें धर्मके लिये स्थान नहीं हो सकता। इन्हें तो सबसे पहले अन्न वस्त्रके प्राचुर्यके बीच प्रतिष्ठित करना होगा। उन्हें जीवन धारणका मर्म बताना होगा। जिन्हें अनशनके साथ अहर्निश संग्राम करना होता है और उस संग्राममें भी जो पग-पगपर पराजित होते रहते हैं, जिनके लिये जीवन धारण करनेकी समस्याकी अपेक्षा मृत्युको किसी तरह टालते रहनेकी समस्या

कहीं बढ़कर है उनके लिये धर्म मंगलका वाहन न होकर अर्थ ही मङ्गलका वाहन हो सकता है। ऐसे लोगोंको अर्थ-मनर्थका पाठ पढ़ाना, सन्तोष धारण करने और धनागम तृष्णाका त्याग करनेका उपदेश देना जान बूझकर उनके प्रति कदाचरण करना है और उन्हें चिरकालतक अभिशप्त जीवनमें रखना है।

भारतवर्षके कोटि-कोटि मनुष्योंके जीवनमें आज सबसे बड़ा सत्य यही है कि वे किस प्रकार दैन्य - दारिद्रय एवं रोग महामारीकी ताड़नासे प्राणरक्षा कर सकें। अपने तथा अपने परिवारके लोगोंको दो ग्रास भोजन और एक टुकड़ा वस्त्र देकर उन्हें अकाल मृत्युके कवलसे बचाये रखें। यह दुश्चिंता आज लाखों किसान और मजदूरोंके जीवनाकाशमें धूमकेतुकी चिनीचिकाकी तरह निरन्तर जागरित रहती है। इस दुश्चिन्तासे उन्हें मुक्त करनेका उपाय धर्म-साधना नहीं अर्थ साधना है। इन दुर्भाग्य ग्रस्तोंकी सेवा आप उन्हें-धर्म कथायें सुनाकर और तीर्थ व्रतका उपदेश देकर नहीं कर सकते बल्कि उनके लिये जीविकार्जनका मार्ग सुलभ करके समाज उनके प्रति जो अन्याय कर रहा है उस अन्यायका प्रतिविधान करके कर सकते हैं। वे आपकी दयादृष्टि नहीं चाहते, आपसे न्याय-व्यवहार चाहते हैं। और वह न्याय-व्यवहार यही है कि समाजकी उच्च श्रेणी द्वारा उनके श्रमका निर्लज्ज रूपमें जो शोषण हो रहा है उस शोषणका सदा के लिये अन्त कर दिया जाय। उनके मनुष्यत्वको मर्यादा-प्रदान की जाय और उन्हें दयाका पात्र न समझकर न्यायका पात्र समझा जाय। ऐसे लोगोंकी कल्याणकी कामना उनके बीच अधिकसे अधिक अर्थकी चर्चा करके ही की जा सकती है धर्मकी चर्चा करके नहीं।

एक समय ऐसा था जबकि जारशाही रूसका भ्रमण करके जो यात्री लौटते थे वे वहांकी जनताकी अज्ञानता, निरक्षरता, अन्धविश्वास एवं कुसंस्कारकी चर्चा करनेके साथ साथ उनके जीवनकी उद्वेगहीनता, शान्ति एवं सन्तोषकी चर्चा भी अवश्य किया करते थे। अर्थात् चिरकालकी अज्ञानता एवं दासताने उनके जीवनको इतना निर्जीव, निश्चल, एवं निस्तरङ्ग बना दिया था कि उनके मनमें अपनी दीनता, दरिद्रता एवं हीनताके सम्बन्धमें कोई धारणा ही नहीं रह गयी थी। अपनी इस अज्ञानताके कारण ही उन्हें जीवनमें वह सन्तोष प्राप्त था जो सन्तोष राजाओं और धन कुबेरोंके लिये भी दुर्लभ है? यह सन्तोष उन्हें इसलिये प्राप्त था कि वे सर्वथा असहाय बने हुए थे। दैन्य एवं दारिद्र यको जीवनके चिरसंगी रूपमें उन्होंने स्वीकार कर लिया था और इनसे परित्राण पानेका कोई उपाय न देखकर उन्हें चरम सत्यके रूपमें ग्रहण कर लिया था। ऐसे लोगोंके अभिशप्त जीवनकी शान्ति एवं सन्तोषपर स्वयं उन्हें कोई ग्लानि या लज्जा नहीं होती, बल्कि अन्य सहृदय व्यक्तियोंको ही उनकी दयनीय स्थितिपर दुःख होता है और उनकी बुद्धि इस अन्याय एवं अनीतिके विरुद्ध विद्रोही बननेके लिये उन्हें उत्तेजित करती है। इस कोटिके महाव्यक्ति जब अशान्त विद्रोही बनकर अपने कम्बुकण्ठसे वज्र-वाणी उद्घोषित करने लगते हैं और उनकी लेखनी जब अग्नि उद्गीरण करने लगती है तभी समाजमें विप्लवका सूत्रपात होता है और युग युगकी संचित भावनायें क्षण भरमें ही न मालूम कहां विलीन हो जाती हैं। रूसका बोलशेविक विप्लव इसी रूपमें संघटित हुआ था। और आज वहां तो जीवनमें धर्म-चर्चाकी प्रधानता न होकर अर्थ-चर्चाकी प्रधानता होनेपर भी वहांकी सर्व साधारण जनताके जीवनमें ज्ञान-विज्ञान, कला एवं संस्कृतिकी जितनी चर्चा है उतनी चर्चा आजसे पहले और कभी नहीं थी। मानवधर्मका जितना पालन वहां किया जाता है उतना और किसी देशमें नहीं। मनुष्य-मनुष्यके बीच कृत्रिम भेदभावको दूर करके उनके बीच प्रेम; बन्धुत्व एवं साम्यकी भावना स्थापित करनेकी चेष्टा करना, जो पतित एवं पददलित हैं उनके जीवनको सब प्रकारसे उन्नत, समृद्ध एवं सुन्दर बनानेका प्रयत्न करना, मनुष्यको विधाताके यहांसे देवत्वका जो गौरव प्राप्त हुआ है उस गौरवसे उसे वञ्चित नहीं करना, मनुष्य-मनुष्यके बीच महामिलन साधन करना यदि सबसे महान धर्म है और यदि समस्त धर्मोंका सार मर्म है तो यह निश्चित एवं निभ्रान्त रूपमें कहा जा सकता है कि इस धर्मका अनुष्ठान जितना वास्तविक रूपमें हो रहा है उतना और किसी देशमें नहीं। तभी तो रवीन्द्रनाथने अपनी रूसकी चिट्ठीमें लिखा था—"रूसमें आ गया हूं—यहां नहीं आनेसे इस जन्मका तीर्थ दर्शन सर्वथा अपूर्ण रह जाता" संसारमें जहां सबसे बड़ा ऐतिहासिक यज्ञका अनुष्ठान चल रहा है, वहांका निमन्त्रण पाकर भी नहीं आना मेरे लिये अमार्जनीय होता।" यह ऐतिहासिक यज्ञ क्या है। महा-मानवताका कल्याण, विश्वमानवका महामिलन। विश्वमानवके महामिलनका यह स्वप्न एक ओर कोटि-कोटि मनुष्योंको आजीवन दीन दरिद्र रखकर और अपनी हीनावस्थापर सन्तोष धारण करनेका उपदेश देकर और दूसरी

ओर थोड़ेसे लोगोंको बहुसंख्यक लोगोंके परिश्रमकी बदौलत धन कुबेर बननेकी सुविधा और प्रलोभन देकर चरितार्थ नहीं हो सकता। शोषक एवं शोषितके बीच, खादक एवं खाद्यके बीच प्रेमका सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जा सकता। प्रीतिकी रीति तो समानताके सम्बन्धमें ही चल सकती है। समाजके श्रेणी-भेद रूपी लौह दुर्गमें जिनके मन प्राण आत्मा बन्दी बने हुए हैं, जिन्हें अपने नित्यके जीवनमें अपनी दीनता एवं विवशताका निरन्तर कटु अनुभव होता रहता है, जो आपके ऐश्वर्यके साधनको जुटानेमें दिनरात अपने लहूको पसीना बनाते रहते हैं और आपके ऐश्वर्यकी प्रचुरता एवं भोग विलासमय जीवनके आडम्बरको देखकर भयचकित बने रहते हैं उनके और आपके बीच मन एवं हृदयका सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सकता और न आप उनका अनुरागभाजन बन सकते हैं। इस प्रकारके श्रेणी-विभक्त समाजमें धनिक वर्गका अस्तित्व नंगे रूप भावसे सर्वहारा वर्गके शोषण एवं श्रृंखलाके प्रति इङ्गित कर रहा है। और इस प्रकारके समाजमें शांतिका अस्तित्व बराबर संकटापन्न ही बना रहेगा। इसलिये समाज कल्याणकी दृष्टिसे भी यह आवश्यक है कि समाजमें दीन दरिद्रोंका अस्तित्व मिटा दिया जाय और सब मनुष्योंको अन्न वस्त्रके प्राचुर्यके बीच जीवन धारण करनेकी सुविधा प्रदान की जाय। इसके बाद अवकाशके समय उनके जीवनकी सर्वाङ्गीण उन्नतिके लिये उन्हें धर्म, अध्यात्म, कला अथवा संस्कृतिकी चर्चाकी ओर प्रवृत्त किया जाय।

भारतवर्षके समान दीन दरिद्र देशोंमें "अर्थ मनर्थं भावय नित्यम्" और 'मूढ़ जहीहि धनागम तृष्णां' का पाठ और सन्तोषकी मानवतामयी वाणी अब बहुत कुछ सुनायी जा चुकी। इस वाणीसे लोगोंका जीवन आध्यात्मिक भावापन्न न बनकर और भी अभिशप्त बन गया। सन्तोषके पाठने उनके जीवनको प्राणहीन जड़ बना दिया और निर्जीव असहायके रूपमें सन्तोष धारण करनेके लिये विवश किया। इस सन्तोषसे न तो उनकी कामनाओंकी भूख मिटी और न उनका आध्यात्मिक कल्याण हुआ। इस सन्तोषने उनके जीवनको पंगु बना दिया, उनके आत्मविकासके मार्गको अवरुद्ध कर दिया और उनके मनप्राणको धनिकोंके लौहबाहुमें आबद्ध कर दिया। न उनका लौकिक कल्याण साधन हुआ और न पारलौकिक। दिन-रात परिश्रम करके भी वे जीवनमें आनन्दका आस्वादन नहीं कर सके और न जीवन धारण करनेकी चिन्ताओंसे मुक्त होकर थोड़े समयके लिये भी परलोककी साधना कर सके। इसलिये परलोककी साधना भी तभी सफल हो सकती है जबकि इस जीवनको अभावरहित, सुखी, समृद्ध एवं सम्पन्न बना दिया जाय। और इसके लिये अर्थ मनर्थंकी वाणी नहीं दैन्य एवं दारिद्र्यसे घृणा करने, अन्याय एवं औद्धत्यको पंगु करने तथा कर्मठ बनकर पौरुष एवं पुरुषार्थ शौर्य्य एवं वीर्यको प्रदर्शित करनेकी वाणी उद्घोषित करनी होगी।

लोकतंत्र क्यों असफल हो रहा है

श्री देव

बर्नार्ड शाका कहना है कि जीवनका मर्म कौन समझता है। सच बात है, हममेंसे बहुत कम व्यक्ति हैं जिन्होंने जीवन और उसके रहस्यको समझा है। इस नासमझीका ही कारण है कि आज सम्पूर्ण संसार युद्धक्षेत्र बन गया है। संसारमें विज्ञान अपने आश्चर्यजनक आविष्कारोंसे लोगोंको चमत्कृत कर रहा है। इस चमत्कारसे प्रभावित मनुष्य हृदयके प्रेमपूर्ण साम्राज्यको छोड़कर मस्तिष्कके शुष्क और नीरस साम्राज्यमें अपना घर बसाता है। हृदय और मस्तिष्कके बीच सौजन्य और सहानुभूतिपूर्ण सम्पर्क स्थापित करनेकी जगह दोनोंमें प्रतिद्वन्द्विता पैदा की जा रही है। मस्तिष्कको हृदयकी कोमलता, सरसता और माधुर्यसे सख्त नफरत है। वह अपना अलग प्रभाव-विस्तार देखना चाहता है। वह नहीं चाहता कि उसकी सीमामें हृदय प्रवेश करे। सबने मस्तिष्ककी इस चाहका ही समर्थन किया। उसीकी पूजा होने लगी। हृदयके पुजारी पीछे ढकेल दिये गये। उनकी क्षीण और दुर्बल आवाजसे कोई द्रवित नहीं हुआ। हृदयकी छातीको रौंदते हुए मस्तिष्क वाले आगे बढ़ने लगे। आग, हवा, पानी और बिजलीपर विजय प्राप्त करनेवाले मस्तिष्कके वर-पुत्र विज्ञानवादी हृदय जैसी तुच्छ वस्तुकी क्यों परवाह करने लगे। 'संसारमें मेरे समान पराक्रमी कौन है। यदि किसीमें हौसला हो तो आवे मेरे सामने।' किन्तु उनका समझना गलत निकला। दूसरे भी ऐसा ही समझनेवाले थे

कि मेरे समान पराक्रमी कौन है ? हौसले निकलने लगे। संसारमें आबाल वृद्ध बनिता त्राहि-त्राहि पुकारने लगे।

प्रबल, प्रचण्ड पराक्रमने विनाशकी भैरवमूर्त्ति बनकर मानवताके वक्षस्थलपर वह करारी ठोकर लगायी कि गरीब मानवता तिलमिला उठी ! पूरबसे पश्चिम और उत्तरसे दक्षिण तक विनाशकी ज्वाला धधक उठी। अब वह ज्वाला-अपनी कोटि-कोटि नहीं असंख्य जिह्वासे संसारको चाट रही है। विश्वके आरम्भसे आज तक बराबर ऐसा ही होता चला आ रहा है। मस्तिष्क जब-जब जिस अनुपातमें प्रबल पड़ा है तब-तब उसी अनुपातमें विनाशने भी अपना भैरवरूप धारण किया है। मस्तिष्कका पराक्रम आज बहुत ऊंचे चढ़ा हुआ है। विनाशका रूप भी उतना ही भयङ्कर और भयानक हो गया है। ऐसा क्यों हो रहा है। मस्तिष्क इतना उच्छृङ्खल और उद्दण्ड क्यों हो गया है। वह हृदयके शासनके बाहर क्यों चला गया ? हृदयकी प्रेरणा मानकर चलनेके बजाय वह उसी (हृदय) पर प्रहार क्यों करने लगा ? इत्यादि प्रश्नोंकी आज हम यहांपर मीमांसा करेंगे।

सत् और असत् इन दोनों वृत्तियोंसे मनुष्यका जीवन प्रभावित है। मनुष्यकी तो बात ही नहीं पशु-पक्षी भी इसी नियमसे शासित होते हैं। मनुष्य और पशुमें अन्तर इतना ही है कि मनुष्यमें सत् और असत्का विवेचनकरनेकी विवेक शक्ति है। पशुओंमें उस मात्रामें विवेक शक्तिका अभाव है। जिस पशुमें जितनी अधिक मात्रामें सद्वृत्ति है वह संसारके लिये उतना ही लाभदायक है। जो इस वृत्तिसे जितना खाली है वह उतना ही हिंस्र है। पशुओंमें ये वृत्तियां सदा एक रूपमें रहती हैं। इनमें विकार और परिवर्तन नहीं होता, यदि होता भी है तो वह मनुष्यके संसर्गमें आकर ही होता है। जङ्गलमें रहनेवाले पशु-पक्षी सदा एक-सा जीवन बिताते हैं। किन्तु यही बात मनुष्यके लिये नहीं कही जा सकती। उसकी इन दोनों वृत्तियोंका विकास और ह्रास पारिपार्श्विक स्थितियों पर निर्भर है। देखा जाता है कि इन दोनों ही वृत्तियोंका विकास अपनी पराकाष्ठाको पहुंच रहा है। अन्तर इतना है कि सद्वृत्तिके विकासका प्रसार सीमित रह गया जबकि असद्वृत्ति चारो तरफ खुलकर खेल रही है। अपने विस्तार और प्रसारके लिये, असद्वृत्तिने बराबर सद्वृत्तिका ही रूप धारण करके संसारके सामने आना परिचय दिया है और सच तो यह है कि इसी कपटाचारने ही असद्वृत्तिको इतना पुष्ट बना दिया है कि मनुष्यका विवेक भी उसके कपटाचार-को समझनेमें असमर्थ है। समझे भी कैसे ? असद्वृत्तिको मस्तिष्कका प्रश्रय, प्रोत्साहन और संरक्षण मिला हुआ है। कपटाचारको नित नये आकर्षक और मनोहारी वेशमें जगतके सामने लानेमें विज्ञान उसका सबसे बड़ा सहायक है। विज्ञान मस्तिष्ककी उपज है। स्वभावतः वह अपने सच्चे पोष्य पुत्रकी सहायताके लिये अपने सम्पूर्ण साधनोंसे काम लेगा और यही हो रहा है। आज संसारके बड़े-बड़े मस्तिष्क अपने पराक्रमसे पहले अपनी जाति,समाज और राष्ट्रकोप्रभा-वित करके उन्हें अपना अनुगामी बनाते हैं। जब इस तरफ वे पूर्ण सफल हो जाते हैं तब उनकी दृष्टि अपने निकटस्थ और बादमें दूरस्थ पड़ोसीकी तरफ जाती है। इसी प्रकारकी दो या अनेक दृष्टियोंका जब सामना हो जाता हैतभी दोनों के टकरानेसे जो विकराल ज्वाला निकलती है,वह प्रलयाग्नि-का रूप धारण करती है। संसार उसीको युद्धके नामसे पुका-रता है। तो यह कहना चाहिये कि हमारी असद्वृत्ति ही युद्धकी विधायक है। अब प्रश्न यह होता है कि सत्पर असत् इतनी आसानीसे कैसे विजय पा लेता है। सत्यके साधकको जीवन भर कठिन तपस्या करनी पड़ती है। सहज ही मनुष्य चाहता है कि उसे कोई ऐसा मार्ग मिले जिसपर चल कर वह बिना किसी कठिनाईके अपने लक्ष्य तक पहुंच जाये। असद्वृत्ति उसे ऐसा ही सहज मार्ग बताती है। विवेकसे शून्य मनुष्य उसीमें अपना हित समझ कर उसका भक्त बन जाता है। स्वार्थ और घृणित वासनाएं उसे आसानीसे अपने चंगुलमें दबोच लेती हैं। फिर तो नालीके कीड़ेकी तरह उसे असत् जीवन ही प्रिय लगने लगता है।

हमेशासे ही यह देखा जाता है कि इस मार्गके नेता मनुष्यको स्वार्थ और असहिष्णुताका दास बना डालते हैं। इन्हीं दोनोंके प्रभावसे मनुष्यसे हीनसे हीनतर और हीन-तम काम कराया जा सकता है और उसे ऐसा करनेमें खुशी होती है। स्वार्थ और असहिष्णुतामें अविच्छेद्य सम्पर्क है। स्वार्थकी पूर्तिके लिये मनुष्यको असहिष्णु बनना पड़ता है। आज संसारमें स्वार्थ और असहिष्णुताका ही एकछत्र राज्य है। लोकतन्त्रीय व्यवस्था इसीलिये असफल हो रही है कि उसे चलानेवाले स्वार्थ और असहिष्णुताके पुतले हैं। न्याय, सहिष्णुता और लोकसेवाकी भावना जिस व्यवस्था में नहीं है उसे लोकतन्त्र कदापि नहीं कहा जा सकता। आज लोकतन्त्रीय व्यवस्था माननेवाले जितने देश हैं उनमें सबसे अधिक प्रभावशाली इङ्गलैण्ड और अमेरिका हैं। वर्तमान विश्वयुद्ध आरम्भ होनेके समय तक इङ्गलैण्ड ही यूरोपका नेता समझा जाता था। यदि इस लोकतन्त्रीय

इङ्गलैण्डकी नीति केवल अपने स्वार्थको सुरक्षित रखने तथा अवसर मिलते ही उसे और अधिक बढ़ानेकी न हुई होती तो वह यूरोपका नेतृत्व कभी गलत तरीकेसे न करता। न्याय और लोक-सेवाकी भावनाको यदि इङ्गलैण्डकी नीतिमें प्रधानता दी गयी होती तो जर्मनीका स्वेच्छाचार इतना निरंकुश न हो उठता। दूसरे शब्दोंमें यह कहना चाहिये कि निरंकुश होनेके लिये उसमें इतनी ताकत न पैदा हो गयी होती।

स्वार्थकी पूजा करने वाला व्यक्ति आंखों रहते हुए भी अन्धा होता है। वह अपने मतलबके लिये न्याय अन्याय, नीति अनीतिकी जरा भी परवाह न करके उसी मार्गपर चलने लगता है जो उसे अपने लक्ष्य, स्वार्थ, तक पहुंचा सकता है। भले ही वह मार्ग अन्याय और अनीतिका ही क्यों न हो? स्वार्थान्ध व्यक्ति निर्लज्ज हो जाता है। ब्रिटिश साम्राज्यके वर्तमान कर्णधार मि० चर्चिल यह कहते नहीं थकते कि संसारको दासतासे, अन्याय और अत्याचारसे आततायीके पंजेसे मुक्त करनेके लिये यह युद्ध लड़ा जा रहा है। किन्तु उसी समय जहां भारतको दासतासे मुक्त करनेकी बात उनसे की जाती है उन्हें यह कहते किंचित सङ्कोच नहीं होता कि क्या मैं सम्राटका प्रधान मन्त्री साम्राज्यकी ही जड़ खोदनेके लिये बना हूँ। ब्रिटिश साम्राज्यमें आंच नहीं लग सकती। भारतवर्ष स्वतन्त्र नहीं हो सकता, क्योंकि उसकी स्वतन्त्रताके अर्थ होंगे इङ्गलैण्डके स्वार्थकी हानि। ४० करोड़ अधिवासियोंका भारत जैसा विस्तृत और व्यापक बाजार इङ्गलैण्डको कहां मिल सकता है? भारतको स्वतन्त्र करके इङ्गलैण्डमें बेकारी और उसके परिणाम स्वरूप दुख-दैन्य और अशान्तिकी सृष्टि करनेकी मूर्खता भला चर्चिल जैसा आदमी कर सकता है? स्वतन्त्रता और लोकतन्त्रकी दुहाई देना, उनके प्रति प्रेमका प्रदर्शन करना एक बात है और तदनुकूल आचरण करना दूसरा बात है।

किसी एक बड़े भारी दार्शनिकने कहा था कि "यद्यपि मैं उनसे सहमत नहीं हूं किन्तु स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी सम्मति प्रकट करनेके उनके अधिकारकी रक्षा मैं अपने प्राण देकर भी करूंगा।" लोकतन्त्रकी भावनाके पीछे त्याग, बलिदान और सहिष्णुताका सिद्धान्त है। आज कलके राजनीतिज्ञ, नैतिकतासे शून्य, इन सिद्धान्तोंकी सराहना तो करते हैं लेकिन उसी हद तक वे तदनुकूल आचरण करते हैं जहां तक उनके स्वार्थको चोट नहीं पहुंचती। यही कारण है कि लोकतन्त्र आज असफल होता दिखायी दे रहा है।

रेखाएं

श्री कृष्णनन्दन सिनहा बी० ए० (आनर्स)

वह बीसवीं सदीके अर्द्धवृत्तकी अन्तिम परिधि थी। संसारका सांस्कृतिक विकास विरामपर आ रहा था। नदीका प्रवाह रुक गया हो जैसे—और तूफान भी न आता हो।

तूफान भी न आये?

तपोभूमिमें विनाशका सङ्गीन! प्राणोंके होमका दृश्य।

और इन नन्हें प्राणोंका स्पन्दन!

कितनी तीखी विषमता थी यह!

सत्य बुझी बुझी आंखोंसे यह बीतता बुझता संसार परख रहा है। आह, यह कैसी व्यापकता है जो लघुताका रूप ले रही है। और यह भारतवर्ष अपना। यह भी तो आज लघु हो रहा है।

नगण्य, असार्थक,—क्योंकि यह स्वतन्त्र नहीं है।

और अब देशमें नया जागरण है, नयी चेतना।......

और सत्यको ऐसा लगा कि अर्चना अपने देशकी सबसे बड़ी संस्कृति है।

आधीरातमें जब शून्यमें श्याम आवरण छा गया तो सत्य जगा तीखे विस्मयसे जगा और स्याह लकीरें उसके दृष्टिपथसे उतरती चली गयीं। हरसिंगारकी घनी डालियां मध्यम चांदनीमें अपनी रेखायें बना रही हैं...जैसे सत्यपर घनी सी वेदना खिंची आ रही है......कुछ बेजान सी पीड़ा समाती आ रही है।

किसी अन्तर्पटकी रहस्यमयता उसे तरल बना रही थी। और उसने कहा, 'ओ रेखा, तू भी जाग रही है क्या?' रेखा अर्चनाको तेल मालिश कर रही थी। नन्हें पावोंपर हाथोंका सहलाना, चेहरेपर एक संतोषका भाव और आधी पलकें झपीं सी।

और अर्चना बेखबर सो रही है। संस्कृति सो रही है; कल्प सो रहा है, चेतनता सो रही है।

'तू कितना सहतो है···अब सो जा।'

सत्यके लिये तो सोचनेकी बहुत सी बातें हैं—सत्याग्रह, जेल, स्वतन्त्रता,···और बहुत सी बातें।

और रेखा क्यों उलझी खोयी सी रहती है। रातके शेष पहर यों ही बीत जाते हैं। वह सोती भी नहीं। काया गला ली है अपनी···जैसे अर्चनामें ही प्राण बसते हों। और सत्यको जबर्दस्ती एक ख्याल आ रहा है जो अकथनीय सा, जिसको शब्दोंमें पिरोया नहीं जा सकता, और इसीलिये बेचैनी सी लग रही है। उसने शांत सोयी अर्चनाकी ओर देखा और पांवोंके पास सिमटी उस नारीको। वह जरा मुस्कायी, पर प्रकाशकी कमीके कारण सत्य नहीं देख पाया। वह सोया है जीवनकी यथार्थतासे उलझते हुए। वह सोयी है शांत, मधुर······और एक तृप्तिभरी आंखें कभी इस ओर कभी उस ओर डाले बैठी है।

बस इतनी सी यथार्थता अपनी विशेषता लिये हुए है जैसे चिन्ताएं और परेशानियां गतिमान होकर कहीं दूर चली गयी हैं। फिर भी अब कुछ विवशताकी भावना भरती जा रही है।

'तुम नहीं सोती तो मैं भी नहीं सोऊंगा। अर्चनाकी नींद बुलानेके लिये लोरियां तुम गाती हो और मेरी खुशीके लिये कुछ भी नहीं।'

और रेखा चौंक पड़ी। शायद पहली ही बार सत्यकी बातें उसके कानोंमें पड़ी हों। शायद पहलेकी बातें, सत्यके अन्तर्जगतके अव्यक्त राग-भरी हों।

अपने ऊपर पड़ी चादरको सरकाते हुए कहा, 'कितना अच्छा लगता है, जब आप सब सोये रहते हैं और मैं प्यासी आंखोंसे देखा करती हूं।'

और सत्यसे कुछ नहीं सुना जाता। विद्रोहकी करुणा तीव्रतासे भर आयी।

रेखा किस राहपर चली जा रही है? कितनी हल्की छिछली है यह रेखा स्वयंमें। सत्यके लिये किसी भी हालतमें गौरवकी बात नहीं।

तब रेखा उठी और तेलकी कटोरी रखने चली आलमारीमें। दुबली पतली सी, फिर भी ओजसे भरी······एक बोझिल छाया लिये।

यह रेखा है जिसमें नवयुगकी अन्तरात्मा बसती है—जो अभी अचेतन हालतमें है। तनिक सी चेतना उसमें एक जान सी भर सकती है—उसे अमरत्वकी ओर इंगित कर सकती है।

वह हंसी और भी कोमल बनी सी, "मैं आपके साथ सोऊं।"

······तिरङ्गा झण्डा हाथोंमें लिये वन्देमातरम्की आत्माकी तरह यह कौन छायी जा रही है? कितनी गहरी समवेदनासे पीड़ितोंको राह दिखा रही है। सब तो दीखता है साफ साफ। यह लहूसे लथपथ भारतका पुरुष तड़प रहा है। और वह उसके कानोंमें अमृत भर रही है। यह कौन है जो प्रतिमा सी उतर आयी है, पर पहिचानी नहीं जाती।

"लीजिये मैं आयी, थोड़ा किनारे हटिये न?" तब वह जैसे चेता, 'ओ···तुम।"

"हां, आपको छलाने आयी हूं?" वह मुस्करायी। एक प्रकम्पन सा उसने महसूस किया। नारी उसके गलेमें बाहें डालकर अपनी माला पहना रही है······। तुम भी भारतके सच्चे लाल हो······। तुम भी मेरा पथ अनुसरण करना··· आओ······।

वह चीख पड़ा—'रेखा'······

सहमी सी वह बोली···, हां।'

फिर यथार्थतासे वह घिर आया, "नहीं कुछ भी तो नहीं। रेखा तुम बहुत अच्छी हो···हां। अर्चना युग-युग तुम्हारी है। तुम इसे लेकर खेल सकोगी, हां। तुम बहुत भली हो···बहुत।"

सत्यने देखा-रेखा कितनी गरीब सी है। कुछ भी तो वहां नहीं है। सब साधारण सा है। दुबली पतली सी, पति और बच्चीकी ममतामें धुली सी और सबोंसे परे एक न समझमें आ सकनेवाली छाया है उसपर। उसी एक छायाके क्रमिक विकासमें रेखा खिल सकती।

लेकिन खिलेगी क्या?

पासकी चारपायीपर नन्हीं सी अर्चना जो सोई है···और यह स्वयं 'सत्य' है और उसी एक किनारे बन्धन सी आ पड़ी है रेखा। नवयुगकी अन्तरात्मा। हां, वही तो उसमें सोती है, पर चेतनाके क्षणिक स्पर्शसे ही गतिशील हो सकती है।

"अर्चना कितनी गहरी नींद सोती है। जाने क्यों दोपहर तक रोती रही। मुझे कितना दुःख लगा सो आप क्या समझेंगे। आप तो इन बातोंमें उलझते ही नहीं।"

सत्यको सोचनेको बहुत सी बातें हैं—सत्याग्रह, जेल, स्वतन्त्रता······। यह तो लाख लाख बच्चोंका रोना-

कल्पना छुन रहा है। और खुद भी रोता विलख रहा है। यह रेखा कितनी नासमझ है। मुश्किलसे जो जीनेका काम होता है वही क्या कम है। भिखमङ्गोंको ओर उसकी नजर नहीं जाती जो भूखसे मरते हैं। जिनके घिनौने बच्चे हाथ पसार पसार कर पुकारा करते हैं। "उमर बनी रहे एक पैसा।"

सो रेखा कुछ नहीं जानती। एक पैसेका 'संगीत' उसे नहीं छुनायी पड़ता। कितनी आत्माओंकी कीमत बस एक पैसा ही है इसे भी वह नहीं महसूस करती। मा अपने भूखे बच्चोंको लोरियां गा गाकर छलाती है,...कि दूध नहीं है। और दूध न रहनेपर बच्चा रोये तो उसे छला ही देना चाहिये। और रेखा अर्चना के 'ऊं ऊं...' पर निसार होती है, अधीर मा...।

यह सब क्या है ? यह क्यों है ?

ये स्वतन्त्रताके पुजारी—

मौलाना और पण्डित बन्दी-गृहमें

"क्यों, शायद आप रूठे मालूम पड़ते हैं, बातें नहीं करते ! अपराध बन पड़ा हो, तो माफ कर दीजिये।"

सत्यको हंसी आ गयी। वह जोरसे हंसना चाहता था। वातावरणकी शून्यतामें कर्कश आवाज़ भरनेका ममत्व उसे नहीं था... पर रेखाकी सहमी दृष्टि उसे रोके रही... ...शायद अर्चना जाग पड़े।

रेखाको अपनी ओर खींचते हुए कहा, "तुम सुनती हो न रेखा ? मैं तुम्हें प्यार करता हूं। तुम्हारी अर्चना भी कम प्रिय नहीं है। पर इन रेखाओंमें घिर कर मैं शायद ही रह सकता ! अभी अभी तो ख्याल आया था—ये स्याह लकीरें मुझे बांध लेंगी। पर मेरा चेतन मन कभी अचेतन नहीं हो सकता।"

रेखाको सब सूझ रहा है। ये पति हैं जो किसी सूक्ष्म भावनाके

शिकार हो गये हैं। और यह अपनी अर्चना है, जो अभी बनने के क्रममें है। तबतक तो रेखा भी गल-गलकर अन्तर्मुखी कैसे रह सकेगी......।

और सत्यकी आंखोंके सामने फिर एक जीवित जाग्रत भावना खिंच गयी है—वही अचेतनसे चेतन होनेकी बात। अपनी कारीगर सीधी तिरछी रेखायें खींच कर कल्पनाके सहारे भारत माका एक चित्र बनाया था। संयम, साधना और त्यागकी प्रतिमूर्ति-सी समायी पड़ती थी उसकी कलाएं झिझकते हुए और लजाते हुए उसने जवाहरलाल नेहरूको उस दिन चित्र दिखाया था और वे अपलक देखते रहे थे—सब कुछ भूल कर! और सत्य उनके चरणोंमें झुका था—उदास कंपित! उन्होंने आशीर्वाद देकर कहा था, "देशका दर्द तुम्हारी रेखाओंमें प्राण भरेगा...और सिमिट-सिमिट कर विलीन हो जायगा!"

और अब तो सभी जेलमें हैं। सारा देश खूनके आंसू रो रहा है। पर सत्य अपनी रेखा और अर्चनामें लीन घृणित-जीवनकी कड़ियां छलझा रहा है।

आज उसकी रेखाएं पैसेका साधन बनी हैं! और वह अङ्करेजी साहित्यके खारे सागरमें ग्रहणके दिन स्नान कर रहा है। माको जिन्दा रखनेके लिये, रेखाको प्यार करनेके लिये......अर्चना भी पनप रही है...मीठा-सा भार है सब। अपनी अप्रगतिशीलतापर उसे लाज है।

"मैं आपपर एक बोझ देखती हूं, जिसे आप उतार नहीं पाते! इतनी बोझिल वेदना और उदासी लिये क्यों रहते हैं। मैं इन्कार नहीं करती कि मैं आपके पांवोंकी कड़ियां हूं।"

यह रेखा कह रही है या खुद उसको चेतनाकी ध्वनि है। वह खुद अपनेको व्यक्त करना चाहता है पर वाणी नहीं मिलती। जैसे कहीं दूरसे ध्वनियोंकी एक-रसता उसके संशेरकी क्रमशीलताको नष्ट किये जा रही है...!

पर वह चाहता है कि सुना करे...सुना करे...?

...कि एकाएक अर्चना रो पड़ी। यह क्यों रोती है... माकी छाया तो इसे नसीब है;...फिर भी......! रेखा उसी चारपायीपर उसे कलेजेसे लिपटाये रहती तो शायद न रोती। इस तरह रेखा और अर्चनाके बीच एक लड़ी है जो सत्यकी अनुपस्थितिमें भी बनी रह सकती है।

रेखा कह रही है, "सो जा रानी मेरी...अभी निंदिया रानी नाचेगी...चांद टूट कर आ जायगा .... तेरा खिलौना.........तेरा प्रतिरूप........."

तब सत्यको लगा, ऐसी बातें सिर्फ रेखा ही कर सकती हैं। उसके अपने हृदयकी कविता चाह कर भी वैसी बातें नहीं सुना सकतीं। यह तो एक मा ही अपने बच्चेसे कह सकती है।

अर्चना शान्त सो रही। कितना सौन्दर्य छिपा है इसमें। बच्ची रोये और मा की एक पुचकार उसे चुप कर दे। सत्यके वशकी बात तो शायद कभी न होती? लेकिन रेखा इतना नहीं सोच सकती। इस पार्श्व भूमिकी सच्चाई उसे सहज साधारण जंचेगी। यहां एक मनोविश्लेषणका सत्य मात्र है और एक मानसिक भावुकताकी तीव्रता या सत्यता—जिसका एक सत्य वह आंक सकती है।

...दुबली पतली-सी रेखा, चेहरेपर सन्तोष और तृप्ति और कहीं अतल तलसे उभरती सिमटती छाया? और वह सत्यकी चारपाई पर आ रही है। अब सो जायगी। चादर ढकनेकी कोशिश कर रही है। ठंढक न रहनेपर भी। सत्य प्रतीक्षा कर रहा है। इस आत्मार्पण-शीलतामें कहीं जन्म-जन्मान्तरके लिये दुखकी छाया तो नहीं? जिसकी ओर उसकी मानसिक बनावट और भावुकता, रेखाके सुखकी छाया और परिस्थितियां संकेत करती रही हैं?

रेखा सतह सतह पर नारी है......अर्चनाको लेकर ही जीए। जब सत्यका सन्देश सारी दुनियापर व्यापक होकर फैल जायगा तो शाश्वत सत्य होगा भारतकी बेड़ियोंका टूटना। तब अगणित 'रेखाएं' आरती मन्दिरमें सूक्ष्मतर भावनाएं जलायेंगी और लाख लाख अर्चनाकी तरह शाश्वत खिलौनोंका सृजन होगा।

जवाहरलाल नेहरू जेलमें है, राजेन्द्र बाबू जेलमें है, और कांग्रेसके सभापति 'आजाद' भी जेलमें हैं। महात्मा गांधी विशाल पोतका पतवार लिये खड़े हैं। पाल उड़ रहा है......सागरमें आंधी है, आंधी भी पक्षमें नहीं......और सत्यका अन्तर्द्रष्टा और भी दूर जानेमें समर्थ है...

रेखा सो रही है, अर्चना सो रही है—सब शान्त! वह चुपकेसे उठा। पतली-सी चन्द्र किरण रेखाका मुंह चूम रही थी और छाया थी अर्चना पर! तभी सत्यने चार अधरोंपर चुम्बनकी छाप दे दी......तृप्त और अघाया-सा, दरवाजा सटकाकर बागमें उतर आया।

हरसिंगारकी घनी डालियां अपनी रेखाएं बना रही थी मिटती चांदनीमें। और सत्य जरा मीठे विस्मयसे जगा सा उठा और वे स्याह लकीरें उसके दृष्टिपथको प्रशस्त करती गयीं, विलीन होती गयीं......
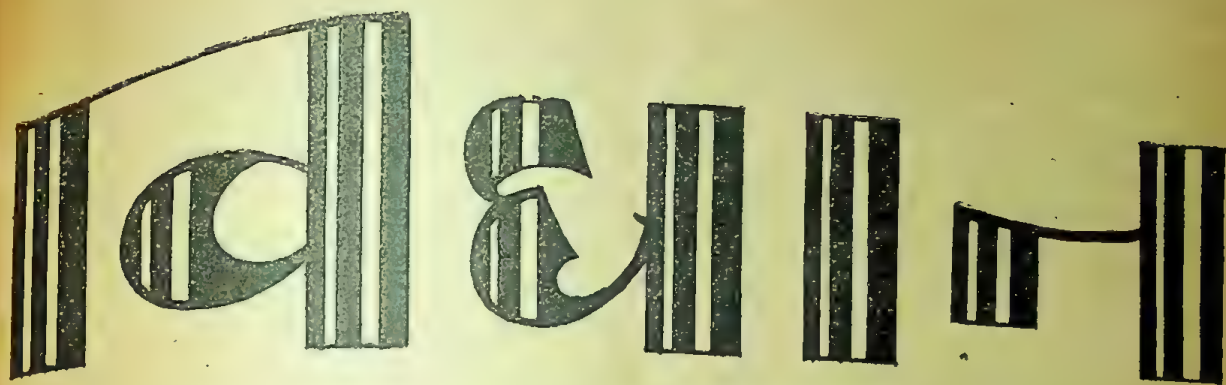
आश्विन शुक्ल नवमीका दिन था। दो व्यक्ति संध्या-के पांच बजे एक इक्के द्वारा नगरकी ओर आ रहे थे। दोनों परस्पर बात करते आ रहे थे। एकका नाम प्यारेलाल तथा दूसरेका नाम श्यामलाल था। दोनों घनिष्ट मित्र थे। श्यामलाल कह रहा था—"अब कल दशहरा घरमें होगा।"

"हां भाई त्योहार घरमें होना ही चाहिए। न आते तो घरवालोंको बड़ी निराशा होती।"

"यही सोचकर तो मैं चल दिया नहीं तो अभी लौटनेका इरादा नहीं था।"

"और मुझे थी व्याकुलता। तुम टालमटूल कर रहे थे। तुम न आते तो मैं अकेला ही चल देता।"

"यही देखकर तो मैं भी चल दिया। मैंने देखा कि तुम मानोगे नहीं, जरूर जाओगे और मैं रह जाऊंगा अकेला। अकेले मेरी तबीयत न लगती, इस मारे मैंने सोचा कि हटाओ, घर ही चलो, त्योहार करके फिर लौट आयेंगे।"

"हां—आं! त्योहार हो जाय, फिर क्या है जब चाहना आ जाना।"

इसी प्रकारकी बातें करते हुए दोनों चले आ रहे थे। जब शहर एक मीलके लगभग रह गया तो एक स्थानपर सड़कके किनारे कुछ बस्ती मिली। यहां हलवाई तथा पानवालेकी दुकान थी। प्यारेलाल इक्केवालेसे बोला—"जरा यहां रोक देना! पान-वान खा लें तब चलेंगे—बड़ी देरसे पान नहीं मिला।"

इक्केवालेने तम्बोलीकी दूकानके सामने पहुंचकर इक्का रोक लिया। दोनों इक्केसे उतरकर दूकानके निकट पहुंचे। श्यामलालने एक इकन्नी फेंककर तम्बोलीसे कहा—"चार पैसेके बढ़िया पान बनाओ।"

यह कहकर वह अपना मुख तम्बोलीके दर्पणमें देखकर टोपी सुधारने लगा।

इधर प्यारेलाल चिड़ीमारोंको देख रहा था।

तम्बोलीकी दूकानके बगलमें दो चिड़ीमार बैठे सुस्ता रहे थे। इनके निकट ही दो बांसोंमें बंधे हुए चार बड़े-बड़े पिंजरे थे। इन सबमें नीलकण्ठ भरे थे। नीलकण्ठ इस बुरी तरहसे भरे गये थे कि एकपर एक लदा था।

प्यारेलालने चिड़ीमारोंसे पूछा—"इतने नीलकंठ कल छोड़ोगे?"

"हां साहब!" एक चिड़ीमारने लापरवाहीसे कहा।

"इतने सब छुट जायंगे?" प्यारेलालने आश्चर्यसे कहा। फिर कुछ सोचकर बोला—

"सब तो क्या छुटेंगे। बच जायेंगे तो उन्हें क्या करोगे?"

"पड़े रहेंगे। कोई भागवान छुड़वा देगा तो वह भी छोड़ दूंगा।"

इस वार्तालापसे श्यामलालका ध्यान चिड़ीमारोंकी ओर आकर्षित हुआ। उसने प्यारेलालसे पूछा—"क्या बात है?"

"कुछ नहीं। ये चिड़ीमार नीलकंठ पकड़कर लाये हैं। कल दशहरा है न। कल नीलकंठके दर्शन किये जायेंगे, कुछ लोग छुड़वायेंगे भी।"

श्यामलाल कुछ क्षण तक चुपचाप पिंजरोंकी ओर ताकता रहा। सहसा बोला—"ये कुल कितने हैं?"

"अब जितने हों, हमने गिने नहीं हैं।"

"खुद तो पकड़कर लाये हो और गिने नहीं।"

"सौके करीब हैं।"

श्यामलाल पुनः नीलकंठोंको ताकने लगा। नीलकण्ठ बेचारे फड़फड़ा रहे थे। कुछ बेदमसे होकर चोंच खोले शिथिल बैठे थे। सहसा श्यामलाल बोल उठा—

"अच्छा इन सबको छोड़नेका क्या लोगे?"

"जैसा आदमी मिलेगा वैसा ले लेंगे।"

"ठीक दाम बताओ तो हम अभी सब छुड़वा दें। तुम कलकी चिन्ता छोड़कर आरामसे पैर फैलाकर सोना।"

"तीन आना नीलकंठ दीजिये तो सब छोड़ दूं।"

"यह बात गलत है। सब छुड़वा रहे हैं, ठीक दाम कहो।"

प्यारेलाल विस्मित होकर श्यामलालकी ओर ताक रहा था।

चिड़ीमारने पूछा—"आप क्या देंगे।"

प्यारेलाल झट बोल उठा—"एक आना नीलकंठ।"

"एक आनेमें नहीं होगा। कल आप ही चार-चार आने देकर छुड़वायेंगे।"

"तो एकाध छुड़वा देंगे। इस समय तो हम तुम्हें सबके दाम इकट्ठा दे रहे हैं। रातमें इन्हें रखोगे, चारा दोगे—।"

प्यारेलाल बोला—"चारा तो ये दे चुके। चारा भला क्या देंगे—पानी-वानी पिला देंगे, सो भी इस डरसे कि मर न जायें।"

"वाह साहब! ऐसा कहीं होता है, चारा तो जरूर देंगे। भूखों थोड़े ही मारेंगे।" चिड़ीमारने कहा।

तम्बोली बोला—"चारा ये खायेंगे भी नहीं। जंगलका पंछी पिंजरेमें चारा नहीं खाता। जब बहुत भूखा होता है तभी खाता है। हां साहब, पान लीजिये।"

श्यामलालने पान ले लिये। दो पान इक्केवालेको दिये और शेष स्वयं खाये और प्यारेलालको खिलाये।

"एक डिब्बी सिगरेट भी देना।" कहकर उसने पुनः पैसे जेबसे निकाले और तम्बोलीके सामने रख दिये। तत्पश्चात् चिड़ीमारसे वह बोला—"बोलो, क्या कहते हो?"

"एक आनेमें नहीं होंगे।"

"अच्छा छः पैसे लोगे।"

"दो आना नीलकंठ दीजिये तो सब अभी छोड़ दें। बसेरेका वखत है, अभी अपने-अपने ठिकाने पहुंच जायेंगे आपको दुआ देंगे।"

प्यारेलाल बोला—"लासा तो नहीं लगा है? लासा लगा होगा तो कैसे उड़ेंगे।"

"छोड़नेवाली चिड़िया लासेसे नहीं पकड़ी जाती हुजूर! जाल लगाकर पकड़ा है। लासेका निसान भी हो तो पैसा न देना।"

तम्बोली बोला—"यह लासेसे नहीं पकड़े होंगे—छोड़ना है न। लीजिये सिगरेट!"

श्यामलाल डिब्बी हाथमें लेकर उसमेंसे सिगरेट निकालता हुआ बोला—"बोलो जल्दी!"

"छः पैसेमें नहीं होंगे।"

"अच्छा तुम्हारी मरजी! आओ प्यारे!" दोनों इक्केकी ओर बढ़े। श्यामलाल उचककर इक्केपर बैठ गया। प्यारेलाल जैसे ही बढ़ने लगा वैसे ही चिड़ीमार बोला "अच्छा साहब लाइये।"

श्यामलाल इक्केपर बैठे हुए ही बोला—"हां, छोड़ते जाओ, हम गिनते जाते हैं।"

चिड़ीमारोंने नीलकंठ छोड़ने आरम्भ किये। जो नीलकंठ छूटता था वह प्राण लेकर भागता और क्षणमात्रमें अदृश्य हो जाता था। इस प्रकार कुल छियानबे नीलकंठ निकले।

श्यामलाल बोला—"नौ रुपये हुए?"

चिड़ीमारने हिसाब लगाकर कहा—"हां साहब।"

श्यामलालने रुपये निकालकर दे दिये।

प्यारेलाल मुस्कराकर बोला—"अब एक एक अद्धा पीकर घर जाना।"

चिड़ीमार हंस दिये। तम्बोली बोला—"इसमें भी कुछ कहना-सुनना है। पेटमें चाहे न खायें पर अद्धा जरूर पियेंगे।"

इक्केवाला बोला—"ठीक कहते हो। इनका तिवहार तो खरा रहा।" यह कहकर उसने इक्का बढ़ाया।

श्यामलाल एक धनी वैश्य विधवाका दत्तक पुत्र है। पतिकी मृत्युके पश्चात् विधवाने श्यामलालको गोद लिया। विधवाके कारोबारकी देखभाल एक कारिन्दा करता था—नाम था चेतराम। चेतरामका विधवासे अनुचित सम्बन्ध स्थापित हो गया। घरकी एक महरी यह बात जान गयी। चेतरामको भी पता लग गया कि महरी उसके तथा विधवाके सम्बन्धको जान गयी है। अतः उसने महरीकी हत्या करवाके उसकी लाश एक कुएंमें डलवा दी। चार दिन पश्चात लाश कुएंसे निकाली गयी। चेतरामपर पुलिसको सन्देह हुआ; पर प्रमाणाभावसे पुलिसने चेतरामसे रिश्वत लेकर मामला रफा-दफा कर दिया।

विधवाका पुत्र श्यामलाल आवारा हो गया। उसका काम था केवल यारबाशी तथा अन्य कुकर्मोंमें रुपया फूंकना। चेतरामके परामर्शसे ही विधवाने श्यामलालको गोद लिया था अतः चेतराम भी श्यामलालसे स्नेह करता था। इस कारण चेतराम श्यामलालके कार्योंकी उपेक्षा करता था।

श्यामलालके एक पुत्र हुआ और वह पन्द्रह सालका हो गया।

नीलकण्ठ छुड़वाने वाली घटना हुए दस साल व्यतीत हो गये।

एक दिन श्यामलाल चेतरामसे बोला—"चाचा, मुझे पांच सौ रुपये चाहिए।"

"क्या करोगे?" चेतरामने पूछा।

"कुछ करूंगा, आप रुपये दीजिए।"

"तुमने रुपया नष्ट करनेके अतिरिक्त आज तक क्या किया। अब तुम्हें रुपया नहीं मिलेगा।"

"न दो, मैं अम्मांसे ले लूंगा।" यह कह कर श्यामलाल अपनी माताके पास पहुंचा। चेतराम भी उसके पीछे पीछे गया। मातासे उसने रुपये मांगे। माता बोली—"अपने चाचासे मांग, वही देंगे।"

श्यामलाल बोला—"मांगे थे, उन्होंने इन्कार कर दिया।"

चेतराम श्यामलालके पीछे खड़ा था—वह बोला—"हजारों रुपया इसने बर्बाद कर दिया। तैंतीस-चौंतीस सालका होने आया परन्तु अब भी इसकी आदतें नहीं सुधरीं। एक लड़का है, उसके लिए भी कुछ छोड़ेगा या सब स्वयं ही फूंक डालेगा।"

श्यामलालकी माता बोली—"तुम्हींने दुलार कर—करके इसे बिगाड़ा है। जहां जिद की झट रुपया निकाल कर दे दिया। मैं तो कभी न देती।"

"खैर,जो दिया सो दिया, अब नहीं दूंगा।"

"अच्छा इस दफा और दे दो फिर कभी मांगूं तो न देना।"

"यह सब तुम्हारी बातें हैं। चार दिन बाद फिर आ खड़े होगे।"

"मैं रामलालकी कसम खाता हूं कि अब कभी न मांगूंगा।" रामलाल श्यामलालके पुत्रका नाम था।

चेतराम कुछ क्षण सोच कर बोला—"अच्छा, इस बार और दिये देता हूं।"

चेतरामने श्यामलालको पांच सौ रुपये दे दिये।

उसी दिनसे श्यामलाल लापता हो गया। कुछ दिन व्यतीत होनेके बाद, जब श्यामलालका पता लगनेकी आशा कम हो गई तो विधवाने चेतरामसे कहा—"इस रामलालको किसी काममें लगाओ, नहीं तो यह भी बापकी तरह कुचाली हो जायगा।"

"मैं भी यही सोच रहा हूं। कुछ कारोबार किया जाय और उसमें इसे जुटा दिया जाय।"

यह निश्चय होनेके पश्चात चेतरामने पत्थरका व्यापार आरम्भ किया। जिस नगरमें इनका घर था उस नगरमें पत्थरका ही काम अधिक होता था; क्योंकि वहां प्रत्येक प्रकारका पत्थर सुलभ था।

एक साल तक चेतराम स्वयं कार्य करता रहा और अपने साथ रामलालको भी काम सिखाता रहा। जब उसे विश्वास हो गया कि रामलाल कार्य सम्भाल लेगा तब उसने अपना निरीक्षण शिथिल कर दिया।

इसी बीचमें एक दिन रामलालको एक लिफाफा मिला जो उसीके नाम था। रामलालने खोल कर पढ़ा। पत्रमें लिखा था:—

चिरंजीव बेटा रामलाल!

मैं आजकल यहां हूं। एक जगह नौकरी करके बड़े कष्टसे जीवन व्यतीत कर रहा हूँ, कुछ पचास रुपये मिलते हैं। सैकड़ों रुपया मासिक खर्च करनेवालेके लिये पचास रुपये क्या चीज हैं, परन्तु अब मैंने पुरानी बातें छोड़ दी हैं। अब मैं यहां एक भले आदमीकी भांति जीवन व्यतीत कर रहा हूं।

बेटा, यहां व्यापार करनेका बड़ा अच्छा साधन है। यदि आठ-दस हजार रुपये लगा दिये जायं तो बहुत कुछ कमाया जा सकता है। मुझे पता लगा है कि तुमने वहां पत्थरका व्यापार किया है। मेरी समझमें नहीं आता कि इस व्यापारमें क्या धरा है। वहां पत्थरका काम करनेवाले बहुत बड़े-बड़े व्यापारी हैं, उनके सामने तुम क्या कमाई कर सकोगे। इसके अतिरिक्त जो कुछ कमाओगे वह चेतराम हड़प लेगा—तुम्हारे हाथ क्या लगेगा? इसलिये यदि तुम आठ-दस हजार रुपये लेकर यहां चले आओ तो हम दोनों बाप- बेटे मिल कर काम करें। चेतरामको यह हाल न बताना। मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करूंगा।

तुम्हारा पिता—
श्यामलाल

यह पत्र कानपुरसे आया था। श्यामलालने अपना पूरा पता भी लिखा था।

हरीसिंह रामलालका एक विश्वस्त नौकर था। उससे रामलालने परामर्श किया। उसने अपने पिताके पत्रका हाल बताकर उससे पूछा—"तुम्हारी क्या सलाह है हरीसिंह?"

"जैसा आपकी समझमें आवे कीजिए।"

"बात तो पिताजीने ठीक ही लिखी है। यहां तो चेतराम सर्वेसर्वा हैं।"

"हां है तो, परन्तु मालिक तो आप ही हैं। हक तो आपका ही है। चेतरामके कौन बैठा है? उसके अपना कोई लड़का-लड़की तो है नहीं जिसके लिए वह आपका धन ले लेगा।"

"अरे तो जब कहीं चेतराम मरेगा तभी तो हमारा पूरा अधिकार होगा।"

"हां, इतनी बात तो जरूर है। चेतरामके जीते जी तो उसीकी चलेगी।"

"मैंने यह सोचा है कि रुपये तो पिताजीको भेज दूं। तुम लेकर चले जाना और वहीं पिताजीके पास रहना। मैं मौका देखकर पहुंच जाऊंगा।'

"मेरी बाबत चेतराम पूछेगा तो क्या कहियेगा।"

"कह दूंगा कि छुट्टी लेकर घर गया है।"

"अच्छी बात है।"

(३)

दूसरे दिन रामलालने चेतरामसे कहा—"कुछ रुपया और दीजिए तो काम करनेका आनन्द मिले। हाथ-पैर फैलानेको तो रुपया चाहिए। संगमरमरका स्टाक हमारे पास बिल्कुल नहीं के बराबर है। उसका कुछ तो स्टाक होना चाहिए।"

"कितना रुपया चाहते हो?"

कमसे कम दस-बारह हजार रुपये दीजिये। इससे कममें क्या काम चलेगा।"

चेतराम विचार करके बोला—"अच्छा!"

दो दिवस पश्चात चेतरामने बारह हजार रुपये रामलालको दे दिये। उसमेंसे दस हजार रामलालने हरीसिंहको देकर अपने पिताके पास भेज दिया।

हरीसिंहके जानेके तीन चार दिन बाद चेतरामने रामलालसे पूछा—"हरीसिंह कहां गया—दिखायी नहीं पड़ता।"

"छुट्टी लेकर घर गया है।"

"कितने दिनकी छुट्टी ले गया है?"

"पन्द्रह दिन की।'

चेतराम कभी-कभी दुकानके बहीखाते जांचा करता था। एक दिन अकस्मात आकर उसने बहीखातोंकी जांच की। जांच करके बोला—"यह क्या बात है। मैंने तुम्हें जो बारह हजार रुपये दिये उनका जमा खर्च कागजमें नहीं है?"

रामलाल कुछ सिटपिटा कर बोला—"हां अभी नहीं किया। कर दूंगा।"

रामलालके सिटपिटानेसे चेतरामको सन्देह हो गया। उसने पूछा—"रुपया क्या हुआ?"

"अभी तो रखा है।"

"पत्थर नहीं खरीदा?"

"बातचीत हो रही है। भाव-ताव ठीक नहीं हुआ।"

कुछ क्षण सोच कर चेतराम बोला—"अच्छा, तिजोरीकी चाबी तो लाओ।"

रामलाल बोला—"क्या आपको मेरी बातका विश्वास नहीं।"

"विश्वास है, पर जरा रोकड़ भी तो देख लूं।" थोड़ी हुज्जतके पश्चात रामलालने चाबीका गुच्छा चेतरामके सामने फेंक दिया और वहांसे चला गया।"

चेतरामने जो रोकड़ संभाली तो दस हजार रुपये कम थे। चेतरामने मुनीमसे पूछा—"दस हजार रुपया क्या हुआ?"

"मैं क्या जानूं, सरकार! जो रकम कागजमें नहीं है, उसका मुझे क्या पता।"

"हूं" कहकर चेतराम विचार करने लगा। थोड़ी देर पश्चात बोला—"जैसा बाप वैसा ही बेटा! दोनों दगाबाज निकले। मैंने इनके लिए क्या-क्या किया, पर इन्होंने कोई कदर न की। मेरे कौन बेटा-बेटी बैठा है? मैं तो इन्हींके लिए सब कर रहा था।"

"ठीक बात है, सरकार! आजकल जमाना ही ऐसा है। नेकी बर्बाद गुनाह लाजिम!"

"पर मैंने गुनाह भी क्या किया, यह समझमें नहीं आता।"

"अब क्या कहा जाय! कुछ कहते नहीं बनता। एक बात तो मैं जानता हूं। श्यामलालकी चिट्ठी आई थी।"

चेतराम चौंक पड़ा। उसने उत्सुक होकर पूछा—

"कब ?"

"दस बारह दिन हो गये ।"

"तुम्हें कैसे पता लगा ?"

"बात यह हुई कि छोटे लाला चिट्ठी गद्दी पर रख कर किसी कामसे चले गये थे—मैंने वह चिट्ठी पढ़ी थी ।"

"हां ! क्या लिखा था ।"

मुनीमने सब वृत्तान्त बताया । सब सुनकर चेतराम बोला—"तब तो दस हजार रुपया श्यामलालको भेज दिया गया । अब समझमें आया । पता तुम्हें याद है ?'

"पता मैं अच्छी तरह देख नहीं पाया, छोटे लाला आ गये तो मैंने झटपट चिट्ठी यथास्थान रख दी थी । पर मुहल्ला याद है । मकान नम्बर भी दिया था पर वह मैं देख नहीं पाया, या मुझे याद नहीं रहा ।"

"रुपया कैसे भेजा गया ?"

"यह मुझे मालूम नहीं । हरीसिंहसे कुछ सलाह करते हुए, मैंने छोटे लालाको देखा था ।"

चेतराम नेत्र विस्फारित करके बोला—"अरे ! तब तो ऐसा मालूम होता है कि हरीसिंह ही रुपया लेकर कानपुर गया ।"

"हो सकता है । क्योंकि जिस दिन आपने रुपया दिया है उसीके दूसरे दिन शायद वह गया ।"

चेतरामने रुपया देनेकी तारीख बताई । मुनीम बोला —"ठीक ! दूसरे ही दिन हरीसिंह छुट्टी लेकर गया ।"

"हूं ! अच्छा !"

यह कहकर चेतराम चला गया । उसी दिनसे रामलाल भी लापता हो गया । चेतरामने दो-तीन दिन प्रतीक्षा करनेके पश्चात यह समझ लिया कि रामलाल भी अपने पिताके पास चला गया ।

तीन-चार दिन पश्चात चेतरामने भी अकेले ही कानपुरके लिए प्रस्थान किया ।

कानपुर पहुंचकर चेतरामने एक धर्मशालामें डेरा डाला ।

दूसरे दिन प्रातःकाल मकानका पता लगाकर चेतराम श्यामलालके निवासस्थान पर पहुंचा । यह मकान एक बड़ा मकान था, जिसमें अन्य किरायेदार भी रहते थे ।

श्यामलाल तथा रामलाल चेतरामको देखकर पहिले तो हक्का-बक्का रह गये;परन्तु फिर शीघ्र ही हवास दुरुस्त करके श्यामलाल मुस्कराते हुए बोला—"चाचा तुम आ गये, यह अच्छा किया ।"

चेतराम बोला—हूं, मैं आ गया । परन्तु मैं यहां रहने नहीं आया हूं । दस हजार जो रामलालने तुम्हें भेजा है वह लेने आया हूं । वह रुपया मुझे दे दो—बस मैं चला जाऊं । मैं तुम दोनोंका मुंह नहीं देखना चाहता ।"

रामलाल उत्तेजित होकर बोला—"आप रुपया मांगने वाले कौन हैं ? मालिक हम दोनों हैं । हम अपना रुपया लाये हैं ।"

चेतराम बोला—"जब तक सेठानी जीवित है तब तक तुम दोनों कोई चीज नहीं हो । और जब तक सेठानी जीवित है तब तक मैं मालिक हूं, मैं।" यह कहते हुए चेतरामने अपनी छाती ठोंकी ।"

श्यामलाल बोला—"हां ! ठीक कहते हो; क्योंकि तुम खाली कारिन्दा थोड़े ही हो, सेठानीके खसम भी तो हो ।"

चेतरामके मुंह पर मानो तमाचा पड़ा । वह कुछ क्षण तक हतबुद्ध बना खड़ा रहा तत्पश्चात बोला—"श्यामलाल तुम्हें शर्म आनी चाहिये । अपनी माताके बाबत तुम ऐसे शब्द मुंहसे निकालते हो ।"

"कैसी माता और किसकी माता ! मुझे सब हाल मालूम है इसीलिये मैंने वहां रहना उचित नहीं समझा ।"

"देखो श्यामलाल मैंने तुम्हें अपने पुत्रके समान समझा । तुमने हजारों रुपया बर्बाद किया, वह रुपया तुम्हें मैं ही देता था ।"

"हां—इसलिये कि मैं तुम्हारे अनकूल बना रहूं—उसमें भी तुम्हारा ही स्वार्थ था ।"

"हे भगवान, इस बुढ़ापेमें मुझे यह सुनना भी बदा था—और उसके मुंहसे जिसे मैं पुत्रके समान समझता रहा ।" चेतरामने दुःखपूर्ण स्वरमें कहा ।

"पुत्रके समान समझते होते तो मुझे रुपये दे देकर मेरी आदतें न बिगड़ने देते ।"

तीनोंमें इस विषयको लेकर खूब कहा सुनी हुई । इसी समय बाजारसे साग-सब्जी लेकर हरीसिंह आ गया । उसने समझा-बुझाकर तीनोंको शान्त किया ।

चेतराम धर्मशाला लौट आया । चलते समय वह कह आया कि "दस हजार रुपये मुझे दे दो, मैं चला जाऊंगा ।"

उसके जानेके पश्चात बाप-बेटेने कुछ परामर्श किया और चार बजे शामको चेतरामके पास पहुंचे । चेतरामसे श्यामलाल बोला—"चाचा । हमारा कसूर माफ करो । हमने गुस्सेमें जो कुछ कहा हो उसे भूल जाओ । रुपया हमने काममें लगा दिया है । इस समय तो नहीं दे सकते पर हम

धीरे धीरे सब रुपया भेज देंगे—यह विश्वास रखो। और अब यहांसे चलकर हमारे पास रहो। दो चार दिन यहां घूमो फिरो फिर चले जाना। और चाचा, तुम तो मालिक ही हो। यहांके भी और वहांके भी। यहां जो कुछ हम पैदा करेंगे वह भी तुम्हारा ही है, किसी दूसरेका थोड़े ही है।

चेतराम मुलायम पड़कर बोला—"बेटा, जब तक तुम्हारी माता जीवित हैं तब तक जिम्मेदारी मुझ पर है—बादको तो तुम दोनों मालिक ही हो। मुझे क्या करना है। साठ बरसके निकट पहुंच गया हूं। मुझे तो अब दो रोटी खाना और राम भजन करना है। मैं क्या छाती पर धर कर ले जाऊंगा?"

"ठीक कहते हो, चाचा!"

इस प्रकार खुशामद करके श्यामलाल चेतरामको अपने यहां ले गया।

दो दिन पश्चात् एक दिन श्यामलाल चेतरामसे बोला—"चलो चाचा! तुम्हें गंगा पारकी सैर करा लावें। बड़ा रमणीक स्थान है।"

चेतराम राजी हो गया। शामको ५ बजे एक तांगा करके तीनों चले। हरीसिंह घर पर ही रहा।

पहले तीनों गंगा पार गये। वहां भांग-बूटी छानी गयी, कुछ अन्धेरा हो जानेपर तीनों इस पार आ गये। पुलके बाहर आने पर श्यामलाल बोला—"चाचा, आओ जरा इधरका दृश्य भी देख लो।"

तीनों तांगेसे उतर पड़े। श्यामलाल बोला—अब तांगा विदा करदें, यहांसे टहलते हुए चले चलेंगे—थोड़ी देर फूल-बागमें बैठेंगे।"

चेतराम बोला—"जैसी तुम्हारी इच्छा।"

श्यामलालने तांगेवालेको किराया देकर विदा कर दिया।

तीनों पुलके नीचे गंगा तटपर पहुंचे। वहांसे टहलते हुए पूर्वकी ओर गये यह स्थान बिलकुल निर्जन था और अन्धेरा भी हो गया था।

चेतराम गंगा तटपर खड़ा होकर गंगाका जल देख रहा था। श्यामलाल तथा रामलाल दोनों उसके पीछे खड़े थे। सहसा श्यामलालने अपने पाससे एक रस्सीका टुकड़ा निकाल कर चेतरामके गलेमें डाल दिया। चेतरामके मुखसे केवल 'हांय' निकला। इतनी ही देरमें बाप-बेटेने उसके गलेमें रस्सी कर दी। चेतराम यद्यपि बुड्ढा हो गया था, परन्तु उसके शरीरमें अब भी काफी बल था। उसने गला छुड़ानेका बहुत प्रयत्न किया; परन्तु इन दोनोंने उसे भूमिपर पटककर उसका गला रस्सीसे कस दिया। चेतराम कुछ देर छटपटा कर ठंढा हो गया। जब इन दोनोंको उसकी मृत्युका विश्वास हो गया तो दोनों उसे छोड़ कर भाग खड़े हुए।

* * *

दूसरे दिन प्रातःकाल रेलवेके खलासीने चेतरामकी लाश देखी और उसने पुलिसको सूचना दी। लाशके पैर पानीके अन्दर थे और धड़ बाहर!

पुलिसने लाश अपने कब्जेमें की। लाशकी जेबमेंसे एक कार्ड निकला, जो चेतरामने अपने नगरकी दूकानके मुनीम को लिखा था। इसमें उसने लिखा था कि वह श्यामलालके पास (मकानका पता दिया था) ठहरा हुआ है, चार छः दिन बाद घर पहुंचेगा। यह कार्ड डाकमें नहीं छोड़ा गया था।

पुलिसने इस कार्डके बलपर तफ्तीशकी और मकानमें रहने वाले अन्य किरायेदारोंसे यह मालूम किया कि इस नाम का एक आदमी श्यामलालके पास आकर टिका था।

पुलिसने श्यामलाल, रामलाल तथा हरीसिंह तीनोंको हिरासतमें ले लिया।

सन्ध्या समय मुनीम भी आ गया। उसने भी लाशको पहचान लिया।

श्यामलालने बयान दिया—"चेतराम मेरे पास आकर ठहरा था। उस दिन संध्या समय वह घूमने गया था, उसके पश्चात् वह रातमें वापस नहीं आया। हमलोग सवेरे यह सोच ही रहे थे कि क्या करें कि इतनेमें ही पुलिस पहुंच गयी।" मुनीमने केवल अपने बयानमें इतना ही कहा कि चेतराम घरसे यह कहकर चला था कि श्यामलालके पास जा रहा हूं। दस हजार रुपयेकी बात मुनीम दबा गया। मकानवालोंने यह भी बताया कि एक दिन चेतरामसे श्यामलाल तथा रामलालकी कहा-सुनी भी हुई थी।

इतने प्रमाणपर पुलिसने हरी सिंहको तो छोड़ दिया क्योंकि, उसको जिस संध्या दिन चेतरामकी हत्या हुई, हरी सिंह घरपर ही मौजूद था, श्यामलाल तथा रामलाल उपस्थित नहीं थे; और श्यामलाल तथा रामलालका चालान कर दिया।

विशेष प्रमाण एकत्र करनेके लिये पुलिसने रिमाण्ड लिया। गिरफ्तारीके दो मास पश्चात् मुकदमा आरम्भ हुआ। दोनों सेशन सिपुर्द किये गये।

सेशनमें मुकदमा चालू होनेके पूर्वही रामलालको कालरा हुआ और जेलके अस्पतालमें उसकी मृत्यु हो गयी।

श्यामलाल प्रमाणाभावके कारण छोड़ दिया गया।

तांगेवाला, जिसपर चेतराम सहित पिता-पुत्र गंगा पार गये थे, मौन साध गया।

गङ्गा पार, जिन लोगोंने इन तीनोंको ठंढाई-बूटी छानते देखा था, उन्होंने भी चुप रहना ही उचित समझा। इन लोगोंकी गवाही होनेपर कदाचित प्रमाण प्रवल हो जाता।

श्यामलाल कानपुर छोड़कर अपने देश लौट आया।

एक दिन उसका पुराना मित्र प्यारेलाल उससे मिलने आया। वार्तालाप करते हुए श्यामलाल बोला—"भाई प्यारेलाल! तुम जानते हो कि मेरी इतनी उम्र कुकर्म करते ही बीती। मैंने अपनी समझमें कोई अच्छा काम नहीं किया—यहांतक कि हत्या भी की। चेतराम चाहे जैसा रहा हो, पर वह मुझसे स्नेह करता था—इसमें कोई सन्देह नहीं। जब मेरी पत्नीका देहान्त हो गया तब मेरा जी यहांसे उचट गया और मैं पांच सौ रुपये लेकर कानपुर चला गया।"

इसके आगेका वृत्तांत बताकर श्यामलाल बोला—"मुझे यह ताज्जुब है कि मैं हत्या करके भी कैसे छूट गया। रामलाल बच जाता मुझे चाहे फांसी हो जाती।" यह कह कर श्यामलाल रोने लगा।"

प्यारेलाल बोला—"अपने-अपने कर्मोंका फल सबने पाया। चेतरामने महरीकी हत्या की थी, उसके बदलेमें उसकी हत्या हुई। तुमने जो कर्म किया उसका फल तुम्हें मिला, जवान लड़का जाता रहा—जीवन भर इसका दुःख रहेगा।"

"परन्तु मैंने भी तो हत्या की थी, मुझे फांसी क्यों नहीं हुई?"

प्यारेलाल कुछ क्षण विचार करके बोला—"भाई और तो तुमने कोई अच्छा काम किया नहीं। एक दफा तुमने नीलकंठ अलबत्ता छुड़वाये थे—शायद वही पुण्य आड़े आ गया हो। याद है?"

श्यामलाल बोला—"हां, तुम्हारे कहनेसे अब याद आ गया। ठीक सारी आयुमें एक वही काम मुझसे अच्छा हुआ—शायद उसीके कारण मैं बच गया।"

यह कहकर श्यामलाल, आंसू पोंछने लगा।"

नकली शायर

श्री बेढब बनारसी

दिल्ली मेल सरपट चली जा रही थी जैसे युद्धका चन्दा। संध्याके आगमनकी सूचना आकाशके तारे एकके पश्चात दूसरे दे रहे थे। डेढ़ घंटेके बाद दूसरा स्टेशन आएगा इसलिये लोग अपने-अपने मनोरंजनमें लगे हुए थे। यों तो ड्योढे दर्जेमें भी भीड़ थी परन्तु विशेष कशमकश न था। लोग सुखसे ही बैठे थे।

मेरे सामने एक सज्जन बैठे हुए थे। काले आलपाकेकी अचकन, काले बाल खूब सवारे हुए थे। चेहरेका रंग साफ था और अवस्था कुल छब्बीस सताइस सालकी थी। बारीक सुनहला चशमा आंखोंपर सुशोभित था। बगलमें फेजवाली मुसलमानी टोपी रखी हुई थी। मूंछे सिनेमाके अभिनेता-ओंसी महीन महीन छटी हुई थी, दाढ़ी साफ थी। पढेलिखे सुधरे हुए मुसलमानोंमें दाढ़ीकी आवश्यकता नहीं होती इतना मैं समझता था।

कुरानमें दाढ़ी रखना लिखा है कि नहीं मैं नहीं जानता किन्तु इतना समझ चुका था कि अंग्रेजी पढेलिखे, विश्व-विद्यालयोंमें पढ़नेवाले मुसलमान दाढ़ीको नमाज इत्यादिके साथ साथ कोई आवश्यक वस्तु नहीं समझते। मैं जब पढ़ता था तब शुक्रवारको छुट्टी लेनेके लिये बहुतसे मुसलमान विद्यार्थी नमाजी बन जाते थे। हां आधे तो उनमें अवश्य नमाज पढ़ने जाते थे किन्तु आधे हमारे साथ सिगरेट पान करने चले जाते थे।

कहनेका अभिप्राय यह कि यदि हिन्दू युवकको चुंदी हेट लगानेमें बाधक होती है तो टांके प्रदर्शनमें दाढ़ी अवश्य बाधक होती होगी, ऐसा मैं अनुमान कर सकता हूँ। अगर खरबूजेका रंग देख कर बताया जा सकता है कि यह मीठा होगा तो हम यह भी कह सकते हैं कि यह युवक बुद्धिमान भी होगा। इनके पास कोई सामान न था। न ओढ़नेका न बिछानेका। न सूटकेस। आज कलकी यात्रामें भले आदमी एक सूटकेस और एक होल्डाल लेकर तो चलता ही

है। किन्तु यह सज्जन और चार कदम आगे जान पड़ते थे। सुनता हूँ, कि यूरोपमें ओढ़ना-बिछौना ले चलनेकी प्रथा नहीं है। बहुत सम्भव है उसी विचारके उपर्युक्त सज्जन हों। या सरकारकी नयी विज्ञप्ति हो, कमसे-कम सामान लेकर चलो, इन्हें मोह गयी हो। भले आदमी लोग सदा राजा, शासककी, आज्ञाका पालन करना अपना धर्म समझते हैं।

पहले-पहल जब यह डब्बेमें आये बड़ी शान्तिसे बैठ गये। ऐसी शान्तिसे कि जान पड़ा आदमी नहीं बैठा कोई मूर्त्ति किसीने बर्थपर बैठा दी है। धीरे-धीरे आपने प्रत्येक व्यक्तिको देखा, जैसे डाक्टर अपनी डिस्पेंसरीमें आये प्रत्येक रोगीको एक बार देखता है और फिर चुपचाप हो गये। गाड़ी चलनेसे डब्बेकी सभी वस्तुएं हिलती थीं यहां तक कि किसी-किसी-का तो सारा शरीर हिलता था जैसे दुर्बलोंका हृदय। किन्तु नवयुवक मौलाना ऐसे बैठे थे मानो किसीने गाढ़ी लेईसे इन्हें बर्थपर चिपका दिया हो।

पहले-पहल इनकी बोली सुनायी पड़ी जब फतेहपुर स्टेशन आया। फतेहपुरकी पूरियां अच्छी होती हैं। इसलिये मैंने वहीं भोजन करनेके लिये पूरियां ले लेना ठीक समझा। मेरे पूरी लेनेके पश्चात् ही आपने बेचनेवालेसे पूछा, दस रुपयेके टुकड़े होंगे। उसने उनकी ओर पहले देखा जैसे कोई अजायब घरमें कोई नया पक्षी देखता है, फिर बोला नहीं। उन्होंने कहा आपके पास पैसे हों तो पाव भर पूरियां ले लीजिये आगे स्टेशन पर मैं भुना कर दे दूंगा।

एक तो उन्होंने पैसे मेरे पास देख लिये थे, दूसरे एक सहयात्री मांग रहा था, तीसरे रहीमका दोहा, चौथे राष्ट्री-यताका भाव सभीने कहा कि अवश्य दे दो। मैंने पूरी खरीद दी। गाड़ी चल पड़ी और मैंने भी भोजन आरम्भ किया, उन्होंने भी। मुझे 'शुक्रिया' अदा करते हुए बोले— "क्या कहूँ आज कल रुपये भुनानेकी इतनी किल्लत है। मैं गया था दिल्ली रेडियोमें नज्म पढ़ने। उन्होंने सत्तर रुपयेका चेक दे दिया सो तो घर पहुंचूंगा तब भुनेगा। पासमें मेरे इस समय सौ-सौ रुपयेके दो नोट हैं और दस-दस रुपयेके तीन। बड़ी मुश्किल है।'

रेडियोमें वह कविता पढ़ने गये थे यह जानकर उनकी ओर मेरा आकर्षण बढ़ा जैसे सिनेमा अभिनेत्रियोंकी ओर आजकलके युवकोंका आकर्षण बढ़ता है। मैंने पूछा, आपका शुभनाम। उन्होंने कुछ मुस्करा कर, कुछ लज्जासे अपनेको संकुचित करते हुए पुराने युगकी कुमारियोंके समान कहा। मैं तो एक नाचीज शख्स हूं। मुझे सागर नजामी कहते हैं।

मैं उर्दू कवियोंको प्रायः नहीं जानता। कभी कोई काम पड़ा नहीं। बिलायती नगरोंकी भांति उनके नाम सुन रखे थे। लन्दन सुना है, पैरिस सुना है, बर्लिन सुना है। कल्पनामें यह भी समझ लिया है कि वह कैसे होंगे। किन्तु सचमुच वह कैसे होंगे ईश्वर जानें।

मैंने समझ रखा था कि उर्दू शायर बड़ी-बड़ी जुल्फें रखें होंगे, डेढ़ हाथकी दाढ़ी होगी, आंखोंमें जामकी सुर्खी होगी, पतले दुबले फूंकनेसे उड़ जानेवाले होंगे। कमसे कम हिन्दी कवियोंके ही समान कन्धे तक बाल, बैठे गाल, धंसी आंखें होंगी। किन्तु यह तो ऐसे नहीं थे। स्वस्थ मनुष्यके समान दिखायी पड़े और पाव भर पूरियां बातकी बातमें चट कर गये। फिर शायर और बैलमें अन्तर ही क्या। मैंने समझा नवीन युग है। जब सभी बातें नयी हैं, नयी-नयी कल्पनाएं जाग्रत हो गयीं तब शायर भी बदल गया हो तो क्या आश्चर्य।

उर्दू कवितामें जब शिवाला शब्द आ गया, घंटा, ऋतु, साजन, पीत, (प्रीतिके अर्थमें) मन्दिर, पुजारी जैसे घोर हिन्दी शब्द आने लगे और इस कारण उर्दू कवितामें क्रांति हो गयी तब उर्दू शायर भी अवश्य बदला होगा। सागर निजामीकी सूरतसे मैं उतना ही परिचित था जितना गाजी मियाँकी सूरतसे। किन्तु उनकी कविता एकाध कहीं किसी पत्रमें पढ़ी थी। मैंने कहा चलो दर्शन भी हो गये। मैं भी दोस्तोंमें बैठूंगा तो कहूंगा कि सागर नजामीसे मुझसे परिचय है। उनको मैंने पूरी खिलायी है।

समाजमें इन बातोंका बड़ा प्रभाव पड़ता है। इसीसे बड़प्पन मिलता है। लोग कहते हैं मेरे पास वह छुरा है जिससे महात्मा गांधीने हजामत बनायी थी, मेरे पास वह कम्बल है जिसे सरोजिनी नैडू खरीदने वाली थीं, मेरे पास वह चप्पल है जिसे जवाहरलाल नेहरूने नाप कर छोड़ दिया था, मेरे पास वह कटोरी है जिसमें खान बहादुर मिर्जाभूरे खां म्युनिसपल कमिश्नर अफीम घोलते थे, मेरे पास वह खरहरा है जिससे टीपू सुलतानके घोड़ेका शरीर छिला जाता था। यह सब बड़ी बातें और महान पुरुषोंके योग्य हैं। मैं साधारण व्यक्ति इसीको गौरव मानता। अपने मनमें बड़ा प्रसन्न हो रहा था।

मैंने कहा साहस तो नहीं हो रहा है मगर क्या मैं पूछ सकता हूं कि रेडियोमें क्या आपने सुनाया था? उन्होंने

जवाब दिया क्या बताऊं आज कल शायरी तो कोई समझता नहीं। उस्तादाना कलामकी कोई कद्र नहीं। कलामकी बलागत और फसाहतको तरजीह नहीं दी जाती। वही चलती चीज लोग चाहते हैं। मैंने डरते डरते कहा माफ कीजियेगा मैंने तो आपकी बात ही नहीं समझी। लगामकी लागत और कवितासे क्या मतलब। उन्होंने कुछ चिढ़कर कहा लगाम नहीं कलाम और लागत नहीं बलागत। मैंने कहा इसका अर्थ। उन्होंने कहा जब आप इतना नहीं समझते तो मेरी शायरी क्या समझियेगा खाक। आपनेउर्दू पढ़ी है? मैंने कहा हां दर्जा चार तक पढ़ी है। उन्होंने कहा तब आप मेरा दिमाग न चाटिये। आप मेरी शायरी नहीं समझ सकते।

इतनेमें इलाहाबाद स्टेशन आ गया। कई आदमी गाड़ीसे उतरे। किसीने चाय मंगाई किसीने भोजन मंगाया, किसीने टांग सीधी करनेकी नियतसे प्लेटफार्म पर टहलना आरम्भ किया। हमारे शायर साहब भी बाहर गये। मैंने समझा नोट तोड़ाने गये होंगे। गाड़ी चलनेके कुछ पहले आप आ गये। और बैठकर बोले—लाहौल, यह भी कोई स्टेशन है। इतने बड़े रेलवे होटलमें भी दस रुपये नहीं भुन सके। मेरा तो इरादा हुआ कि देदूं पूरा नोट और चाय और टोस्ट मगवालूं मगर देखा कि डाइनिंग कार साथमें है, उसीमें चला जाऊंगा। मैंने कहा हां चले जाइये, वहां आराम भी मिलेगा।

गाड़ीने सीटी दी। गाड़ीमें गति आरम्भ हुई। सब लोग सम्भल कर अपनी अपनी जगह बैठ गये। गाड़ी बीस डग चली होगी कि टिकट परीक्षक महोदय चढ़ आये। जैसे यौवनावस्थामें भी कभी अचानक यमराज हमला कर बैठते हैं। उन्होंने पहले टिकटका परीक्षणआरम्भ नहीं किया। मेरी बगलमें आकर बैठ गये बड़ी सुविधासे एक-एक टिकट देखना आरम्भ किया। देखते जाते थे और उसमें छेद करतेजाते थे।

शायर साहबकी बारी आयी। उनसे जब टिकट मांगा गया तब उन्होंने कहा कि मैं करामत हुसेन गार्डके भतीजेके सालेकी बुआका भानजा हूँ। यह एक नयी बात ज्ञात हुई। मैंने सोचा कि इनकी सहायता करनी चाहिये। मैंने कहा साहब आप सागर नजामी विख्यात शायर हैं। दिल्ली रेडियोमें गजल पढ़ कर लौट रहे हैं। शीघ्रतामें टिकट लेना भूल गये होंगे।

टिकट परीक्षकने मेरी ओर देखा, कहा—खूब रही। मैं सागरको नहीं जानता? पचीसों बार मुशायरेमें पढ़ते सुना है। शायर साहब बोले 'नहीं नहीं वह तो मैंने मजाक किया था।' मुझे बड़ी चोट लगी। यही नहीं कि मित्र मण्डलीमें अब रोब नहीं जमेगा अपितु यह भी कि आठ आने मेरे बेकार गये। मैंने पूछा तो क्या आप सागर नजामी नहीं हैं? वह चुप थे जैसे भारतके सम्बन्धमें स्टालिन। फिर मैंने पूछा तो आप रेडियोसे नहीं आ रहे हैं। मरे हुए रोगीके समान वह चुप थे।

सब यात्री अब हम लोगोंकी बातें सुनने लगे। टिकट चेकरने सब बातें सुनी। उसने कहा कि आपको दिल्लीसे टिकट देना होगा। करामत हुसैनको मैं नहींजानता। मिर्जापुरमें उनको टिकट चेकरने उतारा। फिर क्या हुआ परलोक की कार्यवाहीकी भांति मुझे पता नहीं। जीवनमें एक बार एक शायरसे भेंट हुई वह भी नकली निकला।

एक साध

आंसू रे, हंस दो।

मेरे मानसकी गागरमें, निज सागर भर दो।
आंसू रे हंस दो।
मन की मौन डगर पर मेरी।
छाई है चिर गहन अंधेरी।
ले तारोंसे ज्योति मुझे भी, आभामय कर दो।
आंसू रे हंस दो।
पल—पलमें ये प्राण मचलते।
आसव से दुखके कण ढलते।

मेरे दुख-सुखके सपनोंको, जागृति का वर दो।
आंसू रे हंस दो।
मेरे साथ रहो अलबेले।
आओ आंख मिचौनी खेलें।
मेरे प्यार न मुझसे रुठो, निशिदिन साथ रहो।
आंसू रे हंस दो।

—कुमारी शैल रस्तोगी

कविताका सङ्गीतसे सम्पर्क

श्री शिवनारायण शर्मा, साहित्य-भूषण

इस बातका निरुपण करना जरा कठिन है कि कविता और सङ्गीतमें श्रेष्ठ कौन है तथा दोनोंमेंसे पहले कौन उत्पन्न हुआ। भावकी मध्यस्थता दोनोंमें होते हुए भी काव्य-भाव प्रधान है, सङ्गीत स्वर प्रधान। और इस तरह विवेचकके आगे उत्तरके बजाय एकअनन्त प्रश्न विरामका चिन्ह ही रह जाता है कि पहले कौन ? यों साधारणतया यही बात मान लेनी पड़ती है कि उम्रके हिसाबसे काव्य और सङ्गीत दोनों आस-पासकी वस्तुएं हैं। प्राचीन ग्रन्थोंमें अनेक स्थलोंमें सृष्टिकर्त्ताको एकमात्र श्रेष्ठ कलाकार और कवि-गायक कहा गया है और इसका अर्थ यह होता है कि यह सारी सृष्टि उस महान् कविका काव्य या गायकका सङ्गीत है। यानी हम यह कह ले सकते हैं कि साहित्य और सङ्गीत का सम्बन्ध अविच्छेद्य है। संसारके श्रेष्ठ मनीषियोंने विभिन्न प्रकारसे यह सिद्ध किया है कि सङ्गीतके अभावमें काव्य काव्य नहीं हो सकता। काव्यको अपने भावोंकी अभिव्यंजनाके लिये दो बातोंका सहारा लेना अनिवार्य हो जाता है। एक है चित्र दूसरा सङ्गीत।

चित्र भावको आकार और सङ्गीत उसे गति देता है ! ये दो बातें ही काव्यकी आत्मिक शक्ति या सप्राणता हैं। आधुनिक कलाकी कसौटीका एक सूत्र है कि जिस कलामें जितने ही स्थूल उपादानोंकी कमी हो; वह उतनी ही श्रेष्ठ है। अतएव कतिपय लोग सङ्गीतको सर्वश्रेष्ठ कला मानते हैं। उनका कहना है, अन्य कलाओंसे काव्य श्रेष्ठ है, क्योंकि इसमें शब्दके अतिरिक्त कोई स्थूल आधार नहीं। और सङ्गीत काव्यसे भी श्रेष्ठ है, क्योंकि उसे शब्दकी भी अपेक्षा नहीं होती, मात्र आलापसे ही उसका काम चल जाता है।

ख़ैर, यहां श्रेष्ठता या उम्रके प्रतिपादनकी आवश्यकता नहीं। और यह विषय भी विवाद-ग्रस्त है। हमें तो यह देखना है कि इन दोनोंका सम्बन्ध क्या है, कैसा है ? प्लेटोंने कहा है—जो अभिनव है वही सबसे सुन्दर सङ्गीत है। और साहित्यकी जो चरम सिद्धि है वही अभिनवता या मौलिकता है। फलतः हम यह देखते हैं कि साहित्य और सङ्गीतका लक्ष्य एक है। दोनोंके कार्य भी एक हैं, हृदय-विमोहन। कार्यतः भी दोनों सहयोगीसे हैं, दोनोंके व्यापारका क्षेत्र मानव-हृदय है। कविताको प्रभावोत्पादकताके गुणके लिये सङ्गीतका आश्रय लेना पड़ता है और सङ्गीतको उसी कार्यकेलिये स्वरके साथ शब्द-संयोजनाका। बिना शब्दके सङ्गीत हो सकता है पर वह केवल सोना होगा। शब्दके समन्वयसे उसमें सुगन्ध भी होगी। अतः हम देखते हैं कि दोनों एक दूसरेसे अलग नहीं किये जा सकते।

आज साहित्य और सङ्गीतके सम्बन्धमें कलाकारोंमें उदासीनता दिखाई देती है, इससे दोनोंमें आज जो पृथकता हम देख रहे हैं वह बहुत काल पहले नहीं थी। प्राचीन-ग्रन्थों को देखनेसे यह ज्ञात होता है कि ये दोनों शास्त्र पृथक नहीं थे। दोनोंमें गाढ़ा सम्बन्ध था। बात सप्रमाण सिद्ध हो सकती है, रामकली रागिनी लेलीजिये। शास्त्रोंमें इसका स्वरूप इस प्रकार वर्णित है :—

> ह्रेपयन्ती भृशं हेमकान्त्या स्वया,
> नीलवासो युता सर्वभूषा व्रता
> भाल संशोभि कस्तूरिका विन्दुकं
> विभ्रती हावभावा दिकान् विभ्रमान्
> स्वप्रियान्वीक्षणे,त्युत्सुका सुस्थिता।
> षड्ज गेहस्थिता सा वसन्ते श्रुतै॥
> यामिनी तुर्ययामे सया गीयते,
> नीयते वासरः सम्पदेन ध्रुवम्।

इस रागिनीका तन सुवर्ण-सा प्रभायुक्त है। यह अपनी ज्योतिसे औरोंको शर्माती हुई नील वस्त्र धारण करती है। विविध आभूषणोंसे सजी हुई ललाटपर कस्तूरीका तिलक लगाती है। हाव-भाव और कटाक्षोंसे परिपूर्ण अपने प्यारेको देखनेके लिये उत्कंठित बैठी रहती है। यह षड्ज स्वरमें बसन्त ऋतुकी रात्रिके चौथे पहरमें गायी जाती है। एक उदाहरण लीजिये :—

> बिनती सुनि श्याम सुजान
> अतिहि मुख अपमान की हो हढ़ इनते आनि
> अब करो दुःख दूर इनको भजो तज अभिमान
> विरह द्वन्द निवारि डारों अधर रस दै दान
> मनहि मन यह सुख करत हरि भले कृपा-निधान
> सूर निश्चय भजी मोकों नहीं जानति आनि।

अतः यह स्पष्ट है कि इस रागिनीका स्वरूप कांताभि-

सारिका नायिका-सा है। नायक धीरोदत्त है, श्रृङ्गार विप्रलम्भ है। इस रागमें इसी रससम्बन्धी चीजें गानी चाहिये।

नायक-नायिका साहित्यकी चीजें हैं, राग-रागिनियां सङ्गीत की। किन्तु दोनों इस तरह एक दूसरेसे गुथे हुए हैं कि किसीको भी एक दूसरेसे अलग नहीं किया जा सकता। अतः जबतक साहित्य और सङ्गीतका समन्वय स्थापित नहीं होता तब तक सङ्गीत शास्त्रकी गरिमाका चमत्कार पूर्णरूपसे ज्ञात नहीं हो सकता। हां, यह तो मानना ही होगा कि सङ्गीत अत्यन्त प्राचीन है। वेदोंमें सङ्गीतके कर्त्ता महादेवजी बताये गये हैं। पीछे ऋषियोंने नानारूपमें इसकी अभिवृद्धि की है और इसे ईश्वरके पानेका श्रेष्ठ मार्ग बताया है।

स्वयं भगवान कृष्ण कहते हैं :—

नाहं वसामि वैकुंठे योगिनां हृदये न च।
मद् भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

यहां तक कि संसारका दुःख-छल भुला कर मोक्ष पानेका इसे श्रेष्ठ मार्ग बतलाया गया है। किन्तु आज यह श्रेष्ठ विद्या अशिक्षित, अज्ञानी और स्वार्थी मनुष्योंके हाथमें पड़नेसे अवनतिके गर्तमें जा गिरी है।

राग-रागिनियोंके गानेमें एक खास विलक्षणता है। ऋतु और कालका खासा विचार रखना पड़ता है। प्रत्येक राग-रागिनीके गानेका समय और ऋतु अलग-अलग है। शब्द शास्त्रोंके गूढ़ रहस्योंसे ही इसका उद्घाटन किया गया है। शब्दोंके उच्चारणसे गगन-मण्डलमें जो अनेक लहरें उत्पन्न होती हैं, सुननेवालेपर उसका प्रभाव भिन्न-भिन्न ऋतुओंमें पृथक-पृथक पड़ता है। कुछ शब्द तरङ्गे तो ऐसी होती हैं जिनको प्रकृतिसे जैसे कुछ सहानुभूति-सी हो। ऋतु और कालका ज्ञान न रखते हुए यदि राग-रागिनियां गायी जायें, तो प्रकृतिकी सहानुभूतिके अभावमें वे कठिनाई से सुनायी देंगी। एक उदाहरण लीजिये—भैरवीके गानेकी ऋतु शरद और समय प्रातःकाल है, किन्तु यदि हम इसे वसन्त ऋतुके अन्तिम भागमें गावें तो शायद प्रकृतिकी सहानुभूति इसे न प्राप्त होगी और स्वरका उच्चारण स्पष्टतः कानों तक न आनेसे लोग आनन्दका अनुभव न करेंगे। क्योंकि वसन्तमें प्रकृति एक उन्मत्त नायिका-सी होती है। वह विभिन्न फूलोंसे सज धज कर जैसे प्रियसे मिलनेके लिये जाती है। अतः उस समय हिंडोल राग ही गाना शोभा देगा।

हिंडोल रागका स्वरूप शास्त्रोंमें इस प्रकार है :—

दोलायां सुललित रम्य हेम मय्यां
छत्रायां विविध :सुमैं रथाम्बुजैश्च
आरूढ़ो अरुण वसना सुवर्ण कांतिः
संयातः कमल भवस्य देह तोयः
स्त्री संघैर्वृत्तइह सर्वतोतिकामी
गायद्भिः श्रुति सुखकारी गातिजातम्
हिंदोलो दिनमुख एव वासरत्यं
स्याद्गेयः किल ऋतु मुख्यके वसन्ते।

अर्थात् यह राग सुन्दर, रमणीक, स्वर्णखचित तथा विविध कमनीय-कुसुमोंसे आच्छादित हिंडोलेमें बैठाहुआ है! वस्त्र अरुण हैं। कांति सुवर्ण जैसा है। कमल-भव ब्रह्माके शरीरसे उत्पन्न हुआ है। सुभाषिणी स्त्रियोंके बीच परिभ्रमण करता है। अत्यन्त कामी है। वसन्त ऋतुमें दिनके प्रथम पहरमें गाया जाता है।

इस रागमें भी हम साहित्यकी ज्वलन्त ज्योति पाते हैं। लक्षणोंसे स्पष्ट हो जाता है कि नायक कपटसे बहुत स्त्रियोंसे प्रेम करता है और यथार्थ प्रेम किसी और ही से गुप्त रखे हुए है। इसलिये साहित्यानुसार नायक शठ होता है। जो विवाहितारमणियां नायकको रिझानेका काम करती हैं वे नायिका परोढ़ा परकीया कहलाती है। स्थायीभाव रति है। रस विप्रलम्भ पूर्व राग है क्योंकि मधुर शब्द सुननेसे नायकके हृदयमें नायिकाके प्रति गाढ़ानुराग उत्पन्न होता है।

इसी तरह भैरवीका भी अपनारूप है। यह गौरांगिनी, बड़ी-बड़ी आंखोंवाली एक तरुण-स्त्री है। सफेद साड़ी और लाल रङ्गकी चोली पहने है। चम्पाकी माला पहने एक शिलाखण्डपर बैठ भगवान त्रिनेत्रके मुकुटकी पूजा कर रही है और ताल दे-देकर गानेमें लीन है।

मलार भी अत्यन्त कोमलांगी गौरवर्णवाली तरुण-स्त्री है। हाव-भाव और कटाक्ष मनको मोहने वाले हैं। कण्ठ-ललित और वाणी मधुर है। पति-वियोगसे उपजे हुए दुःखको धीरतासे सहती हुई हाथमें वीणा ले बजा रही है। प्रियतमके सद्गुणोंका स्मरण करती है और वेगवती अश्रु-धारासे मुख प्रक्षालित करती है। इस तरह इनमेंसे प्रत्येक राग-रागिनी अपने-अपने रूपमें अत्यन्त सुन्दर और मधुर हैं।

लोगोंके लिये तो ये वर्णन कपोल-कल्पित ही प्रतीत होंगे, किन्तु जिन लोगोंका थोड़ा भी परिचय साहित्य और संगीत दोनोंसे है वे अच्छी तरह इसकी उपयोगिता समझ

सकते हैं। इन रूप-वर्णनोंपर ही साहित्य और सङ्गीतका सम्मेलन हुआ है।

गानेके समय विभिन्न रसोंका, जो साहित्यके मुख्य अङ्ग हैं, संचार स्त्री-पुरुषोंमें होता हैं। इसलिये किस संगीतमें कौन-सा रस प्रधान है, साहित्यज्ञ अच्छी तरह बता सकते हैं। अतः संगीतज्ञको साहित्यज्ञ होना आवश्यक है।

साहित्यकी सहायतासे, कौन-सा रस किसमें प्रधान है, अच्छी तरह बतलाया जा सकता है। भैरवीकी ओर नजर करनेसे यह साफ हो जाता है कि वह एक तरुण-स्त्री है। जिसका पति विदेश गया है। अर्थात् वह प्रोषितपतिका नायिका है। पति-विरहको भगवान शङ्करका ध्यान कर भुलाना चाहती है। उसके भाव शान्तिपूर्ण और देव-पूजामें लीन हैं। अतः रागिनीमें शान्त-रस ही प्रधान है। जो गाने इसमें गाये जायं वे शान्तिरसके सूचक हों क्योंकि इतर राग गानेसे रस-भंग दोष हो जायगा।

मलारकी नायिका भी प्रोषितपतिका नायिका है, किन्तु वह देवाराधना नहीं करती। वह प्रियतमके वियोगमें एकदम व्याकुल है। इसमें भैरवीकी तरह शान्त-रसका प्राधान्य नहीं किन्तु वियोग दुःखसे जो रस उत्पन्न होता है वह प्रधान है। इसे साहित्यमें विप्रलम्भ शृङ्गार कहा जाता है।

अतः यह देखा जाता है कि राग-रागिनियोंका स्वरूप-वर्णन निरर्थक नहीं वरन् गम्भीर अर्थका परिचायक है। इन्हीं के द्वारा राग-रागिनियोंके प्रधान रसका निर्णय होता है।

प्राचीन संगीतज्ञोंको रसों तथा इतर ज्ञेय वस्तुओंका ज्ञान था। किन्तु कुछ समय बाद समाजकी अवनति होती गई और उसके साथ संगीत की भी। गाने राग-रागिनियोंके लक्षणानुसार न तैयार होने लगे और आज तो भैरवी रागिनीमें भी प्रायः शृङ्गार रसकी ही चीजें गायीजाती हैं। अतः मेरा तात्पर्य यह है कि गानेकी चीजें शुद्ध और अलंकारयुक्त हिन्दीमें हों। रसका पूरा परिपाक हुआ हो जिससे कानोंको आनन्द ही न मिले वरन् आत्मतुष्टि भी हो।

दीपमालिका

श्री सत्यनारायण शर्मा

प्रत्येक वर्षकी तरह फिर दीपमालिका आ पहुंची।

फिर उसी तरह चारों ओर हास और उल्लासकी वर्षा हो रही है! नानाविध शृङ्गार-साधनोंसे महलोंको अधिकाधिक आकर्षक बनाया जा रहा है। राजपथमें स्वच्छ-वस्त्रधारी-मानव दिखलायी दे रहे हैं—आनन्दकी लहरोंसे चुम्बित, आलिङ्गित होते हुए।

अमावसके तिमिरका उपहास करती हुई लक्ष-लक्ष दीप-वर्त्तिकाएं प्रज्वलित हो रही हैं। कहीं गीत गाये जा रहे हैं; कहीं स्नेहालाप हो रहा है, कहीं मिठाइयोंसे मुंह मीठा किया जा रहा है।

चारों ओर हर्ष है, उल्लास है। समीरणके प्राण भी सौरभित होकर आनन्दसे प्रकम्पित हो रहे हैं।

हां, आज आनन्दका पर्व है,—उल्लासका पर्व है। आज दीपमालिका है।

(२)

दीपमालिका!

आनन्दका उत्सव!!

ठीक है, लेकिन किसके लिये?—यह आनन्द-कल्लोल, ये रङ्गरेलियां किसके लिये? क्या सबके सब इसमें सम्मिलित हो पा रहे हैं? क्या आज सबके गृहोंमें नूतन आनन्दका प्रवेश हो पा रहा है? क्या आज समस्त बालकोंके मुंह मिठाइयोंसे मीठे कराये जा रहे हैं? क्या आज प्रत्येक गृहके द्वार दीपमालिकाओंसे जगमग हैं?

नहीं तो!......

इस आनन्द-कल्लोल-रवमें वे क्रंदन-ध्वनियां नहीं सुनायी दे रही हैं, जो अनेकानेक गृहोंसे बहिर्गत हो रही हैं। मुसकुराहटके इस पर्वमें हगोंके वे अश्रु-बिन्दु नहीं दिखलायी दे रहे हैं, जो धनहीन श्रमजीवियोंके चिर सहचर हैं।

इसी दीपावलीके पावन पर्वमें बच्चे माताओंके आंचल खींच खींच कर मिठाइयोंके लिये गिड़गिड़ा रहे हैं और वे उन्हें रूखी सूखी रोटियोंके अतिरिक्त और कुछभी नहीं दे पा रही हैं।

इसी दीपमालिकाके रमणीय उत्सवमें रोगाक्रान्त माताके शय्या-शिरोभागपर बैठा हुआ पुत्र दवाईके लिये पैसोंकी

चिन्तामें घुल रहा है। उसे कोई उपाय नजर नहीं आता। मां तड़प रही है और बेटा दूधका प्रबन्ध नहीं कर पा रहा। केवल रह-रहकर दूरवर्ती दीपमालाओंके आलोकको देखकर दांत पीस-पीसकर रह जाता है।

इसी उल्लास-पर्वमें दिन भर अपने मालिकके मकानकी सफाईमें व्यस्त रहने वाला श्रम-जर्जर श्रमजीवी एक स्थान पर बैठकर हांफ रहा है और अधखुले नेत्रोंसे नगरके इस चकाचौंधको देखकर होठों पर औरोंकी ही तरह मुसकुराहट लानेकी चेष्टा कर रहा है।

निर्धन, किन्तु सच्चे और परिश्रमी मजदूरोंका खून चूस चूसकर जोंककी तरह फूलने वाला पूंजीपति मखमली गद्देपर बैठा हुआ आने जाने वालोंका स्वागत कर रहा है। किसी-के गले लगता है और किसीसे हंसी मज़ाक करता है। लेकिन अपने दिवा-रात्रिके परिश्रमसे नगरके मकानोंका निर्माण करने वाले श्रमजीवी फटे पुराने कपड़े पहने हुए इधर से उधर भटक रहे हैं।

(३)

क्या यही है दीपमालिकाका उत्सव ?

उत्सव नहीं, यह एक निष्ठुर व्यङ्ग है। एक मजाक है, और वह भी शरारतसे भरा हुआ। यह लक्ष्मीका पूजन नहीं हो रहा—उसका अपमान हो रहा है।

जब तक प्रत्येक व्यक्ति रोटी, वस्त्र और गृहकी चिन्तासे मुक्त नहीं हो जाता, तब तक दीपमालिकाका उत्सव एक विडम्बना मात्र है।

मानवताके नाम पर उन लोगोंको क्या उस समय शर्म नहीं आती, जब रास्तेमें भूखे, नंगे आदमी खड़े खड़े लल-चायी आंखोंसे प्राणोंमें मृत्युका हाहाकार भरे हुए उनकी ओर देखते रहते हैं और वे चांदीके रक्तलिप्त टुकड़ोंको गिनने में व्यस्त रहते हैं।

उसी दिन लक्ष्मीकी सच्ची पूजा हो सकेगी—उसी दिन इस पृथ्वी पर दीपमालिकाका सच्चा और सर्वाङ्ग सुन्दर उत्सव हो सकेगा—जिस दिन पूंजीवाद और साम्राज्यवाद का पूर्ण विनाश हो जायगा और समाजवादकी स्थापना हो जायगी। जबतक पूंजीपति और श्रमजीवी समाजमें रहेंगे, तबतक लक्ष्मी-पूजन एक दुष्टतासे भरा हुआ मजाक ही बना रहेगा।

(४)

हम लोग आज इस उत्सवमें सम्मिलित होकर सच-मुच मानवताका मज़ाक उड़ा रहे हैं! प्रतिवर्ष हम लोग ऐसा ही करते हैं! आदत पड़ गयी है। लेकिन अब हमें यह आदत बदलनी होगी! लक्ष्मी पूजनका यह तरीका बदलना पड़ेगा।

जो पूंजीपति हैं,—महलोंमें रहते हैं और मिलोंके मालिक बने हुए हैं,—वे चाहे जिस प्रकार लक्ष्मीकी पूजा करें किन्तु मजदूरोंकी पूजाका ढङ्ग अब कुछ और ही होना चाहिए। इस तरहकी पूजासे वे कुछ भी नहीं पा सकेंगे।

न खानेका ठिकाना है, न रहनेका और न पहननेका! रात-रात भर और दिन-दिन भर जी-तोड़ परिश्रम करनेके बाद भी इस योग्य वे नहीं हो पाते कि दीपावलीके दिन अपने घरमें मिठाईका थाल ला सकें—स्वच्छ वस्त्र पहन सकें!

और, उधर रहनेके लिये एक महलसे ही सन्तोष नहीं है। मकानपर मकान बनते चले जा रहे हैं। तिजोरियोंकी संख्या निरन्तर बढ़ती चली जा रही है।

पृथ्वीपर समाजवादकी स्थापना कठिन अवश्य है—किन्तु असम्भव नहीं। पूंजीवादी और साम्राज्यवादी सब प्रकारकी रुकावटें डालेंगे और समाजवादियोंका सत्या-नाश करनेमें अपनी समस्त शक्तियां नियोजित कर देंगे। किन्तु यदि अन्त तक समाजवादी दल वीरतापूर्वक अपने पथपर बढ़ता रहा तो उनकी विजय अवश्यम्भावी है।

संसारकी वर्तमान परिस्थितियां समाजवादकी स्थापना का पथ प्रशस्त करती चली जा रही हैं। फैसिज्मकी शक्ति हीन होती जा रही है और वह दिन दूर नहीं जब फैसिज्म इतिहासकी चीज मात्र रह जायगा।

रूस और जर्मनीका युद्ध जब आरम्भ हुआ था, उस समय अधिकांश व्यक्तियोंकी यही धारणा थी कि रूस परा-जित हो जायगा और रूसकी पराजयके साथ-साथ समाज-वादकी दीपमालाएं भी निर्वापित हो जायंगी! 'बस, एक सप्ताह और है रूसके जानेमें,'—ऐसे उद्गार सर्वत्र सुनायी देते थे!

किन्तु......

यह किन्तु वर्षों तक फैसिज्मकी छातीपर लोहेकी लाल शिखाकी भांति जलता रहा है और अब समय आ गया है, जब यह उसे भस्मसात् करके छोड़ेगा!

और, जर्मनीको,—कवियों, दार्शनिकों और वैज्ञानि-कोंके देश जर्मनीको—सैनिकोंका देश बनानेवाला हिटलर अपने गुरु मुसोलिनीकी ही तरह आठ-आठ आंसू रोयेगा।

सचमुच, हिटलरके पहले जर्मनी महान् अध्येताओंका

देश था। जितने परिश्रमी जर्मनीके अध्येता होते थे, उतने योरपको किसी भी भागके नहीं। चौदह-चौदह घण्टों तक प्रतिदिन नियमित रूपसे बीस वर्ष तक लगातार अविच्छिन्न गतिसे परिश्रम करके ग्रन्थोंका प्रणयन करनेवाले लेखक जर्मनीमें अनेकानेक थे। किन्तु इस फैसिस्ट नेताने बड़े-बड़े मनीषियोंको जर्मनीसे निर्वासित करके सैनिकोंका आधिपत्य स्थापित किया,—ज्ञानके पवित्र आलोकसे स्नातस्थलोंको शस्त्रागार बनाया। लेकिन अब पापका घड़ा फूटनेको ही है।

इस पृथ्वीपर समाजवादकी स्थापना अवश्य होगी! प्रतिरोधक शक्तियां भले ही उसके आगमनका समय सुदीर्घ करती चलें; लेकिन एक दिन ऐसा अवश्य आयेगा, जबकि इस पृथ्वीके प्रत्येक व्यक्तिकी रोटीका सवाल हल हो जायगा। प्रत्येक व्यक्ति योग्यताके अनुसार कार्य करेगा और आवश्यकताके अनुसार पारिश्रमिक पायेगा।

और, तभी सच्चा दीपावली मनायी जा सकेगी। उसी समय लक्ष्मीका सच्चा पूजन हो सकेगा। आज दीपावलीके दिन जब लक्ष-लक्ष दीपक प्रज्वलित होते हैं तो ऐसा मालूम होता है जैसे ये संसारके निर्धन शोषित श्रमिकोंका उपहास कर रहे हैं। उस समय जो दीपक प्रज्वलित होंगे, उनकी आभा स्वर्गिक होगी,—परम पवित्र होगी!

तभी, भारतके प्राचीन तपोवनोंसे विनिस्सृत यह वाणी सार्थक हो सकेगी—सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्।

महायुद्धमें सम्पत्तिका स्वरूप

श्री परिपूर्णानन्द वर्मा

अब तो युद्ध समाप्त होनेको आ रहा है। कोई नहीं कह सकता कि इसका अन्त कितना शीघ्र तथा कब होगा। किन्तु, धुरी-राष्ट्रोंके शीघ्र पतनके जहां अन्य बहुतसे कारण हैं वहीं एक महानकारण उनकी आर्थिक कमजोरीभी समझनी चाहिये। जो ताजेसे ताजे आंकड़े प्राप्त हो सकते हैं, उनसे तो यही पता चलता है कि लड़ाईके खर्चने जितना धुरी राष्ट्रों की जेबको चूस डाला है, उतना अन्य किसीकी नहीं। इङ्गलैंड तथा अमेरिका इतने धनी राष्ट्र हैं कि केवल पैसेके बल पर ही इस पैसेकी दुनियामें वे काफी अर्से तक सर ऊंचा किये खड़े रह सकते हैं।

बढ़ते हुए खर्चको सम्भालनेके लिये सरकारके पास सबसे सरल तरीका है धड़ाधड़ नोट चालू करते जाना। कागजकी खेतीमें दिक्कत ही क्या है। लेकिन, यदि इस नोटके पीछे पर्याप्तमात्रामें चांदी और सोनेका कोष सरकारी खजानेमें रहता है तो अधिक नोट चालू करने पर भी मुद्रा-चलन या करेंसीमें अ-समानुपातिक विस्तार नहीं कहा जाता। पर, सरकारी खजाना सूना होने पर भी "मैं चुकानेका वादा करता हूं...रुपया" लिखकर जब लाखों-करोड़ों रुपयेके नोट चालू हो जाते हैं तो उसका नाम 'मुद्राका मूल्य घट जाना' रखना अनुचित नहीं है। इसीको अङ्गरेजीमें 'इनफ्लेशन' कहते हैं। युद्धकालमें सेनाकी जरूरतोंको पूरा करनेके लिये सरकारको जनतासे बहुत अधिक सामान खरीदना पड़ता है और उसीका मूल्य चुकानेके लिये 'करेंसी' बढ़ाई जाती है। इसी 'सरकारी खरीद'के कारण हिन्दुस्तानमें अत्यधिक मुद्रा-विस्तार हो गया और अब सरकार हर तरहके बांधन बांधकर इस मुद्राको खींचना चाहती है।

पर स्वतन्त्र देशोंने जहां एक ओर चीजोंकी बेतहाशा कीमत बढ़ना रोका वहीं मुद्राका मूल्य गिरना भी वहां रोका गया। लार्ड काइन्स (इङ्गलैंडके अर्थ-शास्त्र विशेषज्ञ) ने इस विषयमें जो ठोस सलाह ग्रेट ब्रिटेनको दी थी, उससे उसने काफी फायदा उठाया है। अब देखना यह चाहिये कि युद्धकालमें मुद्रा-विस्तार किस प्रकार हुआ। मेरे सामने सबसे ताजे आंकड़े भी जुलाई-अगस्त १९४३ से बादके नहीं हैं। एक साल पहलेकी संख्या भारतमें इसी महीने प्राप्त हो सकी है। अतएव हमारे अध्ययनके लिये जो सामग्री है, उसीसे काम लेना पड़ेगा। नीचेमें कुछ महत्वपूर्ण देशोंमें चालू नोट-मुद्राकी संख्या देंगे। इन संख्याओंकी सच्चाईकी जिम्मेदारी राष्ट्र-परिषद पर है। जहां तक हमारा अनुमान है, राष्ट्र-परिषदका अर्थ-शास्त्री-मण्डल निष्पक्ष और तटस्थ है और उसकी रिपोर्ट पर अविश्वास करनेका कोई कारण नहीं होना चाहिये।

नोटोंकी बाढ़

हरेक देशके नोट अपने देशकी मुद्रामें होते हैं और

इनका निश्चित मूल्य नहीं है। उदाहरणार्थ भारतका एक रुपयेका नोट अगस्त १९४३ में ३०.१२ अमेरिकन सेण्टके बराबर था। जर्मनीका एक राइशमार्क लगभग ३९ सेण्टके बराबर था। अस्तु, नोटों (चालू) की संख्या इस प्रकार थी—

(०००,००० मिला कर पढ़िये)

देश		वर्ष १९४० माह	नोट-संख्या	वर्ष १९४३ माह	नोटसंख्या
दक्षिण अफ्रीका	—	दिस० १९४०	२३.७	जून १९४३	४३.१
मिश्र		,,	३७.३	अप्रैल	७७.९.
कनाडा		,,	३६०	अगस्त	७९७
संयुक्त राज्य अमेरिका	-	,,	८,७३१	,,	१८,९६४
मेक्सिको		,,	४२१	जुलाई	९९३
भारतवर्ष		,,	२,२८६	,,	७,४०४
ईरान		,,	१,१९३	नव०४२	२,८९८
चीन		,,	९४७	मार्च ४३	१,९४९
जापान		,,	४,७८७	जुलाई १९४३	७,१९९
जर्मनी		,,	१,११३	मई	१,२००
बेल्जियम		,,	३४,४७८	अगस्त	७६,३६९
बल्गेरिया		,,	६,९१८	फरवरी	१८,४६४
डेनमार्क		,,	७४१	अगस्त	१,०७९
फिनलैंड		,,	९,९९१	जुलाई	९,०८७
हंगरी		,,	१,३८७	अगस्त	३,४७७
रूमानिया		,,	६४,३४९	जुलाई	१,२२४००
स्वेडेन		,,	१,४८२	अगस्त	१,९६९
फ्रांस		,,	२,१८,३७२	,,	४,४०,३०००
स्विट्जरलैंड		,,	२,२७३	अगस्त	२,६७०
जेकोस्लोवाकिया		,,	१,६९७	जुलाई	२,७९२
टर्की		,,	४०३	,,	७३२
इङ्गलैंड		,,	६१६.९	,,	९६८.१
आस्ट्रेलिया		,,	६८.१	,,	१४९.०
न्यूजीलैंड		,,	१७.४	जुलाई	२७.९

इन आंकड़ोंसे बड़ी रोचक बातें मालूम होती हैं। जर्मनीने स्वतः अपने देशमें मुद्रा बहुत सम्भाल कर रखा पर अपने अधिकृत देशोंमें उसने काफी मुद्रा - विस्तार होने दिया। इङ्गलैंडमें भी नोट - विस्तार डेढ़ गुनासे ज्यादा न हो पाया पर भारतमें चौगुनी बढ़ती हुई और अगस्त, १९४३ में हमारे देशमें ७ अरब ४० करोड़ रुपयेके नोट चालू थे। जर्मनीमें वृद्धि पौनसे भी कम है पर जापानमें पौने दो गुनी वृद्धि हुई। सयुक्त राज्य अमेरिकामें ढाई गुना वृद्धि हुई। फ्रांस, रूमानिया, हंगरी आदिमें २-३ गुना वृद्धि हुई। इस प्रकार वृद्धिकी औसतसे किसी राष्ट्रकी आर्थिक दृढ़ता या कमजोरीका अनुमान नहीं लगाया जा सकेगा। इसके लिये यह जरूरी है कि इन देशोंका संरक्षित सरकारी कोष देखा जाये—यह पता लगाया जाये कि इनके पास "सोना, चांदी तथा विदेशी पूंजी" के रूपमें जो सुरक्षित संरक्षित खजाना था, वह अनुपाततः कम हुआ या बढ़ा। नीचे हम इस कोषकी तालिका देते हैं और यह आवश्यक है कि पाठक उसे न केवल ध्यानसे पढ़ें बल्कि उनके रोचक उतार-चढ़ावको भी समझें।

सुरक्षित कोष

सभी देश विदेशी सम्पत्तिमें अपनी पूंजी रखते हों या सब सोना और चांदी रखते हों, यह बात नहीं है। कोई कुछ रखता है, कोई ये तीनों चीजें। हरेकके कोषका मूल्य उस देशके सिक्के में दिया गया है। तभी चालू नोटोंके और कोषके औसतका अनुमान लग सकेगा।

अ= सोना, ब= चांदी, स= विदेशी पूंजी

(संख्यामें ०००,००० जोड़ कर पढ़ें)

देश	कोष	सन् १९४० माह	मूल्य	सन् १९४३ माह	मूल्य
द० अफ्रीका	अ स	दिसम्बर	४४.१	जून	८१.२
मिश्र	अ स	,,	३९.६	अप्रैल	८२.९
कनाडा	अ स	,,	४२	जून	९०
सं० रा० अमेरिका	अ ब	,,	२६,०९९	जुलाई	२६,६३०
मेक्सिको	अ स	,,	११९.९	,,	९२१.६
भारतवर्ष	अ ब स	,,	३,६२८	अगस्त	७,३८१
ईरान	अ ब	,,	३११	नव० ४२	३११
जापान	अ स	,,	९१६	जुलाई ४३	६०२
चीन					
जर्मनी	अ स	,,	७८	,,	७७
बेल्जियम	अ स	,,	२९,९३२	,,	६१,३०२
बल्गेरिया	अ स	,,	४,३२०	जनवरी	१६,०९३
डेन्मार्क	अ स	,,	९२१	जून	१,४८४
फिनलैंड	अ स	,,	११९६	दिस० ४२	३,०३३
हंगरी	अ स	,,	१३४	जून, ४३	७९८
रूमानिया	अ स	,,	३६,३६२	मई	७९,६९०

स्वेडन अ स	,,	११०३	जुलाई	१४९३
फ्रांस अ स	,,	८४,६९८	,,	८४,६३६
स्विटजरलैंड अ स	,,	३,१७२	,,	३,८९७
जेकोस्लोवाकिया अ स	,,	९,०४८	मई	२३,२७१
टर्की अ स	,,	११०.१ (अ)	जुलाई	२३३.९
इङ्गलैंड अ	,,	०.२	,,	०.२
आस्ट्रेलिया अ स	,,	८६.८	,,	८१.९
न्यूजीलैण्ड अ स	,,	१४.१३	,,	२८.६

इन संख्याओंसे कई बातें स्पष्ट हैं। पहली तो यह कि भारतवर्ष, संयुक्तराष्ट्र अमेरिका तथा ईरानको छोड़कर चांदी और किसीने नहीं रखा है। विदेशी पूंजी सबकी ही है। हमने सबका योगमात्र दिया है। पर, सबके योगमें एक अन्तर मूल्यका भी है। किसीके सिक्केका मूल्य काफी कम है और सोना-चांदीका भाव काफी चढ़ा मालूम होता है। पर किसीका सिक्का स्थिर तथा स्थाई मूल्यका है इसलिये संख्या कम मालूम होती है। उदाहरणार्थ इङ्गलैंडका ०.२ अर्थात् २, ०००, ००० पौण्डकी रकम है। वही एक ऐसा देश है जिसके पास शुरूसे अब तक एक ही संरक्षित-कोष है—न घटा है न बढ़ा है। एक साम्राज्यका स्वामी होनेका यही परिणाम है कि जहां देशकी मुद्रानीति यथा-स्थान है, वहीं देश अरबों रुपयेका हेर-फेर भी कर रहा है।

जैसा कि मैंने ऊपर लिखा है, सब मूल्य जोड़कर ऊपरकी संख्या दी गयी है। इससे एक बड़ा धोखा भी हो सकता है। ऐसा मालूम पड़ता है कि भारत, बलगेरिया, बेलजियम ऐसे देशोंमें संरक्षित कोषमें बाढ़-सी आ गयी है। पर यह बात गलत है। ये सभी देश पराधीन हैं अतः इनके मालिकोंने इनका रुपया अपने यहां खींच लिया हैं, उसपर खुद अधिकार कर बैठे हैं और वही इनका संरक्षित कोष कहा जाता है। उदाहरणार्थ भारतवर्षमें सरकारके पास सन् १९३९ में ४४४,०००,०००) रुपयेका सोना, ६४२,०००,०००) रुपयेकी चांदी तथा १,१३०,०००,०००) रुपयेकी विदेशी पूंजी थी।

सन् १९४३ के अगस्तमें सोना वही ४४४,०००,०००) रुपयेका था, चांदी घटकर १९३,०००,०००, रुपयेकी रह गयी थी और विदेशी पूंजी एक दम बढ़कर ६,७८४,०००,०००) अर्थात् लगभग पौने सात अरबकी हो गयी थी। पाठक इससे स्वयं अर्थ निकाल लें कि यह हमारे लिये कितनी हानिकारक बात है।

जर्मनीके अधिकृत देशोंमें फ्रांस ही एक ऐसाथा जिसके पास सन् १९४० में ८४,६१६,०००,०००) का जो सोना था, वह लगभग उतना ही अर्थात् ८४,५९८,०००,०००) का सन् १९४३ के अगस्तमें भी था। बाकी देशोंकी पूंजी बड़ी आसानीसे जर्मनीमें बह आई, जिसकी बदौलत जर्मनी अब तक डटा रहा और लड़ता रहा।

उदाहरणार्थ :—

देश	दिस० १९४० में विदेशी पूंजी	मईसे जुलाई १९४३ में विदेशी पूंजी
	(०००,००० मिलकर पढ़ें)	
बेलजियम	३,३८८	३९,६४६,
बलगेरिया	२,३१४	१४,०८७ (जनवरी)
डेन्मार्क	३९९	१,४७४
हंगरी	१४० (दिसम्बर ४१)	६९३
रूमानिया	९,१७७	३०९२४
स्वेडन	३०१	९७१
जेकोस्लोवाकिया	३,७९१ (दिसम्बर ३९)	२२,३६८

भारतमें विदेशी पूंजी लगभग पांच गुना बढ़ी है पर जर्मन अधिकृत देशोंमें यह तीनसे सात गुना अधिक बढ़ गई है और यह भी एक कारण है जिससे इन देशोंमें आंतरिक असन्तोष तथा दारिद्र्यके लक्षण स्पष्ट हैं! जर्मनी कब तक दूसरेके बलपर युद्ध कर सकता है?

लिखनेका सारांश यह है कि इस महायुद्धने हरेक प्रमुख राष्ट्रकी सम्पत्तिकी समस्या विकट कर दी है। सोना रखनेवाले राज्योंमें संयुक्तराज्य अमेरिका प्रधान है जिसके पास सन् १९४० में १७,६४३,०००,०००) डालरका सोना था और अगस्त १९४३में२२,२४३,०००,०००)डालरकास्वर्ण-कोष हो गया पर विदेशी पूंजी उसकी ३,७९०,०००,००० से बढ़ कर ४,२९९,०००,००० डालर ही हो गयी। इसीसे अमेरिकाका प्रचण्ड आर्थिकबल प्रकट होता है। इङ्गलैंण्डके पास भी स्वर्ण-कोष है। जर्मनीका सुरक्षित कोष नगण्य है। इसके विषयमें विशेष विचार ही नहीं किया जा सकता क्योंकि उसका आधार उसके अधिकृत देश हैं।

युद्धके बाद यह साम्पत्तिक अवस्था क्या रूप धारण करेगी तथा उसका निर्णय कैसे होगा, इस विषयमें अभी कुछ नहीं कहा जा सकता। प्रश्न जटिल है—विवेचन आवश्यक है।

बुढ़ापा

अवशेष मील का यह पत्थर !
बचपन का गर्द - गुबार और, तरुणाई का सूना खंडहर !
पूंजीपति जड़ताका कठोर, जीवित जर्जरताका त्रिकास,
दुर्बलताका साकार रूप, जागृत निष्क्रियताका विकास,
लाचारी और विवशताका, चिर सत्यम्, शिवम् और सुन्दर,
खिन्नता, शिथिलताका प्रसार, एकान्त शून्यताका विकास,
अपनी हसरत, आशा, इच्छाओं का यह उजड़ा-पुजड़ा घर !
रंगीन उमंगोंका अकाल, अनुराग सरसताका अभाव,
उत्कण्ठा, मोह, प्रणय बेसुध मस्तानी ममताका अभाव,
दुर्दिनका सामंजस्य, विचारों का विकृत संकुचित क्षेत्र,
अनुरक्ति, लालसा, लगन और कोमल सहृदयताका अभाव,
अपने आंगन पर छाया-सा यह मटमैला धूमिल अम्बर !
पतझड़ने देखा और कहा—मादक आकर्षणहीन आंख,
मधुऋतुने देखा और कहा—मनमोहक चितवन हीन आंख,
फूलोंने देखा और कहा—उनके जीमें भी जो आया,
दुनियाने देखा और कहा—अब रही न चञ्चल मीन आंख,
पूजनकी घड़ियोंसे वंचित यह फटा पुराना पीताम्बर !
ऊंघती आयुका कर्जदार, बेगार उखड़ती सांसोंका,
तमसे आच्छादित चौराहा, बाजार उखड़ती सांसोंका,
जिसने दी है यह भेंट एक दिन, अपने पास बुला सादर,
विस्मय क्या ? जो वह मांग रहा उपहार उखड़ती सांसोंका,
विस्मृतियोंका बीहड़ पहाड़, स्मृतियोंका यह सूखा निर्झर !
दो सांसों पर है टिका हुआ, अपनी माताका प्यार शेष,
अपनी सुहागिनी बनिताका सुख, सुधि, सुहाग, श्रृङ्गार शेष,
सुख दुखका रेगिस्तान और अपने मधु सपनोंका मरघट,
दो सांसों पर है टिका हुआ छलिया अतीतका भार शेष,
कसकनका देश निकाला, मीठे दर्दोंका यह त्यक्त नगर !
यह निकल गया है दीवाला, जीवन का और जवानी का,
यह निकल गया है दीवाला, यौवन का और रवानी का,
कहता है जगके साथ-साथ, यह निखिल विश्व कटु सत्य शेष,
यह निकल गया है दीवाला, प्रियजन का और गुमानी का,
किस्मतसे हार समाधि ले रहा बैठ कण्ठमें कम्पित स्वर !
चल रहा फटे मनका दामन सीनेका : अन्तिम दौर यही,
चल रहा तृषावंतोंके घर पीने का अन्तिम दौर यही,
जीवनके इस चबूतरे पर पड़ रही मरणकी धूप - छांह,
चल रहा, बुढ़ापा कहता है जीने का अन्तिम दौर यही,
फल-फूल रहित यह विटप-ठूंठ जीवनका पड़ा शान्त सागर !
अवशेष मील का यह पत्थर !

जाती बार लीलाको शमीमने ठीक ही तो कहा था कि "लाहौरके चोंचले और वायुमण्डलसे बिगड़ जाओगी।" जो झलक बन कर उसके मस्तिष्कमें चमकी, वह सचाईकी सीमा तक पहुंची। महीने भरमें एक-आध दफा पत्र-व्यवहार हो जाता। केवल लीला ही अपराधी नहीं थी, शमीम भी थी। मान लिया यदि लीला लाहौरके वायुमण्डलमें व्यस्त थी तो क्या शमीमका कर्त्तव्य न था कि वही उसको लिखती। मित्रतामें कुछ ठण्डक प्रतीत हो रही थी, दोनोंकी पढ़ाई तो हो ही रही थी परन्तु पहलेकी तरह नहीं। दोनोंका मिलाप होता परन्तु अन्तर से। जब लीला छुट्टियोंमें आती तो इकट्ठे दिन नहीं गुजरते और दोनों अलग-अलग तटपर नावकी प्रतीक्षामें खड़ी रहती कि कोई आये और उसको या इसको एक किनारेपर मिला दे।

आज लीलाके भाईकी शादी है। लीला छुट्टियां मना रही है, उसे फिरसे शमीमके साथ मौज उड़ानेका अवसर मिला है। आज रात ढोलक लगनी थी। दो वर्षोंसे ठण्डी पड़ीहुई महफिलें गर्म होनीथीं। विशेषकर शमीमका प्रोग्राम तो गानेका था। ईश्वरने गला क्या दिया था मानो कोयल स्वयं बैठ गई हो। निमन्त्रित अतिथिगण आने लगे परन्तु शमीम अभी तक न आयी थी! लीला हैरान थी, सब प्रोग्राम अस्तव्यस्त हुआ चाहता था। निराशा खड़ी दूरसे हंस रही थी। शमीम न आई। अद्भुत समस्या! इधर अतिथि उधर मित्रता। ढोलकपर गीत शुरू हो गये पर उसका चित्त उस ओर न था। बेबस थी, रह-रहकर शमीमपर क्रोध आ रहा था। अन्ततः मौका बीत गया।

लीलाने डगमगाते पग अन्दर रखे, सब कुछ बदला हुआ पाया; न वह रौनक थी, न वह सजावट। एक साधारण-सा कमरा था। एक ओर ताकपर कुछ पुस्तकें पड़ी थीं और मेजपर दवाकी शीशियां। कमरेके बीचो-बीच एक पलङ्ग बिछा हुआ था जिसपर शमीम लेटी थी।

कमरेकी दीवालें अपने प्रति होनेवाले उदासीनता और उपेक्षाके व्यवहारका इजहार कर रही थीं। वहां केवल एक तस्वीरके, जो कालिजमें इकट्ठी खिंचवाई गयी थी, और कुछ नहीं था। लीला एक-एक चीजको देखकर चकित थी कि क्या था और क्या हो गया। कुर्सी खींचकर उसके पलङ्गके समीप बैठ गयी। शमीमने करवट ली और अधखुली आंखोंसे लीलाको अपने समीप पाया। उठ बैठनेकी चेष्टा की

परन्तु लीलाके अनुरोधपर फिरसे लेट गयी। धीमी-धीमी आवाज़में समीप आनेका संकेत करके कहने लगी।

"तुमने इतना कष्ट क्यों किया लीला! विवाहके दिन हैं?"

"तुम ऐसा कहती हो, विवाह मेरा थोड़ा है कि मैं घरसे न निकलूं। मैं हैरान थी कि तू कलकी महफिल कैसे भूल गयी।"

"बहन! मूर्छा आ गई, जिससे कुछ बुखार-सा हो आया, अलताफ भैया दवा लेने गये हुए हैं। हाजिर न हो सकनेके लिये माफी चाहती हूं। मायूस तो न करती, मगर खुदाको तुम्हारी खुशियोंमें मेरा होना न भाया, वरना मैं और फिर हाजिर न होती। यह तो तुम जानती हो!"

"अब तबीयत कैसी है!"

"अब तो अच्छी हूं।"

दीवारपर टंगी हुई घड़ी क्षण प्रति क्षण पुकार-पुकार कर आयुके घटनेकी घोषणा सुना रही थी और निस्तब्धता उस घोषणाके साथ-साथ अपना जाबर हाथ ढोल पर मार कर शोर मचाते हुए अपना रोब जमा रही थी।

"इस बीमारीने कबसे हमला शुरू किया है"—खामोशी को तोड़ते हुए लीलाने कहा।

"लगभग एक वर्ष हुए। पहले तो कभी—कदाच मूर्छा आती थी और फौरन दूर हो जाती थी। परन्तु अब सप्ताह में तीन-चार बार आ जाती है।"

"क्या कारण पूछ सकती हूं?"

'बता दूं तो क्या, न बताऊं तो क्या?'

'मुझसे भी परदा रखने लगीं! हां, क्यों न हो, ठीक ही तो है आंखोंसे दूर दिलसे दूर।"

'लीला! क्या ये लफ्ज तुझे शोभा देते हैं, क्या तुम भी मरहम लगानेके बजाय उलटा नमक छिड़कना चाहती हो, नये सिरेसे तड़पाना चाहती हो। तड़पाओ, तुम भी तड़पा लो।"—जोशमें आकर शमीम उठ बैठी परन्तु निर्बलताके कारण टूटे हुए पङ्खवाले पंछीके समान फिरसे सिरहाने पर आ रही। लीलाने बढ़ कर पकड़ना चाहा, परन्तु हाथ आगे न बढ़ सके।

'मेरा यह मतलब नहीं था कि मैं तुम्हें तकलीफ दूं, तुमने उल्टा मतलब समझा। मैं तो तुम्हारे गममें शरीक होना चाहती थी। मुझे मौका दो, जो कुछ तुम्हारे दिलमें है कह दो; कह दो न!'

मार्मिक शब्दोंसे उसका दिल पिघल गया, शमीम तकियेमें मुंह दबाये सिसकियां ले रही थी।

"शमीम! शमीम रो रही हो क्यों, खुदाका वास्ता है, न रोओ; मेरा वास्ता है, न रोओ। नहीं पूछती, नहीं पूछती।"

शनैः शनैः सिसकियां बन्द हो गईं, शमीमका दिल जल-रहित मेघके समान शान्त पड़ चुका था, बाल बिखर कर चांद—जैसे मुखको ढंकनेके लिये मेघोंका काम कर रहे थे। लीला गहरी सांस लेते हुए और शमीमके बालोंके साथ उङ्गलियोंको उलझाते हुए रुक रुक कर कहने लगी "बहन—एक—बात पूछूं—बताओगी।"

"क्या है लीला।"

"तुम अच्छी तरह जानती हो कि हम दोनोंका सम्बन्ध सहेलियों जैसा नहीं परन्तु बहनों जैसा रहा है। हमको देख हमारी सहेलियां कैसे जला करती थीं। कहती थी दोनोंमें इतना फर्क है—केवल इतना, जितना कि एक चांदीके सिक्के के दोनों पासोंमें। फिर नाकाम कोशिशसे फायदा। दुःखको बांट लेनेसे आधा रह जाता है और न बांटनेसे नासूर बन जाता है; मुझसे कहो शायद काम आ सकूं।"

"लीला, वायदा दो, किसीसे न कहूँगी। मैंने कई बार चाहा कि पत्रमें तुम्हें लिखूं परन्तु किसी खुशनसीबको अपने गममें घसीटना शराफत नहीं। आज तुम्हारे कहनेपर तुमसे अपनी हालत कहती हूं। पहले चटखनी अच्छी तरह चढ़ा दो ताकि कोई सहसा दाखिल न हो, फिर इतमीनानसे सुनो!" लीलाने उठ कर द्वार बन्द कर दिया और कुर्सीको और भी समीप खींच लिया।

"इन्हें जानती हो?" फोटोको दिखाते हुए शमीमने पूछा।

"नहीं तो।"

"तो सुनो! तुम्हारे कालिजमें दाखिल होनेका पत्र मिला, मैं बेताब थी परन्तु विवश थी। अब्बाने घर पर ही पढ़नेका इन्तजाम कर दिया था। वह मुझपर बन्दिशें करना चाहते थे परन्तु मैं आजाद खयाल थी। एक प्रोफेसर पढ़ानेके लिये रखे गये। वे रोज आते। बीचमें परदा लटका दिया जाता। इस ओर मैं बैठती और प्रोफेसर साहब परदेके उस ओर। पीठ पीछे किवाड़ होनेके कारण आ रही रोशनीसे उनकी आकृति परदेसे साफ दिखाई देती थी, परमेरी पीठ पीछे दीवार होने की वजहसे कुछ न दिखाई पड़ता। वह केवल मेरा हाथ ही जो कभी पेंसिल आदि लेने देनेमें परदेसे बाहर आता था देख सकते थे। एक दूसरेके सामने बोलते मगर परदेकी दीवार हायल होती। मैं देखती उनकी निगाहें हर वक्त

किसी चीजकी खोजमें चक्कर खाती नजर आतीं मगर परदेकी दीवारसे टकराकर निराश हो जातीं,उनकी आंखें चाहतीं कि परदा उठ जाय किन्तु वह खूंख्वार जल्लादकी तरह हर वक्त भयानक आंखें दिखाता नजर आता। पहले तो पढ़ते समय अब्बा किसी न किसी बहाने मौजूद रहते। धीरे धीरे उन्होंने भी लापरवाही बरतनी शुरू की। मैं चाहती थी कि किसी प्रकार यह परदा उठ जाय, परन्तु हयाने सब हिम्मत खींच रखी थी। वह मुकर्रर वक्तसे ज्यादा देर तक बैठे रहते। मैं भी चाहती कि मैं पढ़ती रहूं और वह पढ़ाते रहें, मालूम नहीं कि क्यों इतना स्नेह हो चला था। पानी—!"

लीलाने पास रखी हुई सुराहीसे पानी दिया। गलेको तर करते हुए शमीमने फिरसे कहना आरम्भ किया-"अबपढ़ते पढ़ते मैं परदा उलट दियां करती और वह भी सब कुछ जानते हुए अनजान बने रहते। वह अपना लैक्चर देते जाते, मैं कानोंसे सुने जाती। मालूम नहीं वह क्या पढ़ाते रहते और मैं क्या सुनती रहती। मामूलीसे खटकेकी आवाजसे मैं फौरन परदा गिरा देती। भ्रम होता तो फिरसे परदा उठ जाता। कई महीने इसी हालतमें गुजर गये। यह सिलसिला मुहब्बत की शक्ल अख्तियार कर रहा था। मैंने इम्तिहान नजदीक होनेका बहाना करके दो बार आनेके लिये अब्बासे कहलवाया। वह भी दुनियावी हिचकिचाहट करते हुए मान गये। अब दिनमें बजाय एक बारके दो बार मिलन होता। एक दिन पढ़ाते-पढ़ाते उन्होंने रूमाल जो निकाला तो फोटो गिर पड़ा। मैंने साहस करके मांग लिया। मेरा उनसे बातचीत करनेका यह पहला मौका था, शर्म व हयासे पसीना-पसीना हो गई। फोटो उन्हींका था। यही है जो तुमने अभी देखा है।

एक दिन पढ़ानेके लिये वह न आये। मैं बार-बार चिक उठा कर देखती। सड़कपर कहीं नजर न आते। अन्दर जाती, बाहर आती, किताब खोल कर उसकी आड़में उनका फोटो निकाल कर देखती; मगर दिल न भरता था, देखे जाती। आखिर वह न आये। सारा दिन बेचैनीमें गुजरा। रात भर नींद न आई। प्रातः हुआ, दो पहर गुजरा। फिर शाम आ गई उनके इन्तजारमें।"

"वह आये, निराशासे ढलती हुई धूपकी तरह। मैंने कारण पूछा तो टाल दिया। मैंने अपना दास्तां बयां किया तब वे कहने लगे—"शमीम! तुम नहीं जानती कि हम किस बहावमें बहे चले जा रहे हैं। अभी वक्त है। हम दोनोंका मिलाप इस दुनियामें कठिन क्या बल्कि नामुमकिनातसे एक है। धर्मकी दीवार कठिनतासे गिराई जा सकेगी, इसमें इखतलाफ कर रखा है। बहुत आगे बढ़ चुके और फिर तुम एक लड़की हो, अपना भविष्य सोचो, बदनामीका डर है। मैं चाहता तो नहीं था मगर फिर भी फर्ज था कि जिस रास्तेपर हम दोनों जा रहे हैं वाक्फीयत जरूर हो, ताकि रास्ता आसानीसे कट सके, नहीं तो चलना दुशवार हो जायगा। हमारी जुदाईमें भलाई है। देखो शमीम! इस वियोगमें कितना दुःख होगा यह तुम भी जानती हो और मैं भी। लेकिन मजबूरी है। संसार सबकुछ देख सकता है मगर दो गैर महजबोंका मेल नहीं सह सकता। मैं चाहता हूं कि भूल जाओ, भूल जाओ—पिछले वाकयातोंको सपना समझना। कहीं उनको असलीयतका रंग न दे बैठना; असल असल है और ख्वाब-ख्वाब!"

'वह चले गये।' कहते-कहते गला रुंध गया, शमीमकी आंखोंसे दो बड़े-बड़े आंसू निकल कर सिरहानेमें सूख गये। लीला आगे न सुनना चाहती थी,पर शमीम सुनाना चाहती थी। कुछ देरके बाद फिर बोलना शुरू किया—"जब उनकी यादकी गहराईमें जाती हूं तो घण्टों सुध नहीं रहती। उस दिनसे बड़ी कोशिश की कि भुला सकूं,मगर हर बार नाकामयाब रही।"

"कल शाम तक भली चङ्गी थी, तुम्हारी तरफ आनेके लिये तैयार थी और तुमसे वादा भी कर चुकी थी। मुंह-हाथ धो, बालोंमें कंघी कर कपड़े पहननेके लिये ड्रेस सोचने लगी। कई सूट निकाले पर कोई न जंचा, साड़ियां भी न भाईं; आखिरकार एक हल्के कासनी रंगकी साड़ी निकाली। उस साड़ीके साथ उनकी यादके एक और बाबको खोला, वह साड़ी नहीं थी बल्कि उनकी फरयाद थी, उसके रंगमें उनका मुख झलक रहा था। भरे हुए जखम फिरसे उभर गये। उनकी आखिरी निशानी ही तो थी। दिमागमें आदिसे अन्त तक सब वाकयात घूम गये। नदीमें डूबते हुए आदमीको जैसे दुनिया तैरती दिखाई देती है, वैसे ही मुझे सब बातें नश्तर बन कर चुभने लगीं। सिरमें चक्कर आने लगा। कुर्सीका सहारा लेकर संभलना चाहा, गिर पड़ी—" कहते-कहते आवाज भारी होती चली गई। आंखोंसे आंसू बह रहे थे; सिसकियां लेने लगी, और फिर खामोश हो गई। शायद मूर्छा आने लगी थी।

"बस बस, मैं नहीं सुनना चाहती, फिर कभी नहीं कहूंगी।"—लीलाने भी दीवानगीकी हालतमें दोनों हाथ कानोंपर धरते हुए कहा और फिर खामोश हो गई।

दीवारपर टंगा क्लाक कुछ गुनगुनाता हुआ अपने राग-की तानें मिला कर गा रहा था—'बस करो! बस करो!' मूर्छित शमीमकी सांस भी अनुमोदन करती हुई चल रही थी। लीला सहमी आंखोंसे कभी क्लाकको—कभी सोई शमीमको और कभी आलमारीके शीशोंसे झांक रही मोटी मोटी पुस्तकोंकी जिल्दोंको देख रही थी। तिपाईपर पड़ी हुई शीशियां मटमैले रंगोंमें डूबी हुई अपनी बेकसीको जत-लाते हुए सबकुछ देख रही थीं।

विवाह तो हो गया परन्तु लीलाके लिये वह कोई खिंचाव नहीं रखता था। नववधुओंसे वार्त्तालाप करनेका उत्साह जितना भारतीय कन्याओंमें होता है वह लीलामें नहीं था, वह हर समय मनोवैज्ञानिकके समान कोई न कोई गुत्थी सुलझाती रहती। जिस समय अवकाश मिलता, कल्पना आकर आंख मिचौनी खेलना शुरू कर देती। उसे इस मामूलीसे खेलमें न जाने कौनसा खिंचाव था, जो नव-वधू न खींच सकी। कल्पना अवसरकी ताकमें रहती; जिस समय उसको फारिग देखती, झट उपस्थित हो जाती। लीलाने कई बार उसको दुतकारा भी, परन्तु वह थी कि उसका पीछा छोड़ती ही न थी। अन्ततः उससे छुटकारा पानेके लिये वह मार्ग सोचने लगी।

पिताजीसे ट्यूशनके बारेमें कहा। उसका विचार था कि न समय मिलेगा न कल्पना आकर तंग करेगी। लीलाके पिता उसका साल गंवाना नहीं चाहते थे, उन्होंने ट्यूशन-को पसन्द किया। एक प्रोफेसर साहब कई दिन पढ़ाते रहे, परन्तु लीलाने उन्हें अयोग्य बता दिया। एक और साहब पढ़ानेके लिये आये। परन्तु वह भी समयपर न आनेके कारण खिसका दिये गये। कई आये परन्तु लीला किसीसे न पढ़ सकी। लीलाका दिल ही नहीं लगता था; एक दिन पिताने स्पष्ट कह दिया कि अमुक प्रोफेसर साहबको बुलाया जाय। लीलाके पिताने इसीमें भलाई समझी कि सम्भव है ये उत्तीर्ण हो जायं, क्योंकि लड़की स्वयं इनकी प्रशंसा कर रही है। प्रोफेसर साहब प्रतिदिन आते और पढ़ा कर चल देते। लीला उनसे सन्तुष्ट थी, सन्तुष्ट क्यों न होती। जिस दिनसे शमीमने फोटो दिखाया था, उस दिनसे मिलनेकी इच्छा थी। वह चाहती कि काश! मैं शमीम होती और प्रतिदिन वह मुझे पढ़ाने आते। वह आज उसको पढ़ाने आये थे। इस विधिसे इच्छा पूर्ण हुई थी। प्रोफेसर साहब आते, पढ़ा कर चल देते, परन्तु बीचमें न परदा होता और न लीलाके पिताजी ही।

नियत समयके समाप्त होनेपर वह साइकिल उठा कर चल देते।

लेक्चर देते समय उनकी आंखें पुस्तक और कापीपर ही गड़ी रहतीं, परन्तु लीलाकी नेढ़या दृष्टि उनके चेहरेपर अटकी रहती। कभी प्रोफेसर साहबकी आखें उठतीं भी तो अपनी ओर उसे टकटकी लगाये देखकर शर्मा जाते, माथेपर स्वेदके बून्द झिल-मिला रहे होते। लीला उनके लेक्चरके उत्तरमें हुंकारे भरे जाती परन्तु ध्यान उसकी ओर न होता, विचार कल्पनासे खेलते रहते।

प्रोफेसर साहब उसके ध्यानको भांपनेके लिये कुछ समय तक मौन हो जाते। उस समय भी लीलाके लगातार हुंकारे भरनेकी आवाज आती रहती। कई बार उन्होंने टोका भी कि 'लीला! ध्यान दो? वरना पढ़ाई मुश्किलसे हो सकेगी।' लीला अपनी दीवानगीको छिपानेकी असफल कोशिश करती और विश्वास दिलानेके खातिर कह उठती "जी! सब समझ रही हूं।" इस हाजिर जवाबीसे उनके मुख पर हलकी-सी मुस्कराहट खेल जाती। लीला सौजानसे उनकी मुस्कराहटपर, उनकी अदा पर—भरी जवानी, चौड़ी छाती-सुन्दर और रसीली आंखोंपर मोहित थी।

प्रति दिनकी झकझकसे प्रोफेसर साहब कुछ खिसयाने-से रहते; उधर लीलाको प्रति दिन डांट-डपट हो जाती। उसको इसी डांटमें आनन्द आता था। न जाने लीलाने क्या निर्णय किया था। प्रोफेसर साहब लेक्चर दिये जा रहे थे और लीला हुंकारे भरे जाती थी। हुंकारे शनैः-शनैः खामोशीमें बदल गयीं। लीला फिरसे कल्पनाके साथ अपनी रङ्ग-रेलियां मना रही थी। इन्हीं रङ्ग-रेलियों में बिलकुल निस्तब्ध हो गई आंखें प्रोफेसर साहबके चेहरेपर अटक गयीं। वह उसके ध्यानको भांप गये, वह कुछ कहनेके लिये तैयार ही थे कि लीला फौरन ताड़ गयी और कह उठी 'प्रोफेसर साहब? क्षमा कीजिये! क्या ही अच्छा होता यदि पिताजी हमारे साथ बैठे रहते और हमारे बीचमें परदा लटका होता ताकि मेरी दृष्टि परदेसे टकराकर पढ़ाईकी ओर परिवर्तित हो सकती।" प्रोफेसर साहब किन्हीं विचारोंकी गहराईमें उतर गये। चेहरा पीतवर्ण हो गया, खामोशीने अपनी हुकूमत जमा ली थी।

लीलाने उनको छेड़कर उनके दिलके किसी तारकी झंकारसे अपने प्रेमके स्वरको ढूंढ़ना चाहा, परन्तु उंगली गलत तारपर पड़ी, झंकार तो निकली परन्तु स्वर गलत था, कोई और ही गीत बजने लगा। उसको अपने प्रेमकी

उंगलियोंकी असफलता प्रतीत हुई। वह इतने दिनों तक भूलमें थी कि उंगलियां इतनी सफलतासे चल सकती हैं कि जिस तारपर हाथ रखूंगी इच्छानुसार गीत बजेगा। परन्तु यह सरासर गलतफहमी थी।

प्रोफेसर साहबके हृदयमें उथल पुथल मच रही थी। वह लीलाके इस प्रहारके लिये तैयार न थे; इस आक्रमणके प्रतिरोधके लिये कोई अस्त्र न पाकर उन्होंने अपना कड़ा अस्त्र इस्तमाल किया, माथेपर बल डालते हुए वह कहने लगे—"देखो लीला! इस प्रकार काम न चल सकेगा। मेरा यहां पर आना व्यर्थ दिख रहा है। मेरा समय कीमती है; मुझे आजसे छुट्टी दो। मैं चाहता हूं तुम्हारे पिताजीसे दो-चार बातें कर लूं, क्योंकि कहीं वह यह न कहें कि मैं धोखा दे गया।" बातको काटते हुए लीला झटसे कह उठी—"नहीं, नहीं, प्रोफेसर साहब! फिर ऐसा कभी न होगा। मिन्नतें करती हूं, पिताजीसे न कहियेगा। आगेसे ठीक तरह पढ़ूंगी।" वह पुजारीकी तरह अपने हृदय-रूपी-पुष्पको भगवानके चरणों में चढ़ा चुकी थी, परन्तु निर्दय भगवान सचमुच ही पत्थर की मूर्ति साबित हुए, उसके हृदयकी धड़कनोंको सुनतेहुए भी खामोश रहे।

उनकी आंखोंमें, नहीं—दिलमें भी कहीं अन्तर न था। लीलाने कई बार चाहा कि एक बार फिरसे मन-मन्दिरमें दाखिल होनेकी चेष्टा कर शायद वह उत्तीर्ण हो जाये। कई बार इशारोंसे समझाना चाहा। होठोंतक शब्द आते, परन्तु लज्जा उन शब्दोंको एकघूंट बनाकर गलेसे नीचे उतार देती। बातों-बातोंमें लीलाने एक दिन शमीमका जिक्र भी छेड़ा। उसने सोचा शायद इसीकी आड़में कुछ बात तो होगी, परन्तु उन्होंने तो शमीमकी ओरसे अज्ञानता दिखायी। लीला अच्छी तरह समझती थी कि प्रोफेसर साहब साफ मुकरते जा रहे हैं। लीलाने भी अधिक जोर न दिया क्योंकि उसका नाम आते ही उनके चेहरेपर उदासीके चिन्ह छा गये। परन्तु उसी उदासीमें फीकी मुस्कराहट फिरसे आना चाहती थी।

प्रोफेसर साहबकी जिह्वा भी लेक्चर देते-देते लड़खड़ा जाती। उस दिनसे वह प्रतिदिन अपराधीकी तरह आते, लेक्चर देकर चुपचाप उठ जाते। लीला उनकी आवाजको सुनकर बांसुरीके स्वरसे मस्त नागिनकी तरह अनमनी-सी बैठी रहती। उसे लेक्चरसे कोई सम्बन्ध न होता था। शायद वह समझती थी कि यह सब विषय अपाठ्य है। उसकी परीक्षा पुस्तकोंके ढेरसे नहीं, परन्तु उनके हृदयको अपनी ओर आकर्षित करके ही होगी और वह इसमें सफलता पानेके लिये कटिबद्ध हो गयी थी। छुट्टियां समाप्त होनेको आयीं, परन्तु अभी तक उसके पल्ले कुछ नहीं पड़ा था। पढ़ाईकी त्रुटि को पूरा करनेके बजाय वह एक और कमजोरी ले बैठी थी। अन्ततः छुट्टियां समाप्त हो गयी। उसके सुनहरे सपनोंका महल रेतके घरोंदेके समान गिरने लगा। वह टूटे हुए दिलसे चली गयी। वहां पहुंचते ही एकपत्र शमीमको लिखा।

'मेरी प्यारी बहन शमीम!

जबसे मैं तुमसे बिदा होकर आई हूं, विचारोंने ऐसा घेर रखा है कि आखिर लिखनेके लिये मजबूर हो गयी हूं। तुम कितनी खुशकिस्मत हो। जिसने दिलका प्यार पाया, अपनी उमंगोंको असली जामा पहनाया, परन्तु मजहबकी दीवार हायल रही और जिस कारण तुम असफल रहीं। परन्तु मैं दिलको न जीत सकी, दिलकी दुनियासे धक्के देकर निकाल दी गयी। मजहबने इसमें सहायता की परन्तु वह भी ठुकरा दिया गया। तुम्हारी दुनियामें मजहबने हलचल मचाई थी, परन्तु मेरी दुनिया मजहबको जीतते हुए भी हृदयकी दुनियासे पराश्त कर दी गयी। जिसे तुमने पाकर उसीको मैंने खोकर जीवनमें कांटे बिछाये। हमारी गाड़ियां अलग-अलग दिशामें चल रही थी, परन्तु ड्राइवर एक था। विधिके रैकटने कांटा बदला, ड्राइवर न इस गाड़ी को चला सका, न उसको। —तुम्हारी लीला!'

इसके उत्तरमें शमीमका पत्र मिला—लिखा था—

प्यारी लीला!

तुम्हारा पत्र मिला, मैं समझी थी कि मेरी गलतीसे तुम सबक हासिल करोगी, परन्तु तुम भी उसी गलतीका शिकार हुई। मेरी अवस्था वैसी-की-वैसी है, मैं संसारसे ऊब चुकी हूं, और जीना नहीं चाहती। मैं नहीं चाहती कि मेरी चीज मेरी मौतके बाद मेरे वालदैनके हाथ लगे। मैं अपनी जानसे प्यारी साड़ीको निशानीके रूपमें तुम्हें पार्सल कर रही हूं। क्या मैं तुमसे आशा कर सकती हूं कि मेरे मरनेके पश्चात् मेरी तरह 'मेरी और उनकी' यादगारको संभालकर रखोगी। जब कभी 'मेरी और उनकी' याद आये तो इसको देखकर जी भर लिया करना। पत्र और पार्सल पहुंचने तक मैं इस दुनियासे जा चुकी हूंगी, क्योंकि दो घण्टे पहले ही मैं कुछ खा चुकी हूं। यदि इस जीवनमें हमने कभी कष्ट पहुंचाया हो, तो बहन समझ कर माफ करोगी। अच्छा आखिरी अलविदा!

तुम्हारी बदनसीब और बिछुड़ रही—शमीम!

हिन्दी साहित्यके कुछ चिन्त्य अभाव

प्रो०—शिवपूजन सहाय, राजेन्द्र कालेज, छपरा

हिन्दीको हम लोग राष्ट्रभाषा मानते हैं। भारतके अन्य भाषा-भाषियोंने भी हिन्दीकी इस पदमर्यादाके सामने सिर झुका लिया है। जो लोग अभी तक अकड़े हुए हैं वे भी निकट भविष्यमें हिन्दीका सिक्का मान लेंगे। हिन्दीकी यही खूबी है कि वह किसीके गलेके नीचे हालाहल बनकर उतरना नहीं चाहती। वह तो अमृतके घूंटकी तरह सबके हीतलको शीतल करनेके लिये ही कण्ठगत होती है। वह चाहती है कि हमारी आसेतु-हिमाचल-विस्तृत छत्र-च्छायामें सभी भारतीय भाषाएं फूलें-फलें। किसीके साथ उसका किसी प्रकारका ईर्ष्या-द्वेष नहीं है। वह केवल शुद्ध प्रेमके प्रतापसे सबको जीत लेगी, दुनिया टुकुर-टुकुर ताकती रह जायगी। वह संस्कृतकी लाड़ली है, अपनी संस्कृतिकी छाप डालेगी।

जब वह कोटि कण्ठोंसे राष्ट्रभाषा मानी जा चुकी तब उसके साहित्य-भण्डारको हमें सर्वतोभावेन सुसम्पन्न बनानेका अविश्रान्त प्रयत्न करना चाहिये। हमें बड़े ध्यानसे देखना होगा कि उसके राजकोषमें क्या है और क्या नहीं है।

पहले तो हम देखते हैं कि हिन्दी जिस संस्कृतकी सुपुत्री कही जाती है उसके साहित्यकी अनेक अनमोल चीजें हिन्दीके पास नहीं हैं। यदि केवल हिन्दीके सहारे हम संस्कृत-साहित्यका यथेच्छ रसास्वादन करना चाहें तो हमें बहुलांशमें निराश ही होना पड़ेगा। पौराणिक, धार्मिक और आध्यात्मिक संस्कृत-ग्रन्थोंके सुलभ सटीक संस्करण गीता प्रेस, (गोरखपुर) से कुछ निकले हैं और कुछ निकलने वाले हैं तथा बम्बई, काशी और लाहौरके कुछ प्रकाशकोंने भी संस्कृत-साहित्यके विविध-विषयक ग्रन्थोंके हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित किये हैं; किन्तु उनमेंसे अधिकांशके विषयमें यह कहा जा सकता है कि वे सुलिखित और सुसम्पादित न होनेके कारण केवल हिन्दी जाननेवालोंके लिये सुबोध नहीं हैं। यदि ऐसे मुख्य-मुख्य अनुवादग्रन्थ छांटकर समालोचना की कसौटी पर कसे जायं तो निश्चय ही बहुत कम खरे निकलेंगे। अब ऐसे समालोचक नहीं नजर आते जो साहित्यके उपकारके लिये इतना अधिक परिश्रम करें। पर इस बातकी बड़ी आवश्यकता है कि पुराने अनुवाद अच्छी तरह जांचे-परखे जायं और नये ढङ्गके अनुवादके लिये उचित सुझाव पेश किये जायं। पुराने ढङ्गके अनुवादसे मेरा जो तात्पर्य है उसे एक साधारण उदाहरण देकर स्पष्ट कर दूं।

स्वर्गीय विद्यावारिधि पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्रका किया हुआ 'रघुवंश' का अनुवाद बम्बईसे निकला है। आचार्य द्विवेदीजीका अनुवाद (रघुवंश) प्रयागसे प्रकाशित है। मिश्रजीमें टीकाके साथ मूल भी है, द्विवेदीजीमें केवल सरल व्याख्या ही है। यदि द्विवेदीजीमें मूल भी होता तो विशेष लाभकी सम्भावना थी। फिर भी यह स्पष्ट है कि मिश्रजीके पाठक कालिदासकी छाया भी मुश्किलसे छूते हैं और द्विवेदीजी अपने पाठकोंको महाकविके अन्तस्तल तक पहुंचा देते हैं। वास्तवमें पुराने ढङ्गके अनुवाद आधुनिक रुचिके पाठकोंके लिये बिलकुल निकम्मे हैं, क्योंकि उनकी भाषामें भाव-व्यञ्जनाकी शक्ति बहुत ही कम है। नये ढङ्गके आधुनिक अनुवादोंके दो नमूने पेश किये जा सकते हैं—'साहित्य-दर्पण' का अनुवाद जो लखनऊसे निकला है और जगद्धर भट्टकी 'स्तुतिकुसुमांजलि' का अनुवाद जो काशीसे प्रकाशित हुआ है। तब भी यह कहना पड़ेगा कि आचार्य द्विवेदीजीने अपने समयकी 'सरस्वती' में उक्त 'कुसुमांजलि' का जैसा विशद एवं प्राञ्जल अनुवाद प्रस्तुत किया था वैसा किसीसे नहीं बन पड़ा। अतएव अनुवादक ऐसा सामर्थ्यशाली होना चाहिये जो मूल और अनुवाद दोनोंकी भाषापर पूर्ण आधिपत्य रखता हो। तभी सामान्य हिन्दी प्रेमी भी मूलका प्रकृत मर्म या तत्व समझ सकता है। जब हम अनुवादोंकी राशि टटोलने लगते हैं तब यह प्रत्यक्ष अनुभव होता है कि प्रामाणिक और मर्मोद्घाटक अनुवाद बहुत ही कम हैं। बड़े हर्षका विषय है कि अखिल भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन संस्कृत-साहित्यके सद्ग्रन्थोंके सुबोध अनुवाद तैयार करा रहा है। आशा है कि उसका यह प्रकाशन सर्वाङ्गसुन्दर और सामयिकतापूर्ण होगा।

आवश्यकता तो इस बातकी है कि संस्कृतके प्रसिद्ध महाकाव्यों और नाटकोंके ऐसे सुन्दर अनुवाद हिन्दी पाठकोंके समक्ष उपस्थित किए जायं, जिनके द्वारा वे महा-

कवियोंके गूढ़ आभ्यन्तरिक आशय सुगमतापूर्वक हृदयंगम कर सकें। इसके लिये सुयोग्य विद्वानों और अनुभवी सम्पादकोंका एक सुसंघटित मण्डल होना चाहिये। यदि कोई धनाढ्य साहित्यानुरागी इस कामको व्यापारिक दृष्टिसे भी करना चाहे तो वह लाभ ही उठावेगा। सफल व्यापारी वही होता है जो अपने मालकी उत्तमता और उपयोगिता पर हमेशा कड़ी निगाह रखता है। साहित्यके व्यापारी ऐसे बहुत कम हैं। अंगरेजीके प्रकाशकोंने साहित्य सेवाको व्यावसायिक लाभका माध्यम बनाकर अपने साहित्यको खूब संवारा-सिंगारा है। किन्तु खेद है कि हिन्दीके अधिकांश प्रकाशक भाषा-भाव-संरक्षणकी चिन्तासे अपनेको सर्वथा मुक्त मानकर केवल इसी धुनमें लगे रहते हैं कि येन-केन प्रकारेण ग्राहकोंकी मांग पूरी करके टके सीधे किये जायें। यह स्थिति अत्यन्त भयावह है।

हमारे यहां संग्रहग्रन्थोंका भी बड़ा अभाव है। उदाहरणार्थ, संस्कृतमें जैसे 'सुभाषितरत्न भाण्डागार' या 'सुभाषित रत्न सन्दोह, या 'सदुक्तिकर्णामृत' आदि ग्रन्थ हैं, वैसा एक भी हिन्दीमें मैंने नहीं देखा। अङ्गरेजीमें ऐसे अनेक संग्रह ग्रंथ हैं, जिनमें प्रसिद्ध साहित्यकारोंके प्रमुख ग्रन्थोंसे उत्तमोत्तम गद्यांश अथवा पद्यांश विश्लेषणात्मक रीतिसे संकलित किए गये हैं। इससे लाभ यह होता है कि साहित्यसागरके मन्थनसे अनेक ऐसे उज्ज्वल रत्न सुलभ हो जाते हैं, जो अतल गभीर गह्वरमें अज्ञात छिपे पड़े थे और जिनका किसी प्रकार कोई उपयोग नहीं हो पाता था। दृष्टान्तके तौर पर देखिए कि आचार्य द्विवेदीजी, प्रेमचन्दजी और 'प्रसादजी'के गौरवशाली ग्रन्थोंमें असंख्य सुधासिक्त सूक्तियां तथा विशुद्ध व्यंग्यविनोद लोकलोचनसे ओझल पड़े हुए हैं। बहुतोंकी शिकायत है कि हिन्दीमें 'ह्युमर' (Humour) है ही नहीं। मैं कहता हूं, यदि केवल आचार्य द्विवेदीजी और आचार्य शुक्लजीकी ही रचनाओंसे 'ह्युमर' छांटे जायं, तो एक खासा पोथा बन जा सकता है। हमारे साहित्यकी बहुतेरी चीजें जहां-तहां इधर-उधर छिटी पड़ी सड़ रही हैं। कुछ दिनोंमें वे दीमकोंके पेटमें चली जायंगी। फिर उनका उद्धार असम्भव होगा।

हिन्दीके स्वनामधन्य स्वर्गीय साहित्य सेवियोंकी ग्रन्थावलियां तो इनी-गिनी ही हैं। कलकत्तासे केवल एक ही ग्रन्थावली निकली—पण्डित गोविन्दनारायण मिश्र की, जिसे बाबू दामोदरलालजी खत्रीने निकाला था। वह भी अब शायद हिन्दी प्रेमियोंके ध्यान-नयनके ओट हो चुकी है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा अभी तक भारतेन्दु ग्रंथावलीके दो ही खण्ड निकाल सकी, तीसरा अर्थाभावके चक्कर में पड़ा है। सम्मेलन (प्रयाग)भी भारतेन्दु-सखा प्रेमघनजीकी ग्रन्थावलीका अभी प्रथम खण्ड ही प्रकाशित कर सका है, दूसरा खण्ड भविष्यके गर्भमें है। इण्डियन प्रेससे पण्डित माधवप्रसाद मिश्रकी ग्रन्थावली अच्छे ढङ्गसे निकली है; पर अभी शायद उसका भी कुछ अंश शेष ही रह गया है। जयपुर-सम्मेलनमें पण्डित झाबरमल्लजी शर्मासे सुना कि बाबू बालमुकुन्द गुप्तकी ग्रन्थावली उन्होंके सुपुत्र श्री नवलकिशोर जी गुप्त दिल्लीसे निकालने जा रहे हैं, जिसका सम्पादन शर्माजी और पण्डित बनारसीदासजी चतुर्वेदी कररहे हैं पंडित जगन्नाथ प्रसादजी चतुर्वेदीके सुपुत्र श्रीरमावल्लभ चतुर्वेदीभी मलयपुर (मुंगेर) से पूज्य चौबेजीकी ग्रन्थावली निकालनेकी धुनमें लगे हुए हैं। पर यह काम इस तरह छिट-फुट ढङ्गसे पूरा होने योग्य नहीं। जैसे बंगीय साहित्यसेवियोंकी ग्रन्थावलियां वसुमती-साहित्य मन्दिर (कलकत्ता)से सुलभ मूल्यमें निकली हैं वैसे ही किसी एक संस्था या प्रकाशकको यह काम अपने हाथमें लेना चाहिये। इस महत्कार्यकी पूर्तिसे साहित्यका अकथनीय उपकार होगा। कुछ दिनोंके बाद कितनी ही ग्रन्थावलियोंकी सामग्री ढूंढ़ने परभी न मिलेगी। सुना है कि बंगालमें श्रीबंकिमचन्द्र-सम्पादित 'बंगदर्शन' के सभी अङ्कोंका जीर्णोद्धार चौबीस सुसज्जित खण्डोंमें हुआ है; पर खेद है कि हमारे पूज्य पण्डित बालकृष्ण भट्टके 'हिन्दी-प्रदीप' के कुछ अङ्क भी कहीं देखनेको नहीं मिलते—उनके पुनर्मुद्रणका स्वप्न तो बहुत दूर है। भट्टजीके कुछ चुने लेखोंका संग्रह लखनऊसे निकला है और पं० प्रतापनारायण मिश्रकी निबन्धावली भी अभ्युदय प्रेस (प्रयाग) से निकली थी। किन्तु भारतेन्दु-युगके इन दो उद्भट लेखकोंकी बहुत सी सुन्दर रचनाएं अभी अन्धकारमें पड़ी हुई हैं। इसी प्रकार अनेक साहित्य-सेवियोंकी कृतियां हमारी असावधानता और उपेक्षाके कारण नाशके पथ पर बढ़ी चली जा रही हैं। हिन्दी हितैषियोंको इधर शीघ्र ही ध्यान देना चाहिये। साहित्यकी कई शाखाओंके असंख्य सौंदर्यशाली सुरभित सुमन यत्रतत्र इतस्ततः बिखरे पड़े हैं। ग्रंथमालाके रूपमें उनका सुरुचिपूर्ण सुसम्पादित संग्रह होना अत्यावश्यक है।

हिन्दी पत्रपत्रिकाओंका इतिहास भी यदि शीघ्र ही न लिखा गया तो थोड़े ही समयके पश्चात् हमें उसके लिए असीम सागरमें 'अनन्त-फल' टटोलना पड़ेगा। एक धुंधली-

सी स्मृति है कि ग्वालियर-राज्यके गुना-निवासी श्री अवन्त बिहारीलाल माथुरने इस काममें बहुत दूर तक सफलता पाई थी; पर इधर उनके उस उद्योगका वृत्तान्त कुछ ज्ञात नहीं। अखिल भारतीय पत्रकार संघ जैसे पत्रकार-कोष तैयार कर रहा है वैसे ही यह काम भी करता तो बड़ा अच्छा होता। सुना है कि इस काम पर उसका ध्यान गया है; पर अभी किसी सङ्गठित प्रयत्नका मुझे पता नहीं। जयपुर सम्मेलन-में पण्डित झाबरमल्लजी शर्मा कहते थे कि पण्डित बनारसी-दासजी चतुर्वेदीके सहयोगसे वे पत्रपत्रिकाओंका सम्पूर्ण इति-वृत्त तैयार कर रहे हैं। आशा है कि उन लोगोंका प्रयत्न अवश्य सफल होगा। सभी पत्रकारोंसे उन्हें यथोचित सहा-यता मिलेगी। अखिल भारतीय पत्र-संग्रहालयोंसे भी सहा-यता मिल सकती है। प्रयागमें ऐसा एक संग्रहालय है; पर उसमें केवल हिन्दी पत्रोंकी ही प्रधानता नहीं है। दक्षिण-हैदराबादमें केवल हिन्दी पत्रोंका ही एक वृहत् संग्रहालय है और इधर पटना सिटीमें भी एक ऐसा ही (भारतीभवन) स्थापित हुआ है। इनके अतिरिक्त 'सम्मेलन' (प्रयाग) और 'सभा' (काशी) के संग्रहालयमें भी काफी मसाला मिल सकता है। अच्छा तो यह हो कि प्रत्येक प्रान्तके पत्रकार अपने अपने प्रान्तका भार उठालें; क्योंकि यह कर्त्त-व्य भी विशेषतः उन्हींका है। पत्रकार-संघकी ओरसे सबको प्रेरणा मिलनी चाहिये।

हिन्दीमें एक सचित्र एवं सुसम्पादित तथा सुमुद्रित विश्वकोषका अभाव भी बहुत खटकता है। जो विश्वकोष बङ्गलासे अनुवादित होकर निकला है वह हिन्दी-हितकी दृष्टिसे सर्वाङ्गपूर्ण नहीं है। भाषाकी दृष्टिसे भी वह प्रामा-णिक विश्वकोष नहीं कहा जा सकता। मुद्रण-कलाकी दृष्टि-से वह सर्वथा असन्तोषजनक है। किन्तु इस समय 'अभावे शालिचूर्णं' वही है। लखनऊकी 'विश्वभारती' निस्सन्देह बहुत अच्छी चीज है, पर उससे 'विश्वकोष' का अभाव दूर नहीं होता। राष्ट्रभाषाके लिए सबसे पहले सर्वाङ्ग सुन्दर विश्वकोषकी ही आवश्यकता है। राष्ट्रभाषाके साहित्यमें सभी प्रमुख भाषाओंके साहित्यका इतिहास भी होना चाहिये! जहां तक मुझे मालूम है, बङ्गला और मराठी तथा गुजराती भाषाओंके साहित्यका इतिहास भी हिन्दीमें कोई अच्छा-सा नहीं है। कम-से-कम भारतीय भाषाओंमें जो कुछ उत्तम और संग्रहणीय है उसका तो अवश्य ही सञ्चय करना चाहिये। अङ्गरेजी भाषाका देशमें बहुल प्रचार है, पर हिन्दीमें उसके साहित्यका इतिहास कोई नहीं है। यह अभाव तो है ही, हिन्दी-साहित्यका इतिहास भी अङ्ग-रेजीमें आजतक किसी हिन्दी-प्रेमी अङ्गरेजीदांने नहीं लिखा। हिन्दीमें बड़े-बड़े 'डाक्टर' विद्वान् हैं, जो चाहें तो भारतीय दृष्टिसे अङ्गरेजीमें हिन्दी-साहित्यका इतिहास सुन्दर लिख सकते हैं, पर इधर भी किसीका ध्यान नहीं है। बङ्गला-साहित्यका इतिहास अङ्गरेजीमें है—दो बड़े खण्डोंमें; पर राष्ट्रभाषा अभी पिछड़ी ही हुई है।

इस प्रकारके और भी कई अभाव हैं, जिनपर हम सब राष्ट्रभाषा-भक्तोंको तत्परतासे विचार करना चाहिये, किन्तु इस छोटेसे लेखमें सबकी चर्चा नहीं होसकती। मैंने विचार-शील विद्वानों और उदार हिन्दीप्रेमी धनिकोंका ध्यान आकृष्ट करनेके लिए कुछ संकेत मात्र दे दिए हैं। विश्वास है कि राष्ट्रभाषाके गर्वमें फूलनेवाले हम लोग शान्तचित्त हो इन या ऐसे ही अन्य अभावों पर उचित ध्यान देनेमें प्रवृत्त होंगे।

कैसे संगिनि बन जाऊं

कैसे साहस करूं नाथ,
मैं आंखोंमें बस जाऊं ?
क्योंकर देव ! असुन्दर वाणी
श्रवणों तक पहुंचाऊं ?

किन सुमनोंकी सुन्दर माला
देव तुम्हें पहनाऊं ?
सांस-सांसमें देव असुन्दरता
ले कैसे जाऊं

हे मेरे आराध्य ! तुम्हें
कैसे मैं अर्घ्य चढ़ाऊं ?
हे मेरे सम्बल बोलो
कैसे, संगिनि बन जाऊं ?

—पुष्पलता वंशीकर

बेतार और टेलिविजनके चमत्कार

श्री गोविन्द राव मराठे

बेतार और टेलिविजनका भविष्य बहुत ही चमत्कार पूर्ण है। बेतार (Wireless) के द्वारा भविष्यमें होनेवाले अद्भुत आविष्कारोंकी तालिका देखकर बहुतोंको आश्चर्य होगा, कितने ही अज्ञ व्यक्ति उसे केवल निरी कल्पना ही समझेंगे, और उसे स्वप्न कह कर हंसनेसे भी न चूकेंगे।

भारतवर्षमें टेलिविजनका आगमन कब होगा, इस प्रश्नका उत्तर देना कठिन है। इङ्गलैंड और अमेरिकामें टेलिविजनका प्रसार हो चुका है। यदि यह महायुद्ध आरम्भ हुआ न होता, तो इन देशोंमें इस आविष्कारकी अबतक बहुत प्रगति हो गयी होती। तथापि आज भी वहांके वैज्ञानिक शोधन-कार्यमें व्यस्त हैं।

तेहरानमें अभी हालमें मित्रराष्ट्रोंके सर्वेसर्वाओंकी जो परिषद हुई थी, उसकी चित्रावलि (Film) लेकर वायुयान द्वारा कुछ ही घण्टोंमें उसे न्यूयार्क पहुंचाया गया और वहांसे तुरन्त ही टेलिविजन द्वारा दूर-दूर तक प्रदर्शित किया गया। सिनेमा वाले इससे रुष्ट अवश्य ही हुए, पर उनके लिये तेहरान-परिषद्की चित्रावलि थियेटरोंके रजतपटपर इतनी जल्दी दिखला सकना कहां सम्भव था?

टेलिविजनके क्षेत्रमें फायरस्टोन रबर वर्क्स तथा लिवर ब्रदर्स नामक दो कम्पनियोंने एक नया कदम रखा है। उन्होंने प्रति सप्ताह टेलिविजन द्वारा लोगोंका मनोरञ्जन तथा साथ-ही-साथ अपने मालका विज्ञापन करनेका निश्चय किया है।

टेलिविजनके क्षेत्रमें अमेरिकाके प्रसिद्ध वैज्ञानिक डाक्टर पामर क्रेग महोदयने जो एक नवीन अनुसन्धान किया है वह बहुत ही महत्वपूर्ण तथा आशाप्रद है। टेलिविजनकी सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि उसके कार्यक्रम बहुत दूरके स्थानों तक नहीं भेजे जा सकते, परन्तु यह कठिनाई डा० क्रेगके नये अनुसन्धानके कारण दूर होनेकी सम्भावना है। डा० क्रेगका कथन है कि टेलिफोनके तारों द्वारा टेलिविजनके कार्यक्रम भेजे जा सकते हैं। यदि ऐसा हुआ, तो दूर-दूरके देशोंमें भी टेलिविजनके कार्यक्रम भेजे जा सकेंगे।

युद्धके बाद अमेरिकामें टेलिविजनका प्रचार बड़े वेगके साथ होगा, इसमें जरा भी सन्देह नहीं है। ज्ञात हुआ है कि वहांके व्यवसायी युद्ध-समाप्तिकी राह देख रहे हैं, अन्यथा वे पांच-छः महीनोंके भीतर ही टेलिविजन-सेट तैयार कर सकते हैं। युद्धके बाद ये लोग जो टेलिविजन-सेट तैयार करेंगे, उनका मूल्य ६००) रु० से लेकर २५००) रु० तक रहेगा। जिन पर्दोंपर टेलिविजन द्वारा चित्र दिखलाई देंगे, उनका आकार न्यूनतम ८×१० और अधिकतम २०×२४ इञ्च रहेगा। इन पर्दोंपर रजतपटकी भांति स्पष्ट और स्वच्छ चित्र देखे जा सकेंगे।

और इस कथनमें कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं कि युद्धके बाद अमेरिकन घरोंमें मोटर, टेलीफोन, रेडियो जैसे यंत्रोंकी भांति एक-एक टेलिविजन-सेट भी रहा करेगा।

अब देखना है कि टेलिविजनके द्वारा किस प्रकारके दृश्य और चित्र दिखलाये जायेंगे। इस बातकी कल्पना ही बड़ी मनोरञ्जक है। कहा जाता है कि इन दृश्योंमें समाचार और खेलों (Matches) की प्रधानता होगी। समाचार और खेलोंकी चित्रावलियां लेकर कुछ हो घण्टोंमें वे टेलिविजन द्वारा दिखलाई जायेंगी, और इस प्रकार हम घर पर ही अनेक दुर्घटनाओं, भावी युद्धों, सभा-परिषदों और क्रिकेट आदि मैचोंको प्रत्यक्ष देख सकेंगे। इसके अतिरिक्त टेले-सेटपर नाटक, नृत्य, गान, व्याख्यान आदि भी प्रदर्शित होंगे। विज्ञापनबाजी भी इससे लाभ उठायेगी।

टेलिविजन द्वारा प्रदर्शित दृश्य एक ही समय अनेक थियेटरोंमें बैठकर देखे जा सकेंगे—यह सबसे बड़ी सुविधा है। कल्पना कीजिये कि दो प्रसिद्ध पहलवान प्रयागमें कुश्ती लड़ रहे हैं। टेलिविजन द्वारा यू० पी० के सभी थियेटरोंमें बैठकर अन्य नगरोंके दर्शक इस दङ्गलका पूरा-पूरा आनन्द उठा सकते हैं। अमेरिकामें अभी हाल ही में एक बाक्सिङ्ग टूर्नामेंट इसी प्रकार प्रदर्शित किया गया था।

कहना न होगा कि ज्यों-ज्यों समय बीतता जायगा, टेलिविजनमें नये-नये अनुसन्धानों-द्वारा अधिकाधिक आकर्षण एवं संवर्द्धन किया जायगा।

ऐसी स्थितिमें यह कहा जा सकता है कि टेलिविजनका यदि इस प्रकार सर्व-साधारणमें प्रचार हो गया तो उस अवस्थामें रेडियोकी जरा भी मांग न रह जायगी। इस तर्कमें विशेष तथ्य नहीं है। क्या सिनेमाके आविष्कार

से नाटकोंका समूल नाश हो सका है? यह सच है कि सिनेमाने रङ्गमञ्चको कुछ क्षति अवश्य पहुंचायी है, पर नाटकोंके थियेटर आज भी भीड़से खचाखच भरे रहते हैं, यह क्या हम नहीं देखते !

और सच पूछा जाय, तो भविष्यमें रेडियो और टेलिविजनमें घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित हो जायगा। क्योंकि रेडियोके कार्यक्रम हम दूसरे कामोंमें व्यस्त रहते हुए भी सुन सकते हैं। पर टेलिविजनके बारेमें हम ऐसा नहीं कर सकते। उसके कार्यक्रम हमें एकाग्रचित्तहोकर एक स्थानपर बैठकर देखने पड़ेंगे और इस प्रकार रेडियो तथा टेलिविजन-के मिश्र-कार्य क्रमोंकी आवश्यकता आ पड़ेगी। काममें व्यस्त रहनेपर हम रेडियोसे लाभ उठायेंगे और अवकाशके समय हम टेले-सेटपर एक दृष्टि गड़ाये रखेंगे।

अमेरिकामें आज टेलिविजनके नौ केन्द्र (Stations) कार्य कर रहे हैं। वहांके समीपवर्ती स्थान इससे लाभ उठाते हैं। बेतारकेद्वारा जिस समय दूर-दूर तक ध्वनि भेजने अर्थात् रेडियोका प्रयोग पूर्णताको पहुंचने लगा, उसी समयसे वैज्ञानिक बेतारके द्वारा दूर-दूर तक चित्र भेजनेकी बात सोचने लगे थे। एक-आध स्तब्ध चित्र अथवा फोटोको विद्युल्लहरियोंमें रूपांतरित करके दूर-दूर तक भेजना टेलिविजनकी अपेक्षा सरल है। समाचारोंके घटित होनेके कुछ ही काल बाद उनके 'रेडियो फोटो' आज भी हम समाचार-पत्रोंमें देखते हैं। टेलिविजनमें यही कार्य बहुत ही शीघ्र किया जाता है। प्रत्येक चित्रको सहस्रों बिन्दुओंमें विभाजित किया जाता है और फिर प्रत्येक बिन्दुको विद्यु-ल्लहरीमें बदल दिया जाता है। इस प्रकार एक सेकिंडमें ३० चित्रोंको विद्युल्लहरियोंमें रूपांतरित किया जाता है। इससे टेलिविजनकी कठिनाईका ज्ञान हो सकता है। ये चित्र जब चित्रपटकी भांति हमारे सामने द्रुतगतिसे सञ्चालित होते हैं, तो हमें लगता है कि घटना हमारे सामने प्रत्यक्ष घट रही है। आधुनिक टेलिविजनका प्रत्येक चित्र १६०००० बिन्दु-ओंमें विभाजित किया जाता है, और यह सब एक सेकिंडमें लाखों मीलतक पहुंच जानेवाले इलेक्ट्रानकी कृपासे संभव हो सका है। टेलिविजन स्टेशनसे चित्र केवल बीस मीलके दायरेके भीतर ही भेजे जा सकते हैं, क्योंकि इसका संचालन केवल लघु लहरियों (Short Waves) द्वारा ही होता है। फिर भी अमेरिकामें अभी हालमें ही किये गये एक प्रयोगसे देखा गया कि यदि प्रेषक और दर्शक, दोनों ही बहुत ऊंचेपर स्थित हों, तो २०० मीलके दायरे तक भी पहुंचाये जा सकते हैं।

बेतारके द्वारा लिये गये रेडियो-फोटो जिस शैलीसे भेजे जाते हैं, उसी शैलीका उपयोग आज अन्य कार्योंमें भी हो सकता है। जैसे अंगूठोंके निशानोंको शीघ्रातिशीघ्र भेजनेमें पुलिस विभाग उसका उपयोग कर सकता है। आज विदेशोंमें स्थित अपने मित्रोंको अल्प समयमें अपने हस्ताक्षरयुक्त पत्र भेजना संभव हो चुका है।

बेतारका समाचारपत्र (टेलीप्रिंटर) एक आश्चर्य-कारक नवीन आविष्कार है। रेडियो सेटसे एक यन्त्र सटा रहता है और उसीमें रखे हुए कागज पर बेतारके द्वारा भेजे गये समाचार छप जाते हैं—उनका ध्वनिमें रूपान्तर नहीं होता। इस प्रकार हमारे कानोंको खबरें सुननेका परिश्रम नहीं करना पड़ता। प्रत्युत एक ताजा समाचार-पत्र हमारे लिये तैयार रहता है। एक घण्टेमें लगभग पचास फीट कागज छप जाता है। कहना न होगा कि साधारण समाचारपत्रोंसे कहीं अधिक ताजी खबरें बेतारके इस समाचार पत्रमें समा-विष्ट रहती हैं। अमेरिकामें रेडियो सेटसे जुड़नेवाले समा-चारपत्र-यंत्रका मूल्य १५०) है।

वैज्ञानिकोंने कुछ वर्ष पूर्व ही बेतारके द्वारा एक सीमित दायरेमें वायुयानों तथा जलपोतोंका संचालन करना संभव कर दिखलाया था। आज जर्मनीके जिन उड़न बमोंकी सर्वत्र चर्चा है, ये उड़न बम बेतार और अग्निवाण दोनोंकी सहा-यतासे चलते हैं। विगत चालीस वर्षोंमें यांत्रिक-विज्ञानकी जैसी कुछ प्रगति हुई है और आज जैसी कुछ हो रही है, उसे देखकर बेतारके यंत्रों, रेडियो, टेलिविजन आदिके भावी आश्चर्य-कारक चमत्कारोंका स्वप्न आंखोंके सामने खड़ा हो जाता है।

आज आम तौरपर रेडियोको ही बेतार अथवा वायर-लेस मान लिया गया है। परन्तु कुछ वर्षोंके अन्दर परस्पर वार्तालाप करनेमें बेतारका इतना अधिक उपयोग होने लगेगा कि बेतारके द्वारा भेजे जानेवाले रेडियो अथवा टेलिविजन के कार्यक्रम बन्द कर देने पड़ेंगे और वे कार्यक्रम बिजली, टेलीफोन, गैस अथवा एक विशेष प्रकारके तारों द्वारा भेजे जाने लगेंगे। इसका प्रधान कारण यह है कि बेतारके संदेशों द्वारा निर्मित होनेवाली इलेक्ट्रो-मैग्नेटिक लहरियोंकी आ-काशमें इतनी भीड़-भाड़ हो जायगी कि उन्हें कम करनेके लिये कुछ सन्देशोंको तार द्वारा भेजना अनिवार्य हो जायगा। इस प्रकार आजसे लगभग पचीस वर्ष बाद, आज जिस प्रकार प्रायः प्रत्येक घरोंमें पाइप, बिजली अथवा गैस-का कनेक्शन रहा करता है, उसी प्रकार रेडियो-टेलिविजन का कनेक्शन रहा करेगा।

मार्गोंमें आज जिस प्रकार स्थान-स्थानपर लेटर बक्स लगे रहते हैं, उसी प्रकार भविष्यमें ध्वनिमय-समाचार पत्र अथवा बड़े-बड़े टेले-सेट लगे रहेंगे। राह चलते लोग क्षण भर इनके सामने ठहरकर ताजी-ताजी खबरें सुन लिया करेंगे। उस कालके विज्ञापन शत-प्रतिशत बोलते और नाचते-गाते रहेंगे। आजके छपे हुए विज्ञापनोंको उससमय कौन पूछेगा? उस समय लोग अपनी जेबोंमें मनीबेगकी तरह रेडियो-सेट रखा करेंगे, और कलाईपर घड़ीकी भांति बेतारका यन्त्र बांधकर जगतके किसी भी व्यक्तिसे बातचीत कर सकेंगे। इन आविष्कारोंके सफल होनेमें बहुत वर्षोंकी प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ेगी। थर्मियानिक वाल्वके अनुसंधानके बाद रेडियाकी प्रगति अत्यन्त तीव्र गतिसे हुई; और इससे भी अधिक तीव्रगति भावी आविष्कारोंकी होगी।

बेतारके द्वारा जब ध्वनि और दृश्य भेजनेका कार्य पूर्णता तक पहुंच जायगा, तब बेतारके द्वारा गन्ध भेज सकने की बात वैज्ञानिकोंके मस्तिष्कमें चक्कर काटेगी। यदि यह आविष्कार सफलहुआ, तो हम टेलिविजनका तीन इन्द्रियों से उपभोग कर सकेंगे—आंखें दृश्य देखनेका कार्य करेंगी, कान ध्वनिको सुननेमें व्यस्त रहेंगे और घ्राणेन्द्रिय विविध प्रकारकी सुगन्धियोंकी माधुरी लूटनेमें रत रहेगी।

इसके अनन्तरका आविष्कार बेतार द्वारा स्पर्श भेज सकनेका होगा। प्रथमतः इस आविष्कारके कुछेक प्रयोग असफल ही रहेंगे; परन्तु बादमें यह आविष्कार भी पूर्णता तक पहुंच जायगा, ऐसी सम्भावना है।

शब्द, स्पर्श, रूप और गन्धके बेतारके द्वारा भेज सकनेके बाद वैज्ञानिक बेतारके द्वारा प्रकाश और यान्त्रिक-शक्ति भी भेजनेके उद्योगमें लग जायेंगे। आज तो हम सुन ही रहे हैं कि बेतारके द्वारा इङ्गलैंडसे आस्ट्रेलियाके दीप प्रकाशित किये जाते हैं—तथा जर्मनीसे उड़न बम इङ्गलैंड को भेजे जाते हैं। परन्तु इस तरह बेतारके द्वारा नियंत्रण करनेमें तथा प्रत्यक्ष यांत्रिक-शक्ति और प्रकाश भेजनेमें बड़ा अन्तर है। प्रत्यक्ष शक्ति भेजनेके लिये वैज्ञानिकोंको संभवतः कुछ नवीन :लहरियोंका अनुसंधान करना पड़े! आजका रेडियो-केन्द्र कार्यक्रम भेजनेमें जिस महती यांत्रिक शक्तिका व्यय करता है, उसका केवल अल्पांश ही हम रेडियो-सेटमें ग्रहण कर पाते है—शेष सब शक्ति विदीर्ण हो जाती है वैज्ञानिक-गण इस खोजमें लगे हुए हैं कि किस उपायके द्वारा इसे रोका जा सकता है अर्थात् किस तरह हम रेडियो-केन्द्रसे व्यय होनेवाली सारी शक्तिको सेटमें ग्रहण कर सकते हैं। परन्तु इसमें अभी वे कृतकार्य नहीं हो सके हैं। इसके पहले बेतार द्वारा प्रकाश भेजा जासके, एक दूसरी ही समस्याका हल होना आवश्यक है। आज विद्युत-प्रकाश की ९९ प्रतिशत शक्ति उष्णताके रूपमें व्यर्थ ही जाती है और केवल ९ प्रतिशत शक्ति प्रकाशमें परिणत होती है। ऐसा न होकर समस्त विद्युच्छक्तिका प्रकाशमें रूपान्तर होना चाहिये। इस प्रकारके प्रकाश निर्माणमें जब वैज्ञानिक सफल हो जायंगे, तब विद्युच्छक्तिका व्यय एकदम कम हो जायगा, यह तो स्पष्ट ही है; पर बेतारके द्वारा प्रकाश भेज सकना भी उस समय सुलभ हो जायगा।

जब बेतारके द्वारा यांत्रिक शक्ति भेज सकना संभव हो जायगा, उस समय सड़कों, समुद्रों तथा वायुमें चलनेवाले सब प्रकारके वाहन इसी शक्तिके द्वारा चलने लगेंगे।

इतने अधिक परिमाणमें बेतारके द्वारा शक्ति भेजनेका विपरीत प्रभाव मनुष्यों तथा वनस्पतियोंपर पड़ सकता है। पर यदि ऐसा हुआ, तो तुरन्त ही इसका प्रतिबन्धक उपाय भी खोज निकाला जायगा। कदाचित् कपड़ोंमें या प्रत्यक्ष मनुष्योंके रक्त ही में कोई ऐसा रसायन भरा जायगा, जिससे इन नवीन लहरियोंका प्रभाव उनपर न पड़ सके।

बेतारके द्वारा प्रत्यक्ष वस्तु भेज सकना, भविष्यमें बेतारके वैज्ञानिकोंका सबसे बड़ा पराक्रम होगा। आज यह बात एक दम असंभव लगती है, पर वैज्ञानिकोंकी कल्पना है कि २—३ सौ वर्ष बाद यह सफल हो सकती है! इसका कारण यह है कि अति-अल्पांशिक रूपमें ही क्यों न हो, पर आज वस्तुको लहरियोंमें परिणत करना सम्भव हो सका है।

बेतारकी लहरियोंका अनुसन्धान यदि निरन्तर चलता रहा, तो वैज्ञानिकोंको कुछ उपयुक्त नवीन लहरियां प्राप्त हो सकती हैं। कुछ ऐसी मक्खियां देखनेमें आई हैं, जो स्वजातीय मक्खियोंकी लहरियोंकी पहुंचके बाहर जीवित नहीं रह सकतीं। इससे वैज्ञानिकोंने यह तत्व निकाला है कि प्रत्येक जीवित प्राणी एक प्रकारकी लहरियां छोड़ा करता है और वे उसकी जातिके प्राणियोंको मिला करती हैं। कभी-कभी अकारण ही हम किसी व्यक्तिको अपनी आंखोंके सामने देखना तक पसन्द नहीं करते और इसके विपरीत किसी व्यक्तिकी हमपर गहरी छाप पड़ती है, इसका कारण शायद यही हो। भावनाओं तथा बुद्धिपर प्रभाव डालनेवाली लहरियोंका यदि अनुसन्धान हो सका, तो मानव-जीवनपर उनका कितना विलक्षण परिणाम होगा।

विज्ञान और धर्म *

श्री शंकर भारद्वाज, एम० ए०, एल० एल० एम०

आज तक जो कुछ भी मनुष्यने विचारा है, अथवा किया है, वह केवल दो मजबूरियोंसे हो प्रेरित होकर किया है— (१) दुखसे निवृत्ति (२) किसी इच्छाकी पूर्ति। हमारे धार्मिक एवं सांस्कृतिक प्रयत्नके पीछे भी यही भावनाएं काम करती हैं।

वे क्या इच्छायें, अथवा भाव हैं, जिन्होंने धर्मको मनुष्यके जीवनमें इतना ऊंचा स्थान दिया? यदि हम तनिक वैज्ञानिक निष्पक्षतासे सोचें तो हम जानेंगे कि धार्मिक प्रवृत्तिके अन्तर्हित कई गुप्त भाव छिपे हुए हैं।

प्रारम्भिक कालके जङ्गली मनुष्यके हृदयमें तो कोरा भय ही भगवान और धर्मका भाव उदय करता है। वह अनेक भयोंसे त्रस्त होता है---भूख-प्यासका भय, बनैले पशुओंका भय, बीमारी-मृत्युका भय आदि। वह कार्य-कारणके सम्बन्धको समझनेमें असमर्थ होता है। अतः उसकी कल्पना ऐसी अनेक शक्तियोंको जन्म देती है, जिनकी कृपा और कोप पर वह अपना जीवन स्थित समझने लगता है। बस अब उसको एक ही चिन्ता रह जाती है कि वह कैसे इन स्वकल्पित देवी देवताओंको प्रसन्न करे। पूजा-पाठ, नैवेद्य, बलिदान—यह सब इन देवी-देवताओंको ही प्रसन्न करनेके तो साधन हैं। इन्द्र देवता यदि रीझ गये तो वृष्टि अच्छी होगी, काल भैरव यदि सन्तुष्ट रहे तो वे और उनका पशुधन सुरक्षित रहेगा आदि। प्रारम्भिक धर्म केवल भयपर निर्भारित होता है।

समाज शास्त्रज्ञोंने हमें बताया है कि मनुष्यके इतिहासमें ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं कि अन्यायी शासक या तानाशाह अपनी राज्य सत्ताको दृढ़ करनेके लिये या तो पुरोहित वर्गको आर्थिक प्रलोभन देकर अपने राज्यका हामी एवं प्रचारक बना लेते हैं, या फिर स्वयं धार्मिक खलीफा बन बैठते हैं। सामाजिक भावना-स्वार्थ-पूर्तिके लिये और परस्पर सहयोगकी इच्छाभी कभी कभी धर्मको जन्म देती है। मनुष्य अनुभव करता है कि उसके माता, पिता, गुरुजन और नेता भी भूल कर बैठते हैं, और फिर वे सदा तो उसके साथ रहते नहीं। परन्तु उसे तो सदा किसी त्रुटि रहित पथ-प्रदर्शककी आवश्यकता रहती है। बस यही इच्छा एक ऐसे प्रभुकी कल्पना करती है जो मनुष्यका सदा बन्धु, सहायक और अगुवा हो, जो उसे कुमार्गसे बचाये, जो उसकी जातिका रक्षक तथा पोषक हो, जो उसे दुखमें सान्त्वना दे, और शुभ कर्मके करने पर उसकी सराहना करे। इतना ही नहीं—हमें ऐसे भगवानकी आवश्यकता है जो हमारे मरनेके बाद भी हमारी आत्माकी रक्षा करे।

यह मनोवृत्ति सभी धर्मानुयायियोंमें पायी जाती है, क्या यहूदी, क्या इसाई, क्या मुसलमान, क्या हिन्दू।

हमें यह मानना पड़ेगा कि इस विचारका आधार एक नैतिक वृत्ति है, जो भयकी वृत्तिसे कहीं ऊंची है। इसमें सन्देह नहीं कि वह धर्म जिसका आधार नैतिक अथवा सामाजिक भावना हो, उस धर्मसे कहीं श्रेयष्कर है जो केवल मूढ़ अन्ध-भय पर आश्रित हो।

हम यह भी दावेसे नहीं कह सकते कि सभ्य जातियोंके धर्म नैतिकता पर आश्रित हैं और असभ्य जातियां निरे भयाश्रित धर्ममें ही विश्वास करती हैं। ऐसी बात नहीं है। सच तो यह है कि सब धर्म भय और नैतिकता एवं सामाजिक भावोंके मिश्रण हैं और इन सब धर्मोंने अपने अपने भगवानकी मूर्तिका निर्माण भी उसी मिट्टीसे किया है जिससे कि स्वयं मनुष्य बना है। ऐसे प्रतिभाशाली व्यक्ति मनुष्य-इतिहासमें इने गिने हैं जो धर्मकी इस भावनासे ऊंचे उठ सकें।

मेरे निकट धर्मका और ही स्वरूप है। मेरा धर्म थोथा तर्कवाद अथवा मूढ़ रूढ़िवादसे रहित है। मेरे धर्मका प्रमुख अङ्ग है वह कोमल अनुभूति जो इस विशाल विश्वका दिग्दर्शन करने पर हृदयमें एक मीठी गुदगुदी पैदा कर देती है। उस पूर्ण चेतन्य अवस्थामें मनुष्यको अपने अन्दर सार्वभौमिकताका अद्भुत अनुभव होता है। तब वह गद् गद् होकर कह उठता है 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' —यह सार्वभौमिकताका अनुपम भाव ही सच्ची आध्यात्मकता, सच्चा धर्म है। तब मनुष्य व्यक्तिगत जीवन और इसकी समस्यायें—संकल्प-विकल्प, आशा, इच्छा, राग-द्वेष, क्षोभ, हर्ष इन सबकी तुच्छताको जान जाता है, और वह मेरे-परायेके संघर्षसे छुटकारा पा जाता है। तब उसके मननके विषय तो

* जगत प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइन्सटायनके विचारोंके आधार पर।

अखिल ब्रह्माण्ड और मनका अथाह सागर हो जाते हैं और वह विश्वकी व्यापकताका पूर्ण अनुभव करनेके लिये व्याकुल हो उठता है। इस प्रकार उसे अपना शरीर और परिमित 'अहं भाव' तो बन्धन प्रतीत होने लगते हैं और वह इस शरीरकी कैदसे छूटना चाहता है। अपने आपको विश्वकी व्यापकतामें खोनेकी उत्सुकता प्रायः प्रत्येक धर्मके पैगम्बरमें हम पायेंगे। शोपनहारका कथन है कि यह सार्वभौमभाव हमें भगवान बुद्ध और बुद्ध धर्ममें अधिक मिलता है। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि ईसा, बुद्ध आदि महात्मा हमें किसी धर्म विशेषके सिद्धान्तोंमें जकड़ना नहीं चाहते थे। वे तो हमें मानसिक और आध्यात्मिक दासतासे मुक्त करने आये थे। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि सच्चा धार्मिक भाव, जिसके स्वरूपकी रूप रेखा मैंने ऊपर चित्रितकी है, नास्तिकोंमें भी पाया गया है।

अब प्रश्न यह है कि यह सार्वभौमिक भावना जो अखिल विश्व दर्शनसे हमारे अन्दर उत्पन्न होती है, जन साधारणके अन्दर कैसे जाग्रत हो सकता है? मेरी रायमें कला, विज्ञान और दर्शन शास्त्रका यही महत्व है कि ये हमारे अन्दर इन अनिर्वचनीय अनुभूतिको जाग्रत करें। आइये, अब हम धर्म और विज्ञानका परस्पर सम्बन्ध समझनेका प्रयत्न करें।

ऐतिहासिक दृष्टिसे हमें विज्ञान और धर्म सदासे परस्पर विरोधी प्रतीत होंगे। परन्तु, क्या यह विरोध अवश्यम्भावी है, अथवा एक दूसरेके दृष्टि कोणको ठीक तरह न समझनेके कारण ही है?

यह ठीक है कि एक वैज्ञानिकके लिये, जिसने इस विशाल विश्वके अन्तर्निहित एक अटूट कार्य-कारणका सम्बन्ध भांप लिया है, ऐसे ईश्वरकी आवश्यकता नहीं रह जाती, जो मनुष्य जगतके नियन्त्रणमें किसी प्रकारका दखल रखता हो। मनुष्योंको ताड़ना करने वाले और उन पर कृपा करने वाले भगवानकी कल्पना मात्र ही उसे हंसानेके लिये काफी है। उसे भय अथवा लोभ पर आश्रित धर्मकी दरकार नहीं। क्योंकि उसने यह अच्छी तरह समझ लिया है कि मनुष्य केवल आन्तरिक प्रेरणा और बाह्य परिस्थितिसे बाध्य होकर ही किसी कर्ममें रत होता है, तो उसका इसमें क्या दोष है? क्या हम एक पत्थरको दोषी ठहराते हैं, यदि वह किसी बाह्य शक्तिसे चालित होकर इधर उधर लुढ़कता फिरता है और उसकी इस हालतसे किसीको आघात भी पहुंच जाता है? रूढ़ि गत धर्ममें विश्वास रखने वालोंका यह कथन हैकि विज्ञान मनुष्यको नास्तिक बनाकर नैतिकताको बज्राघात पहुंचाता है। पर, क्या यह ठीक है? वैज्ञानिकोंका कथन है कि मनुष्यकी नैतिकता मनुष्य समाजके प्रति अपनी जिम्मेदारी समझनेका परिणाम होनी चाहिये, न कि वह किसीके डरसे शराफतसे पेश आये। वह तो बड़ा तुच्छ व्यक्ति है जो भगवानके डर या प्रलोभनसे अच्छा बननेका प्रयत्न करता है। कितने अज्ञानी हैं ये मत-मतान्त-रावलम्बी, जिन्होंने विज्ञानको बदनाम करनेकी कोशिशकी है, और जिनके गलत प्रोपेगण्डाके कारण कई वैज्ञानिकोंको कष्ट भोगना पड़ा।

काश! ये विज्ञानके विरोधी समझ पाते कि एक वैज्ञानिक भी उतना ही आध्यात्मिक हो सकता है, जितना कि एक सन्त। योगी और वैज्ञानिक दोनोंको समान विराट विश्वका दर्शन होता है। एक वैज्ञानिक भी उतनी ही घोर मानसिक तपस्या करता है, जितना एक योगी। केप्लर और न्यूटन वास्तवमें सच्चे आस्तिक थे, और उन्हें एक ब्रह्माण्डको नियन्त्रणमें रखने वाली किसी महान शक्तिका अनुभव था। अन्यथा वे इस विशाल विश्वकी पहेलीको समझनेमें अपना सारा जीवन यूंही न खपा देते। इन महान आत्माओंके जीवन और दृष्टिकोणको वही समझ सकता है जिसने स्वयं अपनी आयु वैज्ञानिक अन्वेषणमें लगा दी हो। सच मानिये, यह सार्वभौमिक अनुभूति एवं अनुशीलन ही वैज्ञानिकको आजीवन घोर श्रम करते रहने पर भी निराश नहीं होने देते। एक आधुनिक महापुरुषका कथन है कि वर्तमान जगतमें सच्चे आध्यात्मिक पुरुष केवल वैज्ञानिक ही हैं। कोई भी प्रमुख वैज्ञानिक आप ऐसा न पायेंगे जो सच्चे अर्थमें आस्तिक न हो।

परन्तु एक वैज्ञानिकका धर्म किसी ऐसे भगवान पर आश्रित नहीं है, जिसके साथ उसका पिता-पुत्र सम्बन्ध हो। वह अब बच्चा नहीं है जिसे अपने पितासे डर हो, वह अब बचपनके प्रलोभनोंसे ऊंचा उठ गया है। वैज्ञानिक भी पुजारी है, परन्तु वह तो इस विशाल विश्वकी नियन्त्रक उस अनिर्वचनीय, अव्यक्त, महान शक्तिके आगे सिर झुकाता है, जिसने इस विशाल विश्वको अपने नियन्त्रणमें रखा है। परन्तु वह यह अच्छी तरह समझता है कि उस अव्यक्त शक्तिको न तो मनुष्य जातिकी विशेष चिन्ता है, और न उससे पुजवानेकी इच्छा। इस महान अनिर्वचनीय, अव्यक्त और सूक्ष्मातिसूक्ष्म शक्तिके मनन मात्रसे ही वैज्ञानिक "मोक्ष-पद" को प्राप्त हो जाता है।

रामचरित-मानसमें देवताओं के चित्रण

श्रीमती गंगा देवी वर्मा

गोस्वामी तुलसीदास रामके अनन्य उपासक थे। रामही उनके तन, धन और मन थे। राम ही को वह सर्वत्र व्यापक देखते थे। उनकी दृष्टिमें देवता, दानव, दक्ष, नर, नाग, किन्नर, गंधर्व सबसे राम बड़े थे। राम के विरोधीको ही वे अपना विरोधी मानते थे। यही कारण है कि रामकी ईश्वरतामें जहां किसीने कुछ भी सन्देह प्रकट किया तुलसीदासने उसकी दुर्गति के लिये कोई कल्पना नहीं छोड़ी। राम अपने विमुखोंको भले ही क्षमा कर दें, पर तुलसीदासने उनका पक्ष लेकर उन्हें खूब खोटी-खरी सुनाई है। उन्हें खूब डांटा-डपटा है। राम विमुखके लिये उनके हृदयमें थोड़ी भी दया नहीं थी। देवताओंने अपने शत्रु राक्षसोंको नष्ट करनेके लिये रामको बन भेजनेका षड्यन्त्र रचा और वह षड्यन्त्र स्त्री जाति–सरस्वती, मंथरा और कैकेयी - द्वारा हुआ। शायद यही कारण था, जिसने तुलसीदास को स्त्री-जातिका विरोधी बना दिया।

रहे देवता, सो उनका जैसा परिहास तुलसीदासने राम चरित मानसमें किया है, वैसा किसी कविने आजतक किया है, यह मैंने नहीं देखा। जहां-जहां मौका मिला है, ब्रह्मा, विष्णु,महेश, इन्द्र और नारद तकका परिहास करनेमें वे नहीं चूके! मामूली देवताओंकी तो बात ही क्या? यह क्या देवताओंके राम को कष्ट पहुंचानेका बदला नहीं है?

सारे राम चरित मानसमें तुलसीदासने देवताओंकोकेवल दो काम सौंपे हैं—दुन्दुभी बजाना और फूल बरसाना। जहां कहीं अद्भुत घटना घटी, चाहे जंगल हो या बस्ती, घर के भीतर हो या बाहर, देवता तुरन्त फूलों की वर्षा करने लगते और दुन्दुभी बजा देते। मानों उनकी यही ड्यूटी थी कि दुन्दुभी और फूलोंकी झोली लिये घूमते रहें और जहां कहीं आवश्यकता समझें दुन्दुभी बजा कर फूल बरसाने लगें। कहीं कहीं तुलसीदासने देवताओंकी स्त्रियोंको नचवाया और गवाया भी है। देवताओंके दोषोंका उन्होंने कभी समर्थन नहीं किया है। उनके कोई रहस्य, चाहे वह भला हो या बुरा, खोलनेमें तुलसीदासने कभी असावधानी नहीं की।

लीजिये सर्वप्रथम विष्णु भगवानकी ही करतूत सुनिये। नारदका अभिमान दूर करनेके लिये विष्णुने एक रचना रची। उससे नारदको बड़ा विक्षोभ हुआ। भेंट होने पर नारदने विष्णु भगवानकी अच्छी खबर ली। उन्होंने कैसी-कैसी बातें कहीं सो सुनिये—

> पर संपदा सकहु नहिं देखी;
> तुम्हरे इरिषा-कपट बिसेखी।
> मथत :सिंधु-रुद्रहिं बौरायहु;
> सुरन्ह प्रेरि विष-पान करायहु।

> असुर सुरा, विष शंकरहिं; आपु रमा, मनिवास,
> स्वारथ-साधक, कुटिल तुम्ह; सदा कपट व्यवहार।

> परम स्वतन्त्र न सिर पर कोई;
> भावइ मनहिं, करहु तुम्ह सोई।
> भलेहिं मंदमंदहि भल करहू;
> बिस्मय-हरष न हिय कछु धरहू।
> डहंकि-डहंकि परिचेहु सब काहू;
> अति असंक मन सदा उछाहू।
> करम सुभासुभ तुमहि न बाधा;
> अब लगि तुमहि न काहू साधा।
> भले भवन अब बायन दीन्हा;
> पावहुगे:आपन फल कीन्हा।

तुलसीदासने यहां नारदके मुंहसे विष्णुकी पोल खुलवायी है तो एक अन्य स्थान पर सप्तर्षियोंके मुंहसे नारदका भंडाफोड़ कराया है। नारद इधरकी उधर लगानेमें बड़े प्रवीण थे। उनकी सम्मतिसे उमाने शिवके लिये तप करना प्रारम्भ किया। उस मौके पर सप्तर्षियोंने उमाके हृदयका भाव देखनेके लिए नारदके विरुद्ध उन्हें ऐसा समझाया—

> सुनत बचन बिहंसे ऋषय,
> गिरि - संभव तव देह;
> नारद कर उपदेश सुनि,
> कहहु, बसेउ को गेह?
> दच्छ सुतनि उपदेसिन्हि जाई;
> तिन फिर भवन न देखा आई।
> चित्रकेतु कर घर उन घाला;
> कनक कसिपु कर पुनि अस हाला।
> नारद-सिष जे सुनहि नर-नारी;
> अवसि होहिं तजि भवन भिखारी।

मन-कपटी तन सज्जन चीन्हा;
आपु सरिस सब ही चहं कीन्हा।

लगे हाथों सप्तर्षियों ने शिवजीका भी रूप वर्णन कर दिया—

निर्गुन, निलज, कुवेष कपाली;
अकुल, अगेह, दिगंबर, ब्याली।
कहहु कवन सुख अस बर पाये?
भल भूलिहु ठग कै बौराए;
पंच कहे सिव सती बिवाही;
पुनि अवडेरि मराइनि ताही।
अब सुख सोवत सोच नहिं,
भीख मांगि भव खाहिं।
सहज इकाकिन के भवन,
कबहुं कि नारि खटाहिं।

शिव बरातमें भी शिव-स्वरूपका बड़ा हास्यपूर्ण वर्णन है

सिवहिं संभुगन करहिं सिंगारा;
जटा-मुकुट अहि-मौर संवारा।
कुण्डल-कंकन पहिरे ब्याला;
तन विभूति, पट केहरि-माला।
ससि ललाट सुन्दर, सिर गंगा;
नयन तीनि उपबीत भुजंगा।
गरल कंठ, उर नर-सिर-माला;
असिव भेष सिव धाम कृपाला।
कर त्रिसूल अरु डमरु बिराजा;
चलें वृषभ चढ़ि बाजहिं बाजा।
देखि सिवहिं सुर-त्रिय मुसुकाहीं;
बर लायक दुलहिनि जग नाहीं।
विष्णु, बिरंचि आदि सुर त्राता;
चढ़ि-चढ़ि वाहन चले बराता।
सुर-समाज सब भांति अनूपा;
नहिं बरात दूलह-अनुरूपा।
विष्णु कहा अस बिहंसि तब,
बोलि सकल दिसिराज।
बिलग-बिलग होइ चलहु सब,
निज-निज सहित समाज।
बर अनुहारि बरात न भाई;
हंसी करइहउ पर-पुर जाई।
विष्णु-बचन सुनि सुर मुसुकाने,
निज-निज सेन सहित बिलगाने।
मन ही मन महेस मुसुकाहीं;
हरि के ब्यंग बचन नहिं जाहीं।

* * *

इन्द्र पर तुलसीदास की विशेष कृपा दृष्टिगोचर होती है। जहां उनकी चर्चा करनेका अवसर इन्हें मिला, वहीं इन्होंने उनकी जी भर कर भर्त्सना की है। नारद जब तप कर रहे थे, तब इन्द्रने उनको तपसे भ्रष्ट करनेके लिये कामदेवको भेजा। इस पर कुपित होकर तुलसीदास कहते हैं—

जे कामी, लोलुप जगमाहीं,
कुटिल काक-इव सबहिं डराहीं।
सूख हाड़ लेइ भाग सठ, स्वान निरखि मृगराज;
छीनि लेइ जनि जानि जड़, तिमि सुरपतिहिं न लाज।

परशुराम जी भी विष्णुके अवतारोंमें से एक थे। पर उन्होंने धनुष भंगके अवसर पर रामके लिये कटु वाक्य कहे। राम-भक्त तुलसीदास अपने आराध्य-देव का अपमान न सह सके। उन्होंने मौका मिलते ही लक्ष्मणके द्वारा परशुरामकी पूरी फजीहत करा डाली। यह प्रसंग इतना लम्बा चौड़ा है कि यहां स्थान संकोचके कारण नहीं दिया जा सकता और बिना सब उद्धृत किये उसका आनन्द नहीं मिल सकता। अतः इस रोचक कथाको राम चरित मानसमें ही पढ़ना चाहिये।

शिवके पांच मुख थे। प्रत्येक मुख पर तीन नेत्र थे। इस तरह सब पन्द्रह नेत्र हुए। ब्रह्माके चार मुख और आठ नेत्र थे। कार्तिकेयके छः मुख और १२ नेत्र तथा इन्द्रके एक हजार नेत्रथे। देवताओंकी यह विचित्र बनावट देखकर गोसाईं जी से बिना छेड़ छाड़ किये नहीं रहा गया। राम विवाहके अवसर पर उन्होंने इन्द्र आदिका मजाक उड़ा ही डाला। रामकी बरात जा रही है। राम घोड़े पर सवार हैं। उस अवसरकी बात है—

जेहि बर बाजि राम असवारा;
तेहि सारदहु न बरनइ पारा।
संकर राम-रूप अनुरागे;
नयन पंच दस अति प्रिय लागे।
हरि हित-सहित राम जब जोहे;
रमा समेत रमापति मोहे।
निरखि राम छबि बिधि हरखाने;
आठै नैन जानि पछताने।
सुर-सेनप-उर बहुत उछाहू;
बिधि तें डेवढ़ सुलोचन लाहू।

रामहिं चितव सुरेश सुजाना;
गौतम शाप परम हित माना।
देव सकल सुरपतिहिं सिहाहीं;
आज पुरन्दर-सम कोउ नाहीं।

रामको युवराज पद देनेकी बात चल रही है। हाट-बाट, घर-गली, सब जगह इस उत्सवके सम्बन्धमें तरह तरहकी स्कीमें बनायी जा रही हैं। अयोध्या नगरीआनन्दकी लहरोंमें नाच रही है। पर देवता इसमें विघ्न डालना चाहते हैं। तुलसीदास उनसे बहुत रुष्ट हैं। वह उन्हें कुचाली कह कर चोरसे उनकी उपमा देते हैं—

सकल कहहिं कब होइहि काली;
विघन मनावहि देव कुचाली।
तिनहि सुहाइ न अवध बधावा;
चोरहिं चांदनि राति न भावा।

देवताओंने सरस्वतीसे बड़ी विनती की कि हे माता कोई ऐसी युक्ति करो, जिससे राम बन जायं और देवताओंका कार्य सिद्ध हो। सरस्वती पहले अस्वीकार करती थीं पर—

सारद बोलि विनय सुर करहीं;
बारहिं बार पायं लै परहीं।

*　　*　　*

बार बार गहि चरण सकोही,
चली विचारि—विबुध मति पोही।
ऊंच निवास नीच करतूती;
देखि न सकहिं पराइ विभूति।

देवता पक्के चापलूस और चतुर थे। रामको उत्साहित करनेके लिये वे रामकी प्रशंसा सुनकर फूल बरसाते और दुन्दुभी बजाते थे। रामने जब चित्रकूटको रहनेके लिये पसन्द किया, तब इन्द्र आदि देवता वेष बदलकर, कोल-किरातकी सूरत बनाकर आये, और उन्होंनें रामके लिये झोपड़े खड़े कर दिये। अपने मतलबके लिए इन्द्रको झोपड़ा छानेमें कुछ शर्म न आयी।

भरत रामको मनाने चित्रकूट जा रहे हैं। उनके प्रभाव से—

भइ मृदु महि मग मङ्गल मूला।
किए जाहिं छाया जलद, सुखद बहइ बरबात;
तस मग भयहु न राम कहं, जस भा भरतहि जात।

यह प्रभाव देवताओंको असह्य हो गया। देवताओंके राजा बड़े तिकड़मी थे। स्वार्थ साधनके लिये छल कपट करना उनके बायें हाथका खेल था—

देखि प्रभाव सुरेसहिं सोचू;
जग भल भलेहिं, पोच कहं पोचू।
गुरुसन कहेउ—करिय प्रभु सोई,
रामहि भरतहिं भेंट न होई।
राम सकोची प्रेम-बस, भरत सुप्रेम-पयोधि।
बनी बात बिगरन चहत, करिय जतन छल सोधि॥
बचन सुनत सुर गुरु मुसकाने;
सहस नयन बिनु लोचन जाने।

*　　*　　*

राम सदा सेवक रुचि राखी;
वेद, पुरान, साधु, सुर साखी।
अस जिय जानि तजहु कुटिलाई;
करहु भरत पद प्रीति सुहाई।
स्वारथ विवस बिकल तुम होहू,
भरत दोष नहिं राउर मोहू,

गुरुकी बात सुनकर इन्द्रको कुछ ढाढ़स-सा हुआ। वह फिर खुशामद करने लगे :—

बरषि प्रसून हरषि सुर राऊ,
लगे सराहन भरत सुभाऊ।

इन्द्रने रामको लौटा लानेके भरतके प्रयत्नको निष्फल करनेके लिये बड़े-बड़े प्रपंचोंकी रचना की। इसके लिये इन्द्र महराजको तुलसीदासकी फटकारें भी खूब सहनी पड़ी हैं।

लंकाकाण्डमें देवताओंका रूप स्पष्ट दिखायी पड़ता है। पहले वे सदा शंकित रहते थे कि रामसे राक्षसोंका संहार हो सकेगा या नहीं। इसीसे वे प्रकट रूपसे रामकी सहायता नहीं करते थे। हां, रामके लिये सब सुभीते अवश्य कर देते थे। ऋषियों, मुनियोंसे राम जब राक्षसोंके संहारकी प्रतिज्ञा करते थे, तब देवता फूल बरसाते और दुन्दुभी बजा देते थे। रामने जब रावणके कुटुम्बियोंको मार डाला तब देवताओंको कुछ सन्तोष हुआ। उनको तब विश्वास हुआ कि राम रावणको मार सकते हैं। अब वे निर्भय होकर रामकी सहायता करने लगे—

देवन्ह प्रभुहि पयादे देखा,
उपजा उर अति छोभ विसेखा।

सुरपति निज रथ तबहिं पठावा,
हरष सहित मातलि लेइ आवा।

रावणकी मायाके प्रभावसे जब असंख्य रावण युद्धमें प्रविष्ट हो गए तब—

डरे सकल सुर चले पराई,
जय कै आस तजहु अब भाई।
सब सुर जिते एक दसकंधर;
अब बहु भये तकहु गिरि कंदर।

पर रामने रावणकी माया जब नष्ट कर डाली तब—

रावण एक देखि सुर हरषे,
फिरे, सुमन बहु प्रभुपर बरषे।

इसी तरह तुलसीदासने प्रायः सर्वत्र, रामायणमें देवताओंको निकम्मा, डरपोक, स्वार्थी और खुशामदी दिखलाकर, रामको बन भेजकर कष्ट देनेका बदला चुकाया है।

तुलसीदास स्वर्ग गये होंगे,देवताओंसे उनकी मुलाकात भी हुई होगी। पता नहीं वहां देवताओंसे उनकी कैसी निपटी।

मेरा भाई....

प्रो० माहेश्वरी सिंह 'महेश' एम० ए०

मेरा भाई चला गया—

* * *

हम लोग शून्य आकाशके दो नक्षत्र थे:
एक डालीके दो फूल थे:
एक मा की दो आंखें थे:

* * *

वह मेरे समान था:
उसे सूर्यके प्रकाशने दुलराया था:
वहां—
जहां शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु बहती है।
जहां ताड़के पत्ते हंसते हैं।
जहां बांसका झुरमुट खिलखिलाता है।
जहां सरिताएं कल-कल निनाद करती हैं।
जहां बहुरङ्गरञ्जित सुग्गे बोलते हैं।
जहां दिव्य-ज्योतिमें तरु-शिखाएं नाचती हैं।
जहां श्याम समुद्रके सन्निकट सुनहले बालू-कणोंकी विशाल राशि है।
जहां सूर्य-ज्योत्स्ना दुनिया संजोती है।
जहां मेदिनी विलसती है।
जहां धानके खेत लहलहाते हैं।
हां वहीं।
जहां पथ-पार्श्वमें माता दो सुकुमार बच्चोंको दुग्ध-पान कराती है एवं उसके पाद-पद्मोंपर पुष्पदल लुटता है।
वह एकांत भूमि—
वह अखण्ड प्रशांत भूमि—

* * *

वह चल बसा—
मैं एकांतमें रोया—

* * *

मैं जहां कहीं जाता, उसकी बोली सुनता।
उसका हास्य बिखरा पाता।
और
प्रत्येक पथिकके मुख-मण्डलमें उसका मुख-मण्डल ढूंढ़ता
और पूछता—
"क्या तूने मेरे भाईको देखा है?"
किन्तु हाय! किसीने मुझे सांत्वना न दी—

* * *

मैंने पूजा की—
मैंने अर्चना की—
किन्तु देवगण चुप थे।
मैं अधिक रो न सका।
मैं सपना देख न सका।
मैंने सब चीजोंमें सभी ठौर उसे ढूंढ़ा।
मैंने अनेक तरुओंकी फुसफुसाहट सुनी।
वे मुझे अपनी गोदमें बुला रहे थे।

* * *

मैं बढ़ा और मैंने देखा देव............
ओ देव!
केवल तुझमें मैं अपने भाईका मुख-मण्डल देख रहा हूं।
ओ मेरे अनन्त प्रेम!
केवल तुझमें मैं अपना दुलारा भाई देखता हूं।
और देखता हूं—
विश्वके समस्त जीवित एवं मृतक चेहरे—

सोवियट रूसके लोकगीत

श्री व्रजकिशोर वर्मा,'श्याम'

सोवियट लोक गीत अपने खास विषय—यानी वीर-रससे सम्पूर्ण रूसको रंगे हुए हैं। क्रांतिके बादके वर्षोंके लोक-गीत-साहित्यकी रचना यद्यपि सोवियट यूनियनकी विभिन्न जातियों द्वारा हुई है,पर उनमें समान विषयों और विचारोंका चलन ही हमें अक्सर मौकोंपर देखनेको मिलता है। इसका कारण सोवियट लोकगीतोंमें निहित समाजवादी सिद्धान्तोंकी एकता है। उन्हींकी प्रेरक-शक्तिके फल-स्वरूप मौखिककाव्य रचनाओंमें नए-नए भेद और प्रकारोंकी उन्नति होती जाती है, लेकिन यह एकता पूर्ण समाजवादी लोक-गीत-काव्य राष्ट्रीय विशेषताओंको मिटाता नहीं, विभिन्न भाषाओंके महान-स्वर-समूहको विच्छिन्न नहीं करता, संघकी विभिन्न प्रान्तीय बोलियों, सांस्कृतिक रीति-रिवाजों और कलाकी परम्पराओंको नष्ट नहीं करता, बल्कि भिन्न-भिन्न भाषाओंमें इस लोक-गीत साहित्यको एक ऐसी, विचार और व्यञ्जनासे पूर्ण, राष्ट्रीय 'भाषा' प्रदान करता है जो सबको एकताके विशाल सूत्रमें बांध देती है।

गोर्कीने सोवियट लेखकोंकी प्रथम कांग्रेसकी रिपोर्टमें अपने इस सिद्धान्त पर सविस्तार बहस करते हुए यह साफ सिद्ध कर दिया था कि लोकगीत ही समाजवादके वीर-काव्यका आधार होंगे। इसमें सन्देह नहीं कि अध्ययन द्वारा लोकगीतोंकी विभूतियोंको अपनाने की ओर रूसी लेखकोंका ध्यान गोर्कीने ही आकृष्ट किया था। इसका यही कारण नहीं था कि लोकगीतोंके पूर्व इतिहासमें उसने कलापूर्ण और ओजपूर्ण ग्रन्थ देखे थे, बल्कि अन्य लेखकोंसे पहले मुख्यतः उसीने सोवियट लोकगीतोंमें नवीन वीरगाथा साहित्यकी प्रौढ़ विशेषताएं पहिचानी थी। उसीने रूसी सोवियट संघकी विभिन्न जातियोंके लोक-गीत-काव्यमें वीर गाथाका वह नया उत्थान देखा जो अपनी प्रगतिमें युगके सामान्य साहित्यसे भी आगे बढ़ गया था।

सभी राष्ट्रोंकी मौखिक वीर गाथाओंमें, सभी-युगोंमें खास स्थान ऐसे महापुरुषोंको मिलता है, जिन्हें जनताकी कल्पना जन्म देती है। प्राचीन दंत कथाओंमें, यूनानी देव हरकुलिस, देव तुल्य विद्रोही वीर प्रोमेथ्युस, 'कीव' गाथा समूहके लोकगीतोंके वीर नायक देव मुकुला सेलियानीनोविच और इलिया मूरोपेट्स और असहाय बावला आइविन, जनताकी समर्थ रचना-शक्ति द्वारा उद्भूत हुए थे। और भी अन्यान्य चरित-नायक हमेशा जनतामें वीरता के आदर्श बने रहे। शक्ति, साहस और देश य-बुद्धि चातुर्य जैसे लोकप्रिय गुणोंके ये खान थे। वीर गाथाओंके इन चरित नायकोंमें हमें जो भावनायें स्पष्ट दीख पड़ती हैं वे हैं—जनताकी अपार आशावादिता और इस अमिट विश्वास-की झलक कि मानवका भविष्य उज्ज्वल है और विश्व-निर्माता श्रमजीवियोंको पराधीन और त्रस्त करने वालों पर जनताको विजय प्राप्त होकर रहेगी। लोकगीतोंके इन वीरोंके चरित्रमें वैचित्र्य-पूर्ण सजीव कल्पना, ओजपूर्ण वर्णन तथा कलाके सामान्य आकर्षणभी हैं, साथ ही, उनमें ऐतिहासिक भावना भी दृष्टिगोचर होती है।

वह जनता, जिसने 'अपने भावानुरूप इन वीर नायकोंकी सृष्टि की और अपने स्वातन्त्र्य-युद्धके भविष्यका पूर्ण परिचय कला रूपमें इस प्रकार दिया, वह जनताही जीवनकी समस्त विभूतियोंको जन्म देने वाली थी, लेकिन जीवनका स्वत्व उसे प्राप्त नहीं था। जातिकी शताब्दियोंकी पुरानी आशाएं और स्वप्न रूसमें सत्यके रूपमें परिणत हो सके। वही जनता अपने भाग्य और अपने जीवनकी स्वामिनी हो गयी। अस्तु जबकि रूसी-जन-राष्ट्र ने अपनी स्वाधीनता प्राप्त कर ली है, देवोंकी तरह लड़ाइयां लड़कर, अपने वतनको आजाद कर लिया है, लूट-मारके लोभी साम्राज्यवादी देशोंके सशस्त्र आक्रमणको पीछे हटा दिया है,और बातकी बातमें अपनी जन्म-भूमिको समाजसत्ताका गढ़ बना दिया है, तो अब उसे आवश्यकता नहीं कि वह काल्पनिक देव पुरुषोंकी सृष्टि करे। रूसी क्रान्तिके ये छब्बीस वर्ष और २६ वर्षजनताके संघर्षके, जो इससे पहले बीते, संसारके सम्मुख कितने ही ऐसे वीरोंके उदाहरण प्रस्तुत करते हैं जो विचार, बुद्धि, कौशल और साहसमें सचमुच देवतुल्य थे;—अतः आशुगा, माकाइनी, जिरशी, बख्शी तथा अन्यान्य सोवियट लोकगीतकारोंको (जो नवीन वीर-गाथाके प्रणेता हैं) वास्तविक सत्यको छोड़ कर केवल कल्पनाके क्षेत्रमें अपने विचार दौड़ानेकी आवश्यकता नहीं रही। रूसी जन-समाजके, रूस जैसे बहु भाषा-भाषी-बहु राष्ट्र युक्त देश के जनसमाजके वीरकाव्यके लिये अब वहां

के सच्चे वीर नायक और उनके कारनामे ही लोक-प्रिय विषय हैं। सामयिक वीरगाथाओंमें प्रथम स्थान इतिहासके श्रेष्ठतम चरित नायक, जनताके भाग्य विधायक, श्रमजीवी-संसारके प्यारे नेताद्वय लेनिन और स्टालिन को प्राप्त है। अपने गीतोंमें इतनी गाथाएं और कथानक सोवियट जनताने और किसीको समर्पित नहीं किए; इतने भावुक होकर, इतनी गहरी अनुभूतिके साथ वह और किसीका गान अपने गीतोंमें नहीं करती। लेनिन और स्टालिनको हम एक दूसरेसे अलग नहीं कर सकते। कवि की भावनामें लेनिन और स्टालिन देश, जनता, अधिकारी पार्टी और क्रान्तिसे पृथक नहीं किये जा सकते। उनकी प्रशंसा तो मातृभूमिका ही गौरव गान है।

मेरे नेत्र प्रसन्नतासे पुलक उठे हैं,
जब मैं अपनी मातृभूमिकी ओर देखता हूं;
यह मेरी शक्तिसे बाहर है कि मैं उनको दूर हटाऊं;
कि हर्ष प्रदान करने वाले अपने देशसे मैं मुंह
मोड़ लूं!
मैं जीवनकी महानता पाकर कांप उठता हूं।
हमारी धन धान्यकी बढ़ती ऐसे पर्वतके समान
है जो शिखरहीन है,
वस्तुतः बिलकुल अशक्त हैं ये शब्द
सब खुशियोंको व्यक्त करने में।
लेकिन 'स्टालिन' कहकर मैं सब कुछ कह देता हूं!

इस प्रकार है स्टालिन पर यह सुन्दर अत्यधिक भावुक उजबेक गीत। आरमेनियाके लोक गीतकार भी कुछ इसी तरह गाते हैं:—

स्टालिन हमारे नेता! हमलोग बंधे हुए हैं
तुमसे अपार स्नेह बन्धन में।
समस्त राष्ट्रका संचालन करने वाली पार्टीके तुम्हीं
हृदय और मस्तिष्क हो,
ढले हुए फौलादकी तरह तुम्हीं हमारी रक्षा करते हो

कुछ इसी प्रकारके विचारों और भावोंमें तल्लीन होकर, 'स्टालिनके प्रति' अपने गीतमें हुसैन बाजाल गोवली तुर्की पद्योंमें गाता है। सुनिये—

बुढ़ापेमें अब कोई मुसीबत नहीं और युवकोंके लिए सदा खुला हुआ है—

यह हरा भरा बाग, यह जो अब हमारा देश है!
यह चित्र-विचित्र बाग किसने लगाया है?

उस एक बोलशेविक मालीने जिसे सब कोई जानते हैं और मानते हैं—
स्टालिन ने!
उसका विशाल हृदय धड़क रहा है;
बनोंमें लकड़ी काटने वाले उसको सुनते हैं;
मांझी और लकड़हारे उनको सुनते हैं और तनकर खड़े हो जाते हैं;
फिर सब गर्व के साथ यह गौरवपूर्ण नाम लेते हैं—
स्टालिन!
हमारे कई करोड़ हाथ उठ कर जंगल की तरह तुम्हें घेर लेते हैं।
जमीनके नीचे कान खोदने वाले, ऊपर हवामें उड़ाके, और एक आह्वान-स्वरसे गाने वाले हम सब, मिलकर, एक अदृश्य घेरा तुम्हारे चारों ओर बनाते हैं—स्टालिन!

लोकनायकके चरित्रमें स्वदेश दर्शन, यह विशेषतः हम इन सर्वाङ्गपूर्ण लेनिन विषयक लोक गीतोंमें ही पाते हैं।

ओगडा ऐमक गांव (बुरयात मंगोलियन रिपबलिक) के सामूहिक फार्म में किसान लोग महान लेनिनके सम्बन्धमें जो गीत गाते हैं, उनमें यही बात आ गयी है। ऐसा ही लेनिन का एक चित्र हमें 'एजरबैजन'—प्रदेश में जिला लोवाशिल्कीके उराखी औल गांवमें देखनेको मिलता है:—

कोई यह मत कहो कि लेनिनकी मृत्यु हो गयी है,
लेनिन जिन्दा है!
फिर-फिर, हमारी हर एक पीढ़ीमें बराबर
लेनिन जिन्दा है!
हमारे नौ-जवानोंकी जवानीमें
लेनिन जिन्दा है!
श्रमिकोंके संघोंमें
लेनिन जिन्दा है!
हमारी भावनाओंको ऊंचा उठाने वाले हमारे देशके शासन विधानमें
लेनिन जिन्दा है!
विश्व क्रांतिकी श्वासोंमें
लेनिन जिन्दा है।
जहां-जहां सत्यका बोलबाला है
लेनिन जिन्दा है।
स्टालिनकी अमर शपथोंमें
लेनिन जिन्दा है।

हम समाजवादियोंके प्रत्येक कार्य दिवसमें
लेनिन जिन्दा है।
हमारे वार्षिक विजय उत्सवोंमें
लेनिन जिन्दा है।
जहां-जहां लालसेना पड़ाव डालती है
लेनिन जिन्दा है।
स्टालिनके ज्ञान-गर्भित भाषणोंको सुनो; उनमें
लेनिन जिन्दा है।

लोक गीतोंमें, खास कर लेनिन और स्टालिन सम्बन्धी लोक गीतोंमें एक विशेषता और है। क्रान्ति-युगके प्रवर्तक लोक नायकोंके चरित्र-चित्रणमें सामयिक बातोंके साथ-साथ उनके द्वारा नव-निर्मिति सोवियट देशकी विशेषताओंका वर्णन करनेकी उत्कंठा एक ऐसी बात है, जिसे हम लोक गीतोंमें, मुख्यतः लेनिन और स्टालिन सम्बन्धी लोक-गीतोंमें खास तौर पर पाते हैं। इस प्रकार सोवियट जनताका वीर काव्य सोवियट देश प्रेमका ही काव्य बन गया है। अगर हम सोवियट कवियोंकी श्रेष्ठ रचनाओंमें नायक, नेता तथा सोवियट-राष्ट्रको मिला देनेका आतुर प्रयास देखते हैं और उनके साथ लोक गीतों का साम्य पाते हैं, तो वस्तुतः यह कोई आकस्मिक बात नहीं। इस समानतामें कोई अनुकरण अथवा प्रचारका भाव नहीं है; बल्कि इस लोकवाणीमें एक सजीव कला भी दृष्टिगोचर होती है। मायाकोवस्की रचित 'व्लाडमिर इलाइच लेनिन' और डेम्यान वेडनी की 'सुखी देश' और 'अमर सम्मान' नामक कविताओंमें यह सम्बन्ध विशेष रूपसे प्रकट हुआ है।

अन्य लोकप्रिय वीरों और नेताओंके विषयमें भी कितने ही ग्राम्य गीत, जन श्रुतियां और कथाएं मौजूद हैं; जैसे, किरोव, केलनिन, वोरोशिलोफ, कागानोविच, चापेयक, बूड्योनीके विषयमें। इस प्रकारके सभी गीतोंमें नायकका साहित्यिक-महत्व बहुत बड़ा है, क्योंकि उसका चरित्र यथार्थमें सच्चा होता है, जिसके द्वारा रूसका विस्तार और उसकी राष्ट्र शक्ति और उस पार्टीका गौरव सामने नाच उठता है जिसने कि इन लोकप्रिय वीरोंको महान कार्योंके लिये तैयार किया! इन कला-पूर्ण वर्णनोंमें इस युगके रूसी योद्धाओंकी वीरताका इतिहास सुरक्षित है। कामरेड बूड्योनीका यह कथन सत्य है कि जनताकी देश-प्रेम सम्बन्धी रचनाओंका संग्रह हमारे गृह-युद्धका एक विशिष्ट स्मारक है जिसको कि जनताने स्वयं खड़ा किया है।

कागानोविचके सम्बन्धमें जब एक ग्रामीण अपना गीत बनाता है तो वह क्या करता है? वह मनुष्यकी श्रेष्ठताका गुणगान, शक्तिशाली जनताके कमीसारके गुणगानके रूपमें करता है। पर साथ ही वह सकल सोवियट ट्रांसपोर्टकी व्यवस्थाका भी गुणगान करता है और बतलाता है कि देशकी उन्नतिमें नई-नई रेलोंने कितना भाग लिया है। इसी कारण तो हम कांसटेस्को जिलेमें, कजाकस्तानके एक अकैनीके गीतमें देखते हैं कि नवोत्थित कजाकस्तान प्रदेश-ही चरित नायकके जीवनका पृष्ट भाग बन जाता है:—
ऐ कागा-नोविच! अपने डूमरा बाजे पर मैं तुम्हारा नाम लेकर गाता हूँ;

तुम्हारे सम्मानके लिए मैं सुन्दरसे सुन्दर गाना गानेका प्रयास करता हूं।
क्योंकि अब हमारे स्टेपीज मैदान नीरव और सुनसान नहीं हैं।
वहां तुमने लोहेकी सड़कें बिछा दी हैं।
पूरब और पश्चिम जिस ओर भी मैं देखता हूं—
चाहे कितना ही विस्तृत मैदान हो, पहाड़ोंकी चोटियां चाहे कितनी ही ऊंची हों—
पर हमारे पैर कभी नहीं थकते, कागोनोविच!
सब ओर तुम्हारी रेलें बिछी हैं?

चेचेनऔलगेरदेके गुमनाम गीतकार जब स्व० सरगे और जिनिडजेका गीत गाते हैं तो उनके भावोंका अर्थ क्या होता है? ये लोग गृह-युद्धके वीरता पूर्ण युगके साथ साथ सरगेका भी नाम लेते हैं। उस जमानेमें महान स्टालिनका यह कर्मठ कामरेड सैनिक काफके प्रान्त भरमें अपनी बहादुराना और साहसपूर्ण नेतृत्वके लिये मशहूर था।

जब पहाड़ों पर तूफान घिरते हैं
तो जिस प्रकार शेर अपने बच्चेको ढंक लेता है
उसी प्रकार तुमने हमारी रक्षाकी, ओरजिनिड्जे।
जब हमारे देश पर युद्धकी बिजलियां टूटीं,
तब एक बाजकी तरह,
जो पहाड़की चोटीसे अपने दुश्मनकी ताक लगाता है,
ओ स्वर्ण पंखयुक्त ओरजिनिड्जे! तुमने भी—
हमारे चेचन गावोंकी रक्षा करते हुए
अपने बलशाली पंखोंसे आक्रमणकारियोंको पीछे हटा दिया!

काजाक अकैन तेजानके सामने तो सबसे बढ़कर कामरेड ओरजिनिड्जे भारी कल कारखानेकी सेनाके नायक हैं,

अपनी जन्म भूमिकी औद्योगिक उन्नतिके संरक्षक रहे हैं। अतः अपने गीत 'देश प्रिय सरगेके प्रति' गायक सरगेको एक भिन्न रूपमें नवीन कजाकस्तानकी सुन्दर वास्तविकताके रूपमें प्रस्तुत करता है।

बूडयोनीकी कहानियोंमें तथा वोल्गा प्रान्तकी चापायेव-की कथाओंमें और गृह-युद्धके वीर कामरेड फिटसेव और कमाण्डर माइजावेकोवसे सम्बन्ध रखने वाले गीतोंमें गृह-युद्धका इतिहास कलापूर्ण ढङ्गमें इस प्रकार सुरक्षित है मानो समस्त जनताका साहस नायकोंके आदर्शमें संचित हो गया हो।

रूसी लोकगीतोंमें क्रांतिकारी नेताका समावेश रूसी-क्रांतिके आन्दोलनके प्रारम्भमें ही प्रादुर्भाव होने लगा था। किन्तु जनताकी वीर गाथाओंको पूरा जीवन मिला महान अक्टूबर क्रांतिके पहले ही।

क्रांतिकारी नेता लाल फौजके गीतोंका विषय बन गये। गांवोंमें भी गृह-युद्धके समयमें उन्हींके गीत गाए जाने लगे। शुरू शुरूमें पुराने लोकगीतोंकी प्रथा पर ही गीतोंकी सृष्टि होती रहीं, केवल नये नाम भरती कर लिए गये। पर शीघ्र ही गांवोंके गीतकारोंने नए विषयों पर नई रचनाओंकी सृष्टि करनी आरम्भ कर दी। ऐसी अधिकांश रचनाएं लेनिनके बारेमें हैं।

इन नये गीतोंने काव्यकी विशेषताएं नहीं छोड़ीं बल्कि इनसे मौखिक रचनाओंकी शैलीमें एक नया चमत्कार और और एक नया जोर आ गया।

जार्जिया प्रान्तके 'दो सूर्य' शीर्षक गीतमें लेनिनके लिये सूर्यकी उपमाका थोड़ी बारीकीके साथ कई रूपमें प्रयोग हुआ है—

सूर्य! आओ, प्रकट हो; (हम) बहुत आंसू बहा चुके,
दुःखको हलका करो।
लेनिन तुम्हारे ही समान था;
अपने जौहर उसे भेंट करो।
मैं बताए देता हूं कि
तुम उसकी बराबरी नहीं कर सकते।
दिन छिपनेके साथ ही तुम्हारी आभा लीन हो जाती है।
लेकिन लेनिनके प्रकाशका लोप नहीं होता।

लोकगीतोंमें अलङ्कारिक उपमाओंका बहुत कम प्रयोग होता है। ऐसी उपमाएं सिर्फ खास नायकके लिये आती हैं। महान लेनिनके लिये ही जनताकी भावुकताने यह सूर्य-की सुन्दर उपमा सुरक्षित रखी है, जिस प्रकार कि स्टालिन-की शानदार लोकप्रियताने उसको 'सूर्य' वाहकका नाम दे दिया है।

और वह दूसरी उपमा 'अग्निशिखा' लोकगीतोंमें लेनिन और स्टालिनके साथ आकर बराबर धन्य हुई है। 'आग्नेय स्टालिन' उस गीतका शीर्षक है—जो सोलोवैवने फरगना प्रान्तके एक गांवमें नोट किया है। इस गीतको ताजलीक लोग ओबी गावोंमें गाते हैं।

हमी जैसा गरीब पैदा होकर
गरीबोंके बीचमें वह बढ़ा;
बचपनमें वह अग्निकी तरह कांतिवान था।
स्टालिन हमारा नेता
जिसने लेनिनके साथ
अग्नि शिखाकी तरह
अक्टूबरका झण्डा उठाया--
शहरों और गावोंके-ऊपर,
हमारे प्रिय स्टालिनने,
हमारे महान नेताने!

आधुनिक युगके वीर-काव्य बहुत भिन्न प्रकारके हैं। हम जानते हैं कि वीर गाथाकी एक सबसे पुरानी परम्परा हमारे समय तक चली आई है अब आधुनिक क्रान्ति विषयक नवीन कथानकोंका आधार ले रहीं हैं। जैसे, इसमें:—

उज्ज्वल पंखों वाले ए शिकरे! अगर मैं तुझ सा होता,
ए एकाकी पहाड़ी पांडुक! अगर मैं तुझ सा होता,
तेज परों वाले ए अबाबील! अगर मैं तुझसा होता,
तो मैं तेज उड़ान भर कर,
एक दम सीधी उड़ान भर कर
क्रेमलिनके संगीन किलेमें पहुंचता
और व्लाडिमिरकी, अपने लेनिनकी, कब्र पर सदके हो जाता।

सभा संगतके गीत, नौहे और मर्सिए तथा अन्य प्रकार-के गीत समयोचित हर्ष और विपादके भावोंको नये ढङ्गसे, नये प्रकारसे, बड़ी उत्तमताके साथ व्यक्त करते हैं। स्टालिन-के एक कामरेड सेनापति सरगे पिरानोविच किरोवकी जब जघन्य हत्या हुई तो गावोंकी जनताने अपने शोकोद्गार स्वयं मुक्त रूपसे प्रकट किया। राष्ट्रीय शोकके उस भारी समय जब देश भरमें मातम छाया हुआ था और ट्राट्स्की तथा जिनोव्यूके जासूसी षड्यन्त्रोंके जहरीले अड्डोंमें पड़े हत्यारोंके प्रति घृणा सर्वत्र फैली हुई थी, उस समय जनताने

बड़े भावपूर्ण गीतोंमें अपने उद्गारोंकी अभिव्यक्ति की। कितनी सच्ची यह अभिव्यक्ति थी यह किरोवके लिये नेनेटके शोकोद्गारोंसे प्रकट है।

दीर्घकालकी नीरवतामें
दुःख भारी हो उठा है; शब्द थोड़े निकलते हैं,
दीर्घकालकी नीरवतामें
अपने घरोंमें आगके चारों ओर बैठी हुई
नीना जाति रो रही है।

कितनी मर्मस्पर्शी लिरिक भावना मोरडोवियाके गायक क्रियोशेयेवाके शोकगीतमें है, जो उसने किरोवकी मृत्यु पर लिखा था। दोस्तों और रिश्तेदारोंकी मृत्यु पर लिखे जाने वाले मर्सियोंकी परम्पराके अनुसार ही इसकी सृष्टि हुई है।

मुझे मजबूत पंख दो
कि मैं किरोविच तक उड़कर पहुंच जाऊं!
कि मैं गलते हुए पर्वतोंको,
दौड़ता हुआ पार कर जाऊं चाहे मेरे पके हुए बाल
उलझ भी जांय।
लेकिन मैं किसी प्रकार ताबूतके पास
मातम पुर्सी करने पहुंच तो जाऊं!
ओ किरोविच! मेरे आंसू
सिरसे पैर तक मुझे भिगो रहे हैं!

और जब गीतकार अपने प्यारे नेताके हत्यारोंकी पराजयका जिक्र करता है तो फासिस्टोंके प्रति घृणासे उसके शब्द भर जाते हैं।

सब विवर साफ कर लिये गये हैं।
सभी पथों पर पहरा है।
सांपका एक भी बच्चा
बचकर जा नहीं सकता।

लोक गीतोंमें लेनिनके प्रति जो भाव है उसे हम इन शब्दोंमें व्यक्त कर सकते हैं—"लोक-नायक, गरीबोंका हामी और मददगार। शुरू-शुरूमें कलाने इस भावको कथानकोंकी परम्पराके सौंप डाला, और कुछ अंशोंमें धार्मिक दन्तकथाओंका भी उसमें समावेश हुआ। पर बादमें उसका आधार वास्तविकतापर रह जाता है और धार्मिक अंश इससे अलग हो जाता है।

एक किंवदन्ती यह है कि अल्लाहने लेनिनको पीड़ित जनसमाजका नेता चुना। लेनिनके हृदयमें पूंजी-पतियोंके प्रति घृणाका भाव पैदा करनेकेलिये अल्लाहने उनके हाथोंमें उसके भाई मुलेआनोवका कत्ल होना लिखा! मुलेआनोवने जारशाहीके विरुद्ध 'धर्मकी लड़ाई' शुरु कर दी थी। इसके बाद से ही लेनिन अपने बड़े भाईकी हत्याका प्रतिशोध करनेवाला हुआ।

दूसरा उदाहरण, लेनिन और कुचुक आमदा, गीत है। इस किस्सेमें भी खास विषय पूंजीपतियोंसे लेनिनका युद्ध है। ऐसी ही एक किंवदन्ती पहाड़ी इलाकोंके यहूदियोंमें भी प्रचलित है। इसका विषय है पीड़ितोंका आततायियोंके साथ युद्ध, जिसमें लेनिनकी विजयिनी प्रतिभा चमक उठती है।

कथानक सीधा है। ऐशमेंदई आलसी धनियोंका अगुआ बन कर गरीबोंपर जुल्म करता है। प्रकृति स्वयं उसका अवरोध करती है। तब सूर्य और तारोंने जनताका क्लेश देखकर अपने ज्वालामय अङ्गोंसे—कुछ आग तोड़कर उनसे एक अग्निमय प्रतिहिंसक पैदा किया। एक अन्धेरी रातमें उन्होंने उसको उत्तरकी ओर एक ठंढे देशमें भेज दिया जहां तमाम साल बर्फ पड़ती रहती है, जैसे एल्बर्जकी चोटियों पर। वहां इसलिये भेज दिया कि वह आग वहां ठण्डी कर आए। और उन्होंने उसका नाम लेनिन रखा, और गरीबोंके खूनका बदला लेनेका उसे आदेश दिया।

"पृथ्वी स्थिर हो उठी, पेड़-पौदे नृत्य-रत कर उठे। पक्षीगण गागाकर एक दूसरेको यह हर्ष समाचार सुनाने लगे कि-एक महा-पुरुष गरीबोंके खूनके एकएक बून्दका बदला चुकाने आ गया है। ऐशमेदेईने जब सुना तो पूंजी-पतियोंको इसकी खबर दी। वे एक सभामें एकत्रित हुए और लेनिनको मारनेका कार्य ऐशमेदेई को सौंपा गया।······

जिस नगरमें लेनिन रहता था वहां ऐशमेदेई आया और देखा कि वह गरीबोंकी सभामें स्वाधीनतापर भाषण दे रहा है। लेनिनके शब्दोंमेंसे ऐसी ज्योति निकल रही थी कि ऐशमेदेई भय-भीत होकर वहांसे भागा।······

तब ऐशमेदेईने गृहयुद्ध आरम्भ किया।

उत्तरी प्रांतोंकी ओर उड़ान भरनेवाले बाजके दलोंने लेनिनको पूंजी-पतियोंकी क्रूरताके बारेमें सूचित कर दिया। तब एक बाजपर बैठकर लेनिन दागेस्तीन उड़कर आया। गरीबोंका-सा उसका वेश था। उसने धनिकोंके विरुद्ध सब गरीब जनताको उभाड़ा। अपने अग्निमय शरीरका एक भाग तोड़कर उसने पूंजी-पतियोंसे लड़नेके लिये लड़ाईकी मशाल जलाई। फिर वह धन-हीनोंके वास्ते सत्य-पर एक पुस्तक लिखनेके लिये शीत प्रधान देशकी ओर उड़

गया। और लेनिनके शिष्योंने बहुतसे देशोंको स्वतन्त्रता दिलायी। जब एशमेदेईने देखाकि वह लेनिनकी बराबरी नहीं कर सकता, तब वह उन देशोंकी ओर चला गया जिन्हें लेनिनने अभी स्वतन्त्र नहीं किया था। लेकिन वह दिन दूर नहीं है जब लेनिन एशमेदेईको उसकी अन्तिम पनाहसे भी भगा देगा।

लेकिन बादके गीतोंके कथानकमें यहींसे अन्तर आजाता है। लेनिन अल्लाहका चुना हुआ लेनिन नहीं रह जाता, वल्कि जनताका प्रतिभावान नेता बन जाता है।

आरमिनियाकी दन्तकथा, 'लेनिन पाशा' में हमें क्रांति और गृह-युद्धका एक प्रभावपूर्णचित्रण प्रतीकके रूपमें मिलता है, जिसमें लेनिनके ओजपूर्ण व्यक्तित्वको ही आधार माना गया है। पुरातन देवोंकी प्राचीन लोकगाथाकी सभी सुन्दर विशेषताएं इसमें रखी गयी हैं और नवीन विषयके समावेशने उन्हें सजीव बना दिया है। साथ ही भूतकालके सामाजिक अन्ध विश्वासोंसे भी यह पाक है।

अन्य कथाओंकी तरह इस कथामें भी जब लेनिन सुलतान और देशोंके खिलाफ युद्धकी घोषणा करता है, तभीसे कथानक आरम्भ होता है। पर आगे चलकर एक सच्चे, पवित्र महाकाव्यकी-सी शक्ति इस कथाके उठानमें पैदा हो जाती है, जिसमें गृह-युद्धकी क्रांतिके वर्षोंका इतिहास प्रतीकोंके आवरणमें हमारे सामने आ जाता है।

सरदारों और अमीरोंका,
दल घोड़ों पर सवार हुआ,
सरदारों और अमीरोंका
दल लेनिनके विरुद्ध चला।
समस्त निर्धन जनता,
लेनिन पाशाकी ओर दौड़ पड़ी,
सब श्रमजीवी लेनिन पाशाका,
साथ देने दौड़ पड़े—
अपनी - अपनी कुल्हाड़ियां,
हथौड़े और दरांतियां संभाले।
लेनिन पाशा अपने घोड़े पर,
सवार हुए और सरपट उड़े।
शैमयान पाशा भी अपने,
घोड़ेपर सवार हुए और सरपट उड़े।
देखो सब गरीब - जनता,
अब उनके पीछे उमड़ आई है।

इसके बाद युद्ध और जनताकी विजयका वर्णन है, बिलकुल जैसे लोक गीतोंमें होता है।

इस प्रकार इन गीतोंका आधार तो प्राचीन गीतोंपर है, पर आधुनिक वीर गाथाने इन गीतोंमें एक नयी वास्तविक शक्ति भर दी है। यह प्रणाली वीर नेताओंपर लिखे गये लोक-गीतोंमें ही नहीं बल्कि मामूली सैनिकोंकी वीरताके गीतोंमें भी देख सकते हैं। गुमनाम वीरोंकी कथाएं ही अक्सर पहलेके स्वतन्त्र सुखी राष्ट्रोंका जीवन इतिहास बन गयी हैं। उदाहरणार्थ—एक गीत है जिसमें एक निर्धन व्यक्ति गृहयुद्धके तूफानोंमें विजयी होकर ऊपर उठ जाता है। राष्ट्रोंने स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेनेके बाद—अपने साहस और उत्साहके फलस्वरूप, ऐसे और इस प्रकारके सभी गीतोंमें, एक सुखपूर्ण वास्तविकताका चित्र हमारे सामने उपस्थित किया है।

रूसके जारशाही युगमें लोक-गीत किस प्रकार ओछे होते जा रहे थे और कलाकी काव्योचित वास्तविकता इन गीतोंमें किस तरह संकुचित होती जाती थी, । यह इतिहासकारोंसे हमें मालूम होता है। और इसकी कुल वजह उन्होंने यह बताई है कि शोषण और गुलामीके जारशाही युगमें बड़ी कठिन मुसीबतें और यातनाएं क्रांतिसे पहलेके गांवों और उन कितनी ही जातियोंको उठानी पड़ती थीं जो विदेशी कहलाई जाती थी और जारशाहीने एक क्रूर निश्चयके साथ—उनका अस्तित्व मिटा देनेकी ठान ली थी। काव्यके साथ लिरिकका जो अभूतपूर्वसम्मिश्रणहम लोक-गीतके प्रारम्भिक उन्नति कालमें देखते हैं, अब अक्टूबर महाक्रांतिके पहले की पीढ़ियोंके लिये क्रूर शासनके उपायोंसे नष्ट कर दिया गया था।

रूसके सोवियट शासन-विधानके मसविदेके प्रकाशित होते ही देशके सोवियटोंकी आठवीं (असाधारण) कांग्रेसके दिनोंमें महान स्टालिनके शासन-विधानके कारण लोक-गीतोंका एक सागर-सा लहरा उठा। ये सभी गीत आधुनिक वीर गाथाकी प्रणाली लिये हुए हैं। इनमें समाजवादी भावना और जनताका देश-प्रेम बोल रहा है। इनमें हमें श्रमजीवी मानव-समाजके लोक नायक, नेता, शिक्षक, देश-पिता और स्नेही मित्र महान् स्टालिनके दर्शन होते हैं।

स्टालिनके प्रसिद्ध विधानपर इस प्रकार है जंबूलका यह गीत :—

हमारे कजाक औलोंमें अगुआ बनकर बहुत तेज पहुंचा,

सारे स्टेपीज प्रांतको अपनी तान छना दो, ओ अकैन--
जंबूलके गीत !
सुनो ! काल्केलेन, कराकोल और कास्टेक !
गौरवपूर्ण है यह महान सोवियट विधान !
यह राष्ट्रोंमें दर्पका विधान है।
इसमें स्टेपीज को सैराब कर दिया है, देशमें फल आ गये हैं।
यह हमारे हृदयोंमें गीतोंकी उमंगे लहराने वाला है !
यह समस्त प्रकृतिको आदेश करता है कि वह जनताकी सेवा और स्तुतिके लिये ही जीवित रहे।
यह हमारे आजाद सवारोंको
अमर वीरताके जीवन-पथ पर चलना सिखाता है।
कानूनके आकाशमें हम सभी समान ज्योतिसे चमक रहे हैं।
हमारा राष्ट्र पड़ोसी प्रजातन्त्रोंके समूहमें, सितारेकी तरह जगमगा रहा है।
अतः अकैन लोगों ! अपने गानके वातावरणको गुंजादो !
अपने गीतमें इस महान विधानको स्वीकार करो।
गाते हुए आओ, अकैन लोगो, सभाओंमें गाते हुए आओ।
राष्ट्रोंके बन्धुत्व पर अपने गीतोंकी मुहर लगा दो।
अपने फूले-फले देश पर अपने गीतों की वर्षा कर दो;
अपने गीतों द्वारा और अधिक श्रम उठाकर और अधिक विजय लाभ करो।
बुद्धि-श्रेष्ठ स्टालिन, स्नेही पिता स्टालिनकी जय हो,-
जिसकी संरक्षतामें करोड़ो हृदय प्रसन्न हो रहे हैं।

* इस लेख के लिखनेमें अलेक्जेंडर डाइमिशिट्जके एक लेखसे काफी सहायता ली गयी है, इसके लिये हम उनके कृतज्ञ हैं। —लेखक

मैडम स्टेलिन

लें०—कुमारी निर्मला अष्ठाना।

सोवियट रूसके उत्थानमें महिलाओंका हाथ पुरुषोंकी अपेक्षा किसी प्रकार कम नहीं, किन्तु स्टेलिनके बारेमें जितनी जानकारी संसारको है, उसकी तुलनामें उनकी द्वितीय पत्नी नदिएजा एलुलीवको कोई नहीं जानता। यह इस कारण नहीं कि वह एक साधारण औरत और स्टेलिनकी पत्नी थीं, वरन इस कारण कि सार्वजनिक जीवनसे वह बहुत दूर रहीं। उसका सम्बन्ध मानव जोसेफ जुग्सविली स्टेलिनसे था, रूसके भाग्य-विधाता स्टेलिनसे नहीं।

आरम्भसे ही सोवियट रूस और उसके नेताओंने अनेक रहस्यपूर्ण कल्पनाओंको जन्म दिया है। रूसके सम्बन्धमें एक ओर रहस्यमय आदर्शवाद और दूसरी ओर अनेक अंशों में गलतफहमी है। स्टेलिनका घरेलू जीवन भी इसका अपवाद नहीं; उनके विरोधियोंने यहां तक कहनेमें जरा भी संकोचका अनुभव नहीं किया कि एक पत्नीको उन्होंने अपने इच्छानुसार तलाक दे दी, दूसरीकी निर्दयतापूर्वक हत्या कर डाली और तीसरीसे विवाह कर लिया। इसमें अधिकांश गलत है, तथापि उनकी पत्नियोंके सम्बन्धमें अबतक ठीक जानकारी नहीं प्राप्त हो सकी।

अतः, १९३२ में जब नदिएजा एलुलीवकी मृत्यु हुई, उस समय कुछ व्यक्तियोंने कहा कि अपने पतिकी निष्ठुरताके कारण उसे आत्मघात करना पड़ा। दूसरोंने कहा कि वह स्टेलिनकी भोजन परीक्षक थी और स्टेलिनको दिये गये विष-मिश्रित भोजनसे उसकी मृत्यु हुई। किन्तु इन सभी अफवाहोंके पीछे सचाई यह है कि वह अनेक दिनोंसे आंतकी बीमारीसे पीड़ित थी और अपने पतिको इससे सूचित नहीं किया था। अन्तमें जब स्टेलिनको इसकी खबर लगी, तबतक बहुत देर हो चुकी थी और इसीसे उसकी मृत्यु हुई। उसकी मृत्युसे मानव स्टेलिनका एकमात्र वृद्धामाताके सिवा और कोई निकट सम्बन्धी न रहा। उसके दोनों बच्चोंके प्रति स्टेलिनका स्नेह अत्यधिक है। स्टेलिनके पुत्रकी उम्र इस समय २२ वर्ष तथा पुत्रीकी १७ वर्ष है। दोनोंकी शिक्षा रूसके तीन आदर्श शिक्षालयोंमें हुई है और स्टेलिनकी सन्तान होनेके नाते उनको कोई विशेषता नहीं दी गयी है। जब स्टेलिन २२ वर्षके युवक और ख्यातनामा क्रान्तिकारी थे, उस समय उनके अधेड़ मित्र एलुलीवने ज्योर्जियाकी एक रमणीसे विवाह किया और उसने नदिएजाको जन्म दिया। स्टेलिन उस समय एक युवक और दृढ़ विचारोंके क्रान्तिकारी थे, किन्तु नियतिने उनके घरेलू जीवनमें इस बालिकाका बहुत बड़ा भाग निश्चित कर रखा था।

एलुलीवके साथ स्टेलिनकी मैत्री और प्रेम बहुत पुराना था। अतः जेल यात्रासे वापस लौटने पर स्टेलिन अपने मित्र-गृहमें ही विश्राम किया करते थे। स्टेलिनने नदिएजाको बालिकासे किशोरावस्था और फिर यौवनावस्थामें पदार्पण करते देखा। नदिएजा जब किशोरी ही थी तभीसे स्टेलिन, जो कम्युनिज्मके लिये अपना जीवन समर्पित कर चुके थे, उसके प्रति कुछ कुछ आकर्षित होने लगे। युवती होने पर नदिएजाने एक कारखानेमें काम करना शुरू किया और इसी समय स्टेलिनको भी अपने जीवनका ध्यान आया, कभी प्रदर्शन नहीं किया, और १९१९ में, जब रूसके सभी साधन समाप्त हो चले थे, बोल्शेविक रूसमें दुर्भिक्ष और रोगोंका साम्राज्य था, स्टेलिनका प्रणय प्रस्फुटित हुआ। उस समय किसीका ऐसा खयाल भी नहीं था और लेनिन अथवा ट्राट्स्कीने इसकी कल्पना भी नहीं की थी कि स्टेलिन एक पत्नीको तलाक़ देकर दूसरीसे विवाह करेंगे। किन्तु स्टेलिन भी तो आखिरकार मानव ही थे।

स्टेलिनका प्रथम विवाह सफल नहीं हुआ था और वह अनेक वर्षोंसे अपनी पत्नीसे अलग थे। सोवियट-कानूनोंकी सुविधा पाकर उन्होंने तुरत उसको तलाक दे दी और नदिएजा-से शादी कर ली। इस समय स्टेलिनकी उम्र ४० साल और नदिएजाकी सिर्फ १७ सालकीथी। रूसके एक सर्वश्रेष्ठ व्यक्तिकी पत्नी होनेपर भी नदिएजाने कारखानेका काम नहीं छोड़ा। एक सच्ची सोवियट महिलाकी तरह वह सभी व्यक्तियोंके काम करनेके अधिकार और सुविधापर विश्वास करती थी, किन्तु पति-सेवा और कारखानेका काम दोनोंको ठीक तरहसे करनेमें उसे कुछ कठिनाइयां महसूस होने लगीं। कई बार वह कारखानेमें देरसे पहुंची और एक बार उसका नाम काली सूचीमें भी लिख गया। वह स्टेलिनके जीवनकी आशा थी; राष्ट्रके कार्योंसे थका-मांदा स्टेलिन उसीके पास आकर शांति पाता था। स्टेलिन और ट्राट्स्कीका मनोमालिन्य जब बढ़ रहा था और एक बार लेनिनने भी स्टेलिनका करीब-करीब परित्याग कर दिया था, उस समय नदिएजाने ही स्टेलिनको सांत्वना दी थी। विश्रामके समय स्टेलिन हमेशा नदियेजाके पास रहता और उतनेपर भी उसे सन्तोष नहीं होता था। स्टेलिनकी बढ़ती हुई मांगोंके कारण ही उसका नाम कारखानेकी काली सूचीमें लिखा गया था किन्तु उसने अधिकारियोंको बतलाया कि उसका पति उसका अधिक

स्टेलिन परिवार

किन्तु क्रान्ति समाप्त होनेके बाद ही उसे अपने स्वप्नको सत्य बनानेका मौका मिला।

स्टेलिन और नदिएजाकी उम्रमें यद्यपि पिता-पुत्रीके समान अन्तर था, तथापि नदिएजाने स्टेलिनके साथ ही अपना जीवन केन्द्रित अनुभव किया। वह कामके साथ उस उस समयकी प्रतीक्षा इस आशासे करती रही कि किसी दिन अवश्य ही स्टेलिनको अपनी जीवन-संगिनी चुननेका अवसर मिलेगा। रूसको स्वाधीन करनेके उनके लक्ष्यसे वह इतनी अधिक अवगत थी, कि उसने स्त्रीसुलभ अधैर्यका

सहयोग चाहता है और तब उसकी गलती माफ कर दी गयी।

उनका घरेलू जीवन अत्यन्त सादा और खुशहाल था। नदिएज़ा अपने पति को 'कोबा' के नामसे सम्बोधित करती थी। नदियेज़ाका सौतेला पुत्र हमेशा कुछ-न-कुछ उत्पात किया करता था, किन्तु स्टेलिनने, जो अत्यन्त सख्त पिता था, याशाको अलग नहीं किया। याशामें शिष्टता और अनुशासन जरा भी नहीं था और स्टेलिनका यही प्रधान आदर्श था। याशाके कारण कभी-कभी उनका घरेलू-जीवन दुखी भी हो जाया करता था।

स्टेलिनका परिवार क्रेमलिनके एक छोटेसे भागमें रहता था। उनका खाना नीचेके रेस्तरांसे आता था और इसमें भी बड़ी सादगी रहती थी। घरमें आवश्यक सामानोंको छोड़कर अन्य कोई वस्तु नहीं थी। नदियेज़ा उस युगकी रूसी महिला थी, जो महसूस करती थी कि राष्ट्रको पूर्ण रूपसे समाजवादी बनानेके लिये आरामदेह चीजोंका परित्याग करना जरूरी है। अतः रूसके सर्वश्रेष्ठ व्यक्तिकी पत्नी होनेपर भी वह अत्यन्त सादगीसे रहती थी। वह अपने बच्चोंकी स्वयं देखभाल करती थीं। स्टेलिनके अपना कोई नौकर भी नहीं था।

अपने कमरेमें भी स्टेलिनके साथ शांतिसे रहनेका मौका नदिएज़ाको बहुत कम मिलता था, क्योंकि चौबीसो घण्टे टेलीफोनकी घण्टी टन-टनाती रहती थी। अतएव नदिएज़ाका सबसे आनन्दमय दिन ग्रीष्म-ऋतुमें आता था, जब वह सपरिवार गोर्की जाया करती थी। समाचार पत्रोंमें ऐसी अफवाहें बराबर प्रकाशित होती रहती थीं कि स्टेलिनने नदिएज़ाको हरममें रखा है, किन्तु किसी भी सोवियट महिलाके लिये ऐसी बात असम्भव प्रतीत होती है और खासकर नदिएज़ाके बारेमें यह बात लागू हो ही नहीं सकती क्योंकि वह मास्कोके एक कारखानेमें स्टेलिनकी पत्नी बननेके बाद भी काम करती रही थी। यह ठीक है कि उनका घरेलू जीवन बहुत शांतिपूर्ण था और नदिएज़ा कभी भी सार्वजनिक जीवनमें नहीं आयी।

नदिएज़ाका आचरण एक सच्ची सोवियट महिलाके समान था। उसने स्टेलिनकी पत्नी होनेका कभी भी घमंड नहीं किया, वरन् अपनेको भी एक साधारण रूसी महिला समझा। स्टेलिनके प्रति उसका प्रेम और भक्ति व्यक्तिगत बात थी, क्योंकि स्टेलिन भी उसको हदसे ज्यादा प्यार करते थे। स्टेलिनके समान संसारके एक सर्वाधिक व्यस्त व्यक्तिकी पत्नी होनेपर भी उसने कभी अपने पतिसे अवहेलनाकी शिकायत नहीं की। उसका उदाहरण संसारकी असंख्य महिलाओंका पथप्रदर्शन करेगा।

भूलना (विस्मरण)

प्रो० लालजी राम शुक्ल

नवीन मनोविज्ञानने भूलनेकी प्रक्रियापर एक नया प्रकाश डाला है। साधारणतः जिस बातमें हमारी रुचि नहीं होती और जिसके संस्कार दृढ़ नहीं होते उसे हम भूल जाते हैं। किन्तु हमारी सभी भूलें ऐसी नहीं है। कुछ भूलें अदृश्य मन जान-बूझकर करता है। हम ऐसी परिस्थितिमें पड़ जाते हैं कि भूलका बहाना बनाकर ही अप्रिय कर्तव्यसे बचते हैं। इस तरह हम देखते हैं कि भूलना दो कारणोंसे होता है—एक संसारकी अदृढ़ताके कारण और दूसरे अदृश्य मनकी इच्छासे। जो पाठ बालकने ठीकसे याद नहीं किया उसे वह भूल जाता है; जो बात हमने ठीकसे नहीं सुनी अथवा जिसपर ध्यान नहीं दिया उसे हम भूल जाते हैं। बालकोंको जो सबक मारपीट कर पढ़ाया जाता है, जो कविताएं डिटेन्सन क्लासमें याद करायी जाती हैं, उन्हें बालकगण भूल जाते हैं। इसी तरह किसी अप्रिय व्यक्तिकी बड़ाईकी बात भी हम भूल जाते हैं। अपनी लज्जाजनक घटनाएं भी हम भूल जाते हैं।

इस प्रकारकी भूलोंका विशेष अर्थ है। जो मनुष्य जिस कामको नहीं करना चाहता वह उसे भूल जाता है। कभी-कभी बाहरी मनकी इच्छा एक प्रकारकी होती है और भीतरी मनकी इच्छा दूसरे प्रकार की। इस समय बाहरी मन जो अपना कर्त्तव्य समझता है उसे करनेसे रोकनेके लिये भीतरी मन उसे भुला देता है, यदि ऐसा करना भीतरी मनकी इच्छाके अनुसार न हुआ तो। मनुष्य जिस समय कोई बात भूल जाय उसे आत्म-निरीक्षण करना चाहिये। इस प्रकारके आत्म-निरीक्षणसे ज्ञात होगा कि जिस भूलको हम अकस्मात समझते हैं वह जान-बूझकर ही

की गयी है। जब हम अपने किसी मित्रको एक पत्र डाकको पेटीमें डालनेको देते हैं और वह उस पेटीमें पत्र डालनेको भूल जाता है, तो इस भूलका कारण प्रायः उस कामको न करना ही रहता है।

एकबार एक प्रतिष्ठित व्यक्तिको किसी सभामें बुलाया गया। वह उस सभामें कर्त्तव्य-बुद्धिसे जाना चाहता था पर वह जानेकी बात भूल गया। जब सभा समाप्त हो गयी तब उसे सभामें जानेकी बात याद आई। इसी प्रकार जिस पार्टीमें हम नहीं जाना चाहते उसका समय भूल जाते हैं। हमसे प्रत्येक दिन अनेक गलतियां हुआ करती हैं, वे निरर्थक नहीं होती। उनके पीछे रहस्य छिपा रहता है। एक युवती अपने पुराने प्रेमीका नाम भी भूल गयी थी। कारण यह था कि उसे अपने प्रेममें निराशा मिली थी। जिस बातको हम भूल जाना चाहते हैं और यदि नहीं भूल पाते तो पागलपन आ जाता है। पागलपन दुखदायी स्मृतियोंको भूल जानेका प्रयत्न मात्र है। पागल सारे संसारको ही भूल जाना चाहता है।

कभी हम किसी मित्रको पत्र लिखते हैं और उससे तुरत जबाबकी आशा करते हैं। पर देखते हैं कि वह मित्र या तो जवाब ही नहीं देता अथवा जबाब इतनी देरमें आता है कि उससे हमारा कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। पत्रका उत्तर देना भूलना पत्रका उत्तर न देनेकी इच्छाके कारण ही होता है। इसी तरह देरीसे जवाब देना भी अनिच्छाका सूचक है। जब हम किसी व्यक्तिको बुलावें और वह जवाब देनेमें देरी करे तो हमें जानना चाहिये कि उसकी इच्छा हमसे मिलनेकी नहीं है। एक बार एक नौकरने अपने आफिसरके पास एक दरख्वास्त आगेके आफिसरके पास भेजनेको दी। यह दरखास्त इस आफिसरने अपनी फाइलमें रखली और आगे भेजना भूल गया। इसका कारण भी भीतरी मनकी अनिच्छा है। जब आप किसी व्यक्तिसे उसकी इच्छाके प्रतिकूल काम कराना चाहते हैं तो काम बिगड़ जाता है। मनुष्यकी छोटी-छोटी बातोंसे उसकी भीतरी इच्छाका पता चलता रहता है। शिष्टाचार-वश मनुष्य एक काम करता है और उसका भीतरी मन दूसरा काम करनेको कहता है। ऐसी अवस्थामें प्रायः भूलें हुआ करती हैं। जिस कामको हम भीतरी मनसे नहीं करना चाहते उससे बचनेके लिये मनुष्यका भीतरी मन अनेक उपाय करता है। बार-बार भूलें होना इन्हीं उपायोंमेंसे एक है। जब इससे काम नहीं चलता तो मानसिक और शारीरिक बीमारियां हो जाती हैं।

हमारा अदृश्य मन किस प्रकार हमसे भूलें कराता है, इसके कुछ उदाहरण उल्लेखनीय हैं। एक बार जेकोस्लोवेकियाके राष्ट्रपतिने वहांकी नई पार्लमेंटका उद्घाटन करते समय अपनी वक्तृता समाप्त करते हुए भूलसे मैं अब सभाका उद्घाटन करता हूं इन शब्दोंके बदले, मैं सभाको विसर्जित करता हूं, कह दिया। वास्तवमें यह भूल उसके अव्यक्त मनकी प्रेरणासे हुई। वह हृदयसे सभाका स्वागत नहीं करना चाहता था। किन्तु नियमबद्ध होकर उसे सभाका उद्घाटन करना पड़ा था।

लेखकको हालमें ही एक ऐसा ही मानसिक रोगी मिला, जिसे अपने घर-द्वारके विषयमें विस्मृति हो गई है। वह पहले एक उच्च सरकारी अफसर था। उसे अपने इस जीवनकी ठीक-ठीक स्मृति नहीं है। प्रयत्न करने पर भी उसकी कल्पनामें अपना पुराना जीवन नहीं आता। इस व्यक्तिको वास्तवमें अपनी सरकारी नौकरीसे घृणा हो गई है। पिछले राष्ट्रीय आन्दोलनके समय उसे सरकारी हुक्म माननेके लिये देशकी साधारण जनताका दमन करना पड़ा था। एक बार उसके सामने एक राष्ट्रीय जलसेपर गोली चलानेका अवसर उपस्थित हुआ। गोली चलानेका हुक्म देनेके पहले ही वह अपने आपको भूल गया और तबसे अबतक उसकी स्मृति कुण्ठित ही बनी है। वह व्यक्ति बड़ा सहृदय और सदाचारी है। लोगोंकी पीड़ाकी कल्पना ही उसे असह्य हो गई। विस्मृतिने उसे अपने हृदयके प्रतिकूल काम करनेसे रोक दिया!

भारतवर्षके बहुतसे छात्र अपने देशका इतिहास भली प्रकारसे नहीं याद कर पाते। यही छात्र विदेशोंका इतिहास याद कर लेते हैं। मनोविज्ञानकी दृष्टिसे जब परिस्थितिका विश्लेषण किया जाता है तो हम अनिच्छाको ही इतिहास-विस्मरणका मूल कारण पाते हैं। हमारे देशका इतिहास उन्हीं लोगों द्वारा लिखा गया है अथवा उनके लेखोंके आधारपर लिखा गया है जो कि इस देशको निकम्मा और पतित सिद्ध करनेकी चेष्टा करते हैं। इतिहासके द्वारा वे यह दर्शाते हैं कि हमारा राष्ट्र सदा परतंत्र रहेगा। जिस बालकके हृदयमें देश-भक्तिकी तनिक भी भावना होगी वह कदापि ऐसे इतिहासमें रुचि न दिखायेगा, जिसमें उसके पूर्वजोंकी निन्दा ही निन्दा पाई जाये। जबसे भारतवासी इतिहासका विषय देशभक्तिसे प्रेरित होकर लिखने लगे हैं, यह प्रिय विषय हो रहा है और विद्यार्थीगण सरलतासे उसे स्मरण करने लगे हैं।

प्यारी बहन,

कई दिनोंकी मेरी अभिलाषा है कि तुमको पत्र लिखूं। पर आज तक न जाने, क्यों नहीं लिख सका। हां, यह बतानेकी जरूरत नहीं है कि मजबूत चहारदीवारियोंसे घिरे इस कैदखानेके बाहर, खबर भेजना आसान काम नहीं है।

मैं इस पत्रमें कैदखानेकी तकलीफोंका वर्णन करने नहीं बैठा हूं। इतना तुम जानो कि यहांके सब कैदी निर्धन और निस्सहाय हैं। हम—पशुओंकी तरह इस अंध-कूपमें बन्द करके रखे जाते हैं। गरीबीमें पले हम लोगोंने इज्जत-आबरूके साथ अपनी जिन्दगी बसर करना नहीं सीखा। यही हमारा दोष है, जिसके कारण समाजने हम लोगोंको कैदकी यह सजा दे रखी है।

अभी दो-चार दिन पहलेकी बात है। हमारे पड़ोसका गोविन्द भी चोरीके अपराधमें पकड़ा गया है और हमारे बीच आ पहुंचा है। उसीके मुंहसे यह गमगीन खबर सुनी कि हमारी प्यारी मां, इस भयंकर दुख-भरे संसारसे मुंह मोड़कर चली गयी। हाय, अपने प्यारे दुलारे बेटेकी यह हालत–,कि पुलिस हथकड़ी-बेड़ी पहना कर जेलखानेको ले जाती है—सुनकर उसका दिल बैठ गया होगा। हाय, मेरी बदकिस्मती! अन्तकालमें भी मांकी सेवा करनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त नहीं हुआ। काल मेरी अनुपस्थितिके समयकी ताकमें था, अवसर मिलते ही निर्दयताके साथ उसने मुझसे मांको छीन लिया। अब शोक करनेसे क्या प्रयोजन!

यह सुनकर मुझे अत्यन्त दुख हो रहा है कि तुमको मिल वालोंने अकारण ही कामसे निकाल दिया है और तुम्हारी भाभीकी तबीयत भी दिनों दिन गिरती जा रही है। हाय, जब मेरी छोटी बच्ची और तुम्हारे दोनों छोटे बच्चे, रोते हुए तुम्हारा आंचल पकड़कर 'मां, बड़ी भूख लगी है, कुछ खानेको दो' कहेंगे तो तुम क्या करोगी बहन! इस गमगीन नजारेकी कल्पना करते ही मेरा सारा शरीर थरथराने लगता है। मान लो, मैंने कसूर किया ही। पर मेरे कसूरके लिये मेरा निस्सहाय कुटुम्ब क्यों कष्ट उठाये? यह कहांका न्याय है कि एक आदमी कसूर करे और उसका फल, उसके कुटुम्बके सारे वयो-वृद्ध और अनजान बच्चे व औरतें भोगें!

हाय, निष्ठुर समाज! एक व्यक्तिके कसूरके लिये, उसके कुटुम्बको क्यों दण्ड देते हो? और उस कुटुम्बके दुधमुंहे बच्चोंको मिट्टीमें मिलानेका तुम्हें क्या अधिकार है?

हां, मैंने क्या कहा?...कसूर! हां मैंने सचमुच कोई कसूर किया है? दिलसे पूछो—'मैंने कौनसा बड़ा अपराध कर दिया?' जब सारी दुनिया गहरी नींदमें सोई थी, मैं उस दौलतमन्द जमीन्दारके मकानमें घुसा और थोड़ा सा चावल उठा लाया। इसको दुनिया कहती है, 'चोरी।' हां, मान लो, मैंने चोरी ही की है। पर यह भी तो सोचना चाहिये न, कि मैंने चोरी क्यों की? मैं उस जमीन्दारका बैरी तो नहीं हूं, जो उसको नुकसान पहुंचानेकी कोशिश करूं।

मैं भूखों मरनेसे खौफ नहीं खाता। पर क्षुधित बच्चोंकी चिल्लाहट, मौतके मुंहमें जाती हुई मांकी हालत, अपनी आंखोंसे मैं नहीं देख सका, जिसकी वजहसे मुझे यह कड़ी सजा मिली है।

एक रोजके लिये नहीं—कुछ घण्टोंके लिये ही सही, भूखों रहें तभी उन बड़े लोगोंको मालूम होगा कि क्षुधा कैसी बड़ी भयंकर व्याधि है।

दूसरोंकी मेहनत द्वारा अपना पेट भरनेवाले ये आराम-तलब पूछेंगे कि तुम मेहनत-मजदूरी क्यों नहीं करते? प्यारी बहन, तुम तो जानती हो कि मैंने नौकरीके लिये कितनी दौड़-धूप की थी? मैं कठिनसे कठिन परिश्रमसे भी नहीं डरता। पर कौन काम देता है? इस क्षुधा-व्याधिसे छुटकारा पानेके लिये मैंने कितने ही आदमियोंसे उधार लिया था। पर यथासमय रकम वापस नहीं दे सका, जिसके

कारण अब कोई उधार भीनहीं देता और सभी साफ-साफ इन्कार कर देते हैं। वे लोग मेरी विवशता पर ध्यान नहीं देते। आखिर भीख मांगना शुरू किया। दो ही दिनोंकी भिक्षावृत्तिसे मैंने अनुभव प्राप्त कर लिया कि भिखारीका पेशा—भिखारीका जीवन—बड़ा कठिन है। मुझे कोई रास्ता न सूझा। आखिर हमारा गरीब परिवार तीन दिन भूखों मरा। बच्चोंके पुरदर्द हाल हमसे देखे नहीं गये। मेरा दिल टुकड़ा-टुकड़ा हो रहा था। आखिर, कोई चारा न मिलनेसे, मैंने चोरी करनेका निश्चय कर लिया।

उस रातको, जमीन्दारके घरके अन्दर घुसा और थोड़ा सा चावल चुरा लाया। उसी-अपराधकी सजा यह 'काल-कोठरी'—या 'नरक' मुझे मिला है।

ईश्वरने जो किया, अच्छा ही किया। यहां, बच्चोंकी भूख, बीबीकी बीमारी,तुम्हारी कष्ट-कथा वगैरह तो देखनी नहीं पड़ती हैं। सच पूछो तो इस जीवनमें जरा मजा आने लगा है।

अच्छा बहन, तुम्हीं सोचो कि जमीन्दारका कौनसा बड़ा नुकसान हो गया, मेरी इस चोरीकी वजह से। उनके पास तो जरूरत से ज्यादा पैसा है; मेरे पास तो अन्नका एक दाना भी नहीं। मैंने उनका थोड़ा-सा चावल चुरा लिया था, सो क्या मेरा बहुत बड़ा अपराध है?

अब भी उनकी तिजोरीमें रुपयोंकी कमी नहीं, उनके खलिहानमें धानके ढेरों की कमी नहीं। आसमानसे बातें करनेवाली उनकी इमारत के आसपास हजारों दीन-हीन हाय-हाय मचा रहे हैं, एक टुकड़ा रोटीको तरस रहे हैं। पर उनकी हालत पर कोई ध्यान नहीं देता।

इस दुनियामें गरीबोंको कोई सहारा नहीं। गरीबोंको, भीख मांगने जाने पर बे-इज्जती ही हाथ लगती है। चोरी करके खायें तो वह बड़ा अपराध समझा जाता है। गरीब-को समाज बड़ा ओछा समझता है और कहता है कि गरीबों के लिये बहिश्तका दरवाजा नहीं खुलेगा। गरीब सात आठ महीने कैदखानेकी हवा खानेके बाद रिहा होकर बाहर आया तो, लोग उंगली उठाकर कहते हैं—यह बड़ा चोर है, इससे सावधान रहो।

प्यारी बहन, तुम जानती हो कि मैं कितना सच्चा हूं। मुझे यह सारी दुनिया झूठी नजर आती है। यह पतित समाज जबतक अपनेको सुधार न लेगा, तबतक सत्य अपना मुंह नहीं दिखायेगा, पापी पेटके लिये आदमी सब कुछ करनेको तैयार रहेगा। समाजकी समझमें जबतक शु-भावना नहीं आयेगी तबतक उसका कल्याण नहीं हो सकेगा।

समाजका कानून गरीबोंको हुक्म देता है कि भूखों मत रहो। भूखों रहोगे तो तुमको सख्त सजा मिलेगी। चोरी मत करो। करोगे तो तुमको हवालातकी सैर करनी पड़ेगी। पर यह बुद्धू समाज, उन गरीबोंको यह नहीं सिखाता है कि चोरी-डाका छोड़कर मान-गौरव सुख-चैन से अपना जीवन यापन किस प्रकार होता है। जबतक गरीबोंको गौरवके साथ अपना जीवन बितानेका रास्ता, समाज नहीं बतायेगा, तबतक समाजके इन कानूनोंसे क्या फायदा हो सकता है?

प्यारी बहन, मैं एक ऐसी दुनियाकी कल्पना कर रहा हूं, जिसमें अमीर-गरीबका चिन्ह मिट जाय, और आदमी 'आदमी' बनकर रहे। भाई, बहनका प्रेम निबाहे। उस दुनियामें जुल्मकी जगह मुहब्बत, क्षुधाकी जगह तृप्ति, अज्ञा-नता के स्थान पर ज्ञानका विकास होगा। उस दुनियामें कोई जरूरतसे ज्यादा पैसा जमा नहीं करेगा, और वैसा करेगा तो वह बड़ा अपराधी माना जायेगा और उसको कड़ी सजा भुगतनी पड़ेगी।

मैं ऐसे समाजके सृजनमें अपना भावी जीवन व्यतीत करूंगा और मौका आ पड़े तो उस समाज, साम्यवादी समाज,के लिये अपने प्राणों तककी आहुति दे दूंगा। जेलसे बाहर आने पर उस समाजका विस्तृत वर्णन करूंगा। आशा है, उस समाजके सृजन में तुम मेरी मदद करोगी।

तुम्हारा प्यारा—भाई,
'..................'

(एक मलयालम कहानीके आधार पर)

नूतन प्रवाह

श्री परमानन्द शर्मा

आधुनिक युगके काव्य-प्रवाहमें प्रथम खड़ी बोलीकी कविताका अविर्भाव हुआ; उसके बाद छायावाद या रहस्य-वादकी कविताका। अभी वह प्रवाह हिन्दीके समस्त क्षेत्रोंका पूर्णतः सिञ्चन भी नहीं कर पाया था, कि प्रगतिशील कविता अथवा साम्यवादी काव्यधाराका उद्भव हो गया।

चालीस वर्षोंके भीतर ही ये तीन नई धाराएं हिन्दीमें बड़ी स्वच्छन्द गतिसे बह निकलीं। इसका कारण विश्वकी प्रगतिशील हलचलोंका प्रभाव ही हैं। क्योंकि विज्ञानने विश्वके प्रत्येक प्रदेश की बाधाको बहुत कुछ दूर कर दिया है। व्यापारको प्रगतिशील वृद्धिने विश्वके प्रत्येक भूखण्डको एक दूसरे के बहुत कुछ निकट कर दिया है। यद्यपि अभी क्षुद्र स्वार्थकी भावनाने विकर्षण भावोंको बढ़ाकर विग्रहको ही विस्तारित किया है। जबतक व्यापक स्वार्थकी कर्पण भावनाका विस्तार नहीं होगा; तबतक न तो मैत्री-भाव बढ़ेगा और न विश्व-शान्ति होगी।

अथच; हिन्दीके प्रथम नूतन प्रवाहका भी मूलकारण इस देशमें देशी-विदेशी व्यापारियोंका एक स्थानसे दूसरे स्थान तक यातायात बढ़ाना तथा शासकोंकी शासन प्रणाली दृढ़ करनेकी भावना ही है। अवान्तर भेदसे और-और भी इसके कारण हैं। और; सच तो यह है कि जिस भाषाको जरा भी राज-प्रश्रय मिल जाता है, उसकी वृद्धि होने लगती है और उसमें साहित्य रचना भी जोर पकड़ती है। लेकिन समाजके सभी व्यक्ति प्रगतिशील हृदय और मस्तिष्कके नहीं होते; इसलिये पुराने और नयेका झगड़ा चल पड़ता है। अन्ततोगत्वा धीरे-धीरे सबकी एक ही धारा बंध जाती है।

खड़ी बोलीका साहित्य जब खड़ा होने लगा, तो उसे ब्रज-भाषासे काफी अरसे तक लड़ना पड़ा। उस समय खड़ी बोलीके नेता ही प्रगतिशील थे। ब्रज भाषाकी पुरानी गति बिलकुल लड़खड़ा चुकी थी। जन समुदायके हृदयको शक्ति मिलनेके बदले ह्रास प्राप्त हो रहा था; लेकिन वे आंख मूंद कर उसीमें गतिशील हो रहे थे। खड़ी बोलीके साहित्यमें पुरानी चीजोंको ही नूतन रूप देकर जनतामें गति देनेकी चेष्टा की गयी। पौराणिक कथा-वस्तुओंको समयानुकूल बनाकर साहित्यमें पौरुष भरनेका पूरा प्रयत्न किया गया तथा विश्व साहित्यसे ज्ञान विज्ञानकी और भाव तथा रसकी बहुत सी सामग्री अंग्रेजी और बंगला आदि भाषाओंसे अनुवाद द्वारा लायी गयी। हरिश्चन्द्र कालसे द्विवेदी काल तक स्वदेशी भावनाको भी एक सीमाके भीतर साहित्यमें बांधकर प्रसारित करनेकी चेष्टा की गयी। हरिश्चन्द्रने अकेले जन-जागरणका साहित्य द्वारा जितना व्यापक कार्य किया, उतना परवर्ती कालमें नहीं हुआ। हां, बादमें रस, भाव और ज्ञानकी भूमि बड़ी जरखेज की गयी; जिससे हृदय और मस्तिष्क की भावना और समझ बहुत विस्तार-प्राप्त कर गयी।

छायावाद और रहस्यवादके नेताओंको खड़ी बोलीके अगुओंसे बड़ा कड़ा लोहा लेना पड़ा। क्योंकि अति अल्पकालमें ही वह परिवर्त्तन आरम्भ हो गया और खड़ी बोलीको खड़ी करने वाले प्रायः अधिकतर महारथी अभी नेतृत्व कर रहे थे। लेकिन, धीरे-धीरे छायावाद और रहस्यवादने भरपूर प्रभुत्व प्राप्त कर लिया। निराला, प्रसाद, पन्त और महादेवी वर्माने बड़ी गहराईसे साहित्यिक धारणाओंका सीमा-विस्तार किया। भाषाको अत्यन्त बलशाली बनाया। खड़ी बोलीकी अभिधामूलक प्रेरणाओंकी भित्ति पर लाक्षणिक तथा अभिव्यञ्जनात्मक प्रेरणाओंको विस्तृत किया। यह तो भाषा गत विस्तारकी बात हुई। रसोद्रेक और भावोद्रेककी नाना गतियोंका सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषणात्मक वर्णन किया। जीवनकी वाह्यवृत्तियोंका कम; पर अन्तर्वृत्तियोंका काव्यगत विवेचन बहुत ही मनोनिवेशपूर्वक किया। सामाजिक जीवन की प्रगति पर उतनी दृष्टि नहीं रखी गयी; जितनी वैयक्तिक जीवनकी प्रगति पर दृष्टि-प्रसार किया गया। कला पर मार्मिक दृष्टि रखी गयी। सौन्दर्य और प्रकृतिका बड़ा ही मुग्धकारी समन्वय काव्यके साथ किया गया। जीवनकी व्यापकता पर जितना सुक्ष्म दृष्टिकोण रखा गया; उतना समाज और राष्ट्र के समवाय सम्बन्ध पर ध्यान नहीं दिया गया। उसीकी प्रतिक्रिया अब प्रगतिशील साहित्य के नूतन प्रवाहमें प्रकट हो रही है।

प्रगतिशीलताके अर्थ-गाम्भीर्य पर ध्यान न देकर साम्य-वादी या समाजवादी दृष्टिकोणकी सीमामें ही उसका अर्थ बांध दिया गया है। इसलिये इस समय प्रगतिशील साहित्य वही समझा जाता है, जो साम्यवादी दृष्टिकोणसे लिखा गया हो। यद्यपि कुछ आलोचक उसके व्यापक अर्थको प्रकट

करनेका प्रयत्न करने लगे हैं और सृष्टिके आदिकालसे अबतक जितने नूतन प्रवाह मानव समाजमें या उसके निर्मित साहित्य में आये;उन सबको प्रगतिशील नाम देने लगे हैं। लेकिन;अभी वह सर्वमान्य अर्थ नहीं हो सका।

मनुष्य द्वारा निर्मित कोई भी प्रथा या कोई भी प्रणाली कभी पूर्ण नहीं हो सकती। अतएव वह कभी शाश्वत भी नहीं हो सकती। विश्वका इतिहास या साहित्य यह प्रकट कर रहा है। सृष्टिके आदिकालसे अबतक जितनी व्यवस्थाएं स्थापित की गयीं; कोई भी ज्योंकी त्यों स्थिर नहीं रह सकीं। आगे अभी जितनी भी व्यवस्थित होंगी; वे स्थिरता नहीं पा सकेंगी। क्योंकि मानव-जीवनमें इतनी कमजोरियां हैं और मनोविकारोंका ऐसा निम्नगामी प्रवाह है कि जिससे आज समाज और राष्ट्र बड़ी सुष्ठु व्यवस्थाके साथ चलता है। कल अधिकारियोंकी निर्बल धारणाके कारण उन्हींसे अव्यवस्थित होकर पंगु हो जायगा और पतनके गर्तसे निकल नहीं सकेगा। उसके लिये नूतनताकी आवश्यकता पड़ती जाती है। इसलिये किसी भी नूतन प्रवाह या नवीन व्यवस्थासे घबड़ानेकी आवश्यकता नहीं।

समाजमें, साहित्यमें नूतन प्रवाह तभी आता है, जब उसके पहलेकी धारा बाहकों द्वारा कलुषित हो जाती है। उस पुरानी चीजमें लोगोंका मोह चाहे जितना हो, लेकिन वे उसे संभाल नहीं सकते। क्योंकि असयमके दुवारा उसमें असंयत भावनाकी विश्रृङ्खल कड़ियां उस पर चलनेवालोंके लिये बन्धन बन जाती हैं। उस बन्धनसे मुक्त होने पर ही जाति-समाज-राष्ट्रकी उन्नति होती है। उस बन्धनसे मुक्त होनेके लिये नये प्रवाहकी आवश्यकता अवश्यम्भावी है।

नयी धाराके अगुआको स्थितधी और आत्मसंयमी होना चाहिये। तभी वह अपने जन-समुदायकोभी अविचलित बुद्धिका आत्मसंयमी बना सकता है। इसमें किसी साहित्यिकको यह एतराज पेश करनेकी जरूरत नहीं पड़ेगी कि तब तो इसमें रसोद्रेकके लिये जगह नहीं। क्योंकि; संयमकी दृढ़ भूमि पर ही रसोद्रेक सही और सुखप्रद होता है।

मनस्तत्वकी भांति चतुर्मुखी दर्शन जिसका नहीं होगा; वह दूसरोंसे उधारके बल पर कुछ नहीं कर सकेगा। क्योंकि उधार तो निर्बलताका लक्षण है। निर्बलता पराधीनताकी जननी है। उसे मुक्ति लभ्य नहीं। मजदूरों, किसानों अछूतों एवं इतरवर्गोंके ऊपर दया करके उनकी कठिनाइयोंके नारे बुलन्द करनेसे सफलता नहीं प्राप्त हो सकती। उनकी शिक्षाके लिये उचित वातावरण तैयार करनेकी आवश्यकता है। वे स्वयं उठेंगे और स्वतन्त्रता हासिल करेंगे। जिससे निम्नसे निम्नतम स्तरके लोगोंकी शिक्षाका विस्तार हो, ऐसे वातावरण के लिये जैसे प्रगतिशील साहित्यकी आवश्यकता है उसकी धारा कैसी होनी चाहिये? उसका निरूपण तो नैसर्गिक होना ही चाहिये। साथ-साथ उसकी रूपरेखा भी प्रगतिके अनुकूल ही होनी चाहिये।

जैसे ईश्वर और धर्मको मानने न माननेसे कुछ भी आवा-जाता नहीं। क्योंकि यहांके लोग ईश्वर और धर्मको मानते ही रहे, फिर भी मुक्ति-स्वतन्त्रता आई नहीं, चली गयी। जो नहीं मानते वे यहां वालोंसे किस बातमें न्यून हैं! फिर भी मैं कहूंगा, सत्य, प्रेम, दया, कर्म, शान्ति, शक्ति, पवित्रता, संयम और शिक्षाका कौन विरोध कर सकता है? जीवनका व्यक्तिसे और व्यक्तिका समूहसे जो शाश्वत सम्बन्ध है, उसका कौन विरोध कर सकता है? यदि कोई नहीं कर सकता तो इससे बाहर ईश्वर और धर्म है कहां? जो लोग एक कटघरेमें ईश्वर और धर्मको बन्द रखते हैं और उसेखास-खास की चीज समझते हैं,उनके लिये ईश्वर और धर्म नहीं है।

यहांके प्रगतिशील साहित्यमें अभी खींचतान, नोंकझोंक की ही बातें अधिक रहती हैं। जीवनके नाना क्षेत्रोंमें अभी वह गति नहीं कर सका। उसे अभी प्रगति और गठनकी व्यापक शक्ति नहीं प्राप्त हुई। नर-नारीके चौराहे पर खुल कर मिलनेसे नहीं; बल्कि खिलकर मिलनेसे प्रगति होगी। नर और नारी एक दूसरेको भीतरसे नहीं समझते, समझनेकी चेष्टा भी नहीं करते; परन्तु हाथ मिलाकर दौड़नेके लिये घोर आग्रह रखते हैं। यह कैसी प्रगति?

यहांका प्रगतिशील साहित्य अभी बाह्य द्वन्द्वमें पड़ा है। लेकिन;जबतक वह मार्मिक दृष्टिकोणसे अन्तर्द्वन्द्वको भीलेकर नहीं चलता; तबतक ठीक प्रगति नहीं होगी। प्रगतिशील साहित्यको कुछ लोग सीमामें बांध देना चाहते हैं।अभी उसकी गति जीवनके नानाक्षेत्रोंमें नहीं हो पायी। अतएव; अभी उसमें संकुचित विचारधाराओंको प्रश्रय नहीं मिलना चाहिये।

प्रगतिशील साहित्यके प्रत्येक क्षेत्रमें—काव्य, कथा, नाटक आदिमें—अभी नये नये सिपाही केवल कसरत कर रहे हैं। अभी तक प्रतिनिधित्व करने वाला कोई भी व्यक्ति इस क्षेत्रमें नहीं आया। छायावाद-रहस्यवाद काव्यके क्षेत्र से निकल कर आये हुए कुछ कविजन प्रगतिशील साहित्यमें अभी नीमे दरूं नीमे बरूं हो रहे हैं। वे पूरी तौरसे निकल कर सरपट नहीं दौड़ पाते। इसलिये इस नूतन प्रवाहमें गहराई—गंभीरताकी अति आवश्यकता है।

किसानकी जोत

प्रो० महेशचन्द्र, प्रयाग विश्वविद्यालय

एक समय था जब देश भरमें चकबन्दीकी आवाज गूंजती थी। कमसे कम ग्रामोन्नति योजनाओंमें उसको महत्वपूर्ण स्थान मिलता था। अब चकबन्दीके स्थान पर सहकारी खेती और सामूहिक खेती पर जोर दिया जा रहा है, सामूहिक खेती पर इसलिये क्योंकि हम बिना समझे-बूझे उन बातोंको अपनानेके लिए दौड़ते हैं जो दूसरे स्थानों पर सफल सिद्ध हुई हैं। परन्तु मुझे पक्षपात न करना चाहिये। इतना कहना पर्याप्त होगा कि खेतोंके परिमाण वाली समस्याके 'हल' के सम्बन्धमें कई दृष्टिकोण हैं। अतः यह सामयिक होगा कि निष्पक्षता और तर्क सहित उक्त समस्या पर विचार किया जाय।

मैं यह मान लेता हूं कि एक किसान जितने खेत जोतता बोता है वे सब मिलकर उसकी 'जोत' कहलाते हैं। इन जोतोंमें मुख्यतः दो बुराइयां हैं। प्रथम, उनका क्षेत्र कम होता है। द्वितीय, वे दूर दूर स्थित खेतोंमें बंटी होती हैं। भारतके अतिरिक्त अन्य देशोंमें भी ये बुराइयां पायी जाती हैं। उदाहरणार्थ, हालैंडमें एक तिहाई, बेलजियममें दो-तिहाई और फ्रांसमें चौथाई जोतें ढाई एकड़से कम हैं। परन्तु वहां जोतोंकी समस्या इतनी महत्व पूर्ण नहीं है जितनी भारतमें, क्योंकि वहां कृषि गौण उद्योग-धन्धेके रूपमें पायी जाती है। भारतमें कृषि किसानका मुख्य और पूर्ण धन्धा है। अतः जोतोंकी समस्या भारतके लिये अधिक महत्वशाली है।

जोतोंकी उक्त दो बुराइयोंके कारण प्रथम उत्पादन व्यय बढ़ जाता है। बैल, हल, औजार आदि पर होने वाला स्थायी व्यय उसी अनुपातमें नहीं घटता जिसमें खेतका क्षेत्र। यदि चार बीघेकी जगह दो बीघे खेत रह जाय तब भी एक जोड़ी बैल और कमसे कम हल व औजारोंकी आवश्यकता पड़ेगी। स्पष्ट है कि जैसे जैसे खेतका क्षेत्र बढ़ेगा वैसे आनुपातिक स्थायी व्यय कम होता जायगा। अन्य शब्दोंमें खेतका क्षेत्र घटेगा तो स्थायी व्यय बढ़ जायगा। बीज, सिंचाई, मजदूरी, लगान आदि मदोंपर होने वाला अस्थायी व्यय भी खेतके क्षेत्रके अनुपातमें नहीं घटता बढ़ता। यदि खेत दूर दूर हुए तो मजदूरी-व्यय बढ़ जाता है। द्वितीय, व्यवस्थित खेती असम्भव हो जाती है। उदाहरणार्थ, सम्भव है कि नहरसे खेतोंमें पानी न पहुंचाया जा सके अथवा कुंआ न खोदा जा सके। कुंआ खोदनेके लिये यह आवश्यक है कि किसान उसका पूर्ण उपयोग करे तथा उसके बनानेका व्यय दे सके। यदि किसान अकेला इस योग्य नहीं है तो पड़ोसी किसानोंका सहयोग प्राप्त होना परमावश्यक है। यदि ऐसा नहीं है, तो कुंआ नहीं खोदा जायगा। दूर दूर स्थित खेतोंकी एक समयमें एक समान रखवाली करना या ध्यान देना सम्भव नहीं है। न खेतीके लिये उत्तम कृषि-साधनोंका प्रयोग ही किया जा सकता है। तृतीय, मेंड़के रूपमें कुछ भूमि[1] बेकार निकल जाती है। एक खेतसे दूसरे खेत तक दौड़नेमें समय और शक्तिका भी व्यर्थ व्यय होता है। इन खेतोंके कारण होने वाले झगड़े और मुकदमे बाजीमें भी कुछ कम शक्ति और धनका अपव्यय नहीं होता। संक्षेपमें, दूर दूर स्थित छोटे खेतोंके कारण अधिक व्यय, अव्यवस्था और अपव्यय होता है। इनसे बचनेके लिये खेतोंका क्षेत्र बढ़ाना चाहिये और खेतोंको एक चकमें बांधना चाहिये।

चकबन्दीके विरुद्ध जो मत दिये जाते हैं उनका अवलम्ब खेतोंकी उर्वरता, सिंचाईकी कठिनाई और किसानोंकी अपूर्ण बेकारी है। परन्तु खेतोंकी उर्वरतामें इतनी भिन्नता नहीं है कि खेत (या जोत) एक एकड़से कमके अवश्य रखे जांय। सिंचाईकी कठिनाइयोंको हल करनेके लिए चकबन्दी करनी चाहिए। यह सोचना गलत है कि खेतोंके दूर दूर रहनेसे यदि कुछ खेतोंमें फसल नष्ट होगी तो कुछमें वह बनी रहेगी। वर्षाकी अनिश्चितताको ही क्यों न दूर कर दिया जाय। फिर यदि किसानके पास काफी समय है तो यह वांछनीय नहीं है कि वह उसे खेतोंमें बिता दे। उसके गिरे हुए रहन सहनके दर्जेकी दृष्टिसे यह आवश्यक है कि जितना फालतू समय हो या जितना अधिक समय बचाया जा सके उसे वह किसी गौण धन्धेमें लगावे ताकि वह कुछ पैसे पैदा करले। यदि अधिक पैसोंकी आवश्यकता नहीं है तो ऐसे समयमें मनोरंजन करना चाहिए। अतः खेतोंके क्षेत्र बढ़ाने और छितराव (Scatteredness) घटानेका प्रस्ताव अखंडित सिद्ध होता है।

---

१ भारतमें जोती भूमिका दो प्रतिशत

प्रस्तुत समस्याको हल करनेका एक उपाय है चकबन्दी अर्थात किसानके खेतोंको एक स्थान (चक) पर करना। जिन प्रदेशोंमें चकबन्दी की गई है वहां यह अनुभव हुआ है कि इसके कारण बेकार भूमिमें भी खेती करना सम्भव हो जाता है। ग्राम-सुधार कार्य, फसल-योजना व मितव्यय-भावका प्रचार सरल हो जाता है। गांवमें खाद, ढोरोंकी चराई, बाग और स्कूल-भवनका प्रबन्ध हो सकता है। पञ्जाबमें चकबन्दीके बाद गांवमें नए ढङ्गके अच्छे घर भी बनाये जा सके हैं। इसके अतिरिक्त एक परिवर्तनके बाद रूढ़िवादी ग्रामीण व्यक्ति, हेल्थ अफसर, शिक्षा-अफसर, सहकारी अफसर अथवा कृषि-अफसरकी बातोंको अधिक ध्यान पूर्वक सुनते और अपनाते हैं और वे स्वयं उत्तराधिकारके नियमों, बेदखली या कुर्कीके फलस्वरूप होने वाली खेतोंकी छोटाई या जोतके छितरावको रोकनेका प्रयत्न करते हैं। इसके अतिरिक्त सरकारको अधिक लगानके रूपमें मुनाफा होता है। दरअसल तो उपर्युक्त लाभ जोतोंके क्षेत्रको बढ़ाने और छितराव कम करनेके प्रत्येक साधनके फलस्वरूप मिल सकते हैं। अस्तु।

चकबन्दीके तीन ढङ्ग हो सकते हैं—(१) केवल समझा बुझाकर चकबन्दीके लिये किसानोंको राजी करना। (२) कुछ किसानोंको राजी करनेके बाद शेष पर कानूनन चकबंदी लादना (३) किसान राजी हों या नहीं, कानूनन चकबन्दी करना। भारतमें चकबन्दी कार्य प्रथम तरीकेसे ही आरम्भ हुआ परन्तु शीघ्र ही यह स्पष्ट हो गया कि इस घोंघेकी चालसे कृषिका कांटा निकालनेसे कोई लाभ नहीं। शीघ्रतासे कार्य सम्पन्न करनेके लिये चकबन्दी कानून बनाये गये जिनके आधार पर यदि जमीनके मालिकोंका एक (तिहाई या चौथाई) अंश, जिसके पास गांवके आधे खेत हों, चकबन्दीकी प्रार्थना करता है तो सरकारकी ओरसे गांवके सम्पूर्ण खेतोंकी चकबन्दी कर दी जाती है। इस कानूनके कारण खेतोंके प्रति विशेष प्रेम रखने वालों, गुटबन्दी करने वालों, मनमुटाव, विधवा, नाबालिग तथा भगोड़ेके कारण चकबन्दी कार्यमें बाधा पड़नेकी सम्भावना कम हो जाती है। खेत सम्बन्धी कागजातों तथा ट्रेनिङ्ग-प्राप्त कार्यकर्त्ताओंकी कमीका रोड़ा भी है, पर यह हटाया जा सकता है। परन्तु यदि भूमि सम्बन्धी (लगान) कानून पेचीदा है, जैसा कि बङ्गाल, बिहार व उड़ीसामें पाया जाता है, तो चकबन्दी कार्य नहीं हो सकता। ऐसे प्रदेशोंमें पहले लगान सम्बन्धी कानूनमें परिवर्तन करना आवश्यक है। लेकिन गांवके केवल एक तिहाई किसानोंको चकबन्दीके लिये राजी करना भी सरल काम नहीं है। अच्छा हो यदि यह नियम बना दिया जाय कि सरकार किसी भी गांवमें चकबन्दी कर सकती है चाहे किसान राजी हों या न राजी हों क्योंकि यह देखा गया है कि देहातियोंकी बंदरिया डंडे के बल चुपचाप नाचती है।

यदि चकबन्दी हो भी जाय तब भी उत्तराधिकारकानून, कुर्की तथा बेदखलीके कुफलोंको दूर रखनेका प्रयत्न अवश्य करना पड़ेगा। उत्तराधिकारके सम्बन्धमें यह मत दिया जाता है कि भूमि केवल सबसे बड़े लड़केको मिले। पर दरअसल खेत उसको मिलना चाहिये जो खेतीके लिये योग्य हो और इस बातको तय करनेका काम पंचायतके ऊपर छोड़ा जा सकता है। परन्तु शेष उत्तराधिकारियोंको उनका हिस्सा दिलाना और कार्यक्षेत्र (भी) उपलब्ध करना जरूरी है। यदि मृतके पास पर्याप्त अन्य सम्पत्ति नहीं है तो कहींसे ऋणका प्रबन्ध होना चाहिए जिससे दूसरे उत्तराधिकारियोंको हिस्सा दिया जा सके। उत्तराधिकार नियमको तोड़ने तथा कुर्की आदिके बुरे नतीजोंको रोकनेका एक अन्य बेहतर ढंग यह हो सकता है कि यह नियम बना दिया जाय कि जोतका क्षेत्र अमुक मात्रा (जैसे बारह एकड़) से कम नहीं हो सकता अर्थात यदि जोत बारह एकड़ से कमकी है तो उसके टुकड़े नहीं हो सकते। मृतके बेटोंको यह आजादी रहेगी कि वे आपसमें तथा पंचायतकी सहायतासे तय करलें कि कौन कौन खेती करेगा। यदि जायदादकी बिक्री हो तो उसको खरीदनेका अधिकार पड़ोसी खेतोंके किसानोंको ही मिले। फलतः खेतोंकी संख्या और छितराव नहीं बढ़ेगा। जो भूमि दूसरोंको लगान पर उठाई जाती है उसके सम्बन्धमें भी यह नियम बनाया जा सकता है कि कोई खेत एक निश्चित क्षेत्रसे कमका न हो। अस्तु। चकबन्दीको स्थायी रूप देनेके लिये यह आवश्यक है कि खेतोंके बटवारे और बिक्रीके मार्गमें रोड़े अटकाये जांय, पंचायतोंकी वृद्धि हो, पर्याप्त ऋणका सुप्रबन्ध हो और अन्य उद्योगधन्धोंकी व्यवस्था तथा उन्नति हो।

स्पष्ट है कि चकबन्दीके साथ बहुतसे झगड़े हैं अतः किसी दूसरे सरल उपाय पर भी विचार करना चाहिये। "सहकारी खेती" एक ऐसा उपाय हो सकता है। किसान मिलकर सहकारी समिति बनाऐं और अपनी भूमिको खेतीके लिये समितिके हवाले कर दें। समिति मजदूरी देकर खेती करवाये और वर्षके अन्तमें मुनाफेको या तो (१)

भूमिके मूल्यके अनुसार किसानोंमें बांट दे या (२) मूल्य पर, जो पूंजीके सदृश है, उचित सूद देकर शेष मुनाफेको मजदूरीके अनुपातमें बांट दे। इस योजनामें समिति बड़ी मात्राकी खेती कर सकती है। परन्तु शायद दीर्घकालकी दृष्टिसे किसी सहकारी अथवा गैर सहकारी समिति द्वारा बड़ी मात्राकी खेतीका किया जाना वांछनीय नहीं है। बड़ी मात्राकी खेतीके कारण बहुतसे व्यक्ति खेती न कर पायेंगे। यदि अन्य उद्योगधन्धोंमें वे पेट भरनेके लिये काफी न कमा सके तो राज्य उनकी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये वितरण क्षेत्रमें नियन्त्रण करेगी। बहुत सम्भव है कि कृषिपदार्थोंके भाव कम कर दिये जांय। तब खेती करने वाले यह शिकायत कर सकते हैं कि उनकी मेहनतका फल मुफ्तखोरीमें लुटाया जा रहा है। लेकिन क्या यह नहीं कहा जा सकता कि यदि समितिके मजदूर-किसानोंको पेट भर खानेका सामान उपजके रूपमें समितिसे मिल जाय तो वे नफे नुकसानकी विशेष परवाह नहीं करेंगे। शायद, हां! तब भी यदि गृहस्थी पीछे एक दो व्यक्ति काम करके गृहस्थीके लायक रोजी कमालें तो गृहस्थीके शेष व्यक्तियोंके अवकाशके सदुपयोगकी समस्या महत्वपूर्ण बन जायगी जिसको हल करना दुश्वार होगा।

जिस प्रकार चकबंदीके लिये किसानोंको समझा बुझा कर राजी करना अति कठिन है उसी प्रकार किसानोंको सहकारी खेती समिति खोलनेको तैयार करना भी कोई सरल कार्य नहीं है। एक किसान जिसका खेत खूब उपजाऊ है किस प्रकार केवल मजदूरी लेकर अपने खेतकी अधिक मात्रावाली उपज कम उपजाऊ खेतके किसानकी उपजमें मिलने दे। "न साहब, हम और बच्चू बराबर काम करी। ओकरे खेत मां दुइ आना भर फसल होय तबौ ओका और हमका बरबरे मजूरी मिले। ई कहांका नियाव होइ। न, ई स्कीम बिलकुल ठीक नहीं।" किसानको दूरका सच्चा न्याय तो जंचता ही नहीं। वह टेढ़े और पेचीदे लेखे (हिसाब) वाले कार्य को बेईमानीका प्रपंच समझता है। इसलिये सहकारी कृषि समितियोंमें भी देर लगनेकी ही अधिक सम्भावना है! अच्छा होगा यदि आरम्भमें कृषिके उत्तम साधनों (खाद, उत्तम बीज, औजार आदि) को उपलब्ध करानेके लिये ही सहकारी समिति बनायी जाय। यह समिति कालान्तरमें आनेवाली सहकारी खेतीका प्रचार-कार्य कर सकती हैं।

उत्तम कृषि साधनोंका प्रबन्ध करनेके लिये भारतमें सहकारी समितियां खोली गयी हैं परन्तु सन् १९४०-४१ में भारतकी सवा लाख कृषि समितियोंमें ऐसी समितियोंकी संख्या लगभग ९३०० थी जिनमें से ३९०० हैदराबाद रियासत, ११०० बंगाल और ६९० पंजाबमें थीं। इनमेंसे कितनी चालू थीं यह बताना बेकार है। इतना कहना पर्याप्त है कि कार्य क्षमता बढ़ानेके साथ-साथ विभिन्न प्रांतों और प्रदेशोंमें इनकी संख्या बढ़ानेकी समस्या पर ध्यान दिया जाना चाहिये।

अच्छा हो यदि सहकारी कृषि-सुधार समितियोंके अतिरिक्त कुछ सहकारी कृषि समितियां भी खोली जा सकें ताकि उनके लाभोंका प्रदर्शन किया जा सके। कृषि-योग्य भूमि सरकार व जमींदार द्वारा सहकारी कृषि समितियोंको दे दी जाय। सहकारी रूपमें नयी भूमिमें खेती करनेके लिए मेम्बरोंकी कमी नहीं हो सकती। युद्धकालमें जब भाव चढ़े हुए हैं, बहुतसे किसान इस हेतु तैयार हो जांयगे। कमसे कम गांवके मजदूर जो खेत पानेके लिए लालायित रहते हैं और जिन्हें कोई खेत नहीं देता तो तैयार हो ही जायेंगे। माना कि ये मजदूर पासी, चमार, कोरी आदि निम्न श्रेणीके हैं, परन्तु ये गांवके 'कर्मके नहीं वरन् जन्मके' कथित उच्च जातिके लोगोंसे कहीं अधिक सच्चरित्र और भले सिद्ध होंगे।

संक्षेपमें सहकारी खेतीकी सफलताके लिए अबतक यही मत दिया गया है कि जहां खेती हो रही है वहां खाद, बीज, औजार आदि कृषि-आवश्यकताओंकी पूर्ति और मरम्मतके लिए सहकारी समिति खोली जायें और जहां-जहां बंजर, परती या कृषि योग्य भूमि बेकार पड़ी है, वहां यथा सम्भव जमींदार और सरकारको किसानों और ग्रामीण मजदूरोंकी सहकारी कृषि समितियोंकी व्यवस्था करनी चाहिये ताकि अन्य किसानोंके लिए सहकारी खेतीके लाभोंका प्रदर्शन हो सके। जब किसानोंको लाभोंका पूर्ण विश्वास हो जायगा तब वे इस परिवर्तनके लिए दौड़ पड़ेंगे।

इन सम्भव मजदूरोंकी सहकारी खेतीके सम्बन्धमें कुछ बातें स्पष्ट करना असङ्गत न होगा। चूंकि खेतपर समितिका हक होगा; अतः किसानोंके हकोंको बनाये रखनेका वैसा प्रश्न नहीं उठेगा जैसा कि जोती बोई जानेवाली जमीनपर सहकारी खेती करनेसे उठेगा। अस्तु, इन सहकारी समितियोंका व्यवस्था-कार्य तो जमींदार, सरकार और शिक्षितोंपर छोड़ा जा सकता है। समितिका सञ्चालन

मेम्बरों द्वारा चुनी मैनेजिंग कमेटी द्वारा होगा। इस कमेटी-के मेम्बरोंको फसल योजना आदिका अधिक सूक्ष्म ज्ञान तो होता नहीं। अतः इन्हें सलाह देने और सत्य-मार्गपर चलाने के लिए दक्ष कृषि-शिक्षित व्यक्तिकी आवश्यकता पड़ेगी। यह व्यक्ति या तो गैर सरकारी कृषि-शिक्षा प्राप्त नवयुवकोंमेंसे आना चाहिये या सरकारी कृषि विभागसे। द्वितीय, चूंकि समितिके पास उसकी अपनी पूंजी नहीं होगी अतः बेहतर होगा यदि आरम्भमें प्रांतीय सरकारें आर्थिक सहायता दें। मद्रास और बम्बई सरकारने "अधिक अन्न पैदा करो" के सम्बन्धमें जो सहकारी कृषि समितियां खोली है उन्हें ऐसी ही आर्थिक सहायता दी है। तृतीय, यदि काम करनेवाले मेम्बरोंका कार्य एक ही स्टैण्डर्डका है तो उन्हें एक सी मजदूरी मिले। चतुर्थ, मेम्बर-मजदूरोंको मजदूरी या मुनाफेके रूपमें खाद्य-पदार्थ अवश्य दिये जाय। ऐसा न हो कि उन्हें टके ही टके मिलें और बाजारमें अपनी सम्पूर्ण आवश्यक वस्तुओंकी खरीद करनी पड़े।

अन्तमें रूसी "सामूहिक खेती" वाले उपायपर भी विचार कर लेना चाहिये। इसके मूलमें चार सिद्धांत हैं जो भारतके अनुपयुक्त हैं। प्रथम, सारे खेत (सोवियट) सरकारके हैं। सरकार सामूहिक खेती समितिको खेतोंका अविरल उपयोग करनेका अधिकार दे देती है। भारतमें भी कृषि आयकरके औचित्यके सम्बन्धमें यह सिद्ध किया जा चुका है कि भूमि सरकार की है। जमींदार उसके केवल ठेकेदार हैं, परन्तु उनके खेतोंकी बिक्री या लगानपर उठानेके अधिकारोंको सरकार नहीं छीनती। सोवियट रूसमें जमीन सरकारी हो जानेके कारण बिक्री या लगानपर उठानेकी बात ही नहीं उठती! जबतक सरकार भूमि-मालिकोंके ये हक न छीन लें तबतक सामूहिक खेती सम्भव नहीं। भारतकी रूढ़िवादी हवामें शांतिपूर्वक हकोंका छीना जाना असम्भव है।

द्वितीय, सामूहिक खेत (Collective Farm) की कार्यकारिणी समितिका चुनाव उतना डेमोक्रेटिक नहीं है जितना सहकारी समितिमें। वहांके चुनावमें सरकारका हाथ रहता है। भारतमें तो सरकारी हस्तक्षेपोंसे गांववाले दूर भागते हैं।

तृतीय, सामूहिक खेतमें किस किस्मके पदार्थोंकी कितने क्षेत्रमें खेती होगी और कैसे, यह राज्य द्वारा तय किया जाता है। यह बात हमारे किसानकी उपज संबंधी स्वेच्छारिताके विरुद्ध है। शकी किसान सहकारी कृषि समितियोंमें आये हुए कृषि-विशेषज्ञोंकी बातको भी कुछ समयतक संशयकी दृष्टिसे देखेंगे।

चतुर्थ, सोवियट रूसमें भी कृषक-गृहस्थी पीछे व्यक्तिगत खेतीके लिए—चाहे वह फल-फूल और शाकभाजी की ही हो, एक-एक एकड़ भूमि दी गयी है। वहां कुछ अंश तक व्यक्तिगत संपत्ति भी रखने दी जाती है। तात्पर्य यह कि रूसी सरकार भी व्यक्तिगत कार्य और प्रेरणात्मक साधनोंकी आवश्यकता स्वीकार करती है। भारतमें अभी व्यक्तिगत खेती हो रही है। इसकी बुराइयोंको दूर करनेके लिए यह आवश्यक नहीं कि हम इसका नाम निशान मिटाकर सामूहिक या साम्यवादी ढङ्ग अपनायें और फिर व्यक्तिगत अधिकार और कार्यको स्थान दें।

संक्षेपमें केवल चकबंदीकी योजना भारतके प्रत्येक भागके लिये व्यवहारिक और वांछनीय नहीं है। उपयुक्त स्थानोंमें चकबन्दी की जाय तो अनिवार्य रूपमें। इस हेतु खेतीके कागजात पूर्ण और इन्स्पेक्टरको ट्रेनिंग प्राप्त बनाना चाहिये। चूंकि उत्तराधिकार कानून कुर्की व बेदखलीके नियमोंका सुधार किये बिना चकबन्दी स्थायी लाभ नहीं प्रदान कर सकती। अतः जहां कृषि-योग्य भूमि है वहां शिक्षित, जमींदार और सरकारकी सहायतासे किसानों और मजदूरोंकी सहकारी कृषि समितियां स्थापित हों जो प्रारम्भमें मेम्बरोंको मजदूरीपर नौकर रखकर बड़े मात्राकी खेती करायें और असल मुनाफेको मजदूरीके अनुपातमें बांट दे। जहां खेती होती है, वहां पहले उत्तम खाद, बीज व औजारकी सहकारी समितियां खोली जांय जो बादमें सहकारी खेतीका प्रचार करें।—(लेखक द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित।)

स्वतन्त्र भारतका विधान

श्री अवनीन्द्र कुमार विद्यालंकार

युद्धकी समाप्तिके बाद विश्वकी सामाजिक व्यवस्था बदलेगी। इस परिवर्तित सामाजिक व्यवस्थाके अन्दर भारत का वही स्थान न होगा, जो आज है। यह पूर्ण विश्वाससे कहा जा सकता है। भारतको डोमीनियन स्टेटस प्राप्त होगा और कनाडा, आस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रीका तथा न्यूजीलैंडके समान वह भी ब्रिटिश साम्राज्यका स्वायत्त-शासन प्राप्त एक अंग होकर रहेगा, या ब्रिटिश साम्राज्यका एक भाग होते हुए भी आयलैंडके समान स्वतन्त्र होगा; या ब्रिटिश साम्राज्यसे सर्वथा अलग होकर संयुक्त राष्ट्र और सोवियटके समान एक स्वाधीन राष्ट्र होगा, यह भविष्यके गर्भमें निहित है। पर यह निश्चय है कि भारत एक दिन स्वतन्त्र होगा। प्रश्न यह है, स्वाधीन भारतका विधान क्या होगा? यह ठीक है कि बालिग मताधिकार पर या अधिकतम व व्यापकतम मताधिकार पर चुने जन-प्रतिनिधियोंसे बनी राष्ट्रीय पंचायत विधानके स्वरूपका निश्चय करेगी और वह भावी विधानका निर्माण करेगी; पर जन-प्रतिनिधियोंको आदेश देने वाली तो जनता है। जनता यदि राजनीतिक दृष्टिसे शिक्षित होगी, यदि जनताके सामने विधानका कोई खाका व स्वरूप होगा, यदि लोगोंके मनमें राष्ट्रका एक निश्चित स्वरूप होगा, तब तो जन प्रतिनिधि और राष्ट्रीय पञ्चायत भी जनताकी आकांक्षाओं, विचारों, आदर्शों और मनोभावोंके अनुकूल विधान बनायेगी, अन्यथा राष्ट्रीय पञ्चायत द्वारा बनाया गया विधान राष्ट्रके आदर्श और ध्येयके अनुकूल न होकर कुछ आदमियों द्वारा बनाया गया विधान होगा, जो विकासका परिणाम न होकर अन्य देशोंके विधानकी नकलपर बनाया गया विधान होगा। इसके लिये जनताको शिक्षित करनेका समय आ गया है। उसके सामने सब अवस्थाएं और सब रूप आने चाहिये और उसको इस योग्य बनाना चाहिये कि वह यह निश्चय कर सके कि हमारे राष्ट्रका भावी विधान कैसा होना चाहिये।

अन्य दृष्टिसे भी

भारतका भावी विधान अभीसे तैयार करनेकी जरूरत एक और दृष्टिसे भी है। भारत एक विशाल देश है। इसमें विभिन्न मनोवृतियों, रुचियों और विचारोंके लोग रहते हैं। राजनीतिक दृष्टिसे जहां हम दास हैं, वहां आर्थिक दृष्टिसे गरीब और सामाजिक दृष्टिसे पिछड़े हुए हैं। अतः बीसवीं सदीके विकसित समाजके समान हमारी सामाजिक-व्यवस्था और हमारा सङ्गठन नहीं है। जिन बातोंकी अन्य देशोंमें कल्पना भी नहीं की जा सकती, वह हमारे देशमें प्रतिदिन होती दिखायी देती हैं। हमारे समाजमें वर्ग-भेद केवल अर्थ, धन-वैषम्यके आधार पर ही नहीं है, अपितु; जन्म, धर्म और देश भेदसे भी है। इसलिये जीवन और समाजके प्रति दृष्टिकोणोंकी विविधता जितनी हमारे देशमें है उतनी और किसी देशमें नहीं है, यद्यपि क्षेत्र-फलकी दृष्टिसे अन्य कई देश हमारे देशसे विस्तारमें अधिक हैं। अतः यह बहुत आवश्यक है कि देशके सब वर्ग इसको जान लें और हृदयसे अनुभव करें कि स्वतन्त्र भारतके विधानमें उनका क्या स्थान होगा और उनके हित किस रीतिसे सुरक्षित होंगे। यदि देशके विभिन्न वर्गोंको इस विषयमें सन्तोष हो जाय, तो हमारी आजकी अनेक समस्यायें सुलझ जांय और साम्प्रदायिक समस्याकी उग्रता नष्ट हो जाय। साम्प्रदायिक समस्याका अन्त तो इस देशकी दासताके साथ ही होगा। इसलिये इस दृष्टिसे भी भारतका भावी विधान बनानेकी जरूरत है।

पहले प्रयत्न

जनताकी ओरसे पहले भी इस देशका विधान बनानेके अनेक प्रयत्न हुए हैं। मुनिवर डा० भगवानदास पिछले पच्चीस सालसे इसके लिये कह रहे हैं और प्रेरणा दे रहे हैं। पर उनका कथन अरण्य-रोदन ही सिद्ध हुआ है। स्वराज्य पार्टीका जन्म होने पर स्व० देशबन्धु दासके साथ मिल कर डा० भगवानदासने एक विधान बनानेका प्रयत्न किया था, पर देशका ध्यान वे अपनी ओर विशेष रूपसे आकृष्ट न कर सके। डा० एनीबिसेण्टने पार्लमेण्टमें पेश करनेके लिये 'कामन वेल्थ आफ इण्डिया बिल' बनाया था। साइमन कमीशनके जवाबमें नेहरू रिपोर्ट तैयार की गई थी। पर इनमेंसे कोई भी विधान नहीं था। ये केवल उसकी रूप रेखायें थीं और इनमें उद्देश्योंको केवल व्यक्त मात्र किया

गया था। दूसरे ये इस आधार पर बनाये गये थे कि भारत ब्रिटिश साम्राज्यके अन्तर्गत रहेगा। स्वाधीन भारतकी विशद कल्पनाके साथ अबतक कोई विधान नहीं बनाया गया है। यद्यपि १९२९ की मद्रास कांग्रेसमें ही भारतका ध्येय पूर्ण स्वराज्य घोषित किया जा चुका है, और २६ जनवरी १९३० से प्रति वर्ष इस स्वाधीनता दिवस मना रहे हैं।

पहला प्रयत्न

क्रिप्स प्रस्तावमें कहा गया है कि लड़ाई समाप्त होनेके बाद भारतीय धारा सभाओंके प्रतिनिधियों द्वारा स्थापित राष्ट्रीय पञ्चायत भारतका भावी विधान बनायेगी। क्रिप्स प्रस्ताव भारतीय राष्ट्रीयताको चुनौती है,कि महान् भारतीय राष्ट्र ऐसा विधान बना सकता है या नहीं, जो भारतकी बहुसंख्यक जनताको स्वीकार हो। इस ललकार-को 'भोपत्कर सत्कार समिति' ने स्वीकार किया और स्वतन्त्र भारतका विधान बनानेके लिये सर्वश्री गोखले, (अध्यक्ष), भोपत्कर, श्री केलकर, और दमढरे (मन्त्री) की एक कमेटी बनी। इसने विधान बना करके लोकशाही स्वराज्य पक्षके सामने पेश कर दिया है, और वह इस समय उस पर विचार कर रहा है। इस देशमें भावी विधान बनानेका यह पहला और ठोस प्रयत्न किया गया है।

सर्वमान्य सिद्धान्त

इस प्रस्तावित विधानकी रचना निम्न पांच सर्वमान्य सिद्धान्तोंके आधार पर की गयी है—

१—सब राज्य सत्ताका अधिष्ठान देशकी जनता या लोक हैं।

२—देशी राज्योंका अन्तर्भाव होता है, ऐसे भारत देश-में जहां सब राजनीतिक अधिकारोंका उद्गमस्थान व श्रोत भारतीय जन हैं।

३—अपने श्रमका फल भोगने, जीवनोपयोगी सब आव-श्यक वस्तु प्राप्त करने, और इस रीतिसे अपनापूर्ण विकास करनेका प्रत्येक नागरिकका जन्मसिद्ध अधिकार है।

४—भारतवर्ष स्वतन्त्र एक संघ व अविभाज्य है।

५—विश्वमें अन्य राष्ट्रोंके साथ बराबरीके नातेसे जगमें वैभव पाकर शान्ति सुख और सन्तोषकी वृद्धि करना, यह भारतीय जनताका उद्देश्य है।

इस विधानकी रचनाका आधार है, जनताकी सरकार, जनता द्वारा बनायी गयी सरकार और जनता द्वारा चालित सरकार। वर्तमान भारतीय सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था-का अन्त करने और इसके आधारपर नूतन आर्थिकऔर सामा-जिक-व्यवस्थाकी यह बात नहीं करता। यह विधान ५६२ रि-यासतोंका अन्त कर देनेकी तो घोषणा करता है, उनको ब्रि-टिश भारतके प्रान्तोंमें मिला देने की बात स्वीकार करता है, पर सारे भारतमें फैले जमींदारोंका अन्त करनेकी बात नहीं सोचता और न उत्पादनके मूल साधनोंपर राष्ट्रीय अ-धिकारका दावा करता है। ये दोनों बातें सम्भवतः स्वतन्त्र भारतके लिये छोड़ दी गयी हैं।

मौलिक अधिकार

प्रस्तावित विधानमें मौलिक अधिकार निम्नलिखित रखे गये हैं: कानूनकी दृष्टिमें सब नागरिक समान हैं। सार्व-जनिक सब स्थानों,मार्गों,संस्थाओं आदिके सम्बन्धमें सबका समान अधिकार होगा। शिक्षा प्राप्त करने और शस्त्र बांधनेका सबको हक होगा। आरोग्य-संरक्षण जीवन-निर्वाहार्थ जरूरी मजदूरी मिलने, वृद्धावस्था और बेकारीमें उदर पूर्तिके लिये वेतन मिलने और स्त्रियोंको सुख-सुविधा मिलनेका हक स्वीकर किया गया है। किसानोंके भी, उनकी उन्नतिके लिए आवश्यक, हक स्वीकार किये गये हैं। त्रिविध स्वतन्त्रता,—भाषण, लेखन और सम्मेलनका अधिकार;—स्वीकार की गयी है संस्कृति स्वातन्त्र्य स्वी-कार किया गया है। सरकारका अपना कोई धर्म न होगा।

देशी राज्योंका स्थान

संयुक्त राष्ट्र अमरीकाके विधानके आधारपर स्वाधीन भारतका विधान बनाया गया है। स्वतन्त्र भारतकी पर-राष्ट्र नीति निश्चित करनेका काम स्वाधीन भारतकी गवर्नमेंट और उसके परराष्ट्र विभागके लिए छोड़ दिया गया है। पाकिस्तानके मसलेपर विचार नहीं किया गया है, क्योंकि भौगोलिक स्थिति, ऐतिहासिक परम्परा; आधु-निक राष्ट्रवाद, आर्थिक और शारीरिक व सैनिक योजना, किसी भी दृष्टिसे देखा जाय, भारत एक देश है, और यह अविभाज्य है। वैदिक ऋषियों, चक्रवर्ती सम्राटोंकी महत्वा-कांक्षाओं, जरासन्ध; चन्द्रगुप्त मौर्य, चाणक्य और अशोक-का पराक्रम और बुद्धि; कविकुल गुरु कालिदासकी कल्पना, समुद्रगुप्त, पुलकेशी, स्कन्दगुप्त, हर्षवर्द्धन और मुगल-सम्राटोंका यत्न इसकी रक्षाके लिए रहा है, अतः स्वतन्त्र भारतके विधानके लिए पाकिस्तान विचारणीय विषय नहीं है। असल प्रश्न देशी रियासतोंका है। प्रस्तावित विधानमें

इनके अस्तित्वको अमान्य किया गया है। इस विषयमें कुछ लोगोंका मतभेद है। उनका कहना है कि देशी नरेशों-को ब्रिटिश गवर्नमेंटने जो वचन दिए हैं, उनसे तो हम नहीं बंधे हैं, मगर भारतीय नेताओंने उनको जो वचन और आश्वासन दिए हैं, उनका पालन करना तो जरूरी है।

छोटी रियासतोंकी स्वतन्त्र सत्ता रखना तो वे भी हास्यास्पद मानते हैं। पर उनका कहना है कि बड़ी इक्कीस रियासतोंको मान्य किया जाय और उनके पासके प्रान्तोंमें जो विधान हों, वही उनपर लागू किया जाय। इस प्रकार रियासती जनताको भी शेष भारतके समान स्वायत्त शासन प्राप्त होगा। नरेश इनके गवर्नर होंगे। यदि ये अयोग्य हों, तो क्या किया जाय, यह विधानमें ठहराया जाय। स्व० श्री रङ्गा स्वामी आयंगरने भी अपने बनाये विधानमें ऐसी ही व्यवस्था इनके लिये की थी। हरिपुरा कांग्रेसके सभापति श्री सुभाषचन्द्र बोसने भी यही मत जाहिर किया था।

हमारा अपना मत है कि जनतंत्रके साथ एकतन्त्र नहीं चल सकता। कुछ प्रान्तोंके शासक वंश-परम्परासे हों, और कुछके जनता द्वारा निर्वाचित हों, यह एक ही देशके अन्दर चलना स्वाभाविक नहीं है। यदि देशी नरेशोंने स्वाधीनताके आन्दोलनमें सक्रिय भाग लिया होता, स्वतः प्रगतिशील होते और जनताका नेतृत्व करते, तब तो उनके अस्तित्वको कायम रखनेके प्रश्नपर सहानुभूतिके साथ विचार करना भी ठीक होता। पर ये तो ब्रिटिश साम्राज्य-वादके साथी बने हुए हैं, दकियानूसी और प्रतिगामी हैं, तथा मध्ययुगके अवशेषमात्र हैं, तब इनका लोप होना ही अभीष्ट है। नरेन्द्रोंसे की गई सन्धियां जनताकी सहमति या उसकी रायसे या उसकी जानकारीमें नहीं की गयी हैं। अतः इन सन्धियोंका पालन करनेका उत्तरदायित्व जनतापर नहीं है। जब ब्रिटिश भारतसे जमींदारोंका लोप हो रहा है और बङ्गालमें इनका अन्त करनेके लिए बिल तैयार है; तब स्वतन्त्र भारतमें इनको रखना कैसे सुसंगत हो सकता है। प्रस्तावित विधानके मसविदेमें रियासतोंकी वैयक्तिक सम्पत्ति मान-मर्यादाको नहीं छुआ गया है। छोटी रियासतोंका वे जिस-जिस प्रान्तके साथ लगी हुई हैं उनमें उनका समावेश किया गया है और बड़ी रियासतोंको स्वतंत्र प्रान्त बनाया गया है। यूरोपमें जब राजमुकुट धूलमें लोट रहे हैं, तब हमें राजमुकुटोंका मोह नहीं करना चाहिए।

भारतीय संघ

भारतकी सीमा ठहराते हुए उत्तरमें तिब्बतको भी भारतमें रखा गया है। पर बर्माकी पृथक सत्ता स्वीकार की गयी है। विधान निर्माताओंने इस बातका विचार नहीं किया कि भारतकी पश्चिमी सीमा अलेक्जेण्ड्रिया है और पूर्वीय सीमा सिंगापुर है। संयुक्त-राष्ट्र अमेरिकाके विधानमें जिस प्रकार अन्य राज्योंको सम्मिलित होनेके लिए सुविधा दी गयी है; उसी प्रकार भारतीय विधानमें भी ऐसी किसी पद्धतिका रहना अनिवार्य है। आग्नेय एशिया बृहत्तर भारत के नामसे कभी भारतका अङ्ग था। अतः अब भी बर्मा, सीलोन, मलाया, स्याम, हिंदचीन, डच ईस्टइण्डीज, (सुमात्रा, जावा, बोर्नियो) और पश्चिममें अफगानिस्तान को, जो कि औरङ्गजेबके नहीं रणजीत सिंहके समयतक भारतका एक प्रान्त था, भारतीय संघमें सम्मिलित करने के लिए यदि वे इसके लिए इच्छा प्रकट करें—हमें उद्यत रहना चाहिए। हमें यह न भूलना चाहिए कि बर्मा, थाई-लैण्ड, हिन्दचीन और इण्डोनेशियाकी वर्णमाला वही है जो हमारी है। अतः इन सबको मिलाकर भारतीय संघ बनाने-का यत्न हमको करना चाहिए। भारतीय विधानमें इसके लिए स्थान होना चाहिए। हमारा अपना विचार तो पूर्वीय अफ्रीकाको भी भारतीय संघमें शामिल होनेके लिए अवसर देना चाहिए। वहां भारतीयोंकी आज जो स्थिति है, उसको देखते हुए यह सम्भावना दूरकी नहीं दिखायी देती। यदि यह भारतीय संघ प्रबल हुआ तो आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड अपनी रक्षाके लिए वाशिंगटन और लन्दन की ओर न देखकर दिल्लीकी ओर देखेंगे। अतः विधानमें इनको भारतीय संघका एक अङ्ग बनानेके लिए गुञ्जाइश रहनी चाहिए।

दत्तात्रेयका अवतार

प्रस्तावित विधान रूपी राष्ट्र-पुरुष दत्तात्रेयका अवतार है। दत्तात्रेयकी मूर्तिके ब्रह्मा, विष्णु और महेश ये तीन मुख बताये जाते हैं और उनके तीन कार्य स्वतन्त्र होते हैं, पर वे परस्परावलम्बी और परस्पर पोषक होते हैं। इसी प्रकार विधानके तीन अङ्ग 'धारा सभा; मन्त्रिमण्डल और न्याय विभाग हैं। विधान बनाते समय इस बातका ध्यान रखा गया है कि अधिकार रूपी तराजू स्थिर रहे और इसके लिए धारा सभा, राष्ट्रपति और मतदाताओंका दबाव एक दूसरेपर अपने आप पड़ता रहे। संयुक्त-राष्ट्र

और भारतमें एक भेद है। संयुक्त राष्ट्र अमरीकामें विभिन्न राज्योंने मिलकर केन्द्रीय सभाकी स्थापना की थी और अपने कुछ अधिकार उसको दिये थे। पर भारतमें कनाडाके समान केन्द्रीय सत्ता पहलेसे विद्यमान है और इसने प्रान्तोंको अधिकार दिए हैं। अतः विधान निर्माताओंने इस विषयमें कनाडाके विधानको अपनाया है।

विधानके तीन विभागोंमेंसे भारतीय प्रतिनिधि सभाको कानून बनानेका अधिकार दिया गया है। सीनेट भी रखी गई है। प्रतिनिधि सभाके ६०० सदस्य होंगे। इनका निर्वाचन बालिग मताधिकारके आधारपर होगा। २१ वर्षका प्रत्येक सज्ञान नर-नारी मत दे सकेगा। इनके मतदातासंघ व निर्वाचन-मण्डल होंगे और ये प्रतिनिधियोंको चुनेंगे। प्रतिनिधि सभा ही अपने अध्यक्ष और उपाध्यक्षका निर्वाचन करेगी। राष्ट्रपति जिस पार्टीका बहुमतका होगा उसके नेताको मन्त्रिमण्डल बनानेके लिए कहेगा। मन्त्रिमण्डल प्रतिनिधि सभाके प्रति और प्रतिनिधि सभा निर्वाचकोंके प्रति उत्तरदायी होंगी। कानून बनाने और कानूनमें संशोधन करनेका इसको अधिकार होगा। प्रतिनिधि सभा द्वारा स्वीकृत कानून सीनेटके पास जायगा। सीनेटने यदि कोई संशोधन किया या कोई नवीन सूचना दी तो वह पुनः विचारार्थ प्रतिनिधि सभाके पास वापस आयगा। उसपर विचार होनेके बाद वह कानून स्वीकृतिके लिए राष्ट्रपतिके पास जायगा। यदि राष्ट्र पतिको वह स्वीकार न होगा तो वह सब मतदाताओंका उसपर मत लेगा और बहुमतका निर्णय मान्य होगा।

आर्थिक बिल केवल मन्त्रि-मण्डल द्वारा पेश किये जायेंगे।

सीनेट

सीनेटके ३०० सदस्य होंगे। इनका निर्वाचन प्रत्यक्ष मत दाताओं द्वारा निर्वाचित प्रान्तिक और केन्द्रीय धारासभाओंके प्रतिनिधियों द्वारा होगा। सीनेटका कभी विसर्जन न होगा। हर तीन सालके बाद एक तृतीयांश सदस्य कार्यभारसे मुक्त होंगे और उनकी जगह नया निर्वाचन होगा। भारतका राष्ट्रपति सब मतदाताओं द्वारा चुना जायगा। इसका काल छः सालका होगा। राष्ट्रपतिको शासनाधिकारके साथ सैनिक उच्च अधिकार भी दिये जायेंगे।

प्रान्तिक धारासभा

प्रान्तोंकी जन संख्याके हिसाबसे, एक लाख लोगों पर एक प्रतिनिधि, बालिग सज्ञान मतदान पद्धतिसे प्रान्तिक धारा सभाके सभ्योंका चुनाव होगा और प्रान्तिक धारासभाके जितने सदस्य होंगे, उससे आधेसे अधिक प्रान्तिक सीनेटके सदस्य नहीं होंगे। इनका चुनाव धंधेवार (वोकेशनल) पद्धतिसे किया जायगा। किसीभी महत्वपूर्ण प्रश्न पर विशेषज्ञोंकी सलाह तुरन्त मिल सके इस दृष्टिसे यह व्यवस्था होगी। वर्गकी स्वार्थ-निहित प्रधानता जनताको कहां तक मान्य होगी, यह विचारणीय है।

नया प्रयोग

एक बार चुने जानेके बाद सदस्य जनता व मतदाताओंको भूल जाते हैं। इसलिए विधानमें यह भी रखा गया है कि यदि कोई सदस्य निर्वाचकोंकी इच्छाके विरुद्ध या निर्वाचनके समय दिए गए अभिवचनोंके विरुद्ध चलता हो और मतदाता उसके बर्ताव को पसन्द न करते हों, तो मतदाताओंका एक दशमांश अध्यक्षको लिख सकता है कि उसकी सदस्यताको रद्द कराके उस निर्वाचन क्षेत्रसे नया निर्वाचन कराया जाय। इस प्रकार प्रतिनिधियोंपर मतदाताओंका बराबर दबाव बना रहेगा। निर्वाचकोंको यदि कोई कानून आवश्यक मालूम होता हो या कोई कानून नापसन्द हो तो उसको बनवाने या रद्द करवानेके लिये धारा सभासे सिफारिश करनेका अधिकार भी मतदाताओंको होगा। यह बात दुनियाके और किसी विधानमें नहीं है, केवल प्रस्तावित विधानमें ही मान्य की गयी है।

न्याय पद्धति

विधानका तीसरा भाग न्याय-पद्धतिसे सम्बन्ध रखता है। भारतका सर्वोच्च न्यायालय सुप्रीम कोर्ट होगा। मुख्य न्यायाधीशके सहित इसके छः न्यायाधीश होंगे। राष्ट्रपति और सीनेट इसकी संख्या घटा-बढ़ा सकेंगे। मन्त्रिमण्डलकी सलाहसे राष्ट्रपति इनको नियुक्त करेगा। यदि किसी न्यायाधीशका आचरण ठीक न हुआ, या वह अयोग्य सिद्ध हुआ तो उसको अलग करनेका अधिकार राष्ट्रपतिको दिया गया है। हाईकोर्टमें पांच साल तक न्यायाधीशका काम किये हुए या हाईकोर्टमें दस साल वकालत किये हुए कानूनदां इसके न्यायाधीश हो सकेंगे। सुप्रीम कोर्टके निर्णय कानूनके समान सब अदालतों और न्यायालयोंके लिये मान्य होंगे।

प्रान्तोंमें हाईकोर्ट होंगे। इसका मुख्य न्याय न्याया-

धीश गवर्नर और प्रान्तिक मन्त्रिमण्डलकी सलाहसे नियुक्त करेगा। अन्य न्यायाधीश ऐसे होंगे, जिन्होंने पांच साल तक न्यायदानका काम किया हो, या जिला कोर्टोंमें दस साल तक वकालत की हो। हाईकोर्टका निर्णय प्रान्तके सब न्यायालयोंको मान्य होगा। सुप्रीम कोर्ट और हाईकोर्टके मुख्य न्यायाधीशोंकी नियुक्ति यद्यपि राष्ट्रपति और गवर्नर करेंगे, पर न्यायदानमें ये स्वतन्त्र रहेंगे।

मतदानका अधिकार

मतदानका अधिकार हरेक बालिगको देनेका अनेक लोगोंने विरोध किया है। उनका कहना है कि जनताके साक्षर न होनेसे इसका परिणाम ठीक न होगा। पर जब आज कांग्रेस प्रत्येक अठारह सालसे ऊपरके व्यक्तिको मतदान का अधिकार स्वीकार करती है, और हरेक कांग्रेस सदस्य मत देता है, और मतदानकी योग्यता कमसे कम की जा रही है, तब प्राप्त अधिकारको छीनना समीचीन नहीं कहा जा सकता। नेहरू रिपोर्टने १९२८ में ही बालिग मताधिकारके सिद्धान्तको स्वीकार किया था। प्रतिनिधियोंके लिये एक विशेष योग्यताका ठहराया जाना आवश्यक है, और उनका कानून, शासन-संस्था आदि नियमोंका जानकार होना आवश्यक है। कानून बनानेका काम हरेकको नहीं दिया जा सकता।

यह विधान अन्तिम नहीं कहा जा सकता। परिस्थिति बदलती रहती है, जनताके विचार बदलते रहते हैं, उसीके अनुसार राष्ट्रका विधान भी बदलता रहता है। जीवित राष्ट्रोंके विधानमें समयके अनुसार परिवर्तन आवश्यक है। प्रस्तावित विधानकी रूप-रेखा देनेका यहां उद्देश्य इतना ही है, कि जनताके सामने स्वतन्त्र भारतकी कल्पना सदा मूर्त रूपमें रहे और वह स्वयं उसका विधान बनानेके लिये अपने अन्दर शक्ति उत्पन्न करे।

——:*:*:——

छोटा नागपुरके आदिवासियोंका अन्तिम संस्कार

श्रीमती सुशीला देवी सामन्त, विदुषी

इस विशाल विश्वके विचित्रतापूर्ण दृश्योंमें मानवजातिके कौतुकपूर्ण एवं तथ्यपूर्ण कार्य कलापोंमें देश, जाति और संस्कारोंका एक नाटक अथवा इतिहास परिपूर्ण है। उनका जितना अधिक अनुशीलन किया जाता है उनसे हम उतनी अधिक मनोरञ्जक, ज्ञानपूर्ण बातें पाते ही जाते हैं। कोई भी जाति अथवा प्राणी जो हमारे आस-पास बसते हैं उनके स्वभावसे परिचित होनेके लिये हम उनके इतिहासको देखते हैं चाहे वह इतिहास लिखित हो अथवा प्रकृति प्रदत्त जीवनमरणकी एक रेखा-मात्रकी दूरी ही क्यों न हो? मानव अपनी धी-शक्तिके सहारे सदासे ऐसा ही करता आया है। किसी भी प्राणी अथवा जातिके इतिहासका अध्ययन करनेके लिये उसके जीवनके संस्कारोंका अध्ययन आवश्यक है। जिस जातिका कोई लिखित इतिहास नहीं है, उसकी दिनचर्या और संस्कारोंका अध्ययन करना तो परम आवश्यक है?

छोटा नागपुरके आदिवासी भारतके प्राचीन आदिवासियोंके वंशधर हैं। ये जातियां संसारकी वीर जातियोंमें हैं। अपरिचित कालसे जङ्गलोंमें अन्धकारपूर्ण गिरिगुहाओंमें छिप-छिप कर ये जातियां अपनी सभ्यता और जातीयताको बनाये हुए हैं। यही कारण है कि नगरोंका छल-ऐश्वर्य-धन-वैभव भी इनको अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सकता। मोहंजोदारो और पंजाबकी हरी-भरी जमीनमें निवास करने वाले आज असभ्य कहला कर भी अपनी सांस्कृतिक स्वाधीनताकी पूजामें रत ही हैं। जिन्होंने विजातीय सभ्यताको अपनाया, वे सदाके लिये अपने दलसे बाहर कर दिये गये। वैदिक काल गया, गाथिक काल गया, पौराणिक काल गया, पर इन बेचारोंका गया भाग्य फिर नहीं लौटा। राजपूत-कालकी उथल-पुथलमें इन्होंने अपने चिरबैरी आर्योंकी शत्रुताको भूलकर उनका साथ दिया और उनके साथ मिल कर ये तुर्कोंसे लड़े। किन्तु दुर्भाग्यवश आर्योंका पतन हुआ, तुर्कों और मुगलोंने भारत को रौंद डाला। न मालूम कितनी महाजातियों और उपजातियोंकी सृष्टि वर्षा-कालीन कीड़ोंकी तरह भारतमें होती ही गयी। कितने सुधारक और साधक संसारको कल्याण-पथका पथिक बनानेके लिये भारत माताकी गोदीमें आये और गये। किन्तु ये स्वाधीनताके पुजारी संसारसे मुंह मोड़े, चुपचाप असभ्य बने अपनी सभ्यताको प्राणपणसे अपनाये ही रहे। इन्हें भी दीन इस्लाम स्वीकार करनेके

लिये भालों और तलवारोंका भय दिखाया गया। इनको भी होम और यज्ञके प्रभावमें लानेके लिये गर्दन कटानेको विवश किया गया, किन्तु ये अड़े ही रहे। इस्लामका झण्डा उड़ा, सारे भारतमें उड़ा; किन्तु पहाड़ोंकी गुफाओंमें न जा सका। ईसा-मसीहकी दया और प्रेमका सन्देश गुफाओं तक पहुंचा। किन्तु वह भी पूर्ण रूपेण सफलीभूत नहीं हो सका।

इन अड़ीले, हठीले आदिम वासियोंने अपनी भाषा और संस्कृतिको धन, जन, मान और राजके हाथों कभी नहीं बेचा। ये अब तक उस विशाल कृष्णकाय अटल चट्टानोंकी तरह आंधी-वर्षा और तूफानोंको पार कर चुपचाप अपनी धुनमें मस्त, आत्म-सन्तुष्ट हैं। आदि कालसे अब तक ये अपने निवास-स्थान पहाड़ोंकी तरह अचल अटल हैं।

ऐसे हठीले स्वाधीनता प्रेमियोंका परिचय हमें अवश्य प्राप्त करना चाहिये। इनके अनेक जातीय संस्कारोंमेंसे मैं केवल एक संस्कार पर, पाठकोंकी जानकारीके लिये, प्रकाश डाल रही हूं।

छोटा नागपुरके आदिवासियोंमें कई फिर्के हैं, जिनमें पारस्परिक रोटी-बेटीका कोई वास्ता नहीं है। इनकी अपनी अपनी भाषा है। ये एक दूसरे फिर्कोंका जल पी लेते हैं। इनके देवता देवी और जातीय संस्कार प्रायः एकसे ही होते हैं। तिथि त्योहार भी प्रायः कुछ-कुछ मिलते-जुलते हैं। इनके जितने फिर्के हैं उनमें सबसे अधिक प्राचीन और प्रसिद्ध 'मुण्डा' फिर्का है। मैं यहां उन्हींके बारेमें लिखूंगी। छोटा नागपुरके अन्दर ये मुण्डा या मुण्डारी कहलाते हैं। भारतके प्राचीन संस्कृत ग्रन्थोंमें मुण्ड इन्हींको कहा गया है। रांचीसे बाहर ये लोग मारांग, मुण्डा और तमाड़िया तथा पातर कहलाते हैं।

मुण्डा जाति नास्तिक नहीं है। ये ईश्वर पर पूर्ण विश्वास रखते हैं। इनमें प्रकृति-पूजाके साथ ही साथ सूर्य पूजनका भी रिवाज है। ये जन्मान्तर वादको मानते हैं और आत्माके अमरत्व पर पूर्ण विश्वास रखते हैं।

मृत शय्यापर पड़े हुए व्यक्तिको अन्तिम समय उसके तमाम आत्मीय किसी पवित्र नदीका पानी पिलाते हैं और जहां तक हो सकता है उसकी इच्छाओंको पूर्ण करनेके लिये भरसक कोशिश करते हैं। ऐसी स्थितिमें शय्या स्थित रोगीके कमरेका द्वार, खिड़कियां वगैरह खोल दी जाती हैं। मृत्युके बाद अन्तिम संस्कारके निमित्त ये अपने पड़ोसियों और बिरादरीको खबर देते हैं। अन्तिम संस्कार और अन्तिम दर्शनके निमित्त स्त्री-पुरुष सभी मृत व्यक्तिके घर पर एकत्रित होते हैं। मृत व्यक्तिको उबटन लगाकर स्नान कराया जाता है। इसके बाद नये वस्त्र पहनाकर सुगन्ध द्रव्यादि डालते हैं। मृत व्यक्तिके तमाम सम्बन्धी उसके मुखमें सोना-चांदीके टुकड़े डालते हैं। उनकी यह धारणा है कि ऐसा करनेसे पुनर्जन्ममें ये सब चीजें उसे आसानीसे मिल जायेंगी। मृतकके लिये बांसकी अर्थी ये नहीं बनाते हैं। जिस शय्यापर मृत व्यक्ति अन्तिम सांस छोड़ता है उसी पर कफन डाल कर मृतकको खाट समेत उठा लेते हैं। वैज्ञानिक दृष्टिसे यह उत्तम ही है। मृत व्यक्तिकी अर्थीके साथ-साथ तमाम जातीय लोग और पड़ोसी जाते हैं। घरसे अर्थी उठाते वक्त गोबर घोल कर एक वृद्धा स्त्री छींटा उड़ाती हुई चौक तक आती है। वहां कुछ देरके लिये अर्थी रखी जाती है। वहांसे अर्थी सीधे स्मशानको ले जाते हैं। इनका स्मशान हिन्दुओंसे अलग हुआ करता है। प्रत्येक फिर्केकी स्मशान भूमि अलग होती है। कोई फिर्का अपने स्मशानमें अन्य फिर्कावालोंके मुर्दोंको गाड़ने या जलाने नहीं देता है। इनके मुर्दे गाड़े और जलाये भी जाते हैं। इनमें अधिकतर जलानेकी प्रथा ही अधिक है। असमर्थ अनाथ और बालक एवं गर्भिणी स्त्रीको ये नहीं जलाते। खास कर गर्भवती स्त्रियां और बच्चे कभी नहीं जलाये जाते। उनकी यह धारणा दृढ़ है कि गर्भवती स्त्री मरने पर चुड़ैल होती है। यदि उसे जलाया जायेगा तो वह और भी उग्र बनेगी। कुष्ट-ग्रस्त, हैजे तथा चेचकसे मृत व्यक्तिके शरीरको भी ये रोग फैलनेके डरसे नहीं जलाते। चिता तैयार हो जानेके बाद चिताकी प्रदक्षिणा कर मृत व्यक्तिको चितामें रखते हैं। मुखाग्नि संस्कार पुत्र ही करता है, अभावमें अन्य स्वगोत्रीय व्यक्ति करता है। अन्तिम संस्कारके समय पुरोहित और नाई भी साथ रहते हैं।

मृत शरीरको भस्मकर, या गाड़ कर लोग नदीमें स्नान कर घर लौटते हैं। इनका स्मशान शहर या गांवके बाहर नदी किनारे होता है। स्मशानसे लौटे हुए लोग मृत व्यक्तिके घर जाकर तुलसी जलके छींटे अपने ऊपर डाल कर घर लौटते हैं। पुरुषोंके स्मशानसे लौटनेके बाद मृतव्यक्तिके घर आयी हुई स्त्रियां जुलूसके रूपमें स्मशानको जाती हैं। वहां कुमारी कन्यायें नये घड़ोंमें जल भर भरकर सूप द्वारा चिता-नलको बुझाती हैं। आग बुझ जाने पर मिट्टीके एक नये पात्रमें मृत व्यक्तिके जले हुए शरीरकी कुछ हड्डियां चुन कर रख ली जाती हैं। बादमें चिताकी तमाम राख और

कोयलेको जलस्त्रोतमें प्रवाहित कर देती हैं। कोयला या राखका रह जाना अशुभ तथा मृत्यु सूचक लक्षण माना जाता है। इसके बाद सभी स्त्रियां स्नान करती हैं। स्नान-के पश्चात चुनी हुई हड्डियोंको अच्छी तरह धोकर एक नये वस्त्रमें लपेट कर दूसरे नये पात्रमें भर कर रखती हैं। इसके बाद मृत व्यक्तिकी आत्माकी शान्तिके निमित्त यमराजको तथा मृतव्यक्तिको जलाञ्जलि प्रदान करती हैं। स्नान करके दो नये पात्रोंमें उड़दकी खिचड़ी बनायी जाती है। उसी चिता के पास पीपलके पत्तोंमें खिचड़ी परोसकर यमदूतों तथा यम-राजकी पूजा की जाती है। "हे यमदूतो अब कृपा कर हमारे सम्बन्धी मृत व्यक्तिको ढीले पाशोंमें बांधिये,और इन्हें लेकर हमारे साथ चलिये।" यह कहनेके बाद जलधारा डाल कर मृतकके फूलको उसका कोई निकटतम सम्बन्धी जो उसका प्रिय होता है, अपने सिरपर उठा कर घर लेता है। ऐसे वक्त रोना बिलकुल मना है। जुलूसके प्रथम भागमें केवल सम्बन्धी स्त्रियां ही रहती हैं। आगे आगे जलधारा देती हुई कोई आत्मीय स्त्री चलती है उसके पीछे लाई छींटती हुई एक स्त्री रहती है। इसके पीछे मृत व्यक्तिकी अस्थियोंको सिर पर रखे हुए उसीका प्रियतर सम्बन्धी होता है। घर पहले ही से लीप पोतकर शुद्ध साफ किया हुआ रहता है। आंगनमें स्त्रियां चौक पूरकर एक प्रदीप जला रखती हैं। उसी चौकमें नये वस्त्रके टुकड़ेमें हड्डियां डालकर उसमें पिसी हुई हल्दी और चन्दन आदि मिलाकर फिरसे नये मृत्तिका-पात्रमें भर कर रख दी जाती है। उसी अस्थिपूर्ण पात्रकी दूर्वा-धान और प्रदीप युक्त थालीसे आरती उतारती हैं। इस कारुणिक क्रियाको कर लेनेके बाद उन अस्थियोंको उसी कमरेमें चौक पूर कर एक आसनके ऊपर रख दिया जाता है जिस कमरेमें मृत-व्यक्तिका प्राण निकलता है।

इन लोगोंकी यह धारणा है कि मृत व्यक्तिकी आत्मा दस दिन तक, जब तक कि उसका श्राद्ध नहीं होता, इसी पृथ्वी पर विचरण करती है और अशौचके ये दस दिनोंतक वह अपने मकान और स्मशानके आस पास रहा करती है। अस्थियों-को रख लेनेके बाद मृत व्यक्तिके शोक सन्तप्त परिवारके प्रति सहानुभूति दिखानेके लिये,फिर एक बार तमाम विरादरीकी स्त्रियां तथा पुरुष एकत्र होकर अपने अपने यहांसे खाद्य और पेय द्रव्य जो साथ लेते आते हैं समझा बुझाकर उन्हें खिलाते पिलाते हैं। पहले नीमकी पत्तियां चबा लेनेके बाद सन्तप्त परिवार कुछ खाता पीता है। अवशिष्ठ पेय और खाद्य द्रव्य स्मशान तक जानेवाले बन्धुओंको खिला पिला दिया जाता है।

अस्थि लाने वाले दिनसे दस दिन तक बराबर दोनों शाम मृत व्यक्तिकी शान्तिके लिये, उस चौराहे पर जिस जगह अर्थी कुछ देरके लिये ठहरायी गयी थी, यमदूतोंके लिये पत्तोंके दोनोंमें भोजन और जल रख दिया जाता है। मृत व्यक्तिके लिये दिये गये अन्न-जलको किसी साफ ढकनसे ढांक दिया जाता है और अच्छी तरह दोनेको सम्भाल कर रख दिया जाता है। उस अन्नको दोनों शाम ये लोग देख लिया करते हैं। यदि दोनेका अन्न अशुक और जल निर्मल रहा, तो उससे पता चलता है कि मृतककी आत्मा दुखमें है अथवा सुखमें है। और तब फिर ये यमदूतोंसे प्रार्थना करते हैं "कि उसे अपने पाशसे कुछ देरके लिये मुक्त करिये।" वह घर जिसमें अस्थियां रखी रहती हैं खूब साफ और सुगन्धित रखा जाता है। हर दिन शामको उसमें दीया जलाया जाता है और उस कमरेमें केवल मुखाग्नि करने वाला व्यक्ति ही जमीनपर सोता है। दस दिन तक वह व्रती की तरह रहता है। न तो वह जूता, छाता और टोपी लगाता है और न कोई उत्तम वस्त्र ही पहनता है। दस दिन तक वह अपने बाल और नख नहीं कटाता और न किसी उत्सवमें शामिल होता है। वह किसी तर-हके अंग रागोंको नहीं छूता। घी, तेल वगैरहका बना हुआ मसालेदार भोजन नहीं करता, और न कहींकी यात्रा ही करता है। सुबह होते ही मृत व्यक्ति तथा यमदूतोंके लिये वह दन्तधावन और पानी दोनामें भर कर नदीके एक निश्चित घाटके किनारे रख देता है। बादको आप मुंह धोकर स्नान कर जलाञ्जलि देकर घर आता है। यह क्रम भी दस दिन तक चालू रहता है। इन दस दिनोंके अन्दर वह किसी प्राणीको अजान रूपसेभी कष्ट नहीं देता है और न सांसारिक व्यवहारमें किसीके साथ शामिल ही होता है। उसका यह जीवन तपस्यामय होता है।

मृत्युके चौथे या पांचवें दिन सारी बिरादरी तथा अपने दूर दूरके सम्बन्धियोंको बुलवाकर, फूलोंको वह प्रवाहित करनेका आयोजन करता है। ये फूल भी गंगा या अन्य किसी तीर्थके जलमें प्रवाहित किये जाते हैं अथवा उनके अपने जातीय स्मशानमें, जो छोटा नागपुरमें है, ले जाकर चट्टानोंके खुदे हुए गड्ढोंमें डालकर ऊपरसे चट्टान पाटकर बन्द कर देते हैं। इन महास्मशानों को ये "ऊल स्मशान" कहते हैं। इस स्मशानके रक्षक होते हैं, जिनका वंश गत पेशा स्मशानका कर लेना ही है। इनके पास उस कुलकी ओरसे कुछ जागीरभी होती है जिसके ये

हकदार होते हैं। जिस फिर्केका यह 'महास्मशान' होता है उसी फिर्केका वह स्मशानमालिकभी हुआ करता है। वेनिजी बजनिया और नाई,पुरोहित वगैरहभी रखते हैं, जिसके द्वारा वह व्यक्तियोंसे करके अलावे नाई पुरोहितोंका और बाजे गाजेका दाम भी वसूल करता है। यह तीर्थके पण्डोंकी तरह पीढ़ी दर पीढ़ीका हिसाब रखता है। जिस कुलके लोग बहुत कम अपने पुर्खोंको महास्मशान ले जाते हैं, उनकी अस्थियां लाने वालोंसे वह उतना ही अधिक कर वसूलता है।

दसवें दिन श्राद्ध कर्म करनेके लिये ये अपने बन्धु बान्धवोंको, जो दूर रहते हैं, खबर भेजते हैं। इस अवसर पर उनके कुछ पुरोहित और कुछ नाई भी आते हैं। धोबीका होना भी जरूरी समझा जाता है। सभी उपस्थित व्यक्ति उस दिन उपवास करते हैं। घरके तमाम मिट्टीके बर्तन फेंक दिये जाते हैं। ओढ़ने और बिछानेके वस्त्र धुलानेके लिये धोबीके पास भेजे जाते हैं। सारी बिरादरीके लोगोंके हजामत बनवा लेनेके बाद मुखाग्नि करने वालेका सिर मुड़ाया जाता है। इसके बाद स्नान करके श्राद्धका अनुष्ठान होता है। स्त्रियां दूसरे घाटमें पर सम्मिलित स्नान करके मृत व्यक्तिके स्नानार्थ तेल और मुंह धोनेके लिये दतवनके सात टुकड़े रखती हैं। फिर मृत व्यक्ति तथा यमदूतोंको जलांजलि प्रदान कर आगे बढ़ती हैं। कुछ दूर जाकर नदी किनारे हरे दूबोंके पास पूर्व मुंह बैठ कर एक एक गुच्छा दूब स्पर्श कर कहती हैं "हम दुःख बहा कर छल लिये जा रही हैं, जो लोग बचे खुचे हैं वे सब इस दूर्वादलकी तरह अजर अमर और बर्धनशील रहें।" इस बाक्यको सभा तीन बार दुहरा कर, तब कतार बांधकर मृत व्यक्तिके घर आती हैं। पुरुषवर्ग स्त्रियोंसे पहले घर आते हैं। दरवाजेपर जलपात्रमें तुलसीदल रख छोड़ते हैं। स्नान कर लौटने वाले अपने ऊपर उसी जलका छींटा डाल कर अन्दर आते हैं।

इसके बाद हिन्दू विधिसे पुरोहित श्राद्धकर्म सम्पन्न कराके होम कराते हैं और अपनी दक्षिणा लेकर चल देते हैं। उनके चले जानेके बाद परिवारके तथा उपस्थित बिरादरीके सभी लोग मिलकर चावलोंकी बनी शराब या शर्बत पीते है और मृतात्माको अपने समस्त-पितरोंके साथ सम्मिलित करनेका आयोजन करते हैं। इन लोगोंमें भी श्राद्धका अधिकारी ज्येष्ठ पुत्र ही समझा जाता है। अभावमें अपने कुलका निकटतम सम्बन्धी भी कर सकता है। लड़कियोंको श्राद्ध करनेका अधिकार नहीं है पर नातीको है। विधवा स्त्री भी पतिका श्राद्ध कर सकती है।

मृत व्यक्तिको पितरोंके साथ शामिल करनेके लिये ये अपने उस पूजागृहमें, जिसमें केवल पितरोंकी पूजा होती है, एक मुर्गे की बलि चढ़ाते हैं। इसके साथ साथ धूप दीप, सिंदूर और अक्षत चढ़ाते हैं। पुजारीका काम वंशके ज्येष्ठ व्यक्तिको ही करना पड़ता है।

उसके बाद उसी मुर्गीके मांसको वे पकाते हैं। एक नये बर्तनमें भात भी बनाया जाता है। बनानेवाली स्त्री किसीसे बात नहीं करती और न किसीका स्पर्श ही करती है। वह खुद कुएंसे जल लाकर उसी जलका इस्तेमाल करती है। भोजन बन जानेपर दो त्रिकोन पत्तल बनाये जाते हैं और उसीमें वह अन्न तथा मांसका श्रेष्ठ हिस्सा जिगर पकाकर परोसा जाता है। दो दोनोंमें स्वच्छ जल भरकर उसी पितर-पूजा वाले कमरेमें ढककर रख दिया जाता है। एक पात्र तो समस्त पितरोंका आह्वान कर रखा जाता है और दूसरा मातृ कुलके पितरोंको दिया जाता है। इतना करनेके बाद, एक नयी टोकरीमें मिट्टीके दीयेमें मीठा तेल जलाकर रख दिया जाता है और हवा रोकनेके लिये पत्तेके हल्के ढक्कनसे ढांक दिया जाता है। एक नकली घोड़ा बनाया जाता है जो घसीटा जा सके, और तलवारोंके बदले कोई टूटा-फूटा अस्त्र शस्त्र लिया जाता है जो झनकारा जा सके। साथमें कुछ पयाल और दियासलाई तथा एक लोटेमें जल भरकर परिवारके लोग अपने सम्बन्धियोंके साथ कुछ रात जानेपर उस स्थानको जाते हैं जहां अर्थी रखी गयी थी और जहां दस दिनतक यमदूतोंको भोजन दिया गया था।

पहलेसे उस स्थानको लीप पोतकर साफ रखते हैं। वहीं एक छोटी सी खिलौना-नुमा झोपड़ी बना लेते हैं फिर जलधार देते हुए उस टोकरीके प्रदीप तथा नकली घोड़ा और शस्त्रोंकी झङ्कारके साथ झोपड़ीकी परिक्रमा करते हैं। इसके बाद उस झोपड़ीको जला देते हैं। जब वह झोपड़ी धधक उठती है तब उपस्थित जनता एक साथ गम्भीर स्वरसे चिल्ला उठती है, "अमुक व्यक्ति अबतक तुम मारे मारे फिरे। तुम्हें मक्खी मच्छड़ सताते हैं, तुम शीत गर्मीसे दुःखी हो, अब तो तुम्हारा यह डेरा जलकर भस्म हो गया। हम तुमको तुम्हारे प्यारे बच्चों सहित बुलाने आये हैं। अब अपने मकानको चलो।" इन वाक्योंको ये तीन बार दुहराते हैं। इसके बाद पूजनकर यमदूतोंको विदा कर देते हैं।

सबसे आगे वह टोकरीका प्रदीप रहता है, इसके बाद नकली घोड़ा, इसके बाद शस्त्रधारी व्यक्ति; ये लोग तीन बार रास्तेमें ठहरकर मृतात्माकी प्रतीक्षा करते हैं। इसके बाद वे सब घरकी राह लेते हैं। इन लोगोंकी धारणा है कि प्रदीप, पथ-प्रदीप है। उसीकी ज्योतिका अनुसरण कर आत्मा, अपने प्रिय घोड़े और अस्त्रोंको देखकर घर आता है। उनकी यह भी धारणा है कि उसी क्षणसे यमदूत उसकी निगरानी करना छोड़कर यमलोकको लौट जाते हैं।

इसके बाद वे इस मृतात्माको उस पितृपूजन घरके दरवाजेपर ले जाते है जहां उनके पारिवारिक पितरोंका पूजन हुआ करता है। पहलेसे वहांका दरवाजा अन्दरसे कुछ लोग बन्द कर बैठे रहते हैं। बाहर वाले लोग अन्दर वालोंसे दरवाजा खोलनेका अनुरोध करते हैं। भीतर वाले नाटकीय ढङ्गसे पूछते हैं—'आप लोग कहांसे आ रहे हैं? कौन हैं? किसको खोजते हैं? क्यों आये हैं?'

ये जवाबमें अपना नामधाम और कुल बताकर कहते हैं 'हम गङ्गा गये थे, दुःख बहाकर सुख लाये हैं। और यहीं आज ठहरना चाहते हैं, हमारे परिचित इस मकानमें फलां-फलां लोग हैं।' इतना सुन लेनेके बाद वे दरवाजा खोलते हैं। इसके बाद उस प्रदीपको, जिसके साथ ये मृतात्माको आह्वान कर अपने साथ लाते हैं; पूजन-स्थलमें रख देते हैं, और उस ढंके हुए पक्के मांस और चावलोंके द्वारा अपने यावत स्वर्गस्थ पितरोंका नाम ले लेकर भोजन परोसते हैं। यह एक तरहका मांस श्राद्ध है। भोजनके साथ ही ये पीनेके लिये एक तरहकी शराब देते हैं जिसे ये 'रस' कहते हैं।

इन सब क्रिया-कलापोंके बाद मृतक-भोज होता है। कहीं कहीं तो मृतक भोजमें भी आगत व्यक्तियोंको खिलाने-के लिये मांस बनता है, पर यह भोज देनेवालेकी इच्छापर निर्भर रहता है। इस अवसर पर बकरे और भेड़ोंका मांस बनाया जाता है। भोजनार्थियोंके कतारमें बैठ जानेके बाद पत्तलोंमें भोजन परोसा जाता है; जब सारी बिरादरी बैठ जाती है तब उनके बीचमें मुखाग्नि करनेवाला व्यक्ति दोनों हाथ जोड़कर साष्टांग लेटकर लुढ़कते हुए 'हरिहरि' चिल्लाता है। उसकी 'हरि' ध्वनिके साथ सभी 'हरिहरि' कह उठते हैं, तीन बार 'हरिहरि' करनेके बाद लोग उसे बांह पकड़कर उठा लेते हैं। इस क्रियाके बाद श्राद्ध शेष समझा जाता है और बिरादरी परोसी पत्तलें उठाने लगते हैं।

सम्भवतः अपने मृत पिताकृत जाने-अनजाने किये गये दोषोंकी क्षमा याचनाके निमित्त ही उसका पुत्र अन्तिम बार क्षमा मांगनेके लिये ईश्वर और जनता दोनोंके सामने दीनतापूर्वक लेट कर प्रार्थना करता है। इन लोगोंकी यह दृढ़ धारणा है कि आगत व्यक्तियोंकी इस क्षमासूचक 'हरि-ध्वनि' को सुनकर ही मृत व्यक्ति पृथ्वीके बन्धनोंसे मुक्त होकर ऊपर उर्ध्वलोकका यात्री बनता है।

वरदान

मां! हमको दो यह वरदान।
स्नेह - सिक्त हो यह संसार,
मानवता की मृदु झंकार—
विकसे बन अग-जग का प्यार,
रूढ़िवाद का हो पतझार,
गूंज उठे उन्मादी - गान।
मां! हमको दो यह वरदान ॥ १॥

कर्म - क्षेत्र हो मरकत - प्याला,
छलके जिसमें गौरव - हाला,
अकर्मण्यता तज, मतवाला—
जग धधकाये जीवन-ज्वाला,
दुखमें हो अक्षय मुस्कान।
मां! हमको दो यह वरदान ॥ २ ॥

चरम-लक्ष्यपर बढ़कर प्रतिक्षण,
भरें विश्वमें चिर-ज्योतित कण,
सुप्त त्याग, दृढ़ता का यौवन—
छिन्न-भिन्नकर मानव-बन्धन—
रच दे मां! आदर्श महान।
मां! हमको दो यह वरदान ॥ ३ ॥

—श्री सुरेशकुमार 'सुमन'।

क्या बुद्ध ईश्वर विरोधी थे

श्री दीनानाथ व्यास कविरत्न

महात्मा बुद्धके विषयमें बहुत कुछ स्पष्ट होने पर भी विद्वान प्रायः दो दलोंमें विभाजित पाये जाते हैं। एक दल उन्हें अनीश्वरवादी मानता है दूसरा दल ईश्वरवादी। महात्मा बुद्धके बाद उनके ही कुछ अनुयायी उन्हें अनीश्वरवादी सिद्ध करने पर उतारू हो गये। भिन्न मत होने का आधार जहां तक हमारा ख्याल है, उन परिस्थितियों पर आश्रित है जिनके कारण बौद्ध मतका प्रादुर्भाव हुआ। महात्मा बुद्धके बचपनमें समस्त भारतमें पशु-वधकी प्रथा जोरों पर प्रचलित थी। पुष्टिके लिये यज्ञकराने वाले ब्राह्मण वेद मन्त्रोंका सहारा लेते थे। वेद मन्त्रोंके अर्थ ब्राह्मणोंने अपने अनुकूल लगा लिये थे, जिससे वे पशु-वधका पूर्णतया समर्थन कर सकें। इसके अलावा उस कालमें जनता वेदोंको ईश्वरीय वाक्य समझती और मानती थी। इसलिये जनता वेदानुमोदित पशु-बलिको ईश्वरीय आज्ञा ही मानती थी। स्पष्ट यह है कि उस समय पशु-बलि ईश्वरके नाम पर होती थी। अहिंसाके अवतार बुद्ध भला यह अन्याय कैसे सहन कर सकते थे। फलतः उन्होंने ब्राह्मणोंके इस अन्यायका भयङ्कर विरोध किया। विरोध करते हुए भी द्रष्टव्य यह है कि उन्होंने वेद और ईश्वरका विरोध नहीं किया। उन्होंने वेदकी प्रामाणिकता पर उंगली नहीं उठायी। बुद्धने सिद्ध किया कि जिस ईश्वरके नाम पर ये ब्राह्मण पशुबलि करते हैं उस ईश्वरकी वास्तविक सत्ता और उसके स्वरूपसे ये बिल्कुल ही अपरिचित हैं। उन्होंने इसीलिये "वास्तविक ब्राह्मण कौन है?" इस पर विशेष प्रकाश डाला है। बुद्धके निर्वाणके बाद उनके अनुयायियोंने बुद्धके ब्राह्मण-विरोधको उसी दृष्टिसे देखा जैसे बुद्ध ब्राह्मण तथा ईश्वरके विरोधी हों। पर वास्तविक बात यह कदापि नहीं थी। बुद्धने कभी भी ईश्वरीय सत्ताके अस्तित्वसे इन्कार नहीं किया[1]।

यहां हम ऐसे प्रमाण बुद्ध-साहित्यसे उद्धृत करते हैं जिनसे प्रमाणित होगा कि बुद्ध ईश्वर तथा ईश्वरीय सत्ताके विरोधी न थे। बुद्ध भगवानने स्वयं अपनेको कई स्थलों पर ब्राह्मण कहा है और ब्राह्मण शब्दकी व्याख्या भी की है—

"जिसका हृदय पानीमें कमलके पुष्पके सदृश तथा सूचिकाके अग्र भाग पर स्थित राईके कणवत् पापमें आसक्त नहीं होता वही ब्राह्मण है।" १

"जिसने पाप और पुण्य दोनोंका परित्याग कर दिया है और विषयानुरागी तृष्णाका भी नाश कर दिया है मैं उसीको ब्राह्मण मानता हूं।" २

"ब्राह्मण वही है जो किसी भी वस्तुको चाहे वह पीछे, सामने या मध्यमें हो अपनी नहीं कहता और जो निर्धन है और संसारके रागसे रहित है!" ३

जहां बुद्धने ब्राह्मणोंको फटकारा है वहां भी उन्होंने वेद और ईश्वरकी प्रामाणिकता ही सिद्ध की है। महात्मा बुद्धके "तविग्ग वाच्छ गोत्त सूत्त" में "तविग्ग" शब्द व्यवहृत हुआ है जिसका अर्थ होता है "वेदज्ञ" ४—अर्थात बुद्ध अपनेको वेदज्ञ मानते थे। उपरोक्त "सूत्त"में वासत्थ नामक एक ब्राह्मणसे बुद्धका वार्तालाप वर्णित है उसे हम यहां देकर पाठकोंको स्पष्ट करादेना चाहते हैं कि बुद्ध ईश्वर विरोधी नहीं थे। यह वार्तालाप बहुत ही शिक्षात्मक, मनोरंजक एवं बुद्धके ईश्वर विषयक विचारोंको स्पष्ट कर देने वाला है। ५

1—देखिये—Poussin's—Way to Nirvana. Rhys David—Buddhism.

१—देखिये—

वारि पोक्खर पत्तं व आरग्गेरिव सासपो,
यो न लिम्पति कामेसु तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम्।

धम्मपद अध्याय २६ श्लोक १९

२—देखिये—

मोघ पुजं च पापं च उभो संकं उपच्चगा
असोकं विरजं सुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम्।

धम्मपद अध्याय २६ श्लोक ३०

३—देखिये—

धम्मपद अध्याय २६ श्लोक ३९—सम्पादित मैक्समूलर

४—देखिये—Introduction to "Tavigga Suta by Rhys David तथा भारतवर्षका इतिहास—बुद्ध काल रामदेव आचार्य।

५—देखिये—"Tavigga Suta" by Rhys David in The Sacred Books of the East Vol. XI Chapter I.

"वासत्थ—हे गौतम! विभिन्न ब्राह्मणोंके विभिन्न मार्ग हैं। ब्राह्मण अध्वर्यु, तैत्तरीय, छन्दश, छान्दोग्य, ब्रह्मचारी आदि मार्गोंमें विभक्त है। किन्तु इन सबके उपाय भिन्न भिन्न होते हुए भी अन्तमें इन सबके द्वारा फल एक ही होता है। वह यह कि मनुष्य ब्रह्मसे मिल जाता है। जिस प्रकार किसी गांवके निकट अनेक मार्ग होते हैं किन्तु गांवमें पहुंच कर वे सब एक ही हो जाते हैं। उसी प्रकार अध्वर्यु, तैत्तरीय, छन्दश, छान्दोग्य, ब्रह्मचारी आदि ब्राह्मण भी अलग अलग मार्ग बताते हुए एक ही ब्रह्मकी ओर ले जाते हैं।"

गौतम—क्या वासत्थ! तुम्हारा ख्याल है कि ये सब मार्ग सत्यमार्ग हैं?

वासत्थ—मेरा यही विचार है।

गौतम—किन्तु वासत्थ! क्या कोई त्रयी विद्यामें निपुण ऐसा ब्राह्मण भी है जिसने ईश्वरके समक्ष खड़े होकर उसके दर्शन किये हों?

वासत्थ—कोई नहीं।

गौतम—वासत्थ! क्या इन ब्राह्मणोंकी सातवीं पीढ़ी तकके किसी गुरुने ईश्वरके दर्शन अपनी आंखोंसे किये हैं?

वासत्थ—सचमुच नहीं।

गौतम—अच्छा, क्या त्रयी विद्याके विद्वान प्राचीन ऋषियोंने जिन्हें छन्द ज्ञान हुआ था या जिन्होंने छन्दोंकी व्याख्याकी थी, जिनके द्वारा उच्चरित वाक्योंको आज तकके ब्राह्मण भी बिना समझे बूझे रटे चले जा रहे हैं, इन अष्टक वामक, वामदेव, विश्वामित्र, जमदग्नि, अङ्गिरस, भारद्वाज, वसिष्ठ, कश्यप, भृगु आदि ऋषियोंमेंसे भी कभी किसीने कहा है—"कि हमने ब्रह्मका साक्षात्कार किया है, हमने उसे देखा है और वह अमुक स्थान पर रहता है?"

वासत्थ—नहीं, ऐसा तो नहीं कहा।

गौतम—तो क्या आजकलके त्रयी विद्या जानने वाले, ब्राह्मणोंका दावा यह न हुआ कि "हम जिसे नहीं जानते, जिसका साक्षात्कार नहीं किया, उससे मिलनेका मार्ग लोगोंको हम बता सकते हैं, वह मार्ग जिसका अनुसरण करनेसे ब्रह्मके साथ एकता हो सकती है"—इसका क्या यह मतलब नहीं हुआ कि उन ब्राह्मणोंका यह दावा सरासर मूर्खता पूर्ण है?

वासत्थ—हां, हां, उन ब्राह्मणोंका यह दावा मूर्खतापूर्ण है।

गौतम—वासत्थ! जिस प्रकार एक दूसरेका हाथ पकड़ कर चार अन्धे मार्ग ग्रहण करना चाहते हों, किन्तु चारोंके अन्धे होनेके कारण मार्ग पाना दुर्लभ हो, असम्भव हो, उसी प्रकार क्या इन ब्राह्मणोंका हाल नहीं है, जो स्वयं कुछ समझे बिना ही किसी अज्ञेय मार्गका उपदेश किया करते हैं।

वासत्थ—अवश्य, यही बात है।

गौतम—अच्छा वासत्थ! एक मनुष्य कहता है कि मैं इस भूमि पर अत्यन्त दीर्घकालसे एक अत्यन्त सुन्दर रमणीसे प्रेम करता हूँ। तो लोग उससे पूछेंगे—"क्या तुमको यह मालूम है कि वह रमणी किस देश की है? क्या किसी राजाकी कन्या है या कुलीनकी लड़की है? या किसी ब्राह्मण की कन्या है या किसी व्यभिचारीकी पुत्री है या शूद्रा है? अगर वह उत्तर दे कि "नहीं" तो लोग फिर उससे दरयाफ्त करेंगे—"तो क्या तुम्हें यह पता है कि वह स्त्री किस कद की है, उसका जिस्म कैसा है? उसका रंग कैसा है? और वह किस गांवमें रहती है?" वह उत्तर देता है "नहीं" तब लोग फिर उससे आश्चर्यके साथ पूछेंगे—"फिर भी तुम उसे प्यार करते हो?" इस पर वह उत्तर देगा "हां"। तो हे वासत्थ! यह बताओ कि उस व्यक्तिकी यह बात मूर्खता-पूर्ण है कि नहीं?

वासत्थ—अवश्य है।

गौतम—वासत्थ! यदि कोई मनुष्य चौराहे पर खड़ा होकर जीना बनाने लगे और कहे कि यह जीना एक मकान की छत तक जायेगा, तो लोग उससे पूछेंगे कि "दोस्त! वह मकान कहां है वह किस दशामें है? वह छोटा है या बड़ा?" वह उत्तर देगा "मुझे मालूम नहीं।" फिर लोग पूछेंगे—"तो तुम एक ऐसे मकानपर चढ़नेके लिये सीढ़ियां बना रहे हो जिसे तुम जानते तक नहीं और जो तुमको दिखाई तक भी नहीं दे रहा।" वह उत्तर देगा—"हां"। तो क्या उसकी यह बात मूर्खतापूर्ण न होगी वासत्थ!

वासत्थ—अवश्य होगी।

गौतम—वासत्थ! एक और उदाहरण लो। कल्पना करो कि अचिरावती नदी पूर जा रही है। एक किनारेपर एक ऐसा मनुष्य खड़ा है जिसे दूसरे किनारेपर जाना है। यदि वह व्यक्ति यह आशा करे, प्रार्थना करे या डांट कर कहे कि "ऐ सामनेके किनारे! तू इसपार आ जा!" क्या उसके इस प्रकार डांटने, आज्ञा करने या प्रार्थना करनेसे सामनेका किनारा उसकी ओर चला आयगा?

वासत्थ—कभी नहीं।

गौतम तो वासत्थ! बिलकुल इसी प्रकार त्रयी विद्यामें निष्णात एक विद्वान ब्राह्मण उन गुणोंको अपने अन्दर कार्यान्वित नहीं करता और अब्राह्मणवत् आचरण करता है। वह

ब्राह्मण अपने मुंहसे कहता है—"मैं इन्द्र, वरुण प्रजापति, ब्रह्मा और महेशको बुलाता हूं। तो क्या उसके पास वे आ जायंगे। यदि इस प्रकारके ब्राह्मण धर्मका नाम लेकर प्रार्थना करके चिल्लाते हुए कहें कि मृत्युके उपरान्त हम मुक्त होकर ईश्वरमें समा जायेंगे तो क्या इनकी यह इच्छा पूर्ण हो सकती है? और देखो वासत्थ! एक मनुष्य अचिरावती नदीके उस पार खड़ा होकर अपने हाथ, पांव पीठादि मजबूतीसे बांधकर उस किनारे पड़ रहे और सोच ले कि वह इसपार पहुंच जायगा तो क्या ऐसा हो जायेगा?

वासत्थ-कभी नहीं भगवन!

गौतम—वासत्थ! पांच वस्तुएं ऐसी हैं जो लोभकी ओर ढकलने वाली जञ्जीरें हैं।

वासत्थ—प्रभो! ये पांच क्या हैं?

गौतम—आंख, कान, नाक, त्वचा और जिह्वा। ये और इनके द्वारा उत्पन्न होनेवाली अभीष्ट वस्तुएं ही लोभकी ओर ले जाती हैं। ये ही पांच प्रकारके आनन्द हैं जो मनुष्यको बन्धनमें डालने वाले हैं। ये त्रयी विद्या निष्णात ब्राह्मण भी इन्हीं पांचों बन्धनोंमें बंधे हुए हैं। यद्यपि वे इनके खतरोंको नहीं जानते पर इनमें लिप्त हैं। प्रिय वासत्थ! क्या यह कभी सम्भव है कि अचिरावतीके उस पार स्थित व्यक्ति इस पार आनेकी इच्छासे अपना सिर लपेट ले और वहीं सो जाय। फिर वह सोचे कि इस प्रकारके आचरणसे वह इसपार आ जायेगा। तो क्या वह सचमुच आ जायेगा?

वासत्थ—कभी नहीं प्रभो!

गौतम—इसी प्रकार वासत्थ! मनुष्यके मार्गमें पांच बाधाएं हैं। ये बाधाएं काम, ईर्ष्या, आलस्य, अहङ्कार और सन्देह हैं। त्रयी विद्या ये निपुण ब्राह्मण भी इन बाधाओं में जकड़े और उलझे हुए हैं। ये ब्राह्मणवत् आचरण न करके क्या कभी ईश्वरमें तदाकार होनेका दावा कर सकते हैं। हे वासत्थ! तुम स्वयं निष्णात ब्राह्मण हो बोलो तो, क्या ईश्वरके पास धन और स्त्रियां हैं?

नहीं, देव!

वह क्रोधपूर्ण है या क्रोधरहित?

क्रोधरहित!

उसका अन्तःकरण मलिन है या पवित्र!

पवित्र!

वह स्वयं अपना स्वामी है या नहीं?

है।

क्या वासत्थ! इन ब्राह्मणोंके पास धन और स्त्रियां नहीं? हैं।

ये क्रोधी हैं या अक्रोधी?

क्रोधी।

ये ईर्ष्यालु हैं या ईर्ष्या रहित?

ईर्ष्यालु!

इनका अन्तःकरण क्या पवित्र है?

नहीं प्रभो! अपवित्र!

ये स्वयं अपने स्वामी हैं या नहीं?

नहीं!

तो वासत्थ! जब तुम स्वयं ही ब्रह्म और ब्राह्मणमें इतना अन्तर बता रहे हो फिर ये दोनों एक कैसे हो सकते हैं?

वासत्थ—कभी नहीं भगवन्!

गौतम—तो इसका मतलब तो यही हुआ कि ये ब्राह्मण मलिन-हृदय, वासनाग्रस्त हैं जब कि ब्रह्म पवित्र और वासना रहित है। अतः मृत्युके बाद ये ब्राह्मण उस ब्रह्म (ईश्वर) से मिल नहीं सकते। अर्थात् हे वासत्थ! जब ये आचार-हीन ब्राह्मण वेदका पाठ करते हैं तो उनके हृदयमें यह धारणा रहती है कि इसके द्वारा हमें मोक्ष प्राप्त हो जायेगा किन्तु वे धोखेमें रहते हैं। अतः उनकी यह विद्या मरुभूमिके सदृश, मार्गहीन निर्जन वनके समान तथा विनाशकारिणी है?

युवक वासत्थ—अवश्य!

वासत्थ—मुझे बताया गया है कि श्रवण गौतम ही ईश्वरसे साम्य स्थापित करनेका मार्ग जानता है।

गौतम—मानसाकत नगर यहांसे निकट है न?

वासत्थ—बहुत निकट है।

गौतम—अच्छा तो वासत्थ! एक मनुष्य मानसाकतमें जन्मा और वहीं रहने लगा। उससे यदि कोई पूछे कि मानसाकतका कौनसा मार्ग है तो क्या उसे उत्तर देनेमें कोई कठिनाई होगी?

वासत्थ-कभी नहीं!

यह कहानी तो लम्बी है क्योंकि इसके बाद तथागतने वासत्थको ब्रह्म प्राप्तिके साधन बताये हैं। किन्तु उपरोक्त कहानीके अंशको पढ़ लेनेके बाद यह कह देना अन्याय है कि भगवान गौतम ईश्वरके विरोधी थे। वे तत्कालीन ब्राह्मणों के पाखण्डके विरोधी थे। जो महान पुरुष अपनेको ब्राह्मण और ईश्वर प्राप्तिके मार्गोंका अधिकारी जानकार कहे वह ईश्वर विरोधी कैसे हो सकता है।

सोवियट आर्मीनिया

श्री पं० नन्दकिशोर तिवारी

पिछले तेईस वर्षोंमें आर्मीनियाने अपने राष्ट्रीय उद्योगका आश्चर्यजनक विकास किया है। खेतीके लिये वैज्ञानिक उपायों और साधनोंका व्यवहार कर उसने देशकी पैदावारमें भी कम उन्नति नहीं की है। इनके अतिरिक्त इस थोड़ी अवधिमें उसने जिस गतिसे अपना सांस्कृतिक विकास किया है, उसकी तुलना शायद ही अन्यत्र हो सके।

रूसपर किये गये जर्मन आक्रमणके द्वारा आर्मीनियाकी इस विकास-प्रगतिमें बाधा अवश्य पड़ी, पर यह एक राष्ट्रीय सङ्कट और अन्तर्राष्ट्रीय विवशता थी। सोवियट रूसपर इस जर्मन प्रहारकी भीषणताका अनुभव आर्मीनियाकी जनताने भलीभांति किया और शीघ्र ही उन्होंने अपनी सारी शक्ति सोवियट रूसकी युद्ध-प्रगति और सञ्चालनमें तथा विजय प्राप्त करनेके प्रयत्नमें लगा दी। युद्धके प्रारम्भसे आजतक आर्मीनियाकी जनता रूसी जनताके साथ कन्धेसे कन्धा मिलाकर जर्मनीके विरुद्ध लड़ रही है।

सहस्त्रोंकी संख्यामें आर्मीनियन सैनिकोंको इस युद्धमें वीरताके पुरस्कार मिले हैं और उनकी छातियां वीरतासे प्राप्त हुए सोवियट सैनिक तमगोंसे भर गयी हैं। रूसी सेनाके प्रधान सेनापतियों (जेनरलों) में आज कमसे कम तीस आर्मीनियन जेनरल हैं। बीससे अधिक आर्मीनियन प्राइवेटों, अफसरों तथा जनरलोंको 'सोवियट यूनियन वीर सैनिक' की महान पदवी मिली है। ८९ वीं आर्मीनियन राइफल डिवीजनने तो युद्धमें इतनी बीरता प्रदर्शित की कि मार्शल स्टालिनने अपनी विशेष आज्ञासे उसका नाम बदलकर "टाइगर डिवीजन" कर दिया है।

आर्मीनिया पहले कृषि-प्रधान देश था। सोवियट शासनके अन्तर्गत वह कृषि प्रधानके अतिरिक्त उद्योग-प्रधान देश भी हो गया है। सन् १९१३ में आर्मीनियामें जहां तैयार मालका औसत २४ प्रतिशत था वहां आज उसका अनुपात बढ़कर ८२ प्रतिशत हो गया हैं। रूस-जर्मन युद्धके प्रारम्भसे आर्मीनियाके उद्योगके कारखानोंमें पहलेकी अपेक्षा और भी अधिक और भिन्न-भिन्न प्रकारके माल बनने लगे हैं, जिनकी संख्या २९० है। उत्पादनमें श्रमिकों, इंजीनियरों और शिल्पियोंका इतना सुन्दर पारस्परिक सहयोग है तथा ये तीनों ही सम्मिलित रूपसे इतना अधिक परिश्रम कर रहे हैं कि सन् १९४३ के प्रारम्भिक १० महीनोंमेंउन्होंने सरकारी योजनाकी पूर्ति १०४ प्रतिशत उत्पादनसे की है। खाद्य उत्पन्न करनेवाले श्रमिकोंने तो सरकारी योजनाकी पूर्ति ११७ प्रतिशतसे की है अर्थात् जिस अवधिमें सरकारी योजनाके अनुसार १०० उत्पादन करना था उस अवधिमें उन्होने १०० के बदले ११७ उत्पादन किया है।

आर्मीनियाके सोवियट शासनका २३ वां वार्षिकोत्सव मनाते समय कृषकोंने सामूहिक कृषि सम्बन्धी सफलताका जो ब्योरा दिया, वह सचमुच आश्चर्यजनक है। जब हम उस ब्योरेका भारत जैसे कृषि प्रधान देशके उत्पादनसे अथवा कृषिके साधनोंसे तुलना करते हैं तो देशकी दासताका नङ्गा चित्र हमारी आंखोंके सामने आ जाता है। आर्मीनियाकी भूमि जो सूखी जलवायुके कारण पहले उपजाऊ नहीं थी, वह आज सिंचाई और वैज्ञानिक साधनोंकी सहायतासे बहुत ही अधिक उपजाऊ हो गयी है। श्रमिकों और सामूहिक कृषकोंके उद्योगसे सिंचाई सम्बन्धी बहुत सी बड़ी छोटी योजनाएं कार्यान्वित हुई हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि सन् १९३९ की अपेक्षा आज १½ गुना अधिक भूमि कृषिके काममें आ रही है।

युद्धकी अवधिके भीतर गल्लेकी खेती वाली भूमि ½ गुना अधिक बढ़ी है। आलू, चुकन्दर तथा ईखवाले खेतोंका क्षेत्रफल दुगना बढ़ गया है। खरबूजा और तरकारीवाले खेतोंमें जहां ४० प्रतिशतकी वृद्धि हुई है, वहां तम्बाकू वाले खेतोंका क्षेत्रफल ६० प्रतिशत बढ़ाया गया है। सन् १९४० से सन् १९४३ तक आर्मीनियामें अंगूर तथा अन्य फलोंकी खेतीके लिये १४ प्रतिशत भूमिकी वृद्धि हुई है।

इस युद्धमें लाल सेनाकी जीतके बढ़ते हुए क्रमसे आर्मीनिया निवासियोंको बहुत ही प्रोत्साहन तथा प्रेरणा मिली है। इसका ज्वलन्त उदाहरण इस बातसे मिलता है कि हालमें ही आर्मीनियाके आगिन और गोरिस जिलोंके सामूहिक किसानोंने अपने स्टाकसे लाल सेनाके प्रधानाध्यक्षको ९८० टन गल्ला दिया था।

सिंचाईके लिये आज आर्मीनियामें नयी-नयी नहरें बनायी जा रही हैं। इन नहरोंके अतिरिक्त फलोंकी खेती तथा

भोजन तैयार करनेवाली फैक्टरियोंकी वृद्धि भी बड़ी तेजीसे की जा रही है। इस समय सिंचाईके चार नहर बन रहे हैं जिनमें दो तो लगभग तैयार है। एक नहरके निर्माणका जो कार्य दो महीनोंमें सम्पन्न हो सकता था, उसे श्रमिकों-ने केवल ३९ दिनोंमें ही पूरा कर दिया। इसका कारण है, वहांके मजदूर काम करते हुए यह भावना रखते हैं कि काम हमारा है और अपने परिश्रमके द्वारा ही हम अपने राष्ट्रका तथा अपना कल्याण कर सकेंगे। वास्तवमें वे राष्ट्रके अथवा अपने स्वार्थमें किसी प्रकारका भेद-भाव नहीं रखते।

सन् १९१८ ई० में आर्मीनियामें केवल १६६ स्कूल थे। इन स्कूलोंमें उस समय १८,००० विद्यार्थी शिक्षा पाते थे। इस संख्याके विपरीत आज वहां १,००० स्कूल हैं और उनमें २५०,००० विद्यार्थी शिक्षा पा रहे हैं। इन स्कूलोंमें उद्योग सम्बन्धी 'स्कूल' 'कालेजों' तथा युवकोंके स्कूलोंकी संख्या सम्मिलित नहीं है, जिनमें २०,००० विद्यार्थी आज शिक्षा पा रहे हैं। आर्मीनियामें आज केवल वैज्ञानिक अनुसन्धान-के लिये ४० से भी अधिक संस्थायें मौजूद हैं जिनमें यूनाइ-टेड सोशलिस्ट सोवियट रूसके एकेडमी-आफ-सायन्सके पांच सदस्य १०० प्रोफेसर और विज्ञानके डाक्टर तथा १७० से अधिक एम० एस०सी अध्यापन कार्य करते हैं।

आर्मीनिया निवासी अपने देशमें एक वैज्ञानिक केन्द्र देखनेके लिये बहुत उत्सुक थे। उस अभावकी पूर्तिके लिये आर्मीनियामें एकेडमी-आफ-सायन्स नामक संस्था स्थापित हुई। युद्धकी इस भीषणतामें जब रूसी रणक्षेत्रमें रक्तकी धारायें बह रही हैं और जब रूस मृत्युकी विकटताके साथ जीवनकी कटुताका भी बड़े ही साहस और वीरतासे सामना कर रहा है, इस संस्थाका स्थापित होना सोवियट रूसके विज्ञान-प्रेमका महान् प्रयास है। इससे ब्रिटेनको शिक्षा मिलनी चाहिये जो भारतमें शिक्षा अथवा अन्य उपयोगी कार्योंमें थोड़ी सी भी उन्नति करनेके लिये युद्धका बहाना उपस्थित करता है।

जिन परिवारोंके सदस्य युद्धके मोर्चोंपर लड़ रहे अथवा अन्य उपयोगी कार्योंमें भाग ले रहे हैं, उनकी हर तरहकी देख-रेख सरकार करती हैं। जनता भी इस कार्यमें उनकी हर प्रकारकी सहायता करती है। रूस-जर्मन युद्धके प्रारम्भसे सन् १९४३ तक केवल पेनशनों और भत्तोंमें २२ करोड़ रूबलसे अधिक आर्मीनियाके सैनिक परिवारोंको दिये गये हैं।

ज्योंही रूसपर जर्मनीने आक्रमण किया, संसारके भिन्न-भिन्न देशोंमें रहनेवाले आर्मीनियन देशकी इस संकटपूर्ण स्थितिका सामना करनेके लिये तैयार हो गये। अमरीका, इजिप्ट, सीरिया; लेबनान, ईरान भारत फिलिस्तीन आदि देशोंके रहनेवाले आर्मीनिया निवासियों-ने अपने देशकी रक्षा करनेके लिये लाल सेनाके सहायतार्थ अपनी स्वतन्त्र कमेटियां बनायी हैं। इन कमेटियोंने डेविड सासुंस्की टैंक कालम निर्माण करनेके लिये पर्याप्त अर्थ-संग्रह किया है।

अरमखावा-तुर्यन एक प्रसिद्ध आर्मीनियन संगीतज्ञ और कवि हैं। पिछले आठ वर्षोंमें आपने अपनी महान प्रतिभासे देशकी बड़ी ही सेवा की है। मास्कोकी कन्जर्वेटरीमें राख्मानिनोव और टानियेव जैसे कलाकारोंके साथ इनकी भी स्फटिक प्रतिभा रखी जानेवाली है। 'स्टालिन' पर इनकी कविताके लिये सोवियट यूनियनका सर्वोच्च पुरस्कार 'आर्डर आफ लेनिन' मिला। इनकी यह कविता आर्मीनि-याकी ग्राम्य-भाषामें है।
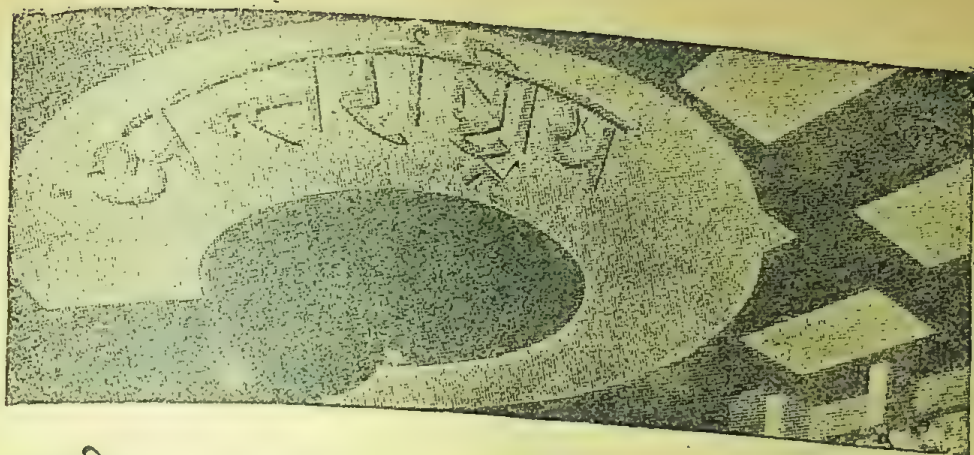
यह तानाशाही—

जिस किसी देशकी शासन व्यवस्था किसी विदेशी सत्ता द्वारा प्रभावित की जा सकती है, उसका राष्ट्रीय विकास अपनी स्वाभाविक गतिसे नहीं हो पाता। ऐसे अभागे देशोंमें मिस्र भी एक है। अभी गत मासकी घटना है। शाह फारूखने मिस्रके प्रधान मन्त्री नहसपाशाको मनमाने ढङ्गसे बरखास्त कर दिया। इस बरखास्तगीके पीछे क्या रहस्य है, किन कारणों और स्थितियोंने शाह-फारूखको इस तरहकी तानाशाही पर उतर आनेको प्रोत्साहित किया, हम नहीं जानते। विदेशी समाचार भेजने वाली संवाद एजेंसी रायटर इन बातों पर जरा भी प्रकाश नहीं डालती। अथवा यह कहना चाहिये कि सेंसर-की कैंची बड़ी तेजीसे चल रही है। कट छंट कर जो समाचार आये हैं उनसे इस रहस्यको समझनेमें किसी तरहकी मदद नहीं मिलती।

नहसपाशाको बरखास्त करनेका शाह फारूखका निर्णय उतना ही रहस्यपूर्ण और आश्चर्यजनक प्रतीत होता है जितना फरवरी १९४४में वफद पार्टीको मन्त्रिमण्डल बनानेके लिये आमन्त्रित करनेका निर्णय था। किन्तु इन दोनों घटनाओंका रहस्य समझनेके लिये एक ही स्थान पर पहुंचने-की आवश्यकता है। ब्रिटिश स्वार्थ ही इन दोनों घटनाओं —नियुक्ति और बरखास्तगी-की कुंजी है। मध्यपूर्व और भूमध्य सागरकी उस समय जैसी विकट सामरिक स्थिति थी उसे देखते हुए यह आवश्यक था कि मिस्र देशमें ऐसे व्यक्ति और दलके हाथमें शासनकी बागडोर रहे जिनके पीछे देश स्वेच्छासे चलनेको तैयार हो। अतः निर्वासित वफद पार्टीको आदरके साथ वापस बुलाया गया और नहसपाशासे मन्त्रिमण्डल बनानेका अनुरोध किया गया। तत्कालीन युद्ध स्थितिका सामना करनेके लिये वफद पार्टी और उसके नेताके सहयोगकी आवश्यकता थी पर आज ठीक इसके प्रतिकूल स्थिति है। युद्धस्थिति आज ब्रिटिश सरकारके अनुकूल है। युद्ध समाप्त होनेमें अब अधिक विलम्ब नहीं है। शान्ति-सम्मेलनमें नहसपाशा अंगरेजोंकी कठिनाइयां बढ़ायेंगे। अतः अब ऐसे व्यक्तिके हाथमें मिस्रकी बागडोर होनी चाहिये जो अंगरेजोंका सहायक रहे।

नहसपाशाका २० महीनेका शासनकाल बड़ा ही महत्वपूर्ण और मिस्रकी राष्ट्रीय एकताको बढ़ाने वाला हुआ है। मन्त्रिमण्डलका निर्माण करनेके बाद उनका सर्व-प्रथम कार्य साधारण निर्वाचनकी घोषणा था। निर्वाचनमें उनकी पार्टीने मिस्रकी राष्ट्रीय पार्लमेण्टकी २६४ सीटोंमें २१६ पर अधिकार जमाया। मित्रराष्ट्रोंके उद्देश्यसे नहसपाशाको पूर्णसहानुभूति है और उन्होंने मित्रराष्ट्रोंकी युद्ध सम्बन्धी नीतिको कार्यमें परिणत करनेमें अपने व्यक्तित्व और अपनी पार्टीके प्रभावसे पूरा पूरा काम लिया। किन्तु मध्यपूर्व सम्बन्धी ब्रिटिश नीतिसे भी उनकी ऐसीही सहानुभूति है, यह नहीं कहा जा सकता। यही कारण है कि अरब राष्ट्रोंमें परस्पर ऐक्य और मैत्री सम्बन्ध स्थापित करनेके लिये नहसपाशाने अपना कदम आगे बढ़ाया। लेबनान संकटके समय उन्होंने जिस साहस और दृढ़ताका परिचय दिया था ब्रिटिश कूटनीतिज्ञोंको उसीसे इस बातका अच्छी तरह आभास मिल गया कि शान्तिकालमें मध्य-पूर्वमें उनको स्वेच्छानुकूल खुल खेलनेका मौका तब तक नहीं मिल सकेगा जबतक नहसपाशा जैसे व्यक्तिके हाथमें मिस्र-का शासनसूत्र रहेगा। अरब-संसारमें-फिलस्तीन, ट्रांस जोर्डा-निया, सीरिया, लेबनान, ईराक, मिस्र और साऊदी अरेबिया —में नहसपाशाका प्रभाव बढ़ रहा था। आर्थिक दृष्टिसे इन देशोंकी जनता भयंकर गरीबीका शिकार बनी हुई है। इन देशोंकी जनता नहसपाशाको, उद्धारकके रूपमें, आशा

भरी दृष्टिसे अपना नेता समझती है। फिलिस्तीनके अरबों-के अधिकारों पर नहसपाशाको काफी दिलचस्पी लेते देखा जा रहा है। सूडानको दृष्टिगत रख कर युद्धके बाद मिस्रसे ब्रिटिश सेनाको हटानेकी भी चर्चा चल पड़ी है।

इन सब बातोंको और मिस्रका खतरा दूर हो जाते देख मिस्रमें दुर्बल सरकार ब्रिटेनकी चर्चिल सरकारके लिये अधिक हितकर है। ऐसी अवस्थामें यदि ब्रिटिश कूटनीतिने शाह फारूखकी उच्चाभिलाषा और महत्त्वाकांक्षासे लाभ उठाया हो तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। नहसपाशाकी बढ़ती हुई प्रतिष्ठा और प्रभावको यदि युद्धकालमें ही दबा दिया जा सके तो आगे चलकर मध्यपूर्वमें ब्रिटिश सरकारको मनमानी करनेकी आजादी मिलेगी। यही कारण है कि मिस्रमें जिन पार्टियोंका कोई प्रभाव नहीं है, और जिनका अत्यन्त सूक्ष्म अल्पमत है उनके द्वारा राष्ट्रकी सर्वाधिक शक्तिशाली और प्रभावशाली वफ्द पार्टीके खिलाफ लगाये गये अभियोगोंको नहसपाशाकी बर्खास्तगीका बहाना बनाया गया है। कहा जाता है कि शाह फारूखने इसलिये नहसपाशाको बर्खास्त कर दिया कि उन्होंने (नहस पाशाने) अखिल अरब कांग्रेसके निर्णयोंसे शाहको सूचित नहीं रखा और उनको बताये बिना ही कांग्रेसके निर्णयोंको प्रकाशमें ला दिया। किन्तु राजनीतिका विद्यार्थी यह सहज ही समझ सकता है कि वफ्द पार्टी जैसी लोकमान्य पार्टीको इतनीसी बातके लिये कदापि इस प्रकार ठुकराया नहीं जा सकता था और शाह फारूखको इस तरहका काम करनेका कदापि साहस न होता यदि अल्पसंख्यक-दलोंके अतिरिक्त किसी प्रबल शक्तिका संरक्षण उसे प्राप्त न होता। यह प्रबल शक्ति कौन हो सकती है, बतानेकी आवश्यकता नहीं।

इस जगह एक खास बातकी ओर ध्यान देना आवश्यक है। नहसपाशाकी बर्खास्तगीके समाचारके साथ इस समाचारको भी बड़ी प्रधानता दी गयी है कि नहसपाशाकी बर्खास्तगीके समय ब्रिटिश राजदूत लार्ड किलियर्न दक्षिण अफ्रीकामें छुट्टियां मना रहे थे। स्पष्टतः यह समाचार इस बातका संकेत करना चाहता है कि इस बर्खास्तगीमें उनका कोई हाथ नहीं है। यह सफाई, बिना मांगे, देनेकी आवश्यकता क्यों प्रतीत हुई? क्या चोरकी दाढ़ीमें तिनका वाली बात नहीं है? मिस्रमें संकट देख शाह फारूखने ब्रिटिश सरकारके कहनेसे ही तत्कालीन सादिष्ट सरकारको बरखास्त करके नहसपाशाकी सरकार बनायी थी। प्रत्यक्षमें नहस पाशाकी सरकार और ब्रिटिश सरकारके बीचमें पूर्ण सद्भाव और सहानुभूति थी। ऐसी अवस्थामें शाह फारूख जैसे दुर्बल शासकको कभी यह हिम्मत न हो सकती थी कि वे अंगरेजोंकी परवाह न करके नहस पाशाको अपनी ही इच्छासे बरखास्त कर देते। अवश्य ही इस मामलेमें किसीका गुप्त हाथ है और वह हाथ कमजोर नहीं हो सकता। शाह फारूख किसी कमजोर हाथका सहारा लेकर इतने शहजोर दलको धता बतानेका साहस नहीं कर सकते थे।

रूसके विरुद्ध प्रचार —

इस युद्धमें रूसने जिस शक्ति-पराक्रमका परिचय दिया है उसे देख संसार स्तब्ध हो गया है। रूसकी विजयसे जहां संसारके शोषित और उत्पीड़ित वर्ग प्रसन्न और आशान्वित हो रहे हैं वहीं शोषक और उत्पीड़क वर्ग क्षुब्ध और व्यग्र हो उठा है। साम्राज्यवादी और पूंजीवादी रूसकी विजयमें अपनी पराजय देख रहे हैं। यही वजह है कि संसारका सबसे बड़ा साम्राज्यवादी ब्रिटेन आज रूस-विरोधी प्रचार कार्य कर रहा है। यह नीति ठीक है कि इस तरहके प्रचारसे रूसका कुछ बनता बिगड़ता नहीं है, क्योंकि आज उसकी स्थिति इतनी मजबूत और सुरक्षित है कि कुत्तोंके भौंकनेसे हाथीकी रफ्तारमें किसी तरहका अन्तर नहीं पड़ सकता। किन्तु इस बातसे उन लोगोंके दिलके कालेपनका सबूत मिलता है जिनको रूसका विरोध करनेकी जगह उसका कृतज्ञ होना चाहिये था। यह रूसकी प्रचण्ड शक्तिका ही परिणाम है कि आज ड्यूक आफ बेडफोर्ड जैसे लोगोंका अस्तित्व संसारमें है।

ड्यूक आफ बेडफोर्ड ब्रिटेनके एक बहुत बड़े भू-स्वत्वाधिकारी हैं। हाल ही में आपने जो भाषण दिया है उसे पढ़नेसे ब्रिटेनके साम्राज्यवादियोंकी मनोवृत्तिका पता चलता है। आपने अपनी वक्तृतामें यह साफ साफ कहा है कि इस युद्धके बाद रूस एक महान शक्ति होकर निकलेगा और उसकी यह महाशक्ति साम्राज्यवादियों और पूंजीवादियोंके लिये भयका एक कारण बनेगी। आपने फरमाया है कि इस युद्धके बाद रूसके भयसे रक्षा पानेके लिये ब्रिटेनको पूर्णरूपेण शस्त्र-सुसज्जित होना पड़ेगा क्योंकि यह बात निर्विवाद है कि ब्रिटेन और अमेरिकाको अपने स्वार्थों, अर्थात् साम्राज्यवादी और पूंजीवादी हितोंकी रक्षाके लिये रूससे लोहा लेना पड़ेगा।

यह बात ठीक है कि ब्रिटेनका जनसाधारण ड्यूक आफ बेडफोर्डकी चिन्ता-धाराका समर्थक नहीं हो सकता। और यह भी ठीक है कि ब्रिटेनकी जनतामें आज रूसके प्रति पहलेसे अधिक सहानुभूति और आदरका भाव है। किन्तु साथ ही यह बात भी स्पष्ट है कि जिस वर्गका ड्यूक जैसे व्यक्ति प्रतिनिधित्व कर रहे हैं वह वर्ग नगण्य नहीं है। इसके विपरीत, यदि यह कहा जाये कि आज ब्रिटेनकी शासन सत्ता इसी वर्गके हाथमें है और देशके वाणिज्य-व्यवसाय उद्योग धन्धेपर तो उसीका एकमात्र आधिपत्य है तो किंचित अत्युक्ति न होगी। युद्धके बाद यह वर्ग अपनी स्थितिको पूर्ववत बनाये रखने, बल्कि उससे भी अधिक दृढ़ बनानेके लिये कोई बात उठा न रखेगा। ड्यूक आफ बेडफोर्डका यह भाषण उसी प्रचेष्टाकी पेशबन्दी है। तभी तो उन्हें इस तरहका विषोद्गार प्रकट करनेका साहस हुआ जब उनके प्रधान मन्त्री मि० चर्चिल और मार्शल स्टैलिन मास्कोमें ब्रिटेन और रूसके बीचमें अधिक सद्भाव और सहयोग स्थापित करनेकी प्रचेष्टामें लगे थे उस समय उनकीइस तरहकी कुचेष्टाओंसे यह साफ जाहिर होता है कि साम्राज्यवादी और पूंजीवादी नहीं चाहते कि ब्रिटेन और रूसके बीच किसी तरहका सद्भाव कायम हो। यह दुर्भाग्यकी बात है कि इस तरहके बीभत्स नर संहारके बाद भी इन स्वार्थी पूंजीवादियोंकी आंखें नहीं खुलीं और स्थिति अनुकूल होते देख फिर अपनी घृणित चाल चलने लगे। यदि इन साम्राज्यवादी षड्यन्त्रकारियों और स्वार्थी पूंजीपतियोंको इस तरहकी कुत्सित हरकतोंसे रोका न गया और उनको अपना खेल खेलनेका मौका दिया जाता रहा तो गत महासमरके इतिहासकी पुनरावृत्ति फिर होगी, इसमें जरा भी सन्देह नहीं है। विश्वशांतिकी जो प्रचेष्टा, सम्मिलित राष्ट्रोंके सद्भाव और सहयोगके आधारपर हो रही है वह निष्फल होगी और एक बार फिर हम युद्ध समाप्त होते ही इन राष्ट्रोंको शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित होते और अपनी अपनी पैंतरेबाजी करते देखेंगे।

इतिहास बताता है कि गत महासमरकी समाप्तिके बादके वर्षोंमें ब्रिटेनने संसारको भयका सबसे बड़ा कारण कम्यूनिज्मको बताया था, नाजीवादको नहीं। हिटलरके नेतृत्वमें भयंकर और विकराल शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित होते रहनेवाला जर्मनी, संसारसे कम्यूनिज्मको निर्द्वन्द्व करनेवाला, वरदान तुल्य समझा जाता था। तत्कालीन परराष्ट्र सचिव सर आर्थर बेलफोरने रूसी खतरेकी विभीषिकापर बोलते हुए कहा था 'शान्तिके लिये सबसे बड़े खतरेकी बात यह है कि आज जर्मनी सम्पूर्णतः निरस्त्र है।' और यह बतानेकी आवश्यकता नहीं है कि परवर्ती कालमें किस तरह ब्रिटेनने जर्मनीको सशस्त्र करनेमें प्रत्यक्ष और परोक्ष रूपसे मदद की थी और रूसके लिये शक्तिशाली बनाये गये जर्मनी शैतानने किस तरह अपने बनाने वालेके सिरपर ही चांटा मारा। यह इतिहास तो अभी इतना ताजा है कि हम शायद इच्छा करनेपर भी उसे नहीं भूल पाते। और इस इतिहासकी सृष्टि करनेमें ब्रिटेनके आजके प्रधान मंत्री मि० चर्चिलका कम हाथ नहीं था। उस समय मि० चर्चिल सोवियट विरोधी आन्दोलनके प्रधान पण्डोंमें थे। आपने रूस और कम्यूनिज्मके प्रति उस समय जैसे विशेषणोंका प्रयोग किया था उनको सुनने और उनसे प्रभावित होनेवाले व्यक्तिने अवश्य ही रूसको गुण्डा देश माना होगा। आज भले ही चर्चिल साहबके वे भाव न रह गये हों, कमसे कम उनके मास्को दौड़ दौड़ कर जानेसे तो यही प्रतीत होता है कि उनके सुखके समयका गुण्डा आपत्ति और सङ्कटके समयमें सभ्य और शिष्ट हो गया है। किन्तु चर्चिलके उस तूफानी प्रचार आन्दोलनने विश्वशान्तिके मार्गमें पद-पदपर रोड़े और कांटे ही बिखेरा है। रूसके प्रति जो सन्देह और घृणाका भाव एक बार अपने वर्गके लोगोंके दिलोंमें चर्चिल जैसे साम्राज्यवादियों और पूंजीपतियोंने भर दिया था वह आज शान्तिके लिये आवश्यक विचार-साम्य नहीं पैदा होने देता। ड्यूक आफ बेडफोर्ड जैसे जहरीले कीटाणुओंको पैदा करनेकी जिम्मेदारी चर्चिल पर ही है, इस बातसे इनकार नहीं किया जा सकता।

निज—स्वार्थका चक्र इतना प्रबल है कि अभीसे इस युद्धको तीसरे विश्व-युद्धकी पूर्व भूमिका कहा जाने लगा है। ड्यूक आफ बेडफोर्ड, इसी मनोवृत्तिका परिचय देते हुए अपनी वक्तृतामें कहते हैं कि "आनेवाले युद्धमें, जिसके सामने वर्तमान युद्ध तुच्छ और हास्यास्पद लगेगा, यदि हम जर्मनी और जापानको अपनी मददके लिये न पा सकें तो प्रबल पराक्रान्त और शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित रूसको पराभूत करना बिलकुल ही हमारी शक्तिके बाहरकी बात होगी। यह है मनोभावना रूसके विरुद्ध उन पूंजीपतियों और भूपतियोंकी जो इने-गिने व्यक्तियोंके स्वार्थके लिये कोटि-कोटि मनुष्योंका रक्त बहते देखकर अपने हृदयमें नैसर्गिक आनन्दका अनुभव करते हैं। वेडफोर्डके वक्तव्यसे यह स्पष्ट है कि पूंजीपति ब्रिटेनका, साम्राज्यवादी ब्रिटेनका

अन्तरङ्ग मित्र रूस नहीं जर्मनी और जापान है। घटना क्रमसे आज ब्रिटेनको जर्मनी और जापानसे लड़ना पड़ रहा है किन्तु इस युद्धके बाद समाजवादी रूसके भयसे पूंजीवाद और साम्राज्यवादको निष्कण्टक बनाये रखनेके लिये जर्मनी और जापानको प्रबल और अस्त्रशस्त्र-सम्पन्न बनाना ही होगा, नहीं तो भला रूस-दानवका सामना कौन करेगा? यह है मनोवृत्ति ब्रिटेनके उस वर्ग की, जिसके हाथमें आज वहांकी शासन-सत्ता है और जिसके कर्णधार हैं कट्टर साम्राज्यवादी चर्चिल। मार्शल स्टालिन नम्बर एक कूटनीतिज्ञ है। उस पर डोरे डालनेकी एक नहीं अनेक कोशिशें की गयीं लेकिन वह तो तुम डाल डाल हम पात पात वाली कहावत चरितार्थ कर रहा है और चर्चिलको कहींसे पकड़ायी नहीं दे रहा है।

धुरी राष्ट्र लड़खड़ा रहे हैं—

युद्ध स्थिति पर दृष्टि डालनेसे यह स्पष्ट प्रतीत हो रहा है कि जर्मनी और जापान सभी युद्ध मोर्चों पर लड़खड़ा रहे हैं। कहीं भी उनके पैर नहीं टिकते। यूरोपके मोर्चेमें यूनानी देश भक्तोंकी मददसे यूनानकी राजधानी एथेन्स पर अधिकार हो गया और राजधानीमें यूनानी सरकार कायम हो गयी। जर्मन यूनानसे भाग रहे हैं। सेलोनिका एरिया खाली किया जा रहा है और अन्य दो एजियन द्वीपों पर मित्रोंने अधिकार कर लिया है। यूगोस्लावकी राजधानी बेलग्रेड पर लाल सेनाका अधिकार सामरिक दृष्टिसे अधिक महत्वपूर्ण है। धीरे धीरे बाल्कन प्रदेश सोवियटके प्रभावमें आ रहा है। पश्चिमी मोर्चेमें आशेन पर अमेरिकनोंका अधिकार बहुत महत्वपूर्ण है। प्रथम बड़े जर्मन नगर पर अधिकार करनेकी बातके सिवा अधिक महत्व इस बातका है कि यह महत्वपूर्ण रेलवे केन्द्र है और कितने ही मार्ग यहां पर मिलते हैं। इस पर अधिकार हो जाने से पश्चिमी जर्मनीके औद्योगिक केन्द्रों पर आक्रमण करनेमें बड़ी सुविधा होगी। उधर डच-बेलजियम तटकी ओर ब्रिटिश-कनाडियन सेना बढ़ रही है।

प्रशान्तके मोर्चेमें भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे हैं! अमेरिकन सेना फिलिपाइन द्वीप लीट पर उतर पड़ी है। जेनरल मैक्कार्थरने अपार सेनाके साथ फिलिपाइनपर आक्रमण आरम्भ कर दिया है! उनको दो सुविधाएं हैं। प्रथम, गगन और जल शक्तिकी श्रेष्ठता। द्वितीय, फिलिपाइन द्वीपवासियोंकी सहायता। क्योंकि सेना उतारनेके साथ साथ अमेरिकन सरकारने फिलिपाइनको स्वतन्त्र करनेकी अपनी पूर्व घोषणा फिर की है। फोरमोसा पर भी विमानवाहित सेना द्वारा आक्रमण किया गया है। इस कार्यमें एक हजार विमानोंने भाग लिया।

कोरिया और मनचूरियाकी तरह फोरमोसाभी जापानी साम्राज्यका अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग है और मित्र राष्ट्र इस बात पर तुले हुए हैं कि इन अञ्चलोंको, जहांसे जापानके युद्ध-यन्त्रको खाद्य मिलता है, जापानके अधिकारसे निकाल लिया जाय। इधर बर्माके मोर्चे पर बर्मा फ्रांटियर पर स्थित और मणिपुर युद्धाञ्चलके महत्वपूर्ण शत्रु-अड्डा टिड्डिम पर अधिकार कर भारतीय डिवीजनने गत मार्च मासकी पराजय का बदला चुका लिया है।

इस तरह देखा जाता है कि सभी मोर्चों पर धुरीराष्ट्र बुरी तरह पिट रहे हैं। यही देखकर हिटलरको द्वितीय विराट भर्तीका फरमान निकालना पड़ा है। "पांच वर्षके संघर्षके बाद तमाम यूरोपियन मित्रोंके कर्त्तव्यपर डटे न रह सकनेकी स्थितिसे लाभान्वित हो शत्रु कहीं कहीं जर्मन सीमाके निकट और कहीं जर्मन सीमाके भीतरपहुंच गया है। शत्रु जर्मन साम्राज्यको नष्ट-भ्रष्ट एवं जर्मन जातिको निश्चिन्ह कर देनेके लिये अपनी शक्ति और प्रयासोंको दूना चौगुना बढ़ा रहा है। इस स्थितिका मुकाबला करनेके लिये हम दूसरी बार विराट जन-शक्ति संग्रह कर रहे हैं जबकि शत्रु समझ रहा है कि उसने बाजी मार ली है और अब केवल आखिरी धक्का लगानेका काम बाकी रह गया है। हमारे विनाशके शत्रु-संकल्पको विनष्ट करनेमें हम सफल तो होंगे ही, साथ ही विरोधी सेनाको तबतक पीछे हटाते रहनेमें सफल होंगे जबतक जर्मनी और उसके मित्रोंकी भावी शांतिकी गारण्टी न हो जायेगी और यूरोपमें जबतक शान्ति न होगी।" इसपर अधिक टिप्पणीकी आवश्यकता नहीं है। आजसे तीन वर्ष पूर्वके हिटलरकी वाणीमें और आजकी वाणीमें जो अन्तर है वह बिलकुल स्पष्ट है।

इस अन्तरको गेस्टापो चीफ हिमलरका ब्राडकास्ट और अधिक स्पष्ट कर देता है। पूर्वी प्रशामें एक जन सभामें अभी हाल हीमें भाषण करते हुए हिमलरने कहा है—'आने वाले सप्ताह और महीने कठोर परीक्षाके दिन होंगे। किन्तु हम लड़ते रहेंगे, जबतक हमारे शत्रु जर्मन जातिकी दुर्जेयता को महसूस न करेंगे और 'युद्ध बन्द करने' का निशान न उड़ायेंगे। सफलता और आनन्दके दिनोंके बाद दुर्भाग्यके दिन आये हैं।' युद्धके चढ़ाव उतारोंका वर्णन करते हुए हिमलरने कहा कि 'लज्जापूर्ण पराजयोंके बाद सदा हां

जर्मन सेना फिर उठी है। आज हम रचनात्मक युद्धकी स्थितिसे होकर गुजर रहे हैं। अतः यह आवश्यक है कि रक्षाबन्दीको दृढ़ करनेके साथ-साथ हम जर्मन सेनामें भर्ती हों। शत्रुको यह पाठ पढ़ना होगा कि एक-एक मील जमीनकी कीमत रक्तकी नदी है।'

राष्ट्रपतिका चुनाव—

संयुक्त-राज्य अमेरिकाके राष्ट्रपतिका निर्वाचन इस वर्षकी सर्वाधिक आकर्षण और हलचल पैदा करनेवाली घटना है। दोनों पक्षोंसे जोरदार तैयारियां हो रही हैं और अपने-अपने उम्मेदवारका प्रचार जिस दिलचस्पी और तत्परतासे की जा रही है वैसी १९१६ के बादके निर्वाचनोंमें कभी नहीं देखी गयी। वह भी युद्ध,विश्व-युद्धका जमाना था। अन्तर इतना ही है कि इस बार अमेरिका युद्धमें लड़ रहा है और उस बार मित्रराष्ट्रोंके प्रति सहानुभूति रहते हुए भी तब तक वह युद्धमें नहीं उतरा था और जब १९१८ में उतरा तो युद्धकी समाप्तिका गवाह बनकर ही रह गया। गृहयुद्धके बाद अब तक राष्ट्रपतिके निर्वाचनमें कोई उम्मेदवार न्यूयार्क स्टेटका वोट जीते बिना सफल नहीं हुआ। १९१६ का निर्वाचन ही इसका अपवाद है, जब मि० बिलसन न्यूयार्क स्टेटका वोट पाये बिना ही राष्ट्रपति निर्वाचित हो सके थे। इसलिये ऐसी आशा की जाती है कि इस बार भी निर्वाचनके अन्तिम समयमें सबसे अधिक दिलचस्पी और सरगर्मी न्यूयार्कमें ही देखी जायेगी जिसके ४७ वोट हैं। संयुक्त राज्य निर्वाचन प्रणालीके अनुसार प्रत्येक स्टेटके वोट पक्ष और विपक्षके अनुपातसे विभक्त नहीं होते। एक स्टेटमें जिस उम्मेदवारको बहुसंख्य वोट मिलेंगे दूसरेके पक्षमें दिये गये वोट भी उसके हो जायेंगे।

रिपब्लिकनोंका यह दावा है कि डेमोक्रेटोंको अमेरिकन लेबर पार्टीकी मदद मिलने पर भी न्यूयार्कमें विजय उनकी ही होगी। उधर डेमोक्रेटोंका यह कहना है कि यदि न्यूयार्क रिपब्लिकन हो जाये तो भी मि० रूजवेल्ट निर्वाचित होंगे। डेमोक्रेटोंको विश्वास है कि पेनसीलवेनिया, केलिफोर्निया, समस्त दक्षिणी स्टेट और न्यू इङ्गलैण्डके कई स्टेट उनका साथ देंगे और इस तरह वे बहुत बड़े बहुमतसे विजयी होंगे। रिपब्लिकनोंका दावा है कि ५३१ वोटोंमें ३०९ वोट उनके उम्मेदवार मि० डेवीको मिलेंगे। मि० डेवीकी व्याख्यानमालाका आधार यह है कि रिपब्लिकन विजयसे युद्धोत्तर कालीन बेकारीका कम खतरा है। उधर मि० रूजवेल्ट युद्ध-सञ्चालन, सन्धिवार्ताकी अपनी योग्यता और क्षमता तथा युद्धोत्तर कालीन योजनाको अपने निर्वाचन उद्देश्यका मुख्य आधार बता रहे हैं।

इस निर्वाचनमें जैसी तू-तू मैं-मैं हो रही है शायद पहले नहीं छनी गयी। उम्मेदवार स्वयं एक दूसरेको "बेईमानी पर उतारू" बता रहे हैं। इस निर्वाचनमें व्यक्तिगत आक्षेप और गाली-गलौजका बाजार बड़ा गर्म है। कांग्रेस की सदस्या क्लेयर बूथल्यूस डेवीके लिये प्रचार कार्यकर रही है। आप इस कार्यमें इतनी दूरतक आगे बढ़ गयीं कि प्रेसिडेंट रूजवेल्टको मिथ्यावादी कह दिया। उधर कांग्रेस सीटके लिये उम्मेदवार एक दूसरी महिलाने ल्यूसको झूठा बताया। न्यूयार्क टाइम्स जो १९४० में प्रेसिडेण्ट रूजवेल्टका विरोधी था इस बार उनका समर्थन कर रहा है। पत्रका कहना है कि हम प्रेसिडेण्टकी वैदेशिक नीतिके कारण ही उनके समर्थक हैं यद्यपि चौथी बार खड़े होनेकी नीतिको हमें अत्यन्त अनिच्छापूर्वक स्वीकार करना पड़ा है और इस नीतिको हम बहुत जबर्दस्त सन्देहकी दृष्टिसे देखते हैं। किन्तु समर्थन इसलिये करते हैं कि इस वर्षकी स्थितिको देखते हुए यही एकमात्र उचित है।"

दोनों उम्मेदवार "हाइफीनेट्स" का समर्थन प्राप्त करनेकी चेष्टा कर रहे हैं, जिन्होंने फिलस्तीनके यहूदियोंकी मांगोंका समर्थन करनेका बचन दिया है। दोनोंने पोलोंके प्रति सहानुभूति दिखायी है। पोलिश वंशके अमेरिकनोंने प्रेसिडेण्ट रूजवेल्टसे तार द्वारा पोलैण्डका पञ्चमबार विभाजन रोकनेका अनुरोध किया है। राजनीतिक पर्यवेक्षकोंका मत है कि रूसके 'प्रवदा' पत्रने डेवीके खिलाफ पोलिश साम्राज्यवादियोंका समर्थक होनेका ऐन मौकेपर अभियोग लगा कर वह तीर मारा है कि डेवीको इसके फलस्वरूप, निश्चय ही कुछ वोटोंसे हाथ धोना पड़ेगा। दोनों उम्मेदवार इटालियनोंकी दुर्दशाके प्रति हमदर्दी दिखा रहे हैं और यूनान (ग्रीस) को पूरी मदद देनेके समर्थक हैं। यद्यपि अभी हाल ही में रूजवेल्टने यह स्पष्ट कर दिया है कि कम्यूनिस्टोंसे मेरा कोई सम्पर्क नहीं है फिर भी कम्यूनिस्ट बड़ी सरगर्मीके साथ उनका समर्थन कर रहे हैं। मजदूर-दल साधारणतया रूजवेल्टके पुनर्निर्वाचनको पसन्द करते हैं। यहां तक कि प्रसिद्ध श्रमिक नेता जान लेबिस, जो १९४० के निर्वाचनके पूर्वसे ही रूजवेल्टके कट्टर विरोधी रहे हैं आज उनके दलमें दिखायी देते हैं। जो कुछ भी हो निर्वाचन-प्रतिद्वन्द्विता जोरोंपर है। लक्षणोंसे रूजवेल्टके चौथी बार राष्ट्रपति चुने जानेकी पूरी सम्भावना प्रतीत होती है।

संसारकी प्रथम महिला डाक्टर—

महिलाओंकी आजादीका नारा जबसे बुलन्द होना आरम्भ हुआ; उसी समयसे करीब करीब सभी कार्यक्षेत्रोंमें महिलाओंने पदार्पण किया और आज तो पुरुषोंके कन्धेसे कन्धा भिड़ाकर महिलाएं युद्ध क्षेत्रमें भी बन्दूक चलाती दिखायी देती हैं। किन्तु संसारको करीब ६० वर्षों तक एक सर्वाधिक उल्लेखनीय कार्यक्षेत्रमें कोई महिला दिखायी नहीं पड़ी। वह संसारकी सर्व प्रथम महिला डाक्टर थी, जिसके महिला होनेकी जानकारी लोगोंको उसकी मृत्युके बाद ही प्राप्त हुई।

अपनी मृत्युके समय १८६९ में डा० जेम्स बारी ग्रेट ब्रिटेनके अस्पतालोंकी सैनिक इन्सपेक्टर जनरल थी। ५० वर्षोंसे अधिक समयतक संसारके विभिन्न भागोंमें पुरुषोंके साथ काम करती और रहती चली आयी थी, किन्तु ७१ वर्षकी आयुमें उसकी मृत्यु होनेके पश्चात ही संसारने जान पाया कि वह पुरुष नहीं स्त्री थी।

उसकी मृत्युके पश्चात 'लन्दन टाइम्स' ने उसके महान कार्योंकी भूरि भूरि प्रशंसा करते हुए उसकी जीवनी प्रकाशित की थी। किंतु उस समयतक 'टाइम्स' ने भी उसे पुरुष ही समझ रखा था। दूसरे दिन एक सरकारी रिपोर्ट द्वारा अश्वारोही रक्षक दलोंको सूचना दी गयी कि सैनिक इन्स्पेक्टर जेनरल एक स्त्री थी।

मृत्यु-दिवस पर्यन्ततक डाक्टरके इस रहस्यके सम्बन्धमें उन लोगोंको जरा भी सन्देह नहीं हुआ था, जिनके साथ वह रहती और काम करती थी। सेना विभागके अफसर और सैनिक, उसके निवासस्थानकी प्रबन्धिका, उसके निजी नौकर किसीको भी, जो उसके साथ वर्षों रहे उसके इस रहस्यकी अणुमात्र भी जानकारी नहीं थी।

जब वह कालेजमें प्रविष्ट हुई, उस समय वह एक 'शर्मीला नौजवान' कही जाती थी। कालेज जीवनमें वह हमेशा अलग-अलग रहती और बहुत कम बातचीत करती थी। अपने सहपाठियोंके साथ मुष्टिका युद्ध करनेको भी वह कभी प्रस्तुत न होती थी और इस कारण छात्रगण उसको 'अद्भुत व्यक्ति' भी कहा करते थे। कभी कभी उसमें स्त्री सुलभ कातरताका भाव भी दिखायी पड़ता था और किसी स्थानपर अकेली जानेमें उसे बड़ी हिचकिचाहट होती थी और इस कारण वह अपने सहपाठियोंसे साथ चलनेका बराबर अनुरोध किया करती थी।

एडिनबरासे डिग्री लेनेके सात वर्ष बाद वह सैनिक डाक्टर बनकर कार्यक्षेत्रमें आयी। डा० बारी किसी भी प्रकार एक आदर्श 'युवक' नहीं थी। केपटाउनमें वह गवर्नरकी मेडिकल एडवाइजर नियुक्त हुई और गवर्नरने उसको सबसे चतुर और सिद्धहस्त चिकित्सक तथा सर्वाधिक स्वेच्छाचारी' युवक' बताया।

एक बार एक युवक डाक्टर बारीके साथ उसीके केबिनमें स्टीमर द्वारा सेण्ट टामस बारबाडोजकी यात्रा कर रहा था। वह युवक ऊपरवाले बर्थपर था और डा० बारी, जो अस्पतालोंकी डिप्टी इन्स्पेक्टर थी, निचले बर्थ पर। प्रतिदिन प्रातःकाल डा० बारी उस युवकको उठकर पुकारती— 'तुम उठकर केबिनके बाहर जाओ, मुझे कपड़े बदलने हैं।' और उस युवकको हर हालतमें केबिनके बाहर जाना पड़ता। डा० बारीके साथ रहनेवाला एक भयानक कुत्ता बाहर बैठकर देखा करता कि मालिककी आज्ञाका ठीक-ठीक पालन हो रहा है।

डा० बारीने अपने सभी कार्यों द्वारा अपनी सिद्धहस्तता और चातुर्यको प्रमाणित किया। वह निर्भय होकर स्पष्ट रूपसे लिखती थी और किसी त्रुटिको निकालनेमें नहीं हिचकिचाती थी। उसने अनेक महत्वपूर्ण सुधार भी कराये। अपने उच्च साहस और नैतिक बलसे इस महिलाने पुरुषसे भी बढ़कर कार्य कर दिखाया। अपने लक्ष्यको प्राप्त करनेके लिये यह जीवनभर अपने स्त्रीत्वको छिपाये रही।

जापानी कूटनीतिज्ञोंके लिये 'ओ'—रक्त

जापानके परराष्ट्र विभागके संयुक्त चिकित्सक डा० सुनेमाला नियागारीने ऐसी सिफारिश की है कि राष्ट्रके वैदेशिक कार्यकलाप विभागमें कार्य करनेवाले व्यक्तियोंके शरीरमें 'ओ' श्रेणीका रक्त रहना अनिवार्य है। उन्होंने वैज्ञानिक परीक्षणोंके आधारपर इसकी आवश्यकता प्रमाणित करते हुए बताया है कि जिन लोगोंके शरीरमें 'ओ'

श्रेणीका रक्त मौजूद है, वे ही परराष्ट्र विभागके कार्यको सफलतापूर्वक भाल सकते हैं। डा० नियागारीकी यह सिफारिश यदि स्वीकार होगयी तो भविष्यमें जापानकेसभी कूटनीतिज्ञोंके शरीरमें'ओ' श्रेणीका रक्त भरा जायाकरेगा।

चिरकालसे ही कूटनीतिज्ञोंकी पहचान उनके म्लान चेहरे और विद्वत्तापूर्ण भव्य आकृतिसे होती रही है। किन्तु चिकित्सकका मत है कि आजकल विज्ञानमें कार्य करनेवाले लोगोंका प्रकाण्ड कूटनीतिज्ञ होनेके साथ ही साथ सुगठित भी होना नितान्त आवश्यक है, और जिन लोगोंके शरीरमें 'ओ' श्रेणीका रक्त विद्यमान है, वे ही बल और बुद्धिमें सर्वश्रेष्ठ हो सकते हैं।

जापानके भूतपूर्व प्रधान मन्त्री प्रिन्स कोनोयके शरीरमें इस प्रकारका रक्त मौजूद था और समग्र संसारके राज नेताओंके शरीरमें यह रक्त पाया गया है। डा०नियागारीने इसी दृष्टिकोणसे जोर देते हुए कहा है कि विदेशोंमें रहनेवाले जापानके प्रतिनिधियोंके शरीरमें इस श्रेणीका रक्त रहना चाहिये।

डा० नियागरीके विचारानुसार 'ओ' श्रेणीके रक्तके प्रधान गुण मानसिक संतुलन, विवेकरहित कामनाओंसे मुक्ति, कर्त्तव्य दृढ़ता, विचार स्वातन्त्र्य, सुदृढ़ मस्तिष्क, निर्णयशक्ति, दृढ़ निश्चय, सहिष्णुता, बाहरी शिष्टता और आन्तरिक दृढ़ विश्वास हैं। किसी कूटनीतिज्ञके लिये इससे बढ़कर और कौनसे गुणकी आवश्यकता है।

जर्मनीके विख्यात प्राणी-विज्ञानवेत्ता डा० कार्ल लैण्ड्स्टिनरने १९०१ में विभिन्न व्यक्तियोंके रक्तके लाल अणु और रसभागकी प्रतिक्रियाका परीक्षण करनेके पश्चात मानव रक्तको श्रेणी-विभाजित किया था। उन्होंने रक्तको चार भागोंमें विभाजित किया जिसके परिणाम स्वरूप वैज्ञानिक रीतिसे मानव शरीरमें रक्त पहुंचाना और लोगोंकी वंशावलि मालूम करना सम्भव हो सका है।

अमेरिकाके बारेमें गलत फहमी—

युक्तराष्ट्र अमेरिकाके बारेमें यूरोपीय देशोंमें अनेक गलतफहमियां फैली हुई हैं। हर महीने कोई न कोई आश्चर्यजनक बात फैलती रहती है, जिसमें सचाईका लेशमात्र नहीं रहता। कभी कभी एकाध बात ऐसी भी होती हैं जिसका वास्तविकतासे कुछ कुछ सम्बन्ध रहता है। अपने पाठकोंके मनोरंजनार्थ हम उनमेंसे कुछको नीचे उद्धृत कर रहे हैं। यूरोपवासी युक्तराष्ट्रके नागरिक जीवनके सम्बन्धमें ऐसे ही अनुमान लगाया करते हैं।

'अमेरिकाके लोगोंने कभी भी ऐसी कोई वस्तु नहीं खायी, जो डिब्बेमें बन्द नहीं रही।'

'अधिकांश अमेरिकन गगन चुम्बी इमारतों (स्काईस्क्रेपर) के सौवें तल्ले पर रहा करते हैं।'

'अमेरिकाके लोग सबसे बढ़कर काम करना पसन्द करते हैं। खाने, पढ़ने, मछली मारने अथवा तैरनेकी अपेक्षा काम करते रहना ही उनको अच्छा लगता है। काम नहीं रहनेसे वे दुखी और उद्विग्न हो उठते हैं।'

'अमेरिकामें मोटर गाड़ियां इतनी सस्ती होती हैं कि कोई उनकी मरम्मत तक नहीं कराता। पुराने अखबारको भांति पुरानी मोटरोंको भी वे लोग फेंक दिया करते हैं। पुरानी मोटरकी पूरा मरम्मत करानेका खर्च नयी मोटरके मूल्यसे अधिक होता है।'

'वेनिस पहुंचने पर अमेरिकन लोग वास्तवमें ऐसा विश्वास कर लेते हैं कि नगरमें बाढ़ आयी हुई है।'

'अमेरिकन लोग किसी भी मकानमें प्रवेश करते समय टोपी पहने रहते हैं और हमेशा पैरोंको डेस्क पर रखकर बैठते हैं।'

'स्टाक-एक्सचेंजमें घाटा लगने पर हजारों अमेरिकन गगनचुम्बी इमारतोंकी छतसे कूद पड़ते हैं।'

'अमेरिकन किसी भी वस्तुको पी सकते हैं।'

'कुछ अमेरिकन बड़े ही सभ्य और सुसंस्कृत होते है, किन्तु वे यूरोपमें रहते हैं।'

'अमेरिकन लोग शराब पीकर मदमत्त हो जाते हैं, क्योंकि उनमें कोई कला नहीं है।'

'अमेरिकन लोग अंगरेजोंसे प्रेम रखते हैं क्योंकि वे चचेरे, ममेरे, मौसेरे भाई हैं।'

'सभी खेलोंमें अमेरिकन ही विजयी होते हैं।'

* * *

अंग्रेज-सबसे अच्छे पति—

यह बात सर्वमान्य है कि अंग्रेज सबसे अच्छे पति होते हैं और इसका कारण यह है कि अंग्रेज संसारमें सबसे अधिक स्वार्थी होते हैं। यद्यपि इस कथनसे आश्चर्यपूर्ण विरोधाभास प्रकट होता है, किन्तु वास्तवमें बात कुछ ऐसी ही है।

इसमें जराभी सन्देह नहीं कि इङ्गलैंड पुरुषोंका स्वर्ग है। जन्म ही से अंग्रेज अपने गृहका सर्वप्रमुख व्यक्ति हो जाता है, गृह-संसारमें सर्वत्र उसीकी धाक रहती है। अतएव वह अपने महत्वके बारेमें बहुत ऊंचा विचार रखता हुआ बढ़ता है। और तब विवाहमें भी अंग्रेज कोई अद्वितीय वस्तु—

(शेष ९२ वें पृष्ठपर)

समालोचना

हुंकार—(कविता पुस्तक) रचयिता कविवर दिनकर। प्रकाशक माडर्न पब्लिशर्स, योगी प्रेस, पटना। मूल्य २)।

दिनकर राष्ट्रीय युगका प्रतिनिधि कवि है। हुंकारमें उसकी आत्माकी पुकार वज्र घोषकी तरह तड़प उठी है। हुंकारमें जहां वह पराजितोंकी पूजा करनेकी तैयारी करता है वहीं वह विपथगाका आह्वान भी करता दृष्टिगोचर होता है। हाहाकारमें—

हटो व्योमके मेघ पंथसे
स्वर्ग लूटने हम आते हैं
'दूध' 'दूध' ओ वत्स! तुम्हारा
दूध खोजने हम जाते हैं।

ऐसी आवाज है जिसपर किसी भी मासूमका हृदय रखने वाला पिता दुनियाके अन्याय और प्राणोंकी विवशताको ठुकराकर सचमुच मेघ चीरनेको उछल पड़ेगा।

हुंकारमें, 'विपथगा' 'दिगम्बरी', 'आलोकधन्वा' नामक कवितायें हिन्दीमें एक सर्वथा नवीन दृष्टिकोणकी सूचना है। दिनकरका दृष्टिकोण उसकी कविताओंमें सुस्पष्ट है। हिन्दी साहित्यकी कविता धारामें दिनकरकी जो रचनायें आयी हैं वे त्रिवेणीमें गंगा, यमुना और सरस्वतीकी तरह साफ साफ दृष्टिगोचर होती हैं। भावोंकी अनुभूति कविकी पंक्तियोंमें वैसी ही आयी है जैसी इन पंक्तियोंमें कवि की कल्पना!

किसी रश्मिने विशिख-वेगसे आकर
खोल दिए अन्तष्कपाट प्राणोंके,
ऊषाकी लालिमा दौड़ती आयी
मुझमें भी, सर, शैल, भूमि पर जैसे।

हुंकार, हिमालय जैसी महानता, दिल्ली जैसी प्रशस्तता हाहाकार जैसा व्यापक, और भारतके लिये भविष्यकी आहट है।

वीरोंको वीरताकी याद दिलानेमें तथा उन्हें सावधान करनेमें दिनकर अपने ढङ्गका अकेला कवि है। अनल-किरीटमें —

धर कर चरण विजित शृङ्गों पर
झण्डा वही उड़ाते हैं,
अपनी ही उंगली पर जो
खञ्जर की जङ्ग छुड़ाते हैं।
पड़ी समय से होड़,
खींच मत तलवों के कांटे रुक कर,
फूंक फूंक चलती न जवानी,
चोटों से बच कर, झुक कर।

इन पंक्तियोंका स्थान राणा प्रतापके भालेसे कम नहीं है जय-यात्रामें—

चल यौवन उद्दाम
चल चल बिना विराम,
विजय, मरण, दो घाट समरके बीच कहां विश्राम!

ये पंक्तियां प्राणोंकी बाजी लगा कर बढ़नेवालोंको भ्रमसे साफ-साफ बाहर निकालकर उनकी स्थितिका उनको ज्ञान करा देता है।

हुंकार दिनकरकी क्रांतिकारिणी भावनाका जाग्रत और दीप्त रूप है। यौवनकी सारी भावना जिस दिशामें प्रवाहित हुई है वास्तवमें पाठकोंके सामने वह दिशा आकर्षण-पूर्ण स्थितिमें स्पष्ट हो उठा है। हुंकारकी कविताओंमें

सबसे विचित्र बात तो यह है कि कविकी कल्पना जिधर भी गयी है उसने जो कुछ भी देखा है वह उतना ही सत्य होकर हमारे निकट आया है जितना सत्य और स्पष्ट कल्पनाके सामने रहा है।

हुंकारका यह द्वितीय संस्करण हमारे सामने है। हम इसके तृतीय और चतुर्थ संस्करण होनेकी राह देख रहे हैं क्योंकि हुंकार युगकी मांग है और युगकी मांग ही सत्य, शिव और सुन्दर है।

लाल चूनर—(कविता पुस्तक) रचयिता कविवर अञ्चल! प्रकाशक अवध-पब्लिशिंग—हाउस, लखनऊ। मूल्य २)

कविवर अञ्चलकी यह पांचवीं कविता पुस्तक है। अञ्चल हिन्दी साहित्यकी कविता धारामें उमंगोंकी जय बोलता हुआ आया और तबसे अब तक उसकी कविताओंमें जीवन-की ज्वाला, प्रलयकी चेतना, युगकी मांग, भूखोंकी पुकार और नंगोंका चीत्कार ही सुनायी पड़ता रहा है। अञ्चलने युग-धर्मके दरवाजे प्राणोंका दीपक जलाकर नवागन्तुकोंको राह दिखलायी है—यह स्पष्ट है, उसने अपनी आवाजसे दिगन्त व्यापी अकर्मण्यताको चुनौती दी है यह भी सत्य है, उसने पूंजीवादके जगमगाते हुए महलोंमें, नाशकी पलती हुई जवानी देखी है यह उसकी स्तुत्य कल्पना है। युगका साहित्य अञ्चलकी देनका ऋणी है।

लाल चूनरमें कविकी कल्पना जीवनके सत्यके सामने सिर झुकाकर खड़ी हो जाती है। कविके शब्दोंमें—

किसीके प्यारका उन्माद
सांसों से नहीं जाता
किसीकी हिचकियोंका नाद
कानों से नहीं जाता।

अभिव्यक्तिकी मानव सुलभ तृष्णा कविके प्राणोंसे अकस्मात फूट पड़ती है। कविकी चेतना इस कविता पुस्तकमें लड़कपनका स्वप्न जोड़नेको लालायित हो जाती है। कवि अपने हाथोंसे छूट पड़ता है और यौवनकी तृष्णासे अपने होठोंको लगा देता है। लड़कपनका स्वप्न 'नारी' में सत्यके सिंहासने खड़ा होकर नारीसे कहता है—

आज जीवन औ मरणके
बीचकी तुम सेतु बनकर
दो मुझे तूफान अगले
झेलनेका शौर्य जयकर

जीवन विविधकी रंगीनियोंमें कविकी कल्पना मदहोश सी दिखलायी पड़ती है और यहीं कविकी कविता अपनी सफलता पर खिलखिलाकर हंस पड़ती है। कहीं कहीं तो कवि इतना अधीर हो पड़ा है कि वह व्याकुल होकर अपनी अतृप्तिका अधीर प्रदर्शन कर बैठता है।

ठहर जाओ घड़ी भर और
मेरी देख लें आंखें

में कविकी व्याकुलता अपनी चरम सीमापर पहुंच जाती है और कविकी कातर वाणमें घड़ी भर ठहरा देनेकी शक्ति स्पष्ट दिखलायी पड़ने लगती है।

संचित करो लुटा दो चाहे
मैं भाण्डार तुम्हारा

में कविका निवेदन इतना कातर हो उठा है कि उसकी अन्तर्वेदनाके प्रति अकस्मात सहानुभूतिके बादल उमड़ने लगते हैं।

लाल चूनरकी कविताओंमें कविकी वाणी इतनी तीव्र और प्रखर हो उठी है कि उसमें भावोंकी सरलता और आकांक्षाकी तीव्रता साफ साफ प्रतिबिंबित हो उठी है। "रूपकी तुम एक मोहक खान" कवितामें उसकी सरसताकी सांस सीधे दिल पर चोट कर जाती है।

पल्लवित होती विरसता,
भी तुम्हें प्रिय ! देख,
चेतना की तुम चरम—
परिणति, चरम आदान।
*   *   *
मुग्ध यौवन और शैशव
की नयी पहचान।

लाल—"चूनर" की प्रत्येक कविता कविकी एकान्त कल्पनाका प्रतीक है। अन्य कविता-पुस्तकोंकी तरह कवि अपने इस प्रयासमें सफलताके उसी स्वर पर है जिस स्वर पर उसकी अन्य रचनायें।

रसवंती—(कविता पुस्तक) रचयिता कविवर दिनकर। प्रकाशक मॉडर्न पब्लिशर्स, योगी प्रेस, पटना।

दिनकर क्रांतिका कवि है पर रसवंतीमें उसकी क्रांति मानव सुलभ निर्बलताके सामने हृदयका भेद कानों-तक पहुंचानेके लिये आती हुई रसवंतीके आगमनमें राह छोड़कर एक किनारे हट जाता है। दाहकी कोयल जब पञ्चम-स्वरमें कूकने लगी तो कविके सामने, नारी, बालिकासे बधू, प्रीति, रासकी मुरली, पुरुष - प्रिया, अन्तर्वासिनी, भ्रमर, और रहस्यका सारा भेद आपसे आप खुल गया।

रसवंतीकी 'नारी' कविकी प्रखर प्रतिभाका ज्वलन्त प्रमाण है।

> हो उठी प्रतिभा सजग प्रदीप्त
> तुम्हारी छविने मारा बाण
> बोलने लगे स्वप्न निर्जीव
> सिहरने लगे सुकविके प्राण

इन पंक्तियोंसे कविका प्राण सिहर उठा है और उसने जाग्रत सत्यकी प्रेरणाको शब्दोंके रूपमें बाहर निकालकर रख दिया है। दिनकर की 'नारी' अबतक हिन्दीमें आयी हुई नारीकी कल्पनामें अपना विशिष्ठ स्थान रखती है। "बालिकासे वधू" कविता तो कवि कल्पनाकी ऊंचाईका द्योतक है। हिन्दीमें इस तरहकी कविता करना प्रसंशनीय प्रयास है। 'आश्वासन' में कविने अपनी वेदनाको लक्ष्य कर रहा है:—

> तृषित धर धीर मरुमें
> कि जलती भूमिके उरमें
> कहीं प्रच्छन्न जल हो
> न हो यदि आज तरुमें
> सुमन की गंध तीखी
> स्यात कल मधुपूर्ण फल हो

कलकी आशा कविके प्राणोंसे वैसे ही फूट पड़ी है जैसे रासकी मुरलीमें विकल राधाके लिये मोहिनी बंशीका स्वर। 'रासकी मुरली' तो विकलताकी पुकार है। इसमें कविकी आत्माने वियोगिनी राधाके प्राणोंकी उस चेतनाको स्पर्श किया है जिसमें मोहनकी छवि मुस्करा रही थी।

> सुहागिनियों में चुनकर एक
> मुझे ही भूल गये क्या श्याम
> बुलाने को न बजाया आज
> बांसुरी में दुखिया का नाम

किसी वियोगिनीके प्राणकी मूर्छित होती हुई वेदनाकी कराह सीधे दिलके पार निकल जाती है। सचमुच ही कविने जहां हुंकारकी सृष्टि कर अग्निवर्षा की है वहीं रसवंतीकी सृष्टि कर उसने यह सिद्ध कर दिया है कि जिन हाथोंसे मत्तगजके सिरपर वाणोंकी निरन्तर वर्षा की जा सकती है, उन्हीं हाथोंसे प्रियाके कोमल वदनका स्पर्श कर आनन्दकी सारी साधनाको किया चरितार्थ जा सकता है। रसवंती हिन्दी कविता धारामें एक नवीन लहरके साथ आयी है जिसमें अव्यक्त वेदनाका व्यक्त प्रतिबिंब एकदम स्पष्ट है।

—पं० ल० म०

चयनिका
(शेषांश)

अपने असाधारण गुणोंके योग्य ही कोई वधु पानेकी लालसा रखता है और आश्चर्य यह कि वह उसको पाता भी है।

प्रत्येक अंग्रेज लड़की आन्तरिक हृदयसे पुरुषको अपनेसे श्रेष्ठ समझती है। वह इस बातको अस्वीकार कर सकती है, इसका मजाक उड़ा सकती है, किन्तु उसका पालन-पोषण पुरुष-सत्ताके अधीन हुआ है; वह एक पति पानेकी कठिनाइयोंसे अवगत है, वह उस विभिन्न सामाजिक स्थितिसे भी अवगत है जो इङ्गलंडकी विवाहिता और कुमारी स्त्रियोंके बीच जारी है। वह पत्नी बनना चाहती है, और साथ ही साथ वह इस बातको भी अच्छी तरह जानती है कि अपने पतिको प्रसन्न रखने पर ही उसका भविष्य निर्भर करता है। इसमें जरा भी आश्चर्य नहीं कि पत्नी बन जाने के बाद अंग्रेज युवतीको आदर मिलता है और अक्सर वह अत्यन्त माननीय हो जाती हैं। इस प्रकार अंग्रेज युवतियांभी अपनेको पतिके अनुकूल बना लेतीं है और अपने परिवारके दुःख सुखकी सच्ची संगनी बन जाती हैं।

संसारमें कहीं भी पुरुष उतना श्रेष्ठ नहीं, जितना कोई अंग्रेज अपने घरमें होता है। एक पुरानी कहावत है कि 'अंग्रेजका घर उसका किला होता है' और यह बात राष्ट्रीय सत्य पर कायम है। जिस प्रकार सभी झगड़ों, सभी महत्वपूर्ण विषयों और सभी प्रकारके मामलोंमें 'मास्टर'का अन्तिम निर्णय सर्वमान्य होता है उसी प्रकार इङ्गलैंडके घरोंमें पुरुषोंका निर्णय सर्वमान्य होता है। अंग्रेज बच्चोंको धमकानेके लिये इतना ही कह देना यथेष्ट होगा कि "बहुत अच्छा, मैं तुम्हारे पितासे कह दूंगा।"

सभी मानव और खासकर स्त्रियां अनुशासनमें रह कर प्रसन्नताका अनुभव करती हैं और इसी कारण अंग्रेज-गृह आसान तलाक और आधुनिक रहन-सहनकी अभिवृद्धिके बावजूद अब तक एक आनन्दमय स्थान बना हुआ है। स्वार्थी, आत्माभिमानी और दकियानूसी विचारों वाला अंग्रेज पति अपनी पत्नीकी हिफाजत करता और उसे है अमूल्य अधिकार देता है। महिलाएं अपने पैरों पर खड़े होनेकी कभी आन्तरिक इच्छा नहीं रखतीं और अबतक पूर्णस्वावलम्बी होना महिलाओंने सीखा भी नहीं है। प्रत्येक अङ्गरेज रमणी अपने जीवनके लिए एक पुरुष चाहती हैं, जिसको वह प्यार और आदर कर सके, जिसपर स्वयंको निर्भर रख सके और जिसके लिये अपने प्राण तक निछावर कर सके।
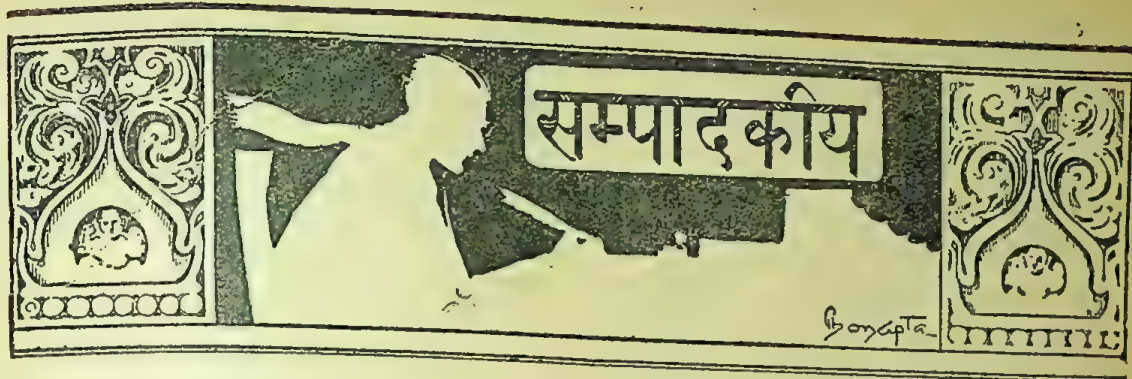
गांधी-तुम्हारा जय हो

गत २ अक्तूबरको सर्वत्र, देश विदेशमें, विश्व-वरेण्य महात्मा गांधीका जन्म दिवस मनाया गया। यह उनकी ७५ वीं वर्षगांठ थी। इस अवसरपर माता कस्तूरबा की पुण्य स्मृतिमें गांधीजीको ७५ लाख रुपयेकी थैली भेंट करनेका निश्चय किया गया था। विदेशी सरकार जिसे देशका विद्रोही, शान्ति भङ्ग करनेवाला अवांछनीय व्यक्ति कहते संकुचित नहीं होती उसी विद्रोही नंगे फकीरके चरणोंमें देश ७५ लाखकी जगह एक करोड़ १६ लाखसे अधिककी थैली भेंट करता है। देशने अपना मत प्रकट कर दिया कि विद्रोही कौन है, शांति भङ्ग करनेवाला और अवांछनीय कौन है? किन्तु इतनेपर भी ब्रिटिश साम्राज्यको अक्षण्ण बनाये रखनेके लिये उतावले और अधीर ब्रिटिश कूटनीतिज्ञ और उनके नेता मि० चर्चिल देशके इस निर्णयको देखकर भी नहीं देखना चाहते, नहीं मानना चाहते। मानें कैसे? यदि आज वे इस बातको स्वीकार कर लें कि महात्मा गांधी हिन्दुस्तानके सर्वमान्य नेता हैं, उन्हींके साथ वार्तालाप करनेसे देशका वर्तमान राजनीतिक गतिअवरोध दूर हो सकता है तो उनके स्वार्थको आघात पहुंचेगा। किन्तु वे मानें या न मानें, संसारकी सभी महानात्माएं, न्याय और शांतिकी प्रतिष्ठाके समर्थक इस सत्यको मानते हैं। गांधी जन्म दिवसके उपलक्षमें दुनियाके कोने-कोनेसे आये हुए संदेश इस बातके साक्षी हैं कि न्याय-प्रिय संसार जानता है कि विश्वमें शान्ति तभी स्थापित हो सकती है जब दुनिया गांधीजीके बताये मार्ग—सत्य, अहिंसा और प्रेम,—पर चलनेको तैयार होगी।

अमेरिकन मिशनरी रेवरेण्ड रेल्फ रिचार्ड कीथने भारतवर्षसे प्रस्थान करनेके पूर्व ठीक ही कहा है,—"गांधीजी हम लोगोंको मूलभूत सत्यकी ओर लौट आनेको कहते हैं भारतवर्ष और मानवताको गांधीजीकी जो देन है उसकी विशिष्टताको हममेंसे बहुतोंने अभीतक अच्छी तरह समझा भी नहीं है।" और इस सत्यको समझनेके लिये संसारको स्वार्थके घृणित स्तरसे ऊपर उठना होगा। यदि गांधीजीके जीवनकालमें संसार इस सत्यको नहीं समझ सका तो उसका भविष्य अन्धकार-पूर्ण है। मनुष्यका व्यक्तित्व जबतक संसारमें शोषित होता रहेगा, जबतक नश्वर और अशाश्वत सिद्धान्तोंको जीवनका आदर्श बनाया जाता रहेगा तबतक विश्वमें शांतिकी चर्चा करना दर असल उसका उपहास मात्र समझा जायेगा। संसारको चाहिये कि वह गांधीजीके चरणों तले बैठकर उनसे सत्य और प्रेमका पाठ सीखे तभी दुनियामें सच्ची शांति होगी।

भगवान गांधीजीको शताधिक वर्षतक जीवित रखे ताकि वे भ्रांत संसारको सीधे मार्गपर, अपने जीवन-कालमें ही ले आ सकें। गांधी तुम्हारी जय हो।

क्या सोच रहे हैं

देशके अवरुद्ध राजनीतिक वातावरणको मुक्त बनानेके लिये गांधीजीके अबतकके सभी प्रयत्न ब्रिटिश साम्राज्यवादियोंकी हठनीति और शठ आचरणके फलस्वरूप व्यर्थ हो गये। जेलसे निकलनेके बाद ही उन्होंने इस बातकी चेष्टा की कि जेलोंमें अवरुद्ध कांग्रेस नेताओंसे कमसे कम विचार-विनिमय करनेकी सुविधा उनको दी जाये। देशके सभी दलोंने एक स्वरसे इस दिशामें उनका समर्थन किया और कांग्रेसी नेताओंको जेलमुक्त कर देने या कमसे कम महात्माजीको उनसे मिलनेकी सुविधा प्रदान करनेकी मांग की, लेकिन ब्रिटिश नौकरशाही और ब्रिटिश सरकार टससे मस नहीं हुई। इस तरफसे सम्पूर्णतः निराश होकर उन्होंने मुस्लिम लीगसे साम्प्रदायिक समझौतेके प्रश्नपर बातचीत करने और यदि समझौता हो जा सके तो बादमें सरकारपर सम्मिलित दबाव डालनेके इरादेसे लीगके कायदे आजम जिन्नासे मिलनेका प्रयत्न किया। गत अगस्त मासमें दोनों

नेता मिले भी किन्तु यह प्रयास भी निष्फल हुआ। जिन परिस्थितियोंमें गांधीजी जिन्ना साहबसे मिलनेको तयार हुए थे शायद ही कोई दूसरा नेता ऐसा करनेका साहस करता। किन्तु गांधीजी दूसरे धातुसे बने हुए हैं वे माना-पमानकी परिधिसे बहुत ऊपर उठ चुके हैं। जिन्ना साहबसे मिलनेको गांधीजीके बम्बई जानेकी बात सुनकर बहुतसे भाई अत्यधिक क्षुब्ध हो उठे, और इस तरह गांधीजीके झुकते जानेकी बातसे वे बहुत मर्माहत हुए। लेकिन जहां देशके मान-अपमानका प्रश्न है वहां गांधीजी अपने व्यक्तित्वको मानापमानका प्रश्न कैसे बना सकते थे। जहां तक हो सकता था गांधीजीने जिन्ना साहबको सन्तुष्ट करनेके लिये कोई बात उठा नहीं रखी। किन्तु गांधीजीका यह कहना ही सच निकला कि जब तक तीसरी शक्ति मौजूद है हिन्दू मुसलिम समझौता होना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है; और कठिनाईकी वही पहाड़ी विकराल रूपमें गांधी-जिन्ना मिलनके बीचमें खड़ी दिखायी दी। जिन्ना साहब, जिन्होंने उस पहाड़ीको जान बूझकर खड़ा किया था भला उसे लांघ कर कैसे गांधीजीसे मिलते। न मिले। और व्यर्थ मनोरथ गांधीजी वापस आये।

ऐसी स्थितिमें आज लोगोंके दिलोंमें यह सवाल उठना स्वाभाविक ही है कि अब गांधीजी क्या सोच रहे हैं। इस सम्बन्धमें तरह तरहकी कल्पना जल्पना हो रही हैं। क्या गांधीजी फिर कोई आन्दोलन आरम्भ करेंगे? वर्तमान स्थितिमें अभी निकट भविष्यमें तो इस तरहकी सम्भावनाके सत्य होनेके लक्षण नहीं दिखायी देते। क्या अनशन करेंगे? इस सम्बन्धमें गांधीजीने स्वयं स्थितिको खुलासा कर दिया है। वे यह मानते हैं कि अनशन सत्याग्रहीका अन्तिम सम्बल है। उनके हृदयमें यह प्रश्न उठता भी है कि क्या अनशन करना चाहिए? अभी तक वे कुछ स्थिर नहीं कर सके। उनका कहना है कि सत्याग्रही अनशन किसीके विरुद्ध नहीं करता। वह तो आत्म शुद्धि और अपनी दुर्बल-ताओंको दूर करनेके लिये भगवानके निकट तक अपने हृदय-की प्रार्थनाको पहुंचानेके लिये अनशन-मार्गका अवलम्बन करता है। उनका हृदय यह टटोल रहा है कि ये असफल-ताएं मेरी निजी दुर्बलताओं और त्रुटियोंका परिणाम तो नहीं है? अभी तक वे कुछ स्थिर नहीं कर सके। यही वजह है कि प्रकाश पानेके लिये इस सम्बन्धमें वे अन्तरंग स्थानीय व्यक्तियोंसे विचार विमर्श भी कर रहे हैं।

इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि आजकल वे किसी अत्यन्त गम्भीर और महत्वपूर्ण विषय पर ध्यानमग्न और चिन्ता-मग्न हैं और उनकी यह चिन्ता किस स्थूल रूपमें संसार-के सामने प्रत्यक्ष होगी यह बात आज कोई नहीं कह सकता। देश उनकी तरफ आशा और उद्विग्नता भरी दृष्टिसे देख रहा है। पथ-प्रदर्शनके लिये उनके आगे आनेकी बाट जोह रहा है और वे भी आगे कदम रखनेको घड़ी आनेकी बाट जोह रहे हैं।

हिन्दी पर प्रहार

जयपुरमें होने वाले अखिल भारतवर्षीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनके अध्यक्ष-पदसे भाषण करते हुए गोस्वामी गणेशदत्तजीने इस बात पर अच्छी तरह प्रकाश डाला है कि हिन्दी पर किस प्रकार प्रकट और गुप्त प्रहार किये जा रहे हैं। किसी भाषाके साहित्यकी उन्नति तब तक वांछनीय रूपमें नहीं हो सकती जब तक उसका देशमें व्यापक प्रचार न हो। उर्दूके समर्थक और हिन्दीके विरोधी, उर्दूको बढ़ाने और हिन्दीको दबानेके लिये घृणित उपायोंसे काम ले रहे हैं। हम उर्दू साहित्यकी उन्नति चाहते हैं, उससे हमारा कोई विरोध नहीं है। किन्तु हमारी इस चाहका यह अर्थ नहीं हो सकता कि हम हिन्दीका अहित करें। आज यही किया जा रहा है, यह बात गोस्वामीजीने अच्छी तरह सिद्ध कर दी है। दुखकी बात यह है कि हिन्दीको कुचलने और उसकी जगह उर्दूको बढ़ावा देनेकी नीतिको सरकार प्रश्रय दे रही है। जब तक विदेशी सत्ताके हाथमें देशका शासन सूत्र है तब तक भाषा, जाति, सम्प्रदायगत भेद भावों-को बढ़ा कर, एकके मुकाबले दूसरेको अवांछनीय प्रोत्साहन देकर देशमें वैषम्यको बढ़ाया ही जाता रहेगा। ऐसी स्थितिमें हिन्दी भाषियों पर बहुत बड़ी जिम्मेदारी है। जब तक राष्ट्रीय सरकार नहीं बनती तब तक हिन्दीके प्रचार द्वारा हिन्दी साहित्यको पुष्ट बनानेका काम एक मात्र उन-को अपने बल पर करना होगा। सम्मेलनको प्राणदायिनी शक्ति देने वाले श्रद्धेय पुरुषोत्तम दासजी टण्डनके नेतृत्वमें हिन्दी-भाषी विद्वान और धनवान मिलकर हिन्दी-प्रचार-कार्यको अपने हाथमें लेंगे, ऐसी आशा है। इस कार्यमें सभी साहित्यिकोंको, भेदभाव छोड़ कर, सम्मेलनको और उसके वर्तमान सभापति गोस्वामी गणेश दत्तजीको अपना सहयोग देना चाहिये, तभी हमें सफलता मिल सकती है।

सम्मेलनके ये समालोचक

हर अच्छे काममें अड़ंगा लगाने वाले और उसकी निन्दा करने वालोंकी इस स्वार्थी संसारमें कमी नहीं है। हमें इस

तरहके आलोचकोंपर तरस आता है जो सिर्फ इस भावनासे सम्मेलनकी निन्दा करते हैं कि अभी तक वे उसके अधिकारी वर्गमें घुस नहीं सके। ये बहुधन्धी समालोचक जब सम्मेलन-को कुछ बहुधन्धी व्यक्तियोंका अड्डा कहते हैं उस समय अपनी बात भूल जाते हैं। ऐसे समालोचकोंमें हमें तो एक भी ऐसा नहीं दिखायी पड़ा जिसने निःस्वार्थ भावसे हिन्दी-भारतीकी सेवा करनेके लिये अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया है। ऐसे समालोचकोंको चाहिये कि दूसरोंको भला बुरा कहनेके पहले इस दोहेका भाव हृदयङ्गम करें जिसे उन्होंने पढ़ा तो, एक नहीं अनेक बार होगा, किन्तु इसका मर्म नहीं समझा, या समझ कर भी तद्वत् आचरण नहीं करते। "बुरा जो खोजन मैं चला, बुरा न दीखा कोय, जो दिल खोजा आपना मुझसा बुरा न कोय।"

हमारे कहनेका तात्पर्य यह नहीं कि सम्मेलन त्रुटियोंसे मुक्त संस्था है। अधिकसे अधिक सुसंगठित संस्थाओंमें भी सुधार और संशोधनकी गुंजाइश रहती है। सुधार और संशोधन चाहने वाले व्यक्ति सद्भाव, सहयोग और प्रेमको अपना आधार बनाकर सम्मेलनके कार्योंकी समालोचना करें, उसकी त्रुटियोंकी ओर अधिकारियोंका ध्यान आकर्षित करें, तभी वांछनीय अभीष्टकी प्राप्ति होगी। समालोचकोंका यह दृष्टिकोण अभिनन्दनीय होगा। इसके विपरीत यदि वे "किन्हीं" बातोंसे प्रेरित होकर सम्मेलनके विरुद्ध पहले ही से, उस पर वार करनेकी दृष्टिसे ही, अपनी बनी हुई धारणाके आधार पर चलेंगे तो संस्थाका अहित ही होगा। समालोचकका कार्य अहित करना नहीं, अपितु सृजन, निर्माण और निर्माताका हित साधन होना चाहिये।

मास्कोसे विफल मनोरथ

मास्को यात्रासे वापस आनेके बाद कामन सभामें प्रीमियर चर्चिलने मार्शल स्टैलिनके साथ अपनी बातचीतके सम्बन्धमें जो वक्तव्य दिया है उसकी कूटनीतिक भाषापर ध्यान देनेसे यह साफ प्रतीत होता है कि प्रीमियर साहबको विफल मनोरथ वापस आना पड़ा है। बालकन और रूस-पोलिश फ्रांटियरका दृष्टिमें रखकर यूरोपमें अपना प्राधान्य बनाये रखनेके उद्देश्यको सफल बनानेके लिये ही चर्चिल साहबने, 'मान न मान मैं तेरा मेहमान' कहावत चरितार्थ करते हुए मास्कोकी सुदूर यात्रा की थी। किन्तु ठेरे ठेरे बहलौवल नहीं होती। फिर इस फनमें तो स्टैलिन उस्ताद है। अमेरिकाने इस वार्तालापमें कोई विशेष दिल-चस्पी नहीं ली। बल्कि यह कहा जा सकता है कि उसने उदासीनताका ही भाव रखा।

जहांतक ऊपरी शिष्टाचार और आवभगतका प्रश्न था स्टैलिनने जरा भी कोरकसर नहीं रखी और दोनोंने ही 'परस्परम् प्रशंसन्ति अहो रूपम् अहो ध्वनिम्' चरितार्थ किया। किन्तु चर्चिलका उद्देश्य तो इतना ही नहीं था। जर्मनी, पोलैंड, बालकन देशोंकी समस्याका समाधान इस भांति हो कि पूंजीवादी ब्रिटेन यूरोपमें पुनः अपना प्राधान्य बनाये रख सके, यही उद्देश्य लेकर चर्चिल मास्को गये थे। जर्मनीके सम्बन्धमें ब्रिटेन एवं अमेरिकाके प्रभावशाली अञ्चलोंमें क्षमा-नीति बरतनेपर जोर दिया जा रहा है। समाजवादी रूसका यूरोपमें एक छत्र प्राधान्य रोकनेके लिये यह आवश्यक है कि जर्मनीकी सैनिक शक्ति कुण्ठित न की जाये। समय असमयपर रूसको धमकानेके लिये यह भी आवश्यक है कि रूसकी सीमापर स्थित पोलैंडकी सरकार न्यस्त स्वार्थोंको बनाये रखनेवाली हो और बालकन प्रदेशमें सर्वाधिक प्रभावशाली और प्रतिक्रियाशील हुंगेरियाकी शक्ति क्षीण न होने पाये ताकि आवश्यकता पड़नेपर समाज-वादकी तरफ झुकते हुए अन्य राष्ट्रोंके विरुद्ध उसे खड़ा किया जा सके लेकिन इनमेंसे एक बातपर भी चर्चिल स्टैलिनको अपना मत स्वीकार करा सकनेमें समर्थ नहीं हुए, यही वजह है कि कामन-सभामें आपको गोल मटोल वक्तव्य देना पड़ा। आपने कहा कि 'मास्कोसे मैं अत्यन्त संतुष्ट होकर आया हूं लेकिन कोई अन्तिम निर्णय नहीं हो सका और यह तभी होगा जब तीनों सरकारोंके प्रधान पुनः मिलेंगे।'

इसके सिवा और कहते ही क्या। अत्यन्त सन्तुष्ट होकर लौटे फिर भी कुछ हुआ नहीं। स्टैलिन इतना कच्चा नहीं है कि एकमात्र अपनी शक्तिके आधारपर अर्जित प्रभाव-में ब्रिटेनको हिस्सा बांटने लगे। बाल्टिक, बालकन और जर्मनी तक फैले हुए यूरोपपर अब तो सोवियट रूसका ही नेतृत्व रहेगा। यही कारण है कि युद्धोत्तर-कालीन जर्मनीके अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्नपर सोवियट यूनियन किसीकी बात माननेको तैयार नहीं हो सकता। प्राप्त समाचारोंसे ज्ञात होता है कि जर्मनी द्वारा ध्वस्त किये गये अंचलोंका जर्मन श्रमिकोंसे पुनर्निर्माण करानेकी सोवियट शर्तपर अमेरिकाको आपत्ति है! उधर ऐसा समझा जाता है कि रूस अपनी इस मांगपर टलने वाला न होगा बल्कि ब्रिटेन और अमेरिका जबतक रूसकी इस शर्तको स्वीकार न करेंगे तबतक उनके

साथ भावी सहयोगके प्रश्नपर रूस वार्तालाप तक करनेको तैयार न होगा। मास्को-वार्तालापसे यह स्पष्ट है कि चर्चिल स्टैलिनको अमेरिकाके रुखके अनुकूल नहीं बना सके। इन सब बातोंको देखते हुए यह स्पष्ट है कि चर्चिल-की मास्को-यात्रा विफल हुई।

स्पेनमें फिर गृहयुद्ध

फ्रांस और स्पेनसे प्राप्त समाचारोंसे यह सम्भावना जान पड़ती है कि स्पेनिश गृहयुद्धकी धधकती ज्वाला, जो १९३९ के आरम्भमें शान्त पड़ गयी थी और जिसके फल-स्वरूप प्रजातन्त्रवादियोंकी जगह तानाशाह जेनरल फ्रैंको स्पेनका सर्वेसर्वा बन बैठा था, अब फिर भड़क उठा है। पिछले गृहयुद्धमें फ्रैंकोने जर्मनी और इटालीकी प्रत्यक्ष सहायता और फ्रांस तथा ब्रिटेनके अप्रत्यक्ष सहयोगसे स्पेन-के प्रजातन्त्रवादियोंको पछाड़ा था। इस बार यूरोपकी स्थिति बिलकुल बदली हुई है। इटाली इस स्थितिमें नहीं है कि वह फ्रैंकोकी मदद कर सके। जर्मनी इच्छा रहने पर भी, स्वयं ऐसे जीवन-मरणके संघर्षमें घिरा हुआ है कि वह आज फ्रैंकोकी मदद नहीं कर सकता। अप्रत्यक्ष सहयो-गियोंमें एक फ्रांस तो, प्राप्त समाचार बता रहे हैं, प्रजा तन्त्रवादियोंकी तरफ है। दूसरा ब्रिटेन क्या रुख लेगा अभी अनिश्चित और अस्पष्ट है। अवश्य ही अभी कुछ दिन पहले, जब तटस्थ रहते हुए भी स्पेनके जर्मनीकी मदद करनेके स्पष्ट प्रमाण प्राप्त होने पर अमेरिकाने फ्रैंकोकी निन्दा की थी और स्पेनको मिलनेवाली तेलकी सप्लाई वाध्यहोकरबन्द कर देनी पड़ी थी; तब भी ब्रिटिश प्रीमियर चर्चिल साहबने जेनरल फ्रैंकोकी पीठ ठोंकी थी। यह बात ठीक है कि ब्रिटेन आज भी, अप्रत्यक्ष ही सही, फ्रैंकोकी मदद अवश्य करता, यदि उसे इस बातकी आशंका न होती कि इसका परिणाम आज उसके हितके लिये श्रेयस्कर न होगा। सोवि-यट रूस उस बार भी स्पेनके प्रगतिशील दलके साथ था, इस बार तो कहनेकी बात ही नहीं है।

आये हुए समाचार यह बताते हैं कि रिपब्लिकनोंने काफी तैयारीके साथ फ्रैंकोके साथ संघर्ष छेड़ा है। कहते हैं कि प्रायः २० हजार स्पेनिश रिपब्लिकन माकी, फ्रांससे आये हुए रिपब्लिकनोंके साथ मिलकर लेरिडा पर्वत पर लड़ रहे हैं। उधर जेनरल फ्रैंकोने सीमान्त पर नियमित सेना रख छोड़ी है ताकि रिपब्लिकन गुरिल्ले न घुस सकें। पेरिस-से प्रकाशित कम्यूनिष्ट पत्र 'ह्यूमेनाइट' का कहना है कि स्पेनिश देशभक्त अस्टूरिया, एस्ट्रीमडूरा, एण्डालूसिया, बिसके और कैटालोनियामें लड़ रहे हैं। बार्सिलोनासे प्राप्त ताजे समाचार हैं कि सीमाप्रान्तीय मुठभेड़ आर्न वेलीमें हुई, जहां स्पेनिश माकियोंने फ्रांसकी सीमाके चार गांवों पर अधिकार कर लिया है। एक युद्धमें कहते हैं कि माकी, जो राइफल, मशीन-गन और मोर्टारसे सुसज्जित हैं, तीन हजारके करीब मारे गये हैं। इस समाचारसे, जो फ्रैंको द्वारा नियन्त्रित एजेंसीका भेजा हुआ है, यह पता चलता है कि युद्ध कितना भयंकर और विकराल हो रहा है।

जो हो, इसमें सन्देह नहीं कि स्पेनके प्रजातन्त्रवादियोंने फ्रैंकोका तख्ता पलट देनेका बहुत सुन्दर मौका चुना है। यह बात नहीं है कि फ्रैंको इस सम्भावनासे अनभिज्ञ था। उसे सदा भय था कि माकी मौका पाते ही उपद्रव करेंगे और इस स्थितिका सामना करनेके लिये वह पहले ही से अपनेको तैयार कर रहा था। किन्तु यूरोपकी बदली हुई स्थिति निश्चय ही आज प्रजातन्त्रवादियोंके अधिक अनु-कूल है।

नवलकिशोर सिंह द्वारा 'विश्वमित्र' प्रेस, १४।१ ए, शम्भू चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्तामें सम्पादित मुद्रित और प्रकाशित।

REGD. No. C. 2230

वार्षिक
६)
विश्वमित्र
मूल्य
॥)
विश्वमित्र कार्यालय
कलकत्ता

दिसम्बर १९४४ पौष २००१

क्रान्तिकी पुकार

तुम नूतन अभियानों से ये चिर जर्जर मार्ग बदल डालो

(१)

क्यों जीर्ण पुरातनके चिथड़ोंसे ऐसा रोगी मोह तुम्हें
क्यों नवयुगके कठोर जागृत सपनोंसे होता द्रोह तुम्हें
तूफान नदीमें आया है ये नावें काम न आयेंगी
ये घिसी युगोंकी पतवारें तिनकों सी गिर बह जायेंगी
नाविक नौका पतवार—बदलना होगा, धाराका क्रम भी
तुम नूतन अभियानोंसे ये अवरोधी मार्ग बदल डालो

(२)

गंगा जमुनाका मेल नहीं—यह युद्ध पुरातन नूतनका
फिर तुम तो वह आंधी हो जो उन्माद छिपाये यौवनका
जो प्रतिद्वन्द्वी आशायें ले जीवनकी मति खंडित करती
जिसके आगे प्रतिहिंसा भी कातर होती - मिन्नत करती
लाशों सी लटक रही जिन बूढ़े वृक्षोंकी सूखी शाखें
तुम उन बेजान गरोहोंके चिर जर्जर मार्ग बदल डालो

(३)

यह जीवन एक कठोर वास्तविकता है—नहीं कहानी यह
तुम लिये पड़े सपने हजार वर्षोंके—क्या नादानी यह
भूखा भूखा नंगा नंगा व्याकुल है ज्वालामुखी बने
तुम क्यों बैठे हो उधर—एक झूठी भावुकता लिये तने
फूलोंकी गंध प्रभात पवनमें हो लपटोंकी दाहकता
उपवनके सारे स्रोतोंको तुम कुछ इस तरह बदल डालो

(४)

तुम महा शक्तिकी-गति आशा जो खेले भावीके पथ पर
सूखे हाड़ोंमें महावज्रका नाद भरे जिसका प्रति स्वर
फिर आज तुम्हारी आंखोंके आगे है समताका खाका
जिसको अनगिनत शहीदोंने अपने बलिदानोंसे आंका
लघुताके क्षुद्र धरातलमें सोया संहारक बल लेकर
तुम नूतन अभियानोंसे ये अवरोधी मार्ग बदल डालो

—'अंचल'

मित्रताकी कसौटी----पोलैण्ड

पं० मातासेवक पाठक, सम्पादक दैनिक विश्वमित्र

यह किसे नहीं पता है कि वर्तमान महायुद्ध पोलैण्डपर जर्मन आक्रमणके कारण छिड़ा था। जो ब्रिटेन यूरोपके कई छोटे राज्योंकी स्वतन्त्रताका हिटलर द्वारा अपहरण चुपचाप देख चुका था और उसके विरुद्ध कुछ कार्रवाई करनेके बदले नाजियोंको सन्तुष्ट करनेकी नीति ग्रहण करनेमें ही अपने कर्तव्यकी इतिश्री समझे हुए था, अन्तमें पोलैण्ड पर जर्मनोंका आक्रमण होनेपर उसके भी धैर्यका बांध

चित्रमें सबसे आगेकी कुर्सीमें पोलैण्डसे भागनेवाली सरकारके प्राइम मिनिस्टर और कमाण्डर इन-चीफ जेनरल सिकोर्स्की जिनकी मृत्युके बाद मो० माइकालोजिक प्रधान मन्त्री बने।

टूट गया। १९३९ ई० के १ सितम्बरको जर्मन सेनाओंने हिटलरके आदेशपर पोलैंण्ड पर आक्रमण कर दिया और ३ सितम्बरको ब्रिटेन और फ्रांसने इसके प्रतिवाद स्वरूप जर्मनीके विरुद्ध युद्धकी घोषणा कर दी। घोषणा तो कर दी युद्धकी, किन्तु वे लड़ाईके लिये तैयार होते, तो भी अपनी भौगोलिक स्थितिके कारण उस समय पोलैण्डको किसी प्रकारकी सैनिक सहायता नहीं पहुंचा सकते थे। पोलैंण्डने हिटलरकी डैनजिग और उसके निकटके भू-भाग कोराइडरको समर्पण करनेकी मांग अस्वीकार कर दी, इसीसे क्रुद्ध हो जर्मनीने उसपर चढ़ाई कर दी। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि पोलैण्डने हिटलरकी इच्छाके विरुद्ध उस समय जो साहस दिखाया उसमें उसे प्रोत्साहन देनेवाले ये दोनों मित्रराष्ट्र ही थे, इसलिये पोलैण्डका पक्ष ग्रहण करके जर्मनीसे युद्धकी घोषणा करने ही में ब्रिटेन और फ्रांसकी प्रतिष्ठा थी। परन्तु जर्मनी जैसे महान् शक्तिशाली और युद्धके लिये पूरी तैयारी कर रखे हुए राज्यसे लड़ने योग्य: न तो उसके पास सेना ही थी और न युद्ध सामग्री ही। फल यह हुआ कि पोलैण्डको केवल अपनी ही शक्तिसे अपनेसे अत्यन्त उत्कृष्ठ जर्मन वाहिनीसे मोर्चा लेना पड़ा और यह तो जानकारोंको विदित ही है कि पोलैण्ड अठारह दिन तक जर्मनोंसे लड़ा और खूब लड़ा। हिटलरने पोलैण्ड पर आक्रमण करनेके प्रायः एक सप्ताह पहले उसके पड़ोसी सोवियट रूसके साथ मित्रता और अनाक्रमणकी सन्धि करके उसकी ओरसे निश्चिन्तता प्राप्त कर ही रखी थी इसलिये पोलैण्डको पादाक्रांत करनेसे संसारकी कोई शक्ति उसे नहीं रोक सकती थी। सोवियट रूसने पहले अपने पड़ोसी राज्योंके साथ अनाक्रमणकी सन्धि कर रखी थी और उनके प्रति वह मित्रता और सद्भाव ही प्रकट करता देखा गया था। १७ दिसम्बरको पोलिश सेनाओंके पैर उखड़ गये और जर्मन सेनाएं पोलैण्डकी राजधानी वारसा तक पहुंच चुकी थी तथा पोलिश सरकारके उच्च अधिकारी भी राजधानीसे चले जा चुके थे। जब ऐसा प्रतीत होता था कि पोलैंण्डकी शक्ति समाप्त हो चुकी और जर्मन सेनाएं समस्त पोलैण्डपर अधिकार जमा लेना चाहती है, तब दूरदर्शी मार्शल स्टेलिनने अपनी लाल सेनाको भी पूर्वसे पोलैण्डके भीतर घुस पड़ने और शीघ्र-से-

शीघ्र पोलैण्डके पूर्वी भागपर अधिकार जमा लेनेकी आज्ञा दे दी। आज्ञा मिलनेकी ही तो देर थी; पूर्वापाथकी भांति पोलैण्ड—रूसी सीमापर समवेत प्रबल लाल सेनाने विद्युत गतिसे अग्रसर हो वारसाके आधे भाग तक समस्त पूर्वी पोलैण्डपर अपना अधिकार जमा लिया। ब्रिटेन और फ्रांस से जितना बन पड़ा, सोवियट रूसको उसके इस कार्यके लिये खूब कोसा और स्टेलिनके विरुद्ध धुआंधार प्रचार किया गया। कदाचित सर्वप्रथम उसी समय इन मित्र-राष्ट्रोंको अपनी उस अदूरदर्शिता और मूर्खताके लिये सर्व-प्रथम अतिशय पश्चात्ताप हुआ, जो कुछ ही दिन पहले सोवियट रूसके सन्धि-प्रस्तावको अस्वीकार करके इन्होंने प्रदर्शित की थी। परन्तु 'तब पछताये होत क्या, जब चिड़ियां चुग गयी खेत ?' हमें स्मरण है कि जर्मनोंको स्टेलिनकी वह कार्रवाई पसन्द नहीं आयी थी, पर हिटलर उसे खूनकी घूंटकी तरह पीकर चुप रह गया, इससे कितने ही लोगोंको तब यह सन्देह हो गया कि हो-न-हो मार्शल स्टेलिनके साथ अगस्तके तीसरे सप्ताह (१९३९ ई०) में हिटलरने मित्रताकी जो सन्धि की थी, उसीमें पौलैण्डको जर्मनी और रूसमें बांट लेनेका निश्चय गुप्त रूपसे कर लिया गया था। पूर्वी पोलैण्डपर रूसका और पश्चिमीपर जर्मनीका अधिकार हो जानेके बाद दोनोंमें अधिकृत भागोंकी सीमा निर्धारित करनेमें कोई कठिनाई नहीं हुई और शीघ्र ही सब कुछ तय हो गया। रूसियोंने उसी समय अपने कार्यका औचित्य बताते हुए यह भी कह दिया था कि पोलैण्डके जिस भू-भागपर उन्होंने अधिकार किया है, वह वस्तुतः रूसका ही था और पोलैण्डने धींगाधींगीसे उस समय उसे अपने राज्यमें मिलाया था, जब बोलशेविक-क्रांतिके कारण रूस सर्वथा असंगठित और निर्बल था। रूसियोंका यह कहना साधार है, पर उसके विस्तारमें जानेसे लेख इतना लम्बा हो जायगा कि इस समय जो विषय विचारणीय है, उसपर पर्दा पड़ जानेका भय है।

पोलैण्डके उस बंटवारेके सम्बन्धमें उसके मित्रोंने उस समय केवल इतना ही किया था कि घोषणा द्वारा यह प्रकट कर दिया था कि अगस्त १९३९ ई० के बाद पोलैण्डमें जो भी भू-भाग विषयक परिवर्तन हुए हैं, उन्हें हम स्वीकार नहीं करते। आज अपनी उस समयकी घोषणाकी लाज रखनेके लिये ही ब्रिटेन और उसके मित्र अमरीकाको इतनी चिन्ता है।

दो वर्ष पीछे जब पांसा पलट गया और हिटलरने अपने मित्र सोवियट रूसपर ही आक्रमण कर दिया, तब ब्रिटेनके प्रधान मन्त्री मि० चर्चिलने अत्यन्त दूरदर्शिता पूर्वक तत्काल सोवियटको सभी सम्भव सहायताएं देनेकी घोषणा कर दी। ब्रिटेनको रूसके साथ सन्धि करनेमें ही लाभ दिखाई पड़ा और पोलैण्डकी जो सरकार लन्दनमें शरण लिये हुए थी उसे भी ब्रिटेनके साथ सोवियट रूससे मित्रता गांठनेकी प्रेरणा हुई। १९४१ ई० में पोलैण्ड, ब्रिटेन और रूसमें मित्रता की सन्धि हुई, जिसके द्वारा "सोवियट रूसकी सरकारने यह स्वीकार किया कि १९३९ ई० में जर्मनी और सोवियटकी जो सन्धियां पोलैण्डके भीतर भू-भाग विषयक परिवर्तनोंके लिये हुई थीं, वे समाप्त हो गयीं।" ब्रिटिश परराष्ट्र मन्त्री मि० एडेनने एक बार फिर यह घोषणा की कि, "ब्रिटेन उन भूमि सम्बन्धी परिवर्तनोंको स्वीकार नहीं करता, जो पोलैण्डमें १९३९ के अगस्तसे इधर हुए

भगोड़ी सरकारके एयर मार्शल जेनरल डजेल्की और जेनरल हेडक्वार्टर्सके जेनरल मोबेलस्की।

हैं।" इस सन्धिको नाजी आक्रमणके कारण एक समान संकटमें पड़े हुए राज्योंकी मित्रता ही समझना ठीक होगा। आज यद्यपि पोलैण्डके एक भागका उद्धार करनेमें रूसकी लाल सेना सफल हो चुकी है, पर पश्चिमके आधे भागपर और राजधानी वारसा पर भी जर्मनोंका ही अधिकार बना हुआ है। परन्तु पोलैण्डका प्रश्न जैसा विकट रूप धारण कर चुका है, वह पाठकोंसे छिपा हुआ नहीं है। अबसे कई सप्ताह पहले विलायतके सुप्रसिद्ध पत्र 'न्यू स्टेट्समैन ऐण्ड नेशन' ने अपने सम्पादकीय लेखमें स्पष्ट शब्दोंमें यह लिखा था—"इङ्गलैण्ड-सोवियट-पोलिश-सम्बन्धोंके यह ऐतिहासिक महत्वका समय है। इस समय समझौता हो जानेसे मित्रराष्ट्रोंके समझौते और खास कर इङ्गलैण्ड और सोवियटकी मित्रता और भी दृढ़ हो जा सकती है। समझौता न किया जा सका, तो नाजियोंकी राजनीतिक विजय होगी।" ऐसा महत्वपूर्ण प्रश्न हो गया है यह। हममें से बहुतोंको यह भी मालूम है कि एक ओरसे ब्रिटेन और अमरीका और दूसरी ओरसे सोवियट रूसने पोलैण्डके प्रश्नको ही आपसकी मित्रता की कसौटी बना रखा है। ब्रिटेन और अमरीकाका कहना यह है कि यदि सोवियट रूस पोलैण्डके विषयमें वैसा ही करता है, जैसा वे चाहते हैं और जिसके लिये वे पहले प्रतिज्ञाएं और घोषणाएं कर चुके हैं, तब तो उससे यह प्रकट हो जायेगा कि वह हमारी मित्रता को मूल्यवान् समझता है और भविष्यमें भी हमारे साथ सच्चे दिलसे सहयोग करनेके लिये तैयार है। उधर सोवियट रूसका भी यह कहना है कि कसौटीपर कसकर ही हम देखेंगे कि हमारे ये मित्र हमारा कितना विश्वास करते हैं।

पाठकोंको इतना जान लेनेके पश्चात् अब यह मालूम होनेमें कुछ कठिनाई नहीं होनी चाहिये कि पोलैण्डको ब्रिटेन और अमरीका तो उसके पूर्व रूपमें स्वतन्त्र और अखण्ड देखना चाहते हैं, जब कि उनके मित्र सोवियट रूस उसके पूर्वीय आधे भागपर अपना अधिकार बनाये रखनेको कृत-संकल्प है, क्योंकि उसे वह अपना ही भू-भाग समझता है। जब दोनों पक्षोंकी विचारधाराएं इस तरह प्रतिकूल दिशाओंमें प्रवाहित हो रही हैं, तब उनमें मेल और सामंजस्य स्थापित करना कैसे सहज हो सकता है? जहांतक सोवियट रूसका सम्बन्ध है, उसने अपना मन्तव्य तनिक भी अस्पष्ट नहीं रखा है। १९३९ ई० के सितम्बरमें पोलैण्ड के पूर्वी अर्ध भागपर अधिकार जमा लेनेके पश्चात् ३१ अक्तूबरको सोवियट रूसके परराष्ट्र विभागके अध्यक्ष मोलोटोवने सुप्रीम सोवियट कौंसिलको बताया था कि, "पोलैण्डका अस्तित्व मिट चुका है और अब वह कभी फिर स्वतन्त्र न होगा।" उसके जितने भाग पर सोवियट सेना ने अधिकार किया था, कमसे-कम उतनेके लिये तो सोवियट रूसका यही भाव आज भी बना हुआ है, क्योंकि सबसे ताजी नीति-घोषणामें भी उसने यह स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया है कि, "पूर्वी पोलैण्डके विवादग्रस्त भू-भागोंके प्रश्नपर रूसका विचार दृढ़ बने रहनेका है।" उसकी ऐसी दृढ़ता और आग्रह देखकर ही मि० चर्चिलने हालमें मास्को जानेके

मि० चर्चिल

पहले ही खुले तौर पर स्वीकार कर लिया था कि युद्धमें जर्मनीको हरानेमें सोवियट रूसने जो कुछ किया है, उसके विचारसे उसे अपनी पश्चिमी सीमा सुदृढ़ करनेका अधिकार प्राप्त हो गया है और इस कार्यमें वह हमारी सहायताका भरोसा कर सकता है। तब यदि इतने पर भी मि० चर्चिल को मुख्यकर इसी विकट समस्याको सुलझानेके लिये मास्को जाना पड़ा और वहां कई दिनों तक ठहर कर मार्शल स्टेलिनके साथ बार्त्तालाप कर इसे सुलझानेके लिये इस तरह प्रयत्नशील होना पड़ा, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है! फिर भी उलझन सुलझी नहीं—वह बनी हुई है, यह मास्को कानफरेंसके पश्चात् प्रकाशित हुए वक्तव्योंसे स्पष्ट है। सोवियटके सरकारी पत्र 'इजवेशिया' ने लिखा था—"जैसा कि विदित है, पोलैण्डकी समस्या, उन समस्या-

ओंमें से एक है, जिनके सम्बन्धमें सोवियट रूस और ब्रिटेनके विचार पूर्णतया एकसे नहीं है। इस मतभेदसे अनुचित लाभ उठानेके लिये गोएबेल्सने अपनी शक्ति भर कुछ उठा नहीं रखा। लेकिन मास्कोमें हुए वादविवादसे प्रकट हो गया कि पोलैण्डसे सम्बन्ध रखने वाली कठिन समस्याओंके विषयमें भी रूस और ब्रिटेन एक ऐसी भाषा प्राप्त कर सके जो दोनोंको मान्य हो। ये समस्याएं अबतक अन्तिम रूपमें नहीं सुलझायी जा सकी हैं, किन्तु इस क्षेत्रमें बहुत कुछ सफलता प्राप्त की जा चुकी है और यह विश्वास करनेके लिये कारण है कि अनतिदूर भविष्यमें पोलैण्डकी समस्याका सुलझाव सन्तोषजनक रूपमें होगा।" कहनेकी आवश्यकता नहीं कि शीघ्र ही होनेवाली मार्शल स्टेलिन, मि० चर्चिल और राष्ट्रपति रूजवेल्टकी कानफरेंसमें विचारार्थ उपस्थित होनेवाले प्रश्नोंमें पोलैण्डके प्रश्नको एक प्रमुख स्थान प्राप्त होगा।

जिस प्रश्नको सभी मित्रराष्ट्रोंने मित्रताकी कसौटी बना रखा है, वह अभीतक पोलैण्डकी दो सरकारोंके बीचका बना रखा गया है। हां, इस समय पोलैण्डकी दो सरकारें हैं—एक तो लन्दनमें विराजमान है और दूसरी बनी तो खास मास्को में थी पर उसका सदर स्थान लुबलिन नामक स्थान है, जो पोलैण्डकी सीमाके समीप ही है। इनमेंसे लन्दनस्थ पोलिश सरकारके वर्तमान प्रधान मन्त्रीका नाम मो० माइकालोजिक और पोलैण्डके राष्ट्रपतिका व्लाडीस्ला रैजकीविल है। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इसे ही ब्रिटेन और अमरीका तथा सोवियट रूसके सिवा अन्य मित्रराष्ट्र भी, पोलैण्डकी सरकार स्वीकार करते हैं। रूसने भी अबसे कुछ समय पूर्व तक इसे अस्वीकार नहीं किया था, यद्यपि इसके भीतर कई 'फेसिस्टवादी' व्यक्तियोंकी उपस्थिति तथा फेसिस्टवादी सर्वाधिकारी पोलिश प्रधान पिलसुडस्कीका बनाया और जारी किया हुआ प्रगति विरोधी शासन-विधान उसे कभी स्वीकार नहीं था। अब लुबलिनकी पोलिश सरकारकी रचनाका इतिहास सुनिये। पोलैण्डके भीतर जर्मनोंके आधिपत्यका विरोध करनेवाला आन्दोलन तो उसी समयसे चल रहा था, जबसे पोलिश सरकारको भागकर लन्दनमें शरण लेनी पड़ी थी, पर इसके प्रगति-विरोधी प्रधान और फेसिस्टोंके पक्षपाती सदस्योंने उस आन्दोलनके नेताओंके सामने निरन्तर सोवियट-विरोधी बातें रखनेका भी उद्योग किया, उन्हें लाल सेनाकी विजयोंकी बात तक नहीं बतायी जाती थी। लन्दनस्थ पोलिश सरकारने दानमें पायी हुई या अपने मित्रोंसे ऋण स्वरूप ली हुई करोड़ों पौण्डकी रकम कुछ तो सोवियट-विरोधी प्रचारमें और कुछ पोलैण्डमें चलनेवाले जर्मन-विरोधी प्रतिरोध आन्दोलनको अपनी मुट्ठीमें रखनेके प्रयत्नमें खर्च की है, यह बहुतोंको नहीं मालूम होगा। परन्तु लाल सेनाकी विजयोंने अन्तमें उसके सारे कुचक्रका भण्डाफोड़ कर दिया क्योंकि वे इतनी व्यापक और महान् थीं कि पोलैण्डकी जनतासे और अधिक देर तक गुप्त नहीं रखी जा सकती थीं। जैसे जैसे वे मालूम होने लगीं और पोलैण्डके प्रतिरोध करनेवाले लोगोंके पास रूससे अधिकाधिक परिमाणमें युद्ध सामग्री पहुचने लग गयी, 'यूनियन आव पोलिश-पैट्रियट्स'-पोलिश देश भक्तोंके संघकी अपीलों का प्रभाव जोर पड़ने लग गया। यहां यह मालूम हो जाना चाहिये कि यह संस्था १९४२-४३ के जाड़ोंमें स्थापित हुई थी। इससे लन्दनस्थ पोलिश सरकारको भारी चिन्ता होनी स्वाभाविक थी। १९४३ ई० के मध्य भागमें पोलैण्डके दोनों दलोंकी मतमलीनता बहुत बढ़ गयी। यह इसीसे समझ लिया जा सकता है कि मास्कोसे तो पोलिश जनतामें जर्मनोंके विरुद्ध तोड़ फोड़की नीति काममें लाने और गुरिल्ला ढंगकी लड़ाई जोरोंसे चलानेका प्रचार किया जाता था और लन्दनकी पोलिश सरकार धीरज रखनेके लिये हुक्म निकालती थी और अनुकूल अवसरकी प्रतीक्षा करनेका आदेश दे रही थी। इस भारी मतभेदका परिणाम यह हुआ कि आरम्भमें रूसियोंने पोलैण्डके जिन जिलोंका उद्धार कर लिया था, उनके प्रतिनिधियोंकी एक संस्था 'नेशनल कौंसिल आव पोलैण्ड' (पोलैण्डकी राष्ट्र समिति) स्थापित की गयी। १९४४ ई०के आरम्भमें इस समितिने अस्थायी रूपमें एक शासन-विधान तैयार किया जिसमें कहा गया कि "इसका नैतिक और कानूनी आधार १९२१ के शासन विधानमें है और पोलिश जनताने पिलसुडस्कीके १९३९ ई० वाले शासन-विधानको कभी स्वीकार नहीं किया जिसमें सर्वाधिकार पोलैण्डके राष्ट्रपतिके हाथमें छोड़ा गया था।" समितिने बाहरके सभी सैनिक दलोंको संयुक्त करनेके लिये लोक सेना बनानेका काम हाथमें लिया और अपनी वैदेशिक नीति यह बतायी कि, पोलैण्डके पश्चिम और उत्तरके जितने भूभागको जर्मनोंने जबर्दस्ती अपना बना लिया है, वह वापस लिया जायगा और पूर्वी पोलैण्डकी सीमा सोवियट गणतन्त्रके साथ समझौते द्वारा निर्धारित की जायगी। इस पोलिश लोक-सेनाके अध्यक्ष जेनरल बेरलिङ्ग हैं। गत मई महीनेमें 'नेशनल कौंसिल आव पोल्स'का एक प्रतिनिधि-दल

मास्को पहुंचा। उस समय यह स्पष्ट हो चुका था कि यदि लन्दनस्थ पोलिश सरकारके सोवियट-विरोधी सदस्योंको निकाल बाहर कर सोवियटके साथ पोलैण्डका शीघ्र समझौता सम्भव बनाया गया, तो सोवियट सरकार इस कमेटीको पोलैण्डकी 'वास्तविक सरकार' स्वीकार कर लेगी। पर लन्दनस्थ पोलिश सरकार यही समझती रही कि मास्कोके दबावसे प्रतिनिधिदल वहां गया है। परिणाम यह हुआ कि गत २३ जूनको यूनियनने एक घोषणा-पत्र प्रकाशित करके लन्दनस्थ पोलिश सरकारको अस्वीकार कर दिया और यह विचार प्रकट किया कि, "नेशनल कौंसिल एक ऐसी अस्थायी गवर्नमेण्ट बनानेके लिये उसके पहलेकी आवश्यक अवस्थाएं बनायेगी जिसमें जनताका विश्वास हो।" २३ जुलाईको मास्को रेडियोने यह प्रचार किया था—"पोलिश देश भक्तोंके यूनियनकी ओरसे यह घोषणा की जाती है कि पोलिश नेशनल कौंसिलने पोलिश कमेटी आव नेशनल लिबरेशन बनानेकी सूचना निकाली है।"

जिस समय रूसी सेनाएं वारसाकी ओर बड़ी शीघ्रता से बढ़ रही थीं और जर्मन विश्चुलाके पूर्वी तट से अपना डेरा कूच कर रहे थे, उसी समय गत १ अगस्तको जेनरल बोरके नायकत्वमें राजधानी वारसाका जर्मनोंकेहाथसेउद्धार करनेके विचारसे जर्मनोंके विरुद्ध विद्रोहका झण्डा खड़ा कर दिया गया। यह कार्य लन्दनस्थ पोलिश-सरकार या उसके कुछ खास सदस्योंके आदेशसे हुआ और उसके पहले सोवियट सेनाके अध्यक्षसे परामर्श तक नहीं किया गया। पीछे रूसी सेनाकी अग्रगति अचानक रुक गयी और जर्मनोंने क्रुद्ध हो पोलैंडके विद्रोहियोंका सफाया करना शुरू कर दिया। दो महीने तक खासी लड़ाई हुई, पर विद्रोहियोंकी अदूरदर्शितापूर्ण नीति और आचरणके कारण सोवियट रूसने न तो स्वयं उन्हें कोई सहायता पहुंचायी और न ब्रिटेन और अमेरिकाको ही उन्हें सहायता पहुंचानेके लिये कोई सुविधा दी। अन्तमें अपने दो लाख आदमियोंकी आहुति देनेके बाद विद्रोहियोंके नेताको आत्मसमर्पण करनेको लाचार हो जाना पड़ा। जेनरल बोर भी अपने सहकारियों समेत जर्मनोंके हाथ पड़ गये और अब जर्मन उनसे खास तारका काम लेनेकी डींग मार रहे हैं। लन्दनस्थ पोलिश सरकारका प्रधान सेनापति बर्खास्त कर दिया गया और उसके प्रधान मन्त्री मास्को उस समय वहांका निमंत्रण पाकर गये थे, जब मि० चर्चिल मार्शल स्टेलिनसे बातचीत करने गये थे। मास्को कान्फ्रेंसके बाद आशा प्रकट की गयी थी कि पोलैंड की समस्या शीघ्र सुलझा ली जायेगी, किन्तु अभी तक वह उलझी ही हुई है। सोवियट रूस जिस तरह पोलैंडके पूर्वार्द्ध पर अपना अधिकार रखनेके निश्चय पर दृढ़ है, उसके विचारसे कोई समझौता तो तभी हो सकता है जब ब्रिटेन और अमेरिका लन्दनस्थ पोलिश सरकारको सोवियट सरकारके मनकी करनेके लिये तैयार कर सकें। मि० चर्चिल तो सोवियटको सन्तुष्ट करके पोलैंडकी क्षतिपूर्ति जर्मनीकी कुछ भूमि देकर करना चाहते हैं, पर अमरीका और लन्दनस्थ पोलिश सरकार अभीतक अगर-मगरमें है और पता नहीं कि भीतर ही भीतर और कौन सी धाराएं बह रही हैं, जो पोलैंडकी विकट समस्याके सुलझानेमें बाधक हो रही हैं। अब आशा है कि हमारे पाठकोंको यह समझनेमें कुछ कठिनाई न होगी कि पोलैंड किस तरह वास्तवमें मित्रराष्ट्रोंके लिये मित्रताकी वास्तविक कसौटी हो रहा है।

आजका सामाजिक वातावरण

प्रो० जगन्नाथप्रसाद मिश्र

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाजका एक अंग है। उसके जीवनके दो पहलू होते हैं—एक वैयक्तिक और दूसरा सामाजिक। उसका व्यष्टि जीवन समष्टिके साथ संश्लिष्ट रहता है। इसलिये उसके मानसिक कार्य्य-कलाप पर, उसके विचारों पर उसकी सामाजिक परिस्थिति-का उतना ही गम्भीर रूपमें प्रभाव पड़ता है जितना उसके शरीरके रक्त,वीर्य्य आदि द्रव्यों का। जिस प्रकार व्यायाम आदि शारीरिक क्रियाओं द्वारा शरीरकी उन्नति की जा सकती है, उसी प्रकार सतत अभ्यास द्वारा मानसिक शक्तिकी भी वृद्धि की जा सकती है। जीवनकी दैनन्दिन साधारण आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेमें हमारे शरीरके उपादान—इन्द्रियां, अस्थि एवं मांसपेशियां—निरन्तर क्रियाशील बने रहते हैं। इस प्रकार निन्तर क्रियाशील बने रहने से अनिवार्य्य रूपमें उनका क्रमविकास होता रहता है। व्यक्तिकी रहन सहनका जैसा ढङ्ग होता है उसकी जीवन-यात्राकी जैसी प्रणाली होती है उसके अनुसार ही उसकी देहके उपादान न्यूनाधिक रूपमें सामंजस्यपूर्ण एवं सुदृढ़ होते हैं। यही कारण है कि एक प्रदेशके मनुष्यका दैहिक गठन अन्य प्रदेशके मनुष्यके दैहिक गठनसे भिन्न होता है। यह सच है कि शारीरिक अवयवोंसे उचित काम लेने वाले व्यक्तिके शरीरका गठन जिस रूपमें होता है उस रूपमें अधिक मानसिक परिश्रम करने वालेका नहीं होता। फिर भी उसके अवयवों एवं मांसपेशियोंका इतना विकास तो अवश्य होता है जिससे वह बैठ कर दिमागी काम कर सके। विद्वान पिताका पुत्र अपने पितासे पैतृक धनके रूपमें उत्तरा-धिकारी होनेके नाते उसका ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। ज्ञान एवं अनुभव तो ऐसी स्थूल वस्तु या चल सम्पत्ति नहीं है कि किसीको उत्तराधिकार सूत्रसे सहज ही प्राप्त हो जाय। वह तो प्रत्येक व्यक्तिकी मानसिक प्रक्रियाओं पर निर्भर करता है। विद्वान पिताके पुत्रको यदि किसी निर्जन द्वीपमें अकेला छोड़ दिया जाय तो वह एक सम्पूर्ण असभ्य एवं अज्ञानी मनुष्य बन जायगा। अपने पिताके सम्पर्कसे विच्छिन्न हो जानेके कारण यहां वह उसके ज्ञान एवं अनु-भवसे कोई लाभ नहीं उठा सकता। प्रत्येक मनुष्यके मनके अन्दर कुछ शक्तियां छिपी रहती हैं। शिक्षाके अभावमें और इस प्रकारके परिवर्तनके अभावमें जिसके ऊपर हमारे पूर्व पुरुषोंके बौद्धिक, नैतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक उत्कर्षकी छाप नहीं हो, मनकी वे शक्तियां अन्तर्हित ही रह जाती हैं—अर्थात् उनका प्रकृत रूप हमारे सामने स्पष्ट नहीं होता। समाजके अन्दर जिस दल या समुदाय विशेष के साथ व्यक्तिका सम्पर्क होता है और उस दल या समुदाय की जैसी मानसिक अवस्था होगी उसके अनुसार ही व्यक्ति-के चैतन्यकी अभिव्यक्तिका तारतम्य होगा। अर्थात व्यक्ति के आत्मज्ञान या उसकी बोधशक्तिकी गम्भीरता, क्षमता एवं उसकी मात्रा अधिकांशमें उक्तदल या समुदायकी मानसिक अवस्था द्वारा ही निश्चित होती है। यदि व्यक्तिका पारि-पार्श्विक वातावरण साधारण ढङ्गका होगा तो यह निश्चित है कि उसकी बुद्धि एवं नैतिक ज्ञानका विकास सम्यक रूपमें नहीं हो सकता। इतना ही नहीं बल्कि बुरी परिस्थितियों-में पड़ कर बुद्धि एवं नैतिक ज्ञान सम्पूर्ण भ्रष्ट भी हो जा सकते हैं। अपने समयकी अभ्यस्त जीवन यात्रा प्रणाली एवं आचार विचारमें हम लोग उसी प्रकार गम्भीर रूपमें निमज्जित रहते है जिस प्रकार हमारे शरीरके अन्दरके रस-द्रवोंमें हमारे दैहिक तन्त्र कोष (tissue cells)। जिस प्रकार ये कोष वाह्य आक्रमणोंसे अर्थात बाहरकी जलवायुके प्रभावसे अपनी रक्षा करनेमें समर्थ होते हैं उस प्रकार हम पारिपार्श्विक वातावरणके प्रभावसे अपने मनकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं होते। शरीर जिस प्रकार भौतिक जगतके प्रभावका प्रतिरोध करनेमें सक्षम होता है उस प्रकार मनोमय जगतके प्रभावका नहीं। शरीरका गठन ही ऐसे रूपमें हुआ है कि उसकी त्वचा, उसकी पाकस्थली और श्वासक्रियाके यन्त्र बाहरके भौतिक एवं रासायनिक शत्रुओंसे स्वतःउसकी रक्षा करते रहते हैं। किन्तु मनका दुर्ग इस प्रकार सुरक्षित नहीं रहता। उसके वातायन निरन्तर उन्मुक्त बने रहते हैं जिससे हमारी चेतना पर हमारी बौद्धिक एवंआध्यात्मिक पारिपा-र्श्विक अवस्थाओंके आक्रमणकी सम्भावनाअनुक्षण बनी रहती है। इन आक्रमणोंका जैसा रूप होगा,उसके अनुसार ही हमारी चेतनाका स्वाभाविक या दोषपूर्ण ढङ्गसे विकास होगा।

मनुष्यकी बुद्धि बहुत कुछ उनकी शिक्षा एवं पारिपार्श्विक अवस्था पर निर्भर करती है। किन्तु इसके साथ ही उसके आभ्यन्तरिक अनुशासन-- जिस जन समूहके बीच वह रहता है उसमें प्रचलित विचारोंका भी उसकी बुद्धिके ऊपर कम प्रभाव नहीं पड़ता। तर्क सङ्गत विचार पद्धतिके अभ्यासे, गणितकी तरह सम्पूर्ण यथार्थ भाषाके प्रयोगसे तथा शिष्टाचार एवं विज्ञानके नियमित अध्ययनसे बुद्धिका गठन होता है। स्कूलके शिक्षक, विश्वविद्यालयके अध्यापक तथा पुस्तकालय, गवेषणागार, पुस्तक एवं सामाजिक पत्रिकायें— ये सब हमारी मानसिक शक्तिके विकासके लिये उपयुक्त एवं पर्याप्त साधन हैं। अध्यापकोंके अभावमें भी पुस्तकोंका अध्ययन करके मानसिक शक्तिका विकास किया जा सकता है। ऐसे सामाजिक वातावरणके बीच, जिसमें बुद्धिका बहुत कम विकास हुआ हो, रह कर भी कोई व्यक्ति स्वाध्याय द्वारा उच्चशिक्षा एवं संस्कृतिका अधिकारी हो सकता है। बुद्धिको विकसित करनेका अभ्यास अपेक्षाकृत सहज है। किन्तु नैतिक, धार्मिक एवं सौन्दर्यबोध, विशिष्ट कार्योंको करनेकी प्रेरणा और उनका अभ्यास यों सहज ही नहीं होता। हमारे चैतन्यके स्वरूपों पर सामाजिक वातावरणका प्रभाव बहुत सूक्ष्म रूपमें पड़ता है। विद्यालयमें अध्यापकके व्याख्यानोंको सुन कर कोई व्यक्ति सद्-असद्का, सुन्दर-असुन्दरका यज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। नीति, कला एवं धर्मकी शिक्षा व्याकरण, गणित एवं इतिहासकी शिक्षाकी तरह नहीं दी जा सकती। किसी वस्तुको जानना और उसका अनुभव प्राप्त करना ये दो सम्पूर्ण भिन्न मानसिक अवस्थाएं हैं। नियम पूर्वक जो शिक्षा प्राप्त की जाती है उसकी पहुंच केवल बुद्धि तक ही होती है। किन्तु नैतिक बोध सौन्दर्य एवं रहस्यात्मक ज्ञानकी शिक्षा तभी प्राप्तकी जा सकती है जबकि वे हमारी पारिपार्श्विक अवस्थाओंके अन्तर्गत विद्यमान् हों और हमारे नित्यके जीवनके अङ्ग बन गये हों। यह ऊपर कहा जा चुका है कि बुद्धिका विकास शिक्षा एवं अभ्यास द्वारा होता है, जब कि चैतन्यकी अन्यान्य क्रियाओंके विकासके लिये एक ऐसे जन समुदायका प्रयोजन है जिसके अस्तित्वके साथ उक्त क्रियाओंका एकीकरण हो सके।

वर्तमान सभ्यता अबतक हमारी मानसिक क्रियाओंके अनुकूल वातावरण की सृष्टि करनेमें सफल नहीं हुई है। इस समय अधिकांश मनुष्य जो बौद्धिक एवं आध्यात्मिक दृष्टिसे सामान्य एवं महत्वहीन प्रतीत होते हैं, इसका बहुत कुछ कारण है उनका दोषपूर्ण मानसिक वातावरण। जड़वाद की सर्व प्रधानता और व्यावसायिक धर्म (Industrial Religion) के सिद्धान्तोंने संस्कृति, सौन्दर्य एवं नीतिकी भावनाको सर्वथा नष्ट कर दिया है। समाजके अन्दर छोटे-छोटे जनसमुदाय—जो एक विशिष्ट व्यक्तित्व परम्पराकी धारणा करनेवाले हुआ करते थे—भी अब उनके आचरण एवं अभ्यासोंमें परिवर्तन हो जानेके कारण छिन्न-भिन्न हो चुके हैं। बुद्धिजीवी वर्ग, समाचार पत्र, सस्ता साहित्य, रेडियो और सिनेमाके बहुल प्रचारके कारण अधःपतित हो गया है। स्कूल, कालेज और विश्वविद्यालयोंमें यद्यपि उत्तम शिक्षा प्रदान करनेकी व्यवस्था है फिर भी साधारणतया यही देखा जा रहा है कि लोगोंमें बुद्धिका ह्रास हो रहा है। आश्चर्यकी बात तो यह है कि जो लोग उच्च वैज्ञानिक शिक्षा प्राप्त करते हैं उनमें भी बुद्धिका यह ह्रास पाया जाता है। स्कूल, कालेजोंमें पढ़नेवाले बच्चे और छात्र सार्वजनिक खेल-तमाशोंके कार्यक्रमोंके आधार पर अपने मनका गठन करते हैं। सामाजिक वातावरण हमारी बुद्धिके विकासमें सहायता पहुंचाना तो दूर रहा उल्टे पूरी शक्तिके साथ उसे प्रतिहत करता है। हाँ, इतना अवश्य है कि सौन्दर्यबोधके विकासके लिये वह अनुकूल सिद्ध हो रहा है। बड़े-बड़े नगरोंमें संगीत एवं अन्य ललितकलाके साधनोंकी वृद्धि हो रही है। शिल्प-विषयक कलाकी द्रुत गतिसे उन्नति हो रही है। स्थापत्य कलाकी इस समय चरम उन्नति हो रही है। बड़े-बड़े नगरोंमें इस समय शोभा-सम्पन्न भवन बनने लगे हैं जिनसे उन नगरोंका रूप-रंग बिल्कुल बदल गया है। इन सब साधनोंके बीच रहकर प्रत्येक व्यक्ति यदि वह चाहे तो सहज ही अपने सौन्दर्य ज्ञानको एक निश्चित सीमा तक विकसित कर सकता है।

आधुनिक समाजमें नीति ज्ञानकी प्रायः सम्पूर्ण उपेक्षा की जाती है। हमारे नित्यके व्यवहारमें, परस्परके आचरणमें, व्यष्टि एवं समष्टि जीवनमें नीतिकी मर्यादाको कोई महत्त्व नहीं दिया जाता। असल बात तो यह है कि हमारे अन्तरमें नैतिक ज्ञानकी जो भावना होती है उसकी अभिव्यक्तिको ही हमने दबा दिया है। अधिकांश मनुष्योंके व्यवहार इस रूपमें होते हैं मानो उनमें दायित्वज्ञानकी कोई भावना ही नहीं हो। जिनमें सद् असद् की, भले-बुरेको परखनेकी दृष्टि है, जो परिश्रमी एवं मितव्ययी हैं वे दरिद्र बने रहते हैं और मृत-प्रायः समझे जाते हैं। समाजमें उनकी कोई पूछ नहीं होती। जिस स्त्रीके कई बच्चे होते हैं

और जो अपने स्वार्थमय जीवन पर विशेष ध्यान न देकर अपने बच्चोंकी शिक्षा की ओर, उनके जीवनको सुधारनेकी ओर विशेष ध्यान देती है,वह दुर्बल चित्तवाली स्त्री समझी जाती है। Society Gi lके रूपमें उसकी गणना नहीं होती। यदि कोई व्यक्ति अपनी स्त्रीके लिये अथवा अपनी सन्तानकी शिक्षाके लिये अपनी आमदनीमें से थोड़ी-सी रकम बचाकर रखता है तो उसकी इस रकमको कल कारखाना खोलनेवाले उद्योगी पूंजीपति उसे नाना प्रकारके प्रलोभन देकर उससे छीन लेते हैं। या नहीं तो गवर्नमेंट ही अनेक प्रकारके टैक्सके रूपमें उससे वह रकम छीन कर उन लोगोंमें वितरण कर देती है जो अपनी फिजूलखर्ची या व्यवसायियों, बैंकरों और अर्थनीतिज्ञोंकी अदूरदर्शिताके कारण दरिद्र एवं अभावग्रस्त बन गये हैं। कलाकार, साहित्यिक एवं वैज्ञानिक समाजकी सर्वाङ्गीन उन्नतिके लिये सौन्दर्य, स्वास्थ्य एवं समृद्धिके साधन जुटाते हैं, लोगोंके जीवनको समुन्नत एवं सुसंस्कृत, उनकी रुचिको परिमार्जित बनाते हैं। किन्तु स्वयं वे अभाव एवं दरिद्रताके बीच जीवन व्यतीत करते हुए मृत्युको प्राप्त होते हैं। चालाक और चतुर लोग, जो छल कपट द्वारा दूसरोंके धनको लूट सकते हैं या उनके पसीनेकी कमाईका शोषण कर सकते हैं शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत करते हुए सुख समृद्धिका उपभोग करते हैं। समाजमें ऐसे ही लोगोंको मान-मर्यादा प्राप्त होती है। गुण्डे बदमाश, राजनीतिज्ञोंकी छत्र-छायामें फूलते-फलते हैं। न्यायालयके दण्ड-विधानका भी उनके ऊपर कोई असर नहीं पड़ता और नागरिकोंकी तरह ही ऐसे लोग भी समाजके सम्माननीय सदस्य समझे जाते हैं। इस श्रेणीके लोग ही आज कल हीरो या वीर-पुरुष समझे जाते हैं जिनका चरित्र-चित्रण सिनेमाके चलचित्रोंमें प्रदर्शित किया जाता है और बच्चे विस्मय विमुग्ध दृष्टिसे उनकी प्रशंसा करते हैं और अपने खेलकूदमें उनकी नकल करते हैं। समाजमें धनिक व्यक्तिके लिये नीति, धर्म या लोक-लज्जाका कोई बन्धन नहीं रह गया है। पुरोहितोंने धर्म को बुद्धिवादके जालमें जकड़ दिया है। उसके रहस्यात्मक आधारको उन्होंने नष्ट कर दिया है। आधुनिक कालके मनुष्योंमें इस प्रकारके धर्मके प्रति कोई श्रद्धा नहीं रह गयी है, कोई आकर्षण नहीं रह गया है। धर्मने कोरे बाह्य व्यवहार या प्रचलित प्रथाका रूप ग्रहण कर लिया है। जिस दुर्बल नीति ज्ञानका उपदेश पादरी लोग गिरजाघरोंमें दिया करते हैं उसे सुननेके लिये कोई तैयार नहीं होगा। उस नीतिज्ञान के पीछे ऐसी कोई शक्ति या प्रेरणा नहीं रह गयी है जो जीवनको अनुप्राणित कर सके। धर्माचार्य लोग ईश्वर की महिमाका बखान करते हैं, धर्म एवं सुनीतिकी लम्बी-चौड़ी बातें करते हैं, किन्तु उनके पीछे आज अध्यात्मकी वह शक्ति एवं साधना नहीं होती जो सर्व साधारण जनके हृदयको स्पर्श कर सके। जिस प्रकार वर्तमान समाजमें धनिक वर्गके स्वार्थकी रक्षा करनेका काम पुलिस और फौज करती है उसी प्रकार धर्मके ये ठेकेदार भी धनिकोंकी चापलूसी करते हैं और उनके स्वार्थको अक्षुण्ण रखनेके लिये अबोध जनता को धर्म एवं नीतिका उपदेश देकर उसे भुलावेमें डाले रहते हैं। या नहीं तो वे भी राजनीतिज्ञोंकी तरह जन समूहका रुख देख कर उसके परितोषार्थ कार्य्य करते हैं।

इस प्रकार जब कि चारों ओरसे मनुष्यके मन पर आक्रमण हो रहे हैं, मनुष्य उनसे आत्म रक्षा करनेमें अपनेको असमर्थ पाता है। जिस समाजके अन्दर वह रहता है, जिस सामाजिक वातावरणके बीच वह क्रियाशील बनता है उसके प्रभावके सामने उसे विवश होकर झुकना पड़ता है। यदि कोई मनुष्य अधिक समय तक अपराधियों और मूर्खोंकी सङ्गतमें रहे तो वह अवश्य ही अपराधी और मूर्ख बन जायगा। ऐसी स्थितिमें उसके लिये एक ही उपाय हो सकता है कि वह अपनेको इस प्रकारके वातावरणसे पृथक कर ले—अर्थात अपने निवासके लिये कोई निर्जन स्थान ढूंढे। किन्तु आज जिस प्रकार लोग बड़े-बड़े नगरोंके कोलाहल मय जीवनमें वास कर रहे हैं, उनमें इस प्रकारका एकान्त स्थान मिल ही कहां सकता है? हां, यह हो सकता है कि इस प्रकारके जीवनके बीच रहते हुए भी मनुष्य आत्मस्थ या स्थितप्रज्ञ बन जाय। अपनी वृत्तिको अन्तर्मुखी करके वह अपने आपमें ही निर्जनताकी शान्तिका अनुभव करे। किन्तु इस प्रयत्नके योग्य भी तो हम नहीं रह गये हैं। इस प्रकार स्थितप्रज्ञ बननेकी क्षमता भी तो हममें लुप्त हो गयी है। यही कारण है कि आजका मनुष्य अपनी पारिपार्श्विक अवस्थाओंके विरुद्ध संग्राम करके उनपर विजय प्राप्त करनेमें सफल नहीं होता। *

---

* नोबुल पुरस्कार-विजेता विख्यात अमेरिकन विद्वान Dr. Alexis Carrel (एलेक्सिस कैरल) की पुस्तक 'Man the Unknown' के आधार पर।

जापानकी अभागिनी स्त्रियां

श्रीमती हेलेन मोसिस्की

कोबेकी जमीन पर पैर रखते ही मैंने अपने पतिसे कहा—"जापानकी स्त्रियां अत्यधिक चालाक होती हैं। अपनी सुन्दरताकी पृष्ठ भूमिको इन्होंने अपनी मुस्कानसे रंग कर उसे और भी सुन्दर तथा आकर्षक बना दिया है।" सर्वप्रथम मैं इनकी चाल पर मुग्ध हो गयी। निस्तेज आंखों-में जीवनकी विषमताको छिपाकर रास्तेमें मधु मक्खियोंकी तरह गुनगुनाते हुए इन स्त्रियोंका चलना और उस पर गालोंके पीलेपनको मुस्कानकी रेखासे घेरे रहना सचमुचमें मेरे लिये एक प्रश्न बन गया। मैं निरन्तर सोचने लगी क्या जापानकी स्त्रियां कष्टोंसे बहुत दूर हैं?

अपने पतिके साथ,जो जापानमें पोलैंड सरकारके राज-दूत थे, तीन साल तक लगातार जापानमें रहकर भी मैं यह नहीं समझ सकी कि इस मुस्कानका क्या रहस्य है। किसी दुर्घटनाकी सूचना हो या हर्षका होलाहल—उस सम्वादको अपनी सहज सुलभ मुस्कानके साथ ही ये ग्रहण करती हैं। इनका जीवन मुस्कानकी उस अभेद्य दीवारके पीछे हैं जिसकी हस्ती अमिट और अमर है। ऐसी बात नहीं कि मैं इस विषयसे हार कर पीछे हट गयी थी और यह सोचकर निश्चिन्त हो गयी थी कि जापानकी स्त्रियोंको मुस्कानका जन्म सिद्ध वरदान है। जैसे जैसे मैं इस रहस्यकी छान बीन करने लगी वैसे ही वैसे इस अभेद्य दीवारकी चहार दीवारी को पार करती गयी। सचमुच इस मुस्कानके भिन्न-भिन्न कारण हैं। हृदयके जिस उच्छ्वसित उद्गारकी पीड़ा हमारी आपकी आंखोंमें करुणाका सागर लहरा देती है वही पीड़ा इनके होठों पर मुस्कानकी रेखा बन जाती है। मुझे आज तक वह घटना याद है जब एक जापानी स्त्रीने अपने पुत्रकी मृत्युका समाचार अट्टहासके साथ ग्रहण किया था।

जापानमें हंसनेकी विविध प्रणालियां हैं-स्मित मुस्कान,

एक सम्भ्रान्त जापानी महिला और उसकी सहेलियां ब्यालू कर रही हैं।

हंसी और अट्टहास। ये सबके सब जापानी होठोंकी सम्पत्ति हैं। कोई भी जापानी बहन चाहे वह कैसी भी परिस्थितिमें क्यों न हो अपने होठों पर मुस्कानकी रेखा खिलाये ही रहती है। इसका रहस्योद्घाटन भी अचानक एक दिन मेरे समीप हो गया। जापानमें मैं जिस घरमें अतिथि थी वह एक संभ्रान्त परिवार था। परिवारका प्रधान एक नवयुवक था। उस नवयुवककी बुढ़िया दादीने, जो इस बुरी तरह जमीनकी ओर झुक गयी थी कि उसे देखते भय मालूम होता था, हमारे लिये एक दिन अपने घरमें उत्सवका प्रबन्ध किया। उत्सवमें उपस्थित सज्जनोंके सामने उसने मुझे बुद्धकी एक मूर्त्ति प्रदान करते हुए कहा-आज मैं तुम्हें एक ऐसी वस्तु दे रही हूं जिसने सदियोंके सन्तप्त मानवके हृदयमें शान्तिका स्रोत बहा दिया था। मैं आज उसीकी मूर्त्ति तुम्हें देती हुई उससे प्रार्थना करती हूं कि वह सदैव तुम्हारे होठों पर हंसीकी अशेष हिलोरें उठाता रहे जिसमें तुम्हारे मनकी पीड़ा, जीवनका अवसाद, और प्राणोंकी विकलता आंखोंकी राह संसारके सामने न आने पाये।

उत्सव समारोहोंके अवसरपर चाय परिवेशनका एक खास तरीका

दुखोंका इतिहास, कष्टोंकी कहानी, प्राणांतक पीड़ाकी ज्वाला, चिर व्याकुल अन्तरकी कसमसाहट जब जीवनको घेर कर खड़ी हो जाती है उस समय इन कष्टोंसे, जो प्राण नहीं लेते, जो जीवित रहनेकी हविशको धीरे धीरे निःशेषकर देनेको प्रयत्नशील रहते हैं, छुटकारा

पानेका एक ही उपाय है और वह है ओठों पर मुस्कानकी एक हल्की सी रेखा।

ठीक यही सिद्धान्त जापानी बहनोंके भी लिये है। वे जीवन भर दुखी, निराश और भयङ्कर मानसिक कसमसा-हटकी चोट खाती रहती हैं। फिर भला उनके जीवनको सरस करने वाली यह हंसी वे क्यों न पसन्द करें। बचपनसे उन्हें इस बातकी शिक्षा दी जाती है और वे इस शिक्षाको अपने जीवित रहनेका चिन्ह मानती हैं। जापानी बहनें अपनेको गुड़ियाकी तरह सजाये रखती हैं। पतिका आदेश इन्हें जिधर ले जाये, उधर ही लुढ़कती फिरती हैं। अपने पतिको प्रसन्न रखनेके लिये इन्हें दो तीन बातोंकी ओर ध्यान देना पड़ता हैं जो इनके गार्हस्थ्य जीवनके लिये नितान्त आवश्यक है। शिष्टाचार, चित्रकारी, संगीत और फूलोंका ज्ञान होना इन बहनोंको अत्यावश्यक है। पतिको प्रसन्न रखनेके लिये मुख्यतया ये ही प्रधान गुण स्त्रियोंमें आवश्यक हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि जापानी पति अपनी पत्नीको आज्ञाकारिणी रूपमें देखना चाहते हैं। जीवन-के प्रारम्भसे जीवनके अन्त तक जापानी स्त्रियां अपनेको हीन समझती हैं। यह हीन भावना उनकी आत्मोन्नतिमें सबसे बड़ी बाधा है, सबसे बड़ी ग्लानि है जिसे वे अपनी मुस्कान सुधा पिलाकर सदा जीवित रखती हैं।

इनकी इस भावनाका आदि स्रोत इनका धर्म है। जब तक जापान शिन्तों धर्मका अनुयायी रहा,स्त्री और पुरुषों-की सत्ता समान समझी जाती रही पर जबसे शिन्तों बुद्धधर्म-में परिवर्तित हो गया स्त्रियोंका स्थान पुरुषोंके बाद चला आया। जापानी कानून स्त्रियोंको व्यक्ति नहीं मानता। विवाह ही इन बहनोंके जीवनकी चरम साधना है क्योंकि उनके जीवनकी अलग कोई इकाई नहीं है। ये अपने पतिको तलाक नहीं दे सकती हैं, पति इन्हें इनके पितृ गृहमें भेजकर तलाक दे सकता है। जहां इनका जीवन बुरी तरह दब कर सामाजिक अभिशापका निशाना बन जाता है। फिर इनके लिये एक मात्र उपाय है'गीशा'(वेश्या)बन जाना। सन्तान-विहीन नारी पुरुषोंके सामने मुंह दिखाने योग्य नहीं रहती। इस दैवी अभिशापका प्रायश्चित इन बहनोंको ही करना पड़ता है, यह एक आश्चर्यकी बात है। निरन्तर लड़कियोंका जन्म होना भी माताके लिये लज्जा की बात है। पुत्र पैदा करने वाली मां ही आदर पाती है। दूसरी लड़की पैदा होते ही स्त्रियां दण्डनीय समझी जाती हैं और उन्हें इस अभियोगके लिये भयङ्करसे भयङ्कर दण्ड दिये जाते हैं।

यह बात सामान्य नारीके लिये ही नहीं है वरन जापानकी साम्राज्ञी भी इस आधार पर अपराधिन हो सकती हैं। जब मैं टोकियोमें थी यह अफवाह जोरों पर थी कि जापानकी साम्राज्ञीको दूसरी सन्तान होने वाली है। पहले गर्भसे लड़की पैदा हुई थी और इस बार भी अगर लड़की पैदा हुई तो वे अपनी जानसे हाथ धो देंगी। सौभाग्यकी बात हुई कि साम्राज्ञीके गर्भसे पुत्र पैदा हुआ और संसारको एक अप्रिय काण्ड न देखना पड़ा।

जापानी स्त्रियोंका जीवन जापानकी सीमाके भीतर एक गुलाम जैसा है। रानी हो या दासी, अमीर हो या गरीब जीवनके सभी आनन्दके साधन इसके लिये सीमित और स्वल्प हैं। यह एक ऐसा देश है जहां प्रेमको सत्ता स्वीकार नहीं की जाती, जहां प्रेमकी अभिव्यक्ति आत्महत्याकी सूचना है,जहां दो धड़कते हुए हृदय आमने सामने बैठकर अपनी धड़कनोंको नहीं गिन सकते। जहां विवाहके पहले युवक और युवती अपने भावी जीवन साथीको नहीं देख सकते। वर और वधू दूर दूर-से अपने विवाहकी बात सुनते हैं और चुप बने रहते हैं। परिवार चाहे जितना भी बड़ा क्यों न हो स्त्रियोंका स्थान केवल मात्र एक क्रीत दासीकी तरह है। दिनमें सबसे पहले उठना और रातमें सबसे पीछे सोना स्त्रियोंके सौभा-ग्यका चिह्न है। जापानी स्त्रियोंका यह कर्त्तव्य है कि वे पति-के घर आते ही घुटनोंके बल झककर उनका अभिवादन करें। वे पतिकी किसी बातपर "न" नहीं कह सकती। पूर्ण सम-र्पणका यह विचित्र स्वरूप चाहे जापानके लिये कितना ही आदर्शपूर्ण क्यों न हो पर संसारकी आंखोंमें यह केवल मात्र खोटा सिक्का है जिसका कोई भी मूल्य नहीं। पतिको प्रसन्न रखनेके कुछ ऐसे नियम भी जापानमें प्रचलित हैं जो इस बीसवीं सदीकी दुनियाके लिये कलङ्ककी बात है। पुरुषोंके सामने नम्र और विनीत भावमें स्त्रियोंका रहना जितना आवश्यक है उससे भी अधिक आवश्यक है पतिके सामने जमीनपर बैठना। जाड़ेके दिनोंमें जब जमीन हिमालयकी तरह ठण्ढी रहती है पतिके सामने एक ही आसनसे किसी भी स्त्रीका बैठी रहना दिल दहला देनेवाली बात है। पति-को स्नान कराना और नाश्तेकी सारी तैयारी स्त्रियोंके हाथमें है। पुरुष जब घूमनेके लिये घरसे बाहर निकलते हैं तब उसकी पत्नी नियमानुसार उनसे कुछ पीछे आज्ञाकारी मुद्रामें पतिके सौख्यकी सारी सामग्री लिये चलती है। अपने बच्चोंपर स्त्रियोंका कोई अधिकार नहीं है। बच्चे पिताकी सन्तान हैं। अतएव बच्चोंकी मां अपने साथ, अपने

बच्चोंको सिनेमा, थियेटर कहीं भी नहीं ले जा सकती। बारह साल तक स्त्रियां अपने बच्चोंकी देख भाल करती हैं। बारह सालकी उम्रसे लड़के मांकी देख रेखसे परे हो जाते हैं। जब लड़का बारहवें सालमें पदार्पण करता है तो मां अपने घरमें एक उत्सव करती है। उपस्थित व्यक्तियोंके सम्मुख लड़केके चरणोंपर झुककर हाराकीरीका छूरा रखते हुए मा कहती है—अब तुम सयाने हुए। मैं तुम्हारी देख रेखसे मुक्त हुई। अब देश, समाज, परिवार और राजाके प्रति तुम स्वयं जवाबदेह हो। जिस दिन तुम अपने इस कर्त्तव्यसे च्युत होना तुम हाराकीर आत्महत्याकर लेना। माके मुंहसे निकली हुई यह आज्ञा अगर वस्तुतः देखा जाय तो क्या यह सचमुचमें उसकी हो सकती है। जापानकी सबसे अधिक स्वतन्त्र स्त्रियां 'गीशा' हैं। इन्हें बाकायदा मनुष्यको खुश रखनेकी शिक्षा दी जाती है। कोई भी जलसा गीशाकी उपस्थितिके बगैर हो ही नहीं सकता। ये गीशा स्त्रियां सुन्दरसे सुन्दर पहिरावे और कलापूर्ण मुखाकृतिमें रहती है। जलसेमें ये अतिथियोंको फल तराश कर खिलाती हैं और एक तरहका तरलपदार्थ पिलाती हैं। तलाकका साधन न होनेसे अपने गुलाम जीवनसे ऊबकर अधिकतर जापानी स्त्रियां आत्महत्या कर लेती हैं क्योंकि परित्यक्ता नारीका वहां कोई भी मूल्य नहीं है। इनके आत्महत्या करनेके स्थान बड़े ही कलापूर्ण हैं। जापानके मनोहर पहाड़ोंकी चोटियोंसे घिरा हुआ एक अत्यन्त प्रसिद्ध जलप्रपात है। स्त्रियां वहां जाती हैं और चोटीके अन्तिम सिरेसे इस प्रपातमें कूद पड़ती हैं। दूसरा साधन है ज्वालामुखी। ओशिमाकी मरुभूमिमें स्थित इस ज्वालामुखीमें विफल मनोरथ सहस्रों नारियां अपना जीवनदान कर चुकी । पता नहीं आजकी दुनियाका यह विधान कबतक जापानकी नारियोंको ओशिमाकी ज्वालामुखी और पहाड़ोंके जलप्रपातकी ओर अपने विफल मनोरथके साथ बढ़ते रहनेका आदेश देता रहेगा।

सागरसे

हमने खूब देख ली सागर! गहराई सब आज तुम्हारी।
एक बूंदके लिये प्याससे तड़प गयी सीपी बेचारी॥
घास पात घोंघों के प्रेमी भला इसे क्या समझ सकोगे?
वही मिलेगा तुमको उससे जिसको जैसा कुछ तुम दोगे॥

जो भी तुमसे मिला उसे भी निज समान ही सदा बनाया।
तुमसे मिल कर अमृत भी तो अमृत नहीं कभी रह पाया॥
साथ बुरेका भला नहीं है तुम जीवित प्रमाण हो इसके।
प्राण दायिनी सरितायें भी बिगड़ी हैं प्रभाव में जिसके॥

डरते हो तुम राम बाणसे, तब चुपके सब सह लेते हो।
पत्थर भी अपनी छाती पर हंसी खुशी तैरा लेते हो।
ओ मदान्ध! अब बहुत हो चुका, दिन हैं अब नजदीक तुम्हारे
जाग रहे हैं अब अगस्त-छत, सोये थे अब तक बेचारे॥

तब देखेंगे गर्व तुम्हारा, तब देखेंगे शक्ति तुम्हारी।
साथ तुम्हारे जायेंगे लक्ष्मी वाहन सब सत्ता धारी॥
नभ रोया तो उसके आंसू भी बटोर कर तुम ले आये।
धरती का दिल फटा रक्त उसका भी तुम समेट कर लाये॥

आंसू, खून, पसीना सबका चूस चूस कर बड़े बने हो।
मानव को प्यासों मारा है रहते फिर भी सदा तने हो॥
आसमान फटने वाला है, धरती भी फटने वाली है।
रक्तस्नान कराने को दुनिया पर छायी फिर लाली है॥

रक्त-स्नान करके जब दुनिया पाप तुम्हारा धो पायेगी।
तभी श्यामला, सजला, सुफला, धरती धरणी कहलायेगी॥

—श्री पद्मकान्त मालवीय

चेतना

श्री कृष्णनन्दन सिनहा

घनी स्पष्टतासे रिक्त संयुक्त छायाएं अव्यक्त तरलता भरती हैं। आलोक उसे प्राणोंमें उतार नहीं पाता। छाया वह ग्रहण नहीं करता। यह कलामय और निर्विवाद सत्य है; किन्तु विवश दुःखकी तीव्रतामें वह भला है— पृथ्वी कुछ अपनी पीड़ा, अचेतन तपस्या उसे सिखा रही है!

दूबोंकी नमी पर रक्त देखा है। उसने! संसार पत्थरोंमें वापिस होगा! यह संग्राम भी कैसा जिसे चलना नहीं है जिस पर अन्तिम आवरण छा जायगा। वह चलेगा किस तरह? मरुस्थल तो विस्तृत है—जहां अन्धाकार है, सघन, प्रच्छन्न, प्रसार!

कल चेतनाका पत्र आया है। स्मृतिके पटसे वह भी बोलती है! एक मांग वह रखती है कि हृदय चेतनताका विनाश करे वह। और खो जाए, और अकेला हो जाए! वह जहर मांगती है, वह जहर खाना चाहती है! वह तो कभी निर्जीव नहीं थी!

और मा भी तो दुःख सहते सहते संयम खो चुकी है! वैसा अस्तित्व जो जबर्दस्ती फेंका जारहा है जिससे मानो निस्तार ही न हो कहीं!

इसीलिये वह एकान्त होना चाहता है! केवल 'दृश्य' रहना चाहता है! नङ्गा पत्थर होना चाहता है कि उसपर सारी छायाएं पड़े, उसमें जीवन भरें—उसे इंगित करें कि वह लड़े, वह लड़े?

वह कुरूप कुण्ठग्रसित आदमी भी तो लड़ रहा होगा, लड़ रहा है? वह रेंग रेंग कर बढ़ता है। ऊपर की सत्ता उसे अर्थ हीन है। वह संस्कृत मानव पर विद्रूपकी एक हंसी है! 'पिक्चर पैलेस' और 'म्युजियम' का रूपक उसे पसन्द है शायद! मनोरंजन और विस्मय। जैसे दोनोंको वह मिला रहा हो एक धागे में! आलोक है जिसे मृत्युका ख्याल भी आता है कभी कभी और यह है जिसे जीनेकी वासना है!

यह शक्ति हीनता...यह हारकी सम्भावना अन्तस्तल से उपजी है! इतनी सारी थकी हारी खोई आकृतियां—लगती हैं—कि आलोकके चारों ओर एक वितान बना रही हैं। उसे बोध करा रही है कि ईश्वर सबसे ऊपर है, भाग्य सबसे प्रबल...परिस्थितियां...!

लेखक

प्लैटीनमके तारकी तरह जलकर मस्तिष्क प्रकाश देता है, राह दिखाता है। अत्यन्त आलोकमें आंखें झप जाती हैं। तब वह मिटती सी रोशनीमें एक विशाल वस्तु सामने आ पड़ती है—काली भद्दी, अंधेरी पहाड़ियां......! सारे संसारसे उसका जो सम्बन्ध है, जो सापेक्ष बन्धन है, उसे भुलाकर वह सोचता है कि मैं किसी लायक नहीं हूँ...सैनिक होनेसे दूर हूं...दूर हूं...।

तब दृष्टिपथमें चेतनाकी पूर्ण स्वतन्त्र भावभंगिमा वह देख रहा है! अस्तव्यस्त सी भावुकता, जागरूकता और सतह पर अथाह छल समर्पणकी विह्वलता! और वह पढ़ रहा है कि उसकी एक क्रिया उस मिट्टीकी काया में स्फूर्ति दान दे सकती है! अभी तक चेतना थी भी उसकी कौन? अपरिचित, किन्तु परिचयकी वाणी लिये आत्मा में!

और उसे लगा कि चेतना भी अपनी नहीं है। मा भी निस्वार्थ नहीं है! और आलोक स्वयं भ्रमके जालमें पड़ा है! स्वस्थ और सुन्दर केवल वह मरणासन्न रोगी है, वह भिखमंगा है जो शरीरकी तकलीफें झेलता है केवल?

और फिर आकस्मिक रूपसे कला उसकी अपनी होने लगी। जब उसे बतानेवाला कोई नहीं है, मोह लगाव अर्थ-

हीन जंवता है—उसके आंचलकी छायामें वह धीरे धीरे आ रहा है! वैयक्तिक संसारकी सीमा अब उसे नहीं रख पाती। अब जो उसका साध्य है, वह है साहित्य, संगीत, चित्रकला, मूर्त्तियां...! अमूर्तका आश्रय उसे लेना होगा। धरातलकी मोहकता, सुन्दरता क्या है? मात्र एक अशालीनता, अश्लीलता...!

जिसे वह आदर देता है, स्नेह करता है, उसकी क्रियाओंसे वह सहज संतुष्ट नहीं है। कलाकार कहनेवाले ये अपनेको! सब अन्धकारमें रहनेवाले, दुःखसे हार मानने वाले पतित!

रंजन भी कितना बनावटी है? प्रतिमा, प्रतिभा चिल्लाता है, वह ज्ञानका नाटक खेलता है और मन भूखे शिकारी-सा ध्वंस पर निर्मित। कायर! शोभाका संगीत! समवेदनाओंका राज़ है उसमें। किन्तु कितना परिमित, पल भर की वह ज्योति है, वह आत्मा है? गीतोंके बाहर कुत्प मस्तिष्क और तीखा मन काट खानेको दौड़ता है जैसे!

आत्मश्लाघा और आत्म प्रवंचना के वृत्त में, सब उसका अपनत्व आज घूम रहा है। जल्दी जल्दी। कसक, कचोट और अनबूझ दर्द आलोकको कितनी अप्रिय है, कितना बोझिल! जहरीले वाणकी तरह घाव चूमता है और रक्त की गतिमें, वह अशोभन अस्तित्व सांसे लेता है, जीवन खोता है! तब उसके आसपास एक विद्रोह का, विप्लवका सूत्रपात होने लगा! भंवरसे बचकर वह धारामें आपड़ाक्योंकि अपने भयंकर दुखाघातको वह स्वीकार न कर सका...!

सघन नीर-व्यापी बदलीका प्रसार वह अपने हृदयमें उतार रहा है। कुछ तरलता है जो अति सार्थक है फिर अति नगण्य! कालिख सा यह मेघ और संगमरमर सा आकाश। असुन्दर और सुन्दरका कितना सामंजस्य! निरुद्देश्य वह चला जा रहा है। सम्पूर्णमें बोझिल, और दुःखमय वह है! उमड़ती घुमड़ती कालिख उसके आसपास आ रहीं है! उसकी तरलता छिनी जा रही है। अब कुछ पत्थर सा कठिन और असम्भव उसमें समा रहा है!

'म्यूजिअम' का स्थल! वह घृणित पीड़ित शक्ल। वह आदमीका नाम धरने वाला जीव। वह नङ्गा है और आज उसकी मुद्रा क्यों ऐसी निरपेक्ष है? यह आनेवाली आँधीका आतङ्क है कि आने वाली रातकी निराश्रय काया? आलोकने चाहा कि उसे कुछ पैसे दे दे। किन्तु फिर उसका जी न माना। पैसे देकर उसे सुखी करने वाला वह होता है कौन? यह उसका अहंकार है। है इतना साहस कि भाईकी तरह उसे अपनाए; साथीकी तरह साथ दे? और भीख देनेकी यह मनोवृत्ति, यह अपमान, यह तीखी दया......। उसने लाजसे मुंह फेर लिया।

उस ओरसे किसी 'दयावान' ने एक पैसा फेंका! सड़क पर यह दयाकी भीख—फूटपाथ पर वह दयाका पात्र है। उसे आकर्षण खींच रहा है। वह पैसेको लक्ष्य बनाकर शीघ्रतासे उस ओर करवटें लेकर बढ़ता है। सड़क पर की मोटरें, गाड़ियां रुकती हैं, नहीं रुकती हैं।

आलोकने आंखें मींच लीं। 'पिक्चर पैलेस' में एक गीत बज रहा है। किन्तु अब उस घृणित कायामें प्राण कहां है?

एक पैसेका जीवन, जीवनका एक पैसा!

आलोकने देखा कि हृदयकी निर्दय तन्तु तापकी तरह जल रही है। बादलों पर गुजरने वाली आंधी आरम्भ हो गयी है। वह जड़ होता जा रहा है बाहर, बाहरसे—जैसे उस 'म्युजिअम' की मूर्त्ति हो।

एक बार तीव्र आकांक्षा जागी कि वह भी बीच सड़क पर आ जाये? वह भी अपने प्राणोंका प्रयोग करे? कि कहीं अस्तित्व निरापद नहीं है—केवल खतरा......।

मोटर परके सज्जन नीचे उतर कर उस भिखमङ्गेको देख रहे थे। चेहरे पर आधी घृणा और आधा भय। वे सिहर उठे।

आलोकने पास आकर कहा, 'क्या देख रहे हैं आप? मृत्यु डरनेकी बात नहीं है। यह देखिये, यह सोया है—सिर्फ उठेगा नहीं कभी। इस रात आप भी सोयेंगे। अन्तर क्या है?"

कैसी बात कह रहा था वह स्वयं नहीं जान पाया।

उन सज्जनने कहा, "तो आप कहेंगे न यही बात। मेरी कोई गलती नहीं थी न। यह तो कबका बेजान था।"

आलोकने जैसे ध्यान नहीं दिया। पैसा देने वालेकी ओर संकेत कर कहा, "इसकी तो मौत आपने खरीदी है।"

सड़क पर भीड़ बढ़ रही थी। किसी ने कहा 'और अपना बचाव भी येखरीद लेंगे। फर्क होगाकि पैसोंकी जगह रुपये होंगे।......"

आलोक उन्हें छोड़ कर आगे बढ़ आया। पता नहीं वह किस ओर जा रहा है। क्या उद्देश्य है क्या आकर्षण। आंधीकी तीव्रता प्रतीत होती है। आने वाला कम्पन भी छिपा नहीं है। वह सोच रहा था—साम्यवाद! कार्ल-मार्क्सकी थियोरी, 'लेनिन' के विचार, और महात्मा गांधी। अन्तर है केवल 'प्रौफेट' और ईश्वरका। ......वह 'विमेन्स कालेज' में मुड़ गया। होस्टल

है वह सामने। तीन नम्बरके कमरेका उसने दरवाजा सरकाया। शोभा सो रही है या जाग रही है केवल अंगड़ाईयां लेती। आहः पाकर वह उठी किन्तु आलोकने कसा क्या भाव देखा अभी अभी? लेनिन, कार्लमार्क्स, गांधी! कि वह भिखारी जो संसार छोड़ चुका है......या कि स्वयं आलोक! कितनी असम्भवता लपेटे है यह शोभा!

"चेतना जीजीका पत्र आया है आलोक जी? कैसी हैं वे?" आलोक निरुत्तर, मौन!

तब वह हंसी, "किस कल्पनामें हैं आप! चेहरे पर एक दिव्य आर्द्रता है।"

आर्द्रता तरलता...आंसुओंका बुझा जल...नहीं नहीं आलोक है, केवल अग्नि, आंधी, हृदयसे उपजा प्रकाश।

वह विक्षिप्त सा हंसा, "शोभा तुम...और चेतना और मां और वह भिखमङ्गा (जो अभी हालमें मर गया है), और मैं भी। सब राख हैं न केवल? असत्य है न? माया!"

फिर लौटते हुए उसने कहा, "क्षमा करना बहिन (क्यों कि तुम चेतना की बहिन हो) मैं जीवन भर अपनी क्षमता खोता जा रहा हूँ।" शोभाने हाथोंकी तराईसे उसे स्पर्श करके देखा—उसे कितना ज्वर है? यह लापरवाह पुरुष। "आप रुक जाइये। आप बहुत बीमार हैं...सुनिये... कसम।"किन्तुपल भरमें शोभाकी अंगड़ाइयां और अस्त-व्यस्त शरीर उसे याद आया और वह सीढ़ियां उतर कर चला। सीढ़ियां चढ़ने पर सेक्स, ज्वर और विराग मिला है...और उतरने पर आंधियां, भ्रान्तियां......?

स्वच्छ, सम्मोहक संजीवनी लिए रात उतरी है। इसके आवरणमें वातावरण छप जाग्रत आलोकको मोहकता-तृप्ति सिखा रहा है। वह पी रहा है, एक अनबूझ क्रान्तिकी मदिरा, चेतना, अचेतना.........नींद!

एक दृश्य!

वह कारावासमें बन्द है, बन्दी। उसने क्रान्ति की है, और बन्द उसे रहना है। शोषित मानवको उसने लाख समवेदनाएं दी हैं। लाख सहायताएं, औरजागृतिकी गति। और अब उन सेवाओंका फल मिला है। बिना शारीरिक तपस्या किये वह सन्तुष्टि और तृप्ति नहीं पा सकता।

बहुत-सी बातें उसके मनमें आ रही, स्मृति पटपर। वह फ्रांसकी जोन आफ आर्क थी। कितनी अमरता छोड़ गयी है। उसने भी स्वप्न देखा था—कोई अदृश्य शक्ति उसे जगा रही थी। फ्रांसपर लड़ाईके बादल छाए थे किन्तु शक्तिने नारीको बल दिया, सम्बल भी। फ्रांस विजयी रहा। और फल बस थोड़ा-सी राख—वह जीवित जला दी गयी थी और इसमें भी जारके अत्याचारोंके प्रति विप्लव था-रक्तमय। अब साम्यवाद, जनतन्त्र और आदर्शके अन्तिम शिखरपर है रूस। निहिलिस्ट दलवालोंने कितना व्यापक विप्लव किया था। और देशभक्त उन्नत सीजरके प्रति भी क्रान्ति थी। समाजवादकी मांगमें सत्ता किस तरह विलीन हो गयीं कि वह ब्रूटस था जो अपने प्राण-प्रिय मित्रके प्राणोंसे खेला। कर्त्तव्य नेह कभी नहीं देखता। और भारतने भी क्या, क्या देखा है?

वह सोच नहीं सका। मोमबत्ती इस तहखानेमें जल, जल कर देशके अन्धकारको व्यक्त कर रहा है। यह लाक्षणिक आलोक! और वह क्या करे किताबें भी उसके पास नहीं हैं। तब उसे टी०एस० इलिएट को आश वेडनेसडे की कुछ पंक्तियां याद आईं कि समयके संतरणपर कितनी गहरी शून्यता खेलती है। और एजरा पाउण्डका कैण्टोज...हरेक साहित्यकी अपनी मौलिकता होती है, अपनी नैसर्गिक भावना...

और भारतवर्ष? महान, संस्कृत गौरवपूर्ण। और वह अब बन्दी है। वह कांग्रेसका पक्ष लेकर आया था। गरीब देशकी एक मात्र संस्था जो सींखचोंमें बन्द है अब। अपराध यही था कि उसने स्वतन्त्रता चाही थी।

अब चेतना क्या सोचेगी? मांके हृदयपर क्या बीतेगा? कोमल और परोक्ष जगतसे परे—वह स्वयं कितने साहसका अनुभवकर रहा है। ओजका, प्राणका, जीवनका। अब वह अधूरा नहीं है। अब वह जीवनको आंक सकता है। वह साहित्यमें लहर ला सकता है। वह देशके लिये लिख सकता है—उसी तरह जैसे गोर्की और टालसटाय, रोम्या रोलां, अनातोले फ्रांस, मार्क टेवन और डासपेशस, गांधी और रवीन्द्रनाथ ....तृप्तिके अथाह संवरणमें नयी विकलता, नयी गति, नयी चिन्तनशीलता, नया सत्य......वह जन्म दे रहा है......

रात भर बहुत आंधी चली थी—कि हिमालयकी बर्फीली चोटियोंकी स्वच्छता, पवित्रता खिल रही थी वहां। आलोककी आंखें खुली तो उसने देखा, चेतना उसका पांव दबा रही है, सहला रही है। "अरे तुम, कैसे आई?" स्वप्न तो नहीं है?" उसने विस्मयसे कहा।

"शोभाने मुझे तार भेजा था...आपकी तबीयत......" आलोकने चेतनाको एक पवित्र मूर्ति मान कर कहा, "शरीर तपा कर ही तो मैं आत्माको बचा पाया हूं चेतना! अच्छा तुम आ गयी, मुझे तुम्हारी बहुत जरूरत थी........ बहुत जरूरत।"

अंग्रेजी-शासनके पूर्व भारतकी स्थिति

श्री ब्रजकिशोर वर्मा एम.ए.

प्रायः सभी अंग्रेज इतिहासकारोंका कहना है कि औरंगजेबकी मृत्युसे लेकर जब तक अंग्रेजी राज्यके पांव अच्छी तरहसे जम नहीं गये, भारतवर्षको चैन नहीं मिली। प्रसिद्ध इतिहासकार स्मिथने लिखा है कि सम्राट औरंगजेबके बाद पचास वर्ष तक भारतवर्षकी दशाका वर्णन एक शब्द 'अशान्ति' में किया जा सकता है। उसके जाते ही भारतवर्षमें नरक अवतीर्ण हो गया। स्वार्थी उमरा लालची अफसर और लुटेरे सैनिकोंने जनताको कुचल कर धूल बना डाला। आज भी भारत वासियोंसे यही कहा जा रहा है कि यदि अंग्रेज भारतवर्षको छोड़ दें तो उसकी वही दशा हो जायगी, जो अंग्रेजी राज्य स्थापित होते समय थी। बात बातमें हमें उस समयकी अशान्ति और अराजकताका भय दिखलाया जाता है। लेकिन क्या वास्तवमें उस समय वैसी ही शोचनीय दशा थी जैसा कि अंग्रेज इतिहासकारोंने चित्रित किया है?

यह सच है कि औरंगजेबके बाद मुगल सम्राटोंका बल बिल्कुल जाता रहा। १७०७ से १७९३ तक विस्तृत मुगल-साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया और मुगल सम्राट उच्चाभिलाषी दरबारियोंकी कठपुतली बन गये। पूर्वमें बङ्गाल और अवधके सूबे स्वतन्त्र हो गये। गङ्गाके उत्तरी तट पर रुहेलोंका राज्य स्थापित हो गया। दिल्ली षड़यन्त्रोंका केन्द्र बन गयी। पञ्जाबमें सिक्खोंकी दलबन्दी आरम्भ हो गयी। सिन्ध नदीके तट पर, जिसे अकबर 'दिल्लीकी खाई' मानता था, उपद्रव मच गया और पश्चिमोत्तर सीमाकी विकट घाटियोंसे लुटेरे नादिरशाहकी निगाह दिल्लीके तख्त ताऊस पर पड़ने लगी। राजपूतोंने, जो अकबरी कालमें मुगल साम्राज्यके स्तम्भ थे, अपना हाथ खींच लिया। मालवा, गुजरात तथा महाराष्ट्र देशमें मराठोंका आतङ्क जम गया, और उनका भगवा झण्डा दिल्ली तक फहराने लगा। हैदराबादमें निजाम राज्यकी नींव पड़ गयी।

इस अर्थमें अराजकता अवश्य थी, पर क्या इसमें प्रजा पिस रही थी? इन दिनों दिल्लीके सम्राटोंमें योग्यताकी कमी अवश्य हो गयी थी, पर प्रान्तीय शासकोंमें इसकी कमी न थी। इस समय प्रायः सभी प्रान्तोंमें ऐसे शासक दिखाई पड़ रहे थे जिन्हें अपनी महत्वाकांक्षाके साथ साथ प्रजाका भी ध्यान था। बहुतसे देशी तथा विदेशी लेखकोंके ही दिये हुए विवरणसे इसका पूरा पता चलता है। लार्ड क्लाइवने तो बङ्गालमें अंग्रेजी राज्यकी केवल नींव डाली थी, वारेन हेस्टिंग्सने उसको दृढ़ बना दिया। पर इसका पूरा विकास लार्ड-वेलेसलीके समयमें प्रारम्भ हुआ। तब तक तो भारतवर्षके अनेक राज्योंमें अंग्रेजोंका भी एक राज्य था, पर उसके समयसे एक तरहसे उनके हाथमें 'भारत साम्राज्य' आ गया। औरङ्गजेबकी मृत्युके बादसे अङ्गरेजोंके हस्तक्षेपके पूर्व तक इन भिन्न भिन्न राज्योंके शासन पर एक दृष्टि डालनेसे ही तत्कालीन भारतकी दशाका पता लग जाता है।

बङ्गालके सम्बन्धमें उस समयका प्रसिद्ध इतिहास-लेखक गुलाम हुसैन लिखता है कि पिछले सात वर्षोंसे साम्राज्यका पतन हो रहा था; सम्राट अयोग्य थे; सरदार और उमरा बिगड़ रहे थे, परन्तु तब भी इनमेंसे कोई भी उन नियमोंके विरुद्ध नहीं जाना चाहता था जिनसे साम्राज्यकी उन्नति हुई थी। उनके राज्यकी अच्छी दशा थी। प्रजा सुखी और सन्तुष्ट थी। अलीवर्दी खांके समय तक यही दशा थी। वह सदा अपनी प्रजाका ध्यान रखता था। प्रजाके लिये वह सचमुच पिता तुल्य था। अपने फौजदारों पर उसकी बराबर निगाह रहती थी और वह कभी कभी उनको अत्याचार न करने देता था। वह अपनी प्रजाको बिना किसी धार्मिक भेदभावके एक ही माता पिताकी सन्तान समझता था और योग्य हिन्दू तथा अन्य गैर मुसलमान व्यक्तियोंको उच्च पदों पर नियुक्त करता था। वास्तवमें यही लोग उसके मन्त्री थे।

उसके शासनमें प्रान्तका रुपया प्रान्त ही में रहता था। वह व्यसनी सम्राटोंके उड़ानेके लिए दिल्ली नहीं जाता था। इससे उसीके राज्यकी उन्नति होती थी। जनताको जीवन-निर्वाहकी चिन्ता न थी।

कहा जाता है कि शायस्ता खांने ढाकेके नये पश्चिमी फाटक पर यह लिखवा कर बन्द करवा दिया था कि जब दमड़ी सेर अन्न बिकने लगे तब यह फाटक खोला जाय। सन १७३९ में दीवान यशवन्त रावने यह करके दिखला दिया और फाटक खुलवा दिया। उसने अन्न पर महसूल

उठा दिया। उसके समयमें ढाका प्रान्तमें सब जगह खेती होती थी। निष्पक्ष भावसे न्याय किया जाता था। वह बड़ा परिश्रमी और ईमानदार था, और शासनको ऐसा बनानेका प्रयत्न करता था, जिससे जनताके सुख और आरामकी वृद्धि हो। बर्दवान जिलेके पश्चिम राजा गोपाल सिंह की जमींदारीका वर्णन करते हुए हालवेल लिखता है कि 'यहां हिन्दुस्तानकी प्राचीन-शासन-व्यवस्था के नियम, पूर्ण और शुद्ध रूपसे दिखलायी पड़ते हैं, उनका पालन बड़ी सख्तीसे किया जाता है। यहां जनताकी सम्पत्ति और स्वतन्त्रता सुरक्षित है। डकैतियां कभी सुनने में भी नहीं आतीं। यदि खोयी हुई रुपयेकी थैली या अन्य कोई बहुमूल्य वस्तु किसीको प्राप्त हो जाती है, तो वह उसको पेड़में टांग कर सबसे नजदीकके चौकीदारको सूचना देता है, जो डुग्गी पिटवाकर मालके मालिकको सूचित कर देता है।'

अवधका पहला नवाब सआदत अली खां था। सन् १७२० में यह सूबेदार नियुक्त हुआ और धीरे धीरे स्वतन्त्र हो गया। बड़े-बड़े जमींदारोंको काबूमें रखकर किसानोंकी रक्षा करना इसकी मुख्य नीति थी। इसके शासनकी धाक सारे प्रान्तमें जमी हुई थी। दूसरे नवाब सफदर जङ्गका मुख्य मन्त्री राजा नवल राय था, जिसने योग्यताके साथ शासन किया। तीसरे नवाब शुजाउद्दौलाके सम्बन्धमें, जिसके समयसे अवधमें अंग्रेजोंका हस्तक्षेप प्रारम्भ हुआ, फ्रैंकलिन और स्काट लिखते हैं कि उसको अपने राज्यकी उन्नतिकी, बराबर चिन्ता रहती थी और वह बड़ा न्याय-प्रिय शासक था। सर हेनरी लारेन्सके शब्दोंमें वह बड़ा योग्य, चतुर और समझदार नवाब था। उसका भी मन्त्री बेनी बहादुर नामक एक हिन्दू ही था।

अवधसे मिला हुआ रुहेलखण्डका राज्य था। औरंगजेबके मरने पर अली मुहम्मद नामक एक सरदारने इसको स्थापित किया था। इसने शासनमें कई एक सुधार किये। व्यापारकी उन्नतिके लिये सब प्रकारके महसूल उठा दिये। इस स्वतन्त्र व्यापारकी नीतिसे रुहेलखण्डको बड़ा लाभ हुआ। उसके शासन कालमें हिन्दू प्रजाकी भी रक्षा होती थी और उसके साथ कोई अत्याचार नहीं हो पाता था। हाफिज रहमत खां स्वयं बड़ा विद्वान और धीर था।

दिल्लीमें अवश्य अशान्ति थी और षड़यन्त्रोंके कारण सम्राट तकका जीवन खतरेके बीच था। आस-पासके प्रदेश में भी शासन-व्यवस्था बिगड़ रही थी। पञ्जाबमें अशान्ति थी। पर धीरे-धीरे सिख 'मिसलें' एक हो रही थी। खालसेकी नीति निर्धारित करनेके लिये एक सभा रहती थी जो 'गुरुमाता' कहलाती थी। अमृतसरमें दो बार इसकी बैठक होती थी। माल्कम लिखता है कि इस अवसर पर सिख सरदारोंको परस्परका बैर भूल कर एकताकी शपथ लेनी पड़ती थी। वे किसी एक योग्य सरदारको अपना नेता मान लेते थे और उसीकी अध्यक्षतामें बाहरी शत्रुका सामना करते थे।

आगरे और जयपुरके मध्यमें जाटोंका भरतपुर राज्य था। इसको सूरजमलने स्थापित किया था, जो अपनी योग्यता और वीरताके लिये प्रसिद्ध था। गुलाम हुसैनका कहना है कि शासनकी योग्यतामें उससे बढ़कर उस समय कोई दूसरा हिन्दू राजा न था। राजपूतानेमें इस समय कोई प्रसिद्ध राजा नहीं था और साम्राज्यके झगड़ेसे राजपूत अलग हो गये थे, यह बात ठीक है, पर प्रजाके साथ इस समय कोई विशेष अत्याचार हो रहा था इसका कोई प्रमाण नहीं है। उनके राज्योंका शासन ज्योंका त्यों चल रहा था। इतनी बात जरूर है कि मराठोंका आक्रमण प्रारम्भ हो गया था।

मालवेमें होल्कर और सिंधिया राज्य थे। मल्हारराव होल्कर वीरता और सादगीमें सब मराठा सरदारोंसे बढ़ा चढ़ा था। उसका आतङ्क पञ्जाब और राजपूताना तक पर जमा हुआ था। वह अपनी उदारताके लिये बड़ा प्रसिद्ध था।

सन् १७६९ में उसके मरने पर उसकी पुत्र-वधू अहिल्या बाई गद्दीपर बैठी। उसके विषयमें सर जान माल्कम लिखता है कि "३० वर्ष तक उसने बड़ी योग्यतासे राज्य-शासन किया। उसके समयमें बाहरसे कोई आक्रमण नहीं हुआ, और राज्यमें पूर्ण शान्ति थी। प्रजासे लगान बहुत कम लिया जाता था, और गांवोंके अधिकारोंकी बराबर रक्षा होती थी। चतुर्दिक सबको सुख देना उसके जीवनका मुख्य उद्देश्य था। उसकी उदारता केवल अपने ही राज्यके लिये न थीं, भूमिके पशु, आकाशके पक्षी, नदियोंकी मछलियां भी उसकी दयाका पात्र थीं। धार्मिक जीवनमें कट्टर होते हुए भी उसमें असहिष्णुताका नाम तक न था। हिन्दू मुसलमान दोनों उसकी रक्षाके लिये ईश्वरसे प्रार्थना करते थे।" उसके चरित्रके विषयमें खूब सोच-विचार कर भी यह कहना पड़ता है कि वह अपने परिमित क्षेत्रमें सबसे पवित्र और आदर्श शासकोंमें थी। उसके मरनेपर यशवंतरावने भी शासन-व्यवस्थामें कोई त्रुटि न आने दी।

महादजी सिंधियाकी योग्यताको अङ्गरेज—इतिहासकारोंने भी स्वीकार किया है। कीन उसे उस समयका योग्य शासक मानता है। उसने दिल्ली तक मराठोंका आतङ्क जमा दिया और उसके आस-पासके उद्दण्ड जमींदारोंको दबाकर सम्राट शाह आलमकी शक्तिको कुछ कालके लिये दृढ़ बना दिया।

मध्य भारतमें भोंसलोंका राज्य था। जानोजी भोसलाके सम्बन्धमें रेजीडेण्ट जेन्किंस लिखता है कि उसके समयमें न्याय ठीक ढङ्गसे होता था। फौजदारीके अपराध बहुत कम होते थे। प्राण दण्ड तो शायद ही कभी दिया जाता था। राज्यकी आमदनी खूब थी। प्रजा सुखसे रहती थी। सेना और बड़े अफसरोंका वेतन ठीक समयसे, बिना कुछ काटे हुए दिया जाता था। राघोजीके समयमें मजमूदार या दीवान राज्यका सबसे मुख्य अफसर होता था। नगरके बड़े-बड़े साहूकारोंको दरबारमें स्थान दिया जाता था। समय समय पर उनसे सलाह भी ली जाती थी। उनमें से एक "नगर नायक" होता था, जो व्यापारका निरीक्षण करता था और आवश्यकता होनेपर राज्यके लिये ऋणका भी प्रबन्ध करता था।

पूना तो मराठा-साम्राज्यका केन्द्र ही था। प्रथम तीन पेशवाओंने अपनी योग्यतासे मराठा-साम्राज्यको विस्तृत और दृढ़ बनाया था। चतुर्थ पेशवा माधवराव बल्लालने शासन-व्यवस्थाको बड़ा सुसङ्गठित बना दिया था। मामलतदार तथा राज्यके अन्य अफसरोंपर उसकी बड़ी कड़ी निगाह रहती थी। महादजी सिंधिया सरीखे शक्तिशाली सरदार भी उसकी प्रजासे 'घास-दाना' नहीं वसूल कर सकते थे। न्यायका बड़ा अच्छा प्रबन्ध था। पूनेके न्यायाधीश रामशास्त्रीकी योग्यता, निष्पक्षता तथा निर्भीकता प्रसिद्ध है। सन् १७६२ में महाराष्ट्र देशका वर्णन करते हुए पेरन लिखता है कि "यहां स्वर्ण युगकी सादगी और सुखका अनुभव होता है,...युद्धके कष्ट दिखलायी नहीं देते, सब लोग प्रसन्न, फुरतीले और खूब तन्दुरुस्त हैं। उनके आतिथ्य सत्कारका तो कुछ कहना ही नहीं है। यह गुण सभीमें पाया जाता है।

हैदराबादमें निजामुल्मुल्क आसफ जाहने निजाम राज्य की नींव डाली। इसका जीवन अधिकतर अपने राज्यकी रक्षामें युद्ध करनेमें ही व्यतीत हुआ। शासन-सुधारके लिये इसको समय नहीं मिला। पर इसने तत्कालीन शासन-व्यवस्थामें अधिक हस्तक्षेप भी नहीं किया। अंग्रेजोंके हस्तक्षेपके पहले कर्नाटककी दशाका वर्णन करते हुए स्क्रैफटन लिखता है कि 'डाकुओंसे देश ऐसा शून्य है कि वहांके लोगोंकी यादमें कभी कोई डकैती नहीं हुई। जवाहरातके व्यापारी जो प्रायः इस देशसे आते-जाते हैं, अपनी रक्षाके लिये कोई हथियार तक भी नहीं रखते। यहां यह नियम है कि जिस जगह लूट होती है वहांके शासकको या तो लूटका माल ढूंढ़ कर निकालना पड़ता है, या हर्जाना देना पड़ता है।' तंजौरके विषयमें पेट्रीका कहना है कि सन् १७६८ में जब मैंने इस देशको देखा, तो यहां की बड़ी अच्छी दशा थी। यहां खूब व्यापार होता था।

मैसूरमें हैदरअलीका उत्कर्ष हो रहा था। फुलर्टनके शब्दोंमें, उसके समयमें, प्रजाकी जैसी कुछ उन्नति हुई, वैसी किसी हिन्दुस्तानी शासकके समयमें नहीं हुई। उसके राज्यके सभी भागोंमें किसान, कारीगर तथा व्यापारी धनी बन गये। खेती बढ़ गयी। बहुत-सी नयी चीजें बनने लगीं और राज्यमें धन भर गया। स्क्रैफ्टन लिखता है कि प्रायः सभी लेखकोंका कहना है कि इस देशमें कोई कानून नहीं है। जमीन मौरूसी नहीं है, केवल सम्राट सबका उत्तराधिकारी है। यह मैं मान सकता हूँ कि यहां कोई नियम-विधान नहीं है, पार्लामेंटके कानून नहीं हैं, और सम्राटके ऊपर कोई शक्ति नहीं है, लेकिन मुझे यह कहना पड़ता है कि न्यायालयोंमें रीतिके अनुसार काम होता है।......... जमीनमें किसानों तकका मौरूसी हक है, ऐसे ही जागीरदार जब तक कर देता है, हटाया नहीं जा सकता है। लगान तथा अन्य राज्य - कर लिखे रहते हैं, जिनसे अधिक नहीं लिया जा सकता है...। नादिरशाहके आनेतक यह नियम जारी रहा और तब तक संसारमें कोई ऐसा देश नहीं था, जहांका शासन इससे अच्छा हो। व्यापार, खेती, और कलाओंकी खूब वृद्धि होती थी, और सिवा उनपर, जो अपनी शक्ति या सम्पत्तिसे भयका कारण बन जाते थे, और किसी पर अत्याचार न होता था।

उसका कहना है कि नादिरशाहके आक्रमणके बादसे यह दशा नहीं रही। प्रान्तीय शासक अत्याचार करने लगे। परन्तु प्रान्तोंमें जैसा कुछ शासन था, दिखलाया जा चुका है। जो लोग अपने नये राज्य स्थापित कर रहे थे, उनके लिये लोकप्रिय बनना आवश्यक था। दूसरे भारतका सामाजिक सङ्गठन ऐसा था, जिसके कारण राजनीतिक विप्लवोंका जनता पर बहुत कम प्रभाव पड़ता था। भारतवर्षकी अधिकांश जनता प्राचीन कालसे गांवोंमें रहती

है। उन दिनों यह गांव एक प्रकारके छोटे-छोटे 'प्रजातन्त्र-राष्ट्र' थे। इनका सङ्गठन ऐसा था, जिनमें वहांकी सब आवश्यकताओंकी पूर्ति हो जाती थी। न्यायके लिये पञ्चायतकी प्रथा थी। शिक्षाके लिये ग्राम-शिक्षक थे। बढ़ई, लोहार, नाई, चौकीदार, पुरोहित वग़ैरहका, जिनकी गांवोंको आवश्यकता होती थी, गांवकी आमदनीमें हिस्सा लगता था। सूतकी कताई घर-घरमें होती थी, और कपड़ा बुननेके लिये जुलाहे गांवोंमें रहते थे। भारतीय शासक यथा सम्भव इस सङ्गठनमें हस्तक्षेप न करते थे। सर चार्ल्स मेटकाफकी रायमें राजनीतिक अशान्तिके समयमें भी, जनताकी दशा अच्छी रहनेका यह एक मुख्य कारण था। वह लिखता है कि राजवंश नष्ट हो गये, साम्राज्योंका पतन हो गया, पर इन गांवोंके जीवनमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

इसमें कोई भी सन्देह नहीं कि कभी-कभी जनता निष्ठुर स्वार्थी शासककी क्रूरताका शिकार अवश्य बनती थी, पर साधारणतः उसकी दशा ऐसी शोचनीय न थी, जैसी प्रायः दिखायी जाती है। आज कलकी शान्तिसे उन दिनोंकी तुलना नहीं की जा सकती। उन दिनों अन्य देशोंकी जैसी कुछ स्थिति थी, उसे देखते हुए भारतवर्षकी दशा उनसे खराब नहीं थी। यूरोपमें स्पेन और आस्ट्रियाकी गद्दियोंके लिये युद्ध चल रहा था। उसके बाद 'सप्तवर्षीय' युद्ध चल पड़ा। राजाओंके अत्याचारके कारण फ्रांस भीषण राज विप्लव के ताण्डव-नृत्यका रंगस्थल बन गया। इसके पीछे सारे यूरोपमें युद्ध छिड़ गया। भारतवर्षमें भी राजाओंका युद्ध छिड़ रहा था। भारतवर्ष जैसे विशाल देशके इतिहासमें बहुत कम ऐसा समय रहा है, जब सारे देशमें एक-छत्र राज्य रहा हो। पर इसका अर्थ अराजकता नहीं लगाया जा सकता है। शासनके अभाव और जनताके कष्टोंका जो मर्मस्पर्शी चित्र प्रायः खींचा जाता है, उसकी सत्यतामें तत्कालीन अङ्गरेजोंके ही दिये हुए विवरणसे सन्देह होने लगता है जैसा स्थान-स्थानपर उद्धृत वाक्योंसे दिखलाया गया है। सम्भव है इनमें कुछ बातें बढ़ा चढ़ा कर लिखी गयी हों, क्योंकि उस समयके बहुतसे अत्याचारोंका भी उल्लेख मिलता है, पर इतना तो अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि यातनाओंके कारण उस समयका भारत 'नरक' न था जिसको स्वर्ग बनानेका अङ्गरेजोंका सबसे बड़ा दावा है।

यह तो हुई शासनकी बात। आर्थिक दृष्टिसे भी उस समय तक भारतवर्ष केवल कृषि प्रधान देश न था। सन् १७८३ तक विलायती कपड़ेकी एक चिट तक भारतवर्षमें नहीं आयी, उलटे भारतवर्षके ही कपड़ोंसे अन्य देशोंका काम चलता था। पूर्वी बङ्गालकी छींट और मलमल दुनिया भरमें अद्वितीय थी और वे हाथोंसे बनायी जाती थी। १६-वीं शताब्दीमें और अङ्गरेजों तथा फ्रांसीसियोंकी प्रतियोगितासे पूर्व १७ वीं शताब्दीके पूर्वार्द्धमें भी पुर्तगीज व्यापारिक लाखों रुपयोंका यह कपड़ा बङ्गालसे ले जाकर यूरोप भरमें बेचते थे। १६९७ के आस-पास बंगालकी छींटों और मलमल का इङ्गलैण्डमें इतना अधिक प्रचलन हो गया कि फ्रांस, सिलेशिया, जर्मनी और फ्लैण्डर्सके कपड़ोंको—जिसका मूल्य काफी गिर चुका था, कोई पूछता भी नहीं था। १७ वीं शताब्दीके प्रारम्भमें इङ्गलैण्ड पूर्वी भारतसे १६०००० पौण्ड (लगभग २०८०००० रु०) और इसके अन्तमें ३००००० पौण्ड (लगभग ३९००००० रु०) के वस्त्र मंगाता था जब कि १८ वीं शताब्दीमें पूर्वी बंगालके अकेले ढाका नगर और जिलेसे ३००००० पौण्डका माल जाने लगा था।

कपड़ेके अतिरिक्त हाथी दांतकी चीजें, रंग, नील, दवाइयां, लौंग, मिर्च, मसाला, अफीम, और शोरा भी बाहर जाता था। यह सब माल भारतके बने जहाजोंपर ही लदकर अन्य देशोंको जाता था। अंगरेजों द्वारा नष्ट किये जानेका बहुत कुछ प्रबन्ध होनेपर भी यह व्यापार १९ वीं शताब्दीके प्रारम्भ तक चलता रहा। इस समयकी दशाका वर्णन करते हुए मनरो लिखता है कि 'सभी आवश्यक वस्तुएं यूरोपकी अपेक्षा भारतवर्षमें कहीं सस्ती और अच्छी बनती हैं। इनमें सूती तथा रेशमी कपड़े, चमड़ा, कागज, लोहे तथा पीतलके बर्तन और खेतीके औजार मुख्य हैं। मोटे ऊनी कपड़े, अधिक अच्छे तो नहीं, पर सस्ते बहुत होते हैं। बढ़िया कम्मल, हमारे कम्बलोंसे कहीं अधिक टिकाऊ और गर्म होते हैं। सन् १८१२ में पार्लियामेंटकी कमेटीके सामने गवाही देते हुए वह कहता है कि 'भारतवर्षके लोग वैसे ही व्यापारी हैं जैसे कि हम लोग...उनके जितने पवित्र स्थान और तीर्थ हैं, वास्तवमें वे मेले हैं, जहां सब तरहका माल बिकता है। भारतवर्षमें धर्म और व्यापार एक साथ चलते हैं। व्यापारकी ओर हिन्दुस्तानियोंकी यह प्रवृत्ति देख कर ऐसा जान पड़ता है कि अंगरेजोंको वहांका व्यापार छोड़ना पड़ेगा। दूसरे हिन्दुस्तानियोंका रहन-सहन इतना सादा और कम-खर्च है कि कोई यूरोपियन उनका मुकाबला नहीं कर सकता है।"

कमेटीके सामने यह भी कहा गया था कि यदि भारतवर्षका माल इंगलैण्डमें बेचा जाय, तो वहांके बने हुए मालकी अपेक्षा पचाससे साठ सैकड़ा कमीशन और लाभके साथ बिक सकता है। मुख्य व्यापार कपड़ेका था, जुलाहों पर अत्याचार होते हुए और विलायतमें भारतीय मालपर दुगुनी-चौगुनी चुङ्गी देनेपर भी इस समय तक यह व्यापार नष्ट न हुआ था। डा० बुकाननके कथनानुसार जिसने अठारहवीं शताब्दीके अन्तमें, भारतके कई भागोंमें भ्रमण किया था—केवल पटना, शाहाबाद, भागलपुर, गोरखपुर, इन चार जिलोंमें जिनकी आबादी ८७,९३,१९४ थी ६,१९,९२६ व्यक्ति कताईका काम करते थे। साल भरमें ९३,१८,१२७ रुपयेका सूत काता जाता था। इन जिलोंमें ४३,६९३ करघे चलते थे जिनमें ४४,२७,९०१ रुपये सालका कपड़ा बनता था। प्रति करघा २३ से ९३ रुपये तक लाभ होता था। कताई बुनाई भारतका मुख्य व्यवसाय था जिसको सभी कर सकते थे। अर्म लिखता है कि यह ऐसा हल्का व्यापार था, जिसको सभी कर सकते थे। जुलाहेका काम नीच काम नहीं समझा जाता था। समाजमें उसकी अच्छी प्रतिष्ठा थी। कताईसे प्रतिवर्ष दो-से चार रुपये तक मिलता था, जो आज कलकी दरसे ४०-५० रुपये तक हुआ। कोलब्रुक लिखता है कि 'अनाथ और विधवा स्त्रीकी, जो किसी रोग या सामाजिक मर्यादाके कारण, मेहनत-मजदूरी के अयोग्य हैं, सूत-कातना ही मुख्य जीविका है। यह एक ऐसा रोजगार है, जिससे स्त्रियां अपने घरके मर्दों तकका भी, जो किसी कारणसे काम नहीं कर सकते हैं, रक्षा करती हैं। प्रत्येकके लिये यह रोजगार है, जो जीविकाके लिये नितान्त आवश्यक भले ही न हों, पर इससे गरीबोंको बड़ी सहायता मिलतीहै।" सन् १७५७ में जब क्लाइवने मुर्शिदाबादमें प्रवेश किया तो उसने लिखा—यह नगर लन्दनकी तरह विस्तृत घना बसा हुआ और सम्पन्न है। फर्क सिर्फ इतना ही है कि इसमें लन्दनकी अपेक्षा हर व्यक्तिके पास असीम सम्पत्ति है।" यह सम्पत्ति एक दिन लन्दन भी पहुंची और उसका परिणाम क्या हुआ जरा यह भी देखिये। ब्रुक एडम्सने लिखा है—"प्लासीके बाद शीघ्र ही ज्यों ही बङ्गालकी लूट लन्दनमें पहुंचनी शुरू हुई, उसका तुरन्त असर हुआ। सभी अधिकारी व्यक्ति एक मतसे यह स्वीकार करते हैं कि ब्रिटेन की 'औद्योगिक क्रान्ति'—जिसने १९ वीं शताब्दीके पिछले समयमें एक दम आश्चर्य कर दिया—इसी १७६० से प्रारम्भ हुई।......सम्भवतः जबसे दुनिया बनी है, कहीं भी लगाये गये रुपयेने इतना मुनाफा नहीं किया होगा, जितना कि इस भारतीय लूटने क्योंकि लगभग ५० वर्ष तक इसमें ब्रिटेन का कोई प्रतिद्वन्दी खड़ा नहीं हुआ।"

शताब्दियोंसे साथ-साथ रहनेके कारण हिन्दू मुसलमानोंके परस्पर सम्बन्धमें बहुत कुछ परिवर्तन हो गया था। अकबरकी उदार नीतिने दोनोंको बहुत कुछ एक कर दिया था। औरंगजेबकी उलटी नीति होनेपर भी इस एकताका बहुत कुछ अंश बाकी था। कट्टर हिन्दू तथा मुसलमान शासक कभी-कभी अपनी हार्दिक संकीर्णताका परिचय अवश्य देते थे, पर इसका प्रभाव गावोंमें बहुत कम दिखलाई पड़ता था। दोनोंका आर्थिक तथा सामाजिक जीवन बहुत कुछ एक था। दोनों जातियां एक दूसरेके रहन-सहन, रीति-रिवाज तथा त्योहारोंमें भाग लेती थीं। आज कलकी सी बहुत सी सामाजिक कुरीतियां उस समय भी थीं। हिन्दू समाजमें सतीप्रथा जारी थी। उस समयके एक लेखकका कहना है कि सती न होनेके लिये पहले ब्राह्मण तथा घरवाले स्त्रियों को बहुत समझाते थे। अर्म हालवेल, हाजेज तथा अन्य तत्कालीन लेखकोंने अपनी आंखों देखते हुए दाहका वर्णन किया है और स्त्रियोंके साहसपर बड़ा आश्चर्य प्रकट किया है।

उसी समयके एक लेखकका कहना है कि उन दिनों मध्य श्रेणीके लोगोंके पढ़ाने-लिखानेका भी प्रबन्ध था। बालकोंकी शिक्षा कमरोंमें नहीं बल्कि खुली जगहोंमें होती थी। वह लिखता है कि इन पाठशालाओंमें जहां विशाल भवनोंके अभावकी पूर्ति स्वच्छ आकाशके चन्दोंवे से होती थी, केवल कारबारकी ही शिक्षा नहीं दी जाती थी, बल्कि जीवनके कर्तव्य......माता पिताके लिये आदर, बड़े बूढ़ोंके लिये सम्मान, मनुष्य मात्रके लिये न्याय, तथा दया और सजातियोंके प्रति स्नेहके भाव पैदा किये जाते थे। उसीका कहना है कि हिन्दू मुसलमान तथा भारतमें बसने वाले अन्य लोगोंमें, जाति धर्म और रीति रिवाजोंमें भिन्नता होते हुए भी आतिथ्यसत्कार और शिष्टाचार, सबमें पाया जाता है। रहन सहनकी सुन्दरता और बातचीतमें, हिन्दू किसी सुशिक्षित फ्रांसीसीसे कम नहीं हैं...

हाजेज लिखता है कि गांवोंमें आबादी खूब है पर फिर भी बड़ी सफाईका भाव देखकर आश्चर्य होता है। गांवोंकी गलियां बराबर बटोरी और छिड़की जाती हैं। फुल्र्टनका कहना है कि हिन्दुस्थानी सभ्य, चतुर तथा शिष्ट होते हैं। युद्धका भी उन्हें अभ्यास है, साथ ही साथ कला, विज्ञान तथा शान्तिके समयके अन्य गुणोंमें भी वे प्रवीण हैं।

विश्व-नेतृत्वकी समस्या

प्रो० मयङ्क

पुर्तगालके विद्वान प्रधान मन्त्री डा० एण्टोनियो डि ओलीवीरा सलाजरका कहना है कि इस युद्धके बाद यूरोप-का नेतृत्व न ब्रिटेन करेगा न रूस। इस बार यूरोपका नेतृत्व अमेरिकाके हाथोंमें पहुंचेगा।

डा० सलाजर कहते हैं कि यूरोप सदा ही एक न एक देशके भयसे दबता रहा है। आज तक जर्मनीने यूरोपको भयभीत बना रखा था। इसके पतनके बाद यूरोपको रूस-का भय कम नहीं सतायेगा। किन्तु समयके परिवर्तनके साथ-साथ भौगोलिक राजनीति-प्रधान विचारोंमें भी परि-वर्तन अवश्यम्भावी है और यूरोपियन जगतका एक नवीन केन्द्र पश्चिमकी ओर अटलाण्टिकमें बनता दिखायी दे रहा है। संयुक्त राज्य अमेरिका यूरोपियन राजनीतिके क्षुब्ध और अशान्त वातावरणमें दुर्निवार गतिसे अपना स्थान बनाता हुआ सीधे आगे बढ़ता चला आ रहा है। यूरोप-का शक्ति-केन्द्र सदाके लिये ब्रिटिश द्वीपसे हट गया और भू-वेष्टित रूसमें यह केन्द्र कभी रह नहीं सकता। जर्मनीमें यह शक्ति केन्द्र कभी रह नहीं पाया। इस शता-ब्दीमें तो यह शक्तिकेन्द्र संयुक्त-राज्य अमेरिकामें ही रहेगा।

यह है डा० सलाजरका अपना मत। जहां तक ब्रिटेन और जर्मनीकी बातका प्रश्न है डा० सलाजरका मत स्वी-कार्य हो सकता है। किन्तु रूसके सम्बन्धमें कही हुई उनकी बात सहसा स्वीकार नहीं की जा सकती। रूस और अमेरिका जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाली समाज-नीति, अर्थ-नीति और राजनीतिको स्पष्ट ही भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणसे देखते हैं। अभी तक यह सुस्पष्ट नहीं हो पाया कि संसार का झुकाव किस दृष्टिकोणकी तरफ अधिक हो रहा है। किन्तु इतना तो साफ ही है कि संसारके शोषित और पीड़ित वर्ग रूसके जीवन-दर्शनसे अधिक प्रभावित हैं और यदि इस युद्धके बाद अपने अपने देशके पुनर्सङ्गठन और शासन विधानके संशोधन परिवर्द्धनमें जनताकी आवाज सुनी गयी तो यह बात निस्सन्देह कही जा सकती है कि उस स्थितिमें यूरोप, भयकी दृष्टिसे नहीं, मित्र समझकर रूसको ही अपना नेता मानेगा। किन्तु यदि युद्धके बाद न्यस्त स्वार्थोंका ही प्रावल्य और प्राधान्य रहा और पूंजीवादी समाज ही कर्ताधर्ता रहा तो अमेरिकाका नेतृत्व, शताब्दी भरके लिये न सही किन्तु भावी विश्वयुद्ध तक, यूरोपपर अवश्य रहेगा।

ऐसी स्थितिमें विचारणीय यह है कि युद्धोत्तर कालीन संसारकी रूप-रेखा क्या होगी? क्या पुनः एक बार स्वत-न्त्रता, समानता और शान्तिके नामपर परतन्त्रता, अस-मानता और अशान्तिको संसारमें पाल रखा जायेगा। यह बात निर्विवाद है कि यदि यूरोप पर अमेरिकाका प्राधान्य स्थापित हुआ तो उसे स्थायित्व प्रदान करनेके लिये अमे-रिकाको अपने सहायकोंको बलशाली बनाये रखना ही होगा। क्योंकि यह निश्चित है कि अकेला अमेरिका अपने प्रबल प्रतिद्वन्द्वी समाजवादी रूसका सामना, अपनी प्रचुर शक्ति और साधनोंके रहते हुए भी, बहुत दिनों तक कर सकनेमें समर्थ नहीं हो सकता। ऐसी हालतमें ब्रिटेनको अपने साथ बनाये रखनेके लिये अमेरिकाको उसके न्यस्त स्वार्थों और साम्राज्यवादकी रक्षा करनेमें प्रकारान्तरसे सहायक होना ही पड़ेगा। इसका अर्थ यह होगा कि ब्रिटेनके भाई बन्धु अन्य साम्राज्यवादी देशोंको भी अपना अपना साम्राज्य कायम रखनेका अवसर और सुविधा मिलेगी। परिणामतः युद्ध समाप्तिके बाद भी सभी साम्राज्य बने रहेंगे या उनको बनाये रखा जायेगा। तब शान्ति कहां और कैसे हो सकती है? इन साम्राज्योंकी शोषित जनताके भीतर बढ़ता हुआ असन्तोष और अशान्ति एक दिन फिर वह भीषण विस्फोट पैदा करेगी कि विश्वमें पुनः युद्धकी प्रलयाग्नि धधक उठेगी और तब निश्चित है कि उस युद्धमें एक पक्षका नेता होगा अमेरिका और दूसरे पक्ष-का नेतृत्व करेगा रूस। यह तीसरा विश्व युद्ध, कमसे कम कुछ दिनके लिये, इस बातका निर्णय करनेवाला होगा कि संसारमें पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली रहेगी या समाजवादी।

यह बात सत्य है कि फिलहाल कोई आदमी दूसरा युद्ध नहीं चाहता। किन्तु व्यक्तिकी प्रत्यक्ष चाह अथवा वितृष्णा से कुछ नहीं होता। गुप्त और अप्रत्यक्ष प्रेरणाएं इस तरह-की होती हैं कि उसे बाध्य होकर अपनी इच्छाके प्रतिकूल

अपनेको बनाना पड़ता है। इस समय संसारमें स्वार्थजन्य शोषणने कुछ व्यक्तियोंको इतना मोटा बना दिया है कि मांस उनके शरीरमें अटता ही नहीं है। फिर भी वे अपनेको अधिक मोटा बनानेकी धुनमें ही लगे हुए हैं। दूसरी तरफका दृश्य ठीक इसके विपरीत है। मनुष्य इन मोटोंको अधिक मोटा बनानेके लिये अपना रक्त मांस सब कुछ खोता चला जा रहा है और उसका शरीर हड्डियोंका ढांचामात्र रह गया है, यह क्रम जब तक जारी रहेगा, तबतक संसार में शान्ति नहीं हो सकती। सुप्रसिद्ध लेखक और शान्ति-कामी जान गुन्थरने तीसरे विश्वयुद्धसे बचनेके लिये एक नुसखा संसारके सामने रखा है। आपका यह कहना है कि यदि तीसरे विश्वयुद्धको रोका न गया तो संसार चौपट हो जायेगा क्योंकि आज हम जिसे सभ्यता समझते हैं वह सभ्यता और संस्कृति तीसरे विश्व युद्धके संघातको सहकर खड़ी नहीं रह सकेगी और तब उसका पूर्ण विनाश अवश्यम्भावी है। अतः आप कहते हैं कि यदि भावी विश्व-शान्तिको बनाये रखना है तो पांच विश्व समस्याओंका समाधान करना ही होगा। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि ये पांचों समस्याएं, प्रत्येक मन और हृदयको विचलित करने वाली एक सार्वभौम समस्या, युद्ध और शान्तिकी समस्यासे ही प्रत्यक्षतः उत्पन्न होती हैं।

जान गुन्थरकी दृष्टिमें ये पांच समस्याएं इस प्रकार हैं:—

१—जर्मन समस्या—

सर्व प्रथम हमारे सामने यह प्रश्न है कि जर्मनीके साथ हम किस तरह पेश आयेंगे? नाजी और प्रशन विचार-धाराको किस तरह मिटाया जाये। क्योंकि जबतक ये धाराएं मिट न जायेंगी ये संसारके लिये खतरा बनी रहेंगी। इन धाराओंको मिटानेके तरह तरहके उपाय सुझाये जा रहे हैं। कुछ कहते हैं कि जर्मनीको नये ढङ्गसे शिक्षा दी जाये ताकि वहां शान्तिप्रिय लोकतन्त्र पनप सके। दूसरे इसके विपरीत कहते हैं कि बलपूर्वक दी गयी शिक्षासे कभी उद्देश्य सफल नहीं होता। यह ढङ्ग तो आत्म पराजयका सूचक है। कुछ लोग यह कहते हैं कि पुनर्शिक्षा, वह चाहे जिस ढङ्गसे दी जाये, पर्याप्त नहीं है। निस्सन्देह यह समस्या इतनी जटिल और विकट है कि इसका समाधान आसान नहीं है। यह बात ठीक है कि अपराधी नाजियों और युद्धकी आग लगाने वालोंको दण्ड दिया जाना चाहिये। किन्तु कैसे? इस बातका भी तो खतरा है कि अत्यधिक सख्ती-से काम लेनेसे परिणाम उलटा निकले।

जर्मनीसे हरजानेकी रकम ली जानी चाहिये, या नहीं? अवश्य ली जाये, किन्तु वसूल कैसे की जायेगी? क्या जर्मनीको विभिन्न राज्योंमें विभक्त कर दिया जाना चाहिये। किन्तु विभाजनसे तो उद्देश्य नष्ट हो जानेकी सम्भावना है। विभाजन उग्र राष्ट्रीयताको उभाड़ सकता हैं।

इस तरह जर्मनीकी समस्या काफी परेशानी पैदा कर रही है। जान गुन्थर साहबका कहना है कि जर्मनीकी समस्याका समुचित समाधान इस प्रकार हो सकता है:— (क) ब्रिटिश, रूसी और अमेरिकन सेना द्वारा निश्चितकिन्तु सीमित अवधि तक जर्मनीपर अधिकार। (ख) आस्ट्रिया, जेकोस्लोवाकिया, अलसास—लोरेन एवं अन्य प्रदेश जो पृथक होना चाहते हैं, स्वतन्त्र कर दिये जायं। (ग) मित्रोंके नियन्त्रणमें जर्मनीका पूर्ण निश्शस्त्रीकरण। (घ) तमाम जर्मन उद्योग—धन्धा, खासकर, वैमानिक उद्योग पूर्ण नियन्त्रणमें रखा जाये। (ङ) भावी संयुक्त राष्ट्र संघमें जर्मनी अग्नि परीक्षाकी निश्चित अवधिमें खरा निकलने पर गारण्टियोंकी लौह शृङ्खलासे जकड़कर दाखिल किया जाये। किन्तु इसके साथ साथ यह भी ध्यान रहे कि जर्मन-समस्या की विचित्रता यह है कि वह सिर्फ जर्मन समस्या नहीं है। वह तो ब्रिटिश, रूसी और अमेरिकनोंके भावी अच्छे सम्बन्धोंकी समस्या है। यदि ये तीनों एकत्र, ऐक्य सूत्रमें आबद्ध नहीं रह सकते तो जर्मन समस्या भी नहीं सुलझ सकती।

२—रूसी समस्या—

भावी शान्ति बहुत कुछ इस प्रश्न पर भी अवलम्बित है कि रूसी क्या चाहते हैं? प्रत्यक्षमें यह प्रतीत होता है कि रूसियोंके सामने तीन मार्ग हैं जिनमेंसे जिस एकको चाहे वे चुनें। वे मार्ग ये हैं—(क) अपनी दुनिया सबसे न्यारी रखना। न ऊधोका लेना न माधो का देना। अपने घरेलू पुनर्निर्माण, पुनर्संङ्गठन और अन्य रचनात्मक कार्योंमें लगना। (ख) शस्त्रबल द्वारा अथवा क्रांतियोंको प्रोत्साहन देकर यूरोपमें अपना प्रभाव फलाना। (ग) विश्व शान्ति व्यवस्था और सामूहिक रक्षा प्रणालीमें सहयोग प्रदान करना। इन तीन मार्गोंमें रूस किस मार्गको चुनेगा, या इनमेंसे ही किसीको चुनेगा यह तो नहीं कहा जा सकता। अपनेको सबसे अलग रखने और केवल घरेलू रचनात्मक कार्योंमें अपनी शक्ति लगानेकी समस्या युद्धके बाद अमेरिकाके सामने भी उपस्थित होगी। किन्तु दोमें से किसीके लिये भी तटस्थताकी नीति सफल सिद्ध नहीं हो

सकती। अब दूसरे मार्ग पर हमें विचार करना चाहिये। इस सम्बन्धमें विश्वस्त जानकार लोगोंका मत है कि अन्तर्राष्ट्रीय क्रान्ति द्वारा विश्वमें समाजवादको फैलाने वाली लेनिनकी नीतिको स्टेलिनका रूस छोड़ चुका है। एक बार स्वयं स्टेलिनने इस सम्बन्धमें यह कहा था कि 'क्रांति' इम्पोर्ट या एक्सपोर्ट की जाने वाली कोई वस्तु नहीं है।' इसका तात्पर्य यह है कि दूसरे देशोंमें समाजवादी व्यवस्था लानेके लिये रूस अब पहलेकी भांति प्रयत्नशील न होगा! किन्तु इतना स्टेलिन अवश्य चाहते हैं कि यूरोपमें सर्वत्र —प्रत्येक राजधानीमें—रूसके प्रभावको आदरकी दृष्टिसे देखा जाये और शायद यह भी वे चाहते हैं कि रूसका प्रभाव ही सर्वाधिक शक्तिशाली रहे। इस दिशामें एक बात उल्लेखनीय है। इस महायुद्धमें रूसकी सफलताने छोटे छोटे राष्ट्रोंको उसकी ओर अधिक आकृष्ट और प्रभावित किया है। ऐसी स्थितिमें पूर्वी यूरोपके छोटे छोटे देश स्वतः समाजवादी बन जायें और मास्कोके संगठनमें सम्मिलित होनेकी इच्छा प्रकट करें तो आश्चर्य नहीं है।

रूसका रुख ?—

रूसके प्रति मैत्री भाव रखने वाले अधिकांश लोगोंका ख्याल है कि रूस तीन बातें चाहता है— (१) सामाजिक महत्वके फ्रान्टियर स्थित अञ्चल रूसको चाहिये ही और वे इनको प्राप्त करके ही रहेगा। इसका अर्थ यह है कि बाल्टिक राज्य और पोलैण्डका हिस्सा रूसके अन्तर्गत आयेगा ही। यह किसीको पसन्द हो या न हो ऐसा होकर ही रहेगा, क्योंकि इस मामलेको लेकर सोवियट यूनियनसे युद्ध ठाननेकी मूर्खता शायद ही कोई करे।

२—संसारमें सर्वत्र स्थापित अधिकारी सरकारोंसे कूटनीतिक सम्बन्ध। बडोग्लियो सरकारके स्थापित होते ही उसकी सत्ताको स्वीकार करके रूस अपनी इस मनोवृत्तिका परिचय दे चुका है। फ्रांसकी डिगलेकी सरकारके साथ सोवियट सरकारका घनिष्ट सम्पर्क भी इसी बातका परिचायक है।

३—५० वर्षकालीन शान्ति।

इस तरह रूसकी समस्याका निचोड़ यह लगता है कि पूर्व-यूरोपमें तो रूसकी ही तूती बोलेगी और सम्भवतः अन्यत्र भी। ऐसी अवस्थामें ब्रिटेन और अमेरिकाको सोवियटकी प्रचण्ड और दुर्जेय शक्तिको समक्ष और मान कर रूसके साथ मिलकर चलने हीमें उनका और साथ ही विश्वका हित है।

३—संयुक्त राज्यकी समस्या—

प्रश्न यह है कि क्या संयुक्त राज्य अमेरिका पुनः एक बार यूरोपसे अपनेको दूर रखेगा? अनुभव बताता है कि तटस्थता और दूर दूर रहनेकी नीति लाभदायक नहीं है। शान्ति कालमें १९१९ में अमेरिकाने अपनेको यूरोपकी राजनीतिसे अलग कर लिया और १९४१ में युद्धमें फिर उसे आना पड़ा। यदि अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति स्थापन करने वाले संगठनमें अमेरिका रहता और अपने प्रभावको उचित ढङ्गसे काममें लाता तो बहुत सम्भव है कि दूसरा विश्वयुद्ध न हुआ होता और इस तरह अन्य राष्ट्रोंके साथ साथ अमेरिका भी युद्धकी विभीषिकाओंसे बचा रहता।

जान गुन्थर कहते हैं कि 'संयुक्त राज्यका सबसे निकृष्ट शत्रु अटलाण्टिक महासागर है। इस भौगोलिक शाश्वत वास्तविकताके कारण हम अपनेको सदा सुरक्षित समझते रहे हैं। किन्तु यह बात उस स्कूली लड़केके लिये भी बिलकुल साफ है कि दूरत्व अब रक्षा करनेमें सहायक नहीं है जिसने हवाई जहाज देखा है।'

ऐसी स्थितिमें यदि इस युद्धके बाद अमेरिकाने फिर अपनेको संसारके झगड़ेसे दूर रखनेकी नीति ग्रहणकी तो फिर वह वही गलती दुहरायेगा जो १९१८ में मित्रोंके लिये युद्ध जीत देनेके बाद १९१९ में वैराग्य लेकर की थी। उसकी यह तटस्थ-नीति संसारके लिये फिर महाघातक सिद्ध होगी।

४—एंग्लो अमेरिकन सम्बन्ध—

इस युद्धके बाद इंगलैंड पहले वाला इंगलैंड न रह जायेगा। विभिन्न सामाजिक और आर्थिक रूपान्तरोंसे इङ्गलैंडका स्वरूप बदल जायेगा। इसमें सन्देह नहीं कि वह युद्धके बाद अपना साम्राज्य अक्षुण्ण बनाये रखनेका प्राण-पणसे प्रयत्न करेगा और सम्पूर्ण नहीं तो अधिकांश तो बनाये रहेगा ही, फिर भी यह निश्चित है कि वह पहले से कहीं अधिक गरीब देश हो जायेगा। ऐसी स्थितिमें अमेरिकन शक्ति, प्रभाव और ऐश्वर्यके प्रति अंग्रेजोंमें ईर्षाका भाव पैदा होना सम्भव है। अच्छेसे अच्छे मित्र भी युद्धके समय जितना मिल जुल कर रहते हैं शान्तिके समय उतना नहीं रह सकते। ब्रिटेन और अमेरिकाके बीच झगड़ेके कितने ही सूत्र पहले हीसे चले आ रहे हैं और समयके साथ साथ ये अधिक बढ़ेंगे। झगड़ेके कुछ विषय ये हैं— (१) गगन मार्गका अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण। (२) तेल। (३)

एकसी भावी शान्ति संगठनमें दोनों राष्ट्रोंकी शक्तिका हिस्सा कितना और किस रूपमें होगा। (४) टैरिफ और मुद्रानीति। (५) औपनिवेशिक प्रश्न, उदाहरणार्थ,कैरीबियन अंचल,जहां अमेरिकन हवाई अड्डे हैं। (६) जहाजरानी। किन्तु ये प्रश्न तो विश्व-नेतृत्वके प्रश्नके सामने गौण और नगण्य हैं। सबसे जबर्दस्त समस्या तो उस समय खड़ी होगी जब ब्रिटेनके साथ प्रतियोगिता करते हुए संयुक्त-राज्य अमेरिका एक विश्व-शक्तिके विशेषाधिकार और उत्तरदायित्व ग्रहण करेगा। दोनोंके बीचमें इस प्रश्नको लेकर मनोवैज्ञानिक हिसाब-किताब किस ढंगसे होगा, यह ऊपर लिखे प्रश्नोंसे भी कहीं अधिक महत्वका है।

हम सब यह जानते हैं कि जेनरल आइजेन हावर प्रथम कोटिके सामरिक संगठन कर्त्ता और सेनापति हैं। यदि वे अमेरिकनों और अंगरेजोंको एक सच्चे सङ्घबद्ध दलमें मिला सकें तो निस्सन्देह उनका यह अवदान युद्ध और शान्तिके लिये अमूल्य और स्मरणीय रहेगा। उन्होंने अपने कार्योंसे यह बताया है कि सदिच्छा, सद्भावना, यथार्थवाद, बुद्धिवाद और संकल्पसे यदि काम लिया जाये तो कोई कारण नहीं है कि अमेरिकन और अंगरेज क्यों मित्र नहीं हो सकते।

५—एशियाकी समस्या

संयुक्तराज्य अमेरिकाकी आबादी १३ करोड़ है, सारे यूरोपकी आबादी प्रायः ४० करोड़ है। लेकिन अकेले भारतवर्षकी आबादी करीब ३९ करोड़ और चीनकी ४७ करोड़ ९० लाख है। ऐसी स्थितिमें जब तक एशियाकी समस्या पर विचार नहीं किया जायेगा, तब तक वांछनीय शांति, विश्वशांति हो नहीं सकती।

एशियाकी समस्या त्रिमुखी है और प्रत्येकका स्वरूप विराट और विविध है। जापानको कुचलना ही पड़ेगा। प्रश्न यह है कि अमेरिका जापानसे कैसे पेश आयेगा। जर्मनीकी तरह जापानको भी पराजित और निरस्त्र करके इस तरहकी स्थितिमें पहुंचाना होगा कि फिर युद्ध छेड़ सकनेकी शक्ति उसमें न रह जाये। प्रथम :आवश्यक काम यह है कि कुछ समयके लिये जापान पर नियन्त्रण और अधिकार रखना होगा।

एक कठिन सवाल सम्राट हीरोहीतोका है। जापानके प्रति अमेरिकन प्रचारआन्दोलनमें साधारणतया इस बातका ध्यान रखा जाता है कि हीरोहीतो पर, जिनको प्रजा देवता तुल्य मानती है, व्यक्तिगत आक्रमण न किया जाय। दर असल यह तथाकथित देवत्व सरासर भित्तिहीन और धोखाधड़ी है। धुरी अपराधियोंमें हीरोहीतो भी शीर्ष स्थानीय है और युद्धके बाद उनको भी हिटलरकी तरह ही दण्डित किया जाना चाहिये।

अमेरिका और ब्रिटेन दोनों ही वचनबद्ध हैं कि जापानका प्रादेशिक विस्तार संकुचित करके जापानी द्वीप पुञ्जों तक सीमित रखा जाय। इसका अर्थ यह होता है कि जापानके अधिकारमें जो प्रदेश हैं उनको पहलेके अधिकारियोंको लौटा दिया जायेगा और जापान अधिकृत, प्रशान्त द्वीप डच-अंगरेजों और अमेरिकनोंके अधिकारमें चले जायेंगे। किन्तु जापानके मित्र इण्डोचीनका, जो पहले फ्रांसके अधिकारमें था और थाइलैण्डका, जो पहले कभी स्वतन्त्र राष्ट्र था, क्या होगा ? इन प्रदेशोंका भावी स्वरूप क्या होगा, इस सम्बन्ध में कोई संकेत नहीं मिलता।

चीनकी स्थिति

चीनको आधुनिक पूर्ण लोकतन्त्रीय राष्ट्र बनानेमें अमेरिका उसकी कैसे मदद करेगा और कैसे उसे सुदृढ़ और पुष्ट बनानेमें सहायक होगा? अमेरिकनोंको इस मामलेमें अपनी स्थिति बिलकुल स्पष्ट और खुलासा कर देनी चाहिये। इस समय चीनको राष्ट्र नहीं कहा जा सकता। यह एक विस्तृत फैला हुआ भूखण्ड है जो सच्ची राष्ट्रीयता प्राप्त करनेके लिये उच्चाभिलाषी और प्रयत्नशील है। नियन्त्रण चांगकैशककी केन्द्रीय सरकार और चीनी कम्यूनिष्टोंमें बंटा हुआ है। कम्यूनिष्टोंने विशाल उत्तर पश्चिम प्रान्तमें अर्द्ध-रिपब्लिक स्थापित कर लिया है। अमेरिकाकी नीति सम्पूर्ण हृदय से चीनको वास्तविक राष्ट्रीयता प्राप्त करनेमें सहायता पहुंचानेकी होनी चाहिये। पूरी शक्ति लगा कर गृह-युद्धको रोकना चाहिये और जेनरलिस्सिमो तथा कम्यूनिष्टोंको मिल जुलकर काम करनेको प्रोत्साहित करना चाहिये।

जापानके पीछे फैला हुआ चीन देश एक अपार जन समूह है। विजयी चीन प्रशान्तके सामने पड़नेवाले एशियाई भू-भागका नियन्त्रण करेगा। अमेरिकनोंके अपने निजी राष्ट्रीय स्वार्थका तकाजा है कि चीन संयुक्त, प्रगतिशील, शक्तिशाली और दृढ़ रहे। अमेरिकाके युद्धमें आनेका मुख्य कारण भी तो चीन है। इसलिये अमेरिका पर द्विगुण उत्तरदायित्व है कि चीनको मजबूत बनानेमें उसकी सहायता करे।

भारतकी समस्या

भारतका प्रश्न विश्व-शान्तिके दृष्टिकोणसे अत्यन्त महत्वका है। अभी तक गणतन्त्रीय स्वतन्त्र राष्ट्रोंने इस प्रश्नके औचित्यकी दृष्टिसे इस पर विचार नहीं किया। इस प्रश्न पर अब तक ब्रिटेनके हित और प्रभावको दृष्टिगत रखकर, बल्कि उन्हें प्रधानता देकर विचार किया गया है। यही वजह है कि कोई राष्ट्र भारतके मामलेमें जबान खोलने तकका साहस नहीं करता। इस सम्बन्धमें जान गुन्थर कहते हैं कि 'राष्ट्रवादी भारतीयोंका बहुत बड़ा भाग युद्धके बाद सम्पूर्ण स्वतन्त्रता चाहता है। अधिकांश राजनेता समझते हैं कि अधिकसे अधिक डोमिनियन स्टेटस भारतको दिया जा सकता है। यदि कोई समझौता न हुआ तो अधिकांश भारतीयोंके निश्शस्त्र, दुर्बल, दरिद्र और भूखे होते हुए भी भारतमें क्रांतिका विस्फोट हो सकता है। भारतके मामलेमें अमेरिकन अधिकाधिक किंकर्त्तव्य विमूढ़से और परेशान दिखाई दे रहे हैं। वे अपने आपसेआप यह प्रश्न करते हैं—'यदि वस्तुतः यह स्वतन्त्रताका युद्ध है और यदि यह बात निर्विवाद है कि बहुसंख्यक भारतीय स्वतन्त्रता चाहते हैं तो क्या यह न्याय सङ्गत होगा कि भारतीयोंको स्वतन्त्रता से वञ्चित रखा जाये।'

भारतमें उपस्थित सहस्रों अमेरिकन अफसर और सैनिक भारतसे परिचित हो रहे हैं। आशा की जाती है कि उनका मत उस समस्याके समुचित समाधानमें सहायक और बलदायक होगा जो निस्सन्देह संसारकी अत्यन्त कठिन और खतरनाक समस्याओंमें एक है।

इस तरह देखा जाता है कि अमेरिकामें प्रगतिशील वर्ग विश्व शान्तिकी समस्याको तीन भागोंमें बांटते हैं। १—पूर्वीय यूरोप और उसके आसपास रूसका प्रभाव और प्राधान्य विजयी साथियोंको स्वीकार करना ही पड़ेगा। २—विश्वका नेतृत्व अमेरिका करेगा, ब्रिटेनको अन्ततोगत्वा अमेरिकाका नेतृत्व बन्धुभावसे मानना ही पड़ेगा। ३—प्रशान्तके समक्ष एशिया खण्डका नेता चीनको बनाया जायगा, किन्तु चीन अभी इस स्थितिमें नहीं है कि वह अपने पैरों पर खड़ा हो सके इस लिये अमेरिका उसकी वांछनीय सहायता करेगा। भारतके साथ ब्रिटेनको समझौता करना पड़ेगा।

इस तरह देखा जाता है कि अभीसे अमेरिकाको विश्व-शक्ति नम्बर एक बनाने और इसके लिये रूसको यूरोपका नेता मानने तथा ब्रिटेनको भारतके साथ समझौता करके अपना पूर्वीय और अफ्रीकन साम्राज्य बनाये रखने देनेके पक्षमें भीतर ही भीतर प्रचार आरम्भ हो गया है।

समस्या इतनी सहज नहीं है। विश्व-नेतृत्वका प्रश्न ब्रिटेन, अमेरिका और रूस तीनोंके सामने है। इस युद्धके बाद बेशक ब्रिटेनकी स्थिति अमेरिकासे झगड़ा मोल लेनेकी न रहेगी किन्तु यही बात रूसके सम्बन्धमें नहीं कही जा सकती। अतः इस युद्धके बाद विश्वका नेतृत्व कौन करेगा रूस या अमेरिका? यह ऐसा प्रश्न है जिसपर अभी सहज ही कोई मत कायम नहीं किया जा सकता। बहुत सम्भव है कि विश्व नेतृत्वके लिये अमेरिका और रूसकी महत्वाकांक्षाओंका संघर्ष तीसरे विश्व युद्धका कारण बने।

ब्रेटन-वुड मुद्रा सम्मेलन

प्रो० शङ्कर सहाय सक्सेना एम० ए० एम काम

जैसे-जैसे युद्धकी स्थिति मित्रराष्ट्रोंके पक्षमें होती जा रही है वैसे ही वैसे संयुक्त राज्य अमेरिका और ब्रिटेनके नेतृत्वमें मित्रराष्ट्र युद्धोत्तर समस्याओंको सुलझानेके लिये व्यग्र होते जा रहे हैं। यही कारण है कि जर्मनीके साथ युद्धके उपरान्त कैसा व्यवहार किया जायगा, भविष्यमें संसारको युद्धकी विभीषिकासे किस प्रकार बचाया जा सकता है, संसारके भिन्न-भिन्न देशोंकी मुद्रा-विनिमयकी दरको स्थिर किस प्रकार रखा जाय कि जिससे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारमें रुकावट न पड़े और जिन देशोंको अपना आर्थिक निर्माण करना है उनको आर्थिक सहायता किस प्रकार दी जाय, आदि प्रश्नोंपर अभीसे गम्भीरता-पूर्वक विचार किया जाने लगा है।

भिन्न-भिन्न देशोंकी मुद्रा-विनिमय दरको स्थायित्व प्रदान करने तथा संसारके देशोंका आर्थिक पुनर्निर्माण करनेके लिये, आर्थिक सहायता प्रदान करनेके लिये अन्तर्राष्ट्रीय बैंककी स्थापना करने तथा अन्य मुद्रा सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नोंको हल करनेके उद्देश्यसे संयुक्त राज्य अमेरिकामें ब्रेटन-वुड नामक स्थानपर शत्रु राष्ट्रोंको छोड़ कर अन्य:सभी राष्ट्रोंका एक अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा सम्मेलन १ जुलाई १९४४ को आरम्भ हुआ। यह सम्मेलन अब समाप्त हो चुका है। सम्मेलनने कुछ अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास किये हैं। सभी देशोंके प्रतिनिधि अपने देशको लौट चुके हैं और प्रत्येक देश ब्रेटन-वुड मुद्रा-सम्मेलनके स्वीकृत प्रस्तावोंके सम्बन्धमें गम्भीरता पूर्वक विचार कर रहा है। भारतवर्षमें भी ब्रेटन-वुड मुद्रा सम्मेलनके प्रस्तावोंको लेकर यथेष्ट चर्चा चल रही है। अतएव इस सम्बन्धमें कोई निर्णय देनेके पूर्व सम्मेलनके प्रस्तावोंका अध्ययन कर लेना आवश्यक है।

ब्रेटन-वुड सम्मेलनमें ४४ राष्ट्रोंके प्रतिनिधि उपस्थित थे। इस सम्मेलनमें ब्रिटेनके अर्थ शास्त्रज्ञ कीन्सकी मुद्रा सम्बन्धी योजना तथा संयुक्त राज्य अमेरिकाकी वाईट योजनापर विचार हुआ और अन्तमें सर्वसम्मतिसे इन दोनों योजनाओंके सम्मिश्रणसे एक नवीन योजना तैयार की गयी।

सम्मेलनके सामने तीन मुख्य समस्याएं थीं।

(१) महायुद्धके समाप्त होनेके बाद भिन्न-भिन्न देशोंकी मुद्रा-विनिमय दरको स्थिर रखनेके लिये एक "अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष" की स्थापना (२) एक अन्तर्राष्ट्रीय बैंककी स्थापना जो पिछड़े हुए तथा उन देशोंको जिनके धन्धे युद्धमें नष्ट हो गये हों पूंजी देनेका प्रबन्ध करे जिससे कि उन देशोंके नव-निर्माणका कार्य हो सके। (३) अन्य आवश्यक आर्थिक प्रश्न जो अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक स्थितिको सुधारनेके लिये आवश्यक हैं जैसे भिन्न-भिन्न देशोंकी व्यापार-नीति इत्यादि।

इन तीनों प्रश्नोंपर गम्भीरता पूर्वक विचार करनेके लिये तीन कमीशन नियुक्त किये गये थे। इन्होंने एक-एक योजना अपने विषयके सम्बन्धमें बनाकर सम्मेलनके सामने उपस्थित की। पहले दो प्रश्नों पर सम्मेलनने एक मतसे उन योजनाओंको स्वीकार कर लिया है। तीसरी योजना अभी प्रकाशित नहीं हुई है।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-कोष

भिन्न-भिन्न देशोंकी मुद्रा-विनिमय दरको स्थायी रखनेके लिये एक अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोषकी स्थापना होगी। यह कोष ८८,००० लाख डालरका होगा जिसका बंटवारा इस प्रकार होगा :—

संयुक्त राज्य अमेरिका २७,५०० लाख डालर, यूनायटेड किंगडम १३,००० लाख डालर सोवियट रूस १२,००० लाख डालर, चीन ५,५०० लाख डालर, फ्रांस ४,५०० लाख डालर, भारतवर्ष ४,००० लाख डालर, बेलजियम २,२५० लाख डालर, कनाडा ३,००० लाख डालर, आस्ट्रेलिया २,००० लाख डालर, नेदरलैण्ड २,७५० लाख डालर, दक्षिण अफ्रीका १,००० लाख डालर, इराक ८० लाख डालर, ईरान २५० लाख डालर, ग्रीस ४०० लाख डालर, आइसलैंड १० लाख डालर, मिस्र ४२० लाख डालर, इथोपिया ६० लाख डालर आयरलैण्ड १० लाख डालर लाइबेरिया ५ लाख डालर। वस्तुतः आरम्भमें प्रस्ताव यह था कि कोषका कुल धन दस अरब डालर हो जिसमें ८ अरब डालर मित्रराष्ट्रोंका हो और दो अरब डालर शत्रु राष्ट्रोंके लिये रखा जावे। किन्तु सम्मेलनमें उपस्थित राष्ट्रोंकी इच्छाको रखनेके लिये ८ अरब ८० करोड़ डालरका कोष उन राष्ट्रोंके लिए सुरक्षित

रक्खा गया और अब शत्रु राष्ट्रोंके लिये केवल १ अरब २० करोड़ डालरका कोष शेष रह गया।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोषका यह बंटवारा बिलकुल मनमाने ढङ्गसे किया गया है। इसमें आर्थिक महत्व, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, तथा विनिमयकी आवश्यकताओंको ध्यान में न रख कर राजनैतिक दृष्टिकोणको प्रमुख स्थान दिया गया है। नहीं तो भारतवर्षका कोटा चीन और फ्रांससे कम रखनेकी बातका समर्थन कोई विचारशून्य व्यक्ति ही कर सकता था।

देशों द्वारा चनाव होगा। कोषकी प्रबन्धकारिणी समिति में जब चीन और फ्रांसको स्थान दिया गया है तब भारतवर्षको उसमें स्थायी स्थान न देना न्याय-संगत नहीं है। सच तो यह है कि भारतवर्ष परतन्त्र है। इस कारण उसकी अवहेलना की जा सकती है और उसको दबाया जा सकता है। संसारमें आर्थिक समस्याओंको हल करनेके लिये जो संगठन किया जाये उसका आधार राजनैतिक अवसरवादिता हो यह कितनी हास्यास्पद बात है। कुछ लोग यह कहते हैं कि शेष पांच स्थानोंमें एक स्थान तो भारतवर्षको

मित्र राष्ट्रीय मुद्रा सम्मेलनमें भाग लेने वाले भारतीय प्रतिनिधि गणः—
(बायीं ओर से)—डा० मदन, सर थियोडोर ग्रेगरी, ए० डी० शराफ, सर ए० जे० रेजमैन, सर षण्मुखम् चेट्टी और सर सी० डी० देशमुख। (रेडियोफोटो)

कोषके धनका बंटवारा एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न है क्योंकि किसी देशका कोषमें जितना हिस्सा होगा उसी अनुपातमें उसको वोट देनेका अधिकार होगा। इस कोषका प्रबन्ध १२ सदस्योंकी एक समिति करेगी। इनमें ५ सदस्य स्थायी होंगे। यह पांच स्थायी सदस्य क्रमशः संयुक्तराज्य अमेरिका, युनाइटेड किंगडम, (ब्रिटेन) सोवियट रूस, फ्रांस, तथा चीनके होंगे। शेष सात सदस्योंमेंसे दो दक्षिण अमेरिकाके प्रजातन्त्र-राष्ट्रोंके होंगे और शेष पांच सदस्योंका अन्य

अवश्य ही मिल जायगा क्योंकि भारतवर्षके ४००० लाख डालरके हिस्से होंगे। भारतके प्रतिनिधि जो कि इस सम्मेलनमें गये थे उनका भी कुछ ऐसा ही विचार है कि यद्यपि भारतवर्षको स्थायी सदस्यता तो नहीं मिली परन्तु वह चुनावमें एक स्थान अवश्य प्राप्त कर लिया करेगा। लेकिन ऐसा करते समय वे लोग यह भूल जाते हैं कि चुनावमें यह सारे ही छोटे-छोटे योरोपीय तथा अमेरिकन राष्ट्र भारतवर्षके विरुद्ध मिल जाया करेंगे और भारतवर्ष-

को एक स्थान भी नहीं मिल सकेगा। ब्रेटन-वुड सम्मेलनमें जब भारतवर्षके प्रतिनिधियोंने यह प्रस्ताव रखा था कि अन्तर्राष्ट्रीय कोष युद्धके समय जिन भिन्न-भिन्न देशोंका पावना जमा हो गया है, (उदाहरणके लिये भारतका ब्रिटेन पर स्टर्लिंग पावना जो १००० करोड़ रुपयेसे अधिक है।) उसको चुकानेमें सहायता दे। लेकिन सारे राष्ट्रोंने मिलकर इस प्रस्तावका विरोध किया यहां तक कि बेलजियम, फ्रांस, डेनमार्क जैसे देशोंने भी भारतका विरोध किया और उसका फल यह हुआ। कि एक अत्यन्त महत्वपूर्ण आर्थिक समस्या जिसका भिन्न-भिन्न देशों पर गहरा प्रभाव पड़ेगा उसकी ओर सम्मेलनने ध्यान तक नहीं दिया; क्योंकि ब्रिटेन अपने स्वार्थवश उसका निपटारा नहीं चाहता था। ऐसी दशामें यह आशा करना कि भारत को अवश्य ही कोषकी प्रबन्ध समितिमें एक स्थान चुनाव द्वारा मिल जाया करेगा बहुत बड़ी बुद्धिमानी नहीं है।

मुद्रा सम्मेलनमें भाग लेने वाले प्रमुख प्रतिनिधि

सम्मेलनने प्रत्येक देशका कोषमें जो भाग निर्धारित कर दिया है उसका एक चौथाई स्वर्णमें था उस देशके पास जो राजकीय स्वर्ण अथवा डालर हों उसका दसवां भाग (जो भी कम हो) मुद्रा कोषको देना होगा। कोषमें अपने हिस्सेका शेष भाग प्रत्येक देशको अपनी मुद्रा में देना होगा। भारतवर्षका कोषमें ४००० लाख डालर का हिस्सा निर्धारित किया गया है। इसका अर्थ यह हुआ कि या तो भारतवर्ष १००० लाख डालरके मूल्यका स्वर्ण कोषमें जमा करे अथवा जितना भी स्वर्ण और डालर भारत सरकारके पास हो उसका दसवां हिस्सा कोषको दे। इन दोनों रकमोंमें से जो भी कम होगी वही भारतको कोषको देनी होगी। मान लीजिये कि भारतने १००० लाख डालरके मूल्यका स्वर्ण कोषको दिया तो शेष ३००० लाख डालरके मूल्यके रुपये भारत कोषको देगा।

प्रत्येक देशकी मुद्राका अन्तर्राष्ट्रीय मूल्य स्थिर करनेके लिये इस योजनामें यह स्पष्ट कर दिया गया है कि जब कोई देश इस कोषका सदस्य होगा तो उस समय अपनी मुद्राका सममूल्य या तो स्वर्णमें या डालरमें निश्चित कर लेगा। इस मूल्यमें केवल एक बार १० प्रतिशत की घटा-बढ़ी की जा सकती है। उसके उपरान्त किसी भी परिवर्तनके लिये कोषकी आज्ञा लेना आवश्यक होगा। दूसरे शब्दोंमें संयुक्त राज्य अमेरिका (कोषके ३१.२९ प्रतिशतका स्वामी) ब्रिटेन (१४.८ प्रतिशतका स्वामी) और रूस (१३.६ प्रतिशतका स्वामी) की आज्ञाके बिना कोई भी देश अपनी मुद्राके मूल्यमें परिवर्तन नहीं कर सकता।

इस योजनाके अनुसार यह भी आवश्यक है कि कोई भी देश मुद्राकी अदायगीमें किसी भी प्रकारकी रुकावट नहीं डालेगा और न किसी प्रकारका प्रतिबन्ध ही लगायेगा। यदि कोई देश बिना आज्ञाके अपनी मुद्राकी विनिमय दरमें परिवर्तन करेगा तो उसको दण्ड दिया जायेगा।

इसके अतिरिक्त एक बात और भी है जिसकी ओर हमें विशेष रूपसे ध्यान देना चाहिये। जो भी देश अपने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारसे उत्पन्न होने वाले पावनेको चुकानेके लिये कोषसे ऋण लेगा उसे जितना ही उसका ऋण बढ़ता जायेगा उतनी ही अधिक ऊंची दरसे सूद देना पड़ेगा। तीन महीनेके लिये जो ऋण मुद्रा कोषसे लिया जायेगा उस पर ½ प्रतिशत, तीन महीनेके उपरान्त ½ प्रतिशत और ३ वर्षके उपरान्त २ प्रतिशत सूद देना होगा और इसके आगे प्रतिवर्षके लिये ½ प्रतिशत अधिक सूद देना होगा। यही नहीं यदि

कोई देश अपने कोटा अर्थात मुद्रा कोषमें निर्धारित भागके एक चौथाईसे अधिक ऋण लेगा तो उसको ½ प्रतिशत और अधिक सूद देना होगा और जैसे ऋण बढ़ता जायेगा वैसे ही वैसे सूदकी दर भी बढ़ती जायेगी। दूसरे शब्दोंमें अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोषसे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारकी देनको चुकानेके लिए ऋण लेना बहुत खर्चीला प्रमाणित होगा। इस सूदकी आमदनीमेंसे २ प्रतिशत उन देशोंको दिया जायेगा जिनकी मुद्राको ऋणी देशने लिया है। उदाहरणके लिये यदि भारतवर्षने संयुक्त राज्य अमेरिकासे १५० करोड़ डालरका माल मंगवाया और केवल १०० करोड़ डालरका माल भेजा तो भारतको ५० करोड़की देन चुकानेके लिये अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोषसे ५० करोड़ डालर ऋण लेना होगा। इसी प्रकार हो सकता है कि आस्ट्रेलियाको भारतके रुपये अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोषसे उधार लेने पड़ें क्योंकि आस्ट्रेलिया ने भारतसे माल अधिक मंगाया हो लेकिन भेजा कम हो।

एक बात और है जिसकी ओर हम लोगोंको विशेष रूपसे ध्यान देना चाहिये। योजनामें यह भी निर्धारित कर दिया गया है कि अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-कोषमें जो भिन्न भिन्न देशोंका स्वर्ण जमा होगा वह संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन रूस, चीन और फ्रांसमें रखा जायेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि भारतका स्वर्ण माल्को, चुङ्किंग या पेरिसमें रहेगा।

इसके अतिरिक्त जो भी देश अन्तर्राष्ट्रीय कोषसे किसी अन्य देशकी मुद्रा उधार लेगा उसको केवल ऋण पर सूद ही नहीं देना पड़ेगा साथ ही साथ उसका वोट भी कम हो जायेगा। उदाहरणके लिये यदि भारतवर्ष ब्रिटेनसे स्टर्लिङ्ग उधार ले तो भारतवर्षकी हर ४००,००० डालरके ऋण पीछे एक वोट कम हो जायेगा और ब्रिटेनका एक वोट बढ़ जायेगा। यदि भारतवर्ष संयुक्तराज्य अमेरिकासे १००० लाख डालर उधार ले तो उसके २५० वोट अमेरिका को मिल जायेंगे। (भारतके कुल वोट ४२५० हैं।) भारत वर्ष एक सालमें १००० लाख डालर और कुल ऋण ८००० लाख डालर ले सकता है। भारतकी अन्तर्राष्ट्रीय देनीके लिये यह रकम पर्याप्त होगी यह कह सकना बहुत कठिन है। तब स्थिति यह है कि अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष किसी देशकी सारी कठिनाइयोंको दूर करेगा इसमें तो संदेह है, किन्तु वह थोड़े समयके लिये किसी देशकी मुद्रा सम्बन्धी कठिनाईको दूर कर सकेगा। कोष तथा बैंकका स्थान संयुक्तराज्य अमेरिकामें रहेगा। इस प्रकार एक दृष्टिसे देखा जाये तो अमेरिकाका ही इस कोष तथा बैंकके संचालनमें प्रमुख स्थान रहेगा।

अन्तर्राष्ट्रीय बैंक—

अन्तर्राष्ट्रीय बैंकको स्थापित करनेके निम्नलिखित उद्देश्य हैं—

१—जो देश इस बैंकके सदस्य होंगे उनमें उद्योग धन्धोंकी उन्नति करने, उनकी पिछड़ी हुई आर्थिक दशाको सुधारने तथा युद्धके कारण देशोंकी अस्तव्यस्त आर्थिक व्यवस्थाका पुनर्निमाण करनेमें सहायता पहुंचाना।

२—व्यक्तिगत पूंजीको आर्थिक दृष्टिसे पिछड़े हुए देशों में लगानेके लिये प्रोत्साहन देना, जिससे पिछड़े हुए देशोंकी आर्थिक उन्नति हो सके। इसके लिये बैंक उन देशोंके ऋणोंकी गारंटी कर देगा जिससे कि भिन्न भिन्न देशोंके पूंजीपति अपनी पूंजी पिछड़े देशोंमें बिना किसी भय के लगा सकें। उदाहरणके लिये यदि भारतवर्ष अपने धन्धोंकी उन्नतिके लिये संयुक्त राज्य अमेरिका अथवा ब्रिटेनसे ऋण लेना चाहे तो अन्तर्राष्ट्रीय बैंक उस ऋणकी गारंटी कर देगा जिससे कि संयुक्त राज्य अमेरिका और ब्रिटेनके पूंजीपति बिना किसी शङ्काके अपनी पूंजी भारतमें लगा सकेंगे।

३—पिछड़े हुए तथा युद्धके कारण आर्थिक दृष्टिसे जर्जर देशोंके आर्थिक नव-निर्माणमें यदि पूंजीकी आवश्यकता पड़े तो ऋण देना।

अन्तर्राष्ट्रीय बैंकके वे देश ही सदस्य हो सकेंगे जो अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोषके सदस्य बन जायेंगे। बैंककी पूंजी दस अरब डालर होगी जो एक लाख डालरके एक लाख हिस्सोंमें विभक्त होगी। ४४ देश, जिन्होंने इस सम्मेलनमें भाग लिया था, ८ अरब ८० करोड़ डालरके हिस्से उसी अनुपातमें खरीद सकेंगे जिस अनुपातमें उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोषमें हिस्सा मिला है। शेष १ अरब बीस करोड़ डालरके हिस्से धुरी राष्ट्रोंके लिये छोड़ रखे गये हैं। यदि युद्धके उपरान्त वे शत्रु राष्ट्र इस योजनामें सम्मलित होना चाहेंगे तो वे १ अरब २० करोड़ डालरके हिस्से खरीद सकेंगे। कोई भी देश अपने निर्धारित हिस्सोंसे अधिक नहीं खरीद सकेगा। इन हिस्सोंके मूल्यका २० प्रतिशत तो उसी समय, जब कोई देश बैंकका सदस्य हो तब देना होगा और शेष ८० प्रतिशत उस देशसे तभी लिया जायेगा जब वह विदेशी पूंजीपतियोंसे लिये हुए ऋणको जिसकी गारंटी

दी हुई है चुका सकनेमें असमर्थ होगा। उदाहरणके लिये यदि भारतवर्षने संयुक्त राज्य अमेरिकासे ऋण लिया जिसकी गारंटी बैंकने कर दी है और यदि भारतवर्ष उस ऋणको न चुका सका तब गारण्टी देनेके कारण उस रकमकी अदायगी बैंकको करनी होगी। ऐसे समय बैंक भारतवर्षसे शेष ८० प्रतिशत हिस्सोंका मूलधन मांगेगा। दूसरे शब्दोंमें बैंककी पूंजीका ८० प्रतिशत, गारण्टीके फलस्वरूप जो बैंक पर उत्तरदायित्व आ जावेगा उसके लिये, रक्षित कोषका काम देगा। केवल २० प्रतिशत पूंजी सीधे देशोंको उधार दी जावेगी।

बैंक किसी देशको पूंजी (१) उसी समय उधार देगा जब कि उसको विश्वास हो जायेगा कि वर्तमान परिस्थिति में उस देशको उचित शर्तों पर किसी भी अन्य देशसे ऋण नहीं मिल रहा है। (२) जब कि विशेषज्ञोंकी एक कमेटी उधार लेने वाले देशकी योजनाओंको जांच करके यह बतला देगी कि जिस योजनाके लिये ऋण मांगा जा रहा है वह लाभप्रद प्रमाणित होगी और सूद तथा ऋणकी अदायगीकी शर्तें उचित हैं तथा ऋणकी अदायगीकी पूरी पूरी सम्भावना है। बैंक जिस योजनाके लिये ऋण देगा वह पूंजी केवल उसी कार्यमें लगाई जा सकेगी, अन्य किसी कार्यमें नहीं लगाई जा सकेगी। बैंक इस बातकी जांच करायेगा और जैसे जैसे योजना कार्य रूपमें परिणत होती जायेगी वैसे ही वैसे बैंक ऋणकी रकम किश्तोंमें उस देशको देता जायेगा। एक साथ सारी रकम नहीं दी जायेगी। दूसरे शब्दोंमें बैंकसे सीधा ऋण मिलनेमें बहुत कठिनाई और रुकावटें होंगी।

क्या भारतको इसमें सम्मिलित होना चाहिये ?

कुछ लोग इस योजनामें भारतके सम्मिलित होनेके पक्षमें हैं और वे अभीसे उसके पक्षमें प्रचार कार्य कर रहे हैं। ऐसे महत्वपूर्ण प्रश्नके सम्बन्धमें बिना सोचे विचारे शीघ्र ही कोई निर्णय कर डालना कोई बुद्धिमानीका काम नहीं होगा इस प्रश्न पर हमें भारतके हितोंको दृष्टिमें रख कर ही विचार करना चाहिये। यदि इस योजनामें सम्मिलित होने से भारतका लाभ दिखलाई दे तो इसमें हमें अवश्य सम्मिलित हो जाना चाहिये, अन्यथा नहीं।

युद्ध समाप्त होनेके उपरांत भारतकी प्रमुख आर्थिक समस्या, हमारा जो स्टर्लिङ्ग पावना ब्रिटेनके ऊपर है (जो लगभग १२०० करोड़ रुपयेके लगता है) उसके ब्रिटेन द्वारा चुकाये जानेकी, उपस्थित होगी। ध्यान रहे यह स्टर्लिङ्ग पावना करोड़ों भारतीयोंके नंगे और भूखे रहनेके फलस्वरूप इकट्ठा हुआ है। युद्धकालमें भारतने जो भयानक कष्ट झेले हैं और लाखों आदमी मर गये हैं उनके कष्ट सहन के फल स्वरूप ही यह स्टर्लिङ्ग पावना जमा हुआ है। भारतीय अर्थशास्त्री चाहते हैं कि जो यह रकम भारतने अकथनीय कष्ट सहन करके इकट्ठी की है उसको वह अपनी आर्थिक उन्नतिके लिये काममें ला सके अर्थात वह यह चाहते हैं कि उसके बदले ब्रिटेन तथा अन्य औद्योगिक देशोंसे यन्त्र इत्यादि ऐसा माल मंगवाया जा सके कि जिससे हमारे देशके धन्धे उन्नति कर सकें। ब्रेटन-वुड सम्मेलनमें उपस्थित भारतके प्रतिनिधियोंने यह मांग उपस्थित की थी कि यह रकम भिन्न-भिन्न राष्ट्रोंकी मुद्रामें बदल दी जाये जिससे कि भारत उसके बदलेमें उन देशोंसे अपने आवश्यकतानुसार उतने मूल्यके यन्त्र इत्यादि खरीद सके। भारतीय प्रतिनिधियोंका तो यह प्रस्ताव था कि युद्धके कारण जो बहुतसे देश अन्य देशोंके कर्जदार हो गये हैं उस पावनेको चुकानेमें अन्तर्राष्ट्रीय कोष सहायता दे। लेकिन भारतवर्षकी इस मांगको ठुकरा दिया गया। कहा यह गया कि यदि अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोषपर यह बोझ लाद दिया गया तो वह उसको सहन नहीं कर सकेगा। इसके लिये कर्जदार तथा महाजन देशोंको आपसमें समझौता करना चाहिये। आश्चर्यकी बात तो यह है कि अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोषका प्रधान उद्देश्य यह है कि भिन्न भिन्न देशोंकी मुद्रा विनिमय दर स्थिर रहे किन्तु जब तक युद्धजनित पावनेकी भारी रकमको चुकानेका प्रबन्ध नहीं किया जाता तब तक मुद्रा-विनिमय दर स्थिर कैसे रह सकती है। ब्रिटेन और संयुक्त राज्य अमेरिकाने भारतीय प्रतिनिधियोंकी इस मांगका विरोध किया तो सभी छोटे-मोटे राष्ट्र उनके साथ मिल गये और वे भी भारतका विरोध करने लगे। सच तो यह है कि न तो ब्रिटेन और न संयुक्त राज्य अमेरिका ही यह चाहता है कि भारतीय धन्धे पनपें। ब्रिटेनको तो आगे चलकर अपने रहन-सहनके दर्जेको गिरने न देनेके लिये भारतका अधिकाधिक शोषण करना आवश्यक हो जायेगा। उधर संयुक्त राज्यकी भी आंख भारतके बाजारोंपर अटकी हुई है। अस्तु वे क्योंकर चाह सकते हैं कि भारतके उद्योग-धन्धे उन्नत हो जायें। यही कारण है कि ब्रिटेनके अर्थशास्त्री तथा उद्योगपति अब स्पष्ट कहने लगे हैं कि ब्रिटेन

इस स्टर्लिङ्ग पावनेको यन्त्र इत्यादि उत्पादनमें काम आने वाली वस्तुओंको देकर नहीं वरन उपभोगकी वस्तुएं देकर चुकायेगा। इसका अर्थ यह होगा कि कपड़ा, शीशेका सामान, लोहेकी बनी चीजें तथा चमड़े इत्यादिकी बनी हुई चीजोंसे भारतीय बाजार पन्द्रह वर्ष तक पटे रहेंगे और नये धन्धोंके उदय होनेकी सम्भावना तो दूर रही वर्तमान कारखानोंका जीवित रहना कठिन हो जायगा।

दूसरा प्रश्न, जो भारतीयोंके लिये विचार पूर्ण है, अन्तर्राष्ट्रीय बंकके बोर्ड आफ डायरेक्टरों तथा मुद्राकोषके सञ्चालकोंमें उसे स्थायी स्थान न मिलनेसे सम्बन्ध रखता है। आर्थिक दृष्टिसे भारत अन्य देशोंकी अपेक्षा, जिन्हें स्थायी स्थान मिला है, अधिक महत्वपूर्ण होते हुए भी उसे स्थान नहीं दिया गया। संयुक्त राज्य अमेरिकाके प्रतिनिधिने तो स्पष्ट ही कह दिया कि भारतको एक स्थान देनेका अर्थ होगा ब्रिटेनको एक स्थान देना जो अमेरिका नहीं चाहता। अस्तु भारतकी राजनीतिक दासताके कारण उसे स्थायी स्थान नहीं मिला। यदि संयुक्त राज्य अमेरिका की भारतके सम्बन्धमें यही नीति रही तो बहुत सम्भव है कि शेष पांच स्थानोंमें भी जिनका चुनाव होगा उसे स्थान न मिले। ऐसी दशामें मुद्राकोष तथा अन्तर्राष्ट्रीय बैंकके प्रबन्ध और सञ्चालनमें भारतका वस्तुतः कोई भी हाथ नहीं रहेगा।

कुछ लोगोंका कहना है कि भारतको अपनी आर्थिक उन्नतिके लिये लम्बे समयके लिये बैंकसे पूंजी मिल सकेगी। इसी एक लाभके लिये उसे इस योजनामें सम्मिलित हो जाना चाहिये। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या वास्तवमें भारत को समुचित पूंजी उचित शर्तोंपर बैंक द्वारा मिल सकेगी?

यह कहना कि भारतवर्षको अपने धन्धोंकी उन्नति करनेके लिये यथेष्ट पूंजी बैंकसे मिल जायेगी वस्तु-स्थिति से अनभिज्ञता प्रकट करना है। यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि बैंककी उधार देनेकी शर्तें बहुत कड़ी हैं जिससे कि पूंजी आसानीसे उधार नहीं मिल सकती। इस बातका ठीक-ठीक पता लगाना कि भारतको किसी अन्य देशसे पूंजी मिल सकेगी या नहीं, सरल नहीं है। बैंकके विधान में यह रख दिया गया है कि यदि किसी देशको अन्य देशोंसे उचित शर्तों तथा उचित सूदपर पूंजी न मिल सके तब वह देश बैंकसे पूंजी उधार लेनेका अधिकारी होगा। लेकिन यह तय कौन करेगा कि देश को अन्य देशोंसे उचित शर्तों पर पूंजी मिल सकती है या नहीं। स्पष्ट ही भारतका तो बोर्ड आफ डायरेक्टर्स पर प्रभाव होगा नहीं। उधर ब्रिटेन और संयुक्त राज्य अमेरिका भारतकी औद्योगिक उन्नति नहीं चाहेंगे। ऐसी दशामें बैंकसे भारतको यथेष्ट पूंजी मिल सकेगी इसकी सम्भावना बहुत कम है। इसके अतिरिक्त विशेषज्ञोंकी जो कमेटी पूंजी उधार मांगने वाले देशकी योजनाकी जांच करके यह तय करेगी कि यह योजना ठीक है या नहीं और उसके लिये ऋण देना चाहिये अथवा नहीं, उस कमेटीका चुनाव किस प्रकार होगा इसकी भी विधानमें कोई चर्चा नहीं है। इसमें सन्देह करनेका कोई स्थान नहीं है कि संयुक्तराज्य अमेरिका और ब्रिटेनका हाथ इस विशेषज्ञोंकी कमेटीमें भी रहेगा और वहां जो निर्णय होगा उनके पीछे राजनीति ही प्रधान रहेगी। ऐसी दशामें भारतवर्षके साथ कोई अच्छा व्यवहार होगा इसकी आशा रखना व्यर्थ है। आर्थिक दृष्टिसे जर्जर ब्रिटेन भारतको कृषि प्रधान देश ही रखना चाहेगा।

इसके अतिरिक्त एक और भी महत्वपूर्ण प्रश्न है जिसकी ओर भारतीय उदासीन नहीं हो सकते। इस योजनाके अनुसार भारतको सदैवके लिये अपनी मुद्राकी विनिमय दरको निश्चित कर देना होगा। हमारी आजकल की जो विनिमय दर है वह देशके लिये अत्यन्त अहितकर है और पिछले बीस वर्षोंसे भारतीय इसके विरुद्ध अपनी आवाज उठाते रहे हैं परन्तु ब्रिटेनके व्यवसायको प्रोत्साहन देनेके लिये भारत सरकारने भारतके हितोंको बलिदान कर दिया। ब्रेटन-वुड सम्मेलनमें इस सम्बन्धमें जो विचार विनिमय हुआ उससे यह स्पष्ट ध्वनि निकलती है कि आजकल जो भिन्न-भिन्न देशोंकी विनिमय दर प्रचलित है उसमें कोई हेर-फेर नहीं होगा। भारत सरकारने भी अभी हालमें इस आशयकी घोषणा की है कि रुपये और स्टर्लिङ्गकी विनिमय दरमें कोई परिवर्तन करना सरकारको अभीष्ट नहीं है। इसका अर्थ यह होगा कि भारतकी मुद्रा विनिमय दर भारत के हितोंके विरुद्ध सदाके लिये निश्चित हो जायगी जिससे भारतकी अपार आर्थिक क्षति होगी।

सच तो यह है कि भारतवर्ष जब तक स्वतन्त्र न हो जाये और उसे कोषकी सञ्चालन समिति तथा बैंकके बोर्ड आफ डायरेक्टरोंमें एक स्थायी स्थान न मिले तब तक इन दोनों अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओंसे उसे कोई भी लाभ नहीं होगा। अतएव भारतवर्षको बहुत सोच समझ कर इस योजनामें सम्मिलित होना चाहिये। अच्छा तो यह है कि जब तक देश स्वतन्त्र न हो जाये तब तक इसमें सम्मिलित होनेके

बारेमें कुछ सोचा ही न जाये। जब हम अपनी आर्थिक नीतिको निर्धारित करनेमें स्वतन्त्र हों तभी हम इसमें सम्मिलित हों।

कुछ विद्वानोंका कहना है कि जब इन संस्थाओंके विधानमें इस बातकी छूट दे दी गयी है कि जब भी कोई देश चाहे तो उससे पृथक हो सकता है तब भारतको उसमें सम्मिलित हो जानेमें क्या हानि है। यह ठीक है कि यदि भारतवर्ष भविष्यमें यह देखे कि उसे इस योजनासे हानि होती है तो वह उससे पृथक हो सकता है। यह ठीक है कि भारत यदि चाहे तो भविष्यमें इस कोष और बैंककी सदस्यताको छोड़ सकता है किन्तु फिर भी योजनाके गुण दोषोंकी बिना पूरी तरह जांच किये उसे स्वीकार कर लेना बुद्धिमानी नहीं है।

फिर अभी इस योजनाका संयुक्त राज्य अमेरिका और ब्रिटेनमें ही विरोध हो रहा है। ब्रिटेनके लोग तो यह समझते हैं कि इसमें संयुक्तराज्यका प्राधान्य रहेगा और ब्रिटेनका महत्व घट जायगा। अमेरिकाके कुछ अर्थशास्त्रियों का विश्वास है कि जबतक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारके मार्गमें जो नकली आयात कर इत्यादि की दीवारें खड़ी कर दी गयी हैं उन्हें दूर नहीं किया जाता, तब तक इस प्रकारके सङ्गठनसे कोई लाभ न होगा। अतः संयुक्तराज्य अमेरिका इसपर शीघ्र कोई निर्णय नहीं करेगा। चीन, फ्रांस और रूसकी ऐसी स्थिति नहीं है कि वे इस विषय पर शीघ्र कोई निर्णय कर सकें। ऐसी दशामें भारतको भी रुकना चाहिये और दूसरे देशोंके निर्णयको ध्यानमें रखकर ही इस सम्बन्धमें उसे कोई निर्णय करना है।

लेखकका तो यह स्पष्ट मत है कि जब तक भारत पूर्ण स्वतन्त्र न हो जाय तब तक इस योजनामें उसे कभी भी सम्मिलित न होना चाहिये; अन्यथा उसे भीषण क्षति उठानी पड़ेगी।

ओ साथी !

ओ साथी ! तुम भी बिछुड़ गये प्रियवर !
उस निष्ठुर कालने छीन लिया तुमको,
कर दिया शोकमय मेरे लघु उर को,
रह गयी कहानी बात पुरानी की,
रह गयी निशानी मौत दिवानी की,
आ रही आंख में तेरी छवि सुन्दर !
ओ साथी, तुम भी बिछुड़ गये प्रियवर।

शेष रही बचपन की कोमल स्मृतियां,
हम तुम दोनों की वे जीवन घड़ियां,
जो बीती थीं उन मोहक बातों में,
जो बीती थीं स्नेहिल मृदु घातों में,
उस कपट-रहित-जीवनके ओ सहचर !
ओ साथी, तुम भी बिछुड़ गये प्रियवर !

रो रहा हृदय इस नीरव रजनी में,
रो रही प्रकृति मेरे संग अवनीमें,
उन अश्रुकणों का हार पिरोया जो,
इस दग्ध हृदय की शीतलता है जो,
कर रहा समर्पित तुमको वह सादर,
ओ साथी, तुम भी बिछुड़ गये प्रियवर !

—श्री विष्णुकान्त शास्त्री

पसन्द

श्रीमती आशादेवी

जैसी कि आमतौर पर कालेजसे निकले हुए अधिकांश अंग्रेजीदां नवयुवकोंकी मनोवृत्ति होती है, उस प्रकार ज्ञान-नाथने विश्वविद्यालयकी ऊंच से ऊंची डिग्री प्राप्त करनेके पश्चात् भी, अपने निर्वाहके लिये नौकरीका मार्ग ग्रहण करना स्वीकार नहीं किया। वह स्वतन्त्र और भावुक प्रकृतिका युवक था। अविवाहित, जिसके ऊपर दाम्पत्य जीवनका कोई उत्तरदायित्व नहीं! जो चाहे सो करे, जहां जी चाहे वहां घूमे-फिरे और उठे बैठे। इसलिये दासत्वके बन्धनमें पड़कर वह अपने सिद्धान्तोंकी हत्या करनेके लिये तैयार न था। वह कवि न था, पर कविताके कोमल और मनोहारी भावोंको समझने और ग्रहण करनेकी क्षमता रखता था। वह चित्रकार भी नहीं था, लेकिन तारों भरी रात और खिली हुई चांदनीमें उसके मानस पटल पर कल्पनाके रंगीन चित्र अङ्कित होने लगते थे। वह गायक भी नहीं था, किन्तु नील गगनमें मुक्त भावसे पंख फैलाकर उड़ने वाले पक्षियोंका मीठा कलरव सुनकर संगीतकी सुरीली ध्वनि उसके कानोंमें गूंजने लगती थी। उसे शान्ति पूर्ण, शुद्ध प्राकृतिक जीवन प्रिय था और वह सांसारिक झगड़े बखेड़ोंसे दूर रह कर स्वाध्यायमें तल्लीन रहना चाहता था। उसकी रुचि विल-क्षण थी। उसके विचार सुलझे हुए थे। उसे बेमतलबकी लम्बी चौड़ी बातें बनाना, झूठ बोलना अथवा गप्प मारना भी पसन्द न था। इसलिये वह नपा-तुला वार्तालाप करता और वाद-विवादसे दूर भागता। क्रोधित और उत्तेजित भी कभी न होता। हंसकर बोलता और जानबूझ कर अपनी कटुवाणीसे किसीके हृदयको दुःखित न करता।

अपनी इन्हीं विशेषताओं एवं गुणोंके कारण ज्ञान सभी का प्रिय था और उसके परिचित उससे मिलने और वार्ता-लाप करनेके लिये उत्सुक रहते थे। उसका परिवार भी अधिक बड़ा न था। उसमें गिने गिनाये केवल तीन व्यक्ति थे—स्वयं वह, उसकी विधवा मां और अनुज प्रकाश।

मां वृद्धा थीं और पड़ोसके कई घरोंमें सुबह शाम भोजन बना कर २९, ३० रु० मासिककी आय कर लेती थीं। इसके अतिरिक्त पूर्णमासी और एकादशीके दिन उन्हें दान-दक्षिणा और सीधा-पानी मिल जाता और इतना ही उनकी गृहस्थी-के लिये पर्याप्त भी था। प्रकाश किसी कारखानेमें 'फिटर' था और वह भी महीनेमें कुछ न कुछ कमा ही लाता था। यदि कोई बेकार और निठल्ला था, तो वह ज्ञान था, जिसे न अपनी फिक्र थी और न परिवार की।

(२)

कभी कभी संध्या समय घण्टे दो घण्टेके लिये, ज्ञान अपने एक मित्रकी दूकान पर जाकर बैठ जाता था। आखिर दिन भर घरमें बैठे बैठे क्या करता? लाइब्रेरीमें समाचार पत्र पढ़ने अथवा दरियाके निर्जन तट पर टहलनेसे भी तबीयत उचट जाती। मित्र महोदय होजरी और बिसातखानेके दूकानदार थे और नाम था उनका—बनारसी बाबू! उदार और दिलके साफ। ज्ञानके पुराने सहपाठी और घनिष्ठ मित्रोंमेंसे थे। ज्ञानकी जरूरतोंको समझते थे और अप्रत्यक्ष रूपसे उसकी सहायता करते रहते थे। ज्ञान भी उनके हानि लाभको अपना हानि-लाभ समझता था और उनके दुःख-सुखमें सदैव उनका हाथ बंटानेके लिये प्रस्तुत रहता था।

एक बारका जिक्र है। संध्याका समय था। बनारसी बाबूकी दूकान विद्युत् आलोकसे जगमगा रही थी। छुट्टीका दिन था। ग्राहकोंकी भीड़से अभी छुटकारा मिला था और वे दोनों अलस भावसे सिगरेट जला रहे थे। उसी समय एक छरहरी, गोरी सुशिक्षिता स्त्रीने दूकानमें प्रवेश किया। नाम था—निर्मला देवी। स्वतन्त्र और सुसंस्कृत विचारोंको मानने वाली, हंसमुख और शौकीन।

"आइये देवीजी,...।" बनारसी बाबूने आगे बढ़कर उनका स्वागत किया। ग्राहिका उनकी परिचित थी।

"पिरामिड रूमाल चाहिये। हैं?"

"हां देखिए, एक दो डिब्बे शायद पड़े हों। बैठिये, अभी निकलवाता हूं।"

आदेश पाकर सहायकने देवीजीके सम्मुख रूमाल उप-स्थित कर दिये। निर्मलाने प्रसन्न होकर कहा—"गनीमत, आपके यहां ये निकल तो आये। बाजारमें इस 'क्वालिटी' के रूमाल ही नहीं हैं।"

"आपको कितने चाहिये।"

"एक दर्जन।"

"ले लीजिये।"

सादे और रङ्गीन डिजाइनके वे रूमाल सभी आकर्षक

और सुन्दर थे। निर्मला उन्हें उलट-पुलट कर देखने लगी, किन्तु उनका चुनाव करना सरल न था। किसे पसन्द किया जाय और किसे नापसन्द। सभी तो अच्छे हैं। परेशान होकर निर्मलाने कहा—"समझमें नहीं आता, किसे लूं और किसे न लूं।"

"माल आपके सामने है। छांट लीजिये।" बनारसी बाबूने उत्तर दिया।

निर्मला फिर पशोपेशमें पड़ गयी। अपनी दुर्बलता प्रकट करते हुए बोली—"मेहरबानी करके आप ही छांट दीजिये।"

बनारसीबाबूने ज्ञानकी ओर देखा और कहा—"आओ जी,...।"

ज्ञानने देखा कि निर्मलाकी निगाहोंमें आग्रह था, जिसकी उपेक्षा वह न कर सका। मनमें आया कि वह कह दे—यह मेरा काम नहीं, लेकिन वह चुपचाप उठ बैठा। उसके होठोंपर हंसी थी और चित्तमें प्रफुल्लता। उसने रुमालोंको एक कतारमें फैलाया, उनपर निगाह डाली और तत्पश्चात् उन्हें छांट छांट कर निकालने लगा और बोला—"मेरी समझसे ये सबसे अच्छे हैं।"

निर्मलाका मुख-मण्डल प्रसन्नतासे खिल उठा। हंसकर बोली—"धन्यवाद, मुझे भी पसन्द आ गये।"

बनारसी बाबू ज्ञानकी तारीफ करते हुए बोले—"इनकी पसन्द की हुई चीज हरेकको पसन्द आ जाती है। इनमें यही विशेषता है।"

"बस अब अधिक प्रशंसा न कीजिये।" ज्ञानके स्वरमें संकोच था, किन्तु उसके इस कार्यने निर्मलाको अनायास ही प्रभावित कर लिया। वह सोच रही थी कि जैसा इस युवकका व्यक्तित्व सुन्दर है, रूपरङ्ग उज्ज्वल है, वैसे ही इसकी पसन्द भी विलक्षण है।"

(३)

दूसरे दिन निर्मला देवीने अपने पतिको वे रुमाल दिखाकर कहा—"लीजिये, मैं यह 'पिरामिड करचिफ' ले आयी। आप कहते थे, बाजारमें कहीं न मिलेंगे।"

लालाजी रुमाल देखकर प्रसन्नतापूर्वक बोले—"इनकी डिजाइनें भी एकसे एक चढ़-बढ़ कर हैं।"

निर्मला—"इन्हें एक युवकने छांट कर निकाले हैं।"

लालाजीने मजाक किया—"अच्छा, जभी मैं ताज्जुबमें था, कि तुम ऐसे बढ़िया रुमाल कैसे ले आयीं। तुम्हारी पसन्द भी तो बाबा आदमके जमानेकी है।"

निर्मलाने भी नहले पर दहला जमाते हुए उत्तर दिया—"जी हां, मैं भी तो बाबा आदमके जमानेकी हूं। नयी रोशनी तो आपके साथ चल रही है।"

लालाजीने बात बनायी—"अच्छा, मैं झूठ कह रहा हूं? सच सच कहना।"

निर्मला—"हां, चुनावके मामलेमें मैं कमजोर अवश्य हूं। इसलिये यदि वह युवक मेरी सहायता न करता, तो शायद इतने अच्छे रुमाल मैं न छांट पाती।"

लालाजीने फिर व्यंग किया—"उस युवककी बड़ी तारीफ कर रही हो।"

निर्मला—"सच बात कहनेमें भी आपको आपत्ति है! मेरे विचारसे ऐसे सभ्य और सुसंस्कृत युवककी हमारे यहां कदर होनी चाहिये। आपने भी क्या मुन्शीजीको रख छोड़ा है। बुड्ढे आदमी, उन्हें तो अब पेंशन मिल जाय, सो ही ठीक है।"

लालाजी सिगरेट जलाकर बोले-"जान पड़ता है, मुंशीजीकी अब तुम रोजी लोगी।"

निर्मलाने तर्क उपस्थित करते हुए उत्तर दिया-"मुंशीजीसे अब कोई काम काज होता नहीं, पुराने विचारोंके आदमी ठहरे। इसलिये उनकी सब बातें पुराने दकियानूसी ढङ्गकी होती हैं।"

लालाजी—"लेकिन आदमी तो ईमानदार और सच्चा है। नये जवानोंकी नीयतका क्या ठिकाना!"

निर्मला—"यह ठीक है। लेकिन उस युवककी नवीन और मौलिक सूझसे बच्चोंकी शिक्षा-दीक्षा और भी अच्छे ढंगसे चलेगी।"

लालाजी—"लेकिन यदि वह कहीं नौकर हुआ तो हमारे यहां क्यों आने लगा।"

निर्मला—"हां, यह बात तो आपने पतेकी कही। देखिये, मैं दरियाफ्त कर लूंगी।"

लालाजी—"मुंशीजीकी जगह पर मैं भी किसी नये आदमीको रखनेका विचार रखता हूं, लेकिन आदमी योग्य और ईमानदार होना चाहिये।"

निर्मलाने विश्वास प्रकट करते हुए उत्तर दिया—देखिये, शायद इस मामलेमें आपको निराश न होना पड़े।

लालाजी हंस कर बोले—"बस यही मैं चाहता हूं।"

"बेशक आप चिन्तित न हों।" और यह कहते हुए निर्मला पुनः उन रुमालोंको उलट-पुलट कर देखने लगी।

(४)

दूसरे दिन शाम हुई और निर्मला देवी बनारसी बाबू-की दूकानपर जा पहुंची। उसकी आंखें ज्ञानको ढूंढ़ रही थीं। देखा-ज्ञान बैठा था। उस समय वह सोच रही थी, कि ज्ञानपर मन्तव्य प्रकट करनेके लिये किस ढंगसे बात शुरू की जाय। अन्तमें सङ्कोच प्रकट करते हुए ज्ञानकी ओर मुखातिब होकर बोली—"आप साहबका मैं परिचय जानना चाहती हूं।"

बनारसी बाबूने हंसकर बेतकल्लुफीसे उत्तर दिया—"आप भी किस बेकार निठल्ले आदमीका परिचय जानना चाहती हैं।"

निर्मलाने भी हंसीमें योग देते हुए कहा—"तब क्या आपने अपनी दुकानको बेकारोंका 'ब्यूरो' बना रखा है।"

बनारसी बाबू—"बस आपके सम्बन्धमें (ज्ञानकी ओर इशारा करते हुए) यही बात समझ लीजिये।"

निर्मला गम्भीर होकर बोली—"अच्छा, हंसी न कीजिये। ठीक-ठीक बताइये।"

बनारसी बाबू—"बताया तो, कि बेकार आदमीका परिचय ही क्या हो सकता है। ज्ञाननाथ इनका नाम है। एम० ए० पास हैं। नौकरी-चौकरी करते नहीं। खुशदिल और कला प्रेमी हैं। 'सत्यं शिवम् सुन्दरम्' के सिद्धान्तको मानने वाले हैं और मेरे घनिष्ट मित्र हैं।

ज्ञान कहीं नौकर नहीं है—यह जानकर निर्मलाकी शंका दूर हो गयी। प्रसन्न मुख बोली—"आपके मित्रके विषयमें मेरी धारणा भी करीब-करीब यही थी।"

ज्ञान चुपचाप बैठा सोच रहा था, कि देवीजी मेरे सम्बन्ध में इस प्रकार छानबीन करनेके लिये क्यों आतुर हैं। वह बोला—"इन्होंने व्यर्थ हीमें मेरी तारीफके पुल बांध दिये हैं। मैं सचमुच एक परिचयहीन व्यक्ति हूं।"

इसपर बनारसी बाबूने फिर व्यंग किया—"जी हां, मैं तो इंजीनियर हूं न। यदि ऐसा होता, तो मैं तुम्हें पुल क्या हवाई जहाज बनाये बिना न छोड़ता।"

इसपर निर्मला और ज्ञान बाबू खिलखिला कर हंस पड़े। तत्पश्चात् निर्मला की ओर देख कर ज्ञानने शिष्टता-पूर्वक कहा—"खैर, अब क्या देवीजीका परिचय भी मैं जान सकूंगा।"

बनारसी बाबू फिर हंसे। हंसकर कहा—"यह लीजिये। देवीजीसे परिचित नहीं! नगरकी प्रसिद्ध फर्म देवमल छरजमलके प्रोप्राइटर लाला भगीरथमलकी आप पत्नी हैं।"

ज्ञानने हाथ जोड़ कर उन्हें नमस्ते किया।

अभिवादनको स्वीकार करते हुए निर्मलाने मुख्य विषय पर आते हुए कहा—"ज्ञान बाबू, आपसे कुछ निवेदन करना चाहती थी। क्या आप अपना कुछ समय दे सकेंगे? आपके पास अवकाश भी है।"

यह सुन कर ज्ञान विस्मयमें पड़ गया। बोला—"हां, आप आज्ञा दीजिये।"

निर्मला—"मैं आपके सहयोग द्वारा आपकी सेवाओंसे लाभ उठाना चाहती थी। आशा है, आप स्वीकार करेंगे।"

ज्ञानके कुछ कहनेके पूर्व ही बनारसी बाबूने निर्मलाके कथनका समर्थन करते हुए कहा..."देवीजी, आपने बड़ा अच्छा आदमी चुना। ऐसा नेक और ईमानदार आदमी आपको ढूंढ़नेपर भी न मिलेगा।"

निर्मलाने उत्तर दिया..."इसीलिये तो मैंने यह प्रस्ताव रखा है?"

ज्ञान किंचित असमंजसमें पड़ कर बोला..."इस मामले में आपको सोच कर ही मैं उत्तर दे सकता हूं।"

निर्मलाको विश्वास था कि वह ज्ञानको किसी भी मूल्य पर राजी कर लेगी। अतएव निर्द्वन्द भावसे बोली—"हां हां, जल्दीकी कोई बात नहीं।"

ज्ञान—"ठीक है। तब मैं आपको सूचित कर दूंगा।"

इसी समय दूकानमें अन्य कई ग्राहक आ गये। अस्तु भीड़भाड़में वार्तालापका उपयुक्त अवसर न देख, निर्मला वहांसे चली आई।

(५)

नारीके मीठे अनुरोध और धनके लोभमें ऐसा वशी-करण छिपा रहता है, कि जब यह दोनों बातें एक साथ मिलकर किसीके ऊपर अपना जादू चलाने लगती हैं तो उसके मोहक फंदेसे छूटकर निकलना मनुष्यके लिये बिल्कुल कठिन हो जाता है। ज्ञाननाथने जबसे अपने दायित्व और अस्तित्वको समझा है, तबसे वह नौकरीके सदैव खिलाफ रहा है। वह किसीके नियन्त्रण और आदेशके बीचमें रह कर जीवन यापन करनेके लिये तैयार न था। बैठे-ठाले आखिर अपनी जानके लिये जहमत क्यों मोल ले? जिन्दगी जब बिना परिश्रमके यों ही गुजर रही है, तब चिन्ताओंका बोझ अपने ऊपर लेना क्या कभी सुखकर हो सकता है? कैदमें पड़ कर सिवा अपनी इच्छाओंको दमन करनेके और कोई चारा नहीं रह जाता। मालिककी तीखी कड़वी झिड़कियां अलग सुननेको मिलती हैं।

लेकिन निर्मला देवी तो जैसे हाथ धोकर उसके पीछे पड़ गयी हैं और उसको किसी प्रकार भी छोड़ना नहीं चाहतीं। उसकी सुख-सुविधाका विचार रखते हुए, वह उसको अधिकसे अधिक वेतन पर नियुक्त करनेको प्रस्तुत हैं। लेकिन ज्ञान तो नारी जातिसे हमेशा दूर रहा है। नारीका रूप और यौवन भी उसके लिये कोई महत्व नहीं रखता।

निर्मलाके तकाजे पर तकाजे आ रहे हैं और ज्ञान उन्हें टालता जा रहा है। बड़ी कठिन समस्या है। ज्ञान सोचता है कि देवीजीको निराश करना भी ठीक नहीं। भले ही इसके लिये उसे अपनी आत्माको कुचलना पड़े। सुखोंका बलिदान देना पड़े। लेकिन उसका जी नहीं चाहता और न चित्तमें यह बात ही जमती है। क्योंकि नौकरी आखिर नौकरी ही है। उस अवस्थामें उसे अपनी जिम्मेदारियोंको निभाना पड़ेगा। इस बातका ख्याल रखना पड़ेगा, कि उसको जो काम सौंपा गया है, उसमें किसी प्रकारकी त्रुटि न होने पाये। मालिकके मूड और उनकी हंसी खुशीके अनुरूप उसे अपनी प्रकृतिमें परिवर्तन करना होगा। उसे प्रति क्षण उनकी प्रसन्नताका भी ध्यान रखना पड़ेगा। संक्षेप में, वह अपने शरीर और आत्मासे उनके हाथ बिक जायगा। तब उसकी इच्छाएं कोई इच्छाएं न रह जायेंगी। उसकी मर्जी कोई मर्जी न होगी। वह एक कठपुतलीके समान होगा, जिसकी प्रत्येक गति दर्शकोंके केवल मनोरंजन और प्रसन्नताके लिये होती है। फिर जिस नारी जातिको उसने सदैव उपेक्षाकी दृष्टिसे देखा है; उसीकी अधीनता वह स्वीकार करने जा रहा था। कैसी विडम्बना है! जिस चीजकी छायासे बचना चाहो, अन्तमें उसीका आश्रय लेना पड़े। एक उलझन, एक विचित्र परेशानीमें ज्ञान अपने आपको पा रहा था। उसके शान्ति पूर्ण एकाकी जीवनमें अशान्तिका बीज डाल कर निर्मला उसको सांसारिक सघर्षमें क्यों डालना चाहती थी। ज्ञान चाहता था, कि वह साफ इन्कार कर दे—मुझे नौकरी नहीं चाहिये। आप किसी दूसरे आदमीको ठीक कर लें। पर वह अपनी आदतसे लाचार है। उसने किसीको निराश करना सीखा ही न था। तब वह किस मुंहसे निर्मला देवीको कोरा जवाब दे दे।

और सबसे बड़ी बात तो यह थी, कि उसका अभिन्न मित्र बनारसी बाबू भी इस मामलेमें उसे मजबूर कर रहा था। इसलिये उसको नाराज करके वह उसकी इच्छाके विपरीत कैसे निर्णय कर सकता था। जिन्दगीमें ऐसे अवसर बार बार नहीं आते। इस अवसरको खोनेके बजाय उससे लाभ उठाना चाहिये। लखपतीके घरकी नौकरीके लिये लोग लालायित रहते हैं, प्रयत्न करते हैं और सिफारिशें पहुंचाते हैं। यह तो उसे मुंह मांगी मुराद मिल रही थी। बच्चोंको पढ़ाने-लिखानेसे बढ़कर सम्मानजनक कार्य और क्या हो सकता है? इसके बदलेमें उसे अच्छा वेतन, भोजन और वस्त्र मिलेगा। आने जानेके लिये मोटर मिलेगी। ग्रीष्म ऋतुमें बच्चोंके साथ पहाड़ पर भी जाना लाजिमी होगा। दशहरे - दीवालीके अवसर पर कलकत्ते - बम्बईकी सैर करनेको मिलेगी। बड़े घरकी हरेक बात बड़ी होती है। मालिक यदि खुश रहे तो मालो-माल बननेमें देर नहीं लगती। निर्मलाकी उस पर कृपादृष्टि है ही। यदि ठीक ढङ्गसे वह चला तो उनके विश्वासको सुरक्षित रखकर वह आजीवन मौज करता रहेगा। आखिर यों बेकार रहकर व्यर्थ समय गंवानेसे लाभ? जीवनका एक मात्र उद्देश्य केवल खाने-पीने और मौज करनेके लिये थोड़े ही है। यह तो निकम्मों और आवारोंका काम है। इसलिये जब एक ढेलेसे दो शिकार मरते हैं, तब आगा-पीछा करना कैसा? उसको भी जीवनका वास्तविक सुख मिलेगा, उसकी मां और भाई भी सन्तुष्ट रहेंगे। आखिर उस बुढ़िया मांके प्रति भी तो उसका कुछ कर्तव्य है। वे क्या समझेंगी कि उसके भी पढ़ा-लिखा कोई योग्य बेटा था, जिसने वृद्धावस्थामें उन्हें सुख और आराम पहुंचाया। दुनियाकी हरेक बात प्रकृतिके अनुकूल चलती है। उसके विपरीत कार्य करनेसे परमात्मा भी नाराज होता है। प्रकृतिकी इच्छा है कि वह कुछ उद्योग करे। जीवन संग्राममें प्रवृत्त होकर अपनी अर्जित शक्तियोंका सदुपयोग करे।

ज्ञान लाचार था और अन्तमें उसने निर्मलाके प्रस्तावको स्वीकार कर लिया।

(६)

विवाहोपरान्त विदा होनेकी करुण वेलामें, जिस प्रकार नववधू ससुरालके सम्बन्धमें तरह तरहकी कल्पनाएं करने लगती है, तरह तरहके तर्क वितर्कोंको लेकर उसका मन भारी होने लगता है, वहां जानेमें वह एक अज्ञात संकोच और झिझकका अनुभव करती है तथा अनिश्चित एवं अनावश्यक मानसिक दुर्बलताओंके भारसे अपने आपको दबी हुई पाती है, भविष्यकी जिम्मेदारियोंको महसूस करके घबड़ाने और सशंकित होने लगती है, कि क्या वह अपने उत्तरदायित्वको सफलतापूर्वक निभा सकेगी, लोग उसके कार्य-व्यवहारसे सन्तुष्ट रह सकेंगे, उसी प्रकार ज्ञाननाथ भी

निर्मला देवीके परिवारमें सम्मिलित होनेके पूर्व उसी संकोच और दुर्बलताका अनुभव कर रहा था। वह नौकर हो गया है—इस विचारके स्मरण मात्रसे ही उसका हृदय ग्लानिसे भर जाता और उसको ऐसा प्रतीत होने लगता मानो किसी-ने उसको कड़वी दवाका घूंट पिला दिया हो। किन्तु ये सब भावनाएं अस्थायी थीं और कुछ दिनोंमें दूर हो गयीं।

ज्ञान निर्मलाके परिवारको अब अपना परिवार समझने लगा था और स्वयंको उस परिवारका एक आवश्यक अंग। उसे उन छोटे छोटे बच्चोंसे स्नेह हो गया था, जिन्हें, वह पढ़ाता-लिखाता, जिनके साथ सुबहसे लेकर शाम तक रहता। खेल कूद और मनोरंजनमें जिनका साथ देता और जिन्हें नई नई बातें सिखाता और समझाता। वह उन बच्चोंका मास्टर था—गुरु, जिसका कि स्थान पिताके समान होता है। इसी मानेमें निर्मला भी उसकी इज्जत करती थी और लाला जी भी उसको सम्मानकी दृष्टिसे देखते थे। वह हंसमुख-था, विनोदप्रिय था और अपने काममें मुस्तैद भी था। इसलिये ज्ञानको अब अपनी नौकरी नौकरी न मालूम होती थी। उसके जीवनका ढर्रा चल निकला। अब उसे न कोई अड़चन मालूम होती थी और न कोई दिक्कत ही।

निर्मला देवी उसके कार्यसे सन्तुष्ट थी। इसलिये उनका विश्वास उसके प्रति उत्तरोत्तर बढ़ता गया। गर्मी आती और पहाड़ जानेका समय होता, तो यात्राकी व्यवस्था और वहां रहनेके प्रबन्धका भार मास्टर साहब सम्भालते। ज्ञान भी सीजन भर बच्चोंके साथ वहीं रहता। इसी भांति व्यवसायके सिलसिलेमें लाला जीको कलकत्ते या बम्बईकी कार्य वशात लम्बी यात्रा करनी होती, तो कभी कभी वह भी उसको अपने व्यक्तिगत सहायकके रूपमें साथ ले लेते। वह जानते थे कि ज्ञान कुशल व्यक्ति है और उनकी नरम गरम सभी बातोंको अपने पेटमें पचा सकता है और मौका पड़ने पर उनके हितके लिये सब कुछ करनेको तैयार हो सकता है।

परिवारिक मामलोंमें निर्मलाको जब कोई कठिनाई होती तो वह भी सबसे पहले ज्ञानको याद करतीं। ज्ञानके मां थे, भाई था, लेकिन उसका उनसे जो नाता था, वह महीनेके आरम्भमें उन्हें कुछ बंधी हुई रकम दे देने मात्रसे था।

(७)

लालजीका कारबार लम्बा और लाखों रुपयेका था। कई सूती मिलोंके वह सोल एजेण्ट थे। कई नगरोंमें एजेंसियां थीं। वह स्वयं कार्यव्यस्त और बहुधन्धी आदमी थे। यदि एक ओर लाखोंके वारे न्यारे करते थे, तो दूसरी ओर मौज मजेकी जिन्दगी और रंगीन मिजाजीमें भी पानी-की तरह दौलत व्यय करते थे। सरकारी क्षेत्रमें उनका मान-सम्मान था। हाकिम-हुक्कामोंको वह क्रिसमस और ईस्टर पर दावतें देते। डालियां लगाते और अवसर पड़ने पर खुशामदी टट्टू बन जाते। उनकी दृष्टिसे : प्रत्येक व्यवसायीका सरकार परस्त होना और लिब-लिबकी नीति अख्तियार सरकारके उसका कृपापात्र बनना आवश्यक था। इसी आधार पर वह किसी उपाधिके लिये भी इच्छुक थे और यथा समय उनकी यह साध सफल हुई। यानी पिछले साल नई उपाधियोंके बीच रायबहादुरोंकी लिस्टमें उनका भी नाम था।

इस घटनासे निर्मलाके परिवारमें प्रसन्नता छा गई। साधारण महरीसे लेकर बड़ेसे बड़े मुनीम तक खुश थे। इस अवसर पर उन्हें भी कुछ न कुछ लाभ होने की आशा थी।

ज्ञान प्रसन्न था। लोग कहते थे, कि मास्टर साहबका आगमन लालाजीके लिये सुखद सिद्ध हुआ। एक वर्ष पूरा होते न होते वे रायबहादुर हो गये और स्वयं निर्मला-के मुंहसे उसने इस बातको सुना था ! इसी सिलसिलेमें एक विशाल जलसा करना निश्चित हुआ था और जोरों पर तैयारियां हो रही थी। निर्मलाके उत्साहका क्या पूछना ? वह सोचती, कि वह कितनी भाग्यशालिनी है। उस अवसर के लिये उसने बम्बईसे कई हजार रुपये मूल्यकी एक साड़ी और जाकेट और हीरेके जड़ाऊ आभूषण खरीदे थे। इन सब बहुमूल्य वस्तुओंकी खरीदारीमें ज्ञानकी पसन्द अन्तर्निहित थी। ज्ञान भी कल्पना करता कि उन वस्त्राभूषणों-को धारण करनेसे निर्मलाका अस्तित्व खिल उठेगा। मेहमानोंकी भीड़ भाड़में वह कितनी आकर्षक और सुन्दरी मालूम होगी।

समय जाते देर नहीं लगती। उत्सवका दिन आ गया। शाम हो चुकी थी। निर्मला देवी ड्रेसिंग रूममें कपड़े बदल रही थीं। सजधजकर वह बाहर निकलीं। सुगन्धकी भीनी लपटें उसके शरीरसे निकल रही थीं। बाहर सर्द और स्फूर्तिदायक हवा चल रही थी। मौसम सुहावना था। ज्ञान रेडियो पर किसी गायिकाके सुरीले गीतका आनन्द ले रहा था। आज उसकी प्रसन्नता उसके भरे हुए मुखमण्डल और गालों पर उभर पड़ी थी। उसके नेत्र जैसे हर्ष और उमङ्गकी दुनियांमें तैर रहे थे।

"मास्टर साहब देखिये, मेरी पोशाक ठीक है न ?" निर्मलाने ज्ञानसे सरल स्वभावमें कहा।

ज्ञानने निर्मला देवीको ऊपरसे नीचे तक देखा और उसका वह रूपविन्यास जैसे एक बारगी ही उसके हृदयमें एक रंगीन लुभावने चित्रके रूपमें खिंच गया। उसकी उस दृष्टिमें श्रद्धा नहीं थी। सम्मानका भाव भी नहीं था। वासनाकी वह्नि सुलग रही थी। उसी भावनासे प्रेरित होकर उसने उत्तर दिया—"हां बहू जी, आज आप सुन्दरियोंकी भी सुन्दरी प्रतीत हो रही हैं।"

"क्या सचमुच।" सहज भावमें उपर्युक्त प्रशंसाको ग्रहण करते हुए निर्मला घूमकर फिर आइनेके सामने खड़ी हो गई और अपने आपको देख कर मुसकुराने लगी। उसकी उन कजरारी रसीली आंखोंसे रस टपक रहा था। चेहरे पर नव विकसित पुष्प जैसा लावण्य बिखर पड़ा था।

नशेका शुरूर जब चढ़ आता है, तब मनुष्य मजेमें होकर कुछ बहकने लगता है। ज्ञान भी आज उसी नशेमें था और साथ ही मजेमें भी। यह उसके जीवनका नशा था—उन्माद जिसने उसे विवेक शून्य बना दिया था। आइनेमें निर्मलाके प्रतिबिम्बको देखकर वह तड़प उठा और बेसुध होकर बोला—"काश, इस रूप-सुधाका पान करनेका मुझे सौभाग्य प्राप्त होता।" निर्मला फिर भी न समझ सकी। बोली—"मास्टर जी, यह सब आपकी रुचि और पसन्दका फल है।"

ज्ञान पर दुगना नशा सवार हो गया। धीरे धीरे वह कुछ आगे बढ़ आया और अनुराग भरे स्वरमें बोला—"मेरी एक इच्छा थी बहू जी। क्या वह पूर्ण हो सकेगी?"

निर्मलाने सोफे पर बैठते हुए कहा—"कहो, पूर्ण क्यों न होगी।"

ज्ञान बिल्कुल अज्ञान बन गया। कहने लगा—"मैंने अपने जीवनमें कभी किसीको प्यार नहीं किया। किसीकी ओर निगाह उठा देखा तक नहीं। लेकिन, मेरे जीवनका वह संचित प्रेम आज न जाने क्यों आपके प्रति उमड़ पड़ा है।"

यह कहते कहते ज्ञानके ओंठ कांपने लगे। हृदय धड़कने लगा। चिनगारीने बढ़ते बढ़ते आगका रूप धारण कर लिया। निर्मलाके कोमल हाथोंको अपनी मुट्ठियोंमें ले, उसने उनको हृदयसे लगानेकी चेष्टा की।

निर्मला देवी सिहर उठीं। दुनियामें किसका विश्वास किया जाय। इन्सान इन्सानके ढांचेमें शैतान है। उसकी नीयत बदलते देर नहीं लगती। ज्ञानसे उन्हें ऐसी आशा न थी। उनका शरीर जैसे क्रोध और घृणाकी गर्मीसे उबल पड़ा। हाथ छुड़ा कर उसने कहा—"मास्टर साहब, आपके होश कहां हैं? यह बंगला अब आपके रहने योग्य नहीं रहा। और अधिक अपमानित होनेकी अपेक्षा आप फौरन यहांसे निकल जायं। बदमाश धूर्त······!"

निर्मलाने उसी आवेशमें ड्राइवरको पुकार कर कहा—"देखो, मास्टर साहबकी तबीयत खराब है। इन्हें घर तक पहुंचा दो।" लेकिन उसके स्वरमें न कोई उत्तेजना थी और न कोई परिवर्तन ही। वह रंगमें भंग उपस्थित नहीं करना चाहती थीं।

ड्राइवरने आश्चर्य चकित नेत्रोंसे ज्ञानकी ओर देखा। वह काष्ठवत् खड़ा था। आंखे झुकी हुईं, चेहरा उतरा हुआ और शरीर निर्जीव निस्पन्द सा। उसकी तबियत यदि खराब न होती, तो वह बिना बिचारे बातकी बातमें ऐसा भारी अनर्थ क्यों कर डालता। उसने अपने मालिक और मित्र बनारसी बाबूके प्रति विश्वासघात किया। जिस रुचि और पसन्दके कारण उसको इतना ऊंचा स्थान मिला था, उसीने अन्तमें उसको पतन मार्गकी ओर लाकर पटक दिया। ड्राइवर उसकी प्रतीक्षामें खड़ा था और ज्ञान जैसे अथाह समुद्रमें डूबा जा रहा था।

मत कहो है भार जीवन

प्रेमके पागल पुजारी मत कहो है भार जीवन
मत कहो निस्सार जीवन

खिलखिलाकर मुग्धकलियोंने तुम्हारा मन लुभाया
गुनगुना कर मत्त अलियोंने मिलनका राग गाया
तरु बने प्रहरी, जगत यह रम्य रङ्गस्थल तुम्हारा
लोल-लहरोंने थिरक कर नाच कर तुमको रिझाया
और ऋतुएं सर्वदा करती रहीं श्रृङ्गार साधन

भर सुनहरे स्वप्न पलकोंमें सुलाने रात आई,
गा प्रभाती, मधु लुटाती, फिर जगाने प्रात आई
और शत-शत बार ऊषाने दिया सस्नेह चुम्बन
स्वेद कण रजके सुखानेको मलयकी बात आई
मुखर सन्ध्याने किया अविरत तुम्हारा प्रेमकीर्तन

जागते अपलक रहे दीपक दिखाते मुग्ध तारे
खेलको कन्दुक गया बन चन्द्र आंगनमें तुम्हारे
निज करोंसे द्वारका करता रहा रवि नित्य मार्जन
साध स्वागतको जलद ने पन्थ सब धोये संवारे
और कितनी बार जल निधि कर चुका है पाद वन्दन

क्यों विलापकलाप जगकी लुट गई यदि वह जवानी
वे मधु व्यापार कलके बन गये यदि अब कहानी
'भस्माऽन्त ॐ शरीरम्, अब चिताकी क्षार छोड़ो
भूत तर्पणके लिये पर्याप्त है दो बूंद पानी
आज क्षण भर की कुहू को मत बनाओ पाद बन्धन

सींचनेको दग्ध भूका वक्ष हिमगिरि रो रहा है
ले जलन उरमें व्यथाकी भानु जीवन बो रहा है
आग अन्तर की छिपा कर सिन्धु रखता है हिये में
कवि मनीषी और स्रष्टा किन्तु निजमें खो रहा है
कर स्वयम्भू आज अपने आंसुओंका मूल्य-अंकन

थक गये हों यदि चरण तो आज कुछ विश्राम ले लो
लड़खड़ाते हों चरण यदि तो मुहूर्त विराम ले लो
क्षुब्ध, कातर हो हृदय यदि तो जगाओ चेतनाको
और यदि हो सर्वथा निःशक्त तो उपराम लेलो
है यहांपर पाप रोना है यहांपर पाप क्रन्दन

रोक लो आंसु दृगोंमें रोक लो उद्गार मनमें
टूटने दो टूटते हों प्रेमके यदि स्वर्ण सपने
छूटता हो कल्पना का लोक उसको छोड़ दो तुम
आज हंस-हंस पी हलाहल आज हंस-हंस जल अनलमें
सत्य सुन्दर के उपासक तुम बनो शिव औ निरञ्जन
मत कहो निस्सार जीवन

—श्री प्रभुदयालु अग्निहोत्री

विश्वशान्तिमें फ्रांसका स्थान

श्रीमती चन्द्रप्रभा देवी

वर्तमान महायुद्ध आरम्भ होनेके पूर्व फ्रांस संसारकी एक महान राजनीतिक और सामरिक ताकत माना जाता था। संसारकी सर्वश्रेष्ठ शक्तियोंमें उसकी गणना होती थी, किन्तु इस युद्धके परिणाम स्वरूप उसकी वह धाक, वह प्रतिष्ठा अस्थायी रूपसे मिट गयी। संसारके किसी भी भागकी जनताने कभी ऐसा स्वप्नमें भी नहीं सोचा था कि फ्रांस, जिसने विश्वकी राजनीतिक सभ्यतामें महत्वपूर्ण भाग लिया था, अचानक पतनके गहरे गर्तमें गिर जायगा और उसकी महानता इतिहासकी चीज रह जायगी। किन्तु फ्रांसका मित्रराष्ट्रीय सेनाओंने अब उद्धार कर दिया है, वहांकी जनता फिरसे स्वतन्त्र वातावरणमें विचरण करने लगी है, मगर इसके साथ प्रश्न यह उठता है कि क्या फ्रांस अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा फिरसे प्राप्त कर सकेगा? संसारके महान राष्ट्रोंके बीच वह भी स्थान पा सकेगा? इस प्रश्नका उत्तर फ्रांसके भावी कार्यक्रमको देखकर ही दिया जा सकता है, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वह फिरसे एक महत्वपूर्ण ताकतके रूपमें संसारके सामने आयेगा।

जेनरल वान शोलटिज
पैरिस समर्पण करनेवाला नाजी सेनापति

लेखिका

सन १९४० में यद्यपि फ्रांसकी सामरिक और राजनीतिक पराजय हुई थी किन्तु नैतिक बल और ज्ञानबलके क्षेत्रमें वह प्रायः अपराजित ही रहा। राजनीतिक दृष्टिकोणसे फ्रांसके भविष्यपर विचार करनेसे ज्ञात होता है कि नवीन फ्रांस पुराने फ्रांसकी अपेक्षा अधिक सुसङ्गठित, अनुशासित और उत्तम होगा। हम जानते हैं कि कुछ ही वर्ष पूर्व फ्रांस अपने इतिहासमें राजनीतिक, सामाजिक और उच्चादर्शोंके दृष्टिकोणसे उन्नतिकी सीमा पर पहुंच चुका था, किन्तु इसके बावजूद उसका विकास उचित रूपसे नहीं हो सका। अब नाजी चंगुलसे मुक्त होकर फ्रांसको नवजीवन मिला है, अपनी सारी बुराइयों और दुर्बलताओंपर विजय पानेके बाद अब उसका नये सिरेसे निर्माण आसानीसे किया जा सकेगा।

वास्तवमें कोई भी व्यक्ति एक क्षणके लिये भी यह स्वीकार नहीं कर सकता कि जिस फ्रांसकी कूटनी तक संस्कृति, शानदार रहन-सहन और साहित्य तथा कलाने सारे संसारको प्रभावित कर रखा था, वह सदा-सर्वदा पतनके गर्तमें पड़ा रहकर यूरोपका एक प्रान्त मात्र बना रहेगा। कुछ लोगोंका ऐसा ख्याल है कि फ्रांसकी सामरिक पराजय ने और पेतां तथा लावल सरकारोंने फ्रेंच जनताको बहुत लम्बे अर्सेके लिये बिलकुल निकम्मा बना दिया है। उनका कथन है कि फ्रांसको अपनी पुरानी सामरिक और आर्थिक शक्ति प्राप्त करनेमें बहुत समय लग जायेगा। कुछ पर्यवेक्षकोंका ख्याल है कि फ्रांसकी सांस्कृ-

तिक महत्ता भी अनेक अंशोंमें नष्ट हो चुकी है, किन्तु फ्रांसका इतिहास ऐसे अनेक चढ़ाव-उतारोंसे भरा पड़ा है। भावी संसारमें किसी राष्ट्रकी महत्ता और ताकत उसकी तोपों, टैंकों और जङ्गी जहाजोंकी संख्यामें नहीं आंकी जायेगी। भविष्यमें भी यदि इसी आधारपर राष्ट्रोंकी महत्ता और ताकत निश्चत होती रही, तो मित्रराष्ट्रोंके युद्धोद्देश्योंके सफल होनेकी जरा भी आशा नहीं की जा सकती। यद्यपि युद्धके वाह्य चिन्हों और प्रभावोंको फ्रांस की भूमिसे मिटानेमें अनेक वर्ष लग जायंगे, किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय सहयोगकी उसकी हार्दिक आकांक्षा पहलेकी अपेक्षा और अधिक प्रबल होती जायगी।

वर्तमान युद्धकालमें फ्रेंच साम्राज्यने जो महत्वपूर्ण भाग लिया है, उससे साबित हो गया है कि फ्रांस और उसके साम्राज्यके देशोंकी आत्मामें निकट सम्बन्ध है। फ्रांसके पराजित हो जानेके बावजूद उसके साम्राज्यान्तर्गत देशोंने अपनी पराजय स्वीकार नहीं की और अपनेको स्वतन्त्र फ्रांसका सदस्य घोषित किया। फ्रांसमें चतुर्थ प्रजातन्त्रकी स्थापनाकी अत्यधिक सम्भावना है और ऐसा होनेपर फ्रांस और फ्रेंच साम्राज्यका सम्बन्ध और भी घनिष्ट हो जायेगा, साथ ही संसारमें शायद फ्रांस ही प्रथम राष्ट्र होगा, जिसमें विभिन्न जाति और वर्णके लोग सम्मिलित होकर गणतन्त्रवादका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण उपस्थित करेंगे।

मुक्त फ्रांसमें सोवियट महिलाएं आनन्द मना रही हैं

फ्रांसमें चतुर्थ प्रजातन्त्रकी स्थापनाकी सम्भावना अत्यधिक है। भूतकालमें फ्रांसको अनेक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा है, अतएव वहां अब ऐसी सरकारकी स्थापना होगी, जो स्थायी और अधिक जनप्रिय हो सके। फ्रांसमें अनेक महत्वपूर्ण आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन भी होंगे। बड़े-बड़े उद्योग-धन्धों और औद्योगिकोंके एकाधिकारके खिलाफ जबर्दस्त प्रतिक्रिया होगी और सभी उद्योग धन्धे राष्ट्रीय सम्पत्ति हो जायंगे। फ्रांसमें आजकल कम्यूनिस्टोंका ही जोर सबसे अधिक है, अतः ऐसी सम्भावना है कि फ्रांसपर रूसी व्यवस्थाका पूरा प्रभाव पड़ेगा। कुछ लोगोंका कथन है कि युद्धके पहलेसे ही फ्रांस अवनतिकी ओर अग्रसर हो रहा था, किन्तु इसमें पूर्ण सत्यता नहीं है। युद्धके पूर्व यूरोपके सभी देशोंकी सामाजिक और राजनीतिक अवस्था कुछ-कुछ डावांडोल हो रही थी। फ्रांसकी कमजोरीका प्रधान कारण था ग्रेट ब्रिटेनकी सनातन नीति। फ्रांसने अनेक बार यूरोपीय देशोंके सङ्घको बलशाली बनानेकी चेष्टा की, किन्तु ब्रिटेनकी साम्राज्यवादी नीतिने उसे ऐसा नहीं करने दिया। अपने पुराने अनुभवोंके आधारपर फ्रांस अब ऐसी व्यवस्था चलायेगा कि प्रगतिशील और परिवर्तनशील संसारमें वह अपना स्थान अग्रणी राष्ट्रोंमें रख सके।

इस युद्धके पूर्व ब्रिटेन और फ्रांसमें परस्पर दृढ़ सहयोग-नीति कायम न रहनेकी एक वजह भावी युद्धकी आशंका थी। ब्रिटेन और फ्रांस दोनों इस युद्धसे बचनेकी चेष्टामें थे। अतएव हिटलर अथवा मुसोलिनी को रोकनेकी तबतक कोई चेष्टा नहीं की गयी, जबतक हिटलरने पोलैण्डपर आक्रमण नहीं कर दिया। पोलैण्डपर आक्रमण होनेके बाद फ्रांस और ब्रिटेनको लाचार होकर युद्धमें उतरना पड़ा। और इस युद्धके परिणाम स्वरुप फ्रांसका पतन हुआ। फ्रांसकी जनता अपनी पुरानी गलतियोंके लिये अब पश्चा-

साप कर रही है और उसकी सभी व्यवस्थाओंमें क्रान्तिकारी परिवर्तनके आसार नजर आ रहे हैं। फ्रांसके नेता जेनरल डी गौले भी पूर्ण वास्तविकतावादी हैं। किन्तु फिर भी ऐसा नहीं कहा जा सकता कि फ्रांसकी भावी व्यवस्थापर वहांके अन्य प्रमुख राजनेताओंकी विचारधाराका पूरा प्रभाव नहीं पड़ेगा। इस समय संसारके सभी देश आपसमें पूर्ण एकता और सहयोग कायम करना चाहते हैं और यह तब तक सम्भव नहीं, जबतक सभी देशोंकी सरकारोंके सिद्धान्त एक दूसरेसे मिलते न हों। इसके लिये उत्तम सामाजिक और आर्थिक व्यवस्थाकी स्थापना सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। विश्वमें स्थायी शान्ति तभी स्थापित हो सकेगी, जब बड़े-छोटेका भेदभाव मिटा कर सबोंको समानाधिकार प्रदान किया जायेगा और यही बात विश्वके सभी शासनतन्त्रोंके लिये लागू होगी। गणतन्त्रीयसंयुक्त और प्रगतिशील शक्तियोंके सहयोगसे किसी देशकी शासन-व्यवस्थामें स्थायित्व आ सकता है।

इस युद्धके समाप्त होनेपर सोवियट रूस यूरोपका सर्वाधिक शक्तिशाली राष्ट्र हो जायेगा। फ्रांसपर एक ओरसे ब्रिटेनका और दूसरी ओरसे रूसका प्रभाव पड़ेगा। ऐसी हालतमें फ्रांसका झुकाव रूसकी ओर होना अधिक सम्भव है, क्योंकि फ्रांसकी जनता कम्यूनिस्ट विचारधाराओंसे अत्यधिक प्रभावित हो चुकी है। ग्रेट ब्रिटेनने यूरोप महादेशमें सदैव ही नेतृत्वकी नीतिसे काम लिया है। गत और वर्तमान महायुद्धोंके बीच २० वर्षके अर्सेमें ब्रिटेनकी यह नेतृत्वकी नीति अनेक अंशोंमें यूरोपके लिये घातक सिद्ध हुई है। ब्रिटेनने फ्रांसको कभी भी अधिक शक्तिशाली बनने नहीं दिया और जर्मनीको वह बराबर बढ़ावा देता रहा। वर्तमान युद्धके आरम्भ होनेके मूलकारणोंमें ब्रिटेनकी वह नीति भी एक है। अब भी ऐसी आशा नहीं की जा सकती कि ब्रिटेन अपनी उस नीतिसे बाज आयेगा, किन्तु यदि अमेरिका विश्व संगठनके लिये कार्यकारी रूपसे भाग लेनेको प्रस्तुत होगा, तो सारी स्थितिमें महान परिवर्तन हो जायेगा। साथ ही अमेरिका एक राष्ट्रके नेतृत्वकी नीतिको कभी प्रश्रय नहीं देगा। यूरोपकी समग्र जनता उस नीतिसे मुक्त होनेके लिये उत्सुक है, साथ ही विश्व संगठन और शान्तिके लिये कोई उत्कृष्ट उपाय ढूंढ़ निकालना चाहती है। इस कार्यमें फ्रांस निस्सन्देह महत्वपूर्ण भाग लेगा। आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रोंमें फ्रांस सदैव ही यूरोपका गुरु रहा है। यह सुनिश्चित है कि फ्रेंच राजनीतिज्ञ इस बार भी विश्व संगठन और स्थायी शांतिकी स्थापनामें यूरोपकी अमूल्य सहायता करेंगे। इस युद्धके परिणाम स्वरूप यूरोपके जिन देशोंके राष्ट्रीय सम्मानको आघात पहुंचा है, वे सभी फ्रांसकी मददको सदैव प्रस्तुत रहेंगे और इस प्रकार पददलित देशोंका एक संघ कायम हो जायगा।

जेनरल माण्टगोमरीको मुक्त फ्रांसके नौनिहाल गुलाबका फूल दे रहे हैं

ग्रेट-ब्रिटेनके साथ-ही-साथ फ्रांसकी भी औपनिवेशिक नीतिका प्रश्न हमारे सामने उपस्थित होता है। उपनिवेशोंके सम्बन्धमें भावी फ्रेंच

प्रजातन्त्रकी नीति क्या होगी, इस सम्बन्धमें निश्चित रूपसे कुछ भी कहा नहीं जा सकता। किन्तु ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांसके सिद्धान्त उपनिवेशोंके सम्बन्धमें प्रायः एकसे ही रहे हैं, और जैसा कि मि० चर्चिलने कहा था—'ब्रिटिश साम्राज्यको छिन्न-भिन्न करनेके लिये मैं सम्राटका प्रधान मन्त्री नहीं बना हूँ—डी गौले भी उसी प्रकारके विचार व्यक्त कर रहे हैं। किन्तु हमारा विश्वास है कि फ्रांस तथा उसके उपनिवेशोंकी शासन-व्यवस्थामें अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन होंगे और जनताको अधिकाधिक स्वतन्त्रता प्रदान की जायेगी। फ्रांसकी पुरानी सभ्यताका स्थान नयी प्रगतिशील सभ्यता ग्रहण करेगी। फ्रांसका भविष्य अनेक अंशोंमें वर्तमान युद्धके उस परिणामपर निर्भर करता है, जो यूरोप और विश्वके संगठनके रूपमें हमारे सामने आयेगा।

फ्रेंच औपनिवेशिक साम्राज्यका अस्तित्व कुछ उपनिवेशोंकी जनताको पूरा फ्रेंच नागरिक अधिकार प्रदान करने पर निर्भर करता है। इसके अतिरिक्त अन्य उपनिवेशोंको साम्राज्यके अन्तर्गत सङ्घबद्ध होकर स्वशासन भार ग्रहण करने योग्य बनाना भी नितान्त आवश्यक है। अन्य साम्राज्यवादी देशोंका अपेक्षा फ्रांस इस कार्यको अधिक आसानीसे कर सकता है, क्योंकि फ्रांसीसी जनता उपनिवेशोंके अधिवासियोंको हेय दृष्टिसे नहीं देखती। फ्रेंच उपनिवेश इण्डो-चीनका अपना इतिहास और सभ्यता है, अतः वहांकी जनताको स्वाधीनता प्राप्त करने योग्य बनानेमें विशेष कठिनाइयोंका सामना नहीं करना पड़ेगा। किन्तु इन सभी कार्योंमें फ्रांसको ग्रेट-ब्रिटेनके दृष्टिकोण पर भी बहुत कुछ निर्भर रहना पड़ेगा। जबतक अन्य साम्राज्यवादी देश अपनी औपनिवेशिक नीतिमें परिवर्तन करनेको प्रस्तुत नहीं होंगे, तबतक फ्रांस भी उस कार्यमें सफलता नहीं प्राप्त कर सकेगा। अतएव औपनिवेशिक समस्याका सर्वोत्तम और आसान समाधान विश्व सङ्गठन ही हो सकता है। उपनिवेशोंकी देख-रेख और शासन-व्यवस्थाके लिये अन्तर्राष्ट्रीय सङ्घकी स्थापना आवश्यक है, और उसके द्वारा उन देशोंका शासन तबतक होना चाहिये, जबतक वहांकी जनता स्वाधीनता प्राप्त करने योग्य न हो जाय। इस प्रकारके संघकी स्थापना अमेरिकाके सहयोग पर बहुत कुछ निर्भर करती है, क्योंकि यूरोपीय साम्राज्यवादी देशोंपर उसका बहुत जबर्दस्त प्रभाव है, साथ ही अमेरिकाके अधीन भी अनेक उपनिवेश हैं।

विश्व-युद्धकी पुनरावृत्ति रोकनेके लिये साम्राज्यवाद और विदेशी शासनका नामोनिशान मिटा देना अनिवार्य है। इस दिशामें शीघ्रता पूर्वक कार्रवाई होनी चाहिये, अन्यथा विशेष देरी होने पर तृतीय युद्ध आरम्भ हो जा सकता है। यह एक अत्यावश्यक समस्या है। नये विश्वका निर्माण सिर्फ योजनाओंसे नहीं हो सकता। इसके लिये कुछ बलिदान, कुछ स्वार्थ-त्यागकी आवश्यकता होगी। सभी महान राष्ट्र पारस्परिक सहयोगसे विश्वको सङ्गठित कर स्थायी शान्ति स्थापित कर सकते हैं। नयी विश्वव्यवस्थाका प्रादुर्भाव नवीन रचनात्मक भावना द्वारा ही हो सकता है। अनेक देशोंकी जनता गणतन्त्रवादको सर्वश्रेष्ठ मानती है किन्तु वर्तमान समयमें जिसको गणतन्त्रवाद कहा जाता है, वह वाह्याडम्बर मात्र है। फ्रांसीसियोंमें कल्पना शक्ति और रचनात्मक भावना है। वे अपने अधीन देशोंमें वास्तविक गणतन्त्रकी स्थापना कर संसारके सामने एक उच्च आदर्श उपस्थित कर सकते हैं। यूरोपको समृद्ध, सुसंस्कृत और सभ्य बनानेमें फ्रांसने महत्वपूर्ण भाग लिया है। फ्रांसने सभी यूरोपीय देशोंमें स्वाधीनता और स्वच्छन्दताकी भावना जाग्रत की है। सदैव ही उसने अपने उच्चादर्शोंसे यूरोपको प्रभावित किया है। किन्तु यूरोपका सम्बन्ध अपनी दुनिया से ही नहीं है; अन्य देशोंकी प्रतिक्रिया भी उस पर पड़े बिना नहीं रह सकती।

यूरोपकी भावी सुरक्षाकी समस्याका समाधान रूस, ग्रेट ब्रिटेन और अमेरिकाके प्रभाव और स्वार्थ-क्षेत्रों पर बहुत कुछ निर्भर करता है। किन्तु इससे भी उत्तम समाधान सामूहिक कार्यवाही द्वारा निकल सकता है। महान राष्ट्रोंके स्थायी पारस्परिक सहयोगद्वाराविश्वमें और खासकर यूरोपमें युद्धकी पुनरावृत्ति रोकी जा सकता है। किन्तु हमें यह न भूल जाना चाहिये कि यूरोपके महान राष्ट्रोंमें रूस और ग्रेट ब्रिटेन प्रमुख हैं। इनमें रूस एक क्रान्तिवादी राष्ट्र है और ग्रेट ब्रिटेनके सिद्धान्त उसके बिल्कुल प्रतिकूल हैं। रूस समाजवादी और ब्रिटेन पूंजीवादी राष्ट्र है। समाजवाद आरम्भसे ही पूंजीवादके खिलाफ धर्मयुद्ध करता आया है। ऐसी अवस्थामें इन दोनों परस्पर विरोधी 'वादों' के सम्मेलनके लिये महान कूटनीतिज्ञतापूर्ण कार्यवाहीकी आवश्यकता होगी। ब्रिटेन अपने अधीन देशों और उपनिवेशोंको समानाधिकार देने तथा समाजवादी सिद्धान्तोंको कुछ अंशोंमें स्वीकार करनेको जब प्रस्तुत हो जायेगा तभी रूसका उसके साथ स्थायी गठबन्धन हो

सकेगा। उसके ऐसा न करने पर फ्रांसका महत्व बहुत अधिक हो जायेगा क्योंकि फ्रांसमें इस समय दोनों 'वादों' का बाहुल्य है। रूसकी चेष्टा होगी फ्रांसमें अपने सिद्धान्तों-को लोक-प्रिय बनानेकी और ब्रिटेन उसको अपनी ओर खींचेगा। अतएव, इस समस्याका समाधान मित्रराष्ट्रोंकी उस मनोवैज्ञानिक और कूटनीतिक कार्यवाही पर निर्भर करेगा, जो युद्धके पश्चात उनके द्वारा सम्मिलित रूपसे की जायेगी। फ्रांसके प्रति मित्रराष्ट्रोंका रुख भी विश्वशान्तिके लिये निर्णायक सिद्ध होगा। शक्तिशाली फ्रेंच प्रजातन्त्रका प्रादुर्भाव इसके लिये आवश्यक है। यदि फ्रांस अपनी शक्ति-का उपयोग साम्राज्यवादी राष्ट्रोंकी सहायता तथा अपने अधीन देशोंके शोषणमें न कर आक्रमणशील राष्ट्रको दबाने और विश्वमें शान्ति कायम रखनेमें करेगा तो निश्चय ही यूरोपमें वह अपना प्रमुख स्थान बना लेगा और इस तरह युद्धक पुनरावृत्तिको रोकनेमें उसका प्रभाव बहुत सहायक होगा।

—:o:—

मौतकी छाया

श्री रामसरन शर्मा

बसन्तीने धीरेसे उठकर बच्चेको ढंक दिया। मोहन, उसका अकेला बच्चा था, तीन सालका। सोते-सोते बच्चे लिहाफ उघाड़ ही देते हैं और फिर मोहन तो मानो नींदमें भी अपना चुलबुलापन नहीं छोड़ पाता था। बार-बार बसन्तीको जाड़ेमें उठ कर उसे ढंक देना पड़ता था।

पर, इससे बसन्तीको कुछ ऊब होती हो, ऐसा नहीं था। कहीं मां भी अपने लालसे ऊबी है, और फिर मोहन तो —मोहन ही था। उसका मोहन रूप, हंसना, रूठना, मांके सर होना, बसन्तीके रोम-रोममें बसा था।

बसन्ती अभी अठारह सालकी थी। कुल पांच साल ही तो हुए थे—ब्याहको। लेकिन इन पांच वर्षोंने बसन्ती-को छुआ तक न था। मां बन जानेपर भी वह अभी लड़की ही दिखायी पड़ती थी।

उसका रूप, मानों सचमुच बसन्तकी सरसराती, मद-माती हवा खिले फूलोंसे अठखेलियां कर रही हो—ऐसा मादक था बसन्तीका रूप।

मोहनको ढंकते समय बसन्ती, उस धुंधले प्रकाशमें देवी-सी लगती थी। पर वहांसे दो पग चल कर जब वह पतिके पास पहुंची तो न जाने कैसे वह बदल कर नायिका बन गयी थी। अनुराग, मद और लोभ, सब उसमें आ गया था।

पति—बसन्तीके पति रामनरायन, बसन्तीके सचमुच दीवाने थे। चौबीस वर्षका सुन्दर युवक मन, वचन और कर्मसे बसन्तीका ही था। जब—तब रामनरायन कह भी देता,—"मेरे पिछले जन्मके पुण्यफलसे ही तुम मिली हो, बसन्ती।"

बसन्ती तब लाजसे सिकुड़ जाती।

हां तो, पति और पुत्रको सहेज कर, बत्ती बुझाकर बसन्ती अपने पलङ्गपर आ लेटी। सामने खिड़कीसे होकर थोड़ा-सा आकाश दिख रहा था, उसे ही एकटक देखने लगी। एकदम अंधेरेमें वह चौखूंटा काला, तारों जड़ा आकाश ऐसा लग रहा था मानो बसन्तीके एकदम पास ही काली मखमलका सितारों जड़ा पर्दा लटक रहा हो।

बसन्तीकी आंखोंकी नींद आज उड़ गयी थी। कल ही कलकत्ते पर बम गिरे थे। जापानी हवाई जहाजोंने अचा-नक ही आकर बम बरसाने आरम्भ कर दिये थे, आज यह खबर सुन कर बसन्तीका दिल दहल उठा था।

न जाने क्यों लड़ाई होती है? जल गये, जापानियोंका हमने क्या बिगाड़ा था, जो वह यों आकर बम बरसाते थे। आज कलकत्ते पर बम गिरे तो कल चांदपुर पर भी गिर सकते हैं।

चांदपुर! बसन्ती सिहर उठी। भला इस परदेशमें वे तीनों क्या कर सकेंगे। अभी कुछ ही दिन हुए तबादला होकर यहां आये थे। अभी तो बसन्ती वहांकी बोली भी ठीकसे नहीं समझती है। फिर किसी आफतके समय वे क्या करेंगे?

पर बमोंके सामने कोई कर भी क्या सकता है? न मकान, न महल, न बूढ़ा, न बच्चा—कोई भी तो नहीं बच सकता।

मोहन, उसके पिता—बसन्तीका डर बढ़ने लगा। नींद-का पता नहीं। ऐसे ही काले-काले आकाशमें चुपकेसे जा-पानी जहाज आकर बम बरसाने लगेंगे। शायद तब कार-

बार भी बन्द हो जाये। तनख्वाह भी न मिले·········तो खायेंगे क्या? बचाया तो कुछ था ही नहीं, और बचाती भी क्या? महंगायी दम लेने दे तब तो।

अच्छा, बसन्तीने सोचा, बम कैसे गिरते होंगे। एक बारगी भयानक धड़ाका—फिर सब समाप्त! मान लो कोई बम उसपर ही गिरे तो·········या बच्चोंपर······या······ बसन्ती सहम गयी। उड़ती निगाह रामनरायन पर डाली और मन-ही-मन हनुमानजीके हाथ जोड़कर मानता मानी। जो भी होना हो उसीको हो, बाकी सारा घर सलामत रहे।

बसन्ती यही सब सोचती-सोचती अंधेरे आकाशको देख रही थी। न जाने जापानी क्यों लड़ते हैं? भगवान करे वह जहां हों वहीं रह जायें, रुक जायें। कैसे चुपचाप रातको आकर मौत बरसा देंगे······

वह चौंक पड़ी। शायद चीख भी पड़ी। फिर सहसा ही लजा गयी। रामनरायन चुपचाप उठ कर उसके पास आ पहुंचा था।

"डर गयी?" पतिने प्यारसे हंसकर पूछा।

"हां।" बसन्तीने धीरेसे पतिका हाथ पकड़ कर कहा।

"क्यों?"

"कुछ नहीं।" बसन्ती क्या बताये।

"कुछ तो होगा ही।" रामनरायन बसन्तीके पास ही बैठ गये। "बिना कारण भी कोई डरता है।"

बसन्तीने धीरेसे कहा,—"मैं सोच रही थी, मान लो जापानी जहाज यहां भी आ जायं तो क्या होगा?"

"वः" रामनरायनने दुलारसे कहा,—"यहां वह न आयेंगे।"

"क्यों?"

उसकी बड़ी-बड़ी आंखें रामनरायन पर जमी थीं। पतिने झुककर कहा,—"उन्हें पता है कि तुम यहां हो।"

हंसकर बसन्ती बोली,—"चलो हटो, मैं क्या कर लूंगी।"

"वाह," पतिने उसे छेड़ कर कहा—"तुम्हारी एक निगाहसे ही हवाई जहाज नीचे आ गिरेंगे, और क्या?"

* * * *

अंधेरी रात, ऐसी कि हाथको हाथ न दिखायी दे। दूर बर्माके जङ्गलमें एक हवाई अड्डे पर, एक छोटी-सी झोपड़ीमें जापानी उड़ाके बैठे थे।

सामने नक्शा था। उनका लीडर उन्हें समझा रहा था।

बाहर मौतके से सन्नाटेमें बारह हवाई जहाज खड़े थे। चुपचाप अपने पंखोंमें मौत भरे। ठीक काले-काले पक्षियोंकी भांति।

जहाज—चालकोंके नेताने कहा —

"देखो यहां है चांदपुर। छोटा-सा कस्बा है। पर फौजी हिसाबसे इसपर हमला आवश्यक है। फिर हमें बम डालकर लोगोंमें गड़बड़ भी तो पैदा करनी है। समझे। जाओ।"

चालक और अन्य लोग चुपचाप उठकर अपने जहाजोंमें जा बैठे।

दो मिनटमें घर्र-घर्र करके जहाज हवामें उठकर अंधेरेमें गायब हो गये। दो-चार मिनट तक उनकी आवाज आयी। फिर पहले जैसा सन्नाटा हो गया।

केवल रेडियो सुननेवाला आपरेटर अपने काममें तन्मय था।

* * * *

ठीक बीचो-बीच वाले जापानी जहाजका पाइलट सोच रहा था। यह नहीं कि इससे उसके काममें कुछ भूल हो रही हो, पर उसका मन दूर ओसाका पहुंच गया था, और हाथ मशीनको साधे थे।

अच्छा चांदपुरमें रहने वालोंको क्या पता होगा कि उनपर घड़ी भरमें मौत बरसने वाली है। जान पड़ता है बचावका भी कोई इन्तजाम न होगा। बस, जाना और यह सारे बम उस सोये शहरपर छोड़ कर लौट आना है।

मगर क्यों? क्यों ओसाकामें मेलिंगको छोड़कर वह यहां अंधेरी रातमें एक अनजाने शहरपर बम डालने जा रहा था? क्यों? चांदपुरमें भी न जाने कितनी मेलिंग होंगी जो अपने सुन्दर मुखोंको तकियोंपर रखे सपने देख रही होंगी।

मान लो कोई ओसाका पर ही बम गिराये तो···पाइलट मित्सूरीका दिल धकसे रह गया। पर तत्काल ही उसने सोचा,—भला जापानपर, ओसाका पर कोई बम गिरा सकता है। मेलिंगको कोई संकट नहीं आ सकता। जापानकी शक्ति उसकी रक्षा को है।

फिर जापानियोंकी हिन्दोस्तानियोंसे कोई लड़ाई नहीं है। वह तो अंगरेजोंसे लड़ते हैं और दो चार महीनेमें अंगरेजोंको हटा कर वापिस ओसाका, मेलिंगके पास।

उसने झुककर देखा। नक्शेको भी और जहाजसे बाहर भी। फिर घड़ीको। वे अब चांदपुरके पास ही होंगे। बिलकुल पास।

मान लो, किसी कारण वह न लौट सका तो बेचारी मेलिंग क्या करेगी ? उसकी आंखें किसकी राह देखेंगी… उंह ! वह लौट जायगा। जापानी जहाजोंको कौन रोक सकता है ?

उसने स्पीकिंग ट्यूबमें पूछा,—"हम टार्जेटसे कितनी दूर हैं।"

आवाज आयी,—"बस अब पहुंचते ही हैं !"

और दूसरे ही क्षण मित्सूराकी आंखें झिप गयीं। नीचेकी सर्चलाइटने सहसा ही चमककर उसे अपने फन्देमें ले लिया।

मित्सूरीने तुरन्त ही जहाजको घुमा दिया। पर साथ ही सर्चलाइट भी घूम गयी।

अब वह क्या करे ?

नीचेसे गोलाबारी भी शुरू हो गयी थी। दुश्मनके हवाई जहाज भी ऊपर उठ रहे थे।

होंठ दबाकर मित्सूरी बम छोड़ने लगा।

एक……दो……चार……

सहसा उसका जहाज डगमगाया और गिरने लगा। मित्सूरीकी आंखोंके आगे घूम गया—ओसाका, मेलिंग…

* * * *

बसन्तीका मुख भयसे सफेद पड़ रहा था। पति और मोहनको कसकर पकड़े वह आकाशको देख रही थी।

बोल सकना असम्भव था।

भयने जड़ कर दिया था सारी चेतनाको। केवल आंखें उन चीलोंको लड़ता देख रही थीं। लड़ता और मौत बरसाता। धड़ाम……धड़ाम……

सहसा एक हवाई जहाज चक्कर खा गया और रोशनीसे ओझल हो गया।

बाकीके वापस चले गये। धमाके मिट गये। सर्चलाइट अपनी लम्बी उङ्गलीको इधर उधर फिरा कर बन्द हो गयी।

बसन्तीकी जानमें जान आयी। पर, मानो अङ्ग-अङ्ग जड़ हो गये हों। भय मिटजाने पर भी, उसका असर धीरे-धीरे मिट रहा था।

"चलो अन्दर चलें।" रामनरायनने कहा।

अन्दर पहुंच कर मोहनने कहा,—"मां मैं तुम्हारे पास सोऊंगा। डर लगता है।"

मां को भी डर लग रहा था। पर मोहनको छातीसे लगाकर उसका डर हट गया। वह लेट गयी।

कहीं दूर हल्ला हो रहा था। न जाने कैसा ? शायद किसी बमसे कुछ नुकसान हुआ हो।

थोड़ी देर ही आंख लगी होगी कि बसन्ती न जाने कैसे एकदम जाग गयी। कुछ अजीब भयसे। धीरेसे आंख खोलकर देखा एक छोटा-सा, पीला-सा आदमी खिड़कीसे झांक रहा था। बसन्तीने अधखुली आंखोंसे देखा, हाथमें पिस्तौल, मुखपर भयङ्करता, क्रूरता। शायद भय भी।

बसन्ती न चीखी, न चिल्लायी, न हिली। चुपचाप लेटे लेटे सोचती रही, क्या करे ? क्या करे ?

मित्सूरी—आनेवाला मित्सूरी ही था—को प्यास लगी थी। वह पानी पीने इस घरमें घुसा था और पानी मिलता भी कहां ? सड़कपर……असम्भव। पानी पीकर वह चला जायगा। जङ्गलमें। फिर जो होगा देखा जायगा।

धीरेसे वह खिड़कीके भीतर आ गया। सब सो रहे थे।

वह अन्दरको बढ़ा, दबे पांव।

आगे जानेको वह मुड़ा ही था कि किसीने एकाएक उसके पैर पकड़ कर खींच लिये। वह गिरा और चौखटसे टकरा कर बेहोश हो गया।

* * * *

आध घण्टे बाद। बसन्ती रामनरायनसे कह रही थी, "सुनो यहां आओ। मुझे डर लगता है।"

रामनरायन उसे थपथपा कर बोले, "डर क्या है ?"

बसन्तीने खिड़कीकी ओर उङ्गली उठाकर कहा, "उस अंधेरेका। वहींसे तो वह जापानी छायाकी तरह निकल कर आया था……।"

यूरोप-समाजवादकी ओर

श्री देव

यूरोपकी समस्या जटिल होती जा रही है । भांति-भांतिके प्रश्न लोगोंको परेशान कर रहे । युद्धके बाद मुक्त यूरोपमें अराजकता और गृह संघर्ष मचेगा, यह आशंका भी की जा रही है । इसे रोकनेका एक ही उपाय है कि यूरोपका पुनर्संङ्गठन रूसके प्रति सहानुभूति और सद्भावपूर्ण नीतिके आधार पर हो । यह तो प्रथम आवश्यकता है। दूसरी बात यह है कि यदि ब्रिटेन चाहता है कि यूरोपमें इस युद्धका अन्त तीसरे विश्व युद्धके आरम्भका कारण न बने ता अपनी स्वार्थ नीति और शोषण नीतिको तिलाञ्जलि देकर रूसके साथ पूर्ण सहयोग नीतिको अपनाये। यह बात तो ठीक है कि शांति प्रचेष्टाको सफल बनानेके लिये जर्मनी की सैनिक शक्तिको कुचलना पड़ेगा और उसे ऐसी स्थितिमें ला देने की आवश्यकता है कि पुनः वह संघर्ष कर सकने लायक न बने । किन्तु इतना ही पर्याप्त न होगा । मुक्त यूरोपके विभिन्न राष्ट्रोंकी सरकारोंके बीच समान उद्देश्य-शान्ति-की रक्षाके लिये, यह आवश्यक है कि उनकी शासन प्रणाली भी एक दूसरेसे मिलती जुलती हो । यह तभी हो सकता है जब यूरोपके सभी राष्ट्रोंकी आर्थिक नीति, स्थानीय स्थितियोंका ध्यान रख कर, एक दिशाभिमुखी हो । उत्पादन और वितरण व्यक्तिके अधिकारमें न रहकर समाजके अधिकारमें रहे । शांति-व्यवस्था बनाये रखनेके लिये दुर्बल और शोषित राष्ट्रोंको सहायता पहुँचाकर उनकी ऊपरी स्थितिका संभाल देनेसे काम न चलेगा । अब तो यह आवश्यक है कि अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक नीतिका आधार समाजवादी प्रणाली मान ली जाये तभी दुर्बल और साधनहीन राष्ट्रको स्वावलम्बी बनाया जा सकेगा ।

१९ वीं शताब्दीमें व्यक्तिगत लाभालाभके आधार पर मुक्त व्यापारकी नीतिने साम्राज्यवादी देशोंका शोषण-नीति ग्रहण करनेके लिये कितना अधिक प्रोत्साहित किया यह किसीसे छिपा नहीं है । ये विश्व युद्ध उसी मुक्त व्यापार-नीतिकी स्वच्छन्दताके परिणाम हैं । अतएव यदि इस युद्धके बाद पुनः पूञ्जीवादी आर्थिक प्रणाली बनी रही तो यह निर्विवाद है कि मनुष्य द्वारा मनुष्य, जाति द्वारा जाति और देश द्वारा देशका शोषण जारी रहेगा, और जबतक शोषणका अन्त न होगा तबतक विश्वमें स्थायी शान्तिका स्वप्न ही देखा जाता रहेगा, वास्तवमें उसके दर्शन कभी न हो ।

२० वीं शताब्दीके दोनों महायुद्धोंके बीचके कालमें कभी इस वास्तविकता पर ध्यान नहीं दिया गया कि प्राचीन आर्थिक प्रणाली, जो शोषणके आधार पर खड़ी है, समाजमें अशांति ही पैदा करेगी । यूरोपके कुछ राष्ट्रोंकी लपलपाती जीभ सारे संसारको चाट डालना चाहती थी और उसका परिणाम जो होना चाहिये था वही हुआ । यदि इस बार भी वही गलती दुहरायी गयी और चर्चिल जैसे कट्टर स्वार्थी और साम्राज्यवादी राजनेताओंका प्राबल्य और प्राधान्य बना रहा तो पुनः विश्वमें रक्तकी नदी बहेगी ।

आजके शांति-कामी व्यक्तियों और राष्ट्रोंको यह बात भलीभांति महसूस करनी चाहिये कि १९वीं शताब्दीके अनुसरण और अनुकरणसे शान्ति नहीं अशान्ति ही फलेगी। दूसरी बात महसूस करनेकी यह है कि यूरोपकी पुरानी आर्थिक प्रणाली इस भांति निकम्मी और व्यर्थ साबित हुई है कि नवीन प्रणालीकी खोजमें अभीसे, पुराने अनुभवको सामने रखकर, लग जाना चाहिये । कहा जा सकता है कि यह काम हो भी रहा है। सभी देशोंके अर्थ विशेषज्ञ और अर्थ शास्त्री संसारमें शांति और सुरक्षाके लिये योजनाएं बनानेमें लगे हुए हैं और योजनाएं बन भी रही हैं। लेकिन यह प्रयास विफल होगा । क्योंकि यह प्रयास तो पुरानी शराबको नये बोतल पर नये लेबुल लगाकर उपस्थित करनेके जैसा ही हो रहा है। व्यक्तिगत लाभालाभ और साम्राज्यवादको सुरक्षित रखकर नवीन योजनाओंका जो रूप हमारे सामने उपस्थित किया जा रहा है उसे देखने से यह स्पष्ट है कि इन योजनाओंके बनानेवालोंकी दृष्टि प्रथम इस बात पर जाती है कि 'अपना' स्वार्थ किस तरह और किस हद तक सुरक्षित रखा जा सकता है। अवश्य ही अपनी अट्टालिकाओं और राजप्रासादोंको सुरक्षित रखनेके लिये इस आवश्यकताको भी महसूस किया गया है कि अबतक शोषित होते रहनेवाले वर्गोंका रहन-सहन पहलेसे कुछ ऊपर उठा दिया जाना चाहिये । ८० प्रतिशत लाभसे दो चार अधिकसे अधिक दस प्रतिशत हिस्सा समाजके ९० प्रतिशत भागके लिये और निकाल दिया जाये और ७०

प्र तशत लाभ अब भी समाजके १० प्रतिशत भागके लिये सुरक्षित रहे, इन योजनाकारोंका यह दृष्टिकोण अबतक बना हुआ है।

रूससे इस दिशामें लोगोंको बड़ी बड़ी आशाएं हैं। हम नहीं कह सकते कि वह कहां तक लोगोंकी आशाओंको पूरा करसकेगा। अक्तूबर क्रांतिके २७वें वार्षिकोत्सवके अवसरपर मार्शल स्टालिनने जो वक्तव्य दिया है वह हमारी आशाको मजबूत ही बनाता है। भावी विश्व-संगठनकी दृष्टिसे स्टालिनका यह भाषण बड़े महत्वका है।

युद्धक्षेत्र और उद्योग-क्षेत्रमें सोवियट सफलताओंका उल्लेख करते हुए स्टालिनने कहा—"इन सब बातोंसे यह स्पष्ट प्रमाणित है कि हमारी सोशलिस्ट स्टेटमें अन्य किसी स्टेटकी अपेक्षा कहीं अधिक अतुलनीय जीवनी शक्ति और कर्म शक्ति है। अक्तूबर क्रांतिके फलस्वरूप स्थापित समाजवादी शासन प्रणालीने हमारी जनता और सेनाको अपार शक्ति प्रदान की है। लाल सेनाके पास आज जर्मनीसे कहीं अधिक और कहीं अच्छे टैंक, तोपें और विमान हैं। लाल सेनाने अकेले अपने बलपर जर्मन सशस्त्र सेना पर विजय प्राप्त की है,किन्तु हमारे युद्धोद्योगकी विजय सैनिक विजयसे कम महत्वपूर्ण नहीं है।"

इस तरह स्टालिनके इस वक्तव्यसे यह साफ है कि संसार में प्रतिष्ठित जितनी शासन प्रणालियां हैं उनमें सर्वश्रेष्ठ समाजवादी प्रणाली है। यह बात तो निर्विवाद है कि यदि रूस जर्मनीके मोर्चेमें टिक न सकता तो आज यूरोपमें ही नहीं सम्भवतः सारे संसार पर फासिस्टोंका झण्डा लहराता होता। इस तरह यह बात साफ है कि यूरोपको फासिस्ट चंगुलसे मुक्त करनेका श्रेय यदि किसीको है तो वह सोवियट रूसको ही है। दूसरे शब्दोंमें यह कहा जा सकता है कि समाजवादी शासन प्रणालीको है। जहां पूंजीवादी शासन-प्रणाली जर्मनीकी दुर्निवार गतिको रोकनेमें बुरी तरह असफल हुई समाजवादी प्रणालीने उसकी तूफानी रफ्तारको रोका ही नहीं बल्कि लौटकरउसपरइतनी करारी चोट की कि आज फासिस्ट सैनिकोंकी भागते लात नहीं लगती। पूंजीवादी प्रणाली पर समाजवादी प्रणालीकी यह उल्लेखनीय विजय है और यदि इतनेपर भी यूरोपके विभिन्न राष्ट्र नेतृत्वके लिये पूंजीवादी और साम्राज्यवादी ब्रिटेनका ही दामन पकड़े रहेंगे तो यह निश्चित है कि यही अन्तिम युद्ध न होगा।

भविष्यका ध्यान रखकर ही स्टालिनने यह कहा है, और यह बात दरअसल संसारके लोगोंको समाजवादी व्यवस्थाकी महत्ता बतानेके लिये ही कही गयी है कि "समस्त जातियों और राष्ट्रोंकी समानताका भाव, जो हमारे देशमें व्याप्त है, तथा व्यक्ति और व्यक्ति एवं जाति और जातिके बीच फैला हुआ मैत्री-भाव ही पाशविक राष्ट्रीयता और जातीय घृणा-विद्वेष भाव पर पूर्ण विजय पा सका है।" स्टालिनका यह संकेत है कि जबतक संकीर्ण राष्ट्रीयता और जातीय-विद्वेषको पनपाये रखा जायेगा तबतक संसारमें शान्ति सम्भव नहीं है। इसीसे उन्होंने अपने भाषणमें यह स्पष्ट कर दिया है कि "सोवियट देशभक्तिकी शक्तिका आधार जातीय विद्वेष नहीं है, बल्कि अपनी मातृभूमिके प्रति सोवियट निवासियोंकी गम्भीर श्रद्धा और भक्ति एवं हमारे देशमें बसनेवाली विभिन्न जातियों और राष्ट्रवादियोंके बीचमें भ्रातृत्वपूर्ण सहयोग सोवियट देशभक्तिको उद्बुद्ध करके प्रगाढ़ बनाता है। सोवियट - यूनियन देशमें बसनेवाले विभिन्न संस्कृति और राष्ट्रीयतावाले निवासियोंमें पार्थक्य नहीं फैलाता बल्कि उनको एक दूसरेके निकट लाता है।" क्या हमारे प्रधान मन्त्री मि० चर्चिल अपने साथी मार्शल स्टालिनके इस वाक्यसे कुछ शिक्षा ग्रहण करेंगे। ब्रिटिश साम्राज्यवादियोंके जीवनका लक्ष्य ही है शासितोंके बीचमें जहां तक हो सके भेदभाव और मनोमालिन्यको बढ़ाना। अब तक वे अपनी इसी नीति पर आरूढ़ हैं और साथ ही विश्वमें शान्ति स्थापित करनेकी डींग भी हांकते फिरते हैं। स्टालिनने अपने इस भाषणमें घरेलू नीतिका उल्लेख स्पष्ट ही संसारके उन शासक देशोंकी आंखें खोलने के लिये किया है जिन्होंने प्रेम-भाव और भ्रातृभावकी जगह भेदभाव और द्वेषभाव पैदा करने और उसे पुष्ट करनेकी नीति पकड़ रखी है। यह इस बातका संकेत है कि भावी संसारमें भी यदि इसी दूषित नीतिको कायम रखा गया तो वह शांतिके लिये वांछनीय और हितकर नहीं सिद्ध होगा।

अन्य राष्ट्रों और पड़ोसी देशोंके प्रति सोवियट नीति क्या है और क्या होगी, यह भी स्टालिनने बताया है। आप कहते हैं कि "हमारी सरहदके बाहर रहने वाले लोगोंके अधिकारों और स्वतन्त्रताका हम सम्मान करते हैं और और हमने सदा ही अपने पड़ोसी राज्योंके साथ शान्तिपूर्वक मिल-जुल कर दोस्ताना भावसे रहनेकी अपनी इच्छा और तत्परता प्रकटकी है।"

इस तरह स्टालिनने अपने इस भाषणमें यह साफ साफ व्यक्त कर दिया है कि भावी संसारमें सुख शान्ति स्थापित

करनेके लिये जहां आततायी राष्ट्रोंकी हिंस्र शक्तिको कुचलनेकी जरूरत है, वहां साथ ही साथ शान्तिकामी राष्ट्रोंको भी अपने दृष्टिकोणमें परिवर्तन करनेकी आवश्यकता है। पूंजीवादी प्रणालीका स्थान समाजवादी व्यवस्थाको मिलना चाहिये, तभी समयके अनुकूल परिवर्तन और शक्ति - अर्जन करना सम्भव है।

स्टालिनका भाषण, आदिसे अन्त तक, बार बार इस बातका स्पष्ट संकेत करता है कि रूसकी विजय फासिज्म पर ही नहीं, पूंजीवादी व्यवस्था पर भी हुई है। विपन्न मानवताको पूंजीवाद बचा सकनेमें समर्थ नहीं हो सका। इसीलिये युद्धकी शीघ्र समाप्तिकी स्थिति आने वाली है, यह समझ कर उन्होंने संसारको यह याद दिलाया है कि 'सोवियट वासियोंने जो ऐतिहासिक कार्य कर दिखाया है वह सर्वोपरि महान है। आत्म-बलिदानकारी संग्राम द्वारा सोवियट जनताने यूरोपको फासिस्ट लुटेरोंसे बचाया है यह बात सर्वविदित है। उसका यह आत्म-बलिदान ही मानवताकी वह महती ऐतिहासिक सेवा है जो सोवियट निवासियोंने की है।'

फासिस्टोंसे यूरोप और समग्र मानव समाजको बचानेका मूल श्रेय रूसको ही है, अन्य किसीको नहीं है, स्टालिनके भाषणसे यह ध्वनि साफ साफ आ रही है। इस तरहकी बातें कहनेका तात्पर्य इसके सिवा और क्या हो सकता है कि यूरोपकी भावी शासन और समाज व्यवस्थाके निर्माणमें मुख्यतः उसीका हाथ होना चाहिये, जिसने संकटकालमें अपने बलिदान द्वारा उसे विनाशसे बचाया है।

अपने भाषणके अन्तिम भागमें स्टालिनने यह कहा है कि यूरोपमें शान्ति और सुरक्षाके लिये उचित व्यवस्था करनेके लिये एक विशेष अन्तर्राष्ट्रीय संगठनकी आवश्यकता है। वह संगठन कैसा होगा और उसके अधिकार क्या होंगे, तथा उनको कैसे कार्यान्वित किया जायगा, आदि बातोंका विचार वे महाशक्तियां करेंगी, जिन्होंने जर्मनोंसे लड़ने जैसे गौरवपूर्ण कार्यका कठिनभार उठाया है। इससे यह स्पष्ट है कि स्टालिन चाहते हैं, कि भावी विश्व-शान्ति व्यवस्थाका कार्य कोरी बातें बनाने वाले नहीं, बल्कि उसके लिये जिसने जिस अनुपातमें भार उठाया है उसीका प्रमुख हाथ रहे। इस सिद्धान्तके अनुसार युद्धोपरान्त शान्ति सम्मेलनमें स्टालिन इस बातको कभी बर्दाश्त न कर सकेंगे कि यूरोपके भावी निर्माणके मामलेमें ब्रिटेन और अमेरिका सरपञ्च बन कर बैठ जायें। यही वजह है कि पोलैण्डकी लन्दन - स्थित भगोड़ी सरकारको स्टालिनने सदा उपेक्षाकी दृष्टिसे देखा है और उसके मुकाबले जनताके प्रतिनिधियोंकी सरकार सङ्गठित कराके उसे मास्कोमें बैठा रखा है। जर्मनीके सम्बन्धमें भी स्टालिनका ऐसा ही रुख है। उनके भाषणसे यह स्पष्ट है कि इस बार बर्लिन पर लाल झण्डा फहरायेगा और इसीलिये उन्होंने पहले ही से जर्मनीके देशभक्तोंको सङ्गठित करके एक ऐसी कमेटी बना ली है जिसे मौका आते ही जर्मनीकी सरकारका रूप दे दिया जायेगा। कहनेका तात्पर्य यह है कि स्टालिनका यह दावा है कि यूरोपको फासिस्ट प्रभाव और अन्याय-अत्याचारसे मुक्त करनेका श्रेय समाजवादी रूसको है; अतः यूरोपके भावी सङ्गठन और पुनर्निर्माणमें भी उसका हाथ रहना चाहिये। यदि ब्रिटेन और अमेरिकाने यह बात मान ली तब तो ठीक है, अन्यथा रूसके तत्वावधानमें सङ्गठित यूरोपियन सरकारें स्टालिनके नेतृत्वमें यदि अपना अलग फेडरेशन बना कर बैठ जायें तो कोई आश्चर्य नहीं है। अधिकांश बालकन और बालटिक राज्य सोवियट छत्रछायामें आ गये हैं। हिटलरके विनाशके बाद जर्मनी समाजवादकी ओर झुकेगा, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। गत महायुद्धके बाद जर्मन प्रजातन्त्र स्थापित हो गया था। किन्तु उस समय वहांके उग्र समाजवादियोंमें साहसके अभावके कारण दक्षिण पन्थी अधिक जोर पकड़ते गये और इन दक्षिण पन्थियोंकी दब्बू नीतिने वहांके प्रतिक्रियावादी और समरवादी दलोंको जोर पकड़नेका मौका दिया। राष्ट्रीयताके नाम पर जर्मन जनताके भीतर प्रतिहिंसाकी आग भड़का दी गयी और इसका परिणाम यह हुआ कि हिटलरके लिये मैदान साफ हो गया। इस बारकी स्थिति भिन्न है। जर्मनीके उग्रपन्थी समाजवादी इस बार अवसरसे लाभ उठायेंगे। इस बार उनको प्रोत्साहन और सहायता देनेके लिये सोवियट यूनियन जैसी प्रचण्ड शक्ति खड़ी है। अतएव लक्षण यही दिखायी देते हैं कि हिटलरके पतनके बाद जर्मनीके शासनकी बागडोर इस बार समाजवादियोंके हाथोंमें ही जायेगी।

फ्रांसकी स्थिति भी सोवियटके अनुकूल ही है। जनसाधारणमें पूंजीवाद और पूंजीपतिके खिलाफ जबर्दस्त रोष और असन्तोष है। अतएव यूरोपमें राजतंत्रको सर्वप्रथम बिदाकरके प्रजातंत्रकी स्थापना करने वाला प्रगतिशील फ्रांसके समाजवादकी ओर अग्रसर होने की पूरी सम्भावना है। युद्धके बाद डी गौले बहुत दिन शासन सूत्र अपने हाथमें रख सकेंगे, ऐसी सम्भावना बहुत कम है।

प्राप्त समाचारोंसे फ्रांसमें समाजवादी दृष्टिकोणकी प्रबलता की पुष्टि होती है।

गत मासके दूसरे सप्ताहमें मि० चर्चिल और मि० एंथोनी ईडेनके पेरिस जानेके पीछे क्या रहस्य है, यह तो अभी तक साफ साफ नहीं मालूम हुआ, लेकिन यह अनुमान है कि डी गौलेको प्रोत्साहन देने और पीठ ठोंकनेकी गरजसे ही प्रीमियर चर्चिलको पेरिस—यात्रा करनी पड़ी। लेकिन एक बात साफ है कि यूरोपकी जनताका विश्वास पूंजीवादी-समाज-व्यवस्थासे बिलकुल उठ गया है और यह बात उसकी समझमें अच्छी तरह आगयी है कि पूंजीवादी प्रणाली, जो स्वयं आततायी और पाशविक प्रणाली है, आततायियोंसे उसकी रक्षा नहीं कर सकती।

इस युद्धके बाद भी यदि ब्रिटेनमें अनुदार दल और कट्टर साम्राज्यवादियोंका प्रभाव बना रह जाये, तो यह भी दुनियाकी अनेक आश्चर्यजनक बातोंमें एक होगी। इस लिये इस आश्चर्यकी बातको अलग रखकर आज ब्रिटिश जन साधारणके रुखको देखनेसे हमेंयह पता चलता है कि ब्रिटेन भी समाजवादके पथपर बहुत दूरतक अग्रसर हुआ दिखायी देगा। जो कुछ भी हो, यह बात निस्सन्देह है कि यूरोपमें जहां जहां लाल सेना पहुंची है, वहां वह विजयके झण्डेके साथ समाजवादका प्रतीक लाल झन्डा भी साथ ले गयी है और युद्धोपरान्त यदि यूरोपका अधिक भाग समाजवादी यूरोपका रूप धारण करता दिखायी पड़े, तो आश्चर्य की कोई बात न होगी।

—०*०—

पाखण्ड

श्री देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त'

विवाहके दिनसे लेकर कल तक उन्मन-उन्मन-सी रहने वाली रेखामें अब परिवर्तनकी एक क्षीण-सी रेखा दीखने लगी थी। पतझड़के बाद जिस प्रकार सूने-सूनेसे वृक्ष, हरी-हरी पत्तियोंके कोमल आवरणमें एकदम लजीले और चित्ताकर्षक दीखने लगते हैं और बसन्तकी मादकता उनमें प्रतिबिम्बित हो उठती है, ठीक उसी प्रकार रेखा भी अब शनैः शनैः प्रसन्न वदना दीखने लगी थी। एक पुलक-प्रकम्पन उसके तरुण गातके रोम-रोमसे जैसे फूटा पड़ता था और जीवनका प्रकाश उसकी आंखोंसे टपका पड़ता था।

शेखर इतना ही चाहता था। वह अपनी जीवन-सङ्गिनी को इसी प्रकार सदा प्रसन्न देखना चाहता था। उसने स्वीकार किया कि गर्मियोंमें इन पहाड़ोंपर आ जानेसे उसकी खोयी हुई निधि उसे जैसे पुनः मिल गयी है।

जब कभी रेखाके साथ वह रानीखेतकी पहाड़ियोंके बीच वहांकी वन-श्री निहारते-निहारते आकाशमें विहंसते पूनमके चांदको देख पाता, तो उसे एक अव्यक्त आह्लादका अनुभव होता। तभी वह शुभ्र ज्योत्स्नासे चमक उठने वाली धवल हिम-राशिको एक बार देखता और फिर अपनी रेखाके मुखको देख कह उठता—'रेखा!'

'कहिये!' रेखा बोल उठती—यह समझ कर कि उसके स्वामी उससे कुछ कहना चाहते हैं। लेकिन रेखाके इस तात्कालिक उत्तरसे शेखर जैसे लज्जित-सा हो जाता। वह धीमे-से स्वरमें कह देता—'कुछ नहीं रेखा!'

'और अभी आपने मुझे पुकारा जो था!'

'ओह! नहीं, कोई काम नहीं रेखा।'

'तो फिर क्या बात है?' शेखरका एक हाथ अपने दोनों कोमल करोंसे कसकर दबाते हुए रेखा पूछ बैठती।

'इस चन्द्र-ज्योत्स्नामें' शेखरको अपने मनकी वह बात कहनी ही पड़ती, जिसके कारण रेखाको इतने सारे प्रश्न करनेका मौका मिल जाता—'बर्फकी यह एक बड़ी-सी रेखा दिनकी तीव्रतासी चमक रही है—ठीक चांदीकी तरह। इसे देख मुझे लगता है कि बर्फकी यह चांदी-सी रेखा जिस प्रकार इस वन-श्रीमें चार चांद लगा देती है, दुनियाको एक अलौकिक प्रसन्नता प्रदान कर देती और शायद मानवके दुःख दर्दों और पीड़ाओंका भार हलका कर देनेकी क्षमता भी रखती है, ठीक उसी तरह मेरी रेखा भी मुझे प्रसन्नता प्रदान कर रही है—रेखा! हां, मेरे जीवनकी रेखा!'

'मालूम पड़ता है, आप कुछ दिनोंमें एक अच्छे कवि हो जायंगे। लेकिन इतनी अधिक प्रशंसा करना और वह भी अपनी पत्नी की—मैं नहीं समझती कि कहां तक ठीक है।'

'ठीक हो या नहीं, मुझे इससे क्या?' शेखर कहता जाता—'मैं तो जो बात प्रत्यक्ष देखता हूं और अनुभव करता हूं, वही अपने शब्दों द्वारा व्यक्त भी करता हूं।'

'लेकिन एक बात आप भूल जाते हैं!' रेखा किसी आलोचककी तरह शेखरके पीछे हाथ धोकर पड़ जाती– 'बर्फकी जिस रेखाको आप इतना सुन्दर देख रहे हैं, उसकी यह सुन्दरता चन्द्र-ज्योत्स्ना पर ही टिकी हुई है। अंधेरी रातमें बर्फकी यही चांदी-सी रेखा अपना कोई अस्तित्व भी नहीं रखती।'

'एक दार्शनिककी तरह इन बातोंकी छान-बीन करनेकी हमें कोई जरूरत नहीं।'

'जरूरत क्यों नहीं?' रेखाने शेखरको रोकते हुए कहा- 'अभी आपने मेरी बात पूरी-पूरी तरह सुनी भी तो नहीं। मेरा मतलब था कि उसी तरह आपकी रेखा भी अपना अलग अस्तित्व नहीं रखती...वह तो आपसे ही बंधी हुई है। जिस प्रकार बर्फकी रेखाकी सुन्दरता चन्द्र-ज्योत्स्नाकी जगमगाहट पर अवलम्बित रहती है, उसी तरह...।'

'बस-बस!' इस बार शेखरने रेखाको टोकते हुए कहा— 'इसीलिए तो मैं कह रहा था कि दार्शनिक बननेकी हमें जरूरत नहीं। यदि इस प्रकार दार्शनिककी आंखोंसे हम इस दुनियाको देखने लगें, तब तो इसमें कदाचित कोई आकर्षण ही नजर न आये, मंजिल पूरी होनेके पहले ही मानव भटक जाये और अशान्तिकी आग समयके पहले ही उसे भस्म कर दे।'

एक क्षण रुककर फिर शेखर कहने लगा—'यदि हम यह सोचने लगें कि बर्फकी यह रेखा क्यों चमकती है—इसीलिये न कि चांद चमकता है। फिर तनिक आगे बढ़कर हम यह विचार करने लगें कि चांद क्यों चमकता है—इसीलिये कि सूर्य चमकता है! और इसी प्रकार एक दूसरेका सम्बन्ध देखते हुए किसी ऐसे निष्कर्षपर पहुंच जांय, जहां कोई आकर्षण ही न रह जाय, तो फिर इतना सर खपानेसे आखिर हाथ क्या लगेगा? यदि हम इस दृष्टिसे विचार करने लगें, तो इस दुनियामें सचमुच कोई आकर्षण ही न रह जायगा। आखिर नर-नारी भी एक दूसरेके प्रति क्यों आकर्षित होते हैं? उनमें भी तो रक्त-मांस और हाड़ ही रहता है न! और हर पुरुष या स्त्रीका सृजन इन्हींसे होता है। फिर क्यों हम किसी विशेष पुरुष अथवा स्त्री पर ही अनुरक्त हो जाते हैं? इसीलिये न कि जिस रूप पर हम मोहित होते हैं, उसे ही सब-कुछ समझ लेते हैं, उससे परे हम कुछ सोचना नहीं चाहते। और मैं समझता हूं, यही ठीक भी है। इससे अधिक मानवको कुछ सोचना भी नहीं चाहिये'।

और यह सुनते ही रेखा निरुत्तर—सी रह गयी, प्रयत्न करनेपर भी वह शेखर की बात अब काट नहीं सकी—उसे पराभूत कर नहीं सकी। उसे लगा कि उसके स्वामी ठीक ही तो कह रहे हैं—'हम जिस रूपपर मोहित होते हैं उसे ही सब कुछ समझ लेते हैं—उससे परे तब कुछ सोचना नहीं चाहते।'

रेखा असमंजसमें पड़ गयी इसी बातको लेकर। तो क्या उसके स्वामी उसके हृदयकी बातको अक्षरशः पढ़ चुके हैं? क्या उसके दिलमें रह-रहकर उठनेवाली पीर वे भांप चुके हैं। क्या विनोदके प्रति उसके पूर्व आकर्षणकी चर्चा इन्हें ज्ञात हो चुकी है? होना ही चाहिये—यही बात होगी यदि ऐसा न होता, तो रातको पहाड़ियोंके बीच घूमते-घूमते और बर्फकी उस चांदी-सी चमकती रेखाको लेकर वे इतनी नपी तुली-सी बात कह कैसे सकते? और यदि यही बात है, तो अब उसे अपने रुखको बदलना पड़ेगा, अपने मनोभावों पर कृत्रिमताका एक आवरण डालना होगा, और मनकी पीर मनमें ही दबाकर अपना बाह्य रूप सदा प्रसन्न रखना होगा—इतना प्रसन्न कि उसके स्वामी आश्चर्य-चकित रह जायं। यदि वह ऐसा कर सकी, तो सम्भव है, वह पुनः कभी विनोदके दर्शन कर सके और अन्तरका यह हाहाकार किसी हद तक कम कर सके, अन्यथा यह जीवन ही एक स्वप्न बनकर बीत जायगा—हां, स्वप्न-मात्र!

(२)

प्रातःवेलामें रानीखेतका प्राकृतिक सौन्दर्य अपना सानी नहीं रखता। रानीखेतको लगभग चारों ओरसे परिवेष्टित किये रहने वाली ऊंची-ऊंची पहाड़ियों पर एकत्र रहने वाली बर्फ, बाल-सूर्यकी सुनहरी किरणोंका स्पर्श कर स्वयं स्वर्ण-वर्ण हो उठती है। लगता है स्वयं सृष्टिके सृजकने ये पहाड़ियां सोनेकी बड़ी-बड़ी चट्टानोंसे आच्छादित कर रखी हैं।

इन्हीं दृश्योंके बीच टहलते हुए रेखाने आज शेखरसे कहा—'देखिये, शामको चन्द्र-ज्योत्स्नामें चांदी-सी चमकने वाली बर्फकी ये शिलायें दिनमें सोनेकी बनकर चमक रही हैं।'

'हां, रेखा!' शेखरने कहा—'लेकिन क्या तुम कह सकती हो कि बर्फके इन दो रूपोंमेंसे तुम्हें कौन-सा अधिक आकर्षक लगता है—चांदी-सा चमकने वाला या स्वर्ण सा दीप्त होने वाला?'

'दोनों स्वरूप असाधारण हैं।' रेखाने कहा।

'यह मैं कैसे मान लूं, रेखा!' शेखरने गम्भीर होते हुए कहा—'दुनियामें ऐसा शायद सम्भव नहीं। कोई भी

एक रूप हमें—मानवको—अपेक्षाकृत अधिक मोहक प्रतीत होता है।'

'लेकिन मैं ऐसा नहीं मानती।' रेखाने कहा—'यह देखिये सड़कोंके पार्श्वमें खड़े हुए चीड़के ये सुन्दर वृक्ष, जो अपनी मादक व स्वास्थ्य-वर्द्धक सुगन्धसे मानव-मात्रको मस्त बना देनेकी क्षमता रखते हैं, क्या कम सुन्दर हैं?'

'यह तो मैं कहता ही नहीं रेखा!' शेखरने कहा—'और इन पहाड़ियों पर स्थान-स्थान पर, कल-कल निनाद करने वाले ये मोहक झरने क्या कम सुन्दर हैं? लेकिन मैं कहता हूं कि इन सबमें अलग अलग आकर्षण है। क्षयके किसी रोगीको जिस प्रकार इन चीड़के वृक्षोंकी यह सुगन्ध अधिक आकर्षक प्रतीत होती होगी और लाभकर भी, उसी प्रकार किसी प्रकृति-प्रेमीको ये मनोहर झरने! किसीको चन्द्र-ज्योत्स्नामें बर्फकी चांदी-सी चमकने वाली रेखा भली लगती होगी, तो किसीको प्रातः वेलामें उसी बर्फकी यह हिम-वर्ण सुन्दरता।'

'मैं आपसे बिलकुल सहमत नहीं।' रेखाने कहा—'मैं तो समझती हूं कि यदि इस रानीखेतमें इन सभी प्राकृतिक दृश्योंमेंसे कोई एकाध ही यहां होता, तो सम्भवतः रानीखेत में लोगोंको यह आकर्षण कदापि न रह जाता,जो आज है। सभी दृश्योंका असाधारण सौन्दर्य मिलकर ही तो ऐसे आकर्षणका केन्द्र बन सका है, जो मानवको बरबस मुग्ध कर लेता है।'

'तो क्या तुम कह सकती हो कि मानव पर भी यही बात लागू होती है? क्या मानव भी एकसे अधिकको मिला कर ही किसी सौन्दर्य का, किसी आकर्षणका और किसी कल्याणका छोर छू सकता है?'

'क्यों नहीं!' रेखाने कहा—'आपने कभी जो यह कहा था कि हम जिस रूप पर मोहित होते हैं, उसे ही सब कुछ समझ लेते हैं—उससे आगे, उससे परे हम कुछ सोचना नहीं चाहते—वह मानवकी संकीर्णताका ही अधिक द्योतक है। यदि आप रानीखेतके इस सम्मिलित सौन्दर्यमेंसे किसी एक को भी अलग कर दें, तो क्या इसमें वही आकर्षण रह जायगा जो आज है? और जब प्राकृतिक सौन्दर्यका यह रहस्य है, तो मानवका भी यही रहस्य है। क्या आप कह सकते हैं कि एक नारी, माता होकर अपने पुत्रको अधिक चाहती है अथवा अपने पतिको? वह तो दोनोंको ही समान रूपसे चाहेगी और इसीमें उसका कल्याण है; बल्कि ऐसा होने पर ही उस नारीकी पूर्णता है, उसकी सार्थकता है और है उसकी मानवता। यह तो मानवका दृष्टि-विग्रह है कि वह उनको मिला कर एक रूपमें देख नहीं सकता, समझ नहीं सकता और शायद स्वार्थवश सहन नहीं कर सकता। और इसीलिए मैं कहती हूं कि इस समताके अभावमें, इस सहिष्णुताके अभावमें मानव सदा परेशान रहता है—सच्चे सुखको वह कभी छू भी नहीं पाता।'

'तुम ठीक कहती हो रेखा!' शेखरने कहा।

यही बात-चीत चल रही थी कि घूम कर अपने डेरे पर वे वापस पहुंच गये।

(३)

रेखाके इन उदात्त विचारों पर शेखरको आश्चर्य हो रहा था। सदा अपने-आपमें खोयी-सी रहने वाली रेखाकी महानताका उसे जैसे अब तक कोई पता ही नहीं था। आज उसने जाना कि रेखा नामकी इस नारीके अन्दर विश्व-बन्धुत्वका स्रोत उमड़ रहा है। वह जैसे मानव-मात्रको अपने निकटका प्राणी समझती है और इसीमें मानवकी मानवताका वह अनुभव करती है।

रेखाके ये विचार केवल विचार ही नहीं थे, जो उसके मानस-तटपर ही जल-लहरोंकी तरह उठते-गिरते और टकराते रहते हों, बल्कि कार्य रूपमें भी वे जब-तब प्रकट होते रहते हैं। उस दिन जब रेखाके साथ शेखर पहाड़ों पर आ रहा था, तब ट्रेन पर एक गरीब दम्पतिके टिकट कलेक्टर द्वारा सताये जाने पर इसे कितना क्षोभ हुआ था। क्षोभ ही क्यों, बल्कि उसके लिये चुपचाप अपने टिकटोंका दानकर इसने उस टिकट-कलेक्टरका मुंह बन्द कर दिया था और उसके अभद्र व्यवहारका जैसे एक करारा जवाब देकर उसे भी शायद मानवताका पाठ इसने पढ़ा दिया था। उसकी पत्नी—यह रेखा—जब इतनी महान् है, तब उस पर ग्रामोफोनके एक रेकार्ड-जैसी तुच्छ चीजको लेकर—एक तरुण द्वारा विवाहके समय दी गयी एक भेंटको लेकर—शेखरने जो कुछ सोचा था, विनोदके प्रति रेखाके आकर्षणकी जो आशंका की थी, वह सब निश्चय ही एक नगण्य-सी बात होनी चाहिये।

फिर उसे लगा कि यदि यह बात इतनी नगण्य है, तो फिर रेखा इतनी उन्मन-उन्मन-सी क्यों रहती थी। वह भी कुछ दिन नहीं, कुछ सप्ताह नहीं; प्रत्युत दो महीनों तक लगातार क्यों इतनी उदासीन-सी बनी रही? शेखरके मनने फिर पलटा खाया और उसे लगा कि इस उदासीनताका कुछ गहरा रहस्य अवश्य होना चाहिये और इसी रहस्य

को समझ लेनेके लिये, आज जब रेखा सदाकी अपेक्षा अधिक प्रसन्न नजर आयी, तब शेखरने इतने दिनोंसे हृदयमें उमड़-घुमड़कर छायी रहने वाली बात प्रकट करनेका साहस अपने-में पाया। उसने संध्या समय चाय पीते हुए कहा—'रेखा! आज एक बात तुमसे पूछना चाहता हूं?'

'पूछिए न!' रेखाने मुस्कराते हुए कह दिया।

'तुम बुरा तो न मान जाओगी?'

'यह आप क्या कहते हैं!' रेखाने साश्चर्य कहा।

'लगातार इतने दिनों तक तुम जो उदासीन बनी रहीं, क्या उसका कारण बतला सकती हो?'

क्या कीजियेगा यह पूछ कर!'

'यह देखो, शायद तुम्हें दुःख हुआ न? इसीलिये मैंने पहले ही कहा था कि यदि तुम बुरा न मानो, तो मैं पूछूं।'

'सो बात नहीं।' रेखाने कहा—'बुरा मुझे बिलकुल नहीं लगा। दुख भी नहीं हुआ।'

'तो फिर बतलाओ न, क्या बात है?'

'सामाजिक आदर्शोंकी ओटमें मानवका पाखण्ड!'

'पाखण्ड!' साश्चर्य शेखरने दोहराया।

'हां, पाखण्ड!' रेखा कहती रही—'जो किसी कुमारी का बाल साथी रहा हो, सजातीय रहा हो और रहा हो जीवन-साथी बननेका उम्मीदवार भी, वही यदि ऐन वक्त पर दहेजके नाम पर स्वयं न सही, लेकिन अपने पिता द्वारा इतने धनकी मांग कर बैठे, जिसे दे सकनेमें कुमारीका पिता सर्वथा असमर्थ हो, तब इसे हम पाखण्ड नहीं, तो और क्या कहेंगे?

'लेकिन इसमें' शेखरने कहा—'मैं उस लड़केका दोष नहीं समझता। आजका तरुण इतना विवश है कि यदि वह अपने पिता अथवा अभिभावक द्वारा ठुकरा दिया जाये, तो कहींका न रहे। पढ़ना-लिखना और डिग्रियां हासिल कर लेना ही सब-कुछ नहीं। इनके बल पर दुनियामें वह रह नहीं सकता; अपना निर्वाह भी नहीं कर सकता। इसीलिये उसे पिताके समक्ष झुकना पड़ता है।'

'यह बात मैं बिलकुल नहीं मानती। यदि वह चाहे तो सब-कुछ कर सकता है। और यदि वह यह सब नहीं कर सकता, तो उसे पहलेसे ही सतर्क क्यों न रहना चाहिये? क्यों उसे किसी कुमारीको अपनी पत्नी बनानेका स्वप्न देखना चाहिये? क्यों उसे बड़े-बड़े सब्ज बाग देखना चाहिये? और जब वह यह सब करता है, लेकिन फिर भी ऐन वक्त पर अपने पिताके समक्ष झुक कर रह जाता है; लड़की और लड़कीके पिताको परेशानियोंमें डालकर चुप रह जाता है, तो इसे हम उसका पाखण्ड नहीं, तो और क्या कहें?'

'समझा, रेखा?' शेखरने कहा—'तो यही सब किया था किसीने तुम्हारे साथ। विवाहके समय हरित मण्डपमें तुम्हें ग्रामोफोनका रिकार्ड भेंटमें देने वाले तरुणने ही शायद तुम्हें ठगना चाहा था?'

'हां, आपके शब्दोंमें उस तरुण—विनोदने नहीं, बल्कि विनोदके पिताने।' और अचानक गीली हो पड़ने वाली आंखोंको, आंचलके एक छोरसे पोंछती हुई रेखा कुरसी परसे उठ कर एक ओर जाकर खड़ी हो गयी, और उस क्षितिज पर उसकी दृष्टि जा टिकी, जहां अस्त होते हुए सूर्यकी पीली किरणोंका निष्प्रभ प्रकाश, इस पृथ्वीको सिसक-सिसक कर अपने बीते वैभवकी एक कहानी सुना रहा था।

मनुष्य और पशुमें क्या अन्तर है ?

श्री भगवान दास केला

मनुष्यकी पशुसे तुलना करना और इन दोनोंके अन्तर पर विचार करनेका विषय ऐसा है, जिससे मनुष्यके ज्ञान और प्रतिष्ठामें धक्का-सा लगता है। परन्तु केवल इसी कारण इस विषयका विवेचन अनुचित नहीं कहा जा सकता, खासकर जब कि यह बहुत मनोरंजक ही नहीं, शिक्षाप्रद भी है। हम प्रायः यह भूल जाते हैं कि मनुष्य भी एक पशु है, चिरकाल तक वह पशुओंकी तरह रहा है। अब भी उसमें पशुपन मौजूद है, हां किसी-किसी मनुष्यमें पशुपन इतना कम है कि प्रायः दूसरोंको उसका सहसा अनुभव नहीं होता। परन्तु इन आदमियोंमेंसे भी बहुतोंका पशुपन सामाजिक वातावरण आदि बाहरी कारणोंसे दबा रहता है। ऐसे अवसर उपस्थित हो सकते हैं, जब बाहरी कारणोंका जोर नहीं रहता और आदमी अपने पशुपनको छिपा नहीं सकता, अथवा यों कहें कि छिपानेका विचार या प्रयत्न ही नहीं करता।

अस्तु, एक समय ऐसा रहा है—यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता कि यह कब या कितने लाख वर्ष पहले की बात है—जब आदमी पशुओंकी तरह जीवन व्यतीत करता था। वह नग्न अवस्थामें कन्दराओं या गुफाओंमें या पेड़ोंकी छायामें रहता और कुदरती तौरपर पैदा होने वाले कन्द मूल-फल या पत्ते आदि खाता था, या छोटे-छोटे कमजोर जानवरोंका शिकार करता था। वह भी एक पशु था और उसे अपने भोजनके लिये दूसरे पशुओंसे लड़ना-झगड़ना पड़ता था। पुराने जमानेके आदमियोंके ढांचोंको देखनेसे मालूम होता है कि उस समय आदमी और वनमानुषकी शारीरिक बनावटमें खास फरक नहीं था। ऐसा अनुमान किया जाता है कि उस समय आदमीके बड़े-बड़े नाखून थे, और शरीरपर बड़े-बड़े बाल थे। वह जङ्गलोंमें पेड़ोंपर रहता था। कमजोर होनेके कारण वह जङ्गली जानवरोंसे बहुत डरता था। रीछ, शेर, चीता आदि बड़े बड़े शिकारी जानवर तो उसे अपना शिकार ही बना लेते थे। जङ्गली गाय, भैंस, घोड़ा आदि भी उसे अनेक बार मार डालते थे। इनके डरके मारे आदमी गुफाओंमें घुस जाता था, या पेड़ों पर चढ़ जाता था। अपनी रक्षा करनेका उसके पास और कोई उपाय न था। इन जानवरोंका मुकाबला करनेके लिये उसका पहला काम मिट्टी या पत्थर का डला या लकड़ीका छड़ा उठाना था। यही उसका पहला हथियार था। आदमी कोई चीज अपने हाथमें इसलिये उठा सकता है कि उसके हाथकी बनावट इस तरह की है कि अंगूठा अंगुलियोंके सामने आ सकता है। हाथकी ऐसी बनावट आदमीकी एक खास विशेषता है। * यह ठीक है कि बन्दर या बनमानुष भी हाथ वाले पशु हैं और वे भी कोई चीज पकड़ने, उठाने या फेंकनेका काम कर सकते हैं। परन्तु शुरूसे ही आदमी और बन्दरमें एक फरक है, आदमीमें विवेक और बुद्धि भी है। अपने डण्डेको पत्थरकी मददसे ऐसा कर लेता है कि उसे पकड़नेमें सुभीता हो, और उसकी नोक तेज हो जाय या उसका दूसरा सिरा खूब मोटा रह। इस तरह आदमी अपनी बुद्धिसे डंडेको बर्छी आदिका रूप दे सकता है, और उसे अच्छा, अधिक उपयोगी हथियार बना सकता है। बन्दर अपनी कुदरती हालतमें (यानी जबतक उसे खास तौरसे सिखाया न जाय) यह काम नहीं कर सकता।

आदमीके हाथका इस्तेमाल शुरूमें खास तौरसे पेड़ोंपर चढ़नेमें ही होता था। पेड़पर चढ़कर वह जङ्गली जानवरोंसे सहज ही अपनी रक्षा कर लेता था, और पेड़ोंके फल आदि खाते रहनेकी हालतमें उसे भोजनके लिये भी विशेष मेहनत नहीं करनी पड़ती थी। किन्हीं कारणोंसे आदमीने पेड़ोंपर रहना छोड़ा, या वह छोड़नेको मजबूर हुआ। इससे उसका हाथ तरह तरहके काम करनेके लिये मुक्त हो गया। पेड़ोंपर निवास छोड़ने पर जब आदमी ज्यादातर जमीनपर रहने लगा, तो उसकी जिन्दगीमें भारी हेर-फेर हुआ। जङ्गली जानवरोंसे अपनी रक्षा करने और अपने गुजारेके वास्ते शिकार करनेके लिये आदमीको चतुराई, चालाकी, साहस सहनशीलता आदिकी बहुत जरूरत होने लगी। उनके

---

* शरीरकी बनावटकी दृष्टिसे आदमीमें और भी कुछ विशेषताएं हैं, मिसालके तौर पर उसकी पीठकी हड्डी ऐसी है कि वह बड़ा होनेपर दो पांवोंके सहारे बिलकुल सीधा खड़ा होकर चलता है और उसकी निगाह सामने रहती है। पशुपक्षी प्रायः ऐसा नहीं कर सकते।

लिये इन बातोंमें पशुओंसे बढ़ना निहायत जरूरी था, और इन गुणोंको आदमीने बहुत कुछ पशुओंसे सीखा है।

पहले कहा गया है कि आदमीमें जानवरोंकी तुलनामें एक विशेषता है, आदमीमें बुद्धि, अक्ल या तर्क शक्ति होती है, जिससे वह सोचता विचारता है, नयी-नयी बातें सीखता है, आविष्कार या ईजाद करता है। यहां यह याद रखनेकी बात है कि जानवरोंमें भी एक प्रकारकी बुद्धि होती है, जिसे सहज ज्ञान, स्वाभाविक बुद्धि या पशु बुद्धि (इन्स-टिंक्ट) आदि कहते हैं। इस सहज ज्ञानके कारण जानवर जल्दी ही अपनी मां से जुदा रहनेके योग्य हो जाते हैं, वे अपने निर्वाहकी व्यवस्था करते हैं। वे ऐसे ही घास, फल, कन्द-मूल आदि खाते-पीते हैं कि उनका स्वास्थ्य ठीक बना रहे। अपनी स्वाभाविक अर्थात जङ्गली दशामें रहते हुए वे बहुत ही कम बीमार होते हैं और यदि संयोगसे कभी बीमार पड़ते भी हैं, तो स्वयं अपना इलाज कर लेते हैं। वे अपने खाने-पीनेमें ऐसा परिवर्तन या कमी कर देते हैं कि उनका रोग दूर हो जाता है। विशेषज्ञोंका कथन है कि कुछ जङ्गली चिड़ियां अपनी टूटी हड्डीको दुरुस्त कर लेती हैं। उन्हें यह मालूम रहता है कि किस ऋतुमें कैसी जगह रहना ठीक होगा। कितने ही पक्षी ऐसे होते हैं कि वे सालके कुछ महीने एक जगह और कुछ महीने दूसरी जगह चले जाते हैं। ये पक्षी अपने आप आवश्यकतानुसार एक स्थानसे दूसरी जगह चले जाते हैं। अजगर, मगर आदि कुछ जानवर कई-कई महीने तक गाढ़ी निद्रामें सोये रहते हैं। निदान, उन्हें इस बातका स्वयं ही काफी ज्ञान होता है कि स्वास्थ्य रक्षाके लिये क्या कार्य करना चाहिये, क्या खाना चाहिये, और किन बातोंसे परहेज करना चाहिये। मुर्गीका बच्चा जरा सा होता है, तभी वह अपने खाने पीनेका प्रबन्ध कर लेता है। जलचर जीवोंके बच्चे अपने खोलमेंसे निकलते ही पानीमें कूद पड़ते हैं; और मजेसे तैरने लगते हैं। इस तरह पशु-पक्षी अपनी सहज बुद्धिसे बहुत जल्दी स्वावलम्बी हो जाते हैं। लेकिन इसके साथ यह बात भी है कि पशु-पक्षी जैसे हजारों वर्ष पहले थे, बहुत कुछ उसी हालतमें आज भी हैं, वे कुछ आगे नहीं बढ़े हैं। और छोटी व बड़ी उम्रके पशुमें सिवाय शारीरिक शक्तिके और कोई फर्क नहीं है। इसके मुकाबलेमें, आदमीकी सन्तान आरम्भमें बहुत असमर्थ होती है, वह उनसे डरती रहती है, और यदि वह अपनी बुद्धिका विकास और उपयोग न करे, तो वह बहुतसे पशु-पक्षियोंसे सहज ही पराजित हो जाती है। लेकिन आदमी की बुद्धि और शक्तिका विकास और वृद्धि होती रहती है। यही कारण है कि आदमीके बच्चे और जवान आदमीमें तथा हजार वर्ष पहले और इस समयके आदमीमें बहुत फरक होता है, जिसे सभी जानते हैं। इससे साफ जाहिर हो जाता है कि आदमीकी पशुसे क्या विशेषता होती है।

इस विशेषताका ही यह फल है कि आदमी, जो कि शुरू में जानवरोंसे बहुत डरता रहता था, और अकसर उनका शिकार हो जाता था, धीरे धीरे पशुओं पर विजय पानेमें बहुत कुछ सफल हो गया है। अब वह न केवल बड़े बड़े जङ्गली और मांसाहारी जानवरों तकका शिकार कर सकता है, बल्कि उन्हें पाल कर उनसे तरह-तरहके काम ले सकता है। इस बातका खुलासा विचार पीछे किया जायगा। यहां इस बातकी ओर ध्यान दिलाना है कि किस तरह आदमी जानवरोंको अपने वशमें कर सका है। आदमीके दांत और नख आदि ऐसे तेज और मजबूत नहीं थे, जैसे शेर-चीते आदिके होते हैं। उसने उस कामके लिये लकड़ी-की छड़ी ली। उसकी नोक तेज की या सिरे पर चकमक या दूसरा कड़ा पत्थर लगाया, पीछे उसने इससे धनुष या कमानके जरिये दूर तक वार करना सीख लिया। कुछ और समय बीतने पर आदमीने तोप और बन्दूकसे ऐसा काम लेना शुरू कर दिया कि उसके सामने जानवरोंके दांत नख और पंजे सब बेकार हो गये।

हाथोंकी बात लीजिये। कुदरती हालतमें आदमीके हाथ कुछ मजबूत न थे। उसने औजारोंके जरिये हाथोंकी ताकत बढ़ायी, पीछे जब उसने औजारोंको मशीनमें लगा लिया और मशीनको भाप या बिजली आदिसे चलाने लगा तो उसके हाथका बल सहस्रों गुना बढ़ गया। इसी तरह पावोंकी बात है। आदमीकी टांगे ऐसी मजबूत न थीं जैसी घोड़े या हिरनकी होती हैं। वह मछलीकी तरह तैर भी नहीं सकता था। आदमीने अपने लिए मानो कृत्रिम या बनावटी पैर बना लिये। मोटर-रेल और किस्ती या जहाजसे वह खुश्की और तरीपर इतना तेज चल सकता है कि उसकी टांगे कमजोर होने का अब सवाल ही नहीं उठता।

आदमीके, पक्षियोंकी तरह पर नहीं थे, जिनसे वह उड़ सके, पर अब आदमी हवाई-जहाजमें बैठकर इतना तेज उड़ सकता है कि कोई पक्षी उसका मुकाबला नहीं कर सकता। और समाचार या संदेश भेजनेमें अजबकी उन्नति हुई है। इच्छा होते ही बिजलीके जरिये हजारों लाखोंमील दूर संदेश

भेजा जा सकता है। फिर,आदमी अब बात-चीत करता है। वह जानवरोंकी तरह चिल्लाने वाला या कुछ इशारा करने वाला नहीं रहा।

इस तरह आदमीने हर प्रकारसे अपनी उन कमियोंको पूरा कर लिया, जो उसमें जानवरोंके मुकाबले थीं। यही नहीं, अब वह हर एक बातमें जानवरोंको पीछे छोड़ आया है और बहुत आगे बढ़ गया है। यह सब इसलिए हो सका है कि उसमें उनकी अपेक्षा कुछ विशेषतायें हैं। वह अपना विकास कर सकता है, पशुओंमें वह बात नहीं है।

अपनी बुद्धिसे काम लेते रहनेके कारण, आदमीका दिमाग क्रमशः बढ़ता गया है। उसे अब शारीरिक शक्तिकी आवश्यकता कम रह गयी। उसका प्रभाव उसके शरीर और प्रकृतिपर पड़ा। उसने सर्दी-गरमीसे बचनेके लिए मकान बनाये और पेड़ोंकी छाल या जानवरोंके खालकी पोशाक बनायी। इसमें उसे बालोंकी जरूरत न रही और वे धीरे धीरे कुछ पीढ़ियोंमें उड़ गये। इसी तरह आदमीने जंगली जानवरोंसे बचने और उनका शिकार करनेके लिए हथियार बनाये तो आदमीको बड़े-बड़े और मजबूत नाखूनोंकी जरूरत न रही, इसलिए वे छोटे और कमजोर होने लगे। इसी तरह आदमीके दूसरे अंगोंमें भी परिस्थितिके अनुसार परिवर्तन होता रहा। यह अनुमान किया जाता है कि जब आदमी भविष्यमें अपने अंगोंसे काम लेना और कमकर देगा और हर कामके लिए यन्त्र बनानेमें बुद्धि लगाता रहेगा तो कभी ऐसा समय आना स्वाभाविक है, जब कि आदमी के हाथ-पांव आदि बहुत कमजोर होंगे, शरीर छोटा होगा और दिमाग या सिर बहुत बड़ा होगा।

पाठकोंने ऐसे चित्र देखे होंगे। अभी तो वह केवल कल्पना है; पर उसका सत्य हो जाना स्वाभाविक है। बुद्धि के सहारे आदमी अपनी व्यक्तिगत उन्नति करनेके अतिरिक्त अपना संगठन करता है, और सामाजिक उन्नतिमें योग देता है। यह ठीक है कि चींटियाँ, दीमक या शहदकी मक्खियां आदि भी संगठन कार्यमें बहुत कुशल हैं, परन्तु उनका संगठन जैसा सैकड़ों-हजारों वर्ष पहले था उसी तरह अब भी होता है। उसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। उसके विपरीत आदमी समय-समयपर अपने संगठनमें प्रगति करता रहा है।

इसी तरह इच्छाओं और प्रवृत्तियोंकी बात है। ये तीन तरहकी होती हैं। भारतीय शास्त्रकारोंने इन्हें 'एषणा कहा है—वित्तैषणा यानी धन या द्रव्यकी चाह, दारैषणा या पुत्रैषणा यानी स्त्री पुत्रकी चाह,और लोकैषणा यानी कीर्ति या ख्याति पानेकी चाह। ये तीनों इच्छाएं जैसी मनुष्यमें हैं, वैसी पशुओंमें पायी जाती हैं। मनुष्य और पशु दोनो इन बातोंमें अपनी उन्नति, वृद्धि या विस्तार चाहते हैं— धन सम्पत्तिमें वृद्धि, परिवारमें वृद्धि, यश और प्रसिद्धिमें वृद्धि। विचार करने पर मालूम होता है कि इन इच्छाओंका कहीं अन्त नहीं है। प्राणी यही चाहते रहते हैं कि कुछ और मिले। कुछ और की मांग कभी समाप्त नहीं होती। इन इच्छाओंको पूरा करनेमें कुछ पशुओंका ढंग मनुष्यसे अच्छा है, यहांतक कि उन बातोंमें आदमी उन पशुओं को अपना आदर्श मानता है। वह उसका अनुकरण करनेकी कोशिश कर रहा है। लेकिन इसके साथ ही यह भी तो बात है कि आदमी इस विषयमें भी धीरे धीरे प्रगति कर रहा है। यद्यपि इस समय पशु पक्षी मनुष्यसे आगे हैं, यथापि यह आशा की जाती है कि जबकि पशु-पक्षी अपनी वर्तमान स्थितिसे आगे बढ़नेवाले नहीं हैं, मनुष्य प्रगति करते-करते कभी न कभी न केवल पशुओं तक पहुंच जायगा वरन इनसे आगे भी बढ़ सकेगा।

फिर जब कि पशु पक्षी अपनी इच्छाओंकी पूर्त्तिमें लगे रहते हैं, आदमी यह भी विचार करता है कि जितनी इन इच्छाओंकी पूर्ति की जायगी, उतनी ही वासनायें बढ़ती जायेंगी; जीवन अधिक चिन्ता और दुखमें बीतेगा। धीरे-धीरे, बहुधा अनेक दुखोंको भोग लेने पर आदमी सोचता है, क्यों सर्वत्र दुख ही दुख है। क्या धन-सम्पत्ति, दारा, सुत, परिवार, कीर्त्ति और यश सब दुख ही देने वाले होते हैं? सुख कैसे मिले? और सुख वास्तवमें है क्या चीज? आदमीको दुख क्यों मिलता है, इससे निवृत्ति कैसे हो? मुझे कौन-कौन सा कार्य करना चाहिये और कौन सा कार्य नहीं करना चाहिये। जिन कामोंको मैं कर रहा हूं, जिन जिन बातोंका मैं विचार कर रहा हूँ, वे कहां तक ठीक हैं, और कहां तक ठीक नहीं हैं? अपने कर्त्तव्य या धर्मके विषयमें इस तरहका सोच-विचार, तर्क-वितर्क करना मनुष्यकी विशेषता है। अन्य प्राणियोंमें यह बात नहीं पायी जाती।

इस प्रसंगमें संस्कृत कविकी वह युक्ति याद आती है, जिसका अर्थ यह है कि खाना-सोना, भय और मैथुन या काम वासना ये चारों बातें मनुष्यमें और पशुओंमें समान रूपसे पायी जाती हैं,मनुष्यमें धर्म ही विशेष है, बिना धर्मके मनुष्य भी पशु ही है। मनुष्य यह सोच सकता है, कि

क्या काम करने योग्य हैं, वह अपनी भूल या गलतीपर विचार करके, आगेसे उसे न करनेका निश्चय कर सकता है, वह यह सोच सकता है कि कौन सा सुख क्षणिक है, और कौन सा स्थायी। इस तरह वह अपनी इन्द्रियोंको वशमें करके अपनी शक्तिको दूसरोंके हित - साधनमें लगा सकता है, वह न केवल सब आदमियोंमें, वरन् पशु पक्षियों तक में अपनेपनका अनुभव कर सकता है। वह अपना जीवन विश्व-कल्याणके हितमें लगा सकता है। यह ठीक है कि उसके मनमें शंकाएं उठती हैं। वह तर्क-वितर्क करता है, उससे अनेक गलतियां होती हैं। लेकिन वह इन बातोंसे लाभ उठा सकता है, और धीरे - धीरे अपना सुधार या विकास कर सकता है। जानवर गलती नहीं करते, जो बातें वे बचपनमें करते हैं, वे ही बड़े होने पर करते हैं, और जिन बातोंको उनकी एक पीढ़ी करती है, उसीको दूसरी, तीसरी, चौथी पीढ़ी करती है। यहां तक कि सैकड़ों-हजारों वर्ष बाद भी उनके कामोंमें विशेष अन्तर नहीं आता। अनेक कीट-पतङ्ग दीपशिखाको देखकर जिस तरह पहले अपने प्राण गंवाते थे, उसी तरह अब भी गंवाते हैं। सांप सपेरेकी बीनकी आवाज सुनकर पकड़े जाते हैं, भौंरा कमल के रसका आनन्द लेते-लेते उसमें फंसा रह जाता है। इस तरह अनेक जानवर केवल एक ही इन्द्रियके वशीभूत होकर अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठते हैं। आदमी पर तो पांच इन्द्रियोंकी प्रभुता हो सकती है। यदि वह विवेक-बुद्धिसे काम न ले, उन्हें वशमें न रखे, तो उसकी गुजर कैसे हो। लेकिन सौभाग्यसे आदमी यह समझ सकता है कि इन्द्रियों-के भोगों यानी विषय-वासनाओंके पीछे दौड़ना मूर्खता है। यह समझ कर वह इन्द्रियोंकी दासतासे छुटकारा पा सकता है। यह ठीक है कि अधिकांश आदमी अभी तक इसमें सफल नहीं हुए हैं, लेकिन इसका कारण यह है कि उन्होंने इसके लिये सच्चा और दृढ़ प्रयत्न नहीं किया है। कोशिश करने पर आदमीको कामयाबी अवश्य मिलेगी। निदान, विवेकशील आदमी बीते हुए कलकी भूल पर आज प्रायश्चित्त करता है, और बचपनकी गलतियोंको बड़े होनेपर छोड़ देता है, और हर एक पीढ़ी पिछली पीढ़ियोंके काम और विचारों से शिक्षा लेकर आगे बढ़ती है; भौतिक जगतमें ही नहीं, मानसिक-आध्यात्मिक जगतमें भी। यही प्रगतिशीलता मनुष्यकी विशेषता है, मनुष्य और पशुमें विशेष अन्तर है।

—:*:—

पेट्रोलियम

श्री ज्वालाशङ्कर भट्ट

युद्धके इन महत्वपूर्ण दिनोंमें विश्व तेलका तीव्र इच्छुक रहा है। दाहक इञ्जिनोंकी बढ़ती हुई परिष्कृत संख्या तथा युद्धमें इसके महत्वपूर्ण कार्योंने पेट्रोलियमको बरबस युद्धका सहायक और समर्थक बना दिया है। बड़े-बड़े अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और स्वयं राष्ट्रोंने भी तेलपर एकमात्र आधिपत्य जमानेके लिये गुपचुप प्रतिद्वन्द्विताकी अनेकों लड़ाइयां लड़ी है। अतः यह प्रकट है कि तेल सम्बन्धी नीतिने एक असाधारण अवस्था उत्पन्न कर दी है। इसमें सन्देह नहीं कि हिटलर "आर्यों को निवास-स्थान चाहिये" कह कर ही रूसके प्रसिद्ध तेल क्षेत्र बाकूपर अपना अधिकार कर लेना चाहता था।

युद्धके इन पांच वर्षोंमें सतर्कता पूर्वक अधिकसे अधिक तेल स्रोतोंका पता लगाकर और उनसे तेल निकाल कर पेट्रोलियमकी ऐसे ऊंचे दरसे बिक्री हुई है जिसकी कल्पना भी आजके पहले नहीं की गयी होगी। पेट्रोलियमके इस बेप्रमाण खर्चसे आजकल यह चर्चा जोर पकड़ गयी है कि इसी तरह यदि पेट्रोलियम खर्च किया जाता रहा तो वह दिन दूर नहीं जब संसारमें केवल पेट्रोलियमका नाममात्र ही शेष रह जायगा। उसके एक बूंदके भी दर्शन दुर्लभ हो जायेंगे। ऐसी स्थितिमें हमें यह भी देखना है कि पेट्रोलियमके विषयमें विज्ञान क्या कहता है? किस तरह की पेट्रोलियमका मिलना अब सम्भव रह गया है और इस काल्पनिक युद्धके बाद इसका क्या और कैसे उपयोग होगा।

शीघ्रतापूर्वक हमारा यह सोचने लग जाना कि भू-गर्भ से उत्पन्न पेट्रोलियमके सामने कोयलेकी महत्ता अधिक है कुछ अंशोंमें एकदम सही नहीं है क्योंकि बूढ़े समुद्रकी जिन्दगीसे पृथ्वीका जीवन बड़ा और महत्वपूर्ण नहीं समझा जा सकता। हमारे अनुमानसे भी अधिक पेट्रोलियम मिलने

के साधन समुद्री किनारेके पहलदार चट्टानोंमें पाये जाते हैं। पार्कर रैस्क और उनके सहयोगियोंने इन पहलदार चट्टानोंका अध्ययन करते हुए यह बतलाया है कि जमीनके भीतर छत्र समुद्रके तलमें इन चट्टानोंका वजन पहलेकी अपेक्षा ३९ प्रतिशत अधिक बढ़ गया है और ये पहलेकी अपेक्षा अपने स्थानसे १० प्रतिशत ऊपर उठ आये हैं। इस विषयका गहनसे गहनतर अध्ययन करनेके बाद यह पता लग पाया है कि समुद्री किनारेके चट्टान समुद्रके तलमें बैठे हुए पहलदार चट्टानोंसे भी अधिक महत्वपूर्ण होते हैं।

पृथ्वीकी सारी जमीनका माप ६ करोड़ वर्ग मील है। इस क्षेत्रके तिहाई हिस्से या २ करोड़ २० लाख वर्ग मीलमें इन पहलदार सामुद्रिक चट्टानोंका विस्तार है। बकिये २ करोड़ २२ लाख वर्गमील के ६० लाख वर्गमीलमें ऐसे सर्वोत्कृष्ट पहलदार सामुद्रिक चट्टान है जिसमें प्रथम श्रेणीके पेट्रोलियम मिलेंगे। विज्ञानाचार्योंके मतानुसार इस ६० लाख वर्गमील भूमिपर ही अगर हम अपनेको आश्रित किये रहे तो हमें भविष्यमें संकटोंका सामना करना पड़ेगा। कारण यह ६० लाख वर्गमील जमीन तेलके व्यापारियोंकी आंखोंमें समा चुकी है और वे इसे अपने हाथसे बाहर किसी भी हालतमें नहीं जाने देंगे। ऐसी स्थितिमें बची हुई १६० लाख वर्गमील जमीनका उपयोग जिसमें पहलदार चट्टानोंकी बेशुमार संख्या है, नवीन साधनों द्वारा किया जायगा और ६० लाख वर्गमीलमें उत्पन्न होनेवाले पेट्रोलियमको आनन-फानन मातकर दिया जायगा। तेलके व्यवसाइयोंकी जमीनसे उत्पन्न होनेवाले पेट्रोलियमके सामने इस उत्पन्न होनेवाले पेट्रोलियमकी तुलना करना केवल काल्पनिक प्रयास है जिसे सत्यसे कोई सम्बन्ध नहीं।

पृथ्वीके समस्त कोयलेमें अधिकसे अधिक जितना पेट्रोलियम पाया जा सकता है उससे २०० गुना अधिक पेट्रोलियम इन सर्वोत्कृष्ट पहलदार चट्टानोंमें निहित है। इन भू-गर्भस्थ खजानोंमें यान्त्रिक उपयोगके इस साधनमें से १ प्रतिशतका आधा भी यदि छोड़ दिया गया होता तो आज पेट्रोलियम और कोयलेकी उत्पत्तिमें समानता होती और यदि १० प्रतिशत पेट्रोलियम बचाकर इन्हीं स्थानोंमें रख दिया गया होता तो आजके हमारे समस्त पेट्रोलियमके आविष्कारसे ५० गुना अधिक पेट्रोलियम हमारे लिये शेष बचा रह गया होता।

चाहे जिस तरह हो पेट्रोलियमको आत्मसातकर लेनेकी प्रवृत्ति तो तेल श्रोतके मुंहपर ताला लगा देने जैसा है और जबतक युद्ध और युद्ध करते रहनेके बुरे विचार बुरी तरह कुचल नहीं दिये जाते तबतक उत्पादनकी उन्नतिकी प्रतिज्ञा बेकार होगी। फिर भी युद्धोत्तर विश्वके पुनर्निर्माणमें पृथ्वीके हजारों हजार फीट नीचे छिपे हुए इन वस्तुओंका पता लगानेमें हवाई कैमेरे अधिक उपयोगी सिद्ध होंगे। अबतक इन हवाई कैमरोंका काम केवल शत्रुके गुप्तसे गुप्त स्थानोंका पता लगा लेने भरका ही रहा है पर युद्धोपरान्त भूगर्भस्थ इन अनमोल वस्तुओंका आसानीसे पता लगा लेना इन हवाई कैमरोंका ही काम होगा। प्रो० ई० विलार्ड० मिलर आजकल अमेरिकामें युद्धोपरान्त होनेवाले कार्योंकी रूप-रेखा तैयार कर रहे हैं। उनके मतसे हवाई कैमरे द्वारा नक्शा तैयार करनेमें घण्टे दो घण्टेमें जैसी सम्पूर्ण सफलता मिलेगी वैसी सफलता जमीन देखकर नक्शा तैयार करनेमें महीनोंके दिमागी परिश्रमके बाद भी नहीं मिल सकती क्योंकि बहुत सी महत्वपूर्ण वस्तुएं नक्शा बनाते समय मनुष्यके दृष्टिपथसे ओझल हो जासकती है पर हवाई कैमरे द्वारा चित्र लेते समय सभी चीजोंका नक्शेमें आ जाना स्वाभाविक है। जमीनके भीतर छिपी हुई वस्तुको जाननेके भिन्न-भिन्न तरीके हैं। खनिज पदार्थोंका पता जमीनमें चबूतरानुमा उंचाई और उसके भिन्न-भिन्न प्रकारके रङ्गोंसे लगाया जाता है। पेट्रोलियमका पता नोनी मिट्टीसे लगाया जाता है। जमीनके हजारों फीट नीचे नोनी मिट्टीके चबूतरे होते हैं। इस मिट्टीसे एक प्रकारका श्राव होता है जो अपने आसपासके चट्टानोंके ऊपर फैलकर जम जाता है तथा उसके कुछ चिह्न जमीनके ऊपर भी प्रगट हो जाते हैं। जमीनके भीतरके इन रहस्योंका पता जमीन देखकर नक्शा बनाते समय लगाना एक असाध्य साधना है पर यही काम हवाई कैमरों द्वारा आसानीसे कर लिया जाता है और जमीनके भीतरका रहस्य आपसे आप प्रकट हो जाता है।

भविष्यमें मनुष्यको आवश्यकतानुसार पेट्रोलियम मिलनेका आश्वासन वैज्ञानिकोंने एक नवीन अनुसंधानके बाद दिया है। वैज्ञानिकोंका कहना है कि भूगर्भमें ईंधनके काममें आनेवाला तेल १ करोड़ साल तक रह कर पुष्ट होता है पर उसी तेलको विज्ञानशालामें केवल ६० मिनटमें बनाकर तैयार कर देनेकी व्यवस्था कर ली गयी है। इस तैयारीके बाद भविष्यमें आवश्यकतानुसार तेलका मिलना निरन्तर जारी रहेगा। अधिक पैदा होनेवाले अन्न जिनमें कार्बोहाइड्रेट होती है, जिस जमीनकी उपज है उसमें कोयला और तेल बहुतायतसे पाये जाते हैं। अंशतः अनुमान किया जाता

है कि संसारके तीन सालके पैदावार भूगर्भ स्थित सभी तेल श्रोतोंका पता बता देगें। इस रहस्यपूर्ण खोजमें प्रधान बात यह है कि वह जाति जो प्रधानतः सोयाबीन, अलफाल्फा या सूखी घासकी खेती करती हैं अधिकसे अधिक पेट्रोलियम पायेगी। युद्ध-बाद आजकी वर्तमान तेल नीति अप्रचलित और कुत्यातिपूर्ण नीति हो जायगी तथा सभी तेल क्षेत्रोंपर अधिकार जमानेकी बात हास्यास्पद प्रतीत होगी। तब तेलका महत्व केवल साधारण उपयोगकी वस्तु भर रह जायगा, जमा करनेकी लालसा मर जायगी। विज्ञानने पेट्रोलियमके संख्यातीत उपयोगके भिन्न-भिन्न तरीके आविष्कृत किये हैं और साथही उसने कच्चे मालोंकी उत्पत्तिमें वृद्धि कर पेट्रोलियमको अनन्त कालीन उपयोगकी वस्तु बना दिया है। अब देखना यह है कि मनुष्य इन नवीन आविष्कारोंका व्यर्थके युद्धमें प्रयोग कर महाकालका खप्पर भरता है या इसे अपनी सभ्यताके विकासमें लगा कर देवताका पद प्राप्त करता है।

—:०:—

—वेश्या—

श्री लक्ष्मीनाथ श्रीवास्तव

कड़-कड़, कड़-कड़, कड़ाक-कड़ाक
तड़-तड़, तड़-तड़, तड़ाक-तड़ाक

अमरावतीके अखाड़ेमें नगाड़ेकी आवाज कोलाहल मचाए है। रह-रह कर बिजली चमक उठती है-पीली पतली-चमकीली विद्युत-रेखा। आंखोंमें चकाचौंध पैदाकर भी वह कितनी मनोहर लगती है? सीधी, तिरछी, तीर-सी भालेसी-न जाने कितनी शक्लें धारण करती है। वक्त दोपहरका है, पर बदलीके कारण काफी ठंढ़ है। हवा भी जोरोंसे चल रही है। उमड़ते घुमड़ते बादल सदलबल निकल पड़े हैं। श्वेत, श्यामके बीच न जाने कितने रङ्गोंके बादल हैं, भापके रङ्गके, धुँएँ के रङ्गके, बिल्कुल उजले, बिल्कुल काले, मटमैले भी। उनकी जमातें इधरसे उधर, उधरसे इधर दौड़ लगा रही हैं मानो किसी विशाल रेलवे-जङ्क्शनके, भिन्न-भिन्न पटरियोंपर दौड़नेवाले इञ्जन हों। बादलोंका एक तह न जाने कितने सौ मीलकी रफ्तारसे भागा जा रहा है। उससे उपरवाले सतहके बादल, जो अपनी सफेदीके कारण उमड़ते दूधके समुद्रकी तरह लगते हैं, मस्तानी-दुलकी चालमें फिसलते-से चले जा रहे हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो बिल्कुल धीरे-धीरे खिसक रहे हैं। पर सबसे मनोहारिणी छटा है उत्तर-पश्चिमके कोणसे उठकर आते काले बादलोंकी घने-काले-नीले, चले आरहे हैं, मस्तीमें झूमते-अकड़तेसे। मानो अपने सारे समूहमें वे ही सबसे अधिक शक्तिशाली हों क्योंकि और सभी बादलोंकी विपुल-राशिको भी खदेड़कर दिग-दिगन्तमें छा जानेकी उत्कट तैयारीमें लगे हैं। चले आ रहे हैं नीचेकी ओर लटकते हुए। मध्य बरसातका मौसम है। पेड़-पत्तोंके मैल धुल गये हैं। चिकने और चमकीले बनकर, नवजीवनकी स्फूर्ति पा प्रकृतिकी प्रेम-लीलामें प्रमत्त हो उठी हैं।

अंधेरेके कारण दोपहरको ही सन्ध्याका आभास हो रहा है। पर, समां बड़ी सुहावनी है, लुभावना-मनभावना दृश्य है। हवाकी हिलोरें रोम-रोमको मोदमयी सिहरनसे भर देती हैं। समग्र चेतनामें उच्छृंखल मादकताकी लहर उद्वेलित हो उठती है, और अनिवार्यरूपसे रास-रङ्गकी, प्रेम-क्रीड़ाकी, बहार लूटनेकी उत्कट लालसा चित्तको विकलकर देती है। प्रकृतिकी इस प्रेम-लीलाका पूरक, प्रकृतिकी प्रतिरूपिणी नारी ही बन सकती है, और कोई नहीं। उसके बिना सारी सभा ही अधूरी, सारहीन है। जिसकी सिर्फ आंखोंमें ही स्याही-सफेदी, तपिश और अब्र बारां हो, जिसके नयन-कोरोंकी यह सिफत कि अक्षय अमिय-हलाहल-मदके भण्डार, उसके सम्पूर्ण अस्तित्वका क्या कहना! दुर्दम आवेगसे चित्त व्याकुल हो उठता है, प्राण उन्मत्त हो उठते हैं। बरसातकी ठण्डी हवाका यही असर है, क्योंकि 'तीरसे कुछ कम नहीं ठण्ढ़ी हवा बरसात की।' पावस कालीन इस उन्मत्ततामें वासनाका प्राबल्य उतना नहीं, जितना प्रेम का। हृदय उसीको चाहता है जो मन-का-मीत प्राणों-का-प्राण हो। जीको वही जुड़ा सकता है। अन्य कोई नहीं।

हवाके तेज झोंकेसे बासन्तीके कमरेका पर्दा फरफरा उठता है। अंचल उड़कर उसके मुंहपर छा जाता है, खिड़कियां खड़-खड़ा उठती हैं और घोर निनाद करती हुई बिजली चमकती-दमकती चली जाती है। उसकी नींद खुल जाती है।

खा-पीकर वह लेटी थी। सोते समय कड़ी धूप थी,

हवा भी बिल्कुल बन्द थी, पर अपने जालसे इन्द्रने अचानक दुनियाका दृश्य ही बदल दिया। उसने घड़ी देखी—दो बज रहे थे। सवा बारहके लगभग वह सोयी थी। नींद खुलते ही जब कि चेतनाके सम्पूर्ण उपकरण अच्छी तरह भी जाग्रत नहीं हो पाये थे, प्रकृतिके परिवर्तन दृश्यने उसे अजीब-सा कर दिया। क्षणेक वह भौचक्की-सी बनी रही, फिर अपनेमें आयी, फिर खो गयी।

नीचे सड़ककी ओर उसकी दृष्टि गयी। इक्के-दुक्के लोग तेजीसे लपके चले जा रहे थे। बराबर लोगोंसे भरी रहनेवाली सड़क प्रायः जन-शून्य हो चली थी। नन्हीं-नन्हीं फूहियां पड़ने लगी थीं और हवाके झोंके उन्हें बसन्तीके कमरेमें ढकेल रहे थे।

उसका मन जाने कैसा हो आया। क्या उसके हृदय नहीं है, हृदयमें रस नहीं है, प्रेम नहीं है? प्रेमकी उत्कंठा, प्यारकी आकांक्षा नहीं है? पर वह किसकी है? उसका 'अपना' कौन है?...वह सबकी होकर भी किसीकी नहीं है। वह दिल बहला सकती है, पर जी नहीं जुड़ा सकती। क्यों? क्या वह नारी नहीं?

सड़क सुनसान हो गयी है। बारिश भी तेज हो गयी है। बौछारें आ-आकर उसके कपड़ोंको भिंगा जाती हैं। उसका बदन सिहर उठता है, छाती धड़क उठती है, उरोज फूल-फूल कर बैठ जाते हैं। वह स्थिर अपलक आंखोंसे पावस की बहार देख रही है। मन उड़ रहा है—अपने-अपने घरों में पति-पत्नी उमंग-आह्लादके बीच पावसकी बहार मना रहे होंगे, सम्पूर्ण रूपसे एक दूसरेमें सन्नि-विष्ट-से होकर। झिझक, सन्देह एवं पाखण्ड-प्रदर्शनसे उनकी प्रेम लीला अछूती होगी। निर्बाध, निःसंशय, उन्मुक्त आन्तरिक उल्लास से परिपूर्ण होगा उनका प्रेम-विनोद। यहां कोई आवे भी तो छिपे-छिपे, चुपके-चुपके, झिझकके साथ, गांठ टटोलते हुए, लोक-लाजकी जबर्दस्त पाबन्दियों और खतरोंके बीचों-बीच।

अचानक कबूतरोंका एक जोड़ा, भींगता, पर फड़फड़ाता उसकी खिड़कीकी बरसाती पर आ बैठा। दोनों एक दूसरे से सटे, चोंच मिलाये हुए। एक क्षण ठहर कर दोनों पक्षी उड़ गये। मानो बीचमें थककर विश्राम लेने चले आये हों। बासन्तीके उद्वेलित मनको ऐसा लगा मानो उसके इर्द-गिर्द का वायु-मण्डल विषाक्त हो उठा हो जिससे चिहुंक कर परिन्दे भाग गये हों, कि उन्हें भी वहांकी हवा न लग जाय। दारुण मनो-व्यथासे वह तिलमिला उठी।

मन विकल है। वह क्या करे? तब तक जीनेसे जूतोंकी आवाज आयी। दूसरे ही क्षण खबर मिली कि तीन-चार मनचले जवान ऊपर आये हैं और मुजरा सुनना चाहते हैं।

बासन्तीका हृदय हुंकार कर उठा—एक नहीं अनेक!... अपना दिल बहला कर चले जायेंगे। क्या इनकी औरतें नहीं हैं? या ऐसा भी हो सकता है कि रास्तेमें भींगते जाते हों—सोचा होगा,—'कुछ खर्च कर मौज उड़ा लें और बारिशसे भी बच जायें, फिर चलते बनें...मानों मैं कोई तमाशेकी चीज होऊं!' उसका मन मसोस उठा—'कह दे मेरी तबीयत ठीक नहीं है।"

सीढ़ियोंसे निराश लौटते रसीले नौजवान—धीरे-धीरे बोलते जाते थे—'अरे किसी यारको लेकर पड़ी हुई है।'

दूसरेने आंख टीपते हुए कहा—बेशक गुरु यही बात है... उड़ती चिड़ियाको हल्दी लगावें हम, और हमींसे उड़ना।"

ऊपर बासन्ती खिड़कीसे बादलोंको एक टक देखती रही।

भारतकी आत्मा-ब्रिटिश कैदखानेमें

श्री शास्त्री रविराज

संसारके सभी राष्ट्र, प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष भावसे, इस विश्वयुद्धमें संक्रान्त हैं। आदर्श रूपसे वे संसारमें शान्ति स्थापित करनेके लिये ही अपना सर्वस्व बलिदान कर रहे हैं। लेकिन जब हम इस आदर्शको वास्तविकताकी कसौटी पर कसते हैं तो वह कहावत चरितार्थ होती है कि चमकने-वाली प्रत्येक वस्तु सोना नहीं है। विश्लेषण करनेसे प्रत्येक राष्ट्रका आदर्श स्वार्थमें परिणत दिखायी देता है। युद्ध-संक्रान्त राष्ट्र इसलिये नहीं लड़ रहे है कि विश्वमें शान्ति और स्वतन्त्रता स्थापित करनेको वे व्यग्र और उत्सुक हैं। दरअसल जब तक उनको अपनी शान्ति और स्वतन्त्रताको खतरेसे दूर रख सकनेकी आशा रही तब तक दूसरोंकी शांति और स्वतन्त्रताको हरण करनेवाली महाशक्तियोंके मार्गमें उन्होंने कभी रोड़ा अटकानेका काम नहीं किया। बल्कि उनके इस अपहरण काण्ड को अपने प्रभाव और शक्ति द्वारा सहायता ही पहुंचायी। यह इतिहास अभी इतना तरोताजा है कि इसपर अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है।

महात्मा गांधी

वास्तविकता यह है कि प्रत्येक राष्ट्रको अपने स्वार्थकी रक्षाके लिये युद्धमें आना पड़ा है। उनका आदर्श बघारना और यह कहना कि संसारमें मानवता और शान्तिका साम्राज्य विस्तार करनेके लिये हम युद्ध लड़ रहे हैं सरासर दुनिया को धोखा देना है। इस धोखा देनेके काममें ब्रिटिश साम्राज्यवादी नेता सबसे आगे हैं। भारतवर्षकी समस्याको सामने रख कर यदि हम ब्रिटिश राजनेताओंके कारनामोंपर दृष्टिपात करें तो यह पता चल जायेगा कि संसारमें ऐक्य, प्रेम और स्वतन्त्रता स्थापित करनेके इनके आद-र्शोंमें कितनी पवित्रता है। किसी देशमें शान्ति और व्यवस्था, ऐक्य और प्रेम सम्बन्ध स्थापित करनेका उत्तरदायित्व उस देशकी सरकार पर होता है। जिस देशकी जनतामें परस्पर जितना अधिक सद्भाव, सहानुभूति और एकता रहती है उसका श्रेय वहां शासन करनेवाली व्यवस्थाको होता है। ठीक इसी
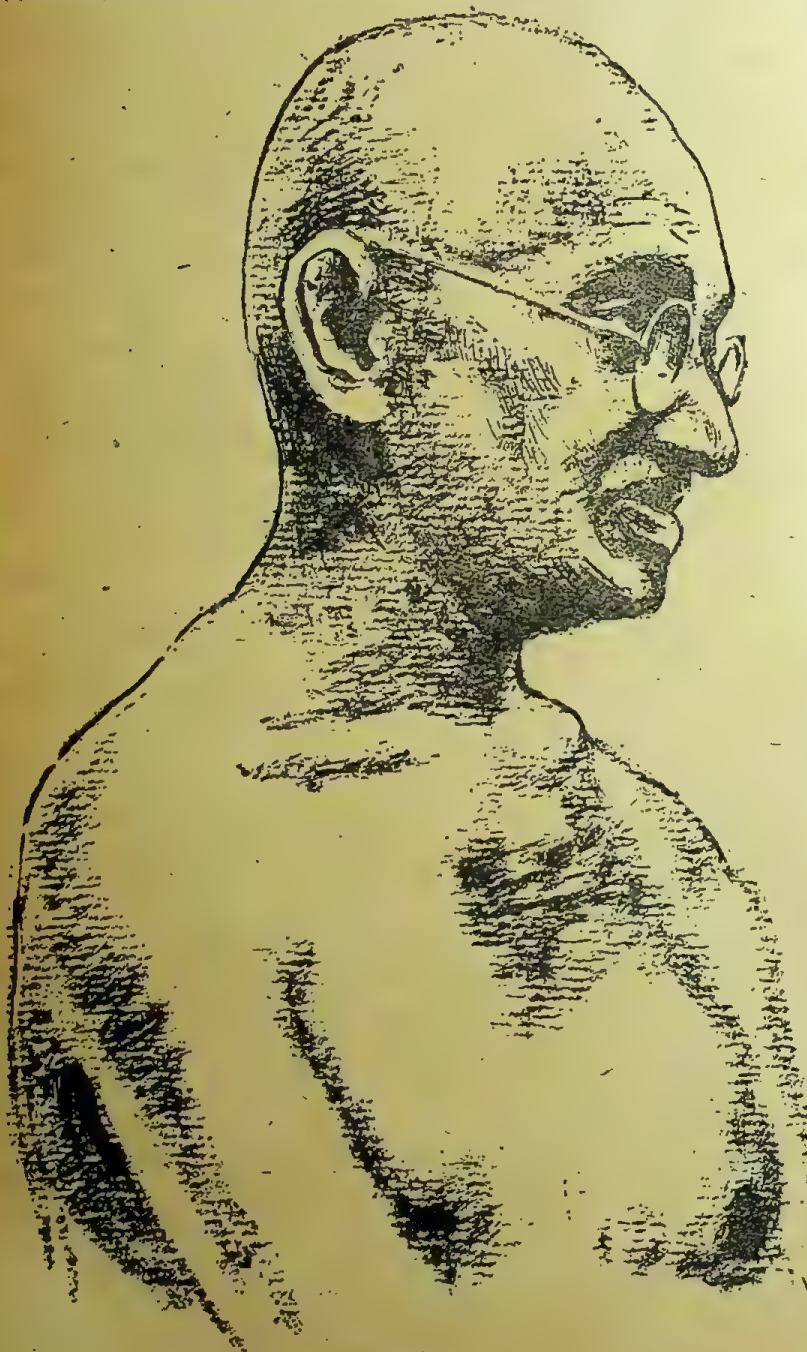
तरह द्वेष, असद्भाव घृणा और वैमनस्यके भावोंकी यदि प्रबलता देखी जाये तो यह कहना होगा कि उस देशकी सरकार बड़ी नालायक है। सभ्य और सुसंस्कृत कहलाने वाली ब्रिटिश सरकारने पिछले ९० वर्षोंके अन्दर भारतमें रहने वाले विभिन्न सम्प्रदायोंके भीतर फूटका विषैला बीज रोप एवं स्वार्थवारिसे सींचकर उसे इतने बड़े वृक्षके रूपमें तैयार करके खड़ा कर दिया है जिसका संसार के समसामयिक इतिहासमें अन्यत्र कहीं उदाहरण नहीं मिलेगा। भारतकी इतनी शोचनीय और दयनीय स्थिति किसी युगमें नहीं हुई। आज तो यह हाल है कि भारत रूपी शरीरके जितने अङ्ग हैं वे सब एक दूसरेसे तने हुए हैं। किसी पर किसीको विश्वास नहीं रह गया। इसका कारण यह है कि उसका मन शैतानके वशमें है, जिसने एक दूसरेसे घृणा और द्वेष करना ही सिखाया है। शैतान जानता है कि इस दिव्य सुन्दर शरीरपर, जहां काल-चक्रके प्रभावसे उसने किसी प्रकार अपना डेरा जमा लिया है, वह तभी तक आसीन रह सकता है जब तक शरीरके अङ्ग-प्रत्यङ्ग उसके बहकावेमें रहकर एक दूसरेसे लड़ते-झगड़ते रहेंगे। यही कारण है कि भारतकी आत्मा—महात्मा गांधी कहते हैं कि जब तक मन शैतानके चंगुलसे मुक्त न होगा, तबतक उसके द्वारा सञ्चालित अंग-प्रत्यंग एक दूसरेसे लड़ते-झगड़ते रहेंगे। 'अपना अपना' राग अलापनेमें मस्त होकर ये तमाम अंग-प्रत्यंग इस तथ्यको भूल गये हैं कि यदि सम्पूर्ण शरीरको आवश्यकतानुकूल खाद्य न मिलेगा तो एक या दो अंगोंके पुष्ट हो जानेसे भी शरीर पुष्ट और दीर्घजीवी नहीं बन सकता। भारत रूपी इस शरीरपर शासन करनेवाला मन है राजनीतिक अधिकार और ये राजनीतिक अधिकार आज हैं ब्रिटिश सरकारके हाथ में। ब्रिटिश सरकार अपने इसी अधिकारके बलसे शासनकी लकड़ियाके सहारे हिन्दुओं, मुसलमानों, सिखों, अछूतों आदि सभी वर्गोंको बंदरियाकी तरह नचा रही है और दुनियाके सामने यह मदारी भारतके विभिन्न सम्प्रदायोंको बन्दर-नाच नचा रहा है। किन्तु कुछ ऐसे भी अवाध्य व्यक्ति हैं जो ब्रिटिश मदारीके इशारेपर मनुष्य होकर बन्दरकी तरह नाचनेको तैयार नहीं है और वे उसकी उस लकड़ियाको ही तोड़ फोड़ डालना चाहते हैं जिसके सहारे ब्रिटिश मदारी अपने सधे बन्दरोंको भांति-भांतके रूपसे सजाकर दुनियाके सामने पेश कर रहा है। उन लोगोंकी इस अवाध्यताकी वजहसे ही मदारीने उनको पकड़ कर कठघरोंमें बन्दकर दिया है। आज भी हजारोंकी संख्यामें ये अवाध्य विद्रोही ब्रिटिश मदारीकी जेलोंमें बन्द हैं। इनमें वे नर-रत्न हैं जिनको पाकर

पण्डित जवाहरलाल नेहरू

मानवता कृत-कृत्य है। दरअसल भारतकी ये आत्मा हैं ब्रिटिश साम्राज्यवादियोंने मानव-समाजका मुख उज्ज्वल करनेवाले भारतके इन सपूतोंके रहनेके लिये उपयुक्त स्थान 'पृथ्वीका स्वर्ग' जेलखाना चुना है। इनका अपराध सिर्फ इतना ही है कि ये स्वतन्त्रताके सच्चे साधक और आराधक हैं। संसारकी स्वतन्त्रता और शान्तिको बनाये रखनेका ठको-

सला सामने खड़ा करने वाले चर्चिल और एमरी इनको अपने साम्राज्यके लिये खतरा समझते हैं। यही वजह है कि उस खतरेको दूर रखनेके लिये भारतके चुने नेताओंको जीवनका श्रेष्ठ और सुन्दर भाग जेलखानोंमें बितानेको बाध्य किया जाता है। भारतकी इस स्थितिने ब्रिटिश

राष्ट्रपति अबुल कलाम आजाद

राजनेताओंका पर्दाफाश कर दिया है और स्वयं उनके ही भाई-बन्धु इस मक्कारी की स्थितिसे चञ्चल हो उठे हैं। उनको युद्धादर्शों पर सन्देह होने लगा है और ब्रिटेनके साधारण नागरिकके मनमें यह प्रश्न उथल-पुथल मचा रहा है कि क्या सचमुच संसारसे अनीति, अन्याय, अत्याचार को मिटाकर नीति, न्याय और समानताका राज्य कायम करनेके लिये ही यह युद्ध लड़ा जा रहा है?

तभी तो ब्रिटिश जेलमें बन्द पण्डित जवाहर लाल नेहरू-के पिछले ५५ वें जन्मदिवसके अवसर पर, जो १४ नवम्बर-को संसारके सभी प्रधान प्रधान नगरोंमें मनाया गया, ब्रिटेनके प्रमुख स्वतन्त्रतावादी नेता मि० फेनरब्राकवेने यह कहा कि "जवाहरलालका अबतक जेलमें रहना ही इस बात का पर्याप्त प्रमाण है कि ब्रिटिश सरकार दोषी है।" इतना ही नहीं मि० ब्राकवेने यह भी कहा है कि जिन लोगोंने नेहरूजीको जेलोंमें बन्द कर रखा है वे नेहरूकी तुलनामें अत्यन्त क्षुद्र-प्राण व्यक्ति हैं। इस तरहके उद्गार संसारके सभी सच्चे शान्ति कामी और मानवता हितैषियोंने नेहरू-जीकी महानता पर प्रकट किये हैं। संसारके सच्चे हितैषी यह जानते हैं कि नेहरूको जेलके भीतर बन्द कर रखने वाले चर्चिल स्वार्थके पुतले हैं और लोकतन्त्र एवं राष्ट्रोंके अधिकार की उनकी दुहाई साम्राज्यवादकी रक्षाके लिये ही है। किन्तु नेहरूजीके भीतर वह चीज है जिसकी दुनियाको आज सर्वाधिक आवश्यकता है। नेहरूजी सत्तावादको हृदयसे जितनी घृणा करते हैं मानवके अधिकारोंके प्रति उतना ही उत्कट प्रेम भी उनके हृदयमें हिलोरें मारा करता है और उनका यह प्रेम कल्पना तक ही नहीं रह जाता बल्कि मानव - अधिकार स्थापित करनेके लिये उनको कर्मिष्ठ बनाता है। उसीका परिणाम है कि आज वे जेलखानेमें हैं। चर्चिल २० वीं सदीकी पञ्चम दशाब्दीमें दुनियाका नेतृत्व करते हैं लेकिन उनका दुनियाका चित्र उनका अपना नहीं है। उनमें इतनी मौलिकता ही नहीं है कि वे समयके अनुकूल अपना संसार बना सकें। आजसे पांच सौ वर्ष पूर्व उनके पूर्वज संसारका जो चित्र खींच गये थे आज भी चर्चिलके लिये वही आदर्श है। आजकी दुनियाकी आत्माको वे समझ नहीं सकते क्योंकि वे इस दुनियाके आदमी नहीं हैं। जवाहरलाल इस युगके प्रतिनिधि हैं। वह आजके मानवकी अन्तरात्माको जितना समझते हैं शायद आज उनके समसामयिकोंमें उतना कोई नहीं समझ पाता। यही कारण है कि एशिया पत्रिकाके सम्पादक मि० रिचार्ड वाल्श कहते हैं कि शान्ति सम्मेलन-का सभापतित्व करनेके लिये सर्वाधिक उपयुक्त और प्रभाव-शाली व्यक्ति पण्डित जवाहर लाल नेहरू हैं। इस तरहके व्यक्तिको ब्रिटिश सरकारने जेलमें बन्द कर रखा है। क्योंकि मानवतामें, अन्तर्दृष्टिमें, ज्ञानमें और बुद्धिमें संसारमें उनकी

जोड़का बिरला ही कोई निकलेगा। संसारके सभी और ज्ञानी, दार्शनिक और विचारक एक कण्ठसे यह बात स्वीकार करते हैं कि जवाहर लाल नेहरूका आज कारागारमें पड़े रहना, उनके जीवनका सुन्दरतम भाग ब्रिटिश जेलोंमें बीतना आधुनिक युगकी सर्वाधिक बर्बरतापूर्ण घटना है। यह बात ठीक है, किन्तु यह घटना क्या संकेत करती है? संसार अभी शान्तिपथसे बहुत दूर है।

इस "सर्वाधिक बर्बरतापूर्ण अत्याचार" के लिये क्या अकेले चर्चिल ही जिम्मेदार हैं? क्या उनके वे साथी जो इस घटनाको देख कर भी नहीं देखते, सुनकर भी नहीं सुनते, जान-बूझ कर मौन साधे हुए हैं इस अत्याचारका अस्तित्व कायम रखनेमें सहायक नहीं हैं? रूजवेल्ट और स्टालिन आज क्यों मौन हैं? भारतकी छाती पर अत्याचारका ताण्डव होते देख कर भी उनकी जबान क्यों नहीं खुलती? इस 'क्यों' का एक ही जवाब हो सकता है और वह यह है कि राष्ट्रोंकी हुकूमतकी बागडोर जिन व्यक्तियोंके हाथोंमें है, सच्चे अर्थोंमें, वे इतने क्षुद्र और निज स्वार्थ-कातर हैं कि सत्य बात कहनेका भी उनको साहस नहीं होता। यही कारण है कि इच्छा न रहते हुए भी वे ब्रिटिश सरकारके ऐसे जघन्य कार्यके मौन समर्थक बने हुए हैं।

जवाहरलालजीका व्यक्तित्व मानव समाजकी एक अपूर्व निधि है। चर्चिलके मानव समाजकी कल्पना बड़ी बीभत्स है। उस समाजमें रङ्ग-भेद और वर्ण-भेदका प्राधान्य है। श्वेत वर्ण वाले यूरोपियन संसार पर साम्राज्य करनेके लिये जन्मसे ही विशेषाधिकार लेकर आये हैं और इस विशेषाधिकारको जो मिटाना चाहता है वह चर्चिलका शत्रु है। जवाहर लालजी उन शत्रुओंमें सर्वाधिक प्रभावशाली व्यक्ति हैं। अतः इस तरहके व्यक्तिको जब तक सम्भव हो, जन सम्पर्कसे दूर अति दूर रखा जाना ही चाहिये। भारत रक्षाका अच्छा बहाना चर्चिल सरकारको मिल गया है। किन्तु ब्रिटिश साम्राज्यवादियोंको एक बात स्मरण रखनी चाहिये कि जवाहर लालका शरीर अवश्य जन सम्पर्कसे दूर है किन्तु उनकी आत्मा जन सम्पर्कसे दूर नहीं है। जितने दिन तक उनको जनतासे दूर रखा जायेगा उतना ही अधिक जनताके हृदय पर उनकी अमिट छाप बैठती जायगी। जन साधारणके अन्दर ब्रिटिश सरकारके प्रति आज कितना क्षोभ और असन्तोष है, यह बात स्वयं ब्रिटिश राजनेता भी समझते हैं। यह क्षोभ और असन्तोष एक दिन भयङ्कर विस्फोटका रूप धारण करेगा। डा० सैयद महमूदने ठीक ही लार्ड वावेलको लिखा था कि महात्माजीके जीवनकालमें ही ब्रिटिश सरकार भारतसे समझौता कर ले तो अच्छा है। महात्माजीके बाद नेतृत्व जवाहर लालजीके हाथोंमें आयेगा और इन दोनों नेताओंके स्वभाव और चिन्ताधारामें जो अन्तर है वह स्पष्ट है।

सुप्रसिद्ध चीनी दार्शनिक लिन यूटांगने बड़े सुन्दर शब्दोंमें नेहरूजी और महात्माजीके स्वभावका चित्रण किया है। लिन यू टांग कहते हैं:—

"स्वतन्त्रताकी इस लड़ाईमें असाधारण स्वरूप और आकारकी दो आत्माओं और विचार धाराओंका उदय हुआ है। इन दोनों आत्माओं और विचार धाराओंके अनुरूप और अनुकूल घटना-चक्र प्रवाहित हो रहा है। हिन्दुस्तानने सिर्फ गांधीको ही जन्म नहीं दिया बल्कि जवाहर लालको भी पैदा किया है। जवाहर लालको भारतका उदीयमान नक्षत्र कहना केवल भाषाका रूपक नहीं है। यद्यपि यह बात सभी स्वीकार करेंगे कि गांधीकी जैसी उज्वलता प्राप्त ग्रहकी बगलमें नक्षत्रका रहना कठिन ही है; किन्तु जवाहर लालको वह गौरव प्राप्त हुआ है। और यह नक्षत्र दिन प्रति दिन चमकता हुआ ऊपर उठ रहा है। अतः यह अच्छा होगा कि संसार इस तथ्यकी ओर ध्यान दे।

"मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि स्वतन्त्रताके आन्दोलनमें भारतका नेतृत्व करने वाले गांधी नारी भावना और नेहरू पुरुष भावनाके प्रतीक हैं। पुरुष और नारी तत्वका संघर्ष, हेवलक एलिसके शब्दोंमें 'सामंजस्यमें विरोध" आज गांधी और नेहरूके सम्पर्कमें देखा जा सकता है। गांधीके लिये अहिंसा ही अन्तिम परिणति है, हिंसात्मक साधनोंसे भारतको स्वतन्त्र करनेकी अपेक्षा गांधी चिरकाल तक उसे पराधीन देखना पसन्द करेंगे, क्योंकि गांधीजीके लिये हिंसा का प्रयोग भारतका आत्माका विनाश है। नेहरूकी पुरुष भावना यह स्वीकार नहीं कर सकती। उनकी भाव-भंगी इस प्रकारकी नहीं हो सकती। गांधी दरिद्रतामें डूबी हुई जनताका विलाप भारतीय सन्तके कानोंसे सुनते और सजल नेत्रोंसे देखते हैं, नेहरू उनकी चीत्कारोंको आधुनिक कालेज मैनकी भांति, जैसे आप और मैं, सुनते और देखते हैं। इस दृष्टिसे मैं समझता हूँ कि गांधी सिर्फ भारतकी पहुंचसे बहुत ऊपर और श्रेष्ठ हों यह बात नहीं, बल्कि हम सबकी पहुंचसे बहुत ऊपर और श्रेष्ठ हैं। दरिद्रताके प्रति गांधीजीके हृदयमें घृणा है, नेहरू उससे मर्माहत होकर उसे देशसे मिटा डालना चाहते हैं।

'आश्चर्य होता है,दोनोंमें कौन महान हैं ? इसका उत्तर इस बात पर अवलम्बित है कि आप रहस्यवादी हैं,-या मानवतावादी। गांधीका धार्मिक रहस्यवाद,उनकी पैनी समालोचनात्मक बुद्धिके बावजूद, भारतकी अपनी निजी विशेषता है। सामाजिक सुधारके लिये आतुर और व्यग्र नेहरूको हम अधिक समझ पाते हैं, वे हमारे अत्यधिक निकट हैं। भारतकी कांग्रेस पार्टीकी,दूसरे शब्दोंमें सम्पूर्ण क्रांतिकारी भारतकी, स्थितिको इन शब्दोंमें प्रकट किया जा सकता है: जन - साधारण नेहरूकी सुनते हैं, नेहरू गांधीकी सुनते हैं और गांधी सिर्फ भगवानकी सुनते हैं। इन शक्तियोंका अन्तर्द्वंद्व, मैं समझता हूँ बहुत स्वल्प कालमें, भारतको स्वतन्त्र करायेगा।'

इस तरहके महाप्राण व्यक्तिको ब्रिटिश सरकारने आज जेलमें डाल रखा है, इससे बढ़कर ब्रिटिश जातिके लिये लज्जा और कलङ्ककी बात क्या हो सकती है। जर्मन नाजीवाद और फासिस्टवादका अन्त करके भी क्या संसार सुख और शान्तिकी नींद सो सकता है,जबतक ब्रिटिश साम्राज्यवादका अस्तित्व है ? असम्भव है।

पण्डित जवाहरलालजी नाजीवाद और फासिस्टवादके सच्चे और कट्टर विरोधी हैं। इस सम्बन्धमें गांधीजीने जेलसे अपने एक पत्रमें तत्कालीन वायसराय लार्ड लिनलिथगोको लिखा था—"फासिज्म और नाजीवादकी सफलताको वे (जवाहर लाल) मुझसे अधिक भयङ्कर समझते हैं। मैंने कई दिन उनसे बहसकी है। मैंने जो दृष्टिकोण और स्थिति ग्रहणकी है उसके खिलाफ वे जिस निष्ठा और आवेशके साथ लड़े, शब्दोंमें मैं उनका वर्णन नहीं कर सकता। किन्तु तथ्योंके तर्कने उनको अभिभूत कर दिया। जब उन्होंने यह साफ साफ समझ लिया कि भारतकी स्वतन्त्रताके बिना उन दोनों (रूस और चीन) की स्वतंत्रताभी भारी खतरेमें है तभी वे झुके। निश्चय ही अपने इस तरहके शक्तिशाली मित्र और साथीको जेलमें बन्द करके आपने बहुत बड़ी गलती की है।"

इस प्रकारके कर्तव्य निष्ठ, संसारकी स्वतन्त्रताके लिये सच्चे हृदयसे सतत् प्रयत्नशील रहने वाले विश्व-मानवके रहनेके लिये उपयुक्त निवास कारागृह समझने वाले ब्रिटिश नेता संसारके न्याय-प्रिय भागके सामने जवाबदेह हैं। अवश्य ही हम जानते हैं कि राज सत्ता-मदान्ध नेता संसारके जनमतकी परवाह नहीं करते। वे बराबर जनमत पर पदाघात करनेमें ही अपनी शान समझते हैं। किन्तु न्याय न्याय है, सत्य सत्य है। विश्व विख्यात दार्शनिक सुकरातको राजसत्ताधारियों द्वारा निर्मित लोकमतने अपराधी करार देकर जहरका प्याला उसे पिलाया था। किन्तु वही राज सत्ताधारी सत्यको दबाये नहीं रह सके और आज संसारकी दृष्टिमें सुकरातको दण्ड देने वाले राजनेता वधिकसे अधिक कुछ नहीं हैं। ठीक इसी तरह विश्व वरेण्य महात्मा गांधी, नेहरू, मौलाना आजाद आदि प्रभृति कांग्रेस नेताओंको जेलोंमें डालने वाले ब्रिटिश राजनेता न्यारी संसारकी दृष्टिमें आततायीसे अधिक कुछ नहीं समझे जायेंगे।

निराशा

रिक्त पात्र मेरे उरका तुम प्रणय-सुरासे भर न सकोगे !
मेरा तम मय पथ छबि-ज्योत्स्नासे शृङ्गारित कर न सकोगे !
हूँ मरु-पथका तप्त प्रभंजन, साथ एक क्षण रह न सकोगे !
मलयानिलके साथी ! मेरा ताप एक क्षण सह न सकोगे !
तुम हो चन्द्र-किरण छबिशाली और अमावसका मैं क्रन्दन !
जीवनके इस पार असम्भव ही है हाय, तुम्हारा दर्शन !

* * * *

इस नैराश्य-निशाके तममें मुझको रो लेने दो जी भर !
क्या होगा क्षण भरको आशाका यह झूठा आसव पीकर !

—श्री सत्यनारायण शर्मा

नारी—
(वैज्ञानिक विवेचन)

श्री दीनानाथ व्यास, विशारद

संसारके प्रत्येक भागमें स्त्री एक गहन समस्या है। आज प्राचीन कालको देखते हुए महान अन्तर नजर आता है। स्कूल, कालेज एवं भौतिक शिक्षाके मारे समस्त प्राचीन भुला दिया गया है। स्त्रीको लेकर साहित्य और समाज आज पशोपेशमें पड़ गया है। भारतवर्षमें यह समस्या और भी गहन हो गयी है। यहांकी स्त्रियां कौन-सा आदर्श धारण करें, हमारे नेताओंको रात दिन यही चिन्ता सताती रहती है और यही प्रश्न विद्वानोंमें मतभेदका कारण बन जाता है।

स्त्री क्या है? वेलथूके मतानुसार स्त्रियां आदिम पुरुषत्वकी विकृत जीवात्माएं हैं। स्पेन्सरका कथन है—"नारी केवल विकृत और विकास विनिगृहीत पुरुष है।" अरविन कहता है—"पुरुष वह स्त्री है जिसने अपने विकासके युगको पूरा कर लिया है।" ये युक्तियां महान वैज्ञानिकोंकी हैं। इनपर विश्वास कर लेनेसे पुरुषकी अपेक्षा स्त्री-हीन ठहरती है। "नारी पुरुषकी अर्धाङ्गिनी है, सहधर्मिणी है।" इस भारतीय आदर्शको धक्का लगता है। हम देखते हैं कि संसारके प्रत्येक कार्यमें स्त्रीका पुरुषके साथ अगांगीभाव विद्यमान है। कर्मोत्पत्तिका कारण भी यही पुरुष एवं स्त्री शक्तिका पारस्परिक सङ्घर्ष ही है। वैज्ञानिक भाषामें यही पुरुष-शक्ति तथा स्त्री-शक्ति कहलाता है।

प्रसिद्ध जर्मन वैज्ञानिक विनिङ्गर अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "सैक्स एण्ड कैरेक्टर" में लिखते हैं "कोई भी व्यक्ति पुरुष या स्त्री ही नहीं कहा जा सकता।" किन्तु एक ऐसी भी धारणा है कि, जो हमें बताती है कि, स्त्री और पुरुषके लक्षणोंका विविध अंगोंमें समवाय है। इसीसे स्पष्ट है कि पुरुषके अन्तर्गत स्त्री भाव निहित है। स्त्रीमें पुरुष और पुरुषमें स्त्रीके प्रारम्भिक चिन्ह भलीभांति विद्यमान हैं। ये चिन्ह मानसिक प्रवृत्ति तक ही नहीं, दैहिक यन्त्रादिमें भी मौजूद हैं। जो चिन्ह नारीमें विकसित हैं वे पुरुषमें अप्रकाशित अवस्थामें पाये जाते हैं और जो चिन्ह पुरुषमें विकसित हैं, वे स्त्रीमें अप्रकाशित अवस्थामें पाये जाते हैं। जैसे स्त्रीके स्तन पुरुषमें अकर्मण्य भावसे विद्यमान हैं। इसी प्रकार पुरुष गुम्फ एवं श्मश्रुका हाल है। स्त्रीमें ये निष्क्रिय हैं। यह अन्योन्य सम्बन्ध इस कदर वृद्धिगत हुआ है कि दोनोंकी जननेन्द्रियोंको दोनोंने ही अपने-अपने अङ्गोंमें मुकलित कर रख छोड़ा है। इन्हींके आधार पर शुक्र स्त्री-गूढ़ रूप तथा शिव अर्धनारीश्वरके रूपमें कल्पित किये गये हैं। कहनेका तात्पर्य यह है कि पुरुष शरीर की इन्द्रिय स्त्रीमें क्षुद्राकारमें तथा स्त्रीकी इन्द्रियां पुरुषमें अस्फुट रूपसे विद्यमान हैं। चार्ल्स ग्रांडफ्ले लैण्ड लिखते हैं—"जितने महापुण्य हुए हैं प्रायः सभीमें स्त्री-आत्माका पूर्णरूपसे विकास रहा। बहुतसे ऐसे भी पुरुष पाये जाते हैं जो आन्तरिक स्त्री भावका अभाव रहते हुए भी अच्छे कार्यों-को कर डालते हैं किन्तु वे कदापि ऐसी कोई वस्तु उत्पन्न नहीं कर सकते जो मौलिक होनेके साथ ही साथ सौन्दर्य सम्पन्न हो, क्योंकि उनमें तो कल्पनाका एकान्त अभाव रहता है।" यह अवतरण लेलैण्डने प्रकृतिका रहस्योद्घाटन करते हुए लिखा है। वैष्णव साहित्यमें रस सौन्दर्यके पूर्ण उद्रेकका मुख्य साधन स्त्री ही है। और स्त्री भावकी प्रचुरता ही वैष्णव साहित्यकी आत्मा है। बङ्गालके कवियोंके माधुर्यका भी यही कारण माना जाता है। रवीन्द्रनाथकी कवितामें जो कोमल स्वर और कल्पना है उसकी सूक्ष्मताके भीतर स्त्री भाव विद्यमान है। लेलैण्ड आगे चलकर कहता है—"प्रत्येक पुरुषके अन्तर्गत स्त्रीकी आत्मा है और प्रत्येक स्त्रीके अन्दर पुरुषकृत प्रोत्साहन विद्यमान है।"

आज जो स्त्री आन्दोलन जोर पकड़ रहा है, उसकी मूल भित्ति भी यही है। उसका रहस्य ही यह है कि उसके मूलमें स्त्रीके भीतर पुरुष भावका होना एकान्त कल्पित है। जर्मन विद्वान विनिंजर कहता है—"मुक्त स्त्रियोंमें पुरुष भाव वर्तमान है जो मुक्तिकी कामना करता है।" अण्डमन आदि द्वीपोंमें स्त्री और पुरुषके बीच बहुत थोड़ा भेद है और इसका प्रत्यक्ष उदाहरण अमेरिकन महिलाएं हैं जो पुरुषोंका लिबास कसकर पुरुषोंसे भी आगे बढ़ रही हैं। इससे पता चलता है कि आदिम युगमें स्त्री और पुरुषकी आकृति तथा प्रकृति प्रायः एक सी ही थी। आजकी स्त्रियां तो पुरुषोंको भी कुछ कदम पीछे हटा चुकी हैं।

स्त्रियोंकी अपेक्षा पुरुषको जीवन संग्राममें ज्यादा उलझना पड़ता है। स्त्रियोंको तो केवल अपने बनाव श्रृंगार की ही चिन्ता पड़ी रहती है। स्त्रीके उच्छृङ्खल स्वभावपर एक विद्वान लिखता है—"स्त्रियां निर्धन होती हैं। जीवन निर्वाहके लिये उन्हें गांठ नहीं टटोलनी पड़ती। उन्हें तो पुरुषका कृतज्ञ होना चाहिये। वे भूखों नहीं मरतीं। इसपर भी यदि सुख चैनसे जीवन कटता हो तो उन्हें पुरुषोंके प्रति और भी अधिक कृतज्ञता प्रकाशित करनी चाहिये, जो सदा ही धनोपार्जनमें लगे रहा करते हैं। अमेरिकाकी स्त्रियां भी जब कभी जीवन निर्वाहके साधनोंसे वञ्चित हो जाती हैं तो,भारतीय महिलाओंका तो जिक्र ही छोड़िये,ऐसी अवस्था में विलास, व्यसनकी ओर अग्रसर होनेके सिवाय उनके पास अन्य कोई अवलम्बन ही नहीं है।"

विलियम टौक्स लिखते हैं "उच्च कुलकी अमेरिकन महिलाओंको अच्छे अधिकार प्राप्त हैं, तथा उन्हें कुछ करना भी नहीं पड़ता। इस पर भी वे दिन रात मिटनेको तैयार हैं। इसका कारण किसी व्यर्थ झमेलेका होना नहीं है, किन्तु असली बात तो यह है कि वे सचाईसे बहुत ही दूर हट गई हैं। बहुत सी स्त्रियां जो अपने पतियों तथा भ्राताओंकी अपेक्षा अधिक निपुण तथा उत्साह पूर्ण हैं, विलास क्रीड़ाके अतिरिक्त दूसरा पेशा ही स्वीकार नहीं करतीं।" यही उच्च शिक्षाका ज्वलन्त प्रमाण है। हमारे देशकी शिक्षित एवं सभ्य स्त्रियोंकी अवस्थाका क्या दिग्दर्शन किया जाय? उनकी अवस्था क्या हो चुकी है और क्या होगी? इसका उत्तर जरा कठिन है। पढ़ी लिखी स्त्रियां आज केवल जुएके अड्डोंकी शोभा तथा होटलका श्रृङ्गार ही नहीं हैं, वरन घुड़दौड़ तक दौड़ गई हैं। इसीसे डेविड कहता है—'उस देशको धिक्कार है जहां स्त्रियोंसे काम लिया जाता है किन्तु उसी प्रकार उस देशको भी धिक्कार है जहां स्त्रियां बेकार पड़ी हैं।"—

भारतीय धर्म शास्त्रोंके अनुसार स्त्री पुरुषकी सहधर्मिणी बनना चाहती है तो उसे शास्त्र मना नहीं करते वरन् शास्त्र तो स्त्री रहित पुरुषको अपूर्ण संज्ञा देते हैं किन्तु आजकी स्त्रियां तो क्या यूरोप क्या भारत, सभी जगह सहधर्मिणी होनेके बजाय मातृस्वरूपको भूलकर स्वेच्छा-चारिणी हो रही हैं। वैसे देखा जाय तो स्त्रीका स्थान पुरुषकी अपेक्षा हमेशा श्रेष्ठ है। क्योंकि पुरुषको संसारमें आनेके पूर्व स्त्रीके उदरमें रहना ही पड़ता है। और भी, स्त्रीके कटाक्षसे पुरुष उसके पदोंका गुलाम ही हो जाता है। भारतीय साहित्य इन तत्वोंको सृष्टिके आरम्भसे ही मान रहा है। इसी कारण भारतीय शास्त्रोंने स्त्रीको रक्षयित्री, सर्वकारणमयी, सर्वमङ्गला आदि माना है। यही बात कुछ विभिन्नताके साथ यूरोप आदि देशोंके विद्वान भी स्वीकार करते हैं। डाक्टर वार्ड कहते हैं—'कई पीढ़ियों तक स्त्रीने पुरुषों पर प्रभुत्व जमाया तथा मातृत्व ही प्रत्यक्ष रूपसे स्वाभाविक व्यवस्था रही।"

"प्रारम्भमें सारी इन्द्रियां स्वयं उर्वरा थीं तथा लिंग भेद न था। सृष्टिका आदि सर्ग तत्वतः स्त्री जाति ही है। इसके उपरान्त पुरुष जातिका विकास हुआ है। यही कारण है कि हिन्दू साधकके निकट भी मां इतनी महत्व पूर्ण मानी जाती है। नारीकी पवित्रता प्राण-तुल्य अमूल्य है अतः इसके विरुद्ध कहना या कदम रखना अपनेको घृणास्पद बना लेना है।'

स्त्री सञ्चय बुद्धिसे सम्पन्न है। पुरुष उच्छृङ्खल एवं विनाशधर्मी है। राल्फके मतानुसार पुरुषका वीर्य व्यय स्वभावग्रस्त होनेके कारण क्षुद्र एवं दुर्भिक्ष पीड़ित है। स्त्रीका रजकोष भली भांति हृष्ट-पुष्ट एवं गम्भीर है। स्त्री अपने गांभीर्य गुणके कारण ही पुरुषकी अपेक्षा श्रेष्ठ होती है। वृहत्संहिताके अनुसार पुरुषोंकी काम वासनाकी तृप्ति सौ वर्षमें भी पूरी नहीं होती। एक मात्र शक्ति हीन होने पर ही इस काम लोलुपताका विनाश होता है किन्तु रमणी धैर्य के कारण काम वासनासे मुक्त हो सकती है। इसीसे स्त्रीका बल पुरुषोंकी अपेक्षा अधिक होता है। स्त्री स्वभाव गठनात्मक तथा पुरुष प्रकृति विनाशक होती है। जिस जगह गठन प्रभावका आधिक्य है, वहां स्त्रीकी उत्पत्ति, तथा जहां विनाशकी मात्रा प्रचुर है, वहां पुरुष सन्तानकी उत्पत्ति होती है। इसी कारण दुर्भिक्ष एवं युद्धोपरान्त पुरुष उत्पत्ति का आधिक्य रहता है और स्वच्छन्द विचरणके कारण बड़े घरोंमें कन्या ही अधिक पायी जाती हैं। स्त्रीका क्रीड़ा स्थल घर है और कर्तव्य सन्तान रक्षा। पुरुषके चञ्चल वीर्य-कीटोंके संयोगसे वह बहिर्मुखी हो जाती है।

मर्सियरका कथन है—'स्त्री स्वभावका झुकाव एक विवाहकी ओर होता है और पुरुषके अन्दर बहुपत्नीत्वके चिन्ह पाये जाते हैं। कुछ विद्वानोंका कथन है कि यदि पुरुषके अन्दर बहुपत्नीत्वके चिन्ह न पाये जायं तो सृष्टिका कार्य ही बन्द हो जाय। हमारी नजरमें पुरुषके भीतर बहुपत्नीत्वके भाव सृजनात्मक नहीं, वरन् समाजकी उच्छृङ्खलता एवं सर्वनाश तथा पतनके कारण हैं। यहूदी जातिका सिद्धान्त

है कि भगवान सब स्थानों पर नहीं रह सकते अतएव उन्होंने अपने स्थान पर माताओंको निर्माण किया। वास्तवमें बात भी ठीक है। मातृत्व ही स्त्रियोंका विधि निर्दिष्ट क्षेत्र हैं। बहुत बार ऐसा देखा गया है कि अनेक असंयत स्त्रियां सन्तान सुख दर्शनके पश्चात् पुनः धर्म पथ पर आ गयीं हैं। डाक्टर जिना लोमकोको जो इटलीकी सम्भ्रान्त रमणी हैं, कहती हैं—'स्त्रीका धर्म अन्तर मुखीनता है। पुरुषका धर्म है बहिर्मुखीनता।

स्त्री अन्यके लिये जीती और दूसरोंको अपनी अभिलाषाका केन्द्र बनाती है। पुरुष इसके बिलकुल विपरीत है। वह अपने आपको अपने सुखोंको और अपने धन्धोंको ही उस संसारका केन्द्र बना लेता है, जिसमें वह रहता है। क्रिया शील और संयोगाकांक्षी वीर्य-कीट जिनमें बहिर्मुखीनताके चिन्ह पाये जाते हैं, पुरुषके स्वाभाविक गुणोंको प्रकट करते हैं। कोषजन्य निष्क्रम अवस्था स्त्रीको एकान्त गृह जीवनकी ओर उन्मुख करती है। स्वार्थ-परता गुणमें स्त्री समुदाय पुरुषकी अपेक्षा श्रेष्ठ है। पुरुषके साथ जीवन संग्रामका प्रश्न है किन्तु स्त्रीके साथ सञ्चयका प्रश्न है स्त्री भविष्यकी कर्त्री है। स्त्री, जातिका मूलधन है। मूलधनके नाशसे समाजका सर्वनाश हो जाता है। वर्तमानके क्षणिक सुख भोगोंमें पुरुष भविष्यको पूर्ण रूपसे नष्ट भ्रष्ट करा रहे हैं।

विन्ध्याचल

श्री राजनारायण पाठक

भूगोल शास्त्रके सिद्धान्तसे विन्ध्याचल पर्वतमाला हिमालयसे अधिक प्राचीन है। इसकी चट्टान कठिन और ठोस है। यह पर्वतमाला भारतको दो भागोंमें बांटती है। उत्तरका भाग आर्यावर्त और दक्षिणी भाग दाक्षिणात्य कहलाता है। यह पर्वतमाला पश्चिममें बम्बई प्रान्तसे आरम्भ होकर पूर्वमें गंगा नदीके तट तक स्थित है। ऐसा प्रतीत होता है मानो यह गंगाके चरणमें नतमस्तक होकर अपने पूर्वार्जित पापोंका प्रायश्चित्त कर रही है। पुराणोक्ति है कि हिमालयको नगराजकी उपाधि मिलनेसे विन्ध्याचलको जो तब तक सर्व श्रेष्ठ था क्रोध हुआ। इसने अपना मस्तक इतना ऊपर उठाया कि आकाश-मार्गमें सूर्यका रथ अवरुद्ध हो गया। सर्वत्र हाहाकार मच गया। सूर्यके रुक जानेसे आर्यावर्तमें अन्धकार छा गया और दाक्षिणात्यमें आग जैसी लू चलने लगी, जिससे जीव-जन्तु व्याकुल हो उठे। देवताओंने विन्ध्याचलके गुरु स्थविर अगस्त्यजीसे विनयकी। दयालु अगस्त्य देवताओं और साधुओंके परित्राणके लिये विन्ध्याचलके निकट गये। गुरुको सामने देख विन्ध्याचलने साष्टांग प्रणाम किया। गुरुने उससे दाक्षिणात्य जानेका मार्ग मांगा। विन्ध्याचल लेटा रह गया और गुरुको जानेका मार्ग दिया। जाते समय गुरुने उसे आज्ञा दी कि जब तक मैं दाक्षिणात्यसे न लौटूं तब तक तुम इसी भांति लेटे रहना। आज्ञाकारी विन्ध्याचलको अपने गर्व और अनुचित ईप्साके लिये आज भी प्रायश्चित्त करना पड़ रहा है।

उपर्युक्त पुराणोक्ति अन्ध धार्मिकतासे ओत-प्रोत है। उस अलंकृत उक्तिमें जो सत्यता छिपी है वह भौगोलिक सत्यतासे भिन्न नहीं है। भूगोल हमें बतलाता है कि विन्ध्याचलकी उत्पत्ति ज्वालामुखी पर्वतसे है। उस समय ज्वालामुखीसे अग्नि, लावा (lava) धुएं तथा अनेक द्रवित पदार्थ भूगर्भसे विस्फोटके साथ बाहर निकले थे। अवश्य ही आर्यावर्तमें धुएं और बादलोंसे तब आकाश ढक गया होगा। सूर्य तिरोहित हो गया होगा। आर्यावर्तमें अन्धकार छा गया होगा और दाक्षिणात्यमें आगकी लपटसे ग्राम और नगर नष्ट हो गये होंगे। सारा दाक्षिणात्य वीरान हो गया होगा। कालोपरान्त जब विस्फोट बन्द हुआ होगा तो सर्वप्रथम अगस्त्य मुनि हीने दाक्षिणात्य जानेका मार्ग ढूढ़ निकाला होगा और उस वीरान दाक्षिणात्यको फिरसे बसाया होगा। यही कारण है कि अगस्त्य ऋषि दक्षिणदिशाके स्वामी समझे जाते हैं और विन्ध्याचलको पार करनेके कारण उसके गुरु समझे जाते हैं।

इस कल्पनासे विद्वान पाठक चाहे जो अर्थ निकालें पर इतना तो निश्चित है कि वह विन्ध्याचल आज प्रशान्त निद्रामें बेहोश पड़ा हुआ है। नहीं तो आज उसके वक्षस्थल पर पत्थरोंको तोड़ तोड़ कर जो इमारतें बनी हैं उसके कलेजेको छेद कर जो पोखरे तैयार किये गये हैं, वह कभी भी उसे क्या सह्य होता? उसने अपनी कायाको कठोर बना कर उग्र तपस्या की है। उसकी इस उग्र तपस्याका फल यह

हुआ कि आदि शक्ति भगवती दुर्गाने उसके शरीर पर अपना निवास स्थान बना कर उसे पवित्र कर दिया। वह विशिष्ठ निवास स्थान सारे हिन्दू भारतका प्रसिद्ध तीर्थ क्षेत्र हो गया। यही क्षेत्र अब विन्ध्याचल कहलाता है। यह छोटा सा कसबा संयुक्त प्रान्तमें मिर्जापुरसे छः मील पश्चिम गंगाके तट पर स्थित हैं। इसके दक्षिण ग्रैण्ड ट्रङ्क रोड गई है। कलकत्ता और दिल्ली यहांसे प्रायः समान दूरी पर हैं। यहां ई० आई० रेलवेका एक छोटा स्टेशन भी है! यहां एक्सप्रेस या मेल ट्रेन नहीं ठहरती हैं। एक्सप्रेस या मेलके यात्रियोंको मिर्जापुरमें ही उतर जाना पड़ता है और वहांसे वे टमटम पर विन्ध्याचल आते हैं। टमटम भाड़ा सिर्फ चार आने देने पड़ते हैं। जो यात्री मिर्जापुर उतरते हैं उन्हें मिर्जापुरके इर्द गिर्द अनेक दर्शनीय चीजें देखनेको मिलती हैं। मिर्जापुर शहरमें गंगा किनारे सुन्दर घाट बंधे हैं। यहांका घण्टाघर भी दर्शनीय है। शहरसे दो मीलकी दूरी पर टण्डा जलप्रपात दर्शनीय है। इसी जलप्रपातसे शहरमें नलके पानीका प्रबन्ध है और विद्युतसे विन्ध्याचल तक रोशनी पहुंचायी गयी है। कालीन, दरी, पीतलके बर्तन, चूना बनाना, लाह वा कपड़ा बनाना और पत्थरका काम मिर्जापुरके खास उद्योग धन्धे हैं।

विन्ध्याचलमें सफाईका प्रबन्ध मिर्जापुर म्युनिसपैलटीसे ही होता है। इस प्रसिद्ध क्षेत्रकी सड़कें बड़ी तंग हैं। यहांकी आबादी लगभग एक हजारके है। यहां डि० बोर्डका एक दातव्य औषधालय है जहां कुष्ट रोगका विशेष रूपसे इलाज होता है। यहां का सार्वजनिक पुस्तकालय जनताकी अभिरुचिका परिचायक है। छोटी सी मण्डीमें सभी प्रकारकी शाक भाजी बिकती है। भोजनकी वस्तुएं शहरकी अपेक्षा शुद्ध मिल जाती हैं। किसी किसी कुएंका पानी खारा है अन्यथा यहांका पानी सुस्वादु और पाचन शक्ति वर्द्धक है। यहांकी जलवायु विषम है। शीतकालमें भयानक सर्दी पड़ती है और ग्रीष्ममें लू चलती है। यहांकी शारदीय शोभा देखने योग्य है।

शाक्तोंके प्रधान तीन तीर्थोंमें विन्ध्याचलका स्थान सर्वश्रेष्ठ है। यों तो हिमालय वासिनीको जैसे नेपाली लोग प्रधानता देते हैं वैसे ही आसाममें कामाख्याकी भगवतीको आसामी जनता सिद्ध पृष्ठ मानती हैं। पर दुर्गा सप्तशतिके निम्नलिखित श्लोकसे विन्ध्याचल ही सिद्ध पृष्ठका आदि स्थान प्रमाणित होता है। "नन्द गोप गृहे जाता यशोदा गर्भ सम्भवा। ततस्तौ नाशयिष्यामि विन्ध्याचल निवासिनी।" यही वह विन्ध्याचल है जहां यशोदाके गर्भसे उत्पन्न कन्या दुष्ट कंसके हाथसे उड़ कर आयी और पश्चात् शुम्भ और निशुम्भ राक्षसोंके वधका कारण हुई। वही कन्या विन्ध्यवासिनी भगवतीके नामसे प्रख्यात हुई।

विन्ध्याचलमें यह मन्दिर गंगातटसे दक्षिण एक सौ गज की दूरी पर स्थित है। मन्दिरका निर्माण आधुनिक ढंगसे हुआ है। ऊपरका छत चौरस है। चारों तरफ बरामदे हैं। संगमर्मरी फर्शमें श्वेत और श्याम पत्थरोंका सम्मिश्रण शतरंजके घरको मात कर देता है। मन्दिरमें प्रवेश और निष्काशनके दो मार्ग हैं। दोनों द्वारमें एक एक इंच मोटे ठोस पीतलके किवाड़ लगे हैं। मन्दिरमें प्रकाश आनेके लिये मन्दिरके भीतर छतमें एक गज लम्बा और आधा गज चौड़ा एक छेद छोड़ दिया गया है। इससे मन्दिरमें अधिक भीड़ होने पर भी दर्शकोंको दमघुटनेका सा अनुभव नहीं होता। सिंह वाहिनी भगवती पश्चिमाभिमुख हैं। भगवतीके ठीक सामनेकी दीवारमें एक छोटा सा छेद है जिससे मन्दिरका कपाट बन्द होने पर भी दर्शकोंको माके दर्शन हो जाते हैं।

वर्षमें चार बार यहां अधिक धूम-धामसे पूजा होती है। शारदीय और वासन्ती पूजा तो अपनी विलक्षणताके लिये और भी प्रसिद्ध है। इस समय समस्त भारतके विद्वान और पण्डित यहां आते हैं। उनका पूजन एक दूसरेके लिये नवीनता लिये रहता है। मन्दिरके चारों और बरामदेमें, प्रांगणमें सर्वत्र पाठ कर्त्ताओंका आसन जम जाता है। कोई मन्त्र सिद्ध करते हैं, कोई कील-कवच-अर्गला सहित सप्तशतीका सम्पुट पाठ करते हैं; कोई तन्त्र और मन्त्रका उत्कीलन करते है, कहीं हवन कुण्डमें स्वाहा स्वाहाके साथ आहुतियां पड़ती हैं और कोई घण्टा और डमरू बजा बजा कर मानों मा को प्रशान्त निन्द्रासे जगानेका प्रयत्न करता है। पर माकी थकावट राक्षसोंसे युद्धकी श्रान्ति—अभी तक मिटी नहीं है इसी लिये शून्य वायु मण्डलमें वह करुण पुकार फैली जाती है और उसकी प्रतिध्वनि मानों कानोंमें कहती है—पुजारी, तुम्हारा यह आडम्बर जब तक नहीं मिटेगा, मा की निद्रा नहीं टूट सकती।

विन्ध्याचलका यह भाग त्रिकोण क्षेत्रमें है। तीनों कोण पर तीन देवियां हैं। विन्ध्यवासनी भगवतीसे तीन-तीनमील दूर पर दो और भगवतीके स्थान हैं। एक तो काली खोह दूसरा अष्टभुजा दुर्गाजीका स्थान है। जो यात्री तीनों देवियोंका दर्शन करते हैं उनके लिये त्रिकोणकी यात्रा होती है।

यह यात्रा विन्ध्यवासनी भगवतीसे आरम्भ होती है। यहांसे तीन मील पश्चिम-दक्षिण विन्ध्याचल पर्वतके निम्नाञ्चलमें कालीखोह है। यहां कालीका विकराल रूप है। रक्तबीज राक्षसका संहार करनेमें इसी कालीने दुर्गा देवीको सहायता दी थी। इस स्थानमें एक कुआं है जिसके पानीमें केलशियम मिला हुआ है। अतएव पानी अधिक हलका और पाचक है। इस कालीखोहसे निकलकर पहाड़पर चढ़ना होता है। चढ़ाई तो कम है पर है कठिन। सिर्फ १२३ सीढ़ियां हैं। प्रति सीढ़ीकी ऊंचाई आठ या दस इञ्चके लगभग है। सीढ़ियां चढ़ जाने पर ऊपर चौरस मैदान नजर आता है जिसमें घास की लुभावनी हरियाली है। कहीं-कहीं शमीवृक्ष तथा और भी जङ्गली पौधे मार्केका दृश्यउपस्थितकरते हैं। ऊपर चढ़नेपर यह विन्ध्याचल पर्वत नहीं, प्रत्युत एक पठार प्रतीत होता है। इसकी ऊंचाई समुद्र तटसे ३००० फीटसे अधिक न होगी। चौड़ाई एक मील और लम्बाई तो १००० मीलके लगभग है। इस पठार पर अब कई इमारतें बन गयीं हैं। कितने विनोद स्थान बने हैं। भजनालय, विश्रामालय, तरुकुटीर आदि सुन्दर सुन्दरभवनोंसे लुभावने दृश्य उपस्थित हो जाते हैं। उस पठार पर थोड़ी दूर चलनेके बाद एक पोखरा मिलता है जिसका पानी गेरू रङ्गका है। यह भी क्रीड़ा स्थल है। यहांसे एक मील पश्चिमोत्तर दिशामें एक निर्झरणी है जिसको सीताकुण्ड कहते हैं। सचमुच इस कुण्डका नाम सार्थक है क्योंकि इसका जल शीतल है और इसमें पाचन शक्ति भी कम नहीं है। पर यह सीताकुण्ड मुङ्गेरके सीताकुण्डसे भिन्न है। मुङ्गेरमें कुण्डसे ही स्रोत निकलता है। पर यहां पहाड़से एक छोटी-सी निर्झरणी निकलती है जिसका जल उस कुण्डमें जमा होता है। यह कुण्ड प्राकृतिक नहीं मनुष्य-कृत है पर प्राकृतिक स्थानमें होनेके कारण अपनी नैसर्गिक शोभामें अद्वितीय है।

उक्तकुण्डसे थोड़ी दूर पूर्व अष्टभुजा भगवतीका रमणीक स्थान है। भगवती एक तङ्ग गुफेमें हैं जिसमें दो द्वार हैं। भीतर सीधे खड़े होनेकी गुञ्जाइश नहीं है। साधनाके लिये यह बड़ा ही उत्तम स्थान है। यहांसे नीचे उतरनेके लिये सीढ़ियां बनी हैं। नीचे आनेपर एक धर्मशाला मिलती है और छोटे-छोटे अनेक भवन मिलते हैं। यहां टमटमका अड्डा है। जहांसे विन्ध्याचल ग्राममें आनेके लिये चार आने पैसे लगते हैं।

यात्रियोंके लिये स्टेशनके निकट एक धर्मशाला है। दूसरी खत्री धर्मशाला मन्दिरसे थोड़ी दूरपर है, यह खत्री धर्मशाला अच्छी है। यहां यात्रियोंको हर प्रकारकी सुविधा दी जाती है। पर जैसे गुलाबमें कांटे खटकते हैं वैसे ही इसके कुएंका खारा पानी बड़ा बुरा लगता है। यात्रियोंको पीनेके लिये गङ्गा-जल या स्टेशनके निकटस्थ कुएंसे पानी मंगाना पड़ता है। प्रति घड़ा पानीके लिये एक आना पैसा देना पड़ता है।

अमीर और रईसोंके ठहरनेके लिये पहाड़ पर एक सेनिटोरियम है। सेनिटोरियम तक मोटर भी जा सकती है क्योंकि सड़क काफी चौड़ी है। पहाड़पर हरिणोंका शिकार भी किया जाता है। बाघ और चीते भी यद्यपि बहुत हैं पर आज तक यह कहीं भी सुननेमें नहीं आया कि उनसे किसी यात्रीको कष्ट हुआ हो। लोगोंका विश्वास है कि माकी महिमाके प्रभावसे कोई भी हिंसक जन्तु उनके भक्तोंको कष्ट नहीं देता। उक्त सेनिटेरियम सरकारी है। उसमें ठहरनेके लिये मिर्जापुर के जिलाधीशसे अनुमति लेनी पड़ती है और ठहरनेकी फीस देनी पड़ती है। यह स्वास्थ्यवर्धक स्थान अवश्य है। यहांसे गङ्गाका दृश्य बड़ा मनोहर मालूम पड़ता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो विन्ध्यवासनी भगवतीकी हरे किनारेकी सफेद साड़ी धूपमें सूख रही हो।

यहां अनेक चमत्कारिक किम्वदन्तियां सुननेमें आती हैं। कहते हैं कि जिस ठेकेदारने इस सेनीटोरियमको बनाना शुरू किया था उसे एक दिन कुलियोंने खबर दी कि नींवके गड्ढेमें एक जगह एक भींगी लंगोटी और जल भरा कमण्डल रखा है। उसने उसकी उपेक्षा कर उसे वहांसे हटा दिया और कुलियोंको पूर्ववत काम करनेकी आज्ञा दी। दूसरे दिन रातमें उसे स्वप्नमें मालूम हुआ कि वह किसी सिद्ध महात्माका समाधि स्थान है। उसे नींव खोदनेकी आज्ञा न मिली। पर वह ठेकेदार क्योंकर स्वप्नकी बातोंपर विश्वास करता। उसने अपना काम जारी रखा। परिणामस्वरूप वह थोड़े ही दिनोंमें सपरिवार पञ्च तत्वको प्राप्त हो गया।

एक और दन्त कथा कालीखोहके सम्बन्धमें है। कालीके विस्तृत मुखको देखकर एक सेठके मनमें यह बात समायी कि यदि इनके मुंहमें मिठाई रख दूं तो भगवतीकी कृपा मुझपर अधिक होगी। उसने मिठाई डालना आरम्भ किया। जितनी मिठाइयां उसके पास थी सब डाल दी गयी। उसने देखना चाहा कि अब और कितनी मिठाई मंगानेसे मुख भर सकता है। यह सोचकर उसने अपना हाथ भगवतीके मुखमें डाला शीघ्र ही उसको ऐसा अनुभव हुआ कि किसीने उसके हाथमें काट लिया। वह बेचारा वहीं गिरकर मर गया। उसकी मृत्यु उसके पाखण्डके दण्ड स्वरूप हुई अथवा उसकी

सरल भक्तिपर-रीझकर मा कालीने सदाके लिये उसे अपनी गोदमें आश्रय प्रदान किया-यह कौन कह सकता है ?

स्वास्थ्य प्रवर्धनके लिये विन्ध्याचल जितना अच्छा है उससे अधिक उपयुक्त अभीष्ट-सिद्धिके लिये ही है। इसी लिये यहां साधकोंकी भीड़ लगी रहती है। क्या ही अच्छा होता यदि यहां साधक गण आदिशक्ति जगत जननीसे निवेदन करें-मा, तुम अपनी प्रतिज्ञा याद करो—इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति। तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम्—देखो दानवोंकी शक्ति बढ़ रही है। परतन्त्रताकी जञ्जीरने हमें बांधकर रख दिया है। हमारा रक्तशोषण तो हो ही चुका अब धर्म पर सङ्कट आ पहुंचा है। आओ मा! शीघ्र अवतार लो और फिर एक बार दिखा दो कि तुम्हारे सामने शुम्भ और निशुम्भ मृतवत हैं। आज एक नहीं अनेक शुम्भ और निशुम्भ तुम्हारी सृष्टिके संहार कार्यमें संलग्न हैं। फिर भी तुम्हारी यह समाधि नहीं टूटी। यदि हमारा त्राण तुझे अभीष्ट नहीं हो तो कमसे कम ऐसा विस्फोट पैदा करो जिसकी ज्वालामें संसारके सभी अमङ्गल और पाप भस्म हो जांय और हम शुद्ध अन्तःकरणसे बोल सकें "या देवी सर्व भूतेषु शान्ति रूपेण संस्थिता नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः।"

प्रेरणा

श्री श्रमजीवी

(१)

"सोहन, सयाने हो चले हो। सिर्फ चार सालकी बात है। एम०ए० तो कर ही लो और इस तरह मेरे दिलकी तमन्ना भी पूरी हो जाय नासमझ तो हो नहीं कि तुम्हें बुराई-भलाई समझायी जाय। हां, यह ख्याल रखना होगा कि आये दिन तुम्हारे मां-बाप तुम्हारी शिक्षाके लिये जो कुछ भी पाई-छदाम खर्च करने जा रहे हैं वह अपना पेट काट करके ही। घरकी स्थिति तुमसे छिपी नहीं, भई, यह देखना कि कहीं अमीरजादोंके साथ पड़कर तुम्हारी पढ़ाई चौपट न हो जाय क्योंकि अमीरोंके लड़के आम तौरसे सुस्त एवं ऐयाश मिजाज होनेकी वजहसे बराबर इस टोहमें रहते हैं कि कोई गरीब लेकिन तेज चुस्त मेधावी स्टूडेण्ट साथीकी शक्लमें मिल जाये और वे उसे अपने रंगमें रंगकर उसका मानसिक शोषण करते फिरे। "ठीक है, जाओ।" बाबूजी की ये बातें आज भी मुझे शब्दशः याद हैं और याद है मुझे अपनी सारी पिछली प्रतिज्ञायें जिन्हें इस उपदेशकी प्रतिक्रिया कह सकते हैं। यौवनकी आंधीमें पैर जमानेकी सारी कोशिशें भी याद हैं। जवानीकी जमुनामें डूबना-उतराना भी याद है, पग-पगपर फिसल जानेकी घड़ियां भी साकार हो उठती हैं। मुझे याद है वह दिन भी जब पिताजी मेरे इम्तहानका नतीजा सुनकर फूले नहीं समाते थे, उनके पैर जमीन पर न पड़ते थे। तपस्वीकी तपस्या सफल हुई और साधककी साधना भी। जैसे परीक्षा फलकी इन्तजारीमें बैठे रहे हों क्योंकि उनकी यह साध ज्योंही पूरी हुई त्योंही उनके दिन भी पूरे होते हुए नजर आये। अर्थात वे चल बसे। पेड़ तो लगा दिया किन्तु फल न खा सके। मगर आप यह नहीं कह सकते कि बात दिलकी दिलमें रह गयी। पिताजीकी आकांक्षा भी तो कुछ और न थी। वह तो गायत्री मन्त्रकी तरह गीता पाठ किया करते थे। खैर उनकी उनके साथ और मेरी मेरे साथ।

हां, तो बाबूजी इज्जत आबरु लेके चल दिये, रह गया मैं और मेरे पीछे एक पूरी पल्टन मां, भाई, बहिन, बीबी-बच्चे जिन्होंने पिताजीके बाद मेरी नींद सोने और जागनेकी प्रतिज्ञा कर ली थी। मेरे उठने पर उठनेवाले और मेरे बैठनेपर बैठने वाले। बड़ी मुश्किल। निबाहना पड़ेगा ही चाहे रोवें चाहे गावें। मजबूरी भी तो कोई चीज होती है। ठीक है घरके बूढ़े-बुजुर्ग या सरदारके नाते और कौन था मेरे घरमें अब—जी हां, तो चलना शुरू किया जिन्दगीकी राहपर और चलनेसे ज्यादा सोचना क्योंकि ऐसा करनेसे जरा बहुत आनन्द मिलने लगता था।

(२)

"कवितायें तो आये दिन अच्छेसे अच्छे कवि भेजा करते ही हैं। हम सम्पादकोंके पास 'अमेचर' कहानीकारों के यहांसे कहानियोंका भी पैकेट प्रतिदिन आता ही रहता है। कुछ स्वतन्त्र, और कुछ मनोरंजक लेख अपने दोस्त लेखकोंसे मिल ही जाता है—अतः आम तौरसे हम 'मैटर' की चिन्तासे बरी रहते हैं। यह जरूर है कि अच्छे कहानी-

कारोंकी कहानियां जब आ जाती हैं तो थोड़े बहुत पुरस्कार पर सौदा पटा लिया करते हैं। हम जरा सी सहानुभूति प्रदर्शित कर देते हैं और बेचारे भावुक कलाकार पानी पानी हो जाते हैं।" सम्पादकजीने कहा।

"लाओ भई सम्पादक जो भी सही—जीवनकी वास्तविकतायें हैं कि जिनके आगे झुक जाना पड़ता है—"मैंने उत्तरमें कहा।

"आप यह सोचें कि अच्छे-अच्छे कलाकार हम लोगोंकी मुट्ठीमें रहते हैं और हम उन देवताओंकी कमजोरियोंसे फायदा उठाया करते हैं। हम यह सब कुछ करनेको लाचार किये जाते हैं। हम लोग, क्योंकि हमारी अपनी भी वास्तविकतायें हैं, मजबूरियां हैं, परिस्थितियां हैं और सब से बढ़ कर सिर पर व्यवस्थाका कोड़ा है। दुख होता है इन बातोंको दिमागमें लाते। हां, तो आपकी यह कहानी बहुत ही सुन्दर है और जो कुछ पुरस्कार रुपयोंकी शक्लमें हम दे सकते हैं वह बहुत कम है। संकोचको ताखपर हम लोग रख चुके हैं इसलिये हम आपसे कह सकते हैं कि ये पांच रुपये आपकी कहानीके पुरस्कार हैं।"

"कोई बात नहीं लाइये।" और मैंने रुपये जेबके हवाले किया। इतने हीमें सम्पादकजी बोले—"आप एक होनहार कलाकार हैं, आपके पीछे आपका एक अलग इतिहास है। आप एम० ए० है। हिन्दीको, हिन्दुस्तानको आपसे बहुत बड़ी उम्मीद है। १००) २००) की सरविस लग जाना आप जैसे मेधावीके लिये बायें-दायेंका खेल है। मगर नहीं। उस ओर आपका बिलकुल ध्यान ही नहीं है। आखिर आप आकाश-पाताल दिन-रात जो एक कर रहे हैं किसके लिये। उच्चकोटिके साहित्य-सृजनमें आप प्रयत्नशील हैं। आखिर यह सब कुछ हमी लोगोंके लिये तो आप कर रहे हैं। किसको अपने बीबी-बच्चेकी फिक्र न होगी मगर आप अपनी कलमके मौजमें मस्त। हम जानते हैं कि आपकी अपनी परिस्थितियां आपको अपना दास बना लेनेके फेरमें पड़ी हैं, मगर आप हैं कि जो बराबर उनपर हावी होते जा रहे हैं। देखिये हम तो परिस्थितियोंके दास बने हुए हैं। हम गुलाम हैं, आप आजाद हैं। यदि आप यह समझते हैं कि आप जैसे कुशल कलाकारकी कृतिका हम सही-सही मूल्यांकन कर सकते हैं तो यह आपका भ्रम हैं, माना कि हमारे दिल है, दिमाग है किन्तु दोनोंके बीचमें मजबूरीकी दीवार खड़ी है जिसको लांघ जाना हमारी शक्तिके बाहरकी बात है। हमें शर्म आती है ५) रुपया आपको देते।" सम्पादकमहोदयकी इन बातोंने मेरे पत्थरके दिलपर लकीर बनाके ही दम लिया। यह तो मैंने एक मिसालके तौरपर पेश किया और यह तो एक सम्पादकसे हुई मेरी बात-चीतका नमूना रहा। इस तरहकी कई मिसालें पेशकर सकता हूँ मगर यह सब कुछ किसके आगे—बाल-बच्चोंके आगे, बीबीके आगे? भाई-बहनके आगे? पत्नीके आगे? इन्हें मिसालनहीं चाहिये। उदाहरणोंसे इनके भूखे पेट भरनेको नहीं। इन्हें रोटी चाहिये, अच्छा कपड़ा चाहिये, उन्हें मेरी मस्तीसे क्या मतलब? मेरे व्यक्तित्वसे क्या मतलब? मेरे नामसे क्या, मेरे कामसे क्या? मेरी कहानियोंके पुरष्कारसे क्या, मेरे उपन्यासके रायल्टीसे क्या? सब तो है, अगर मेरी कहानीके पुरस्कारसे उनका कुछ रोज तक पेट न चल सका तो इनसे उन्हें क्या फायदा?

(३)

अब किसीसे यह बात छिपी नहीं रही कि मैं सब तरह से योग्य होते हुए भी अपने एक छोटेसे परिवारका पालन कर सकनेमें असमर्थ रहा। मुझे चौबीसो घण्टे अपने घरमें सवालोंका जवाब देते ही बीतता है। मुझे मेरे घरवालोंने एमरी बना रक्खा है और खुद बंगालके बाशिन्दे। कभी पोस्टमैनकी इन्तजारीमें बेचैन रहना पड़ता। आमदनीका जरिया गिना चुना किन्तु खर्चका ऐसा नहीं। बंधी हुई आमदनी और खुला हुआ खर्च। ऐसी सूरतमें पेट चलाना मामूली बात नहीं। कहनेका मतलब यह कि पेटकी समस्या अपनेमें एक विशेष महत्व रखती हुई मेरे सामने नजर आने लगी।

ऊब उठा, उकता गया, भाग खड़ा हुआ जीवनके संघर्षों से लोहा लेते-लेते। आखिर करता ही क्या और क्या करता कोई भी। एक साथ तरह-तरहकी मुसीबतोंका आये दिन सामना करना तो ठीक है और हर एक जवांमर्द करते ही हैं। कुछ जीत जाते हैं, कुछ हार जाते हैं। दुख है कि मुश्किलोंका जमकर मुकाबला न कर सका। ऐसी सूरतमें हार खानेके सिवा और कौन-सा चारा है। जीवनसे निराश होना अस्वाभाविक नहीं। घरकी हालत किसीसे छिपी नहीं। बाहरकी हालत चाहे बाहरवालोंसे, चाहे दुनियासे छिपी हो मगर मुझे तो उसके रग-रगके अध्ययन करनेका अवसर मिल चुका था। गरज कि फूटी आंखों में अपनेको दुनियामें और दुनियाको अपनेमें देखनेको तैयार न था। दुनियाकी जीवनकी समस्याओंका हल मेरे जैसे कमजोरके हाथोंसे होना सम्भव नहीं था।

निराशाकी एक हद होती है और जो उस हदको पार करता हुआ जिन्दगीके काफिलेके साथ चलते रहनेकी कोशिशें करता रहता है, उसकी क्या गति होगी यह सब जानते हैं। रंग-रंगकी तरकीबें सूझती हैं। किसी बातपर दिल राजी होता है तो दिमागको वह बात नापसन्द होने लगती है। मतलब यह कि दिल और दिमाग दोनोंमें समझौता हो जाना ऐसी मानसिक दशामें असाधारण होता है। दोनोंमें प्रतिस्पर्धा होने लगती है। आदमी एक और उसके कार्य प्रणालीके संचालन करनेकी लगामको हथियानेके लिये दिल-दिमाग दोनोंमें बुरी तरह दौड़ होने लगती है ऐसी उलझी हुई मानसिक दशामें एक ही सहारा नजर आता है। और वह है किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाना लेकिन इतने हीले जान बचती नहीं। कुछ-न-कुछ गलत-सही राय तो स्थिर करना ही पड़ता है। मैंने भी चट निश्चय कर लिया चलो, दूर हो दुनियाकी इन झंझटोंसे—दिल और दिमागके कारण मनके पेटमें कब्जियत हो गयी थी। इस बीमारीसे राहत अगर मिल सकती थी तो केवल पलायनकी दस्तावर पुड़िया सेवन करके ही, वह भी किया। सोचा जिसपर जो बीतेगा वह अपना देख लेगा। जिन्दगी भरके लिये किसी का ठीका तो लिया नहीं।

(४)

जज महोदयने, मेरे निराश मनने, मेरे संघर्षोंसे टूटे हुए दिलने, मेरे असफल मानवने आखिर फैसला सुना ही दिया कि रातके ग्यारह बजे गङ्गाकी गोदमें शरण लो। वहीं मुक्ति मिलेगी।

ग्यारह बजे किरायेकी एक किश्ती पकड़ी। उस पार पहुंच कर मांझीको कुछ पैसे दिये और उसे विदा किया। लगा जरा दूर तक अपनी नजर दौड़ाने। चारों तरफ सुनसान सांय सांय। अमावस्याकी रात। सूना नदी तट। वहीं स्तब्ध सा कुछ देर तक देखता रहा, यकायक सोचा जरा बीती बातों पर विचार करलें। जरा अपने जीवनके इतिहासके पन्ने तो उलट लें। क्या मैंने दिया दुनियाको और क्या मैंने लिया दुनियासे। मगर- अब दुनियासे अपना क्या वास्ता जो इन फिजूलकी बातोंमें पड़ने जाऊं। मगर खूब! अपने इतिहासका बहुत मोह जो था इसलिये मनमें एक कशमकश सी होती। रही लेकिन मेरा निश्चय इतना अटल था कि अपनी रीढ़की हड्डीको वह किसी भी अवस्थामें झुकने नहीं देना चाहता था। ऐसी किसी बातके सोचने की आज्ञा नहीं मिल रही थी मुझे। तो क्या मैं यहां अपने विचारकी विवेचना करनेके लिये आधी रातमें आया हूं या मेरा कुछ और काम है जिसे कि पूरा करना है। यह सोचते सोचते मैं धड़ामसे पानीमें कूदा, डूब जानेको ही था कि लगभग एक मीलकी दूरी पर दरियाके किनारे एक दीपक टिमटिमाता सा दीख पड़ा। मुझे ऐसा लगा कि उस टिमटिमाते दीपककी लौमें कोई अखण्ड शक्ति मुझसे कह रही हो, "अरे भाई सुन तो लो जरा, अब तो जाते ही हो। तुम्हें रोकता है कौन, और कौन रोकने वाला है इस दुनियामें।" मनकी कमजोरी भी क्या बला है। क्या न करना पड़ा इसके प्रभावसे! आत्म हत्या करनेको किसने तुम्हें मजबूर किया और आत्महत्या न करनेका आदेश तुम्हें किसने दिया? थी कोई शक्ति जो मेरे सामने आनेकी हिम्मत करती? मुझे अपने दिलके सामने झूठा साबित होना पड़ा।

यह लीजिये। दिल ही तो है। सोचा जरा सुन लें इनकी भी। खैर किसी तरह पहुंचे वहां जहां रह रहके दीया जल बुझ उठता था। देखा कि वहां एक झोपड़ी है। झोपड़ीका मालिक भी वहां है। वह अपनेको झोपड़ीका, चिरागका, श्मशानका मालिक बताता है। वह इसलिये झोपड़ीमें रहता है कि अगर भूले भटके कोई मुर्दा रातमें आजाय तो दो पैसे मिल जायगें और वहां न रहे तो बेचारे मुर्देको आग कहांसे मिले। फिर वह तो वहां रात दिन, गर्मी, जाड़ा, बरसात हर मौसममें रहता है और आग तो हर वक्त झोपड़ीमें जलती ही रहनी चाहिये।

मुझे देखकर वह विशेष तो नहीं घबराया, हां यह जरूर उसने कहा और उसका यह कहना, उसका इस बातके लिए चिन्तित होना स्वाभाविक था कि साथवाले लोग कहां हैं? मुर्दा कहां है? यहीं झोपड़ीके पास आना चाहिये था। यहां जगह भी अच्छी है। आग चाहिये, दूं। मतलब यह कि बगैर मेरी सुने ही उसने इन बातोंको कह डाला। मैं चुप था। वह फिर अपने पुराने लहजेसे कहने लगा, "आग दूं बाबूजी मगर आप तो बड़े आदमी-से लगते हैं। हम गरीबोंको आप ही लोगोंका तो आसरा है। देखिये यह पेट है और एक इसके लिये मैं यहां रातको बाल-बच्चोंसे दूर भूत बनके बैठा हुआ हूं। भूत प्रेतकी भी हिम्मत मेरे नजदीक आनेकी नहीं पड़ती है। बाबूजी, घरमें बीबी है, बाल-बच्चे हैं—आमदनीका यही जरिया है।" इतना कहकर वह चुप हो गया।

सुनता तो रहा और यह अन्दाज भी लगाने लग गया कि आखिर इसका यह भाषण कबतक होता रहेगा। उसने सारी बातें बड़े ही प्राकृतिक ढङ्गसे कह डालीं। ताज्जुब नहीं

दिल दङ्ग रह जाये उसकी ये बातें सुनकर। मुझे लगा वह चुप है जैसे मुझसे कुछ जानना चाहता है। मैंने अपनी सारी बातें उससे कह डाली। वह मेरी बातें सुनता रहा चुप हो जानेपर उसने कहा—बाबूजी, वैसे तो आप लोगोंसे कुछ आमदनी हो जाया करती है मगर मर जानेका यह तरीका जो आपने निकाला,इससे रही सही आमदनी भी खत्म हो जायगी। मेरे बाल-बच्चे है। वे मर जांयगें भूखों। आप बड़े आदमियोंको कमी किस बातकी। यह कहिये कि पुराना तरीका जो दाह संस्कारका चला आता है इसीके द्वारा कितनोंके पेट भरते हैं। बाबूजी कोई गङ्गामें डूबके मरने लगे, कोई रेलकी पटरी पर कटकर तो हम गरीब गये। दाने, दानेके लाले पड़ जायंगे। क्यों गरीबोंकी रोटी मारते हैं?

डोमकी समझमें यह बात न आयी पर न आयी कि मैं क्यों आत्महत्या करने पर उतारू हुआ।

डोमकी इन बातोंने मेरे निश्चयको रद्द करनेमें सौ फी सदी मदद की। डोमकी बातें मेरी नसोंमें बिजलीकी तरह दौड़ गयीं। उसकी हालतपर दया आयी। उस डोममें मैंने उसके अभावमें भी आनन्द एवं मस्तीकी गहरी अनुभूतिको मूर्त रूपमें देखा। उसके कर्त्तव्यरत जीवनसे मैंने प्रेरणा ली, स्फूर्ति ली, गति ली उस मरघटसे। उस मरघटकी आगसे, उस मरघटके तपस्वीसे वह चीज हासिल की जिसके बलबूतेपर मैं आज जिन्दगीकी राह पर बेखटके, कामयाबीके साथ चला जा रहा हूं, बढ़ा जा रहा हूं।

—:o:—

प्राचीन भारतमें आठ प्रकारके विवाह

श्री कृष्णाचार्य

मानव समाजमें अन्य कोई विषय अध्ययनकी दृष्टिसे इतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना विवाहकी प्रथा। आज संसारमें ऐसी एक भी सभ्य या असभ्य जाति नहीं है जिसमें विवाहकी प्रथा न पायी जाती हो। जिस समय मनुष्य जङ्गली था और सभ्यताके कोई भी चिन्ह उसके पास नहीं थे उस समय वह किस प्रकार नारीको अपने पास रख सकता था। कहने का तात्पर्य यह है कि विवाहकी संस्थाके अध्ययनसे हम इसके ऐतिहासिक विकासको समझ सकते हैं। आज विवाहकी प्रथा हमारे जीवनमें इतनी घुल-मिल गई है कि हमें इसमें अनोखापन कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। किन्तु जिस समय मनुष्यने अपनी बर्बर आदतोंको छोड़ कर शांतिपूर्वक स्त्रीको किसी नियम द्वारा ग्रहण करना सीखा होगा उस समय उसको अपने इस आविष्कार पर बड़ा ही आश्चर्य हुआ होगा। इस प्रथाके अध्ययनसे हम यह भी जान सकते हैं कि किस किस युगमें स्त्रीके साथ कैसा वर्ताव होता रहा है। धार्मिक पण्डित, वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक सभी इस बातको स्वीकार करते हैं कि विवाह करना धर्म है, भौतिक आवश्यकता है, और मानव जीवनको सरल बनानेका सबसे उत्तम उपाय है! ऐसा वह क्यों कहते हैं? इन सब बातोंका उत्तर इस प्रथाके ऐतिहासिक अध्ययनसे ही मिलेगा।

स्मृतियोंमें आठ प्रकारके विवाहोंका उल्लेख हुआ है, वह यह हैं—(१) ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच*। प्रथम चार प्रकारके विवाहों को प्रशस्त तथा अन्तिम चार प्रकारके विवाहोंको अप्रशस्त अर्थात् नियम विरुद्ध कहा गया है। यह आठों प्रकारके विवाह किसी एक समय एक साथ प्रचलित नहीं थे। ऐतिहासिक दृष्टिसे देखनेसे यह स्पष्ट हो जायगा कि समाजमें सर्व प्रथम पैशाच, फिर क्रमशः राक्षस आसुर आदि प्रकारके विवाहोंका प्रचलन होता गया। जैसे जैसे समाज आगे बढ़ता गया वैसे वैसे ही वह असभ्य और अनुचित ढङ्गोंको छोड़ विवाहके सुन्दर तरीकों तक कैसे पहुंचा यही बतलाना इस लेखका उद्देश्य है।

महाभारतमें उल्लेख हुआ है कि पहले विवाहकी पद्धति समाजमें प्रचलित नहीं थी। मनुष्य चाहे जिस स्त्रीको अपनी इच्छाके अनुसार पकड़ लेता था और अपनी शारीरिक शक्तिके बल पर स्त्रीको अपनी पिपाशा शांत करनेके लिये विवश करता था। इस प्रकारके विवाहको पैशाच कहा गया है और उसे आठों प्रकारोंमें सबसे अधम कोटिका माना गया है। जब मानव जङ्गली था और सभ्यताका

* ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः
गान्धर्वो राक्षसाचैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः॥ ३।२१, मनुस्मृति।

विकास नहीं हुआ था तब इसी प्रकारकी बातें सम्भव थीं; अतः स्मृतिकारोंने विवाहकी आदिम पद्धतिको परम्परामें निरन्तर याद रखनेके लिये आठ प्रकारोंमें गिन लिया। एक स्थान पर महाभारतमें लिखा है कि उत्तर कुरुओं तथा माहिष्मती देशमें विवाहकी कोई निश्चित पद्धति नहीं है। महाशय जौली भी लिखते हैं कि आपस्तम्ब और गौतमके सूत्रोंमें भी ऐसे अस्पष्ट संकेत हैं जिनसे ज्ञात होता है कि एक समय ऐसा था जब कि विवाहकी कोई निश्चित पद्धति नहीं थी। महाभारतमें यह भी लिखा है कि इस पशु प्रथा-का अन्त 'स्वेत केतु' नामक ऋषिने किया। ज्ञात होता है कि स्वेत केतुके युग तक समाजकी आवश्यकतायें बढ़ गयी थीं इन आवश्यकताओंकी पूर्ति समाजमें शांति स्थापनासे ही हो सकती थी; अतः कोई ऐसा मार्ग प्रस्तुत किया गया जिसमें बिना झगड़ेके स्त्रियां मिल जाया करें।

धीरे धीरे समाजने उन्नति की। अलग अलग मनुष्योंके समुदायने अपने अपने समुदायके स्वार्थके लिये सङ्गठन या एकताका मार्ग ढूंढ़ निकाला। जब सम्पत्तिको स्थावर रूपमें मनुष्य रखना सीख गये तब स्त्रियोंको भी स्थायी रूपमें रखने की आवश्यकताका अनुभव हुआ। अपनी अपनी उन्नतिके लिये एक एक गांववाले या कबीले और फिरके दूसरे फिरकों-को लूटने खसोटने लगे। इन युद्धोंमें पशु आदिके साथ स्त्रियां भी हाथ लगती थीं; आजके सभ्य संसारमें भी सैनिक स्त्रियोंको नहीं छोड़ते और मनमानी करते हैं। अतः उस समय यह सब होना आश्चर्यकी बात न थी। युद्धके बाद स्त्रियोंका भी बटवारा हो जाया करता था। इस प्रकार लूटमें लायी हुई स्त्रियोंसे विवाह करनेकी पद्धतिका नाम प्राचीन आचार्योंने 'राक्षस' रखा। महाभारतमें इस प्रकारके विवाहोंके उदाहरण मिलेंगे। अर्जुन सुभद्राको और कृष्ण रुक्मणीको इसी प्रकार युद्धमें जीतकर लाये थे। उस समय भी इस प्रकारके विवाहोंकी निन्दा अवश्य की जाती थी। महाराजा युधिष्टिरके सम्मुख राज-सूय यज्ञके समय शिशु-पालने श्री कृष्ण आदिको गाली इसी आधार पर दी थी और कहा कि यह लोग कबसे धर्माचार्य और सदाचारी बन गये, युद्धमें स्त्रियोंको लूटकर लानेवाले महापुरुष! यहां हमारा मतलब श्री कृष्ण और अर्जुनके प्रति व्यङ्ग करना नहीं है—हमारा तात्पर्य तो इतना देखना भर है कि इस प्रकारके विवाहकी भी निन्दा की गयी है तथा स्मृतिकारोंने भी इसे वर्जित माना है। ऐसे विवाहको कौन विधिवत् मानेगा जिनके सम्बन्धमें लिखा गया है:—

हत्वा छित्वा च भित्वा च क्रोशन्ती रुदतीं गृहात्
प्रसह्य कन्या हरणं राक्षसो विधिरुच्यते ॥३।३३

यहां इतना बतला देना आवश्यक है कि क्षत्रिय समाजमें इस प्रकारकी घटनाएं साधारण रूपसे होती ही आयी हैं। जहां किसी कन्याके रूप, यौवनकी चर्चा किसी शक्तिशाली सम्राट्के सम्मुख हुई कि युद्धकी तैयारी होने लगी! राज-पूतोंके समय तो ऐसे युद्ध बहुधा हुआ करते थे। काव्यकारों-ने कन्याका प्रेम नायकके प्रति प्रदर्शित करके पाठकोंके सम्मुख सहानुभूतिकी भावना पैदा कर दी है—अन्यथा यह शुद्ध रूपमें राक्षस विवाह ही है। मेरी समझमें ऐसी कन्याएं बिरली ही होंगी जो अपने पिता या भाईके शत्रुओंके हाथ पड़ना चाहती हों? यह प्रथा 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' कहावतकी परिचायक है। साथ ही यह भी सिद्ध होता है कि स्त्री सदैवसे अपनेको निर्बल तथा पुरुषोंके हाथकी कठपुतली ही सिद्ध करती आयी है; एक भी कथा ऐसी नहीं मिलती जिसमें किसी स्त्रीने पुरुषसे बलपूर्वक विवाह किया हो। अपनी इच्छा पूर्ण न होनेपर उन्होंने सदैवसे जल मरना या विषका प्याला पीना भर ही सीखा है। मनुने क्षत्रियके लिये राक्षस विवाह ही श्रेष्ठ माना है।

कुछ भी हो, नारीका महत्त्व बढ़ता ही गया। समाज अब नारीके अभावमें सुचारु रूपसे चलना पसन्द नहीं करता था। जब लूट खसोटमें स्त्री नहीं मिलती थी तब खरीदने तकका अवसर आया। आज स्त्रीको खरीदकर विवाह करना कितना ही निषिद्ध क्यों न माना जाता हो किन्तु ऐतिहासिक दृष्टिसे देखनेसे ज्ञात होगा कि नारीका मूल्य बढ़ गया था। मनुष्य धन उसी अवस्थामें व्यय करता है जब कि उसका कार्य उस वस्तुके बिना चल ही नहीं सकता जिसके लिये वह पैसेका बलिदान करनेको प्रस्तुत है। सम्भवतः मनुष्यने अब तकके अनुभवसे समझ लिया था कि स्त्रीपर बलसे राज्य नहीं किया जा सकता। जिस समय स्त्रीको खरीदा गया वह अवस्था जङ्गली अवस्थासे हजारों वर्ष आगे थी। स्त्रीका खरीदा जाना एक महान् क्रान्तिका द्योतक है। स्वच्छन्दता-पूर्वक कन्या तथा उसके पिता, भाई आदिको धनसे सन्तुष्ट करके विवाह करनेको आचार्योंने आसुर संज्ञा दी है। इति-हासमें इसके प्रमाण प्रचुर मात्रामें मिलेंगे। भीष्मने कुछ राजकुमारोंके लिये कन्याएं खरीदी थीं। धृतराष्ट्रकी पत्नी गांधारी तथा दशरथकी स्त्री कैकेयी भी क्रीता थीं। आज समय एक दम विपरीत है, दहेजके रूपमें पति ही पत्नीके पिता सम्बन्धी आदिसे धन लेता है। आज कन्या लेनेका अर्थ यह

समझा जाता है कि कन्याके माता-पितापर अहसान करना; तभी तो माता-पिताओंको योग्य वरकी तलाशमें पृथ्वी-आकाश एक करने पड़ते हैं। योग्य कहे जानेवाले पति विवाह-में विलायत जाने और पढ़ने तकका खर्च वसूल करनेकी चिन्तामें रहते हैं। किन्तु आसुर विवाहोंके समय पुरुष महाशय हाथमें थैली दबाए मनोनुकूल स्त्रीकी तलाशमें घूमते फिरते थे। आज यह प्रथा कितनी वि चत्र क्यों न दीख पड़े किन्तु उस समय यह स्वाभाविक था कि लड़कीके बदले धन लेना। आजकी उन्नत सभ्यता कामिनी और काञ्चनदोनोंका ही योग चाहती है। उस समय स्त्री धन थी (भार्या पुत्रस्य दासस्यत्रय एवा धनास्मृतः); आज पुरुष धन है।

किन्तु सभ्यताके विकासकी दौड़में क्रीता स्त्री भी प्रति-ष्ठित पदसे नीचे गिनी जाने लगीं और बौधायन जैसे प्राचीन सूत्रकार क्रीता नारीको (क्रीताद्रव्येण या नारी सा न पत्नी विधीयते) पत्नी रूपमें स्वीकार करनेको प्रस्तुत न थे। अतः धीरे धीरे यह भावना कार्य करने लगी कि अन्य जड़ द्रव्यकी भांति स्त्रीको भी धन नहीं समझना चाहिये। यह वह समय था जब धर्म जैसी वस्तुका समाजको परिचय मिलने लगा था। ऋग्वेदकालीन सभ्यता मूलतः प्रवृत्तिमूलक धार्मिक सभ्यता थी। यह वह समय था जब वयस्क स्त्री-पुरुष एक दूसरेको परखनेके बाद विवाह करते थे; एक साथ नाचते गाते थे, यज्ञमें स्त्री-पुरुष दोनों ही मन्त्रोंका उच्चारण करके समान भावसे आहुतियां देते थे। अतः धार्मिक भावना प्रधान जातियोंमें बलसे या खरीद कर लायी हुई स्त्रीके लिये और पुरुषोंके लिये भी इस प्रकारकी पद्धतियां आदर नहीं पा सकती थीं। सभ्यताके उदयके साथ संयम भी आपसे आप आ जाता है, अतः यह स्वाभाविक है कि युवा स्त्री-पुरुष एक दूसरेको प्रेमके बलपर ही, या स्थूल रूपमें ऐन्द्रिकताके सहारे हीप्राप्त करनेकी चेष्टा करें। वैदिक कालमें युवा स्त्री-पुरुषोंका ही विवाह होता था, समाजमें पुरुषके साथ समान रूपसे भाग लेनेकी स्त्रीको स्वतन्त्रता थी;अतः गुप्त प्रेम व्यव-हारको कैसे रोका जा सकता था, धीरे-धीरे प्रेमके परिपक्व होनेपर काम सम्बन्ध स्थापित हो जाना भी असम्भव न था। इस सम्बन्धके स्थापित हो जानेके बाद नव दम्पति समाजके सम्मुख प्रगट करते थे कि उन्होंने विवाह कर लिया है। विवाहकी इस गुप्त और प्रेमपूर्ण पद्धतिका शास्त्रीय नाम 'गान्धर्व' है। जन साधारण गान्धर्व विवाहको महा भारत और कालिदासके शाकुन्तलमें वर्णित उपाख्यानोंके आधारपर भली भांति जानता है। मेरी समझमें गान्धर्व विवाह ही वैदिक कालकी मुख्य विवाह पद्धति थी; बादमें उसी सम्बन्धको प्रमाणिक करनेके लिये अग्निके सम्मुख साक्षी देना तथा सप्तपदी आदि नियमोंका प्रचलन हुआ; धीरे धीरे गान्धर्व विवाह पद्धति जन साधारणसे उठ गया और वह केवल राजा महाराजाओंके लिये ही रह गयी। वहां इसका वास्तविक अर्थ, प्रेमका भाव, लोप होगया। इस प्रकारके विवाहको शास्त्रकारोंने वर्जित प्रकारोंमें ही रखा है। किन्तु वात्स्यायनने निर्भीकताके साथ यह कहा है कि विवाहका सर्वोत्तम प्रकार यही है; स्पष्ट है कि काम शास्त्रके इस विद्वानने धर्मके क्षेत्रसे अलग शुद्ध मनोवैज्ञानिक तथा शरीर-विज्ञानके आधारपर ऐसा सोचा और कहा। गृहस्थ जीवनमें उसने प्रेमके महत्वको पहिचाना तथा सराहा।

गान्धर्व विवाहका लोप हुआ किन्तु स्वयंवरकी प्रथाका उदय भी हुआ। इसका प्रारम्भिक इतिहास तो कुछ इस प्रकार है—जो लड़कियां अनाथ थीं, जिनका कन्यादान करनेवाला कोई न था, उनके लिये शास्त्रोंने आज्ञा दी है कि वह स्वयं योग्य पति ढूंढ़कर विवाह करलें, ऐसी स्त्रीको स्वयंवरा कहते थे। इस प्रकारके विवाहका सर्वोत्तम उदाहरण सावित्रीका विवाह है; वह रथमें बैठकर मनोनुकूल पति पाने निकली थी। किन्तु स्त्रियोंकी इस स्वतन्त्रताका अपहरण भी शीघ्रतासे हुआ। सावित्री और दुष्यन्तकी कथा महा-काव्य कालसे पहलेकी हैं। महाभारत और रामायणमें वर्णित स्वयंवर नामकेही स्वयंवर थे, क्या सीता रामको पहलेसे ही चाहती थी ? क्या सुभद्रा अर्जुनको पहलेसे ही चाहती थी ? और वरनेकी इच्छासे होता भी क्या ? इन विवाहोंमें एक विचित्र प्रकारकी शर्त रख दी जाती थी, जो उस शर्तको पूरा करता उसे ही वह लड़की दे दी जाती थी। यह तो एक प्रकारका द्यूतकर्म हुआ, क्योंकि जुएमें ही भाग्य देखा जाता है। संयोगिता और पृथ्वीराजकी घटना इसलिये प्रसिद्ध है कि उसको हम न तो स्वयंवर ही कह सकते हैं और न गान्धर्वही और न शुद्ध राक्षस ही, यद्यपि इन सब प्रकारोंका थोड़ा थोड़ा रूप इस विवाहमें है। राक्षस वह इस लिये है कि युद्ध करके पृथ्वीराज उसे पा सका, राक्षस इसलिये नहीं है कि संयोगिता पृथ्वीराजसे विवाह करना चाहती थी। यह विवाह स्वयंवर होते हुए भी स्वयंवर इसलिये नहीं है कि युद्ध हुआ और पिताकी सम्मति नहीं। गान्धर्व भी नहीं, केवल प्रेमसे गान्धर्व संज्ञा नहीं दी जा सकती है।

अब प्रथम चार प्रकार रह गये। इनमेंसे आर्ष और आसुरमें कुछ समानता है; आर्षमें कन्या क्रय तो नहीं की

जाती किन्तु वर एक जोड़ी गाय या बैल कन्याके माता-पिता को अवश्य देता है। यह एक तरह की भेंट है, सास ससुर को प्रसन्न करने के लिये। ऐसा ज्ञात होता है कि समाजमें आसुर विवाह पद्धति तो प्रायः उठ सी गयी थी किन्तु उसकी स्मृति, भेंटके रूप कुछ देने की प्रथा, चलती रही। किन्तु इस विवाहका विशेष महत्व नहीं है। वैसे यह विवाह उत्तम कोटिके विवाहोंमेंसे एक है। इस प्रकारके विवाह तक कन्या पक्षका महत्व बना रहा। दैव केवल ब्राह्मणोंके निमित्त था; कोई पुरोहित, जो यज्ञ कराता था, दक्षिणाकी तरह यज्ञ समाप्त कराने पर कन्या पा जाता था। यज्ञ-दक्षिणाके रूपमें कन्या प्राप्तिको दैव विवाह कहते हैं; क्योंकि यज्ञ केवल ब्राह्मण ही करा सकते थे इसलिये इस प्रकारका विवाह ब्राह्मणों तक ही सीमित रहा। इस प्रकारके विवाह का कोई ऐतिहासिक उत्तर नहीं दिया जा सका है। बहुत सम्भव है कि यजमान अपने पुरोहित पर यज्ञ कर्मकी सफल समाप्तिसे प्रसन्न होकर कन्या ही, अपनी प्रिय वस्तु, दानमें दे डालते थे। बहुत सम्भव है कि यज्ञ कराने वाले भी ब्राह्मण ही रहते रहे हों। इस ढंगके विवाह भी समाजमें टिकाऊ नहीं हुए। प्राजापत्य भी इसी तरह विशेषता पूर्ण पद्धति नहीं है। गम्भीरतासे देखा जाय तो ब्राह्म, दैव, आर्ष और प्राजापत्यमें कोई विशेष भेद नहीं है।

किन्तु सर्व सम्मत और वैदिककालसे लेकर आज तकके प्रचलित विवाहोंकी पद्धतिमें ब्राह्म ही सर्व श्रेष्ठ माना जाता रहा है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस प्रकारके विवाहके सांगोपांग अध्ययनसे हिन्दू संस्कृतिका पूर्ण ज्ञान हो सकता है। इस विवाहकी विशेषताओंकी जांच करनेसे पहले हिन्दू समाजमें विवाहका क्या महत्व है, यह समझ लेना चाहिये। यह तो सभी जानते हैं कि सोलह संस्कारोंमें विवाह संस्कार ही सर्व श्रेष्ठ संस्कार माना गया है; वैदिककालमें विवाह इसलिये किया जाता था कि उसके अभावमें यज्ञ-कर्म सफल नहीं हो सकता। किन्तु आगे चल कर इसके आदर्श बदले। मनु चारों आश्रमोंमें गृहस्थको श्रेष्ठ मानते हैं? क्यों? गृहस्थ धर्ममें लोक कल्याणकी भावना है, विवाहसेही तो गृहस्थ धर्मकी स्थापना हो सकती है। दूसरे महाभारत,रामायण,स्मृति,निबंध,पुराण भी सृष्टि पर बड़ा जोर देते हैं—नर और नारीके संयोगसे ही सृष्टि संभव है। संक्षेपमें 'प्रजा' 'रति' और नरकसे बचनेके लिये ही विवाह किया जाता था। स्मृतिकारों और निबन्धकारोंका ऐसा ही विचार था। वात्स्यायन विवाहको धर्म अर्थ और कामका साधन मानता है। इस आचार्यने वैदिक एवं स्मृति युगके दृष्टिकोणका निचोड़ सम्मुख रख दिया है।

कुछ भी हो, हिन्दू बहुत दिनोंसे विवाहको समाजका परम पावन कर्तव्य समझते आये हैं। विवाहके यह आठों प्रकार हैं तो अत्यन्त प्राचीन (गृह्य सूत्रों, धर्म सूत्रों और सब स्मृतियोंमें इन प्रकारोंका उल्लेख है)—पी० वी० काणे तो यहां तक कहते हैं कि इन सब प्रकारोंकी जड़ वैदिक साहित्यमें मिलती है —किन्तु सब शास्त्र ब्राह्म विवाहको ही श्रेष्ठ मानते आये हैं। ब्राह्म विवाहको ही विवाह, परिणय, उपयम और पाणिग्रहण नामसे जन-साधारणके बीच पुकारा जाता है। इन शब्दोंको माना तो पर्यायवाची ही जाता है किन्तु यह हैं सब ब्राह्म विवाहके ही विभिन्न तत्व। अपनी भार्या बनानेके उद्देश्यसे किसी कन्याको अपने यहां विधि पूर्वक ले आनेकी क्रियाको विवाह कहते हैं; अग्निकी प्रदक्षिणा करनेकी क्रियाको परिणय करते हैं; कन्याको अपने अंगके रूपमें स्वीकारोक्तिको उपयम कहते हैं; पत्नी बनानेके लिये कन्याका हाथ पकड़ कर जीवन साथी बने रहनेकी प्रतिज्ञाको पाणिग्रहण कहते हैं। यह सब क्रियायें ब्राह्म विवाहके विभिन्न भाग हैं।

ब्राह्म विवाहके अनुसार सवर्ण अर्थात एक ही जातिका होना आवश्यक है; किन्तु गोत्र भिन्न होने चाहिये। वर्णकी एकता पर इसलिये जोर दिया जाता है कि एक ही वर्णमें सांस्कृतिक धरातल दोनों पक्षोंका एक ही रहता है। गोत्रसे तात्पर्य वंशके मूल उद्गमसे है, दोनों पक्षोंके वंशोंका मूल एक होनेसे नस्ल उत्तम नहीं रहती। दो दूरस्थ प्राणियोंके संयोगसे उत्पन्न सन्तानसुन्दर और शक्तिवान होती है। कुछ स्थानों पर मातृ, पितृ, और प्रमातृ पक्षोंके गोत्रों तकसे बचानेका प्रयत्न करते हैं, किन्तु साधारणतः वरका गोत्र ही बचाया जाता है; इसके अतिरिक्त कुण्डलीके ग्रहों, नाड़ियों आदिका भी मेल बैठाया जाता है। इतना होनेके बाद विवाहका मुहूर्त निश्चित किया जाता है। हिन्दू विवाह पद्धतिमें, विशेष कर ब्राह्म विवाहमें यह आवश्यक नहीं है कि वर और वधू विवाहसे प्रथम एक दूसरेको देख लें, आज कल तो ऐसा करना सन्तानका निर्लज्ज होनेका प्रमाण है। मुसलमानोंके आनेसे पूर्व क्या होता था, यह पता नहीं। हाँ, आज कल इतना सुधार अवश्य हुआ है कि नापितके स्थान पर वर और वधू पक्षके निकट - सम्बन्धी ही लड़का लड़कीको देख लेते हैं। यह कथन सामान्य समाजको दृष्टि-में रख कर कहा गया है; अंग्रेजी पढ़े-लिखे युवक लड़कीको

स्वयं देखना पसंद करते हैं; कुछ लज्जाशील हुए तो फोटोसे सन्तोष कर लेते हैं। लग्नसे कमसे कम दो तीन घण्टे पहले लड़केको लेकर कन्याके घर पहुंच जाते हैं। सब बाराती तो यात्राकी थकान मिटाते हैं और कन्याके घरमें यज्ञ मण्डप बना कर वर वधूको पूर्वकी ओर मुख करके बिठा दिया जाता है; यह सब क्रिया लगभग तीन घण्टोंमें वैदिक मन्त्रोंके पुटोंके साथ समाप्त होती है; इसमें होता तो बहुत कुछ है किन्तु दो बातें मुख्य हैं; प्रथम दोनोंकी आजीवन साथ रहनेकी प्रतिज्ञा तथा द्वितीय अग्निके समक्ष साक्षी देना। साक्षी देनेका दूसरा नाम ही सप्तपदी है, सात बार वर वधू अग्निकी प्रदक्षिणा करते हैं, कन्या दानके साथ यह विधि समाप्त होती है। कहीं कहीं तीन बार ही प्रदक्षिणा की जाती है—लोक धर्मके अनुसार यह सब होनेके बाद तीन दिन बाराती ठहरते हैं—यह लोक परम्परा ही है—शास्त्र विधिसे इन तीन दिनोंके ठहरनेका, बढ़ार तथा अन्य छोटे मोटे कर्मोंका कोई सम्बन्ध नहीं है। शास्त्र विधि तो इतनी ही है कि सप्तपदीके बाद वधूका पिता नव दम्पतिको उपदेश तथा धन धान्य देकर विदा करता है।

ऊपर संक्षेपमें ब्राह्म विवाहकी विधिका परिचय इसलिये करा दिया गया है कि आजकल हिन्दू समाजमें विवाहकी यही पद्धति प्रचलित है। शास्त्रीय विधिके अतिरिक्त कितना काम केवल लोक धर्म अर्थात परम्परा पालन मात्रके लिए किया जाता है यह स्पष्ट होगया होगा। दहेज देनेकी प्रथा भी शास्त्रीय नहीं है, कन्याका पिता जो कुछ भी अपने सामर्थ्यके अनुसार दे देता है वही चुपचाप ले लेनेकी विधि ही वास्तविक है। पहलेसे दहेज ठहराना, सोनेकी बात-चीत करना, बारातकी, इज्जतकी धमकी देना रूढ़ि मात्र है। आसुर विवाहमें वर वधूके पिताको धन देकर उसे खरीद लेता है; किन्तु आजकी दहेजकी कुप्रथाका कुछ सिर पैर ही नहीं, कन्या तो दानमें मिल ही गई साथमें वह सोनेसे भी लदी होनी चाहिये, साथियोंकी खातिर भी उचित होनी चाहिये और सर्वोपरि वर मोटर, साइकिल जो कुछ भी मांग बैठे तो उस इच्छाको पूर्ण करना श्वशुर महाशयका परम कर्तव्य माना जाता है।

ब्राह्म विवाहके सूक्ष्म अध्ययनसे उसके अशास्त्रीय अंगों (कुप्रथाओंका) का ज्ञान हो ही जाता है। साथही, विवाहके उद्देश्य तथा अन्य सामाजिक कर्त्तव्योंपर भी प्रकाश पड़ता है। इस प्रकारके विवाहके अनुसार वर वधूसे प्रतिज्ञा करते हैं कि वह आजन्म, दुःख और सुखमें साथी रहेंगे, पति स्त्री-की रायसे ही घरेलू कार्य करेगा, इसी प्रकार वधू भी अपनी ओरसे इसी प्रकारकी प्रतिज्ञाएं अग्निके समक्ष करती है। निष्कर्ष यह कि हिन्दू विवाहको धार्मिक कृत्य समझता है, विवाह आजन्म साथी बनाता है। दूसरे, विवाह पद्धतिसे स्पष्ट है कि पत्नीका आदर और अधिकार पतिसे कम नहीं, जिस प्रकार पति घरके बाहर सब कामोंमें स्वाधीन है उसी प्रकार स्त्री भी घरके भीतर सब कामोंमें स्वाधीन है। उसे गृहलक्ष्मी संज्ञा इसीलिये दी गयी है। मनुने तो यहां तक कहा है कि जिन गृहोंमें स्त्रियोंका आदर होता है वहां देवता निवास करते हैं। यह बात दूसरी है कि विद्याके अभाव तथा रूढ़ियोंके दास होनेके कारण आजकी भारतीय नारी पददलिता है, किन्तु विवाहके उद्देश्यके प्रकाशमें देखनेसे ज्ञात होता है कि वह जीवन रथका पुरुषके अतिरिक्त दूसरा पहिया है, वह अर्धाङ्गनी है, पुरुष तो आधा ही है, उसे पूर्णता नारी देती है। एक पुरुष है तो दूसरी प्रकृति। भारतीय संस्कृति नारी-का माता रूपमें आचार्य (गुरु) और पितासे भी ऊंचा स्थान निर्धारित कर चुकी है।

बेलजियम—

जर्मनीपर अभी तक अधिकार नहीं हुआ, लेकिन मित्र राष्ट्रोंने यह समझ लिया है कि आज हो या कल, इस वर्ष या आगामी वर्ष यह होकर रहेगा और यही वजह है कि जर्मन राज्यके बटवारेको लेकर अभीसे 'सूत न कपास कोरीसे लट्ठम लट्ठा' होने लगा है। जर्मनीका कौन भाग किसके हिस्सेमें पड़ेगा और खास जर्मनीपर किसका अधिकार रहेगा—रूसका, ब्रिटेनका या अमेरिकाका अथवा तीनोंका। शांघाई नगरकी तरह जर्मनी भी यूरोपका इण्टरनेशनल सेटलमेण्ट (अन्तर्राष्ट्रीय उपनिवेश) बनेगा आदि प्रश्नोंपर भीतर ही भीतर दांव-पेंच चल रहे हैं।

कुछ दिन पूर्व रायटरके खास संवाददाताने यह संवाद दिया था कि अलसास और लारेन प्रदेशपर फ्रांसका अधिकार होगा। उसने यह भी बताया था कि रूस, अमेरिका और ब्रिटेन द्वारा किये गये इस बटवारेको भी जेनरल डी गौलेने स्वीकार कर लिया है। अभी तक इस सम्बन्धमें अधिक कुछ नहीं मालूम हुआ। डी गौलेने यह भी कहा है उक्त प्रान्तको अधिकारमें रखने लायक सैनिक शक्ति फ्रांसके पास है।

इधर जर्मनीके इस तरहके बटवारेकी बातचीतने बेलजियमको भी चिन्तित बना दिया है। फ्रांसीसियोंको जिस तरह बता दिया गया है कि यह प्रदेश उनके अधिकारमें रहेगा ठीक उसी तरह बेलजियम भी यह जानना चाहता है कि राइनलैंड और रूर प्रदेशपर अधिकार करनेमें उसकी क्या स्थिति होगी? उसे भी पूछा जायेगा या नहीं? बेलजियन इस बातके लिये अत्यन्त उत्सुक दिखायी देते हैं कि राइन नदीपर उनकी भी सरहद रहे। लेकिन फ्रांस यह नहीं चाहता कि बेलजियमकी सरहद राइन तक बढ़े। बेलजियम फ्रांसके प्रभुत्वसे भयभीत है। यही वजह है कि बेलजियमके परराष्ट्र सचिव पाल बेनरी स्पाकने लन्दनमें बातचीतके समय इस बात पर जोर दिया था कि मित्रराष्ट्रोंको चाहिये कि वे जितना शीघ्र सम्भव हो बेलजियन सेनाको इस प्रकार पुनर्सङ्गठित और सुसज्जित कर दें कि वह बेलजियमके स्वार्थों और हितोंकी रक्षा करनेके साथ-साथ फ्रांसके प्रभुत्वसे उसको जो खतरा है उसे भी दूर कर सके।

बेलजियमके सम्बन्धमें यत किञ्चित प्राप्त समाचारोंसे एक बात बिलकुल स्पष्ट है कि वहां समाजवादी दलका जोर बढ़ रहा है। किंग लियोपोल्डकी सरकार, जो २७ मई १९४० को बेलजियमके आत्म-समर्पण कर देनेके बाद लन्दन भाग गयी थी अब फिर अपनी राजधानी ब्रूसेल्समें वापस आ गयी है। बेलजियमसे जर्मन सेनाको निकालनेमें मित्र सेनाओंको बेलजियन देश-भक्तोंसे सामयिक सहायता प्राप्त हुई थी। देशमें बहती हुई बयारको देखकर ही बेलजियन प्रधान मन्त्रीको अपने मन्त्रिमण्डलमें दो कम्यूनिस्टोंको लेना पड़ा। लेकिन जनताका रुख स्पष्ट ही अधिक प्रगतिशील सरकारकी ओर हो रहा है। वर्तमान मन्त्रिमण्डल आजके बेलजियमका ठीक-ठीक प्रतिनिधित्व कर सकेगा, ऐसा नहीं कहा जा सकता। सरकारके साथ जनताके उन प्रतिनिधियोंकी तनातनी हो रही है जिन्होंने छल, दुःख और सङ्कटमें जनसाधारणके साथ हिस्सा बटाया है। पिछले चार वर्ष तक जो दल जर्मनोंका प्रतिरोध करते रहे हैं आज शान्तिके समय बेलजियम सरकारने प्रतिरोधकारी दलको निरस्त्र करनेका फरमान जारी किया है। स्वभावतः इस तरहके हुक्मके खिलाफ जनसाधारणमें असन्तोष और क्षोभ हुआ है। कम्यूनिस्टोंने इस आदेशका विरोध किया है और प्रभावशाली सोशलिस्ट वर्ग भी उनके साथ है। इस बातसे

यह स्पष्ट है कि देशका झुकाव किस तरफ है। कम्यूनिस्टों और सोशलिस्टोंका जनसाधारण पर कैसा प्रभाव है यह तो तभी ज्ञात होगा जब साधारण चुनाव होगा किन्तु देश पर उनका प्रभाव बढ़ता जा रहा है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं है।

प्रीमियर पियरलोट देशकी नब्जकी गति देखकर अत्यन्त भयभीतसे दिखायी देते हैं। यही कारण है कि बच्चों जैसी बात उनके मुंहसे निकल गयी है। आपका कहना है कि राजनीतिक दल इस स्थितिसे नाजायज फायदा उठाना चाहते हैं। इस स्थितिको अपने राजनीतिक उद्देश्योंकी पूर्तिमें सहायक बनाना चाहते हैं। अनुकूल स्थितिसे लाभ उठानेके कारण ही तो मि० पियरलोट और उनके पूर्वज संसारमें सत्ता पूंजीवादी स्थापित कर सके। आज जिस देश और राष्ट्रमें समाजवादी व्यवस्था कायम करनेके अनुकूल स्थिति है यदि उस विचारके नेता उससे लाभ नहीं उठा सकते तो यही कहना होगा कि वे नेतृत्व करनेके योग्य नहीं हैं। इस समय सम्पूर्ण यूरोपमें पूंजीवादी और समाजवादी व्यवस्थाके बीच रस्साकशी हो रही है। मो० पियरलोटकी सरकारने पश्चिमी यूरोपका एक ब्लाक बनानेके सम्बन्धमें स्मट्स और चर्चिलकी योजनाका समर्थन किया है। ऐसी अवस्थामें समाजवादी और अधिक प्रगतिशील दलोंका इस प्रतिक्रियावादी सरकारके साथ सङ्घर्ष होना अनिवार्य है, आज हो या कल।

जेनरल फ्रैंको—

संसारकी गति निराली है। मुसोलिनी मिट गया। हिटलरके मिटनेके दिन नजदीक आ रहे हैं, ऐसा समझा जाता है। इन दोनोंके बलसे खड़ा होनेवाला जेनरल फ्रैंको आज बड़ी विषम परिस्थितिमें पड़ा हुआ है। जिस समय धुरी शक्तियोंका विजयरथ तूफानी रफ्तारसे आगे बढ़ रहा था, इसने अपनेको तटस्थ घोषित करते हुए भी मन, वचन और कर्मसे धुरी शक्तियोंकी सहायता, अवश्य ही गुप्त रीतिसे, की। लेकिन आज पांसा पलट गया है। जो कुछ वह कर चुका है उसे कैसे मेट दे सकता है। फिर भी उसने मित्रशक्तियोंको प्रसन्न करनेके लिये और अपनी तटस्थताकी सफाई देनेकी एक बार कोशिश तो की ही। उसने ब्रिटेन, फ्रांस और संयुक्त राज्यके लोकतन्त्रीय भावापन्न व्यक्तियोंको सन्तुष्ट करने और आश्वासन देनेकी नीयतसे ही यह कहा है कि इस युद्धमें 'मैंने बराबर तटस्थ और निरपेक्ष नीतिसे काम लिया है।' किन्तु हम यह कैसे भूल सकते हैं कि कमिण्टर्न विरोधी पैक्टमें शामिल होकर रूसके मोर्चेमें जर्मनी और फिनलैण्डकी तरफसे लड़नेवाला ब्लू डिवीजन फ्रैंकोने ही भेजा था। माल ढोनेवाले जहाजमें स्पेनिश नारङ्गियोंकी जगह बम किसने भेजा था और इटलीके साथी युद्ध संलग्न राष्ट्र हो जानेके बाद इटलीके जहाजोंको मुक्त करनेसे इनकार फ्रैंकोकी सरकारने ही किया था। टैंजियर में ब्रिटिश कनसल जेनरलपर बम किसने और किसकी प्रेरणासे फेंका था? हिटलर और मुसोलिनीकी सफलताके लिये खुलम-खुला क्या फ्रैंकोने, एक नहीं अनेक बार ये सहानुभूति और सदिच्छाएं नहीं प्रकट कीं? इन सब बातोंको देखते हुए जेनरल फ्रैंकोंके लिये तटस्थताकी अपनी सफाई देनेकी अपेक्षा चुप रहना ही अच्छा है।

लार्ड मोयनेकी हत्या—

मध्य पूर्वके लिये ब्रिटिश रेजिडेण्ट मिनिस्टर लार्ड मोयने कैरोमें दो यहूदी आततायियोंकी गोलीके शिकार हो गये। गत ६ नवम्बरको दिनमें १ बजे लार्ड मोयने अपने घरके सामने मोटरसे उतर रहे थे कि दो व्यक्तियोंने उन पर गोली दागी।

हत्याकारियोंने अपने बयानमें यह बात कही है कि "हमने लार्ड मोयनेको इसलिये मारा कि मध्य पूर्वमें ब्रिटिश सरकारके पोलिटिकल डिपार्टमेंटके वे प्रधान थे और उनकी नीति यहूदी राष्ट्रीय हितके विरुद्ध थी।" धर्मके बलपर राष्ट्रीयताको प्रोत्साहन देनेवाले मि० चर्चिल इस घटनासे यहूदियोंपर झुंझला उठे हैं। किन्तु उनकी इस झुंझलाहटका कोई अर्थ नहीं है, क्योंकि इस तरहकी धर्मान्धतासे उत्पन्न असहिष्णुताको कौन पनपा रहा है? भारतमें धर्मके नामपर मुसलमानोंको इतना असहिष्णु किसने बनाया है? मध्यपूर्वमें अपना प्राधान्य बनाये रखनेके लिये अरबोंके मुकाबले यहूदियोंकी राष्ट्रीयताको किसने प्रोत्साहित किया है? लार्ड मोयनेकी इस तरहकी निर्लज्जतापूर्ण और नृशंस हत्याके लिये क्या प्रकारान्तरसे ब्रिटिश साम्राज्यवादी नेता ही जिम्मेदार नहीं है? जिन्होंने सदा एक जाति और एक धर्मवालोंको दूसरी जाति और दूसरे धर्म वालोंके विरुद्ध भड़काया है। इस तरहकी नीतिका परिणाम भयङ्कर धर्मान्धता और असहिष्णुता तो होगा ही।

चिन्तनीय स्थिति

चीनकी सामरिक स्थिति इस समय जितनी नाजुक

और गम्भीर है, शायद युद्धकालमें कभी ऐसी नहीं हुई। १९३८ के शीतकालमें जब हैंको और कैण्टन थोड़े असेंके भीतर ही चीनके हाथसे निकल गये, उस समयसे भी आजकी स्थिति अधिक खतरनाक बतायी जाती है। चीनकी इस तरहकी भयङ्कर स्थितिकी आलोचना करते हुए लन्दनके "डेली टेली ग्राफ" ने लिखा है कि "मित्र शक्तियोंको इस वास्तविक स्थितिका सामना करना है कि जापानी आक्रमण पूर्ण सफल हुआ है, और एडमिरल निमिट्जके शब्दों में, भविष्यमें होने वाले हमारे आक्रमणोंके लिये अत्यन्त हानिकारक है।" चीनमें अमेरिकनोंके जितने हवाई अड्डे थे वे सब जापानियोंके हाथमें चले गये हैं। इसने स्थितिको और भी अधिक भयानक बना दिया है। अवश्य ही फिलिपाइन अञ्चलमें जापानकी समुद्री-हवाई ताकतको इस बुरी तरह कुचल दिया गया है कि जापानके निकट हवाई अड्डे बनाये जा सकते हैं। सुविधा मिलते ही ये बनेंगे भी, क्योंकि चीनमें जापानका यातायात मार्ग यदि निरापद और सुरक्षित बना रहने दिया गया तो उसकी भयङ्करताका पूछना ही क्या?

जेनरल स्टिलवेलके स्थान पर मेजर जेनरल एलवर्ट वीड मीयर चीनस्थ अमेरिकन सेनाके प्रधान नायक होकर आये हैं। पत्र प्रतिनिधियोंसे बातचीतके सिलसिलेमें जेनरल वीडमीयरने कहा कि चीनकी सामरिक स्थिति प्रतिकूल अवश्य हैं किन्तु असाध्य नहीं हैं। आपका कहना है कि निराश होनेका कोई कारण नहीं है। फिलिपाइन अञ्चलमें जेनरल मैकार्थरकी सफलता चीनी युद्ध मोर्चेके लिये बड़ी सहायक और लाभप्रद सिद्ध हुई है। इन बातोंके बावजूद भी जब तक प्रतिकूल स्थिति अनुकूल स्थितिमें नहीं बदल जाती तब तक केवल बातोंसे ही निराशाकी जगह आशाका सञ्चार सम्भव नहीं किया जा सकता। मित्र शक्तियोंका यह प्रथम कर्तव्य है कि केवल देश प्रेमके अस्त्रको लेकर लड़ने वाले बहादुर चीनियोंको उन साधनोंसे परिपूर्ण कर दें जो जापान जैसे प्रबल शत्रुसे लड़नेके लिये आवश्यक हैं।

सामरिक स्थिति तो भयङ्कर है ही, राजनीतिक, कूटनीतिक और सामाजिक स्थिति भी बड़ी चिन्तनीय है। इस तरहके जीवन मरणके संघर्षके बीचमें यदि घरके ही कुछ लोग विद्रोही बन जायें, और मित्रोंसे भी इच्छानुकूल सहायता न मिले तो स्थितिकी गम्भीरताको सहज ही समझा जा सकता है। ऐसी नाजुक हालतको देखते हुए चीनके आत्म समर्पण कर देनेकी आये दिन अफवाहों का उड़ना या उड़ाया जाना स्वाभाविक ही है। यह तो बज्रकी छाती वाले चांगकैशक ही हैं जो इस तरहकी असाधारण परिस्थितिमें भी पर्वतके समान अचल और अडिग हैं। इस तरहके संकटके समय मित्र भी चीनकी उपेक्षा कर रहे हैं। मित्र शक्तियोंका आज जब उल्लेख किया जाता है तो चीनको बराबर बाद दे दिया जाता है। पहले 'चार महान' में एक चीन भी माना जाता था लेकिन अब उसकी जगह फ्रांसको दी जा रही है। उधर ब्रिटिश और अमेरिकन समाचार पत्रों में चीनके कम्यूनिस्टोंकी पीठ ठोंकते हुए मार्शल चांगकैशकके शासनकी कड़ीसे कड़ी निन्दाकी जाती है। इतना ही नहीं उपेक्षाका यह भाव यहां तक बढ़ गया था कि जेनरल स्टिलवेल अपने हीको सर्वेसर्वा समझने लगे थे। युद्ध सञ्चालनको लेकर उनकी मनमानी इतनी बढ़ गयी थी कि आजिज आकर जेनरल चांग कैशकको अमेरिकन सरकारसे यह कहनेको बाध्य होना पड़ा कि स्टिलवेलको चीनसे वापस बुला लिया जाये। इस तरह देखा जाता है कि चीनकी स्थितिको सिर्फ जापान ही नहीं बल्कि उनके मित्र भी असह्य और भयङ्कर बनानेमें प्रकारान्तरसे सहायक हो रहे हैं।

यह समय गृह युद्धका नहीं है। इस तरहका जब सङ्कट उपस्थित है तो चीनके कम्यूनिस्टोंको चाहिये कि वे अपनी हरकतोंसे, उनकी दृष्टिसे वे चाहे उचित ही हों, गृह युद्धको अधिक प्रोत्साहन न दें। इस समय तो उनको मार्शल चांग कैशकको पूर्ण सहयोग प्रदान कर अपने प्रधान शत्रु जापानका मुकाबला करना चाहिये। कम्यूनिस्टों और चांग कैशकके बीच जिस तरह भी हो समझौता हो जाना नितान्त आवश्यक है। समझौतेकी कोशिश भी हो रही है। कम्यूनिस्ट चीनके नेता चाऊ-एन-लाईके फिर चुङ्किङ्ग वापस आनेसे ऐसी सम्भावना है कि दोनों (चांग और चाऊ) मिल कर समझौतेका कोई मार्ग अवश्य निकालेंगे और इसीमें चीनकी भलाई है।

ईरानी तेलकी समस्या—

तेल सम्बन्धी सोवियट प्रस्तावोंपर ईरान सरकारने, युद्ध काल तक, विचार करनेसे इनकार कर दिया है। ईरान सरकारके इस कार्यका यद्यपि ब्रिटिश और अमेरिकन लोकमत द्वारा, कुछ खुलम खुला कुछ दबी जबानसे समर्थन ही किया गया है किन्तु ईरानका लोकमत अपनी सरकारके निश्चयसे असन्तुष्ट जान पड़ता है। इसका कारण यह है कि ईरानसे तेल प्राप्त करनेके लिये सोवियट सरकारने जो शर्तें

ईरान सरकारके सामने पेश की हैं वे ईरानके लिये अधिक सुविधा-प्रद और उदार हैं। सोवियट उप-परराष्ट्र सचिव मो० काव्टारेजने गत २८ अक्तूबरको यह साफ कर दिया है कि रियायतोंकी अवधि समाप्त हो जानेपर ईरानमें सोवियट सरकार द्वारा निर्मित समस्त उद्योग, (मशीनरियां, पाइप वगैरह) ईरानका हो जायेगा। वर्षों से ईरानमें तेलका एकाधिपत्य उपभोग करनेवाली ब्रिटिश और अमेरिकन कम्पनियोंके दृष्टिकोण और सोवियटके दृष्टिकोणका अन्तर स्पष्ट है। सोवियट-रूस चाहता है कि ईरानी श्रमिकोंकी सहायता और सोवियट हुनर तथा मशीनरी द्वारा ईरानमें तेल उद्योगकी प्रतिष्ठा की जाये। सोवियट प्रणालीसे प्रतिष्ठित उद्योग धन्धोंमें संलग्न श्रमिकोंकी हालत निश्चय ही साम्राज्यवादी उद्योग धन्धोंकी अपेक्षा कहीं अधिक समुन्नत और खुशहाल होगी। इस तरह हजारों ईरानी श्रमिकोंको जहां खुशहालीके साथ जीवन बितानेका अवसर मिलेगा वहां कुछ निश्चित अवधिके बाद सारी इण्डस्ट्री (उद्योग धन्धा) उनकी हो जायेगी। इसके सिवा दोनों देशोंके बीच इन रियायतोंके परिणाम स्वरूप राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध अधिकाधिक सुदृढ़ होगा। ये विचार सोवियट उप-परराष्ट्र सचिवके हैं। इस भूमिकाके साथ उपस्थित किये गये सोवियट प्रस्ताव भला ईरानी जनता क्यों न पसन्द करेगी। किन्तु जहां इन प्रस्तावोंसे ईरानका हित है वहीं साम्राज्यवादी देशीय कम्पनियोंके लिये ये अहितकर हैं। अबतक ये कम्पनियां ईरानके श्रमिकोंको मनमाने ढङ्गसे चूसती रही हैं और सम्पूर्ण उद्योग-धन्धोंका सञ्चालन ईरानके प्राकृतिक साधनोंसे मनमाना लाभ उठानेकी दृष्टिसे करतीरहीहैं।ये कम्पनियांकभी ईरानको इस बातका अवसर न देंगी कि वह इनके टेकनिक और मशीनरियोंसे लाभ उठाये। सोवियट-रूसने ईरानको ये सब सुविधाएं देनेका वचन दिया है। ईरानको रूसकी इन शर्तोंपर विचार करके उसके साथ यह व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करना चाहिये। इस आधारपर वह अन्य विदेशी कम्पनियोंसे भी सुविधा जनक शर्तें प्राप्त कर सकता है और इस तरह एक निश्चित अवधिके बाद तेलका सारा कारबार उसके अधिकारमें आ जायेगा।

रूजवेल्टकी विजय—

संयुक्तराष्ट्र अमेरिकाके राष्ट्रपति निर्वाचनमें डेमोक्रट दलकी ओरसे मि० रूजवेल्ट विजयी होकर चौथी बार राष्ट्रपति चुने गये हैं। संसारके सभी लोग डेमोक्रेटोंकी इस विजयके सम्भावित परिणामोंपर गौर कर रहे हैं और अधिकांश लोगोंका ऐसा अभिमत है कि अपनी इस विजयके बावजूद वरेलू मामलोंमें राष्ट्रपति रूजवेल्टको अनुदार दलके प्रबल संयुक्त प्रतिरोधका सामना करना ही पड़ेगा। इसके साथ ही अमेरिकाकी सिनेटमें तटस्थतावादी दलको पराजित करना आवश्यक होगा,क्योंकि ऐसी आशङ्का है कि सिनेटमें मि० रूजवेल्टकी युद्धोत्तर परराष्ट्र नीतिका तटस्थदल प्रबल प्रतिरोध करेगा। यह दल आरम्भसे ही वर्तमान युद्ध में सहयोग देनेके खिलाफ रहा है और अब जबकि अमेरिका युद्धमें शामिल हो गया है; तो उसका कथन है कि भावी शान्ति, सन्धियों और विश्व सुरक्षामें अमेरिकाको विशेषाधिकार मिलना चाहिए। उस दलकी दलील है कि यूरोपीय युद्धसे अमेरिकाका कोई मतलब नहीं, क्योंकि यूरोप और अमेरिका पृथक महादेश हैं और यूरोपकी लड़ाईमें सहयोग देनेमें अमेरिकाका कोई स्वार्थ नहीं हैं। किन्तु यूरोपकी लड़ाईमें सहयोग प्रदान कर अमेरिकाने जब विजयकी ओर अग्रसर होना आरम्भ किया है, तो उसे इसके फलका अवश्य ही विशेष भाग मिलना चाहिये। डेमोक्रेटदलका दृष्टिकोण

इससे भिन्न है; वह संसारके सभी मामलों और खासकर यूरोपसे सम्बन्धित मामलोंमें समान रूपसे भाग लेनेका पक्षपाती है। डेमोक्रेटदल अन्तर्राष्ट्रीय नीतिका समर्थक है, जब कि तटस्थतावादी वैदेशिक मामलोंमें पड़कर अपने जन धनकी हानि करानेके विपक्षमें है। ऐसी आशङ्का है कि अमेरिकन सिनेटके तटस्थतावादी सदस्य मि० रूजवेल्टकी युद्धोत्तर परराष्ट्र योजनाओंको चूर्ण विचूर्ण करनेका प्रबल प्रयास करेंगे और शान्ति स्थापना तथा विश्व सुरक्षामें अमेरिकाको विशेषाधिकार लेनेपर जोर देंगे। अतएव अपनी योजनाको कार्यान्वित करनेके लिये तटस्थोंको सिनेटमें पराजित करना मि० रूजवेल्टके लिये आवश्यक होगा। इसके साथ ही सिनेटकी अध्यक्षतामें भी परिवर्तन करने होंगे क्योंकि सिनेट कमेटियोंके अध्यक्षगण किसी विधानका निर्माण करने अथवा उसमें बाधा पहुंचानेमें अत्यधिक शक्ति सम्पन्न हैं। अधिकांश अमेरिकनोंका ऐसा ख्याल है कि डेमोक्रेटदलकी विजयसे तटस्थदलको बड़ी क्षति पहुंची है और सिनेटमें भी उनका प्रभाव अब नहीं रह गया है। उनका कहना है कि शान्ति सन्धियों और विश्व सुरक्षामें अमेरिकाको विशेषाधिकार मिलनेके तटस्थदलके प्रस्तावके खिलाफ अमेरिकन निर्वाचकोंने जबर्दस्त उत्तर दिया है। इसमें सन्देह नहीं कि मि० रूजवेल्ट शीघ्र ही डीगाल सरकारके निमन्त्रणपर पेरिस जायगें और वहांसे फिर मि० चर्चिल तथा मार्शल स्टेलिनसे मिलनेके लिये रवाना होंगे। इस सम्मेलनमें डम्बर्टन ओक्सकी शान्ति कानफ्रंन्समें उठाये गये महत्वपूर्ण प्रश्नोंपर विचार किया जायगा।

यह सम्मेलन युद्धोत्तर विश्वव्यवस्थाकी योजना तैयार करेगा और शीघ्र ही समस्त मित्र देशोंकी एक कानफरेन्स बुलानेका आयोजन करेगा। ऐसी भी सम्भावना है कि राष्ट्रपति रूजवेल्ट स्वदेशमें न्यूडीलको फिरसे कार्यान्वित करेंगे जो युद्धकालके कारण कुछ शिथिल पड़ गया था। कांग्रेसकी पूर्वानुमति बिना अमेरिकन सेनाका किसी आक्रमणकारी शक्तिको दबानेमें तथा उसका उपयोग करनेमें बाधा पहुंचानेपर सिनेटके शक्तिशाली दल तटस्थतावादियोंको भी शक्तिहीन करनेकी आवश्यकता होगी। गृह मोर्चेपर न्यूडीलके सामाजिक सुरक्षा कार्य-क्रममें और भी वृद्धि कर लाखों किसानों और मजूरोंके स्वार्थोंकी रक्षाका भार अपने ऊपर लिया जायगा। यह भी विश्वास किया जाता है कि मि० डेवी न्यूयार्कके गवर्नर बने रहेंगे, साथ ही मि० रूजवेल्टकी व्यवस्था-योजनाओंका प्रबल विरोध करनेके लिये कोई जबर्दस्त रुख अख्तियार करेंगे। किन्तु परराष्ट्र नीतिके सम्बन्धमें दोनों एक मत रहेंगे और इससे आगामी मित्र राष्ट्र सम्मेलनमें उनकी स्थिति और मजबूत हो जायगी।

राष्ट्रपति निर्वाचनमें अनेक प्रमुख तटस्थ नेताओंकी पराजयके बावजूद सिनेटमें अब तक अन्य संख्यायें प्रभाव शाली तटस्थतावादी हैं और विधानके अनुसार वे अब भी मि० रूजवेल्टकी युद्धोत्तर शान्ति योजनाके दो तिहाई समर्थकोंको अपनी ओर मिला ले सकेंगे। ऐसा होने पर मि० रूजवेल्ट अपने विशेषाधिकारोंसे सिनेटको दबा देनेको बाध्य होंगे।

युद्धमें अमेरिकाकी जन-हानि—

युद्धके आज दिन एक नहीं वरन अनेक विभाग हैं। इन विभागोंमें काम करनेवाले सैनिक भले ही युद्ध सैनिक हैं पर उनका सीधा सम्बन्ध उसी विभागसे रहता है जिस विभागके अन्तर्गत उन्हें काम करना पड़ता है। इस तरह एक ही युद्धके विभिन्न स्थलोंमें काम करने वाले सैनिकोंकी संख्या उनके ही विभागमें रहती है और वहींसे उनके सम्बन्धमें तरह-तरहकी समयानुसार घोषणाएं होती रहती हैं। अमेरिकाके युद्ध प्रवेशके दिनसे लेकर अबतक कुल हताहतोंकी संख्या ५ लाख ९ हजार १ सौ ९५ है। इसमें ११३;४१० सैनिक मरे, २७२,४९६ घायल हुए ६४३२२ लापता हैं तथा ५९९६७ युद्धबन्दी बनाये गये हैं। २८ अक्तूबर तक अमेरिकाके युद्ध विभाग द्वारा दिये गये आंकड़ोंसे पता चलता है कि स्थल युद्धमें सैनिकोंकी क्षतिकी कुल संख्या ४३७३९६ है जिसमें ८४८११ मृत २४३०५४ घायल ५५०११ लापता और ५४३८० युद्धबन्दी बनाये गये हैं।

जल-सेना विभाग द्वारा दिये गये वक्तव्यसे पता चलता है कि ९ नवम्बर तक जलसेनाकी सम्पूर्ण जनहानि ७१८३९ है जिसमें २८५९९ मृत, २९४४२ घायल ८३११ लापता और ४४८७ युद्धबन्दी बने। युद्ध पोतोंपर काम करते हुए ३८०३९ व्यक्ति हताहत हुए जिनमें १८४६० मृत, ८७८४ घायल ८२५३ लापता तथा २५४२ युद्धबन्दी बने। व्यापारी जहाजोंकी रक्षा करते हुए कुल ३२९४३ सैनिक हताहत हुए जिनमें ९६१७ मृत २०४६४ घायल ९१७ लापता और १०४५ युद्धबन्दी बने। तारकी रक्षा करते हुए केवल ८५७ सैनिक काम आये जिनमें ५२२ मृत १९४ घायल १४१ लापता हुए। इस विभागके लिये सौभाग्य की बात यही रही कि इसका एक भी सैनिक युद्धबन्दी नहीं बना।

बालकोंका म्यूजियम—लन्दनके इस्ट एण्डके गरीब मुहल्लेमें एक मशहूर म्यूजियम (संग्रहालय) है जो 'लड़कोंका म्यूजियम' नामसे प्रसिद्ध है। इसमें ब्रिटेनकी गत शताब्दियोंके दैनन्दिन जीवनसे सम्बन्ध रखने वाली बातों, कला और उद्योग धन्धा सम्बन्धी दिलचस्प वस्तुएं संग्रहीत और सुचित्रित हैं। जिलाके स्कूली लड़कोंकी सुविधाके लिये यहां समय समय पर व्याख्यान कराये जाते हैं। म्यूजियमके प्रवेश द्वार पर भीतर जानेके लिये प्रतीक्षामें खड़े बालकोंका चित्र ऊपर है।

भारतसे चीनका रास्ता—

अमेरिकाके साथ चीन-ब्रिटिश और कनाडाके इन विचारोंके प्रतिकूल है कि संसारका हवाई मार्ग विस्तृत और बड़े पैमानेपर हो। चीन और अमेरिकाके विचारसे अन्तर्राष्ट्रीय हवाई मार्ग तथा हवाई मार्ग सम्बन्धी वैज्ञानिक और परामर्श दात्री सभा एक सीमित संख्यामें हो ताकि हवाई मार्गका यात्रा-व्यय और काम सदैव संतुलित अवस्थामें रह सकें। इस विवादके बाद भी चीन और अमेरिकाने अपने विचारको निश्चय रूपमें नहीं माना वरन वे ब्रिटिश और कनाडाके सुझावोंको भविष्यमें अधिक परिमार्जित रूपमें देखनेको उत्सुक हैं। इस सम्बन्धमें चीनपर जापानी आक्रमणकी भयङ्करताके सामने हवाई मार्गको नापसन्द करने वाले चीनके भूतपूर्व यातायात मन्त्री डा० काई-गाऊ चांगने कहा कि जबतक हमारी राष्ट्रीयता और स्वाधीनता जीवित है हम अपने देशमें हवाई मार्ग का स्वागत करेंगे। पारस्परिक समझौतेकी भित्तिपर विदेशसे व्यापार सम्बन्धी हवाई यातायातको चीन बगैर किसी भेदभावके आधारपर ग्रहण करनेको तैयार है। युद्ध समाप्ति के बाद चीनका सर्वप्रथम कर्तव्य होगा देशीय हवाई यातायातमार्गका पुनर्निर्माण और इसके साथ ही साथ अपने पड़ोसी देशों भारत, बर्मा, मलाया, श्याम, हिन्द-चीन, फिलिपाइन, कोरिया और जापान के भी हवाई यातायात सम्बन्धी योजना को कार्य रूपमें परिणत करना। अवश्य ही हम उस दिनकी आशामें है जब ईस्ट इण्डीजकी राह आस्ट्रेलियासे होते हुए भारतसे यूरोप, अफ्रीका, दक्षिणी अमेरिका और प्रशान्त पार संयुक्तराष्ट्र, कनाडा और वेस्ट-इण्डीजके हवाई मार्ग खुल जायेंगे।

कबूतरोंको वीरता-पदक—

युद्ध-कालमें ऐसी अनेक नयी-नयी बातें सुननेको मिलती हैं, जिसकी मनुष्य कल्पना तक नहीं कर सकता। हाल ही में लन्दनमें दो ऐसे कबूतरोंको वीरता-पदक प्रदान किये गये हैं, जिन्होंने फ्रांसपर आक्रमण करनेमें महत्वपूर्ण भाग लिया था। 'मैंचेस्टर गार्जियन' के लन्दन स्थित संवाददाताने इस सम्बन्धमें लिखा है कि 'गुलाब' नामक एक कबूतर नार्मण्डी आक्रमणाञ्चलके समीप एक शाही जहाजसे मित्र अभियानका प्रथम समाचार लेकर लन्दन आया था और 'पैडी' नामक एक दूसरा कबूतर नार्मण्डीसे एक समाचार लेकर सबसे अल्प समयमें लन्दन पहुंचा था। इन दोनों कबूतरोंको 'वीरताका डिकिन-पदक' प्रदान किया गया है। ये कबूतर युद्धरत पशु-क्लबके सदस्य हैं। इस क्लबमें सदस्योंकी कुल संख्या ७०० है, जिनमें ९ को वीरताका पदक मिल चुका है।
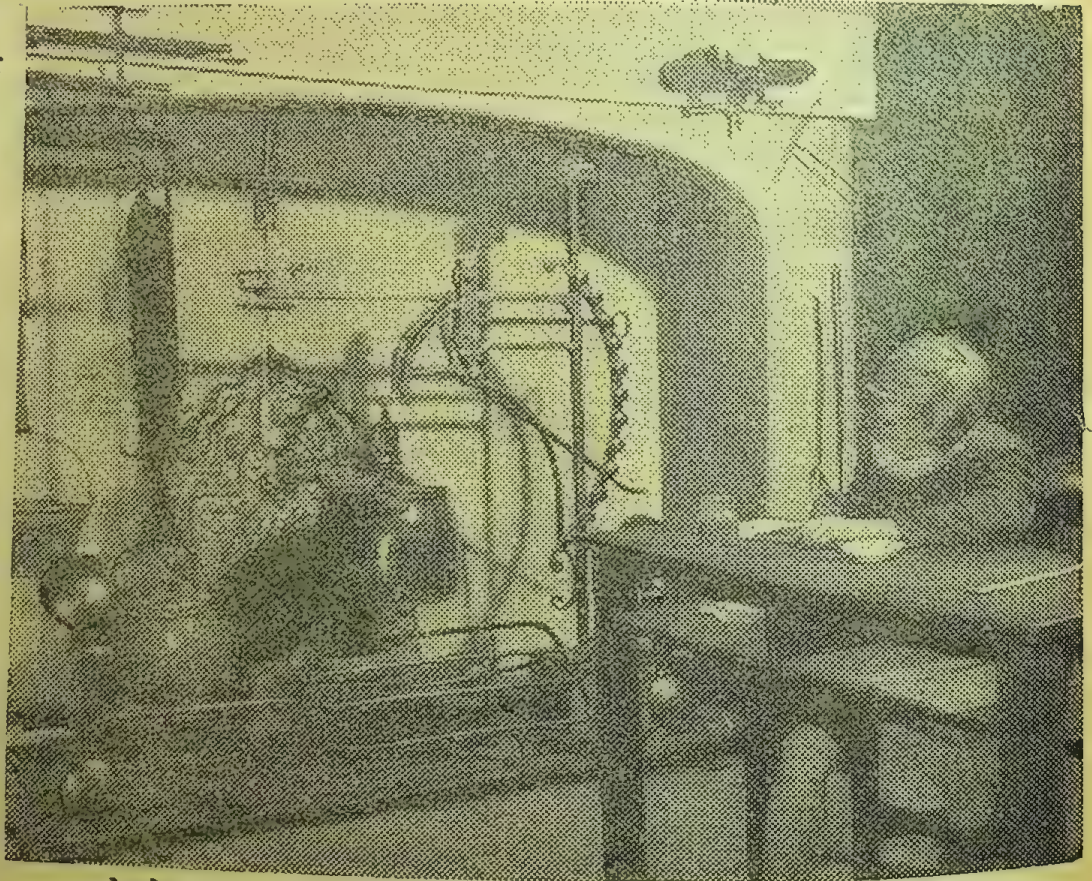
बालकोपयोगी म्यूजियम—पिछली शताब्दियोंमें काममें आने वाले रसोईके बरतनोंका ड्राइङ्ग बनानेमें निमग्न छोटा बालक।

संसारका सबसे लम्बा हवाई मार्ग—

शाही हवाई सेनाके यातायात विभागने संसारका सबसे लम्बा हवाई मार्ग खोला है और सारे संसारमें हवाई यातायातका जाल-सा बिछा दिया है। 'टाइम्स' के शिकागो-संवाददाताने बताया है कि यह सामरिक हवाई मार्ग कनाडा और आस्ट्रेलियाके बीच न्यूजीलैण्ड होकर खोला गया है। इसका सम्बन्ध ग्रेट-ब्रिटेन और पूर्वीय देशोंमें भी रहेगा। इस मार्गसे सप्ताहमें कई बार हवाई यातायात होता है और ऐसी आशा है कि शीघ्र ही मित्र-विमान प्रति दिन इस मार्गसे यातायात करने लगेंगे। माण्ट्रियलसे मुसाफिर, युद्ध सामान और सरकारी डाक करीब चार दिनोंमें सिडनी पहुंच जायगी और ग्रेट-ब्रिटेन तथा कैरोसे आस्ट्रेलिया पहुंचनेमें ५-६ दिनका समय लगेगा इस मार्गका उद्‌घाटन विख्यात सामरिक यातायात विमान 'कमाण्डो' ने एडमिरल लार्ड लुई माण्टबेटेनके साथ किया है। इस विमानने अबतक ४ लाख मीलसे अधिककी यात्रा की है और सभी समस्त अन्तर्राष्ट्रीय बैठकोंमें यह ब्रिटिश प्रतिनिधियोंको लेकर पहुंचा है। इसी विमान द्वारा मि० चर्चिलने दो बार मास्कोकी यात्रा की है। यह विमान ३० टन तकका सामान ले जा सकता है।

विषधरने महिलाकी जान बचायी—

किसी कविने लिखा है—'जाको राखे साइयां मारि न सकिहैं कोय, बाल न बांका कर सके, जो जग बैरी होय।' यह उक्ति हाल ही में लाहौरसे प्राप्त एक समाचारसे सत्य प्रमाणित होती है, जिसमें एक भयानक विषधर द्वारा एक महिला तथा उसके बच्चेकी प्राण-रक्षा अत्यन्त आश्चर्यजनक स्थितिमें होनेका विवरण दिया गया है।

बताया जाता है कि कैम्पबेलपुर रेलवे स्टेशनपर उतरनेके बाद वह महिला स्टेशनसे १० मील दूर अपने गांव जानेके लिये बच्चेके साथ एक तांगेपर सवार हुई। एक निर्जन स्थानमें पहुंचने पर तांगेवालेने अचानक तांगा रोक दिया और जबर्दस्ती उस महिलाके सभी बहुमूल्य गहने और रुपये छीन लिया। इसके बाद उस महिला और बच्चेको तांगेसे उतारकर मार डालनेकी नीयतसे एक झाड़ीके समीप खींच ले गया। उन दोनोंकी हत्या करनेके लिये ज्योंही तांगेवालेने अपनी चमचमाती हुई कटारी निकाली कि एक भयानक विषधरने फुफकारते हुए झाड़ीसे निकल कर उसके पैरमें काट लिया। तांगावाला तत्क्षण मूर्च्छित होकर गिर पड़ा और कटार तथा गहने-जेवर आस-पास बिखर गये। इसी समय एक मोटरलारी उधरसे गुजरी और किसी प्रकारकी दुर्घटना होनेके सन्देहसे वह तांगेके समीप रुक गयी। लारीके मुसाफिरोंने उस महिला और बच्चेको सभी गहनों

बालकोपयोगी म्यूजियम—लड़कियां एलिजाबीथन कालकी वस्तुओंका ड्राइंग बनाना सीख रही हैं

और रुपयोंके साथ सुरक्षित स्थानपर पहुंचा दिया। इस तरह विषधर सांपने महिलाकी जान और माल दोनोंकी रक्षा की। महिलाओंको इस तरहकी लम्बी यात्रा तांगों और एक्कोंमें बिना सबल सहायकके भविष्यमें बहुत सोच विचारके साथ करनी चाहिये।

हींग—

हींग मनुष्य मात्रके लिये एक परम उपयोगी ईश्वरीय देन है। इसको संस्कृत और बङ्ग भाषामें हिंगु, हिन्दीमें हींग मराठीमें हिंग, गुजरातीमें बघारणी, कर्णाटकीमें लेड, तैलङ्गीमें इंगुरा, फारसीमें अगझु, अरबीमें हिलतीत, अंग्रेजीमें एसाफिटिडा (Assafoetida) और लैटीनमें फेरूलानार्थेक्स (Ferula Narthex) कहते हैं। हींग—हलकी, गरम, पाचक, तीक्ष्ण, स्निग्ध तथा चरपरी वस्तु है। यह कफवातको नाश करती है। अफ्मान, शूल, अजीर्ण, कृमिदोष इत्यादि उदर रोगों को समूल नष्ट करनेके लिये यह अमोघ औषधि है। इसका प्रयोग—स्वास, कास, हैजा, प्लेग, पार्श्वशूल तथा नेत्र रोग इत्यादिमें भी होता है। यह स्वस्थ मनुष्योंके वास्ते भी बहुत लाभदायक वस्तु है। इसको भोजनके साथ मिलानेसे खाद्यपदार्थ सुस्वादु, हितकर और बल वर्धक हो जाता है साथ ही शीत और अजीर्णके कारण होनेवाले रोगोंका भय नहीं रहता। इसको जलमें घोलकर मकानके अन्दर छिड़कने से मच्छर तथा मक्खियां भाग जाती हैं। जिस स्थानपर हींग रहती है वहां पर सर्प बिच्छू नहीं जाते। हींगको जलमें घोल कर खेत पटानेसे फसलमें कृमि लगनेका भय नहीं रहता, पशु चिकित्साके वास्ते भी यह उत्तम दवा मानी जाती है।

इसको कुछ लोग अंजदान वृक्षकी गोंद और कुछ लोग अंजदान वृक्षके पत्तोंका रस बतलाते हैं। बहुतसे विद्वान इसको एक प्रकारके कन्दका घन किया हुआ रस बतलाते हैं। पहले यह मधुके समान चिकनी तथा दूधके समान श्वेत होती है। सूखने पर लाल, पीली तथा श्वेत रङ्गयुक्त हो जाती है। इसकी पैदावार अफगानिस्तानमें होती है।

अंग्रेजी चिकित्सामें यह टिंचर एसाफिटिडा (Tinctor Assafoetida) के नामसे एक मशहूर दवा है। होमियोपैथिकमें भी इसका स्थान साधारण नहीं है। पेटमें वायु भर जाना तथा वायुका केवल ऊपरकी ओर दबाव होनेके समय इसकी शक्तिकृत मात्रासे आश्चर्य जनक लाभ होता है। लक्षणके प्रभेदसे यह और भी कई एक रोगोंमें काम आती है।

आयुर्वेद तथा यूनानी चिकित्साके वास्ते तो यह बहुत ही उत्तम सिद्ध हुई है। एक महाशयकी विशेष कृपासे हींगका "उदरशूल" पर मुझे एक योग मिला है, जिससे बहुतसे रोगी रोगमुक्त हो चुके हैं। वह योग इस लेखके अन्तमें "विश्वमित्र"के पाठकोंकी सेवामें सप्रेम समर्पित है।

हींग दो प्रकारकी होती है। एक सुगन्ध दूसरी तीव्रगन्धा। सुगन्ध हींग—हरी, लाल, पीली तथा श्वेत रङ्ग लिये हलकी होती है। चिकित्साके वास्ते इसीको लेना जरूरी है। यह अमृतके समान गुणदायक वस्तु है तथा इसको हीरा हींग कहते हैं। तीव्रगन्धा हींग लाल रङ्ग लिये हुए श्वेत होती है। इसका उपयोग पशु चिकित्सा तथा फसलोंके कृमिको मारनेके लिये होता है। लेकिन आज कल तो बहुत तरहकी हींग देखनेमें आती हैं। उन कृत्रिम हींगोंका सेवन करनेसे लाभके बदले हानि होती है। इसके व्यवसायमें बहुत ठगी होती है। अक्सर देखनेमें आता है कि बहुतसे काबुली तथा अफगान लोग इधर उधर हींग बेचते नजर आते हैं। उन लोगोंमें बहुत से ऐसे हींग बेचनेवाले मिलते हैं जो हींगमें पत्थरकी बुकनी गेहूं चने और जौका आटा मिलाकर रखते हैं। कितने तो ऐसे मिलते हैं जो हींगमें बहुत ही अशुद्ध तथा दूषित वस्तुओंका सम्मिश्रण कर जनताकी आंखोंमें धूल झोंकते हैं।

हींगकी पहचान बहुत ही कठिन है लेकिन साधारणतः दो तरहसे इसकी मामूली परीक्षा सर्वसाधारण द्वारा भी हो सकती है। हींगको जलानेपर कपूरकी भांति गन्ध आती है तथा सलाई लगाते ही यह बत्तीकी तरह जल उठती है। लेकिन कितने धोखेबाज इसको घृत या तेल मिलाकर रख लेते हैं। अतः हींगको जलमें घोलकर परीक्षा करना इससे कहीं श्रेष्ठकर है। जलमें भिगो देनेपर हींग श्वेत हो जाती है। इसमें मिलाया हुआ पत्थरका चूर्ण तलीमें बैठ जाता है तथा आटा फुटकेकी तरह अलग हो जाता है। "उदरशूल" (Coalic pain) पर योग निम्न-प्रकार हैः—हीरा हींग डेढ़ तोले, हरड़ एक छटाक, पिपरी एक छटाक, खुरासानी अजवायन एक छटाक, काला नमक एक छटाक, सौंफ एक छटाक, अमरबेंत आधा छटाक, अनारदाना आधा छटाक तथा कौड़ी भस्म डेढ़ तोले। विधिः—(हींगको आगपर सेंककर काममें लाना चाहिये।) उपर्युक्त औषधियोंको कूट कपड़ छानकर शीशीमें रखकर कार्क लगा देवे। सवेरे तथा शामको अठन्नी भर चूर्ण फांककर ऊपरसे गुमगुम जल पी लेवे। जिस समय उदरशूलका अधिक वेग हो उस समय आध घण्टा या इससे भी कम समय पर इस दवाका प्रयोग किया जा सकता है। ख्याल रहे हीरा हींग इसके लिये बहुत जरूरी वस्तु है।

—डा० कमला प्रसाद मिश्र बी० एस० सी०

प्रगतिके नाम पर कलाका व्यभिचार—

“इस समय हिंदी-संसारमें कहानीकी धारा प्रबल वेग से उमड़ रही है। आये दिन कहानियोंके नवीन-नवीन संग्रह प्रकाशित होते हैं, और यह प्रथा भी प्रचलित हो गयी है कि सभी सामयिक पत्र-पत्रिकाओंके प्रत्येक अंकमें एकाध कहानी होनी ही चाहिये। है तो यह शुभ लक्षण; परन्तु कसौटी पर कसी जानेके पश्चात् इन कहानियोंमेंसे और नहीं तो कम से कम नब्बे प्रतिशत सुवर्ण तो क्या, लोहेके मूल्यकी भी प्रमाणित नहीं होतीं।

इसका एक बड़ा कारण तो यह है कि हमारे कहानी-लेखक कहानी-कलासे सर्वथा अपरिचित होने पर भी कहानी लिखने बैठ जाते हैं। दूसरा कारण और अत्यन्त मुख्य कारण तो विशेष दयनीय है। यद्यपि कहानी-लेखकोंके आस-पास कहानियोंकी अपरिमित सामग्री बिखरी पड़ी रहती है, तथापि वे वासनाके इतने वशी-भूत हैं, कि उनको उसका दर्शन भी नहीं होने पाता। परिस्थिति चाहे जैसी रहे, उनके मस्तिष्कमें तो सदा-सर्वदा एक ही कथा-वस्तु चक्कर काटती रहती है। समय और साधनोंके उतार चढ़ावमें प्रेमी एवं प्रेमिका परस्पर अनुरक्त होते हैं, जिनको येन-केन-प्रकारेण ऐक्य-सूत्रमें ग्रथित करनेका उत्तर-दायित्व हमारे कहानीकारजी अपने ऊपर ले लेते हैं। यदि वे इसका निर्वाह करते-करते कहीं मचल पड़े, तो प्रेमी-युगलमेंसे किसी एककी हत्या कर डालते हैं और दूसरेको आजीवन सांसें भरनेके लिये छोड़ देते हैं। बस, उनकी कहानी-कला चरमोत्कर्ष पर पहुंच जाती है। क्या इसी एक कथा-वस्तुसे कहानी - संसारमें हिन्दीका मस्तक गर्वोन्नत हो सकेगा?

यद्यपि इतिहास-पुराणकी पुण्य स्मृतियोंसे कथा-वस्तु लेकर बेशुमार स्वर्णिम चित्र बनाये जा सकते हैं, परन्तु नारीके आकर्षण-विकर्षणसे व्यस्त एवं आकुल वासनासे अतृप्त हमारे कहानीकारको इस ओर दृष्टिपात करनेका अवकाश ही कहां है? आज हमारे सामने धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं राष्ट्रीय समस्याएं भीषण प्रश्नका रूप लेकर उपस्थित हैं, परन्तु हमारे रस-पिपासु कहानीकारका तृषित हृदय नारीके अपार रूप-सागर पर न्योछावर हो रहा है। स्वास्थ्य, नागरिकता, भूगोल आदि विषय भी कथा वस्तु दे सकनेमें समर्थ हैं; परन्तु इस ओर कहानीकारोंकी दृष्टि ही नहीं जाती। आज संसारमें रण-चण्डीका ताण्डव हो रहा है और जनता वणिकोंकी शोषण-वृत्ति एवं मूल्य-नियन्त्रणके कारण आवश्यक वस्तुओं को प्राप्त कर सकनेमें हताश है; परन्तु हमारे कहानीकार के मन-प्राण नारीके मादक रूपमें अटके हुए हैं। मानव-जीवनमें नित्य नवीन एवं अभूत-पूर्व घटनाएं घटित हुआ करती हैं; परन्तु हमारा कहानीकार उनकी ओर दृगपात भी नहीं करता—वह तो नारी-रूपके जादूसे मानों अपनी सम्पूर्ण चेतना ही खो बैठा है। इन बातोंसे स्पष्ट है कि सूझ-बूझकी दृष्टिसे हमारे कहानीकारकी स्थिति कितनी शोचनीय है। आप लोग विद्वान हैं, और आपका कहानी-कार आपके ही सामने नारीके गम्भीर सुषमा-सागरमें डूबा जा रहा है। यदि हो सके, तो उसे उबारनेके लिये कुछ प्रयत्न कीजिये।”

मध्यप्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके अवसरपर कहानी परिषदके अधिवेशनमें स्वागताध्यक्ष पदसे कही गयी उपर्युक्त बातें सुनकर विद्यमान कतिपय युवक क्षुब्ध हो उठे। उन्होंने हमारे कथनका खण्डन करनेके हेतु अत्यन्त ओजस्विनी भाषामें अपने विचार प्रकट किये, जिनका निचोड़ इस प्रकार है:

"नारी और नरके मध्य यौन-सम्बन्धकी जो प्राकृतिकता है, उसकी अपेक्षा करना, मानों सत्यसे मुंह छिपाना है। अन्ततः कलाका उद्देश्य ही सत्यके रहस्यको सजीव रूपमें चित्रित करना है। एतदर्थ ही सम्प्रति 'प्रगतिवाद' का आविर्भाव हुआ है, जो हमारी कलाके लिये वास्तवमें 'सत्यम् शिवम् एवं सुन्दरम्' है।यदि वह नारी तथा नरके यौन सम्बन्धकी सूक्ष्म विवेचना करता है, तो यह कोई अनौचित्य नहीं है—यह तो हमें हमारे जीवनके अधिकतम समीप लाने वाला पुण्य-कृत्य है। इतना ही नहीं, प्रगतिवादने भाषाका भी संस्कार किया है—उसे उसका स्वाभाविक परिधान दिया है। आजका प्रगतिवादी लेखक 'रवि-रश्मियां हरित दूर्वा-दल पर थिरक रही थीं,' जैसी स्वाभाविक भाषा लिखनेसे अपनेको दूर रखता है।"

इसमें सन्देह नहीं कि नारी और नरके मध्य यौन-सम्बन्धकी जो प्राकृतिकता है, वह चिरन्तन एवं शाश्वत है। एतदर्थवह उपेक्षासे परे हैकिन्तु नर और नारीके यौन-सम्बन्ध में प्रेम की—विशुद्ध प्रेमकी जो कल्पना की जाती है,वह तो बड़ी वैचित्र्य-पूर्ण है। वास्तविक तथ्य यह है कि प्रेम, यौन सम्बन्धसे अत्यन्त परे एक बड़ा ही विमल भाव है। वह तो मानवके सामनेसे अन्धकारको हटाता है और उसे जीवनका आलोक प्रदान करता है। अतएव यौन-सम्बन्धमें प्रेमकी स्थापना करना कदापि शोभनीय नहीं है। सत्य तो यह है कि प्रेम वासना-रहित और यौन-सम्बन्ध वासना-मूलक होता है। अतएव दोनोंको एक समझना भ्रांतिके अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। पेंसिल छीलते-छीलते किसी युवतीकी उंगली कट जाती है, और कोई युवक तत्काल अपना रूमाल फाड़कर उस पर पट्टी बांध देता है। बस, दोनोंकी आंखें चार होती हैं, और उनमें परस्पर आकर्षण-क्रिया कार्य करने लगती है। इस आकर्षण क्रियाको प्रेमकी--विशुद्ध प्रेमकी संज्ञा कैसे दी जा सकती है, जिसकी अन्तिम परिणति काम-वासना, काम-तृप्ति, संभोग अथवा बलात्कारके रूपमें होती है? यदि 'प्रगतिवाद' इसी विषय-वासनाके सूक्ष्म तथा उद्दीपकविवेचनको कलाकी दृष्टिसे'सत्यम् शिवम् एवं सुन्दरं' स्वीकार करता है, तो फिर ईश्वर ही इस देशके साहित्य और समाजका रक्षक है।

प्रगतिवादका यह दावा कि वह यौन-सम्बन्धके सूक्ष्म विवेचन-द्वारा हमें हमारे जीवनके अधिकतम समीप लानेका पुण्य-कृत्य करता है; वास्तवमें छोटे मुंह बड़ी बात है। तथ्य तो यह है कि प्रत्येक मनुष्य सदैव अपने जीवनके अधिकतम पास रहनेकी चेष्टा करता है। वह बुरेको बुरा और अच्छेको अच्छा समझता है। फिर भी अपने स्वार्थके अनुकूल अच्छे को त्याग बुरेको ग्रहण करता है। यद्यपि वह अपने कृत्यके अनौचित्यको पूर्णतया समझता है,तथापि संसारपर यही प्रकट करता है कि मैंने उपयुक्त मार्ग ग्रहण किया है, और ऐसा करते हुए वह स्वयं ही धोखा खाता है—अपने हाथों अपने विनाशके बीज बोता है। हमारे प्राचीन साहित्यकारोंने इस मानव-प्रवृत्तिका सुन्दरतम विश्लेषण किया है--इतना सुन्दर-तम् विश्लेषण कि आजके 'प्रगतिवाद'की कल्पना अभी उसके निकट भी नहीं पहुंच पायी। उन्होंने मानव-प्रवृत्तिका यह विश्लेषण करते समय जिन पूर्ण चित्रोंकी रचनाकी है, वे आज भी तद्वत् नवीन हैं, दिव्य हैं, मनोरम हैं तथा लोक कल्याण-कारक हैं। परन्तु मनुष्य उनसे लाभ क्यों नहीं उठाता है? वह तो निरन्तर वेगसे पतनकी ओर अग्रशील है। ऐसी अवस्थामें यह कहना कि 'प्रगतिवाद' का यौन-सम्बन्धी सूक्ष्म विवेचन हमें हमारे जीवनके अधिकतम समीप लाने वाला पुण्य-कृत्य है, कोरा दम्भ है। हमारा स्पष्ट मत है कि 'प्रगतिवाद' की ओटमें यौन-सम्बन्धकी सूक्ष्म विवेचना करना पाप-कृत्य है—वह मानवकी पैशाचिक कामवासना-को उत्तेजन देनेके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

इस निवेदनका तात्पर्य यह है कि संसारमें विषय-वासना ही मुख्य नहीं है। उसके अतिरिक्त भी बहुत कुछ है। उदाहरणार्थ हम दाम्पत्य प्रेम, शिशु-प्रेम, मातृ-प्रेम, पितृ-प्रेम, गुरु-प्रेम, भ्रातृ-प्रेम, मित्र-प्रेम, मानव-प्रेम, समाज-प्रेम, देश-प्रेम, विश्व-प्रेम, प्रकृति-प्रेम आदि आदि ले सकते हैं। अभिप्राययह कि हमारे समक्ष मानव-जीवनसेसम्बन्धित प्रचुर समस्याएं बिखरी पड़ी हैं। यदि कहानीकार चाहें तो उन पर पैनी दृष्टि डालकर ऐसी ऐसी कहानियां रच सकते हैं, जिनसे जनताकी रुचि 'कु' से 'सु' में परिवर्तित हो जाय और उसे न्याय, सहानुभूति, वीरता,त्याग, उत्सर्ग, कर्तव्य-पालन आदिके लिये भी स्फूर्ति एवंप्रेरणाकी प्राप्ति हो जाये। आज संसारको इन्हीं बातोंकी आवश्यकता है और इन्हींकी पूर्तिको हम 'प्रगतिवाद' का उद्देश्य एवं कलाका अभीष्ट कह सकते हैं। इसके विरुद्ध जो हमें संसारकी गतिमें अग्रसर होने-की अपेक्षा पीछेको ढकेलता है, वह कदापि 'प्रगतिवाद' नहीं है। और जो कला हमारी उदात्त भावनाओंको पतनके गर्तमें ले जाती है, वह कला नहीं,कला का व्यभिचार मात्र है।

अब रहा 'प्रगतिवाद' का यह दावा कि उसने भाषाका संस्कार किया है या उसे उसका स्वाभाविक परिधान दिया

है, सो इस सम्बन्धमें भाषा-मर्मज्ञ या वैय्याकरण ही अधिकार पूर्वक कुछ कह सकता है। फिर भी हमारी धारणा है कि 'रवि-रश्मियां हरित दूर्वा-दलपर थिरक रही थीं" भाषा का स्वाभाविक, किन्तु सुसज्जित एवं मनोरम रूप है और कितने ही प्रगतिवादी लेखक इस प्रकारकी भाषा लिखनेमें गर्वका अनुभव करते हैं।

समालोचना

नारङ्गी--पं० गुलाब रत्न वाजपेयीका यह हिन्दी संसारको नवीनतम उपहार है। यह सितम्बर १९४४ को विज्ञान-मन्दिर ६ ब्राह्मण पाड़ा लेन कलकत्तासे प्रकाशित हुई है।

सबसे उल्लेखनीय बात जो मुझे इसमें दीख पड़ी वह यह है कि "नारङ्गी" को उलट पुलटकर जिधरसे, जिस आंख और जिस दृष्टिकोणसे देखिये सर्वदा "ताजी" है।

इसके कथानकका समय १९४३ और स्थान कलकत्ता नगरी है। नाटक, थियेटर, रङ्ग-मञ्च, रजतपट और सिनेमा-पत्रकारिता तथा इससे सम्बन्धित लोगोंका इसमें सजीव और कलात्मक चित्रण हुआ है। "तूफानेबदतमीजी"के चक्कर में पड़कर किस प्रकार आदमी मिनटोंमें बनता और बिगड़ता है, आदमी किस प्रकार एक बार लुढ़ककर मनुष्यसे पशु बनजाता है और वर्तमान पूंजीपतियोंकी कलुषित भावनाओंने कला-को किस प्रकार कलङ्कित कर रखा है इसका वर्णन आप इसमें पायेंगे। कला अमर और निर्माणात्मक है। कलाकार भी मनुष्य है, इसलिये कुत्सित और वीभत्सपूर्ण वातावरणसे भी होकर उसे गुजरना पड़ता है परन्तु अगर वह वास्तवमें कलाकार है तो उसके चांदपर धब्बा नहीं लग सकता, एक दिन वह चांद नहीं सूर्यकी भांति जगमगाता हुआ अवश्य ही सिर पर होगा। उपन्यासकी नायिका वेश्याकी बेटी नारङ्गी और बाजारू स्त्रीकी जालमें फंसा बिलास—नायकने इसे चरितार्थ कर दिखाया है।

नारङ्गीमें प्रगतिशीलता भी है और युगकी पुकार भी। पेरिस थियेटरकी रङ्गतके साथ ही १९४३ के दुर्भिक्षका सामयिक, संक्षिप्त और आवश्यक दिग्दर्शन भी इसमें कराया गया है। नारङ्गी आदिसे अन्त तक वर्तमान आर्थिक और समाजिक व्यवस्थाके खोखलेपनकी ओर निर्देश करती है, और इस शोषण पर आश्रित युगकी टूटती हुई कड़ियोंकी झनझनाहट बराबर सुनायी देती है।

भारतीय सहकारिता आन्दोलन—लेखकः-श्री शङ्कर-सहाय सकसेना प्रकाशकः-भारतीय ग्रन्थमाला प्रयाग, मूल्य २॥)।

राष्ट्रकी उन्नतिके लिये मानव समाजमें पारस्परिक सहयोग नितान्त आवश्यक है। रूस, डेनमार्क तथा आयरलैण्ड प्रभृति राष्ट्रोंने पारस्परिक सहयोग—सहकारिताके द्वारा कितनी उन्नति की है यह किसीसे भी छिपा नहीं है। परतन्त्र भारतमें सहकारिता आन्दोलनका प्रारम्भ हो गया है। लेखकने उसीका विस्तृत विवरण तथा तत्सम्बन्धी समस्याओं पर इस पुस्तकमें गम्भीरता पूर्वक प्रकाश डाला है।

ग्राम समस्याओंसे दिलचस्पी रखनेवाले कार्यकर्त्ताओं एवं छात्रोंके लिये यह पुस्तक बड़ी उपयोगी प्रमाणित होगी। कागजका अकाल होते हुए भी पुस्तकका मूल्य अधिक नहीं है।

विश्व सङ्घकी ओर—ले० श्री सुन्दर लाल और श्री भगवानदास केला। प्रकाशकः-भारतीय ग्रन्थमाला प्रयाग, मूल्य २॥)

संसार आज युद्धकी प्रचण्ड अग्निमें जल रहा है, मानव सभ्यता पतनोन्मुख है फिरभी ईमानदार विचारक और राजनीतिज्ञ विश्व शान्ति और विश्व मानवताके स्वप्न देख रहे हैं। प्रस्तुत पुस्तक उन्हीं स्वप्नोंका निचोड़ है। गत महायुद्धके उपरान्त विश्व शान्तिके लिये स्थापित होनेवाले अन्तर्राष्ट्रीय सङ्घ (जेनेवा) महायुद्ध, विश्व शान्ति और मानव धर्मपर लेखक द्वयने बड़ी गम्भीरतासे विचार किया है। विश्वशान्ति के लिये अन्य विचारोंके साथ लेखकोंने भारतीय आध्यात्मिकताका जो आधार लिया है उससे पुस्तक और भी उच्चकोटिकी बन गयी है। विश्वकी समस्याओंसे रुचि रखनेवाले व्यक्तियोंके लिये यह पुस्तक बड़े कामकी साबित होगी।

लोक-जीवन (मासिक)—सम्पादक श्री परमेष्ठीदास जैन कार्यालय, ७।३६ दरियागञ्ज देहली, वार्षिक मूल्य ६)

सहयोगीका प्रकाशन जैन समाजमें एक अच्छे पत्रकी अभाव पूर्तिके लिये हुआ है। व्यक्ति और समाजकी प्रगतिको अहिंसाके प्रति जागरुक रखनेमें सहायक बनाना इसका उद्देश्य है। 'राजनीति और अहिंसा' समभाव साधना आदि लेख पठनीय है। जैनेन्द्रजीके प्रवचनोंमें व्यक्तिका 'अहम' स्पष्ट है, लोक जीवनकी भावना अस्पष्ट। हमें आशा है कि सहयोगी अहिंसा वादका वास्तविक प्रतिनिधित्व करेगा। सहयोगीका प्रचार प्रसार हो यही हमारी कामना है।

—सतीश
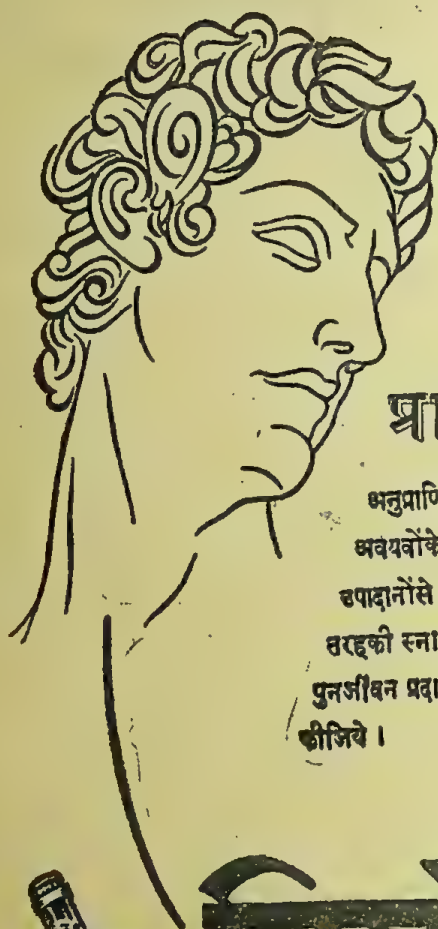
ग्रीक आदर्श
प्राचीन युनानकी सुमहान ज्ञानसाधनाके साथ-साथ शरीर सुगठनका उच्च आदर्श आज भी संसारको अनुप्राणित कर रहा है। अपनी मेधा और शरीरके सभी अवयवोंके पोषणके लिये नियो-विना, जो परीक्षित उपादानोंसे प्रस्तुत है एक अत्यन्त समुन्नत टानिक है। हर तरहकी स्नायविक अवसन्नता और शारीरिक दुर्बलता दूर करके पुनर्जीवन प्रदान करनेमें यह अद्वितीय है। आजसे ही इसका सेवन कीजिये।
नियो-विना
नवजीवन दायक
श्रेष्ठ टानिक
AD
AAB-AD.
एशिया ड्रग कम्पनी लि०
दाशनगर ... बंगाल
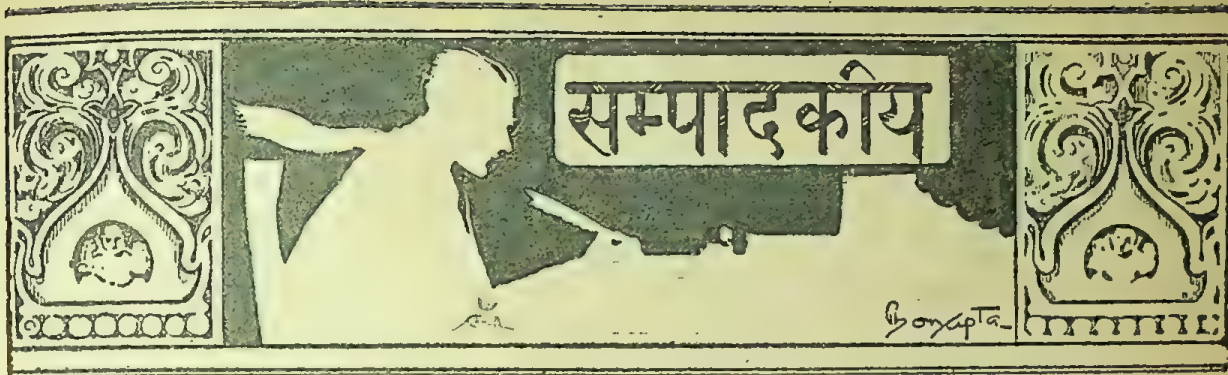
भारत स्वतन्त्र होगा—

हम यह देखते आ रहे है कि जब कभी भारत मन्त्री, उप-भारत मन्त्री, वायसराय, गवर्नर और कमाण्डर इन-चीफ पद पर नयी नियुक्तियां होती हैं,तभी भारत और भारतके बाहर एक ऐसा दल है जो यह समझाने लग जाता है कि इस नियुक्तिसे भारतका हित होनेवाला है। तरह तरहकी आशाओंके पुल हवामें बांधे जाते हैं और नियुक्तिके कुछ दिन पूर्व और कुछ दिन पश्चात तक उसे भारतीय स्थितिको सुधारनेमें सहायक होनेवाला मसीहा बताया जाता है। :जो लोग जानबूझ कर इस प्रकारके प्रचारमें सहायक बनते हैं, उनसे हमें कुछ कहना नहीं है। क्योंकि उनका स्वार्थ इसीमें है कि स्वतन्त्रता प्रेमी भारतीयोंको झूठी आशाएं दिलाकर जहां तक सम्भव हो सके ब्रिटिश शासनके अनुकूल वातावरण बनायें रहें। किन्तु जिनका लक्ष्य और कर्त्तव्य ब्रिटिश शासनसे भारतको मुक्त करना ही है वे भी जब इस तरहके मायाजालमें फंसकर "डूबतेको तिनकेका ही सहारा पर्याप्त है" चरितार्थ करने लगते हैं तब सचमुच बड़ा खेद होता है। यह मनोवृत्ति देशके लिये बड़ी घातक है। परमुखापेक्षी नीति दुर्बलोंकी होती है।

उप-भारत मन्त्री पद पर लार्ड लिस्टोवेलकी नियुक्तिपर कुछ राष्ट्रीय पत्रोंको भी हवाई किले बांधते देखकर हमें तो बड़ा आश्चर्य हुआ। मसल है कि क्या "पिद्दी और क्या पिद्दीका शोरवा"। लार्ड लिस्टोवेलकी क्या बिसात है कि वे ब्रिटिश सरकारकी भारत-नीतिको प्रभावित कर सकें। विख्यात साम्यवादी नेता 'रूस विजेता' समझे जानेवाले सर स्टैफर्ड क्रिप्सकी,जब महात्माजीके शब्दोंमें,"सन्देश वाहक" की स्थितिकर दी जा सकती है तो कूटनीतिक अखाड़ेमें पहले पहल माटी लगानेवाले लार्ड लिस्टोवेल भला किस खेतकी मूली हैं।

अमेरिकाके प्रेसीडेण्ड रूजवेल्टके खास प्रतिनिधि मि० विलियम फिलिप्सने आजसे एक वर्ष पहले ही प्रेसीडेण्टके सामने उपस्थित की गयी अपनी रिपोर्टमें यह साफ कह दिया था कि "ब्रिटिश सरकार भारतको कभी स्वतन्त्र करना नहीं चाहती है। आज तो नहीं ही, युद्धके बाद भी नहीं।" एक साल पहलेसे आज युद्धकी स्थिति मित्रशक्तियोंके कहीं अधिक अनुकूल है। प्रेसीडेण्ट रूजवेल्टने, उनके खास प्रतिनिधिके प्रति ब्रिटेनमें जो अशिष्ट अभद्र आचरण किया गया है उस पर भ्रूक्षेप भी नहीं किया। इसीसे यह बात समझी जा सकती है कि विलियम फिलिप्सकी बातोंका उनपर क्या प्रभाव पड़ा होगा। भारतके लिये वे ब्रिटेनसे शत्रुता मोल लेंगे, यह उनसे आशा नहीं की जानी चाहिये। उनको यदि नीति और न्यायका पक्ष लेना होता तो विलियम फिलिप्सकी रिपोर्ट इस तरह वे फाइल न कर देते। दरअसल आज मि० चर्चिल अपनेको अधिक सुदृढ़ और सुरक्षित पाते हैं। रूजवेल्टके चौथी बार चुन लिये जानेसे उनकी स्थिति पहलेसे अधिक मजबूत हो गयी है। साम्राज्यको बनाये रखनेकी उनकी अभिलाषा पहलेसे अधिक बलवती हो गयी है। भारत पर ब्रिटेनके सदा आरूढ़ बने रहनेकी कल्पना उनके सामने तरह तरहके लुभावने दृश्य उपस्थित कर रही है। भारत सम्बन्धी साम्राज्यवादी नीतिसे वे टससे मस न होंगे। पहाड़ अपनेको अचल और अडिग ही समझता है। चर्चिल भी अब अपनेको वैसा ही समझने लगे होंतो आश्चर्यही क्या। लेकिन उन्हें यह बात न भूल जानी चाहिये कि बड़े बड़े पर्वत भी मुट्ठी भर डिनामाइटके विस्फोटसे धूल चाटने लगते हैं। भारतमें बढ़ते हुए असन्तोष और अशान्तिके डिनामाइटमें स्वतन्त्रता प्रेमियोंके बलिदानकी आगके छू जाते ही वह विस्फोट होगा कि संसारसे ब्रिटिश साम्राज्यवाद निश्चिन्ह हो जायगा। विजय मदान्ध ब्रिटिश राजनेता भले ही भारतीयोंके हृदयमें सुलगती हुई स्वतन्त्रताकी आग आज न देख पाते हों किन्तु संसारमें न्याय, नीति और शान्तिपथ पर चलने वाले मनीषी और बड़े बड़े दार्शनिक इस सत्यको

सूर्यके प्रकाशकी भांति देख रहे हैं और महात्मा गांधी तथा पण्डित जवाहरलाल नेहरूके जन्म दिवसके उपलक्षमें संसारके कोने कोनेसे आये हुए सन्देश इस बातके साक्षी हैं। प्रसिद्ध चीनी दार्शनिक लिनयूटांगका यह कथन कितना सत्य है कि "भारतकी कांग्रेसपार्टीकी,—दूसरे शब्दोंमें सम्पूर्ण क्रान्तिकारी भारतकी,—स्थितिको इन शब्दोंमें व्यक्त किया जा सकता है 'जन साधारण नेहरूकी सुनते हैं, नेहरू गांधीकी सुनते हैं और गांधी सिर्फ भगवानकी सुनते हैं, मैं समझता हूं कि इन शक्तियोंका अन्तर्द्वंद्व बहुत स्वल्प कालमें भारतको स्वतन्त्र करायेगा।"

राष्ट्रपतिका चैलेञ्ज—

महात्मा गांधीके साथ पत्र व्यवहारके दौरानमें तत्कालीन वायसराय लार्ड लिनलिथगोने भारतीय राष्ट्रीय महासभाको हिंसात्मक और तोड़ फोड़ जैसे कामों पर उतर आने वाली संस्थाकहा था। महात्मा गांधीने तो उनके इस अभियोगकामुंह तोड़ उत्तर दिया था ही किन्तु राष्ट्रपति मौलाना अबुलकलाम आजादने भी १३ फरवरी १९४३ को अहमद नगर नजरबन्द कैम्पसे लार्ड लिनलिथगोकी बातोंका खण्डन करते हुए उनको एक पत्र लिखा था। यह महत्वपूर्ण पत्र डा० सैयद महमूद द्वारा, जो जेलसे छूटकर आये हैं, प्रकाशित कर दिया गया है।

अपने पत्रमें राष्ट्रपतिने लार्ड लिनलिथगोको लिखा है—"निस्सन्देह आपने स्वयं विविध प्रकारकी हिंसाका समर्थन यह कह कर किया है, कि सदुद्देश्यके लिये हिंसाका प्रयोग किया गया है। किन्तु कांग्रेस अपने अहिंसाके सिद्धान्त और आचरण पर दृढ़ आरूढ़ है और इन २३ वर्षोंसे इसी प्रणालीको जनता तक पहुंचा रही है। अगर इस मामलेमें कांग्रेस अपनी नीति, ढङ्ग और आचरण बदलनेका निर्णय करेगी, जैसा सभी राष्ट्रीय संस्थाएं करती ही हैं, तो वह अपने सिद्धान्तमें तदनुकूल परिवर्तनके साथ खुल्लम खुल्ला और सोच समझ कर करेगी, इतना नैतिक साहस उसमें है। अपने पत्रके अन्तिम भागमें आपने महात्मा गांधीको लिखा है कि काँग्रेसके खिलाफ जो अभियोग लाये गये हैं उनकी कैफियत आज या कल कभी देनी ही पड़ेगी। हम उस दिनका स्वागत करेंगे जिस दिनसंसारके सामने हम खड़े हो सकेंगे और उसी पर निर्णयका भार छोड़ सकेंगे। उस दिन दूसरोंको भी, जिसमें ब्रिटिश सर-कार भी शामिल है,अभियोगोंका उत्तर और कैफियत देनी होगी। मुझे विश्वास है कि वे लोग भी उस दिनका स्वागत करेंगे।"

राष्ट्रपतिकी ये बातें राष्ट्रके हृदयसे निकली हुई बातें हैं। ब्रिटिश सरकारको यदि साहस हो तो आज, या जब उसकी इच्छा हो संसारकी अदालतके सामने, कांग्रेसके खिलाफ अपना अभियोग पत्र उपस्थित करें। युद्ध कालमें यदि पोलैण्डका झगड़ा मिटानेके लिये मि० चर्चिल और परराष्ट्र सचिव एण्टोनी एडेनको क्यूबेक और मास्को जानेका समय मिल सकता है तो, यदि वे चाहें तो, अपनी न्यायप्रियताकी सफाई देनेके लिये, भारतका मामला भी संसारकी निर्पेक्ष अदालतके सामने रखने और अपने पक्षकी पैरवी करनेका अवसर भी मिल सकता है। लेकिन हम जानते हैं कि राष्ट्रपतिका चैलेञ्ज स्वीकार करनेका साहस ब्रिटिश सरकारको नहीं है। क्योंकि ऐसा करनेका अर्थ होगा सत्य पर पड़े हुए परदेका उठ जाना और ब्रिटिश सरकार इस पर्देको कभी उठाना नहीं चाहती। इस पर्देकी आड़में ही तो साम्राज्यवादको कायम रखनेके लिये तरह तरहके नाटक अभिनीत होते रहते हैं। इसलिये ब्रिटिश सरकार इस तरहकी कोई कार्यवाही न करेगी जिससे उसकी कलई खुल जाय।

व्यथा-व्याकुल गांधी—

अन्तर्द्वन्द्वकी स्थिति बड़ी भयङ्कर होती है। समाजकी सत्ता जिनके हाथमें है; समाजको समुन्नत करनेका कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व जिन समाज-पतियोंको है उनकी बढ़ती हुई अर्थ-लोलुपता बड़ी विकराल होती जा रही है। पैशाचिकताका पुट उसे छूने लग गया है। इस अर्थ लोलुपताके परिणाम-स्वरूप देशमें, अनाचार और दुराचार फैलता जा रहा है। स्थिति उत्तरोत्तर असह्य और भयङ्कर होती जा रही है। यह सब देख कर गांधीजी अत्यन्त व्याकुल हो रहे हैं। उनके भीतर एक विचित्र अन्तर्द्वन्द्व चल रहा है। सत्याग्रही जब अपने आचरण और उपदेशोंसे समाजका हृदय परिवर्तन करनेमें अपनेको असमर्थ पाता है तब वह अपने अंतिम अस्त्र,आत्म बलिदानका आश्रय लेता है। अहिंसाको जीवन धर्म मानने वाले सत्याग्रहीके सामने इसके सिवाय दूसरा रास्ता नहीं होता। इस अनाचारका अन्त करनेके लिये उपवास करूं या न करूं यह अन्तर्द्वंद्व गांधीजीके भीतर हो रहा है। जब तक इस कार्यमें उनको भगवानका स्पष्ट संकेत न दिखायी देगा तब तक वे आत्मबलिदानके इस कठोर मार्गका अवलम्बन न करेंगे, यह बात ठीक है। किन्तु यह स्थिति क्यों उत्पन्न हो गयी है? इसके लिये कौन जिम्मेदार है? यह स्पष्ट है कि यदि इस बार गांधीजीको उपवास करना पड़ा तो इसकी बहुत बड़ी जिम्मेदारी

पूंजीवादी समाज पर होगी। अतएव पूंजीवादी वर्गके नेताओंको चाहिये कि वे अपने स्वार्थोंमें इतने अन्धे न हो जायें कि विश्व पूज्य गांधीजीको आत्माहुति देनी पड़े।

नयाप्रयास—

देशकी सर्वाङ्गीण उन्नतिके लिये यह नितान्त आवश्यक है कि सभी सम्प्रदाय एक दूसरेके सुख दुखके भागी हों। आज घटनाचक्रकी कुचालसे हम लोग मिल-जुल कर रहना भूल गये हैं। एक दूसरेको भय, सन्देह और आशङ्का की दृष्टिसे देखते हैं। यह स्थिति पैदा करनेमें जिनका स्वार्थ था उन्होंने इस चालाकीके साथ अपना काम किया है कि आज हिन्दुस्तानमें कोई किसीका सच्चा साथी मददगार, और हितैषी नहीं है। इसके प्रतिकूल सब एक दूसरेको अपना शत्रु समझते हैं।

यह स्थिति इतनी कटु और असह्य हो गयी है कि ब्रिटिश सरकार समझती है कि निकटमें इन लोगोंके आपसमें मिल-जुल कर रहनेकी कोई सम्भावना नहीं है। इसीलिये साधुताका नकाब डालकर ब्रिटिश राजनेता यह कहते फिरते हैं कि स्वराज्य लेना न लेना हिन्दुस्तानियोंके हाथमें है। वे आपसमें मिल-जुल कर अपना शासन विधान जैसा चाहें बनायें हमें कोई आपत्ति नहीं है।

इसमें सन्देह नहीं कि देशकी भलाईके लिये साम्प्रदायिक एकता नितान्त आवश्यक है और वर्तमान स्थितिमें देशके सामने पहला और सबसे बड़ा काम यही है। सर तेज बहादुर सप्रू नवम्बर महीनेके आरम्भमें महात्माजीसे मिले थे और साम्प्रदायिक एकताके लिये चेष्टा करने वाली एक कमेटी बनानेका सुझाव गांधीजीके सामने रखा था। महात्माजीने ऐसी कमेटीको अपना सम्पूर्ण सहयोग देनेकी बात कहते हुए सर तेजके सामने यह सुझाव रखा था कि प्रस्तावित कमेटीके सदस्य कांग्रेस, मुस्लिमलीग, हिंदू-महासभा वाले अथवा जिन लोगोंने अपना सम्पर्क किसी न किसी दलसे जोड़ रखा है वे न हों। इसके सिवा कमेटीमें कमसे कम दो अवसर-प्राप्त जज हों। सर तेजबहादुर सप्रूने निर्दल नेता सम्मेलनकी स्थायी समितिके सामने गांधीजीकी बातोंके साथ साम्प्रदायिक एकता स्थापन करनेके निमित्त एक निर्दल समझौता समिति बनानेका प्रस्ताव रखा था। स्थायी समितिने गांधीजीके सुझावके साथ प्रस्ताव सर्वसम्मतिसे पास किया है।

देशके प्रमुख व्यक्तियोंसे सर तेज बहादुर कमेटीको सदस्यताके लिये पत्र व्यवहार कर रहे हैं। उन लोगोंकी स्वीकृति मिलते ही कमेटीके सदस्योंके नाम घोषित कर दिये जायेंगे। ऐसा प्रतीत होता है कि यह कमेटी देशकी सभी पार्टियोंके नेताओंके सम्पर्कमें आकर साम्प्रदायिक प्रश्न पर उनके विचार जान और समझ लेनेके बाद समस्याके समाधान का ऐसा रास्ता बतायेगी, जो उसकी रायमें सर्वोत्तम होगा। यदि इस कमेटीके बताये मार्गका देशमें सर्वत्र स्वागत किया गया तो बादमें राजनीतिक प्रश्न और ब्रिटिश सरकारकी स्थितिके सम्बन्धमें विचार करनेके लिये एक सर्वदल सम्मेलन अथवा राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाया जायगा।

गांधीजीका सहयोग तो इस दिशामें प्राप्त होगा ही, किंतु मि० जिन्ना और अन्य प्रमुख नेताओंका सहयोग प्राप्त करनेके लिये सर तेज प्रयत्नशील हैं। हम हृदयसे सर तेज बहादुर सप्रूके इस महत प्रयासकी सफलता चाहते हैं।

असेम्बलीका रङ्गमंच—

केन्द्रीय व्यवस्थापिकाकी दोनों परिषदोंका शरत्-कालीन अधिवेशन मात्र २३ दिन रहा। असेम्बलीका अधिवेशन स्टेट कौंसिलके निष्प्राण और नीरस अधिवेशनकी अपेक्षा अधिक सजीव रहा। कांग्रेस पार्टीके सभी सदस्य, जो जेलसे बाहर हैं, अधिवेशनमें शामिल हुए और असेम्बलीकी बैठकोंके जानदार हो जाने और दर्शकोंकी संख्यामें इस बार अतिवृद्धि होनेका यही कारण था। साधारण दर्शकोंकी सीटोंके लिये ३४१६ टिकट जारी किये गये। महिला दर्शक गैलरियोंकी कुल उपस्थिति ६१३ थी। जिनमें अधिकांश नवीना थीं। दूसरोंके नाम जारी किये गये कार्डोंका व्यवहार करने वाले प्रायः एक दर्जन दर्शकोंके नाम काली सूचीमें आ गये।

इस बारके अधिवेशनमें एक उल्लेखनीय बात यह देखी गयी कि गम्भीर और व्यापक महत्वपूर्ण प्रश्नोंपर कांग्रेस, मुस्लिम लीग और नेशनलिस्ट पार्टीके सदस्योंने मिलकर सरकारका सामना किया। इसीका यह परिणाम हुआ कि नौ बार की गयी मत-गणनामें सरकार ६ बार पराजित हुई। असेम्बलीके प्रेसीडेण्ट सर अब्दुर रहीमका रुख अत्यन्त अवांछनीय बन गया है। सभी राष्ट्रवादी और प्रगतिशील दल उनसे यहां तक असन्तुष्ट हैं कि उनके विरुद्ध अविश्वासका प्रस्ताव लानेकी सूचना तक देदी गयी थी। किन्तु सूचनाके पूर्ण नियमानुकूल न होनेके कारण इस अधिवेशनमें प्रस्ताव न आ सका। सर अब्दुर रहीम, जो अब ८० वर्षसे अधिक उम्रके हैं, इस युगके लिये अति प्राचीन हैं। इस तरहके

व्यक्ति सरकारके लिये वरदान और लोकसत्ताके लिये अभिशाप सिद्ध होते हैं। उचित तो यही है कि सर अब्दुर रहीम स्वयं अध्यक्ष आसनको किसी अधिक उपयुक्त व्यक्तिके लिये रिक्त कर दें।

भारत सरकारके किसी विभागकी नीतिसे लोकप्रिय दल सन्तुष्ट नहीं हैं, यह एक बार फिर स्पष्ट हो गया है। सभी विभागोंमें फैले हुए अनाचार, कदाचारकी तीव्र निंदा की गयी। खाद्य विभाग-रेलवे विभागकी अयोग्यताका परिणाम है कि देशमें खाद्य वस्तुओंका मूल्य इतना बेहिसाब बढ़ गया है कि गरीबोंको पेट मारकर रह जानेके सिवा और कोई उपाय नहीं है। न्याय विभाग और गृह विभाग, प्रचार विभाग और अर्थ विभाग सभीकी नीतिकी लम्बी खबर ली गयी।

दक्षिण अफ्रीकामें भारतीयोंके प्रति जो घृणित वर्णभेद से काम लिया जा रहा है और उनको नागरिक अधिकारों से बञ्चित किया गया है उसका सरकारी और गैर सरकारी सभी दलोंने जोरदार विरोध किया। डा० खरे और सर सुलतान अहमदने गला फाड़-फाड़ कर धमकियां दीं। और डा० खरेने तो यहां तक कह डाला कि अगर भारत स्वतन्त्र होता तो हम इस अन्यायका प्रतिवाद करनेके लिये फौजके साथ दक्षिण अफ्रीका वाले श्वेतोंकी मिजाज पुर्सी करते। लेकिन गरजने वाले दूसरे और बरसनेवाले दूसरे ही बादल होते हैं। असेम्बलीका यह निर्णय कि दक्षिण अफ्रीका के खिलाफ आर्थिक प्रतिबंध लगाये जायं और भारतीय हाई कमिश्नरको दक्षिण अफ्रीकासे वापस बुला लिया जाय अभी तक कार्यान्वित नहीं हुआ और होनेकी आशा भी नहीं है। दक्षिण अफ्रीकाके प्रवासी भारतमें कितने हैं, १९० से अधिक उनकी संख्या न होगी। अतएव उनके विरुद्ध बदलेकी कार्यवाहीसे क्या आता जाता है।

दूसरा अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय था बम्बई योजना पर बहस। इस सम्बन्धमें असेम्बलीने साफ-साफ कह दिया है कि कोई भी युद्धोत्तर कालीन योजना क्यों न हो, असेम्बली की निर्वाचित कमेटी द्वारा उसकी छान-बीन पहले करा ली जाये, तभी जनसाधारणको उसपर विश्वास और भावी राष्ट्रीय सरकारको वह स्वीकार होगी।

इस अधिवेशनमें कुछ मजेदार बातोंपर, प्रश्नोत्तर कालमें अच्छा प्रकाश पड़ा। उदाहरणार्थ डा० अम्बेदकरने यह प्रकट किया कि श्री एम० एन० रायके इण्डियन लेबर फेडरेशनने सरकारसे मिलने वाली मासिक १३ हजार रुपयेकी सहायताका ठीक ठीक हिसाब-किताब नहीं रखा। सर सुलतान-अहमदने सूचित किया कि एम० एन० रायके 'वेनगार्ड' पत्र को जो सहायता दी जाती है वह आगामी वर्षसे बन्द हो जायेगी। सर फ्रैंसिस मुडीने यह स्वीकार किया कि डाकखानोंमें प्राइवेट चिट्ठियोंको गुप्त रूपसे खोला जाता है। आपने इस हरकतको अवश्य ही कानूनी जामा पहनानेकी कोशिश की है। यह भी पता चला कि युद्ध कालमें सिर्फ दिल्लीमें सरकारी इमारतें बनानेमें ६ करोड़ ३८ लाख रुपये खर्च हुए हैं। अब भी जेलोंमें १०३९६ राजनीतिक बन्दी हैं। नेशनल वारफ्रंटकी भी खूब खबर ली गयी। असेम्बलीके इस अधिवेशनसे भी यह स्पष्ट हो गया है कि भारतीय शासन-व्यवस्था कितनी गैर जिम्मेदार है और स्वेच्छाचारिता ही उसकी सबसे बड़ी विशेषता है।

नवलकिशोर सिंह द्वारा 'विश्वमित्र' प्रेस, १४।१ ए, शम्भू चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्तामें सम्पादित मुद्रित और प्रकाशित।

सौन्दर्य
सौन्दर्य वर्द्धक और अधिक आकर्षक केश बनाने को
व्यवहार कीजिये
जेम्स
कैस्टर आयल
James REFINED & PERFUMED CASTOR OIL
JAMES PERFUMERY CO. MADRAS CALCUTTA
दिमाग और आखों को शीतल करता है
James FOR FINE TASTE
जेम्स परफ्युमरी कं. मद्रास कलकत्ता